ॐ अर्हं

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क २०

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज की पुण्य-स्मृति में आयोजित]

श्रीश्यामार्यवाचक-संकलित चतुर्थ उपाङ्ग

प्रज्ञापना सूत्र

[द्वितीय खण्ड, पद १०-२२]

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, टिप्पणयुक्त]

☐

प्रेरणा
उपप्रवर्त्तक शासनसेवी स्व. स्वामी श्री व्रजलालजी महाराज

☐

आद्य संयोजक तथा प्रधान सम्पादक
स्व० युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

☐

अनुवादक—विवेचक—सम्पादक
श्री ज्ञानमुनिजी महाराज
[स्व० जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्रीआत्मारामजी म. के सुशिष्य]

☐

प्रकाशक
श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क २०

☐ निर्देशन

महासती श्री उमरावकुँवरजी 'अर्चना'

☐ सम्पादक मण्डल

अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि

☐ सम्प्रेरक

मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'

☐ द्वितीय संस्करण

वीरनिर्वाण संवत् २५२०
विक्रम संवत् २०५०,
दिसम्बर, १९९३

☐ प्रकाशक

श्री आगम प्रकाशन समिति, श्री ब्रज-मधुकर स्मृति भवन
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१
फोन : ५००८७

☐ मुद्रक

सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य : ८५) रुपये

Published on the Holy Remembrance occaasion
of
Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

Fourth-Upanga

PANNAVANĀ SUTTAM

[Second Part, Pad 10-22]
[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations etc.]

☐
Inspiring Soul
Up-pravartaka Shasansevi Rev (Late) Swami Shri Brijlalji Maharaj

☐
Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Shri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

☐
Translator & Annotator
Shri Jnan Muni

☐
Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

Jinagam Granthmala Publication No. 20

☐ **Direction**
Mahasati Shri Umravkunwarji 'Archana'

☐ **Board of Editors**
Anuyogapravartaka Muni Shri Kanhaiyalalji 'Kamal'
Shri Devendra Muni Shastri
Shri Ratan Muni

☐ **Promotor**
Munishri Vinayakumar 'Bhima'

☐ **Second Edition**
Vir-Nirvana Samvat 2520
Vikram Samvat 2050, Dec. 1993

☐ **Publishers**
Shri Agam Prakashan Samiti,
Shri Brij-Madhukar Smriti Bhawan
Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.) [India]
Pin—305 901
Phone · 50087

☐ **Printer**
Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer

☐ **Price : Rs 85/-**

समर्पण

वर्त्तमान में जिन्होने अर्द्धमागधी भाषा की अनुपम सेवा की, अर्द्धमागधीव्याकरण और कोश की तथा संस्कृत, गुजराती एवं हिन्दी भाषाओ मे अनेक मौलिक ग्रन्थो की रचना कर के जैन साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि की,

जो सरलता और सौम्यभाव के साकार अवतार थे,

अपने महान् और विशिष्ट व्यक्तित्व एवं वैदुष्य से जिन्होने जैन-जैनेतर विद्वानो को प्रभावित किया,

उन भारतभूषण शतावधानी स्व. मुनिश्री

रत्नचन्द्रजी स्वामी

की पुण्य-स्मृति में सादर समर्पित

(प्रथम सस्करण से)

प्रकाशकीय

अंग-आगमो मे व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र के समान ही उपाग-आगमो मे प्रज्ञापनासूत्र भी विविध-विषयक एव विशालकाय है। वर्ण्यविषयो की दृष्टि से भी व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र के जैसा ही है। सक्षेप मे कहा जाये तो इसमे जैन दर्शन के तात्त्विक विवेचन-चिन्तन-मनन को सारगर्भित शब्दो मे समाहित कर दिया है। इसलिए जिज्ञासु पाठको के स्वाध्याय-अध्ययन-अध्यापन के लिये इस महत्त्वपूर्ण सूत्रग्रन्थ का द्वितीय सस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

ग्रन्थ मे कुल ३६ अध्ययन है। इन सबको एक साथ प्रकाशित किया जाना शक्य नही था। अत प्रथम भाग मे १ से ९ अध्याय, द्वितीय भाग मे १० से २२ अध्याय और तृतीय भाग मे २३ से ३६ अध्याय प्रकाशित किये गये थे। इसी क्रम से द्वितीय सस्करण भी प्रकाशित है। यह द्वितीय भाग है। प्रथम भाग प्रकाशित हो गया है और तृतीय भाग प्रकाशित हो रहा है।

समिति का उद्देश्य आगम-साहित्य का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार एव पाठक वर्ग को सुगमता से तात्त्विक बोध करने मे सहकार देना है। इसीलिये अपने पूर्व प्रकाशित अप्राप्य सूत्र ग्रन्थो के द्वितीय सस्करण प्रकाशित कर रही है एव प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप मे इस प्रयास के लिये सहयोग देने वाले सज्जनो का सधन्यवाद आभार मानती है। साथ ही हम यह अपेक्षा करते हैं कि भविष्य मे भी इसी प्रकार सहयोग देकर समिति की यशोवृद्धि करेंगे एव हमे कार्य करने के लिये प्रोत्साहित एव प्रेरित करते रहेगे।

रतनचंद मोदी	सायरमल चोरडिया	अमरचद मोदी
कार्यवाहक अध्यक्ष	महामत्री	मत्री

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

प्रज्ञापना सूत्र द्वितीय भाग (प्रथम संस्करण) के अर्थ सहायक

श्री हुक्मीचन्दजी सा. चोरडिया

(प्रथम संस्करण से)

आगम प्रकाशन समिति का एकमात्र उद्देश्य वीतरागवाणी के निर्देशक जैन आगमो को सर्वसाधारण के लिये कम से कम मूल्य मे पठन-पाठन के लिए सुलभ करना है। अतएव समिति की न कोई प्रादेशिक सीमाए हैं और न साम्प्रदायिक। वह सभी अचलो, प्रान्तो एव देशो के लिए तथा समस्त गणो, गच्छो एव सम्प्रदायो के लिए समान है। यही कारण है कि भारत के विभिन्न अचलो मे निवास करने वाले आगमप्रेमी सज्जनो का सहयोग समिति को प्राप्त हो रहा है। तथापि यह उल्लेख करना उचित होगा कि नोखा (चादावतो) के बृहत् चोरडिया-परिवार का योगदान अतिशय महत्त्वपूर्ण और सराहनीय है। इस परिवार के विभिन्न सदस्यो ने आगम-प्रकाशन के इस भगीरथ-अनुष्ठान मे जो आर्थिक सहयोग प्रदान किया है, वह असाधारण है। इससे पूर्व अनेक आगमो का प्रकाशन इसी परिवार के श्रीमन्तो की आर्थिक सहायता से हुआ है और प्रस्तुत आगम भी इसी परिवार के प्रतिष्ठित सदस्य एव श्रीमन्त सेठ हुक्मीचन्दजी चोरडिया के विशेष अर्थसहयोग से हो रहा है।

श्री हुक्मीचन्दजी चोरडिया स्व सेठ जोरावरमलजी सा के चार सुपुत्रो मे सब से छोटे हैं। आप सन १९५४ से १९५८ तक अपने बडे भ्राता श्रीमान् दुलीचन्दजी सा, जिनका परिचय हम औपपातिकसूत्र मे दे चुके हैं, के साथ भागीदार के रूप मे व्यवसाय करते रहे। तत्पश्चात् आपने स्वतन्त्र रूप से फाइनेन्स का व्यवसाय प्रारम्भ किया, जो आज आपकी सूझबूझ और लगन के कारण पूरी तरह फल-फूल रहा है।

श्री हुक्मीचन्दजी सा युवा हैं और युवकोचित उत्साह से सम्पन्न हैं, पर आपके उत्साह का प्रवाह एक-मुखी नही है। वह जैसे व्यवसायोन्मुख है, उसी प्रकार सेवोन्मुख भी है। अपने व्यवसायकेन्द्र मद्रास मे चलने वाली शैक्षणिक, साहित्यिक एव सामाजिक अनेक सस्थाओ के साथ आप विभिन्न रूप से जुडे हुये है और उनके माध्यम मे समाजसेवा का पुनीत दायित्व निभा रहे हैं। निम्नलिखित सस्थाओ को आपका सहयोग मिला और मिल रहा है—

(१) जैनभवन
(२) मानव-राहतकोष
(३) श्री एस एस जैन एज्यूकेशन सोसाइटी
(४) मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन
(५) जैन सेवासमिति, नोखा
(६) श्वे. स्था जैन महिला सघ
(७) अहिंसा प्रचार सघ
(८) राजस्थानी यूथ एसोसियेशन

आप जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी, श्री गणेशीबाई गर्ल्स हाईस्कूल, श्री देवराज माणकचन्द हॉस्पीटल आदि अनेक सस्थाओ के सदस्य हैं।

इनके अतिरिक्त आपने जनहित की प्रशस्त भावना से 'जोरावरमल हुक्मीचन्दजी चोरडिया ट्रस्ट' स्थापित किया है। 'हुक्मीचन्द चोरडिया रोलिंग ट्राफी' आपके द्वारा प्रदान की जाती है।

इस प्रकार आपका जीवन सेवामय है। हम आपके दीर्घ और मगलमय जीवन की कामना करते हैं।

—मन्त्री

आदि-वचन

(प्रथम-संस्करण से)

विश्व के जिन दार्शनिको—दृष्टाओ/चिन्तको ने "आत्मसत्ता" पर चिन्तन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है उन्होने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधनो तथा पद्धतियो पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद् आदि विभिन्न नामो से विश्रुत है।

जैनदर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारो—राग-द्वेष आदि को साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है, और विकार जब पूर्णत निरस्त हो जाते है तो आत्मा की शक्तिया ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप मे उद्घाटित-उद्भासित हो जाती है। शक्तियो का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा—"आगम" के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यत सर्वज्ञ के वचनो/वाणी का सकलन नही किया जाता, वह बिखरे सुमनो की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते है, सघीय जीवन पद्धति मे धर्म-साधना को स्थापित करते है, वे धर्मप्रवर्तक/अरिहत या तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्ही के अतिशयसम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर सकलित कर "आगम" या शास्त्र का रूप देते है अर्थात् जिन-वचनरूप सुमनो की मुक्त वृष्टि जब मालारूप मे ग्रथित होती है तो वह "आगम" का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात् जिन-प्रवचन आज हम सब के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत हैं।

"आगम" को प्राचीनतम भाषा मे "गणिपिटक" कहा जाता था। अरिहतो के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशाग मे समाहित होते है और द्वादशाग/आचाराग-सूत्रकृताग आदि के अग-उपाग आदि अनेक भेदोपभेद विकसित हुए हैं। इस द्वादशागी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया है। द्वादशागी मे भी बारहवाँ अग विशाल एव समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एव श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यत एकादशाग का अध्ययन साधको के लिए विहित हुआ तथा इसी ओर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नही थी, लिखने के साधनो का विकास भी अल्पतम था, तब आगमो/शास्त्रो/को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा मे कठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवत इसलिए आगम ज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दो का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक आगमो का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य, गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणो से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणो के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ चिन्तन की तत्परता एव जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के सरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणो का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को सुरक्षित एव सजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्मति से आगमो को लिपि-बद्ध किया गया।

जिनवाणी को पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुत आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। सस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) मे आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमो की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी, पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रो का अन्तिम स्वरूप-सस्कार इसी वाचना मे सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमो का स्वरूप मूल रूप मे तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-सघो के आन्तरिक मतभेद, स्मृति दुर्बलता, प्रमाद एव भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणो के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारो का विध्वस आदि अनेकानेक कारणो से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एव विलुप्त होने से नही रुकी। आगमो के अनेक महत्त्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विछिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव मे, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नही होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणो से आगम की पावन धारा सकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवी शताब्दी मे वीर लोकाशाह ने इस दिशा मे क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमो के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुन चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमे भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धान्तिक विग्रह, तथा लिपिकारो का अत्यल्प ज्ञान आगमो की उपलब्धि तथा उसके सम्यक् अर्थबोध मे बहुत बडा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियो को शुद्ध प्रतिया मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठको को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासो से आगमो की प्राचीन चूर्णियाँ निर्युक्तियाँ, टीकाये आदि प्रकाश मे आई और उनके आधार पर आगमो का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा मे प्रकाशित हुआ। इसमे आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनो को सुविधा हुई। फलत आगमो के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कही अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढी है जनता मे आगमो के प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण मे अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानो तथा भारतीय जैनेतर विद्वानो की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते है।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय-श्रुत-सेवा मे अनेक समर्थ श्रमणो एव पुरुषार्थी विद्वानो का योगदान रहा है। उनकी सेवाये नीव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हो, पर विस्मरणीय तो कदापि नही। स्पष्ट व पर्याप्त उल्लेखो के अभाव मे हम अधिक विस्तृत रूप मे उनका उल्लेख करने मे असमर्थ है पर विनीत व कृतज्ञ तो है ही। फिर भी स्थानकवासी जैन परम्परा के कुछ विशिष्ट-आगम श्रुत-सेवी मुनिवरो का नामोल्लेख अवश्य करना चाहेगे।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमो—३२ सूत्रो का प्राकृत से खडी बोली मे अनुवाद किया था। उन्होने अकेले ही बत्तीस सूत्रो का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष १५ दिन मे पूर्ण कर अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एव आगमज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वत परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय मे प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ।

गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज का संकल्प

मैं जब प्रात स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म० के सान्निध्य मे आगमो का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलाक की टीकाओ से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह सस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी है, अब तक उपलब्ध सस्करणो में प्राय शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठो मे व वृत्ति मे कही-कही अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिए दुरूह तो हैं ही। चू कि गुरुदेवश्री स्वय आगामो के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हे आगामो के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अत वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमो का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्यज्ञान वाले श्रमण-श्रमणी एव जिज्ञासुजन लाभ उठा सके। उनके मन की यह तडप कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियो के कारण उनका यह स्वप्न-सकल्प साकार नही हो सका, फिर भी मेरे मन मे प्रेरणा बनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल मे आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज, श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनधर्म-दिवाकर आचार्य श्री आत्मारामजी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलालजी म० आदि मनीषी मुनिवरो ने आगमो की हिन्दी, सस्कृत, गुजराती आदि मे सुन्दर विस्तृत टीकायें लिखकर या अपने तत्त्वावधान मे लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा मे बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानो ने उसे बहुत ही सराहा किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस मे व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान मे आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान मे तेरापंथी सम्प्रदाय मे आचार्य श्री तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व मे आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए है उन्हे देखकर विद्वानो को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ-निर्णय मे काफी मतभेद की गु जाइश है, तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालालजी म० "कमल" आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो मे वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा मे प्रयत्नशील है। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमो मे उनकी कार्यशैली की विशदता एव मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम-साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान प० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, विश्रुत मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमो के आधुनिक सम्पादन की दिशा मे स्वय भी कार्य कर रहे है तथा अनेक विद्वानो का मार्ग-दर्शन कर रहे है। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन मे एक सकल्प उठा। आज प्राय सभी विद्वानो की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कही आगमो का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कही आगमो की विशाल व्याख्याये की जा रही है। एक पाठक के लिये दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगमज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यम-मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमो का ऐसा सस्करण होना चाहिये जो सरल हो, सुबोध हो, सक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य मे रखकर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की

थी, सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि स २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यादवस का यह दृढ निश्चय घोषित कर दिया और आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय मे गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री ब्रजलालजी म की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरो तथा सद्गृहस्थो का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किये विना मन सन्तुष्ट नही होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म "कमल", प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म० शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म० के प्रशिष्य भण्डारी श्री पदमचन्दजी म० एव प्रवचन-भूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म०, स्व० विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकु वरजी म० की सुशिष्याए महासती दिव्यप्रभाजी, एम ए, पी-एच डी, महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमरावकु वरजी म० 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् प० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, स्व० प० श्री हीरालालजी शास्त्री, डा० छगनलालजी शास्त्री एव श्रीचन्दजी सुराणा "सरस" आदि मनीषियो का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एव महेन्द्र मुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकु वरजी, महासती श्री झणकारकु वरजी का सेवाभाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व० श्रावक चिमनसिंहजी लोढा, स्व० श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप मे हो आता है, जिनके अथक प्रेरणा-प्रयत्नो से आगम समिति अपने कार्य मे इतनी शीघ्र सफल हो रही है। चार वर्ष के अल्पकाल मे ही पन्द्रह आगम ग्रन्थो का मुद्रण तथा करीब १५-२० आगमो का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियो की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज आदि तपोपूत आत्माओ के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-सत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० आदि मुनि-जनो के सद्भाव-सहकार के बल पर यह सकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ,

—मुनि मिश्रीमल "मधुकर"
(युवाचार्य)

विषयानुक्रमणिका

दसवाँ चरमपद

ग्यारहवाँ भाषापद

बारहवाँ शरीरपद

तेरहवाँ परिणामपद

चौदहवाँ कषायपद

पन्द्रहवाँ इन्द्रियपद

प्रथम उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

सोलहवाँ प्रयोगपद

सत्तरहवाँ लेश्यापद

प्रथम उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

उन्नीसवाँ सम्यक्त्वपद

बीसवाँ अन्तक्रियापद

इक्कीसवाँ अवगाहना-संस्थानपद

बाईसवाँ क्रियापद

आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

सिरिसामज्जवायग-विरइय

चउत्थं उवंगं

पण्णवणासुत्तं

[बिइयं खंडं]

श्रीमत्-श्यामार्य वाचक-विरचित

चतुर्थ उपांग

प्रज्ञापनासूत्र

[द्वितीय खण्ड]

दसमं चरिमपयं

दसवाँ चरमपद

प्राथमिक

- यह प्रज्ञापनासूत्र का दसवाँ 'चरमपद' है।

- जगत् मे जीव है, अजीव है एव अजीवो मे भी रत्नप्रभादि पृथ्विया, देवलोक, लोक, अलोक एव परमाणु-पुद्गल, स्कन्ध, सस्थान आदि है, इनमे कोई चरम (अन्तिम) होता है, कोई अचरम (मध्य मे) होता है। इसलिए किसको एकवचनान्त चरम या अचरम कहना, किसे बहुवचनान्त चरम या अचरम कहना, अथवा किसे चरमान्तप्रदेश या अचरमान्तप्रदेश कहना ? यह विचार प्रस्तुत पद मे किया गया है। वृत्तिकार ने चरम और अचरम आदि शब्दो का रहस्य खोलकर समझाया है कि ये शब्द सापेक्ष हैं, दूसरे की अपेक्षा रखते हैं।

- इस दृष्टि से सर्वप्रथम रत्नप्रभादि आठ पृथ्वियो और सौधर्मादि, लोक, अलोक आदि के चरम-अचरम के ६ विकल्प उठाकर चर्चा की गई है। इसके उत्तर मे ६ ही विकल्पो का इसलिए निषेध किया गया है, जब रत्नप्रभादि को अखण्ड एक मानकर विचार किया जाये तो उक्त विकल्पो मे से एक रूप भी वह नही है, किन्तु उसकी विवक्षा असख्यात प्रदेशावगाढरूप हो और उसे अनेक अवयवो मे विभक्त माना जाए तो वह नियम से 'अचरम - अनेकचरमरूप चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश रूप है।' इस उत्तर का भी रहस्य वृत्तिकार ने खोला है।[1]

- इसके पश्चात् चरम आदि पूर्वोक्त ६ पदो के अल्पबहुत्व का विचार किया है। वह भी रत्न-प्रभादि आठ पृथ्वियो, लोक-अलोक आदि के चरमादि का द्रव्यार्थिक, प्रदेशार्थिक एव द्रव्य-प्रदेशार्थिक तीनो नयो से विचारणा की गई है।

- इसके प्रश्चात् चरम, अचरम और अवक्तव्य इन तीनो पदो के एकवचनान्त, बहुवचनान्त ६ पदो पर से असयोगी, द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी २६ भग (विकल्प) बना कर एक परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशी से अनन्तप्रदेशी तक स्कन्ध आदि की अपेक्षा से गहन चर्चा की गई है कि इन २६ भगो में से किसमे कितने भग पाए जाते हैं और क्यो ?

- इसके बाद परिमण्डल आदि ५ सस्थानो, उनके प्रभेदो, उनके प्रदेशो तथा उनकी अवगाहना और उनके चरमादि की चर्चा की गई है।

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा १ (मूलपाठ), पृ. १९३

(ख) पण्णवणासुत्त भा २ प्रस्तावना, पृ ८४

(ग) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्राक २२९

✤ तदनन्तर गति, स्थिति, भव, भाषा, श्वासोच्छ्वास, आहार, वर्ण, भाव गन्ध, रस और स्पर्श इन ११ बातो की अपेक्षा से चौवीस दण्डको के जीवो के चरम-अचरम आदि का विचार किया गया है। अर्थात्—गति आदि की अपेक्षा से कौन जीव चरम है, अचरम है ? इत्यादि विषयो पर गभीर विचार किया गया है।[1]

✤✤

१. (क) पण्णवणासुत्त भा २ प्रस्तावना, पृ ८२-८४

(ख) प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्रांक २२९ से २४६ तक

दसमं चरिमपयं

दसवाँ चरमपद

आठ पृथ्वियों और लोकालोक की चरमाचरमवक्तव्यता

७७४ कति ण भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ । त जहा – रयणप्पभा १ सक्करप्पभा २ वालुयप्पभा ३ पंकप्पभा ४ धूमप्पभा ५ तमप्पभा ६ तमतमप्पभा ७ ईसीपब्भारा ८ ।

[७७४ प्र] भगवन् ! पृथ्विया कितनी कही गई हैं ?

[७७४ उ] गौतम ! आठ पृथ्विया कही गई है, वे इस प्रकार है– (१) रत्नप्रभा, (२) शर्करप्रभा, (३) बालुकाप्रभा, (४) पकप्रभा, (५) धूमप्रभा, (६) तम प्रभा, (७) तमस्तम प्रभा और (८) ईषत्प्राग्भारा ।

७७५ इमा ण भंते ! रयणप्पभा पुढवी किं चरिमा अचरिमा चरिमाइं अचरिमाइं चरिमंतपदेसा अचरिमंतपदेसा ?

गोयमा ! इमा ण रतणप्पभा पुढवी नो चरिमा नो अचरिमा नो चरिमाइं नो अचरिमाइं नो चरिमंतपदेसा नो अचरिमंतपदेसा, णियमा अचरिमं च चरिमाणि य चरिमंतपदेसा च अचरिमंतपएसा य ।

[७७५ प्र] भगवन् ! क्या यह रत्नप्रभापृथ्वी चरम है, अचरम है, अनेक चरमरूप (बहुवचनान्त चरम) है, अनेक अचरमरूप (बहुवचनान्त अचरम) है, चरमान्त बहुप्रदेशरूप है अथवा अचरमान्त बहुप्रदेशरूप है ?

[७७५ उ] गौतम ! यह रत्नप्रभापृथ्वी न तो चरम है, न ही अचरम है, न अनेक चरमरूप और न अनेक अचरमरूप है तथा न चरमान्त अनेकप्रदेशरूप है और न अचरमान्त अनेकप्रदेशरूप है, किन्तु नियमत. (वह एक ही पृथ्वी) अचरम और अनेकचरमरूप है तथा चरमान्त अनेकप्रदेशरूप और अचरमान्त अनेकप्रदेशरूप है ।

७७६. एवं जाव अहेसत्तमा पुढवी । सोहम्मादी जाव अणुत्तरविमाणा एवं चेव । ईसीपब्भारा वि एवं चेव । लोगे वि एवं चेव । एवं अलोगे वि ।

[७७६] यो (रत्नप्रभापृथ्वी की तरह) यावत् अध सप्तमी (तमस्तम प्रभा) पृथ्वी तक इसी प्रकार प्ररूपणा करनी चाहिए । सौधर्मादि से लेकर यावत् अनुत्तर विमान तक की वक्तव्यता भी इसी प्रकार समझ लेनी चाहिए । ईषत्प्राग्भारापृथ्वी की वक्तव्यता भी इसी तरह (रत्नप्रभापृथ्वी के समान) कह लेनी चाहिए । लोक के विषय मे भी ऐसा ही कहना चाहिए और अलोक (अलोकाकाश) के विषय मे भ इसी तरह (कहना चाहिए ।)

विवेचना - आठ पृथ्वियो और लोकालोक की चरमाचरम सम्बन्धी वक्तव्यता प्रस्तुत तीन सूत्रो मे से प्रथम सूत्र मे रत्नप्रभादि आठ पृथ्वियो का नामोल्लेख करके द्वितीय सूत्र मे रत्नप्रभापृथ्वी के चरम-अचरम आदि के सम्बन्ध मे प्ररूपणा की गई है तथा तृतीय सूत्र मे शेष पृथ्वियो, सौधर्म से अनुत्तर विमान तक के देवलोक एव लोकालोक के चरम-अचरमादि की वक्तव्यता से सम्बन्धित अतिदेश दिया गया है।

चरम, अचरम की शास्त्रीय परिभाषा वैसे तो चरम का अर्थ अन्तिम है और अचरम का अर्थ है जो अन्तिम न हो, मध्य मे हो। परन्तु यहाँ समग्र लोक के रत्नप्रभादि विविध खण्डो तथा अलोक की अपेक्षा से चरम-अचरम आदि का विचार किया गया है। इसलिए चरमादि यहाँ पारिभाषिक शब्द हैं, इसी दृष्टि से वृत्तिकार ने इनका अर्थ किया है। चरम का अर्थ है - पर्यन्तवर्ती यानी अन्त मे स्थित। चरम शब्द यहाँ सापेक्ष है, अर्थात् दूसरे की अपेक्षा रखता है। उससे कोई पहले हो, तभी किसी दूसरे को 'चरम' कहा जा सकता है। जैसे-- पूर्वशरीरो की अपेक्षा से चरम (अन्तिम) शरीर (पूर्वभवो की अपेक्षा से अन्तिम भव को चरमभव) कहा जाता है। जिससे पहले कुछ न हो, उसे चरम नही कहा जा सकता। इसी प्रकार 'अचरम' शब्द का अर्थ है—जो चरम= अन्तवर्ती न हो, अर्थात् मध्यवर्ती हो। यह पद भी सापेक्ष है, क्योकि जब कोई अन्त मे हो, तभी उसकी अपेक्षा से बीच वाले को 'अचरम' कहा जा सकता है। जिसके आगे-पीछे दूसरा कोई न हो, उसे 'अचरम यानी मध्यवर्ती (बीच मे स्थित) नही कहा जा सकता। जैसे चरम शरीर एव तथाविध अन्य शरीरो की अपेक्षा से मध्यवर्ती शरीर को अचरम शरीर कहा जाता है। जिस प्रकार यहाँ दा प्रश्न एकवचन के आधार पर किये गए है, उसी प्रकार दो प्रश्न बहुवचन को लेकर किए गए है। **'चरिमाइ अचिरिमाइ'** दोनो चरम और अचरम के बहुवचनान्त रूप है। उनका अर्थ होना है --अनेक चरमरूप और अनेक अचरमरूप। ये चारो प्रश्न तो रत्नप्रभादि पृथ्वियो को तथाविध एकत्वपरिणाम विशिष्ट एक द्रव्य मान कर किये गये है। इसके पश्चात् दो प्रश्न उसके प्रदेशो को लक्ष्य करके किए गए हैं—**'चरिमंतपदेसा,' 'अचरिमंतपदेसा'** (चरमान्तप्रदेशा अचरमान्तप्रदेशा)। अर्थ होता है--चरमरूप अन्तप्रदेशो वाली और अचरमरूप अन्तप्रदेशो वाली। इसका अर्थ हुआ क्या रत्नाप्रभा पृथ्वी चरमान्त बहुप्रदेशरूप है, अथवा अचरमान्त बहुप्रदेशरूप है ? इसका स्पष्ट अर्थ हुआ क्या अन्त के प्रदेश रत्नप्रभापृथ्वी हैं, अथवा मध्य के प्रदेश रत्नप्रभापृथ्वी है ? पूर्ववत् चरमान्त और अचरमान्त ये दोनो शब्द सापेक्ष है। न ही अकेले कोई प्रदेश चरमान्त हो सकते है, और न ही अचरमान्त।

पूर्वोक्त छह प्रश्नो का उत्तर - गौतम स्वामी के पूर्वोक्त प्रश्नो का उत्तर भगवान् पहले निषेधात्मकरूप से देते हैं यह रत्नप्रभापृथ्वी चरम नही है, क्योकि वह तो द्रव्य की अपेक्षा एक और अखण्डरूप है। उसे चरम नही कहा जा सकता (चरमत्व तो सापेक्ष है, रत्नप्रभापृथ्वी से पहले कोई हो तो उसकी अपेक्षा से उसे चरम कहा जाए। मगर ऐसा कोई दूसरा नही, क्योकि रत्नप्रभापृथ्वी तो एक अखण्ड और निरपेक्ष है, जिसके विषय मे तुमने (गौतमस्वामी ने) प्रश्न किया है। इसी प्रकार पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार रत्नप्रभापृथ्वी अचरम भी नही कही जा सकती, क्योकि अचरमत्व अर्थात् मध्यवर्तित्व भी किसी दूसरे की अपेक्षा रखता है, इसलिए सापेक्ष है। यहाँ कोई दूसरा ऐसा है नही, जिसकी अपेक्षा से रत्नप्रभापृथ्वी को अचरम कहा जाए। इसके पश्चात् किये हुए बहुवचनात्मक

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२९

प्रश्नो का भी भगवान् निषेधरूप मे उत्तर देते हैं—रत्नप्रभापृथ्वी न अनेक चरम है और न ही अनेक अचरमरूप है। क्योंकि पूर्वकथनानुसार जब रत्नप्रभापृथ्वी एकत्वविशिष्ट चरम और अचरम नही है तो बहुत्वविशिष्ट चरम-अचरम भी कैसे हो सकती है ? अर्थात् रत्नप्रभापृथ्वी न तो बहुत चरम द्रव्यरूप है और न ही बहुत अचरमद्रव्यरूप है।

इसी प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी को न तो चरमान्तप्रदेशो के रूप के कह सकते हैं और न ही अचरमान्तप्रदेशो के रूप में कह सकते है। क्योंकि जब रत्नप्रभापृथ्वी मे चरमत्व और अचरमत्व सभव ही नही है, तब उसे चरमप्रदेश या अचरमप्रदेश भी नही कहा जा सकता।[1] प्रश्न होता है कि रत्नप्रभापृथ्वी चरम, अचरम आदि पूर्वोक्त छह विकल्पो वाली नही है तो क्या है ? उसे किस रूप मे कहना और समझना चाहिए ? भगवान् ने इसके उत्तर मे कहा—'रत्नप्रभापृथ्वी अचरम और अनेक चरमरूप (चरमाणि) है तथा चरमान्तप्रदेश और अचरमान्त प्रदेशरूप है। इसका आशय यह है कि जब एक और अखण्डरूप मे विवक्षित रत्नप्रभापृथ्वी के विषय मे प्रश्न किया जाए तो वह पूर्वोक्त छह भगो में से किसी भी भग मे नही आ सकती, किन्तु जब रत्नप्रभापृथ्वी को असख्यात प्रदेशो मे अवगाढ और अनेक अवयवो मे विभक्त मानकर प्रश्न किया जाए तो उसे अचरम और अनेक चरम रूप (चरमाणि) कहा जा सकता है। क्योंकि रत्नप्रभापृथ्वी [] इसी प्रकार के आकार मे स्थित है। ऐसी स्थिति मे इसके प्रान्तभागो मे विद्यमान प्रत्येक खण्ड तथाविध-विशिष्ट एकत्वपरिणाम परिणत है, उन खण्डो को अनेक चरम रूप (चरमाणि) कहा जा सकता है और जो उन प्रान्त-भागो के मध्य मे बडा खण्ड है, उसे तथाविध-एकत्वपरिणाम होने से एक मान लिया जाए तो वह 'अचरम' है। इस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी प्रान्तवर्ती अनेक खण्डो और मध्यवर्ती एक महाखण्ड का सम्मिलित समुदायरूप है, ऐसा न मानने पर रत्नप्रभापृथ्वी के अभाव का प्रसग आ जाएगा।

इस प्रकार एक ही पृथ्वी को अवयव-अवयवीरूप मे मान लेने पर जैसे उसे अचरम—अनेक चरम रूप (चरमाणि) अर्थात् अखण्ड और एक निर्वचनविषय कहा जा सकता है, उसी प्रकार प्रदेशो की विवक्षा करने पर उसे 'चरमान्त अनेकप्रदेशरूपा' तथा 'अचरमान्त अनेकप्रदेशरूपा' भी कहा जा सकता है, क्योंकि इसके बाह्यखण्डो मे रहे हुए प्रदेश चरमान्तप्रदेश कहलाते है और मध्यवर्ती एक महाखण्ड मे रहे हुए प्रदेश 'अचरमान्तप्रदेश' कहलाते है।

इस प्रकार मुख्यतया एकान्तदुर्नय का निराकरण करने वाले भगवान् के उत्तर से रत्नप्रभा आदि वस्तुएँ अवयव-अवयवीरूप है, अवयव और अवयवी मे कथंचित भेद और कथचित् अभेद है,[2] यह अनेकान्त सिद्धान्त सूचित हो गया।

इस प्रकार जैसे रत्नप्रभापृथ्वी के विषय मे प्रश्न और निर्वचन का (युक्तिपूर्वक विश्लेषण) करके प्ररूपणा की गई, वैसी ही प्ररूपणा शर्कराप्रभापृथ्वी से लेकर तमस्तम पृथ्वी तक तथा सौधर्म से लेकर अनुत्तर विमान तक एव ईषत्प्राग्भारापृथ्वी और लोक के विषय भी प्रश्न एव उत्तर का युक्तिपूर्वक विश्लेषण करके करनी चाहिए। अलोक के विषय मे भी इसी प्रकार प्रश्नोत्तररूप सूत्र बनाकर प्ररूपणा करनी चाहिए। अलोक के लिए लोक के निष्कुटो मे प्रविष्ट जो खण्ड हैं, वे चरम है, शेष अन्य सब अचरम है तथा चरमखण्डगतप्रदेश चरमान्तप्रदेश है एव अचरमखण्डगत प्रदेश अचरमान्तप्रदेश हैं।[2]

---

१ प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्राक २२९

२ वही मलय वृत्ति, पत्राक २२९

चरमाचरमादि पदों का अल्पबहुत्व

७७७. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमंतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं, अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं । पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए चरिमंतपदेसा, अचरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया । दव्वट्ठपदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं, अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं, पएसट्ठयाए चरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा, अचरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया ।

[७७७ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अचरम और बहुवचनान्त चरम, चरमान्तप्रदेशों तथा अचरमान्तप्रदेशों में द्रव्यों की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से और द्रव्य-प्रदेश (दोनों) की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प है, बहुत है, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७७७ उ] गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से इस रत्नप्रभापृथ्वी का एक अचरम सबसे कम है। उसकी अपेक्षा (बहुवचनान्त) चरम (चरमाणि) असंख्यातगुणे हैं। अचरम और (बहुवचनान्त) चरम, ये दोनों विशेषाधिक हैं। प्रदेशों की अपेक्षा से इस रत्नप्रभापृथ्वी के 'चरमान्तप्रदेश' सबसे कम हैं। (उनकी अपेक्षा) अचरमान्तप्रदेश असंख्यातगुणे हैं। चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश, ये दोनों विशेषाधिक हैं। द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से सबसे कम इस रत्नप्रभापृथ्वी का एक अचरम है। (उसकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे (बहुवचनान्त) चरम हैं। अचरम और (बहुवचनान्त) चरम, ये दोनों ही विशेषाधिक हैं। (उनसे) प्रदेशापेक्षया चरमान्तप्रदेश असंख्यातगुणे हैं, (उनसे) असंख्यातगुणे अचरमान्तप्रदेश हैं। चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश, ये दोनों विशेषाधिक हैं।

७७८. एवं जाव अहेसत्तमा । सोहम्मस्स । जाव लोगस्स य एवं चेव ।

[७७८] इसी प्रकार (शर्कराप्रभापृथ्वी से लेकर) नीचे की सातवीं (तमस्तमः) पृथ्वी तक तथा सौधर्म से लेकर लोक (अच्युत, नौ ग्रैवेयक, पंच अनुत्तर विमान, ईषत्प्राग्भारापृथ्वी एवं लोक) तक पूर्वोक्त प्रकार से अचरम, (बहुवचनान्त) चरमों, चरमान्तप्रदेशों तथा अचरमान्तप्रदेशों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करनी चाहिए।

७७९. अलोगस्स णं भंते ! अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमंतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपदेसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे अलोगस्स दव्वट्ठयाए—एगे अचरिमे, चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं, अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवा अलोगस्स चरिमंतपदेसा, अचरिमंतपदेसा अणंतगुणा, चरिमंतपदेसा य अचरिमंतपदेसा य दो वि विसेसाहिया । दव्वट्ठपदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवे

अलोगस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं, अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं, चरिमंतपदेसा असखेज्जगुणा, अचरिमंतपदेसा अणंतगुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया।

[७७९ प्र.] भगवन् ! अलोक के अचरम, चरमो, चरमान्तप्रदेशो और अचरमान्तप्रदेशो में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से एव द्रव्य-प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प है, बहुत हैं, तुल्य हैं, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७७९ उ.] गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से—सबसे कम अलोक का एक अचरम है। (उसकी अपेक्षा) असख्यातगुणे (बहुवचनान्त) चरम हैं। अचरम और (बहुवचनान्त) चरम, ये दोनो विशेषाधिक है। प्रदेशो की अपेक्षा से - सबसे कम अलोक के चरमान्तप्रदेश हैं, (उनसे) अनन्तगुणे अचरमान्त प्रदेश हैं। चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश, ये दोनो विशेषाधिक हैं। द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से—सबसे कम अलोक का एक अचरम है। (उससे) बहुवचनान्त चरम असख्यातगुणे हैं। अचरम और (बहुवचनान्त) चरम, ये दोनो विशेषाधिक हैं। (उनसे) चरमान्तप्रदेश असख्यातगुणे हैं, (उनसे भी) अनन्तगुणे अचरमान्तप्रदेश है। चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश, ये दोनो विशेषाधिक हैं।

७८०. लोगालोगस्स ण भंते ! अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे लोगालोगस्स दव्वट्ठयाए—एगमेगे अचरिमे, लोगस्स चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं, अलोगस्स चरिमाइं विसेसाधियाइं, लोगस्स य अलोगस्स य अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाधियाइं। पदेसट्ठयाए - सव्वत्थोवा लोगस्स चरिमंतपदेसा, अलोगस्स चरिमंतपदेसा विसेसाहिया, लोगस्स अचरिमंतपदेसा असंखेज्जगुणा, अलोगस्स अचरिमंतपदेसा अणतगुणा, लोगस्स य अलोगस्स य चरिमंतपदेसा य अचरिमतपदेसा य दो वि विसेसाहिया। दव्वट्ठपदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवे लोगालोगस्स दव्वट्ठयाए एगमेगे अचरिमे, लोगस्स चरिमाइं असखेज्जगुणाइं, अलोगस्स चरिमाइं विसेसाहियाइं लोगस्स य अलोगस्स य अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं, लोगस्स चरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा, अलोगस्स चरिमंतपएसा विसेसाहिया, लोगस्स अचरिमतपएसा असखेज्जगुणा, अलोगस्स अचरिमतपएसा अणंतगुणा, लोगस्स य अलोगस्स य चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया, सव्वदव्वा विसेसाहिया, सव्वपएसा अणंतगुणा, सव्वपज्जवा अणंतगुणा।

[७८० प्र.] भगवन् ! लोकालोक के अचरम, (बहुवचनान्त) चरमो, चरमान्तप्रदेशो और अचरमान्तप्रदेशो मे द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से, द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन, किनसे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७८० उ.] गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से—सबसे कम लोकालोक का एक-एक अचरम है। (उसकी अपेक्षा) लोक के (बहुवचनान्त) चरम असख्यातगुणे हैं, अलोक के (बहुवचनान्त) चरम विशेषाधिक है, लोक और अलोक का अचरम और (बहुवचनान्त) चरम, ये दोनो विशेषाधिक है। प्रदेशो की अपेक्षा से—सबसे थोडे लोक के चरमान्तप्रदेश हैं, अलोक के चरमान्तप्रदेश विशेषाधिक

हैं, (उनसे) लोक के अचरमान्तप्रदेश असंख्यातगुणे हैं, (उनसे) अलोक के अचरमान्तप्रदेश अनन्तगुणे हैं। लोक और अलोक के चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश, ये दोनो विशेषाधिक हैं। द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से—सबसे कम लोक-अलोक का एक-एक अचरम है, (उसकी अपेक्षा) लोक के (बहुवचनान्त) चरम असख्यातगुणे हैं, (उनसे) अलोक के (बहुवचनान्त) चरम विशेषाधिक हैं। लोक और अलोक का अचरम और (बहुवचनान्त) चरम, ये दोनो विशेषाधिक हैं। लोक के चरमान्तप्रदेश (उनसे) असख्यातगुणे हैं, (उनसे) अलोक के चरमान्तप्रदेश विशेषाधिक हैं, (उनसे) लोक के अचरमान्तप्रदेश असख्यातगुणे हैं, उनसे अलोक के अचरमान्तप्रदेश अनन्तगुणे हैं, लोक और अलोक के चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश, ये दोनो विशेषाधिक हैं। उनकी—लोक और अलोक के चरम और अचरम प्रदेशो की—अपेक्षा सब द्रव्य (मिलकर) विशेषाधिक है। (उनकी अपेक्षा) सर्व प्रदेश अनन्तगुणे हैं (और उनकी अपेक्षा भी) सर्व पर्याय अनन्तगुणे हैं।

विवेचन—चरमाचरमादि पदों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू. ७७७ से ७८० तक) में रत्नप्रभादि आठ पृथ्वियो के, सौधर्म से अनुत्तर विमान तक के देवलोको के, लोक अलोक एव लोकालोक के चरम, अचरम आदि चार भेदो के अल्पबहुत्व का द्रव्य, प्रदेशो तथा द्रव्यप्रदेश की अपेक्षा अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

रत्नप्रभा से लोक तक के अल्पबहुत्व की मीमांसा—द्रव्य की अपेक्षा से रत्नप्रभापृथ्वी का एक अचरम सबसे कम है, क्योकि तथाविध एकस्कन्धरूप (एकत्व) परिणाम-परिणत होने के कारण अचरमखण्ड एक है, अतएव वह सबसे अल्प है। उसकी अपेक्षा (अनेक) चरमखण्ड (चरमाणि) असख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि वे असख्यात हैं। अब यह प्रश्न उठा कि अचरम और अनेक चरम, ये दोनो मिलकर क्या चरमो के बराबर है या विशेषाधिक? शास्त्रकार इसका समाधान देते है कि अचरम और अनेक चरम ये दोनो विशेषाधिक हैं। इसका तात्पर्य यह है कि एक अचरम द्रव्य को चरम द्रव्यो मे सम्मिलित कर दिया जाए तो चरमो की सख्या एक अधिक हो जाती है, इस कारण इनका समुदाय विशेषाधिक होता है।

प्रदेशो की दृष्टि से चिन्तन किया जाए तो चरमान्तप्रदेश सबसे कम हैं, क्योकि चरमखण्ड मध्यम (अचरम) खण्डो की अपेक्षा अतिसूक्ष्म होते हैं। यद्यपि चरमखण्ड असख्यातगुणे है, तथापि उनके प्रदेश मध्य (अचरम) खण्ड के प्रदेशो की अपेक्षा सबसे थोडे है। उनकी अपेक्षा अचरमान्तप्रदेश असख्यातगुणे होते हैं। एक अचरमखण्ड चरमखण्डो के समुदाय की अपेक्षा क्षेत्र से असंख्यातगुणा होता है। चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश दोनो मिलकर अचरमान्तप्रदेशो से विशेषाधिक होते है। इसका कारण यह कि चरमान्तप्रदेश अचरमान्तप्रदेशो की अपेक्षा असख्यातवे भागप्रमाण होते हैं। ऐसी स्थिति मे अचरमान्तप्रदेशो मे चरमान्तप्रदेश सम्मिलित कर देने पर भी वे अचरमान्तप्रदेश से विशेषाधिक ही होते हैं।

द्रव्य और प्रदेश दोनो की दृष्टि से विचार किया जाय तो पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार रत्नप्रभापृथ्वी का अचरम एक होने से वह सबसे थोडा है। उसकी अपेक्षा बहुवचनान्त चरम (अनेक चरम) असख्यातगुणे अधिक हैं। उनकी अपेक्षा अचरम और अनेक चरम दोनों विशेषाधिक है और उनकी अपेक्षा भी चरमान्तप्रदेश असख्यातगुणे हैं, क्योकि यद्यपि अचरमखण्ड असख्यातप्रदेशो से अवगाढ

होता है, तथापि द्रव्य की अपेक्षा से वह एक है, जबकि चरमखण्डो में प्रत्येक (खण्ड) असख्यातप्रदेशी होता है, अत: चरम और अचरम द्रव्य के समुदाय की अपेक्षा चरमान्तप्रदेश असख्यातगुणे हैं। उनकी अपेक्षा भी अचरमान्तप्रदेश (पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार) असख्यातगुणे हैं। उनमे भी चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश, दोनो मिलकर (पूर्ववत्) विशेषाधिक होते हैं।

रत्नप्रभापृथ्वी के चरमाचरमादि के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की तरह ही शर्कराप्रभा से लेकर लोक तक के चरमाचरमादि का अल्पबहुत्व समझना चाहिए।[1]

अलोक के चरम-अचरमादि का अल्पबहुत्व—द्रव्य की अपेक्षा से—सबसे कम अलोक का अचरम है, इसकी अपेक्षा चरमखण्ड असख्यातगुणे हैं, अचरम और चरम खण्ड दोनो मिलकर विशेषाधिक हैं। प्रदेशो की दृष्टि से—सबसे कम अलोक के चरमान्तप्रदेश हैं, क्योंकि निष्कुट प्रदेशो मे ही उनका सद्भाव होता है। इन चरमान्तप्रदेशो, की अपेक्षा अचरमान्तप्रदेश अनन्तगुणे हैं, क्योकि अलोक अनन्त है। चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश दोनो मिलकर विशेषाधिक हैं, क्योकि चरमान्तप्रदेश अचरमान्तप्रदेशो के अनन्तवे भागमात्र होते है। उन्हे अचरमान्तप्रदेशो में सम्मिलित कर देने पर भी वे सब मिलकर अचरमान्तप्रदेशो से विशेषाधिक ही होते हैं। द्रव्य और प्रदेश दोनो की दृष्टि से—सबसे कम अलोक का एक अचरम है। उसकी अपेक्षा चरमखण्ड असख्यातगुणे हैं। अचरम और चरम खण्ड दोनो मिलकर विशेषाधिक है, उनकी अपेक्षा चरमान्तप्रदेश असख्यातगुणे हैं और उनसे भी अचरमान्तप्रदेश अनन्तगुणे है। चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश दोनो मिल कर विशेषाधिक है।[2]

लोकालोक के चरमाचरमादि का अल्पबहुत्व—द्रव्य की अपेक्षा—सबसे कम लोक और अलोक का एक-एक अचरम = अचरमखण्ड है, क्योकि वह एक ही है। उसकी अपेक्षा लोक के चरमखण्ड सख्यातगुणे है। उससे अलोक के चरमखण्ड विशेषाधिक हैं। उनसे लोक का और अलोक का अचरमखण्ड एव (बहुत) चरमखण्ड मिलकर विशेषाधिक है। प्रदेशो की अपेक्षा—सब से कम लोक के चरमान्तप्रदेश है, उनसे अलोक के चरमान्त प्रदेश विशेषाधिक हैं। उनसे लोक के अचरमान्त प्रदेश असख्यातगुणे हैं। उनसे अलोक के अचरमान्त प्रदेश अनन्तगुणित है। उनसे लोक के और अलोक के चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश दोनो मिलकर विशेषाधिक हैं। द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ की अपेक्षा—सबसे कम लोक और अलोक का द्रव्यापेक्षया एक-एक अचरमखड है। उससे लोक के चरमखड असख्यातगुणित है। उनसे अलोक के चरमखड विशेषाधिक हैं। उनसे लोक और अलोक के अचरमखड और अचरमखड दोनो मिलकर विशेषाधिक हैं, इत्यादि।

वास्तव मे लोक के चरमखड असख्यात है, फिर भी पृथ्वी की स्थापना □ इस प्रकार की होने से वे आठ माने जाते है। वे इस प्रकार है—एक-एक चारो दिशाओ मे और एक-एक चारो विदिशाओ मे अलोक के चरमखड अलोक की स्थापना की परिकल्पना के आधार पर बारह माने जाते है। यह बारह सख्या आठ से न तो दुगुनी है, और न ही तिगुनी है अत. यह विशेषाधिक ही कही जा सकती है। अलोक के चरमखडो की अपेक्षा लोक का और अलोक का अचरम और उनके चरमखड,

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक २३१

२. वही, मलय. वृत्ति, पत्राक २३२

दोनो मिलकर विशेषाधिक होते हैं, क्योकि पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार लोक के चरमखण्ड आठ हैं और अचरमखण्ड एक ही है, दोनो मिल कर नौ होते है। इसी प्रकार अलोक के भी चरम और अचरमखण्ड मिल कर १३ हैं। इन दोनो को मिला दिया जाए तो बाईस होते है। यह बाईस की सख्या बारह से दुगुनी, तिगुनी आदि नही है, अतः विशेषाधिक ही है।

प्रदेशो की दृष्टि से—सबसे कम लोक के चरमान्तप्रदेश हैं, क्योकि उसमे आठ ही प्रदेश हैं। उनकी अपेक्षा अलोक के चरमान्तप्रदेश विशेषाधिक हैं। उनसे लोक के अचरमान्तप्रदेश असख्यातगुणे है, क्योकि अचरम क्षेत्र बहुत अधिक है, इस कारण उसके प्रदेश भी बहुत अधिक हैं। उनकी अपेक्षा अलोक के अचरमान्तप्रदेश अनन्तगुणे हैं, क्योकि वह क्षेत्र अनन्तगुणा है। उनकी अपेक्षा भी लोक और अलोक के चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश दोनो विशेषाधिक हैं क्योकि अलोक के अचरमान्तप्रदेशो मे लोक के चरमान्तप्रदेशो को, अचरमान्तप्रदेशो को तथा अलोक के चरमान्तप्रदेशो को मिला देने पर भी वे सब असख्यात ही होते हैं और असख्यात, अनन्त राशि की अपेक्षा कम ही है, अतएव उन्हे उनमे सम्मिलित कर देने पर भी वे अलोक के अचरमान्तप्रदेशो से विशेषाधिक ही होते हैं।

द्रव्य और प्रदेशो की दृष्टि से अल्पबहुत्व का पूर्वोक्त युक्ति से स्वय विचार कर लेना चाहिए। लोक के चरमखण्डो की अपेक्षा से अलोक के चरमखण्ड विशेषाधिक हैं और उनकी अपेक्षा लोक और अलोक का अचरम और उनके चरमखण्ड दोनो मिलकर विशेषाधिक हैं। इसका कारण पूर्ववत् है। उनकी अपेक्षा लोक के चरमान्तप्रदेश असख्यातगुणे है, उनसे अलोक के चरमान्तप्रदेश विशेषाधिक है। उनकी अपेक्षा लोक के अचरमान्तप्रदेश असख्यातगुणे हैं। उनकी अपेक्षा अलोक के अचरमान्तप्रदेश अनन्तगुणे है। युक्ति पूर्ववत् है। उनकी अपेक्षा लोक और अलोक के चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश दोनो मिलकर विशेषाधिक है। लोक अलोक के चरम और अचरमप्रदेशो की अपेक्षा सब द्रव्य मिलकर विशेषाधिक हैं, क्योकि अनन्तानन्तसख्यक जीवो, परमाणु आदि, तथा अनन्त परमाण्वात्मक स्कन्ध पर्यन्त सब पृथक् पृथक् भी (प्रत्येक) अनन्त-अनन्त हैं और वे सभी द्रव्य है। समस्त द्रव्यो की अपेक्षा सब प्रदेश अनन्तगुणे हैं और सब प्रदेशो की अपेक्षा सर्व पर्याय अनन्तगुणे है, क्योकि प्रदेश के स्वपरपर्याय अनन्त हैं।[1] यह सब स्पष्ट है।

परमाणुपुद्गलादि की चरमाचरमादि वक्तव्यता

७८१. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं चरिमे १ अचरिमे २ अवत्तव्वए ३ ? चरिमाइं ४ अचरिमाइं ५ अवत्तव्वयाइं ६ ? उदाहु चरिमे य अचरिमे य ७ उदाहु चरिमे य अचरिमाइं च ८ उदाहु चरिमाइं च अचरिमे य ९ उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च १० ? पढमा चउभंगी।

उदाहु चरिमे च अवत्तव्वए य ११ उदाहु चरिमे य अवत्तव्वयाइं च १२ उदाहु चरिमाइं च अवत्तव्वए य १३ उदाहु चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १४ ? बीया चउभंगी।

उदाहु अचरिमे य अवत्तव्वए य १५ उदाहु अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च १६ उदाहु अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७ उदाहु अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८ ? तइया चउभंगी।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २३२

उदाहु चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य १९ उदाहु चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २० उदाहु चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१ उदाहु चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २२ उदाहु चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य २३ उदाहु चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २४ उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २५ उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २६ ? एवं एते छव्वीस भंगा ।

गोयमा ! परमाणुपोग्गले नो चरिमे १ नो अचरिमे २ नियमा अवत्तव्वए [०] ३, सेसा भंगा पडिसेहेयव्वा ।

[७८१ प्र] भगवन् परमाणुपुद्गल क्या १. चरम है ? २ अचरम है ?, ३. अवक्तव्य है ?, ४ अथवा (बहुवचनान्त) अनेक चरमरूप है ?, ५ अनेक अचरमरूप है ?, ६. बहुत अवक्तव्यरूप है ? अथवा ७. चरम और अचरम है ? ८ या एक चरम और अनेक अचरमरूप है ?, ९ अथवा अनेक चरमरूप और एक अचरम है ? १०. या अनेक चरमरूप और अनेक अचरमरूप है ? यह प्रथम चतुर्भंगी हुई ।।१।।

अथवा (क्या परमाणुपुद्गल) ११. चरम और अवक्तव्य है ? १२ अथवा एक चरम और बहुत अवक्तव्यरूप है ? या १३ अनेक चरमरूप और एक अवक्तव्यरूप है ? अथवा १४. अनेक चरम-रूप और अनेक अवक्तव्यरूप है ? यह द्वितीय चतुर्भंगी हुई ।।२।।

अथवा (परमाणुपुद्गल) १५ अचरम और अवक्तव्य है ? अथवा १६ एक अचरम और बहुअवक्तव्यरूप है ? या १७ अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्यरूप है ? अथवा १८ अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है ? यह तृतीय चतुर्भंगी हुई ।।३।।

अथवा (परमाणुपुद्गल) १९ एक चरम, एक अचरम और एक अवक्तव्य है ? या २० एक चरम, एक अचरम और बहुत अवक्तव्यरूप हैं ? अथवा २१ एक चरम, अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्यरूप है ? अथवा २२ एक चरम, अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्य है ? अथवा २३ अनेक चरमरूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है ? अथवा २४ अनेक चरमरूप, एक अचरम और अनेक अवक्तव्य है ? या २५ अनेक चरमरूप, अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य है ? अथवा २६ अनेक चरमरूप, अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्य है ? इस प्रकार ये छव्वीस भग हैं ।

[७८१ उ] हे गौतम ! परमाणुपुद्गल (उपर्युक्त छव्वीस भगो मे से) चरम नही, अचरम नही, (किन्तु) नियम से अवक्तव्य [०] है । शेष (तेईस) भगो का भी निषेध करना चाहिए ।

७८२ दुपएसिए णं भंते ! खंधे पुच्छा ।

गोयमा ! दुपएसिए खंधे सिय चरिमे [०|०] १ नो अचरिमे २ सिय अवत्तव्वए [००] ३, सेसा भंगा पडिसेहेयव्वा ।

[७८२ प्र] भगवन् ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध के विषय मे (मेरी इसी प्रकार की छव्वीस भगात्मक) पृच्छा है, (उसका क्या समाधान है ?)

[७८२ उ] गौतम ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध १. कथचित् चरम |०० है, २ अचरम नही है, ३ कथचित् अवक्तव्य |०० है। शेष तेईस भगो का निषेध करना चाहिए।

७८३. तिपएसिए णं भंते ! खंधे पुच्छा।

गोयमा ! तिपएसिए खंधे सिय चरिमे |००|०| १ नो अचरिमे २ सिय अवत्तव्वए |°。°| ३ नो चरिमाइं ४ नो अचरिमाइं ५ नो अवत्तव्वयाइं ६, नो चरिमे य अचरिमे य ७ नो चरिमे य अचरिमाइं ८ सिय चरिमाइं च अचरिमे य |०|०|०| ९ नो चरिमाइं च अचरिमाइं च १० सिय चरिमे य अवत्तव्वए य |००| |०| ११ सेसा (१५) भंगा पडिसेहेयव्वा।

[७८३ प्र.] भगवन् ! त्रिप्रदेशिक स्कन्ध के विषय मे (मेरी उपर्युक्त प्रकार की) पृच्छा है, (उसका समाधान क्या है ?)

[७८३ उ.] गौतम ! त्रिप्रदेशिक स्कन्ध १ कथञ्चित् चरम |००|०| है, २ अचरम नही है, ३ कथचित् अवक्तव्य |°。°| है, ४ वह न तो अनेक चरमरूप है, ५ न अनेक अचरमरूप है, ६ न अनेक अवक्तव्यरूप है, ७. न एक चरम और एक अचरम है, ८ न एक चरम और अनेक अचरमरूप है, ९ कथचित् अनेक चरमरूप और एक अचरम |००० है, १० (वह) अनेक चरमरूप और अनेक अचरमरूप नही है, (किन्तु) ११ कथचित् एक चरम और एक अवक्तव्य |००| |०| है। शेष पन्द्रह भगो का निषेध करना चाहिए।

७८४. चउपएसिए ण भंते ! खंधे पुच्छा।

गोयमा। चउपएसिए णं खंधे सिय चरिमे |००|००| १ नो अचरिमे २ सिय अवत्तव्वए |: :| ३ नो चरिमाइं ४ नो अचरिमाइं ५ नो अवत्तव्वयाइ ६, नो चरिमे य अचरिमे य ७ नो चरिमे य अचरिमाइं च ८ सिय चरिमाइं च अचरिमे य |०|००|०| ९ सिय चरिमाइ च अचरिमाइं च |०|०|०|०| १०, सिय चरिमे य अवत्तव्वए य |००|०| |०| ११ सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च |०|०| |०| |०| १२ नो चरिमाइं च अवत्तव्वए य १३ नो चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १४, नो अचरिमे य अवत्तव्वए य १५ नो अचरिमे य अवत्तव्वयाइ च १६ नो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७ नो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८, नो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य १९ नो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २० नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१ नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २२ सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य |०|०|०| |०| २३, सेसा (३) भंगा पडिसेहेयव्वा।

[७८४ प्र.] भगवन् ! चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध के विषय में (मेरी पूर्ववत्) पृच्छा है, (उसका क्या समाधान है ?)

[७८४ उ.] गौतम ! चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध १ कथञ्चित् चरम है, २ अचरम नहीं है, ३. कथञ्चित् अवक्तव्य है। ४. (वह) न तो अनेक चरमरूप है, ५. न अनेक अचरमरूप है, ६. न ही अनेक अवक्तव्यरूप है, ७. न (वह) चरम और अचरम है, ८. न एक चरम और अनेक अचरमरूप है, (किन्तु) ९ कथञ्चित् अनेक चरमरूप और एक अचरम है, १० कथञ्चित् अनेक चरमरूप और अनेक अचरमरूप है, ११. कथञ्चित् एक चरम और एक अवक्तव्य है (और) १२ कथञ्चित् एक चरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, १३ (वह) न तो अनेक चरमरूप और एक अवक्तव्य है, १४ न अनेक चरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, १५ न एक अचरम और एक अवक्तव्य है, १६ न एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, १७ न अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य है, १८ न अनेक अचरमरूप और न अनेक अवक्तव्यरूप है (और) १९ न (ही वह) एक चरम, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २० न एक चरम, एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, २१. न एक चरम, अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य है, २२ न एक चरम, अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, (किन्तु) २३ कथचित् अनेक चरमरूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है। शेष (तीन) भगो का निषेध करना चाहिए।

७८५. पंचपएसिए ण भंते ! खंधे पुच्छा।

गोयमा ! पचपएसिए णं खंधे सिय चरिमे १ नो अचरिमे २ सिय अवत्तव्वए ३ णो चरिमाइं ४ नो अचरिमाइं ५ नो अवत्तव्वयाइं ६, सिय चरिमे य अचरिमे य ७ नो चरिमे य अचरिमाइं च ८ सिय चरिमाइ अचरिमे य ९ सिय चरिमाइ च अचरिमाइं च १०, सिय चरिमे य अवत्तव्वए य ११, सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च १२ सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए १३ नो चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १४, णो अचरिमे य अवत्तव्वए य १५ नो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च १६ नो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७ नो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८, नो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य १९ नो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २० नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१ नो चरिमे य अचरिमाइ च अवत्तव्वयाइं च २२ सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य २३ सिय चरिमाइं च

अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २४ सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २५ नो चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २६।

[७८५ प्र] भगवन् ! पञ्चप्रदेशिक स्कन्ध के विषय में (मेरी पूर्ववत्) पृच्छा है; (उसका क्या समाधान है ?)

[७८५ उ] गौतम ! पंचप्रदेशिक स्कन्ध १. कथंचित् चरम है, २ अचरम नहीं है, ३ कथंचित् अवक्तव्य है, (किन्तु वह) ४ न तो अनेक चरमरूप है, ५ न अनेक अचरमरूप है, ६ न ही अनेक अवक्तव्यरूप है (किन्तु) ७ कथञ्चित् चरम और अचरम है, (वह) ८. एक चरम और अनेक चरमरूप नहीं है, (किन्तु) ९. कथंचित् अनेक चरमरूप और एक अचरम है, १० कथंचित् अनेक चरमरूप और अनेक अचरमरूप है, ११. कथंचित् एक चरम और एक अवक्तव्य है, १२ कथंचित् एक चरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, (तथा) १३ कथंचित् अनेक चरमरूप और एक अवक्तव्य है, (किन्तु वह) १४ न तो अनेक चरमरूप और न अनेक अवक्तव्यरूप है, १५. न एक अचरम और एक अवक्तव्य है, १६ न एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, १७. न अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य है, १८ न अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, १९ (तथा) न एक चरम, एक अचरम और एक अवक्तव्यरूप है, २० न एक चरम, एक अचरम और अवक्तव्यरूप है, २१ न एक चरम अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य रूप है २२ (और) न एक चरम, अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, (किन्तु) २३ कथंचित् अनेक चरमरूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २४ कथंचित् अनेक चरमरूप, एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, तथा २५ कथंचित् अनेक अचरमरूप, अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य है; (किन्तु) २६ अनेक चरमरूप, अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप नहीं है।
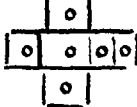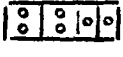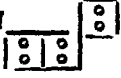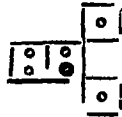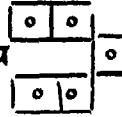
७८६. छप्पएसिए णं भंते ! खंधे पुच्छा।

गोयमा ! छप्पएसिए णं खंधे सिय चरिमे १ नो अचरिमे २ सिय अवत्तव्वए
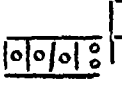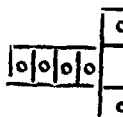
३ नो चरिमाइं ४ नो अचरिमाइं ५ नो अवत्तव्वयाइं ६, सिय चरिमे य अचरिमे य ७ सिय चरिमे य अचरिमाइं च ८ सिय चरिमाइं च अचरिमे य ९ सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च १०, सिय चरिमे य अवत्तव्वए य ११ सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च १२ सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए य १३ सिय चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १४, नो अचरिमे य अवत्तव्वए य १५ नो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च १६ नो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७ णो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८, सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य १९ नो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २० नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१ नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २२ सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य २३ सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २४ सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २५ सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २६ ।

[७८६ प्र.] भगवन् ! षट्प्रदेशिक स्कन्ध के विषय मे (मेरी पूर्ववत्) पृच्छा है, (उसका क्या समाधान है ?)

[७८६ उ.] गौतम ! षट्प्रदेशिक स्कन्ध १ कथंचित् चरम है, २ अचरम नही है, ३. कथंचित् अवक्तव्य है, (किन्तु) ४. न तो (वह) अनेक चरमरूप है, ५. न अनेक अचरमरूप है, ६ (और) न ही अनेक अवक्तव्यरूप है, (किन्तु) ७ कथंचित् चरम और अचरम है,

८. कथंचित् एक चरम और अनेक अचरमरूप है, ९ कथंचित् अनेक चरम और एक अचरम है, १० कथचित् अनेक चरमरूप और अनेक अचरमरूप है, ११ कथञ्चित् एक चरम और अवक्तव्य है, १२ कथचित् एक चरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, १३ कथंचित् अनेक चरमरूप और एक अवक्तव्य है, १४ कथचित् अनेक चरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, (किन्तु) १५ न तो एक अचरम और एक अवक्तव्य है, १६ न एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, १७ न अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य है, (और) १८ न ही अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, (किन्तु) १९ कथचित् एक चरम, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २० न एक चरम एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, २१ न एक चरम, अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य है, २२ न ही एक चरम, अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, (किन्तु) २३ कथचित् अनेक चरमरूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २४. कथचित् अनेक चरमरूप, एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, २५ कथचित् अनेक चरमरूप, अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य है, और २६ कथंचित् अनेक चरमरूप, अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है।
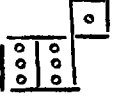
७८७. सत्तपएसिए ण भंते ! खंधे पुच्छा।

गोयमा ! सत्तपदेसिए णं खंधे सिय चरिमे १ नो अचरिमे २ सिए अवत्तव्वए ३ नो चरिमाइं ४ नो अचरिमाइ ५ नो अवत्तव्वयाइं ६, सिय चरिमे य अचरिमे य ७ सिय चरिमे य अचरिमाइ च ८ सिय चरिमाइं च अचरिमे य

९ सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च १०, सिय चरिमे य अवत्तव्वए य ११ सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च १२ सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए य १३ सिय चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १४, नो अचरिमे य अवत्तव्वए य १५ नो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च १६ नो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७ नो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८, सिय चरिमे अचरिमे य अवत्तव्वए य १९ सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २० सिय चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१ नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २२ सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य २३ सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २४ सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २५ सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २६।

[७८७ प्र] भगवन्! सप्तप्रदेशिक स्कन्ध के विषय मे (मेरी पूर्ववत्) पृच्छा है, (उसका समाधान क्या है?)
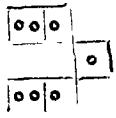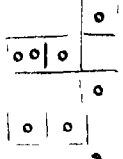
[७८७ उ] गौतम! सप्तप्रदेशिक स्कन्ध १ कथंचित् चरम है, २ अचरम नहीं है, ३ कथंचित् अवक्तव्य है, ४ (किन्तु वह) अनेक चरमरूप नहीं है, ५ न अनेक अचरमरूप है और ६. न ही अनेक अवक्तव्यरूप है, (किन्तु) ७ कथंचित् चरम और अचरम है, ८ कथंचित् एक चरम और अनेक अचरमरूप है, ९ कथंचित् अनेक चरमरूप और एक अचरम है, १० कथंचित् अनेक चरमरूप और अनेक अचरमरूप है, ११. कथंचित् एक चरम और एक अवक्तव्य है, १२. कथंचित् एक
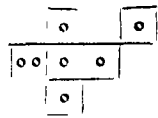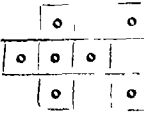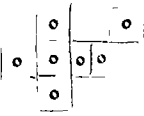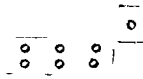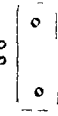
चरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, १३ कथचित् अनेक चरमरूप और एक अवक्तव्य है, १४ कथचित् अनेक चरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, (किन्तु) १५ न तो (वह) एक अचरम और एक अवक्तव्य है, १६ न एक अचरम और अनेक अवक्तव्य है, १७ न अनेक अचरम और एक अवक्तव्य है और १८ न ही अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, (किन्तु) १९ कथचित् एक चरम, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २० कथचित् एक चरम, एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, २१. कथचित् एक चरम, अनेक चरमरूप और एक अवक्तव्य है, २२ एक चरम, अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप नही है, २३ कथचित् अनेक चरमरूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २४ कथचित् अनेक चरमरूप एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, २५ कथचित् अनेक चरमरूप, अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य है, (और) २६ कथचित् अनेक चरमरूप, अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है।
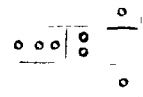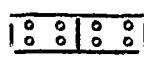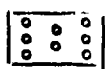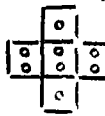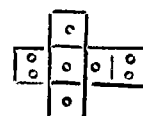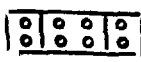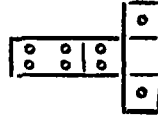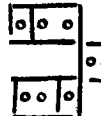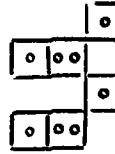
७८८. अट्ठपदेसिए ण भंते ! खधे पुच्छा ।
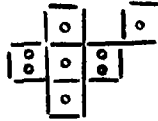
गोयमा ! अट्ठपदेसिए खध सिय चरिमे १ णो अचरिमे २ सिय अवत्तव्वए ३ नो चरिमाइ ४ नो अचरिमाइ ५ नो अवत्तव्वयाइं ६, सिय चरिमे य अचरिमे य ७ सिय चरिमे य अचरिमाइ च ८ सिय चरिमाइं च अचरिमे य ९ सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च १०, सिय चरिमे य अवत्तव्वए य
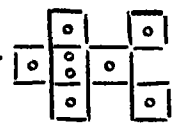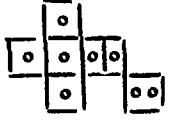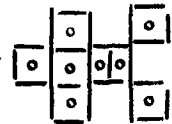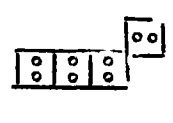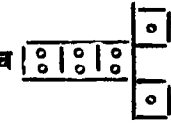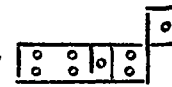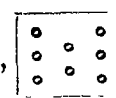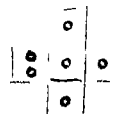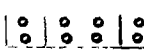
११ सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च १२ सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए य १३ सिय चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १४ नो अचरिमे य अवत्तव्वए य १५ नो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च १६ नो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७ नो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८, सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य १९ सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २० सिय चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१ सिय चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २२ सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य २३ सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २४ सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २५ सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २६।

[७८८ प्र] भगवन् ! अष्टप्रदेशिक स्कन्ध के विषय मे (मेरी पूर्ववत्) पृच्छा है, इसका क्या समाधान है ?

[७८८ उ] गौतम ! अष्टप्रदेशिक स्कन्ध १ कथचित् चरम है, २. अचरम नही है, ३ कथचित् अवक्तव्य है, (किन्तु) ४. न तो अनेक चरमरूप है, ५ न अनेक अचरमरूप है (और) ६ न ही अनेक अवक्तव्यरूप है, ७ कथचित् एक चरम और एक अचरम है, ८ कथचित् एक चरम और अनेक अचरमरूप है, ९ कथचित् अनेक चरमरूप और एक अचरम है, १०. कथंचित् अनेक चरमरूप और अनेक अचरमरूप

है, ११ कथंचित् चरम और अवक्तव्य है, १२ कथंचित् एक चरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, १३. कथंचित् अनेक चरमरूप और एक अवक्तव्यरूप है, १४ कथंचित् अनेक चरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, (किन्तु) १५. न तो (वह) एक अचरम और एक अवक्तव्य है, १६ न एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, १७ न अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्यरूप है, (और) १८ न ही अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, (किन्तु) १९ कथंचित् चरम, अचरम और अवक्तव्यरूप है, २० कथंचित् एक चरम, एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, २१. कथंचित् एक चरम, अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य है, २२ कथंचित् एक चरम, अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है, २३ कथंचित् अनेक चरमरूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २४ कथंचित् अनेक चरमरूप, एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप है, २५ कथंचित् अनेक चरमरूप, अनेक अचरमरूप और एक अवक्तव्य है, और २६ कथंचित् अनेक चरमरूप, अनेक अचरमरूप और अनेक अवक्तव्यरूप है।

७८९. संखेज्जपएसिए असंखेज्जपएसिए अणंतपएसिए खंधे जहेव अट्ठपदेसिए तहेव पत्तेयं भाणियव्वं ।

[७८९] संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी प्रत्येक स्कन्ध के विषय मे, जैसे अष्टप्रदेशी स्कन्ध के सम्बन्ध मे कहा, उसी प्रकार कहना चाहिए।

७९०. परमाणुम्मि य ततिश्रो पढमो ततिश्रो य होंति दुपदेसे ।
पढमो ततिश्रो नवमो एक्कारसमो य तिपदेसे ।।१८५।।
पढमो ततिश्रो नवमो दसमो एक्कारसो य बारसमो ।
भंगा चउप्पदेसे तेवीसइमो य बोद्धव्वो ।।१८६।।
पढमो ततिश्रो सत्तम नव दस एक्कार बार तेरसमो ।
तेवीस चउव्वीसो पणुवीसइमो य पचमए ।।१८७।।
बि चउत्थ पंच छट्ठं पणरस सोल च सत्तरऽट्ठार ।
वीसेक्कवीस बावीसग च वज्जेज्ज छट्ठम्मि ।।१८८।।
बि चउत्थ पंच छट्ठं पण्णर सोल च सत्तरऽट्ठारं ।
बावीसइमविहूणा सत्तपदेसम्मि खधम्मि ।।१८९।।
बि चउत्थ पंच छट्ठं पण्णर सोलं च सत्तरऽट्ठारं ।
एते वज्जिय भंगा सेसा सेसेसु खंधेसु ।।१९०।।

[७९० सग्रहणीगाथाश्रो का अर्थ--] परमाणुपुद्गल मे तृतीय (अवक्तव्य) भग होता है । द्विप्रदेशीस्कन्ध मे प्रथम (चरम) श्रौर तृतीय (श्रवक्तव्य) भग होते है । त्रिप्रदेशीस्कन्ध मे प्रथम, तीसरा, नौवाँ श्रौर ग्यारहवा भग होता है । चतु प्रदेशीस्कन्ध मे पहला, तीसरा, नौवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ, बारहवाँ श्रौर तेईसवाँ भग समझना चाहिए । पचप्रदेशीस्कन्ध मे प्रथम, तृतीय, सप्तम, नवम, दशम, एकादश, द्वादश, त्रयोदश, तेईसवाँ चौवीसवाँ श्रौर पच्चीसवाँ भग जानना चाहिए ।।१८५, १८६, १८७।। षट्प्रदेशीस्कन्ध मे द्वितीय, चतुर्थ, पचम, छठा, पन्द्रहवाँ, सोलहवाँ, सत्रहवाँ, अठारहवाँ, बीसवाँ, इक्कीसवाँ श्रौर बाईसवाँ छोडकर, शेष भग होते हैं ।।१८८।। सप्तप्रदेशीस्कन्ध में दूसरे, चौथे, पाँचवे, छठे, पन्द्रहवे सोलहवे, सत्रहवे, अठारहवे श्रौर बाईसवे भग के सिवाय शेष भग होते हैं ।।१८९।।

शेष सब स्कन्धो (श्रष्टप्रदेशी से लेकर सख्यातप्रदेशी, असख्यातप्रदेशी श्रौर अनन्तप्रदेशी स्कन्धो) मे दूसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, पन्द्रहवाँ, सोलहवाँ, सत्रहवाँ, अठारहवाँ, इन भगो को छोडकर, शेष भग होते है ।।१९०।।

विवेचन—परमाणु से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक की चरमाचरमादि संबन्धी वक्तव्यता—प्रस्तुत दस सूत्रो मे परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशी से अष्टप्रदेशी स्कन्ध तथा सख्यात-असख्यात-अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक के चरम, अचरम श्रौर अवक्तव्य भगो की प्ररूपणा की गई है ।

छव्वीस भंगों की अपेक्षा से चरम, अचरम श्रौर अवक्तव्य का विचार—प्रस्तुत छव्वीस भग इस प्रकार है—**असंयोगी ६ भंग**—१ चरम, २ अचरम, ३ अवक्तव्य, (एकवचनान्त), (बहुवचनान्त) ४ अनेक चरम, ५. अनेक अचरम, ६ अनेक अवक्तव्य । **द्विकसंयोगी तीन चतुर्भंगी १२ भग—प्रथम चतुर्भंगी**—७ एक चरम श्रौर एक अचरम, ८ एक चरम—अनेक अचरम, ९ अनेक चरम—एक अचरम, १० अनेक चरम-- अनेक अचरम । **द्वितीय चतुर्भंगी**--११ एक चरम—एक अवक्तव्य, १२ एक चरम—अनेक अवक्तव्य, १३ अनेक चरम—एक अवक्तव्य, १४ अनेकचरम--अनेक अवव्यक्त । **तृतीय चतुर्भंगी**—१५. एक अचरम—एक अवक्तव्य, १६ एक अचरम—अनेक अवक्तव्य, १७. अनेक

अचरम— एक अवक्तव्य, और १८. अनेक अचरम—अनेक अवक्तव्य। **त्रिकसंयोगी—८ भंग**—१९. एक चरम, एक अचरम, एक अवक्तव्य, २० एक चरम, एक अचरम, अनेक अवक्तव्य, २१. एक चरम, अनेक अचरम, एक अवक्तव्य, २२ एक चरम, अनेक अचरम, अनेक अवक्तव्य, २३ अनेक चरम, एक अचरम, एक अवक्तव्य, २४. अनेक चरम, एक अचरम, अनेक अवक्तव्य, २५. अनेक चरम, अनेक अचरम, एक अवक्तव्य, २६ अनेक चरम, अनेक अचरम, अनेक अवक्तव्य।[1]

परमाणुपुद्गल अवक्तव्य ही क्यों?—भगवान् ने उपर्युक्त २६ भगो मे से परमाणुपुद्गल को केवल तृतीय भग **नियमतः अवक्तव्य**' बताया है, शेष पच्चीस भग उसमे घटित नही होते। इसका कारण यह है कि चरमत्व दूसरे की अपेक्षा रखता है, यहाँ किसी दूसरे की विवक्षा न होने से अपेक्षणीय कोई दूसरा पदार्थ है नही। इसके अतिरिक्त एक परमाणुपुद्गल साश (अनेक अशो—अवयवो वाला) भी नही है, जिससे की अशो की अपेक्षा से उसके चरमत्व की कल्पना की जा सके, परमाणु तो निरश—निरवयव है। परमाणु अचरम (मध्यम) भी नही है, क्योकि निरवयव होने से उसका मध्यभाग होता नही है। इसी कारण परमाणु को नियम से अवक्तव्य कहा गया है। अर्थात्- न तो उसे चरम कहा जा सकता है, न ही अचरम। जो चरम या अचरम शब्द से वक्तव्य—कहने योग्य—न हो, वह अवक्तव्य होता है।

द्विप्रदेशीस्कन्ध मे दो भंग—द्विप्रदेशीस्कन्ध मे केवल प्रथम (एक चरम) और तृतीय (एक अवक्तव्य), ये दो भग ही घटित होते है, शेष चौवीस भग नही। इसको चरम कहने का कारण यह है कि द्विप्रदेशीस्कन्ध जब दो आकाशप्रदेशो मे समश्रेणि मे स्थित होकर अवगाढ होता है तब उसके दो परमाणुओ में से एक परमाणु की अपेक्षा चरम होता है, दूसरा परमाणु भी प्रथम परमाणु की अपेक्षा चरम होता है। इस कारण द्विप्रदेशीस्कन्ध चरम कहलाता है, किन्तु द्विप्रदेशीस्कन्ध अचरम नही कहलाता, क्योकि समस्त द्रव्यो का भी केवल अचरमत्व सम्भव नही है। द्विप्रदेशीस्कन्ध कथचित् अवक्तव्य तब होता है, जब वह एक ही आकाशप्रदेश मे अवगाढ होता है, उस समय वह विशेष प्रकार के एकत्वपरिणाम से परमाणुवत् परिणत होता है। इस कारण द्विप्रदेशीस्कन्ध को उस समय चरम या अचरम कहने का कोई कारण नही होता। इसलिए उसे न चरम कहा जा सकता है और न अचरम, उसे उस समय '**अवक्तव्य**'ही कहा जा सकता है।

त्रिप्रदेशीस्कन्ध मे चार भंग—त्रिप्रदेशीस्कन्ध मे प्रथम भग—'चरम' और तृतीय भग—'अवक्तव्य' पूर्वोक्त द्विप्रदेशी की युक्ति के अनुसार समझना चाहिए। फिर नौवाँ भग—'दो चरम और एक अचरम' पाया जाता है। जब त्रिप्रदेशीस्कन्ध समश्रेणि मे स्थित तीन आकाशप्रदेशो में अवगाढ होता है, तब उसके आदि और अन्त के दो परमाणु पर्यन्तवर्ती होने के कारण चरम (द्वय) होते हैं और मध्यम परमाणु मध्यवर्ती होने के कारण अचरम होता है। अत त्रिप्रदेशीस्कन्ध कथचित् दो चरम और एक अचरमरूप कहा जाता है। इसमे दसवाँ भग—'बहुत चरम और बहुत अचरम' घटित नही हो सकता, क्योकि तीन प्रदेशो वाले स्कन्ध मे (बहुवचनान्त) अनेक चरम और अनेक अचरम नही हो सकते। ग्यारहवाँ भग उसमे घटित होता है। वह इस प्रकार है—कथचित् चरम और अवक्तव्य। जब त्रिप्रदेशीस्कन्ध समश्रेणी और विश्रेणी मे |०० ०| इस प्रकार अवगाढ होता है, तब उसके दो परमाणु समश्रेणी मे स्थित होने के कारण दो प्रदेशो मे अवगाढ द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान चरम कहे जा सकते है और एक परमाणु विश्रेणी मे स्थित होने के कारण चरम

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, प. २४० (ख) पण्णवणासुत्तं भा. १, (मूलपाठ-टिप्पण) पृ. १९९ से २०१

और अचरम शब्दों द्वारा व्यवहार के योग्य न होने से 'अवक्तव्य' होता है। इस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध में पहला, तीसरा, नौवाँ और ग्यारहवाँ, ये चार भग होते हैं, शेष २२ भग नही पाए जाते ।

चतुष्प्रदेशीस्कन्ध में सात भग—इसमे पहला और तीसरा, नौवाँ और ग्यारहवाँ भग तो द्विप्रदेशी एव त्रिप्रदेशी स्कन्ध में उक्त युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिए। इसके पश्चात् दसवाँ भग भी चतुष्प्रदेशी स्कन्ध मे घटित होता है वह इस प्रकार है—दो चरम और दो अचरम। क्योकि जब चतु.प्रदेशी स्कन्ध समश्रेणी मे स्थित चार आकाशप्रदेशो में |०|०|०|०| इस प्रकार अवगाहन करता है, तब आदि और अन्त मे अवगाढ दो परमाणु (प्रदेश), दोनो चरम होते हैं और बीच के दो परमाणु अचरम (द्वय) कहलाते है। इस कारण इसे कथचित् 'दो चरम और दो अचरम' कहा जा सकता है। इसी प्रकार बारहवाँ भग—कथचित् चरम और दो अवक्तव्यरूप—भी उसमे घटित होता है। वह इस प्रकार--जब चतुष्प्रदेशात्मक स्कन्ध चार आकाशप्रदेशो मे अवगाहना करता है, तब इस प्रकार की स्थापना |००| (ऊपर-नीचे |०|) के अनुसार उसके दो परमाणु समश्रेणी मे स्थित दो आकाशप्रदेशो मे होते है, और दो परमाणु विश्रेणी मे स्थित दो आकाशप्रदेशो मे होते हैं। ऐसी स्थिति मे समश्रेणी मे स्थित दो परमाणु द्विप्रदेशावगाढ द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान 'चरम' होते है और विश्रेणी मे स्थित दो परमाणु अकेले परमाणु के समान चरम या अचरम शब्दों से कहने योग्य न होने से अवक्तव्यरूप होते हैं। अतएव समग्र चतुष्प्रदेशीस्कन्ध कथचित् एक चरम और दो (अनेक) अवक्तव्यरूप कहा जा सकता है। इसके पश्चात् तेईसवाँ भग इसमे घटित होता है। वह इस प्रकार जब चतुष्प्रदेशी स्कन्ध चार आकाशप्रदेशो मे इस प्रकार की स्थापना |०|०|०| (ऊपर |०|) के अनुसार अवगाहना करता है, तब तीन परमाणु तो समश्रेणी मे स्थित तीन आकाशप्रदेशो मे अवगाढ़ होते है और एक परमाणु विश्रेणी मे स्थित आकाशप्रदेश मे रहता है। ऐसी स्थिति मे समश्रेणी मे स्थित तीन परमाणुओ मे से आदि और अन्त के परमाणु पर्यन्तवर्ती होने के कारण चरम होते हैं और बीच का परमाणु अचरम होता है तथा विश्रेणी मे स्थित एक परमाणु चरम या अचरम कहलाने योग्य न होने से अवक्तव्य होता है। इस प्रकार समग्र चतुष्प्रदेशीस्कन्ध दो (अनेक) चरमरूप, एक अचरम और एक अवक्तव्यरूप कहलाता है। इस प्रकार पहला, तीसरा, नौवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ, बारहवाँ और तेईसवाँ, इन ७ भगो के सिवाय शेष ११ भग इसमे नही पाये जाते।
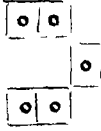
पंचप्रदेशी स्कन्ध में ग्यारह भग—पाच प्रदेशो वाले स्कन्ध मे चरमादि ११ भग पाये जाते हैं। पहला, तीसरा, नौवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ, बारहवाँ और तेईसवाँ, ये सात भग तो पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार समझ लेने चाहिए। इसमे सातवाँ भग कथचित् एक चरम और एक अचरम इस प्रकार घटित होता है, जब पचप्रदेशात्मक स्कन्ध पाच आकाशप्रदेशो मे इस प्रकार की स्थापना |०|०|०| (ऊपर |०|, नीचे |०|) के अनुसार अवगाहन करके रहता है, तब उभय पर्यन्तवर्ती चार परमाणु एकसम्बन्धिपरिणाम से परिणत होने से एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और एक समान स्पर्श वाले होने के कारण उनके लिए एकत्व का व्यपदेश (कथन) होने से वे 'चरम' कहे जा सकते हैं, किन्तु बीच का परमाणु मध्यवर्ती होने के कारण 'अचरम' होता है। इस प्रकार पंचप्रदेशी स्कन्ध कथचित उभयरूप 'चरम और
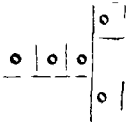
अचरम' कहलाता है। इसमें तेरहवाँ भंग—कथंचित् दो चरम एवं अवक्तव्य घटित होता है। वह इस प्रकार—जब कोई पचप्रदेशी स्कन्ध इस प्रकार की स्थापना के अनुसार पंच-प्रदेशावगाढ होकर पांच आकाशप्रदेशो मे अवगाहन करता है, तब उनमे से दो परमाणु ऊपर समश्रेणी में स्थित दो आकाशप्रदेशो से अवगाढ होते हैं, इसी प्रकार से दो परमाणु नीचे समश्रेणी में स्थित दो आकाशप्रदेशो मे अवगाढ़ होते हैं और एक परमाणु अन्त मे बीचोबीच स्थित होता है। ऐसी स्थिति मे ऊपर के दो परमाणु द्विप्रदेशीगाढ द्वयणुकस्कन्ध की तरह 'चरम' तथैव नीचे के दो परमाणु भी 'चरम' इस प्रकार चार चरम और एक परमाणु, अकेले परमाणु के समान अवक्तव्य होने से समग्र पचप्रदेशी स्कन्ध 'कथचित् अनेक चरम और अवक्तव्य' कहा जा सकता है। पचप्रदेशी स्कन्ध मे चौबीसवाँ भग—कथचित् अनेक चरम, एक अचरम और अनेक अवक्तव्यरूप भी घटित होता है। वह इस प्रकार—जब पचप्रदेशीस्कन्ध इस प्रकार की स्थापना के अनुसार पाच आकाशप्रदेशो मे समश्रेणी और विश्रेणी मे अवगाहन करके रहता है, तब उनमे से तीन परमाणु समश्रेणी मे स्थित तीन आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होते है और दो परमाणु विश्रेणी मे स्थित दो आकाशप्रदेशो मे अवगाढ़ होते है। ऐसी स्थिति मे आदि-अन्तप्रदेशवर्ती दो परमाणु तो चरम कहलाते है, मध्यवर्ती परमाणु 'अचरम कहलाता है तथा विश्रेणी मे स्थित दो अकेले-अकेले परमाणु दो अवक्तव्य कहलाते हैं। इस प्रकार इनका समूहरूप पचप्रदेशीस्कन्ध दो चरम, दो अचरम, दो अवक्तव्यरूप कहा जा सकता है। इसी प्रकार २५ वां भग - कथचित् अनेक चरम, अनेक अचरम और एक अवक्तव्य भी घटित हो सकता है। वह इस प्रकार जब पचप्रदेशी-स्कन्ध पाच आकाशप्रदेशो मे इस प्रकार की स्थापना के अनुसार समश्रेणी और विश्रेणी मे अवगाहन करके रहता है, तब चार परमाणु चार आकाशप्रदेशो मे समश्रेणी मे स्थित होते हैं और एक परमाणु विश्रेणीस्थ होकर रहता है। ऐसी स्थिति मे उक्त चार आकाशप्रदेशो मे से दो आदि-अन्तप्रदेशवर्ती 'चरम' तथा दो मध्यवर्ती 'अचरम कहलाते है और एक जो अकेला परमाणु विश्रेणीस्थ है, वह अवक्तव्य है। इस प्रकार समग्र पचप्रदेशीस्कन्ध को दो चरम, दो दो चरम और एक अवक्तव्यरूप कहा जा सकता है। यो पहला, तीसरा, सातवाँ, नौवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ, बारहवाँ, तेरहवाँ, तेईसवाँ, चौवीसवा और पच्चीसवाँ, ये ११ भग पचप्रदेशीस्कन्ध मे होते है, शेष १५ भग इसमे नही होते।
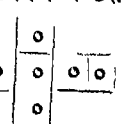
षट्प्रदेशीस्कन्ध मे पन्द्रह भंग—इसमे ११ भग तो पचप्रदेशीस्कन्ध मे उक्त है, वे पूर्वयुक्ति के अनुसार समझ लेने चाहिए। शेष चार भग इस प्रकार हैं आठवां चौदहवाँ, उन्नीसवां और छव्वीसवां भग। आठवाँ भग है—एक चरम और दो (अनेक) अचरमरूप। वह इस प्रकार घटित होता है—जब कोई षट्प्रदेशीस्कन्ध छह आकाशप्रदेशो मे इस प्रकार की स्थापना के अनुसार समश्रेणी से एकाधिक अवगाहन करता है, तब समश्रेणी मे स्थित चार परमाणु पहले कहे

अनुसार 'चरम' और मध्यवर्ती दो परमाणु अचरम कहलाते हैं। दोनो का समूहरूप षट्प्रदेशीस्कन्ध भी कथचित् एक चरम और दो अचरमरूप कहा जा सकता है। चौदहवाँ भग—'दो चरम और दो अवक्तव्य' इस प्रकार घटित होता है—जब कोई षट्प्रदेशी स्कन्ध, इस प्रकार की स्थापना

|ο|
|ο|ο|
|ο|
|ο|ο|
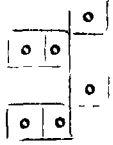
के अनुसार छह आकाशप्रदेशो में समश्रेणी और विश्रेणी से अवगाहन करता है, तब उनमे से दो परमाणु तो समश्रेणी मे स्थित आकाशप्रदेशो मे ऊपर और दो नीचे रहते हैं, एक परमाणु दोनो श्रेणियो के मध्यभाग की समश्रेणी मे स्थित प्रदेश मे रहता है, और एक परमाणु दोनो के ऊपर विश्रेणी मे रहता है। ऐसी स्थिति मे ऊपर के दो परमाणु और नीचे के दो परमाणु भी 'चरम' कहलाते है, ये दोनो चरम 'अनेक चरम' कहलाए तथा दोनो अलग-अलग रहे हुए दोनो परमाणु दो अवक्तव्य कहलाये। इन सबका समुदायरूप षट्प्रदेशीस्कन्ध कथचित् अनेक चरमरूप, अनेक अवक्तव्यरूप कहा जा सकता है। उन्नीसवाँ भग—चरम-अचरम-अवक्तव्य भी इसमे घटित हो सकता है। वह इस प्रकार-जब षट्प्रदेशी स्कन्ध छह आकाशप्रदेशो मे, इस स्थापना के अनुसार

|ο| |ο|
ο ο ο
|ο|

एक परिक्षेप से विश्रेणीस्थ एकाधिक को अवगाहन करता है, तब एकवेष्टक (एक को घेरने वाले) चार परमाणु पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार 'चरम' होते हैं, मध्यवर्ती एक अचरम और विश्रेणीस्थ एक परमाणु अवक्तव्य होता है। इनके समूहरूप षट्प्रदेशात्मकस्कन्ध को चरम-अचरम-अवक्तव्य कहा जा सकता है। षट्प्रदेशीस्कन्ध मे २६ वाँ भग—अनेक चरम-अनेक अचरम-अनेक अवक्तव्यरूप भी घटित होता है। उसकी युक्ति इस प्रकार है—जब षट्प्रदेशीस्कन्ध इस स्थापना के अनुसार

|ο|
|ο|ο|ο ο|
|ο
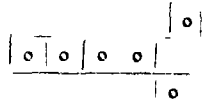
छह आकाशप्रदेशो मे समश्रेणो से और विश्रेणी से अवगाहन करता है, तब आदि और अन्त के प्रदेशावगाढ दो चरम तथा मध्यप्रदेशावगाढ दो अचरम एव विश्रेणीस्थ दो प्रदेशो मे पृथक्-पृथक् अवगाढ एकाकी परमाणु होने से दोनो अवक्तव्य कहलाते है। इस प्रकार समुदितरूप से षट्प्रदेशीस्कन्ध को कथचित् अनेक चरम-अनेक अचरम-अनेक अवक्तव्यरूप कहा जा सकता है। इस प्रकार षट्प्रदेशीस्कन्ध मे पूर्वोक्त १५ भग होते हैं, शेष ११ भग इसमें नही होते।

सप्तप्रदेशीस्कन्ध मे १७ भंग - इस स्कन्ध मे पूर्वोक्त षट्प्रदेशीस्कन्ध मे कहे गए १५ भग तो उसी प्रकार है। उनका विश्लेषण पूर्वोक्त युक्तियो के अनुसार कर लेना चाहिये। इस स्कन्ध मे दो भग विशेष है। वे है—बीसवाँ और इक्कीसवाँ भग। सप्तप्रदेशीस्कन्ध मे बीसवाँ भग—कथचित् एक चरम - एक अचरम-अनेक (दो) अवक्तव्य। वह इस प्रकार घटित होता है—जब सात आकाश प्रदेशों मे उसका अवगाहन होता है, तब उसकी स्थापना के अनुसार

|ο| |ο|
ο ο ο
|ο| |ο|

समश्रेणी मे स्थित उभयपर्यन्तवर्ती दो-दो परमाणुओ के कारण वह 'चरम' है, मध्यवर्ती परमाणु के कारण 'अचरम'

है और विश्रेणी मे स्थित पृथक्-पृथक् दो परमाणुओ के कारण वह अनेक अवक्तव्य भी है। इस प्रकार इन तीनो के समुदितरूप मे सप्तप्रदेशीस्कन्ध को एक चरम, एक अचरम एव अनेक अवक्तव्य-रूप कहा जा सकता है। इसमे २१ वां भग कथञ्चित् एक चरम, अनेक अचरम और एक अवक्तव्य-रूप भी घटित होता है। वह इस प्रकार—जब सात आकाशप्रदेशो में उसका अवगाहन होता है, तब उसकी स्थापना के अनुसार समश्रेणी मे स्थित उभयपर्यन्तवर्ती एक-एक परमाणु की अपेक्षा से वह 'चरम' है, मध्यवर्ती दो परमाणुओ की अपेक्षा से वह अनेक अचरमरूप है और विश्रेणी मे स्थित एक परमाणु के कारण वह अवक्तव्य है। इन तीनो के समुदायरूप सप्तप्रदेशी स्कन्ध को एक चरम, अनेक अचरम, एक अवक्तव्य कहा जा सकता है। यो सप्तप्रदेशी स्कन्ध मे १७ भंगो के सिवाय शेष ९ भग नही पाए जाते।[1]

अष्टप्रदेशीस्कन्ध मे १८ भग—इस स्कन्ध मे १७ भग तो सप्तप्रदेशी स्कन्ध मे जो बताए गए हैं, वे ही है। केवल २२ वाँ भग—एक चरम, अनेक (दो) अचरम और अनेक (दो) अवक्तव्य अधिक है। २२ वाँ भग इस प्रकार घटित होता है—आठ आकाशप्रदेशो मे जब अष्टप्रदेशीस्कन्ध अवगाहन करता है, तब उसकी स्थापना के अनुसार समश्रेणी मे स्थित पर्यंतवर्ती परमाणुओ की अपेक्षा से चरम, मध्यवर्ती दो परमाणुओ की अपेक्षा से दो अचरम एव विश्रेणी मे स्थित दो परमाणुओ के कारण दो अवक्तव्य होते हैं। इन तीनो के समुदायरूप अष्टप्रदेशीस्कन्ध का एक चरम, अनेक अचरम तथा अनेक अवक्तव्यरूप कहा जा सकता है। इस प्रकार अष्टप्रदेशीस्कन्ध मे १८ भग होते है, शेष ८ भग इसमे नही पाये जाते।[2]

असख्येयप्रदेशात्मक लोक मे अनन्तानन्त स्कन्धो का अवगाहन कैसे—यहाँ एक शका उपस्थित होती है कि समग्र लोक तो असख्यात प्रदेशात्मक है, उसमें असख्यात प्रदेशात्मक और अनन्त प्रदेशात्मक स्कन्धो का अवगाहन कैसे हो जाता है? इसका समाधान है, लोक का माहात्म्य ही ऐसा है कि केवल ये दो स्कन्ध नही, बल्कि अनन्तानन्त द्विप्रदेशीस्कन्ध से लेकर अनन्तानन्त सख्यातप्रदेशी, अनन्तानन्त असख्यातप्रदेशी और अनन्तानन्त अनन्तप्रदेशी स्कन्ध इसी एक लोक मे ही अवगाढ होकर उसी तरह रहते है, जिस तरह एक भवन मे एक दीपक की तरह हजारो दीपको की प्रभा के परमाणु रहते हैं।[3]

संस्थान की अपेक्षा से चरमादि की प्ररूपणा

७९१. कति णं भंते ! संठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पच संठाणा पण्णत्ता। तं जहा—परिमंडले १ वट्टे २ तंसे ३ चउरंसे ४ आयते ५।

[७९१ प्र] भगवान् ! सस्थान कितने कहे गए हैं ?

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पृ २४० (ख) पण्णवणासुत्त भा १ (मूलपाठ-टिप्पण), पृ १९९ से २०१

२ प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक २३४ से २३९ तक

३ वही, म वृत्ति, पत्रांक २४२

[७९१ उ] गौतम ! पांच सस्थान कहे गए हैं। वे इस प्रकार—१. परिमण्डल, २ वृत्त, ३ त्र्यस्र, ४. चतुरस्र और ५. आयत।

७९२. परिमंडला णं भंते ! संठाणा किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ?

गोयमा ! णो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता। एवं जाव आयता।

[७९२ प्र] भगवन् ! परिमण्डलसस्थान सख्यात हैं, असख्यात है अथवा अनन्त हैं ?

[७९२ उ.] गौतम ! (वे) सख्यात नही, असख्यात नही, (किन्तु) अनन्त हैं।

इसी प्रकार (वृत्त से लेकर) यावत् आयत (तक के विषय मे समझना चाहिए।)

७९३. परिमडले णं भते ! सठाणे किं संखेज्जपएसिए असंखेज्जपएसिए अणंतपएसिए ?

गोयमा ! सिय संखेज्जपएसिए सिय असंखेज्जपदेसिए सिय अणंतपदेसिए। एव जाव आयते।

[७९३ प्र] भगवन् ! परिमण्डलसस्थान सख्यातप्रदेशी है, असख्यातप्रदेशी है अथवा अनन्तप्रदेशी है ?

[७९३ उ] गौतम ! (वह) कदाचित् सख्यातप्रदेशी है, कदाचित् असख्यातप्रदेशी है और कदाचित् अनन्तप्रदेशी है। इसी प्रकार (वृत्त से लेकर) आयत (तक के विषय मे समझ लेना चाहिए।)

७९४. परिमंडले णं भंते ! संठाणे सखेज्जपदेसिए किं संखेज्जपदेसोगाढे असंखेज्जपएसोगाढे अणतपएसोगाढे ?

गोयमा ! सखेज्जपएसोगाढे, नो असंखेज्जपएसोगाढे नो अणतपएसोगाढे। एव जाव आयते।

[७९४ प्र.] भगवन् ! सख्यातप्रदेशी परिमण्डलसस्थान सख्यातप्रदेशो मे अवगाढ होता है, असख्यात प्रदेशो मे अवगाढ होता है अथवा अनन्त प्रदेशो मे अवगाढ होता है ?

[७९४ उ] गौतम ! (सख्यातप्रदेशी परिमण्डलसस्थान) सख्यात प्रदेशो मे अवगाढ होता है, किन्तु न तो असख्यात प्रदेशो मे अवगाढ होता है और न अनन्त प्रदेशो मे अवगाढ। इसी प्रकार आयतसस्थान तक (के विषय मे कहना चाहिए।)

७९५. परिमंडले णं भंते ! संठाणे असंखेज्जपदेसिए किं सखेज्जपदेसोगाढे असंखिज्जपदेसोगाढे अणंतपएसोगाढे ?

गोयमा ! सिय संखेज्जपएसोगाढे सिय असंखेज्जपदेसोगाढे, णो अणंतपदेसोगाढे। एवं जाव आयते।

[७९५ प्र] भगवन् ! असख्यातप्रदेशी परिमण्डलसंस्थान सख्यात प्रदेशो में अवगाढ होता है, असंख्यात प्रदेशो मे अवगाढ होता है अथवा अनन्त प्रदेशो मे अवगाढ होता है ?

[७९५ उ.] गौतम ! (असख्यातप्रदेशी परिमण्डलसस्थान) कदाचित् सख्यात प्रदेशो मे अवगाढ होता है और कदाचित् असख्यात प्रदेशो मे अवगाढ होता है, किन्तु अनन्त प्रदेशो मे अवगाढ नही होता।

इसी प्रकार (वृत्त से लेकर) आयत संस्थान तक (के विषय मे कहना चाहिए।)

७९६. परिमंडले णं भंते ! संठाणे अणतपएसिए किं सखेज्जपएसोगाढे असंखेज्जपएसोगाढे अणंतपएसोगाढे ?

गोयमा ! सिय संखेज्जपएसोगाढे असंखेज्जपएसोगाढे, नो अणंतपएसोगाढे । एवं जाव आयते ।

[७९६ प्र.] भगवन् ! अनन्तप्रदेशी परिमण्डलसस्थान सख्यात प्रदेशो मे अवगाढ होता है, असख्यात प्रदेशों मे अवगाढ होता है, अथवा अनन्त प्रदेशो मे अवगाढ होता है ?

[७९६ उ.] गौतम ! (अनन्तप्रदेशी परिमण्डलसस्थान) कदाचित् सख्यात प्रदेशो मे अवगाढ होता है और कदाचित् असंख्यात प्रदेशो मे अवगाढ होता है, (किन्तु) अनन्त प्रदेशो मे अवगाढ नही होता ।

इसी प्रकार (वृत्तसस्थान से लेकर) आयतसस्थान तक (के विषय में समझना चाहिए ।)

७९७. परिमंडले ण भंते ! सठाणे संखेज्जपदेसिए सखेज्जपएसोगाढे किं चरिमे अचरिमे चरिमाइं अचरिमाइं चरिमतपदेसा अचरिमतपदेसा ?

गोयमा ! परिमंडले ण संठाणे संखेज्जपदेसिए सखेज्जपदेसोगाढे नो चरिमे नो अचरिमे नो चरिमाइ नो अचरिमाइं नो चरिमतपदेसा नो अचरिमतपएसा, नियमा अचरिमं च चरिमाणि य चरिमतपदेसा य अचरिमंतपदेसा य । एव जाव आयते ।

[७९७ प्र.] भगवन् ! संख्यातप्रदेशी एव सख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसस्थान चरम है, अचरम है, (बहुवचनान्त) अनेक चरमरूप है, अनेक अचरमरूप है, चरमान्तप्रदेश है अथवा अचरमान्त प्रदेश है ?

[७९७ उ] गौतम ! सख्यातप्रदेशो और सख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसस्थान, न तो चरम है, न अचरम है, न (बहुवचनान्त) चरम है, न (बहुवचनान्त) अचरम है, न चरमान्तप्रदेश है और न ही अचरमान्तप्रदेश है, किन्तु नियम से अचरम, (बहुवचनान्त) अनेक चरमरूप, चरमान्त-प्रदेश और अचरमान्तप्रदेश है ।

इसी प्रकार (सख्यातप्रदेशी सख्यातप्रदेशावगाढ वृत्तसस्थान से लेकर) आयतसस्थान तक (के विषय मे कहना चाहिए ।)

७९८. परिमंडले णं भंते ! संठाणे असखेज्जपएसिए संखेज्जपदेसोगाढे किं चरिमे० पुच्छा ।

गोयमा ! असंखेज्जपएसिए सखेज्जपएसोगाढे जहा सखेज्जपएसिए (सु. ७९७) । एव जाव आयते ।

[७९८ प्र.] भगवन् ! असख्यातप्रदेशी और सख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसस्थान क्या चरम है, अचरम है, (बहुवचनान्त) अनेक चरम, अनेक अचरमरूप है, चरमान्तप्रदेश है, अथवा अचरमान्तप्रदेश है ?

[७९८ उ] गौतम ! असख्यातप्रदेशी एव सख्यातप्रदेशो मे अवगाढ परिमण्डलसस्थान के विषय मे (सू ७९७ मे उल्लिखित) सख्यातप्रदेशी के समान ही समझना चाहिए ।

इसी प्रकार (असख्यातप्रदेशी सख्यातप्रदेशावगाढ वृत्तसस्थान से लेकर) यावत् आयतसंस्थान तक समझना चाहिए ।

७९९. परिमंडले णं भंते ! संठाणे असंखेज्जपदेसिते असंखेज्जपएसोगाढे किं चरिमे० पुच्छा।

गोयमा ! असंखेज्जपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे नो चरिमे जहा संखेज्जपदेसोगाढे (सु. ७९८)। एवं जाव आयते।

[७९९ प्र] भगवन् ! असंख्यातप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशो मे अवगाढ परिमण्डलसंस्थान चरम है, अचरम है, अनेक चरमरूप है, अनेक अचरमरूप है, चरमान्तप्रदेश है अथवा अचरमान्त प्रदेश है ?

[७९९ उ] गौतम ! असंख्यातप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसंस्थान चरम नही है, इत्यादि समग्र प्ररूपणा सू ७९८ मे उल्लिखित संख्यातप्रदेशावगाढ की तरह समझना चाहिए। इसी प्रकार (की प्ररूपणा) यावत् आयतसंस्थान तक (करनी चाहिए।)

८०० परिमंडले णं भंते ! सठाणे अणंतपएसिए संखेज्जपएसोगाढे किं चरिमे० पुच्छा।

गोयमा ! तहेव (सु. ७९७) जाव आयते।

[८०० प्र] भगवन् ! अनन्तप्रदेशो और संख्यातप्रदेशावगाढ़ परिमण्डलसंस्थान चरम है, अचरम है, (इत्यादि पूर्ववत्) पृच्छा (का क्या समाधान ?)

[८०० उ] गौतम ! इसकी प्ररूपणा सू ७९७ के अनुसार संख्यातप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ़ के समान यावत् आयतसंस्थान पर्यन्त समझनी चाहिए।

८०१. अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे जहा संखेज्जपदेसोगाढे (सु ८००)। एवं जाव आयते।

[८०१] जैसे (सू ८०० में) अनन्तप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ (परिमण्डलादि संस्थानो के चरमाचरमादि के विषय में कहा,) उसी प्रकार अनन्तप्रदेशी असंख्यातप्रदेशावगाढ (परिमण्डलादि के विषय मे) यावत् आयतसंस्थान (तक कहना चाहिए।)

८०२. परिमंडलस्स णं भंते ! संठाणस्स संखेज्जपएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमंतपदेसाण य अचरिमंतपदेसाण य दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपदेसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४।

गोयमा ! सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स संखेज्जपदेसियस्स संखेज्जपदेसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे १ चरिमाइं संखेज्जगुणाइं २ अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइ ३। पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा परिमंडलस्स सठाणस्स संखेज्जपदेसियस्स संखेज्जपदेसोगाढस्स चरिमंतपदेसा १ अचरिमंतपदेसा संखेज्जगुणा २ चरिमंतपदेसा य अचरिमंतपदेसा य दो वि विसेसाहिया ३। दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवे परिमंडलस्स सठाणस्स संखेज्जपदेसियस्स संखेज्जपदेसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे १ चरिमाइं संखेज्जगुणाइं २ अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइ ३ चरिमंतपदेसा संखेज्जगुणा ४ अचरिमंतपएसा संखेज्जगुणा ५ चरिमंतपदेसा य अचरिमंतपदेसा य दो वि विसेसाहिया ६। एवं वट्ट-तंस-चउरंस-आयएसु वि जोएअव्वं।

[८०२ प्र.] भगवन् ! संख्यातप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसंस्थान के अचरम, अनेक

चरम, चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश मे से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से और द्रव्य-प्रदेश इन दोनो की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[८०२ उ] गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा—सख्यातप्रदेशी सख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल-सस्थान का एक अचरम सबसे अल्प है (उसकी अपेक्षा) अनेक चरम सख्यातगुणे अधिक है, अचरम और बहुवचनान्त चरम, ये दोनो (मिलकर) विशेषाधिक है। प्रदेशो की अपेक्षा—सख्यातप्रदेशी सख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसस्थान के चरमान्तप्रदेश सबमे थोडे है, (उनकी अपेक्षा) अचरमान्त-प्रदेश सख्यातगुणे अधिक है, उनमे चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश दोनो (मिलकर) विशेषाधिक है। द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा—सख्यातप्रदेशी-सख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसस्थान का एक अचरम सबसे अल्प है, (उसकी अपेक्षा) अनेक चरम सख्यातगुणे है, (उनसे) एक अचरम और अनेक चरम, ये दोनो (मिलकर) विशेषाधिक है, (उनकी अपेक्षा) चरमान्तप्रदेश सख्यातगुणे है, (उनसे) अचरमान्तप्रदेश सख्यातगुणे हैं, (उनसे) चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश ये दोनो (मिलकर) विशेषाधिक है।

इसी प्रकार की योजना वृत्त, त्र्यस्र, चतुरस्र और आयत सस्थान के (चरमादि के अल्पबहुत्व के) विषय मे कर लेनी चाहिए।

८०३. परिमडलस्स ण भंते ! सठाणस्स असंखेज्जपएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमतपएसाण य अचरिमतपएसाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कतरे कतरेहितो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे परिमडलस्स सठाणस्स असंखेज्जपएसियस्स सखेज्जपएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए—एगे अचरिमे १ चरिमाइं सखेज्जगुणाइ २ अचरिम च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइ ३। पदेसट्ठ-याए—सव्वत्थोवा परिमडलस्स सठाणस्स असखेज्जपएसियस्स सखेज्जपएसोगाढस्स चरिमतपएसा १ अचरिमतपएसा सखेज्जगुणा २ चरिमतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया ३। दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए—सव्वत्थोवे परिमडलस्स सठाणस्स असखेज्जपएसियस्स सखेज्जपएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे १ चरिमाइ सखेज्जगुणाइ २ अचरिम च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं ३ चरिमंतपएसा संखेज्जगुणा ४ अचरिमतपएसा सखेज्जगुणा ५ चरिमतपएसा य अचरिमतपएसा य दो वि विसेसाहिया ६। एव जाव आयते।

[८०३ प्र] भगवन् ! असख्यातप्रदेशी एव सख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसस्थान के अचरम, अनेक चरम, चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश मे से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[८०३ उ.] गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा—असख्यातप्रदेशी एव सख्यातप्रदेशावगाढ परि-मण्डलसस्थान का एक अचरम सबसे थोडा है, (उसकी अपेक्षा) अनेक चरम सख्यातगुणे अधिक है, (उनसे) एक अचरम और अनेक चरम, ये दोनो विशेषाधिक है। प्रदेशो की अपेक्षा—असख्यात-प्रदेशी सख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसस्थान के चरमान्तप्रदेश, सबसे कम है, (उनकी अपेक्षा) अचरमान्तप्रदेश सख्यातगुणे है, (उनसे) चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश, ये दोनो (मिलकर) विशेषाधिक है। द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा—असख्यातप्रदेशी सख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल-

संस्थान का एक अचरम सबसे कम है, (उसकी अपेक्षा) अनेक चरम सख्यातगुणे अधिक हैं, (उनसे) एक अचरम और बहुत चरम, ये दोनो (मिलकर) विशेषाधिक हैं, (उनकी अपेक्षा) अचरमान्त-प्रदेश संख्यातगुणे हैं, (उनसे) अचरमान्तप्रदेश सख्यातगुणे हैं, (उनसे) चरमान्तप्रदेश और अचरमान्त-प्रदेश, ये दोनों (मिलकर) विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार आयत तक के (चरमादि के अल्पबहुत्व के) विषय मे (कथन करना चाहिए।)

८०४. परिमंडलस्स णं भंते ! सठाणस्स असखेज्जपदेसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमंतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४।

गोयमा ! जहा रयणप्पभाए अप्पाबहुयं (सु. ७७७) तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं एव जाव आयते।

[८०४ प्र] भगवन् ! असख्यातप्रदेशी एव असख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसंस्थान के अचरम अनेक चरम, चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश मे से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से और द्रव्य एव प्रदेशो की अपेक्षा से कौन, किससे, अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[८०४ प्र] गौतम ! जैसे रत्नप्रभा पृथ्वी के चरमादि का अल्पबहुत्व (सू ७७७ मे) प्रति-पादित किया गया है, वह सारा उसी प्रकार कहना चाहिए। इसी प्रकार (की प्ररूपणा) आयतसस्थान तक (समझनो चाहिए।)

८०५. परिमंडलस्स णं भंते ! संठाणस्स अणंतपएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स अचरिमस्स य ४ दव्वट्ठयाए ३ कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! जहा संखेज्जपएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स (सु ८०२)। णवर संकमे अणंत-गुणा। एवं जाव आयते।

[८०५ प्र] भगवन् ! अनन्तप्रदेशी एव सख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसस्थान के अचरम, अनेक चरम, चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश में से द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशो की अपेक्षा एव द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन, किससे, अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[८०५ उ] गौतम ! जैसे (सू ८०२ मे) सख्यातप्रदेशावगाढ सख्यातप्रदेशी परिमण्डल-सस्थान के चरमादि के अल्पबहुतत्व के विषय मे कहा, वैसे ही इसके विषय मे कहना चाहिए। विशेष यह है कि सक्रम मे अनन्तगुणे है।

इसी प्रकार (वृत्तसस्थान से लेकर) आयतसस्थान तक कहना चाहिए।

८०६. परिमंडलस्स णं भंते ! संठाणस्स अणंतपएसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स अचरिमस्स य ४ ?

जहा रयणप्पभाए (सु. ७७७)। णवरं सकमे अणंतगुणा। एवं जाव आयते।

[८०६ प्र.] भगवन् ! अनन्तप्रदेशी एव असख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल सस्थान के अचरम, अनेक चरम, चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश मे से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[८०६ उ] गौतम ! जैसे (सू ७७७ में) रत्नप्रभापृथ्वी के चरम, अचरम आदि के विषय में अल्पबहुत्व कहा गया है, उसी प्रकार अनन्तप्रदेशी एव असख्यातप्रदेशावगाढ़ परिमण्डलसस्थान के चरम, अचरम आदि के अल्पबहुत्व के विषय मे समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि सक्रम मे अनन्तगुणा है।

इसी प्रकार (वृत्तसस्थान से लेकर) यावत् आयतसस्थान (के चरमादि के अल्पबहुत्व के विषय में समझ लेना चाहिए।)

विवेचन—विशिष्ट परिमंडलादि के चरमादि के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत सोलह सूत्रो (सू. ७९१ से ८०६ तक) मे परिमण्डलादि सस्थानो के सख्यातप्रदेशिकादि तथा सख्यातप्रदेशावगाढ़ादि विविध रूपो का प्रतिपादन करके उनके अचरम-चरमादि के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

सख्यातप्रदेशी आदि संस्थानों के अवगाहन की प्ररूपणा—सख्यातप्रदेशी परिमण्डल आदि सस्थान संख्यातप्रदेशो में ही अवगाढ़ होता है, असख्यातप्रदेशो मे या अनन्तप्रदेशो मे अवगाढ नही होता, क्योकि सख्यातप्रदेशी परिमडल आदि सस्थानो के प्रदेश सख्यात ही होते है। असख्यातप्रदेशी परिमण्डल आदि सस्थानो का कदाचित् सख्यात और कदाचित् असख्यात प्रदेशो मे अवगाह होता है, इसमे कोई विरोध नही है, किन्तु उसका अनन्तप्रदेशो मे अवगाह होना विरुद्ध है। इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी परिमडलादि सस्थानो का अवगाह भी कदाचित् सख्यातप्रदेशो मे और कदाचित असख्यातप्रदेशो मे होता है, किन्तु अनन्तप्रदेशो में नही; क्योकि अनन्तप्रदेशी परिमडलादि सस्थान का अनन्त आकाशप्रदेशो मे अवगाह नही हो सकता। सैद्धान्तिक दृष्टि से समग्र लोकाकाश के प्रदेश असख्यात ही हैं, अनन्त नही और लोकाकाश के बाहर पुद्गलो की गति या स्थिति हो नही सकती। अत· अनन्तप्रदेशी परिमंडलादि सस्थान या तो सख्यातप्रदेशो मे अवगाहन करता है या असख्यातप्रदेशो मे अनन्तप्रदेशो मे उसका अवगाह सम्भव नही है।[1]

पचविशेषणविशिष्ट परिमण्डलादि संस्थानों का चरमादि की दृष्टि से स्वरूपविचार—प्रस्तुत ५ सूत्रो (७९७ से ८०१ तक) मे निम्नोक्त पाच विशेषणो से युक्त परिमडलसस्थानादि का चरमादि ६ की दृष्टि से विचार किया गया है—

१· सख्यातप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलादि सस्थान
२ असख्यातप्रदेशी सख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलादि सस्थान
३ असख्यातप्रदेशी असख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलादि सस्थान
४ अनन्तप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलादि सस्थान
५ अनन्तप्रदेशी असख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलादि सस्थान

चरमादि ६ पद वे ही हैं, जिनको लेकर रत्नप्रभापृथ्वी के चरमादि स्वरूप का विचार किया गया था और उपर्युक्त विशेषणविशिष्ट सभी परिमण्डलादि संस्थानो के चरमादिस्वरूप विषयक प्रश्न का उत्तर भी वही है, जो रत्नप्रभा के चरमादिविषयक प्रश्नो का उत्तर है। वह है- ये चरम, अचरम, अनेक चरम, अनेक अचरम चरमान्तप्रदेश या अचरमान्तप्रदेश नही हैं; किन्तु रत्नप्रभा-

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २४४

पृथ्वी के समान इन सस्थानों की अनेक अवयवों के अविभागात्मक रूप में विवक्षा की जाए तो ये प्रत्येक एक अचरम हैं, अनेक चरमरूप हैं तथा प्रदेशों की विवक्षा की जाए तो चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश हैं।[1]

पूर्वोक्त पांच विशेषणों से युक्त परिमण्डलादि का अचरमादिविचार की दृष्टि से अल्पबहुत्व—संख्यातप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ आदि पूर्वोक्त पांच विशेषणों से युक्त परिमण्डल आदि ५ संस्थानो के अचरम, अनेकचरम, चरमान्तप्रदेश एवं अचरमान्तप्रदेश, इन चारो के अल्पबहुत्व का विचार किया है—द्रव्य, प्रदेश तथा द्रव्य-प्रदेश दोनो की दृष्टि से। इन पांचों मे से तीसरे और पांचवें को छोड़ कर बाकी के अचरमादि चार की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का उत्तर प्राय. एक-सा ही है, जैसे—द्रव्य की अपेक्षा से एक अचरम सबसे अल्प है, उनसे अनेक चरम संख्यातगुणे हैं, उनसे एक अचरम और अनेक चरम दोनो मिलकर विशेषाधिक है। प्रदेशो की अपेक्षा—सबसे कम चरमान्तप्रदेश हैं, अचरमान्तप्रदेश उनसे सख्यातगुणे अधिक है, उनसे चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश दोनो मिलकर विशेषाधिक है तथा द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा से भी अल्पबहुत्व का क्रम और निर्देश इसी प्रकार है।

शेष दो (असख्यातप्रदेशी - असख्यातप्रदेशावगाढ़ तथा अनन्तप्रदेशी—असख्यातप्रदेशावगाढ़) के अचरमादि चार की दृष्टि से अल्पबहुत्व का विचार रत्नप्रभापृथ्वी के चरमादिविषयक अल्पबहुत्व के समान है। इसमे दो जगह अन्तर पड़ता है, पूर्व मे जहाँ अनेक चरम और अचरमान्तप्रदेश को उपर्युक्त मे सख्यातगुणा बताया है, वहाँ यहाँ पर अनेक चरम और अचरमान्तप्रदेश को असंख्यातगुणा अधिक बताया गया है। शेष सब पूर्ववत् ही है।

एक अचरम से अनेक चरम को सख्यातगुण अधिक इसलिए बताया है कि समग्ररूप से परिमण्डलादि सस्थान सख्यातप्रदेशात्मक होते हैं।

'सक्रम में अनन्तगुणा' का तात्पर्य—जब क्षेत्रविषयक चिन्तन से द्रव्यचिन्तन के प्रति सक्रमण अर्थात् परिवर्तन होता है, तब बहुवचनान्त चरम अनन्तगुणे होते हैं। उसकी वक्तव्यता इस प्रकार है—सबसे कम एक अचरम है, क्षेत्रत. बहुवचनान्त चरम असख्यातगुणे हैं और द्रव्यत: अनन्तगुणे है। उनसे अचरम और बहुवचनान्त चरम दोनो मिलकर विशेषाधिक हैं। इस प्रकार की अल्पबहुत्व-विषयक विशेषता केवल दो प्रकार के परिमण्डलादि सस्थानो मे है—(१) अनन्तप्रदेशी-सख्यातप्रदेशावगाढ सस्थान मे और अनन्तप्रदेशी-असख्यातप्रदेशावगाढ संस्थान मे।[2]

गति आदि की अपेक्षा से जीवों की चरमाचरमवक्तव्यता

८०७. जीवे णं भंते ! गतिचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे।

[८०७ प्र.] भगवन् ! जीव गतिचरम (की अपेक्षा से) चरम है अथवा अचरम है ?

[८०७ उ] गौतम ! (जीव गतिचरम की अपेक्षा से) कथचित् (कोई) चरम है, कथचित् (कोई) अचरम है।

---

१. (क) पण्णवणासुत्त भा. १ (मूलपाठ) पृ २०२-२०३

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २४४

२ (क) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका, भा. ३, पृ. २०२ से २०४ तक

(ख) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २४४

८०८. [१] णेरइए णं भंते ! गतिचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे ।

[८०८-१ प्र.] भगवन् ! (एक) नैरयिक गतिचरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है ?

[८०८-१ उ.] गौतम ! (वह गतिचरम की दृष्टि से) कथचित् चरम है और कथंचित् अचरम है ।

[२] एवं णिरंतर जाव वेमाणिए ।

[८०८-२] इसी प्रकार (एक असुरकुमार से लेकर) लगातार (एक) वैमानिक देव तक (जानना चाहिए ।)

८०९. [१] णेरइया णं भंते ! गतिचरिमेणं किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

[८०९-१ प्र] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक गतिचरम से चरम है अथवा अचरम है ?

[८०९-१ उ.] गौतम ! (अनेक नैरयिक गतिचरम की अपेक्षा से) चरम भी है और अचरम भी है ।

[२] एव णिरंतरं जाव वेमाणिया ।

[८०९-२] इसी प्रकार लगातार (अनेक) वैमानिक देवो तक (कहना चाहिए ।)

८१०. [१] णेरइए ण भंते ! ठितीचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे ।

[८१०-१ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक स्थितिचरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है ?

[८१०-१ उ.] गौतम ! (एक नैरयिक स्थितिचरम की दृष्टि से) कथचित् चरम है, कथचित् अचरम है ।

[२] एव णिरंतरं जाव वेमाणिए ।

[८१०-२] लगातार (एक) वैमानिक देव-पर्यन्त इसी प्रकार (कथन करना चाहिए ।)

८११. [१] णेरइया ण भते ! ठितीचरिमेण किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

[८११-१ प्र] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक स्थितिचरम की अपेक्षा से चरम हैं अथवा अचरम हैं ?

[८११-१ उ] गौतम ! (स्थितिचरम की दृष्टि से अनेक नैरयिक) चरम भी है और अचरम भी है ।

[२] एव निरतरं जाव वेमाणिया ।

[८११-२] लगातार (अनेक) वैमानिक देवो तक इसी प्रकार (प्ररूपणा करनी चाहिए ।

८१२. [१] णेरइए णं भंते ! भवचरिमेण किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे ।

[८१२-१ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक भवचरम की दृष्टि से चरम है या अचरम ?

[८१२-१ उ] गौतम ! (भवचरम की दृष्टि से एक नैरयिक) कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है ।

[२] एवं निरन्तरं जाव वेमाणिए ।

[८१२-२] (यों) लगातार (एक) वैमानिक तक इसी प्रकार (कहना चाहिए ।)

८१३ [१] णेरइया णं भंते ! भवचरिमेणं किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

[८१३-१ प्र] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक भवचरम की दृष्टि से चरम हैं या अचरम हैं ?

[८१३-१ उ] गौतम ! (अनेक नैरयिक जीव भवचरम की अपेक्षा से) चरम भी हैं और अचरम भी हैं ।

[२] एवं निरंतरं जाव वेमाणिया ।

[८१३-२] लगातार (अनेक) वैमानिक देवों तक इसी प्रकार समझना चाहिए ।

८१४ [१] णेरइए णं भंते ! भासाचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे ।

[८१४-१ प्र] भगवन् ! भाषाचरम की अपेक्षा से (एक) नैरयिक चरम है या अचरम ?

[८१४-१ उ] गौतम ! (भाषाचरम की दृष्टि से) एक नैरयिक कथंचित् चरम है तथा कथंचित् अचरम है ।

[२] एवं निरंतरं जाव वेमाणिए ।

[८१४-२] इसी तरह लगातार (एक) वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए ।

८१५. [१] णेरइया णं भंते भासाचरिमेण किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

[८१५-१ प्र] भगवन् ! भाषाचरम की अपेक्षा से (अनेक) नैरयिक चरम हैं अथवा अचरम हैं ?

[८१५-१ उ] गौतम ! (वे भाषाचरम की दृष्टि से) चरम भी हैं और अचरम भी है ।

[२] एवं एगिंदियवज्जा निरंतरं जाव वेमाणिया ।

[८१५-२] एकेन्द्रिय जीवों को छोड़कर वैमानिक देवों तक लगातार इसी प्रकार (कथन करना चाहिए ।)

८१६. [१] णेरइए णं भंते ! आणापाणुचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे ।

[८१६-१ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक आनापान (श्वासोच्छ्वास)-चरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम ?

[८१६-१ उ.] गौतम ! (आनापानचरम की दृष्टि से एक) नैरयिक कथंचित् चरम है, कथंचित् अचरम है ।

[२] एवं णिरतर जाव वेमाणिए ।

[८१६-२] इसी प्रकार लगातार (एक) वैमानिक पर्यन्त (प्ररूपणा करनी चाहिए ।)

८१७. [१] णेरइया ण भंते ! आणापाणुचरिमेण किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

[८१७-१ प्र] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक आनापानचरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम ?

[८१७-१ उ] गौतम ! (आनापानचरम की दृष्टि से) चरम भी हैं और अचरम भी हैं ।

[२] एवं निरतर जाव वेमाणिया ।

[८१७-२] इसी प्रकार अविच्छिन्नरूप से (अनेक) वैमानिक देवो तक (प्ररूपणा करनी चाहिए ।)

८१८. [१] णेरइए णं भंते ! आहारचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे ।

[८१८-१ प्र.] भगवन् ! आहारचरम की अपेक्षा से (एक) नैरयिक चरम है अथवा अचरम ?

[८१८-१ उ] गौतम ! (आहारचरम की दृष्टि से एक नैरयिक) कथचित् चरम है और कथचित् अचरम है ।

[२] एवं निरंतरं जाव वेमाणिए ।

[८१८-२] लगातार (एक) वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार (कहना चाहिए ।)

८१९. [१] नेरइया णं भंते ! आहारचरिमेण किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

[८१९-१ प्र] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक आहारचरम की दृष्टि से चरम हैं अथवा अचरम है ?

[८१९-१ उ] गौतम ! (अनेक नैरयिक आहारचरम की दृष्टि से) चरम भी हैं और अचरम भी हैं ।

[२] एवं निरंतरं जाव वेमाणिया ।

[८१९-२] वैमानिक देवो तक निरन्तर इसी प्रकार (प्ररूपणा करनी चाहिए ।)

८२० [१] णेरइए णं भंते ! भावचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे ।

[८२०-१ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक भावचरम की अपेक्षा से चरम है अथवा अचरम ?

[८२०-१ उ.] गौतम ! (एक नैरयिक भावचरम की अपेक्षा से) कथंचित् चरम और कथञ्चित् अचरम है।

[२] एवं निरंतरं जाव वेमाणिए ।

[८२०-२] इसी प्रकार लगातार (एक) वैमानिक पर्यन्त (कथन करना चाहिए ।)

८२१. [१] णेरइया णं भंते ! भावचरिमेण किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

[८२१-१ प्र] भगवन् (अनेक) नैरयिक भावचरम की अपेक्षा से चरम हैं या अचरम हैं ?

[८२१-१ उ] गौतम ! (अनेक नैरयिक भावचरम की अपेक्षा से) चरम भी है और अचरम भी हैं।

[२] एव निरंतव जाव वेमाणिया ।

[८२१-२] इसी प्रकार लगातार (अनेक) वैमानिको तक (प्रतिपादन करना चाहिए ।)

८२२. [१] णेरइए णं भंते ! वण्णचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे ।

[८२२-१ प्र.] भगवन् ! (एक) नैरयिक वर्णचरम की अपेक्षा से चरम है अथवा अचरम है ?

[८२२-१ उ.] गौतम ! (एक नैरयिक वर्णचरम की दृष्टि से) कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है ।

[२] एवं निरंतरं जाव वेमाणिए ।

[८२२-२] इसी प्रकार निरन्तर (एक) वैमानिक पर्यन्त (कहना चाहिए ।)

८२३. [१] णेरइया णं भंते ! वण्णचरिमेणं किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

[८२३-१ प्र] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक वर्णचरम की अपेक्षा से चरम हैं या अचरम हैं ?

[८२३-१ उ] गौतम ! (अनेक नैरयिक वर्णचरम की अपेक्षा से) चरम भी हैं और अचरम भी हैं।

[२] एवं निरंतरं जाव वेमाणिया ।

[८२३-२] इसी प्रकार लगातार (अनेक) वैमानिक देवो तक (कथन करना चाहिए ।)

८२४. [१] णेरइए णं भंते ! गंधचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे ।

[८२४-१ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक गन्धचरम की अपेक्षा से चरम है अथवा अचरम है ?

[८२४-१ उ] गौतम ! (एक नैरयिक गन्धचरम की दृष्टि से) कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है ।

[२] एव निरंतरं जाव वेमाणिए ।

[८२४-२] लगातार (एक) वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार (प्ररूपणा करनी चाहिए ।)

८२५ [१] णेरइया ण भंते ! गंधचरिमेणं किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

[८२५-१ प्र] भगवन् ! गन्धचरम की अपेक्षा से (अनेक) नैरयिक चरम है अथवा अचरम है ?

[८२५-१ उ] गौतम ! (अनेक नैरयिक गन्धचरम की अपेक्षा से) चरम भी है और अचरम भी है ।

[२] एव निरंतर जाव वेमाणिया ।

[८२५-२] इसी प्रकार अविच्छिन्नरूप से वैमानिक देवो तक (प्ररूपणा करनी चाहिए ।)

८२६. [१] णेरइए णं भते ! रसचरिमेण किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे ।

[८२६-१ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक रसचरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है ?

[८२६-१ उ] गौतम ! (एक नैरयिक रसचरम की अपेक्षा से) कथञ्चित चरम है और कथञ्चित् अचरम है ।

[२] एवं निरंतर जाव वेमाणिए ।

[८२६-२] निरन्तर (एक) वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार (प्रतिपादन करना चाहिए ।)

८२७ [१] नेरइया ण भंते ! रसचरिमेण किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

[८२७-१ प्र] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक रसचरम की अपेक्षा से चरम है अथवा अचरम ?

[८२७-१ उ] गौतम ! (वे रसचरम की दृष्टि से) चरम भी हैं और अचरम भी हैं ।

[२] एव निरंतरं जाव वेमाणिया ।

[८२७-२] इसी प्रकार लगातार वैमानिक देवो तक (कहना चाहिए ।)

८२८. [१] णेरइए ण भंते ! फासचरिमेण किं चरिमे अचरिमे ?

गोयमा ! सिय चरिमे सिय अचरिमे ।

[८२८-१ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक स्पर्शचरम की अपेक्षा से चरम है अथवा अचरम है ?

[८२८-१ उ.] गौतम ! (एक नैरयिक स्पर्शचरम की दृष्टि से) कथंचित् चरम और कथंचित् अचरम है।

[२] एवं निरंतर जाव वेमाणिए।

[८२८-२] लगातार (एक) वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार (निरूपण करना चाहिए।)

८२९. [१] णेरइया णं भंते ! फासचरिमेणं किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि।

[८२९-१ प्र] भगवन् ! (अनेक)नैरयिक स्पर्शचरम की अपेक्षा से चरम है अथवा अचरम है ?

[८२९-१ उ] गौतम ! (स्पर्शचरम की अपेक्षा से अनेक नैरयिक) चरम भी हैं और अचरम भी हैं।

[२] एवं निरंतर जाव वेमाणिया।

संगहणिगाहा -

गति ठिति भवे य भासा आणापाणुचरिमे य बोद्धव्वे।
आहारा भावचरिमे वण्ण रसे गंध फासे य ॥१९१॥

॥ पण्णवणाए भगवईए दसमं चरिमपयं समत्तं ॥

[८२९-२] इसी प्रकार (की प्ररूपणा) लगातार (अनेक) वैमानिक देवों तक (करनी चाहिए।

[संग्रहणीगाथार्थ -] १ गति, २ स्थिति, ३ भव, ४ भाषा, ५. आनापान (श्वासोच्छ्वास), ६ आहार, ७. भाव, ८ वर्ण, ९ गन्ध, १० रस और ११ स्पर्श, (इन ग्यारह द्वारों की अपेक्षा से जीवों की चरम-अचरम प्ररूपणा) समझनी चाहिए ॥१९१॥

विवेचन - गति आदि ग्यारह की अपेक्षा से जीवों के चरमाचरमत्व का निरूपण -- प्रस्तुत २३ सूत्रों (सू ८०७ से ८२९ तक) में गति आदि ग्यारह द्वारों की अपेक्षा से चौवीस दण्डकवर्ती जीवों के चरम-अचरम का निरूपण किया गया है।

गतिचरम आदि पदों की व्याख्या--(१) गतिचरम-गतिअचरम--गतिपर्यायरूप चरम को गतिचरम कहते है। प्रश्न के समय जो जीव मनुष्यगति मे विद्यमान है और उसके पश्चात् फिर कभी किसी गति मे उत्पन्न नही होगा, अपितु मुक्ति प्राप्त कर लेगा, इस प्रकार उस जीव की वह मनुष्य-गति चरम अर्थात् अन्तिम है, वह गतिचरम है, जो जीव पृच्छाकालिक गति के पश्चात् पुन किसी गति मे उत्पन्न होगा, वही गति जिसकी अन्तिम नही है, वह गति-अचरम है। सामान्यतया गतिचरम मनुष्य ही हो सकता है, क्योंकि मनुष्यगति से ही मुक्ति प्राप्त होती है। इस दृष्टि से तद्भवमोक्षगामी जीव गतिचरम है, शेष गति-अचरम है। विशेष की दृष्टि से विचार किया जाय तो जो जीव जिस गति

में अन्तिम बार है, वह उस गति की अपेक्षा से गतिचरम है। जैसे—पृच्छा के समय कोई जीव नरकगति मे विद्यमान है, किन्तु नरक से निकलने के बाद फिर कभी नरकगति मे उत्पन्न नही होगा, उसे (विशेषापेक्षया) 'नरकगतिचरम' कहा जा सकता है, किन्तु सामान्यतया उसे 'गतिचरम' नही कहा जा सकता, क्योकि नरकगति से निकलने पर उसे दूसरी गति मे जन्म लेना ही पडेगा। अतएव सामान्य गतिचरम मनुष्य ही होता है। सामान्य जीव विषयक जो गतिचरम सूत्र है, वहाँ सामान्यदृष्टि से मनुष्य को ही कथचित् गतिचरम समझना चाहिए। परन्तु यहाँ आगे के जितने भी सूत्र है, वे विशेषदृष्टि को लेकर हैं, इसलिए गतिचरम का अर्थ हुआ—जो जीव जिस गतिपर्याय से निकल कर पुन उसमे उत्पन्न नही होगा, वह उस गति की अपेक्षा से गतिचरम है और जो पुन उसमे उत्पन्न होगा, वह उस गति की अपेक्षा से गतिअचरम है।[1]

(२) **स्थिति-चरम-अचरम**—स्थितिपर्याय रूप चरम को स्थितिचरम कहते हैं। जो नारक जीव पृच्छा के समय जिस स्थिति (आयु) का अनुभव कर रहा है, वह स्थिति अगर उसकी अन्तिम है, फिर कभी उसे वह स्थिति प्राप्त नही होगी तो वह नारक स्थिति की अपेक्षा चरम कहलाता है। यदि भविष्य मे फिर कभी उसे उस स्थिति का अनुभव करना पडेगा, तो वह स्थिति-अचरम है।[2]

(३) **भव-चरम-अचरम**--भवपर्यायरूप चरम भवचरम है। अर्थात्—पृच्छाकाल मे जिस नारक आदि जीव का वह वर्तमान भव अन्तिम है, वह भवचरम है और जिसका वह भव अन्तिम नही है, वह भव-अचरम है। बहुत-से नारक ऐसे भी हैं, जो वर्तमान नारकभव के पश्चात् पुन नारकभव मे उत्पन्न नही होगे, वे भवचरम है, किन्तु जो नारक भविष्य मे पुन नारकभव मे उत्पन्न होगे, वे भव-अचरम हैं।

(४) **भाषा-चरम-अचरम**—जो जीव भाषा की दृष्टि से चरम है, अर्थात् जिन्हे यह भाषा अन्तिम रूप मे मिली है, फिर कभी नही मिलेगी, वे भाषाचरम है, जिन्हे फिर भाषा प्राप्त होगी, वे भाषा-अचरम है। एकेन्द्रिय जीव भाषा रहित होते है, क्योकि उन्हे जिह्वेन्द्रिय प्राप्त नही होती, इसलिए वे भाषाचरम या भाषा-अचरम की कोटि मे परिगणित नही होते।

(५) **आन-प्राण (श्वासोच्छ्वास)-चरम-अचरम** आनप्राणपर्यायरूप चरम आनप्राणचरम कहलाता है। पृच्छा के समय जो जीव उस भव मे अन्तिम श्वासोच्छ्वास ले रहा होता है, उसके बाद उस भव मे फिर श्वासोच्छ्वास नही लेगा, वह श्वासोच्छ्वासचरम है, उससे भिन्न जो है, वे श्वासोच्छ्वास-अचरम हैं।

(६) **आहार-चरम-अचरम**– आहारपर्यायरूप चरम को आहारचरम कहते है। सामान्यतया आहारचरम मुक्त मनुष्य होते है। विशेषतया उस गति या भव की दृष्टि से जो अन्तिम आहार ले रहा हो, वह उस गति या भव की अपेक्षा आहारचरम है, जो उससे भिन्न हो, वह आहार-अचरम है।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २४५
२. वही, मलय. वृत्ति, पत्राक २४५-२४६

(७) **भाव-चरम-अचरम** औदयिक आदि पाच भावों के अर्थ मे यहाँ भाव शब्द है। औदयिक आदि भावो मे से कोई भाव जिस जीव के लिए अन्तिम हो, फिर कभी अथवा वर्त्तमान गति मे फिर कभी वह भाव नही प्राप्त होगा, तब उस जीव को भावचरम कहा जायेगा, इसके विपरीत भाव-अचरम है।

(८-११) **वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-चरम-अचरम**—जिस जीव के लिए वर्ण, गन्ध, रस या स्पर्श अन्तिम हो, फिर उसे प्राप्त न हो, वह वर्णादि-चरम है, जिसे पुन. वर्णादि प्राप्त हो रहे है, होगे भी, वह वर्णादि-अचरम है। इन ग्यारह द्वारो के माध्यम से एकवचन और बहुवचन के रूप मे नारको से लेकर वैमानिको तक के चरम-अचरम विषयक प्रश्नो के उत्तर एक से है। एकवचनात्मक नारकादि जीव कथचित् चरम है, कथचित् अचरम है, अर्थात् कोई नारक आदि चरम होता है, कोई अचरम। इसी प्रकार बहुवचनात्मक नारकादि जीव चरम भी है और अचरम भी है।[१]

॥ प्रज्ञापनासूत्र : दसवाँ चरमपद समाप्त ॥

१ (क) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा ३, पृ. २१९ से २३१

(ख) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक २४६

एक्कारसमं भासापयं

ग्यारहवाँ भाषापद

प्राथमिक

- यह प्रज्ञापनासूत्र का ग्यारहवां 'भाषापद' है।

- भाषापर्याप्त जीवो को अपने मनोभाव प्रकट करने के लिए भाषा एक मुख्य माध्यम है, इसके विना विचारो का आदान-प्रदान, शास्त्रीय एव व्यावहारिक अध्ययन तथा ज्ञानोपार्जन मे कठिनता होती है। मन के बाद 'वचन' बहुत बडा साधन है जीव के लिए। इससे कर्मबन्धन और कर्मक्षय दोनो ही हो सकते है, आराधना भी हो सकती है, विराधना भी। इस हेतु से शास्त्रकार ने भाषापद की रचना की है।

- प्रस्तुत भाषापद मे विशेषरूप से यह विचार किया गया है कि भाषा क्या है? वह अवधारिणी-अवबोधबीज है या नही? अवधारणी है तो ऐसी अवधारणी भाषा सत्यादि चार प्रकार की भाषाओ मे से कौन-सी है? यदि चारो प्रकार की है, तो कैसे है? विरोधनी भाषा कौन-सी है? भाषा का मूल स्रोत क्या है? यदि जीव है तो क्यो? भाषा की उत्पत्ति कहाँ से और कैसे होती है? भाषा की आकृति कैसी है? भाषा का उद्‌भव और अन्त किस योग से व कहाँ होता है? भाषाद्रव्य मे पुद्‌गलो का ग्रहण और निर्गमन किस-किस योग से होता है? भाषा का भाषणकाल कितना है? भाषा मुख्यतया कितने प्रकार की है? प्रस्तुत चार प्रकार की भाषाओ मे भगवान् द्वारा अनुमत भाषाएँ कितनी है? तथा भाषाओ मे प्रतिनियतरूप से समझी जा सके, ऐसी पर्याप्तिका कौन-कौन-सी है तथा इससे विपरीत अपर्याप्तिका कौन-कौन-सी हैं?

- फिर पर्याप्तिका के सत्या और मृषा इन दो भेदो के प्रत्येक के जनपदसत्यादि तथा क्रोधनि.सृतादि रूप से क्रमश दस-दस प्रकार बताए गए है। तदनन्तर अपर्याप्तिका के सत्यामृषा और असत्यमृषा ये दो भेद बताकर इनके क्रमश दस और बारह भेद बताए गये है। तत्पश्चात् समस्त जीवो मे कौन-कौन भाषक है, कौन अभाषक? तथा नैरयिको से लेकर वैमानिको तक पूर्वोक्त चार भाषाओ मे कौन-कौन-सी भाषा बोलते है? इसका स्पष्टीकरण किया गया है।

- प्रस्तुत पद मे बीच मे और अन्त मे व्यक्ति और जाति की दृष्टि से स्त्री-पुरुष-नपुसक वचन, स्त्री-पुरुष-नपुसक-आज्ञापनी, स्त्री-पुरुष-नपुसक प्रज्ञापनी भाषा, प्रज्ञापनी-सत्या है या अप्रज्ञापनी (मृषा) है? विशिष्ट सज्ञानवान् के अतिरिक्त नवजात अबोध शिशुओ या अपरिपक्वावस्था मे उष्ट्रादि पशुओ द्वारा बोली जाने वाली भाषा क्या सत्य है? तत्पश्चात् पुन पुरुषवाचक

एकवचन-बहुवचन, स्त्रीवाचक एकवचन-बहुवचन, नपुसकवाचक एकवचन-बहुवचन शब्दो के प्रयोग वाली भाषा प्रज्ञापनी (सत्या) है या मृषा ? तथा सोलह प्रकार के वचन, भाषा के चार प्रकार तथा इन्हें उपयोगपूर्वक बोलने वालो तथा उपयोगरहित बोलने वाले जीवो मे से आराधक-विराधक कौन-कौन हैं ? एव सत्यभाषक, असत्यभाषक, मिश्रभाषक और व्यवहारभाषक, इन चारो मे से कौन, किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है ? इन सब पर विशद चर्चा की गई है ।

- भाषा के योग्य अर्थात् भाषा-वर्गणा के द्रव्य (पुद्गल) अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक होते है तथा वह स्कन्ध भी क्षेत्र की दृष्टि से असख्यातप्रदेश मे स्थित हो तभी भाषायोग्य होता है, अन्यथा नही । काल की दृष्टि से भाषा के पुद्गल एक समय से लेकर असख्यात समय तक की स्थिति वाले होते हैं, अर्थात् उन पुद्गलो की भाषारूप मे परिणति एक समय तक भी रहती है और अधिक से अधिक असख्यात समयो तक भी रहती है । भाषा के लिए ग्रहण किये गए पुद्गलो मे रूप, रस, गन्ध और स्पर्श के जो प्रकार है, वे प्रत्येक भाषापुद्गलो मे एकसरीखे नही होते, उनमे पुद्गलो के सभी प्रकारो का समावेश हो जाता है । अर्थात् पुद्गल का रस, गन्धादि रूप मे कोई भी परिणाम भाषायोग्यपुद्गलो मे न हो, ऐसा सम्भव नही है । हाँ, स्पर्शों मे विरोधी स्पर्शों मे से एक ही स्पर्श होता है, इसलिए प्रत्येक भाषापुद्गल मे दो से लेकर चार स्पर्शों तक के पुद्गल होते है । ग्रहण किये गए भाषा के पुद्गल भाषा के रूप मे परिणत होकर बाहर निकलते है, इसमे सिर्फ दो समय जितना काल व्यतीत होता है, क्योकि प्रथम समय मे ग्रहण और द्वितीय समय मे उसका निसर्ग होता है । इस प्रकार जीव द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भाषा-द्रव्यो के अनेक विकल्पो की सागोपाग चर्चा है ।

- वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शादिविशिष्ट जिन भाषाद्रव्यो को जीव भाषा के रूप में ग्रहण करता है, वे स्थित होते है या अस्थित ? यदि स्थित होते है तो आत्मस्पृष्ट होते है या नही ? इसका तात्पर्य यह है कि पुद्गल तो समग्र लोकाकाश मे भरे है, परन्तु आत्मा तो शरीरप्रमाण ही है । ऐसी स्थिति मे प्रश्न होता है कि जीव चाहे जहाँ से भाषापुद्गलो को ग्रहण करता है या आत्मा के साथ स्पर्श मे आए हुए पुद्गलो को ही ग्रहण करता है ? इसके साथ ही अन्य समाधान भी किये गये है—(१) जीव आत्मस्पृष्ट भाषापुद्गलो का ही ग्रहण करता है । (२) आत्मा के प्रदेशो का अवगाहन आकाश के जितने प्रदेशो मे है, उन्ही प्रदेशो मे रहे हुए भाषापुद्गलो का ग्रहण होता है । (३) उस-उस आत्मप्रदेश से जो भाषापुद्गल निरन्तर हो, अर्थात् आत्मा के उस-उस प्रदेश मे अव्यवहित रूप से जो भाषापुद्गल होते है, उनका ग्रहण होता है । (४) चाहे वे पुद्गल छोटे स्कन्ध के रूप मे हो या बादर रूप मे हो, उनका ग्रहण होता है । (५) ऐसे ग्रहण किये जाने वाले भाषा द्रव्य ऊर्ध्व, अध. या तिर्यग् दिशा मे स्थित होते है । (६) इन भाषाद्रव्यो का जीव आदि मे, मध्य मे और अन्त मे भी ग्रहण करता है । (७) तथा उन्हें वह आनुपूर्वी (क्रम से) ग्रहण करता है, जो आसन्न (निकट) हो उसे ग्रहण करता है तथा (८) छह ही दिशाओ मे से आए हुए भाषाद्रव्यो को ग्रहण करता है । (९) जीव अमुक समय तक सतत बोलता रहे तो उसे निरन्तर भाषाद्रव्य ग्रहण करना पडता है । (१०) यदि बोलना

सतत चालू न रखे तो सान्तर ग्रहण करता है। (११) भाषा लोक के अन्त तक जाती है। इसलिए भाषारूप मे गृहीत पुद्गलो का निर्गमन दो प्रकार से होता है-- (१) जिस प्रमाण मे वे ग्रहण किये हो, उन सब पुद्गलो के पिण्ड का उसी रूप मे (ज्यो-का-त्यो) निर्गमन होता है, अर्थात् वक्ता भाषावर्गणा के पुद्गलो के पिण्ड को अखण्डरूप मे ही बाहर निकालता है, वह पिण्ड अमुक योजन जाने के बाद ध्वस्त हो जाता है, (उसका भाषारूप परिणमन समाप्त हो जाता है)। (२) वक्ता यदि गृहीत पुद्गलो को भेद (विभाग) करके निकालता है तो वे पिण्ड सूक्ष्म हो जाते है, शीघ्र ध्वस्त नही होते, प्रत्युत सम्पर्क मे आने वाले अन्य पुद्गलो को वासित (भाषारूप मे परिणत) कर देते हैं। इस कारण अनन्तगुणे बढते-बढते वे लोक के अन्त का स्पर्श करते हैं।

❖ भाषा पुद्गलो का ऐसा भेदन खण्ड, प्रतर, चूर्णिका, अनुतटिका और उत्करिका, यो पाच प्रकार से होता है, यह दृष्टान्त तथा अल्पबहुत्व के साथ बताया है।[1]

❖❖

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा १ (ख) पण्णवणासुत्त भा. २, भाषापद की प्रस्तावना ८४ से ८८ तक
(ग) विशेषा गा ३७८ (घ) प्रज्ञापना म वृ पत्र २६५ (ङ) आवश्यक निर्युक्ति गा ७

एक्कारसमं भासापयं

ग्यारहवाँ भाषापद

अवधारिणी एवं चतुर्विध भाषा

८३०. से णूणं भंते ! मण्णामीति ओहारिणी भासा ? चिंतेमीति ओहारिणी भासा ? अह मण्णामीति ओहारिणी भासा ? अह चिंतेमीति ओहारिणी भासा ? तह मण्णामीति ओहारिणी भासा ? तह चिंतेमीति ओहारिणी भासा ?

हंता गोयमा ! मण्णामीति ओहारिणी भासा, चिंतेमीति ओहारिणी भासा, अह मण्णामीति ओहारिणी भासा, अह चिंतेमीति ओहारिणी भासा, तह मण्णामीति ओहारिणी भासा, तह चिंतेमीति ओहारिणी भासा ।

[८३० प्र] भगवन् ! मैं ऐसा मानता हूँ कि भाषा अवधारिणी (पदार्थ का अवधारण - अवबोध कराने वाली) है; मैं (युक्ति से) ऐसा चिन्तन करता हूँ कि भाषा अवधारिणी है; (भगवन् !) क्या मै ऐसा मानूँ कि भाषा अवधारिणी है ? क्या मैं (युक्ति द्वारा) ऐसा चिन्तन करूं कि भाषा अवधारिणी है ?, (भगवन् ! पहले मै जिस प्रकार मानता था) उसी प्रकार (अब भी) ऐसा मानूँ कि भाषा अवधारिणी है ? तथा उसी प्रकार मैं (युक्ति से) ऐसा चिन्तन करूं कि भाषा अवधारिणी है ?

[८३० उ] हाँ, गौतम ! (तुम्हारा मनन-चिन्तन सत्य है ।) तुम मानते हो कि भाषा अवधारिणी है, तुम (युक्ति से) चिन्तन करते (सोचते) हो कि भाषा अवधारिणी है, (यह मैं अपने केवलज्ञान से जानता हूँ ।), इसके पश्चात् भी तुम मानो कि भाषा अवधारिणी है, अब तुम (नि सन्देह होकर) चिन्तन करो कि भाषा अवधारिणी है, (मै भी केवलज्ञान के द्वारा ऐसा ही जानता हूँ, तुम्हारा जानना और सोचना यथार्थ और निर्दोष है ।) (अतएव) तुम उसी प्रकार (पूर्वमननवत्) मानो कि भाषा अवधारिणी है तथा उसी प्रकार (पूर्वचिन्तनवत्) सोचो कि भाषा अवधारिणी है ।

८३१. ओहारिणी णं भंते ! भासा किं सच्चा मोसा सच्चामोसा असच्चामोसा ?

गोयमा ! सिय सच्चा, सिय मोसा, सिय सच्चामोसा, सिय असच्चामोसा ।

से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चति ओहारिणी ण भासा सिय सच्चा सिय मोसा सिय सच्चामोसा सिय असच्चामोसा ?

गोयमा ! आराहणी सच्चा १ विराहणी मोसा २ आराहणविराहणी सच्चामोसा ३ जा णेव आराहणी णेव विराहणी णेव आराहणविराहणी असच्चामोसा णाम सा चउत्थी भासा ४ से एतेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ - ओहारिणी ण भासा सिय सच्चा सिय मोसा सिय सच्चामोसा सिय असच्चामोसा ।

[८३१ प्र.] भगवन् ! अवधारिणी भाषा क्या सत्य है, मृषा (असत्य) है, सत्यामृषा (मिश्र) है, अथवा असत्यामृषा (न सत्य, न असत्य) है ?

[८३१ उ.] गौतम ! वह (अवधारिणी भाषा) कदाचित् सत्य होती है, कदाचित् मृषा होती है, कदाचित् सत्यामृषा होती है और कदाचित असत्यामृषा (भी) होती है।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहते है कि (अवधारिणी भाषा) कदाचित् सत्य, कदाचित् मृषा, कदाचित् सत्यामृषा और कदाचित् असत्यामृषा (भी) होती है ?

[उ.] गौतम ! (जो) आराधनी (भाषा है, वह) सत्य है, (जो) विराधनी (भाषा है, वह) मृषा है, (जो) आराधनी-विराधनी (उभयरूपा भाषा है, वह) सत्यामृषा है, और जो न तो आराधनी (भाषा) है, न विराधनी है और न ही आराधनी-विराधनी है, वह चौथी असत्यामृषा नाम की भाषा है। हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि अवधारिणी भाषा कदाचित् सत्य, कदाचित् मृषा, कदाचित् सत्यामृषा और कदाचित् असत्यामृषा होती है।

विवेचन—भाषा की अवधारिणिता एवं चतुर्विधता का निर्णय—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू. ८३०-८३१) मे से प्रथम सूत्र मे श्री गौतमस्वामी ने स्वमनन-चिन्तनानुसार भाषा की अवधारिणिता का भगवान् से निर्णय कराया है तथा दूसरे सूत्र मे अवधारिणी भाषा के चार प्रकारो का भी निर्णय भगवान् द्वारा कराया है।

'भाषा' और 'अवधारिणी' की व्याख्या—भाषा का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ होता है—जो भाषी जाए अर्थात् बोली जाए, वह भाषा है।[1] इसकी शास्त्रीय परिभाषा है भाषा के योग्य द्रव्यो (पुद्गलो) को ग्रहण करके उसे भाषा के रूप मे परिणत करके (मुख आदि से) निकाला जाने वाला द्रव्यसघात भाषा है।[2] 'भाषा अवधारिणी है'—इसका अर्थ हुआ—भाषा अवबोध कराने वाली है अवबोध की बीजभूत (कारण) है,[3] क्योकि अवधारिणी का अर्थ है जिसके द्वारा पदार्थ का अवधारण—बोध या निश्चय होता है।

प्रथम सूत्र का हार्द—प्रथम सूत्र (८३०) मे श्री गौतमस्वामी ने भाषा की अवधारिणिता के सम्बन्ध मे अपने मन्तव्य की सत्यता का भगवान् से निर्णय कराने हेतु एक ही प्रश्न को छह बार विविध पहलुओ मे दोहराया है। उसका तात्पर्य इस प्रकार है—(१) भगवन् ! मै ऐसा मानता हूँ कि भाषा अवबोधकारिणी है, (२) मै (युक्ति से भी) ऐसा चिन्तन करता हूँ कि भाषा अवधारिणी है। इस प्रकार श्री गौतमस्वामी, भगवान् के समक्ष अपना मन्तव्य प्रकट करके उसकी यथार्थता का निर्णय कराने हेतु पुन. इन दो प्रश्नो को प्रस्तुत करते है—(३) भगवन् ! क्या मै ऐसा मानू कि भाषा अवधारिणी है ? (४) भगवन् ! क्या मै (युक्ति से) ऐसा चिन्तन करू कि भाषा अवधारिणी है ? अर्थात् क्या मेरा यह मानना और सोचना निर्दोष है ? इसी मन्तव्य पर भगवान् से सत्यता की पक्की मुहरछाप लगवाने हेतु श्री गौतमस्वामी पुन इन्ही दो प्रश्नो को दूसरे रूप मे प्रस्तुत करते

१. 'भाष्यते इति भाषा'

२ 'तद्योग्यतया परिणामितनिसृज्यमानद्रव्यसहति , एष पदार्थ ।'

३ अवधारयते- अवगम्यतेऽर्थोऽनयेत्यवधारिणी—अवबोधबीजभूता इत्यर्थ ।

प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक २४६

है—(५-६) जैसे मैं पहले मानता और विचारता था कि भाषा अवधारिणी है, अब भी मैं उसी प्रकार मानता और विचारता हूँ कि भाषा अवधारिणी है। तात्पर्य यह है कि मेरे इस समय के मनन और चिन्तन मे तथा पूर्वकालिक मनन और चिन्तन मे कोई अन्तर नही है। भगवान् ! क्या मेरा यह मनन और चिन्तन निर्दोष एव युक्तियुक्त है?

भगवान् का जो उत्तर है, उसमे **'मण्णामि' 'चिंतेमि'** इत्यादि उत्तमपुरुषवाचक क्रियापद प्राकृतभाषा की शैली तथा आर्षप्रयोग होने के कारण मध्यमपुरुष के अर्थ में प्रयुक्त समझना चाहिए। इस दृष्टि से भगवान् के द्वारा इन्ही पूर्वोक्त छह वाक्यो मे दोहराये हुए उत्तर का अर्थ इस प्रकार होता है - 'हाँ, गौतम ! (तुम्हारा मनन-चिन्तन सत्य है।) तुम मानते हो तथा युक्तिपूर्वक सोचते हो कि भाषा अवधारिणी है, यह मै भी अपने केवलज्ञान से जानता हूँ। इसके पश्चात् भी तुम यह मानो कि भाषा अवधारिणी है, तुम यह निःसन्देह होकर चितन करो कि भाषा अवधारिणी है। अतएव (तुमने पहले जैसा माना और सोचा था) उसी तरह मानो और सोचो कि भाषा अवधारिणी है, इसमे जरा भी शका मत करो।[1]

सत्या, मृषा, सत्यामृषा और असत्यामृषा की व्याख्या—**सत्या**=सत्पुरुषो—मुनियो अथवा शिष्ट जनो के लिए जो हितकारिणी हो, अर्थात् इहलोक एव परलोक की आराधना करने मे सहायक होने से मुक्ति प्राप्त करने वाली हो, वह सत्या भाषा है; क्योकि भगवदाज्ञा के सम्यक् आराधक होने से सन्त-मुनिगण ही सत्पुरुष है, उनके लिए यह हितकारिणी है। अथवा सन्त अर्थात्—मूल गुण और उत्तरगुण, जो कि जगत् मे मुक्तिपद को प्राप्त कराने के कारण होने से परमशोभन है, उनके लिए जो हितकारिणी हो अथवा सत् यानी विद्यमान भगवदुपदिष्ट जीवादि पदार्थों की यथावस्थित प्ररूपणा करने मे जो उपयुक्त यानी अनुकूल हो या साधिका हो वह **सत्या** है। **मृषा**—सत्यभाषा से विपरीत स्वरूप वाली हो, वह **मृषा** है। **सत्यामृषा**—जिसमे सत्य और असत्य दोनो मिश्रित हो, अर्थात् जिसमे कुछ अश सत्य हो, और कुछ अश असत्य हो वह सत्यामृषा या मिश्र भाषा है। **असत्यामृषा** जो भाषा इन तीनो प्रकार की भाषाओ मे समाविष्ट न हो सके, अर्थात् जिसे सत्य, असत्य या उभयरूप न कहा जा सके, अथवा जिसमें इन तीनो मे से किसी भी भाषा का लक्षण घटित न हो सके, वह असत्यामृषा है। इस भाषा का विषय—आमन्त्रण करना (बुलाना या सम्बोधित करना) अथवा आज्ञा देना आदि है।[2]

सत्या आदि चारो भाषाओ की पहिचान—आराधनी हो, वह सत्या—जिसके द्वारा मोक्षमार्ग की आराधना की जाए, वह आराधनी भाषा है। किसी भी विषय मे शका उपस्थित होने पर वस्तुतत्त्व की स्थापना की बुद्धि से जो सर्वज्ञमतानुसार बोली जाती है, जैसे कि आत्मा का सद्भाव है, वह स्वरूप से सत् है, पररूप से असत् है, द्रव्यार्थिकनय से नित्य है, पर्यायार्थिकनय से अनित्य है, इत्यादि रूप मे यथार्थ वस्तुस्वरूप का कथन करने वाली होने से भी आराधनी है। जो आराधनी हो, उस भाषा को सत्याभाषा समझनी चाहिए। **जो विराधनी हो, वह मृषा**—जिसके

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २४७

२. 'सच्चा हिया सयामिह सतो मुणयो गुणा पयत्था वा।
तव्विवरीया मोसा, मीसा जा तदुभयसहावा ॥ १ ॥
अणहिगया जा तीसुवि सद्दो च्चिय केवलो असच्चमुसा ॥　　—प्रज्ञापना. म. वृ., प. २४८

द्वारा मुक्तिमार्ग की विराधना हो, वह विराधनी भाषा है। विपरीत वस्तुस्थापना के आशय से सर्वज्ञमत के प्रतिकूल जो बोली जाती है, जैसे कि—आत्मा नही है, अथवा आत्मा एकान्त नित्य है या एकान्त अनित्य है, इत्यादि । अथवा जो भाषा सच्ची होते हुए भी परपीडा-जनक हो, वह भाषा विराधनी है। इस प्रकार रत्नत्रयरूप मुक्तिमार्ग की विराधना करने वाली हो वह भी विराधनी है। विराधनी भाषा को मृषा समझना चाहिए। **जो आराधनी-विराधनी उभयरूप हो, वह सत्यामृषा**—जो भाषा आशिक रूप से आराधनी और आशिक रूप से विराधनी हो, वह आराधनी-विराधनी कहलाती है। जैसे—किसी ग्राम या नगर मे पाच बालको का जन्म हुआ, किन्तु किसी के पूछने पर कह देना 'इस गाँव या नगर मे आज दसेक बालको का जन्म हुआ है।' 'पाच बालकों का जो जन्म हुआ' उतने अश मे यह भाषा सवादिनी होने से आराधनी है, किन्तु पूरे दस बालको का जन्म न होने से उतने अश मे यह भाषा विसवादिनी होने से विराधनी है। इस प्रकार स्थूल व्यवहारनय के मत से यह भाषा आराधनी-विराधनी हुई। इस प्रकार की भाषा 'सत्यामृषा' है। **जो न आराधनी हो, न विराधनी, वह असत्यामृषा** जिस भाषा मे आराधनी के लक्षण भी घटित न होते हो तथा जो विपरीतवस्तुस्वरूप कथन के अभाव का तथा परपीड़ा का कारण न होने से जो भाषा विराधनी भी न हो तथा जो भाषा आशिक सवादी और आशिक विसवादी भी न होने से आराधन-विराधनी भी न हो, ऐसी भाषा असत्यामृषा समझनी चाहिए। ऐसी भाषा प्राय आज्ञापनी या आमत्रणी होती है, जैसे—मुने ! प्रतिक्रमण करो। स्थण्डिल का प्रतिलेखन करो आदि।[1]

विविध पहलुओ से प्रज्ञापनी भाषा की प्ररूपणा

८३२. अह भते ! गाओ मिया पसू पक्खी पण्णवणी ण एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

हंता गोयमा ! गाओ मिया पसू पक्खी पण्णवणी ण एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

[८३२ प्र] भगवन् ! अब यह बताइए कि 'गाये,' 'मृग', 'पशु' (अथवा) 'पक्षी' क्या यह भाषा (इस प्रकार का कथन) प्रज्ञापनी भाषा है ? यह भाषा मृषा (तो) नही है ?

[८३२ उ] हाँ, गौतम ! 'गाये,' 'मृग,' 'पशु' (अथवा) 'पक्षी' यह (इस प्रकार की) भाषा प्रज्ञापनी है। यह भाषा मृषा नही है।

८३३. अह भते ! जा य इत्थिवयू (ऊ) जा य पुमवयू जा य णपुंसगवयू पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

हता गोयमा ! जा य इत्थिवयू जा य पुमवयू जा य णपुसगवयू पण्णवणी ण एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

[८३३ प्र] भगवन् ! इसके पश्चात् यह प्रश्न है कि यह जो स्त्रीवचन है और जो पुरुष-वचन है, अथवा जो नपुसकवचन है, क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ? यह भाषा मृषा नही है ?

[८३३ उ] हाँ, गौतम ! यह जो स्त्रीवचन है और जो पुरुषवचन है, अथवा जो नपुसक-वचन है, यह भाषा प्रज्ञापनी है और यह भाषा मृषा नही है।

---

१. प्रज्ञापना. मलय वृत्ति, पत्राक २४७-२४८

८३४. अह भंते ! जा य इत्थिआणमणी जा य पुमआणमणी जा य णपुंसगआणमणी पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

हंता गोयमा ! जा य इत्थिआणमणी जा य पुमआणमणी जा य णपुंसगआणमणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा ।

[८३४ प्र] भगवन् ! यह जो स्त्री-आज्ञापनी है और जो पुरुष-आज्ञापनी है, अथवा जो नपुंसक-आज्ञापनी है, क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है । यह भाषा मृषा नही है ?

[८३४ उ] हाँ, गौतम ! यह जो स्त्री-आज्ञापनी है और जो पुरुष-आज्ञापनी है, अथवा जो नपुंसक-आज्ञापनी है, यह भाषा प्रज्ञापनी है । यह भाषा मृषा नही है ।

८३५ अह भंते ! जा य इत्थीपण्णवणी जा य पुमपण्णवणी जा य णपुंसगपण्णवणी पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

हंता गोयमा ! जा य इत्थीपण्णवणी जा य पुमपण्णवणी जा य णपुंसगपण्णवणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा ।

[८३५ प्र] भगवन् ! यह जो स्त्री-प्रज्ञापनी है और जो पुरुष-प्रज्ञापनी है, अथवा जो नपुंसक-प्रज्ञापनी है, क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ? यह भाषा मृषा नही है ?

[८३५ उ] हाँ, गौतम ! यह जो स्त्री-प्रज्ञापनी है और जो पुरुष-प्रज्ञापनी है, अथवा जो नपुंसक-प्रज्ञापनी है, यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा मृषा नही है ।

८३६. अह भंते ! जा जाईइ इत्थिवयू जाईइ पुमवयू जाईइ णपुंसगवयू पण्णवणी ण एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

हंता गोयमा ! जाईइ इत्थिवयू जाईइ पुमवयू जाईइ णपुंसगवयू पण्णवणी ण एसा भासा, न एसा भासा मोसा ।

[८३६ प्र.] भगवन् ! जो जाति मे स्त्रीवचन है, जाति मे पुरुषवचन है और जाति मे नपुंसकवचन है, क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ? यह भाषा मृषा नही है ?

[८३६ उ] हाँ, गौतम ! जाति मे स्त्रीवचन, जाति मे पुरुषवचन, अथवा जाति मे नपुंसक वचन, यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा मृषा नही है ।

८३७. अह भते ! जाईइ इत्थिआणमणी जाईइ पुमआणमणी जाईइ णपुंसगाणमणी पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

हंता गोयमा ! जाईइ इत्थीआणमणी जाईइ पुमआणमणी जाईइ णपुंसगाणमणी पण्णवणी ण एसा भासा, ण एसा भासा मोसा ।

[८३७ प्र] भगवन् ! अब प्रश्न यह है कि जाति मे जो स्त्री-आज्ञापनी है, जाति मे जो पुरुष-आज्ञापनी है अथवा जाति मे जो नपुंसक-आज्ञापनी है, क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ? यह भाषा मृषा नही है ?

[८३७ उ.] हाँ, गौतम ! जाति में जो स्त्री-आज्ञापनी है, जाति मे जो पुरुष-आज्ञापनी है, या जाति मे जो नपुसक-आज्ञापनी है, यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा मृषा (असत्य) नही है ।

८३८. अह भंते ! जाईइ इत्थिपण्णवणी जाईइ पुमपण्णवणी जाईइ णपुंसगपण्णवणी पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

हंता गोयमा ! जाईइ इत्थिपण्णवणी जाईइ पुमपण्णवणी जाईइ णपुंसगपण्णवणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा ।

[८३८ प्र] भगवन् ! इसके अनन्तर प्रश्न है -जाति मे जो स्त्री-प्रज्ञापनी है, जाति मे जो पुरुष-प्रज्ञापनी है, अथवा जाति मे जो नपुसक-प्रज्ञापनी है, क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ? यह भाषा मृषा तो नही है ?

[८३८ उ] हाँ, गौतम ! जाति मे जो स्त्री-प्रज्ञापनी है, जाति मे जो पुरुष-प्रज्ञापनी है, अथवा जाति मे जो नपुसक-प्रज्ञापनी है, यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा मृषा नही है ।

विवेचन—विविध पहलुओ से प्रज्ञापनी भाषा की प्ररूपणा—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू ८३२ से ८३८ तक) मे विविध पशु पक्षी नाम-प्रज्ञापना, स्त्री आदि वचन-निरूपण, स्त्री आदि आज्ञापनी, स्त्री आदि प्रज्ञापनी, जाति मे स्त्री आदि वचन प्रज्ञापक, जाति मे स्त्री आदि आज्ञापनी तथा जाति मे स्त्री आदि प्रज्ञापनी, इन विविध पहलुओ से प्रज्ञापनी सत्यभाषा का प्रतिपादन किया गया है ।

'प्रज्ञापनी' भाषा का अर्थ—जिससे अर्थ (पदार्थ) का प्रज्ञापन प्ररूपण या प्रतिपादन किया जाए, उसे 'प्रज्ञापनी भाषा' कहते हैं । इसे प्ररूपणीया या अर्थप्रतिपादिनी भी कह सकते है ।

सप्तसूत्रोक्त प्रज्ञापनी भाषा किस-किस प्रकार की और सत्य क्यो ?—(१) सू ८३२ मे निरूपित गाय आदि शब्द जातिवाचक हैं, जैसे—गाय कहने से गाजाति का बोध होना है और जाति मे स्त्री, पुरुष और नपुसक तीनो लिंगो वाले आ जाते है । इसलिए गो आदि शब्द त्रिलिगी होते हुए भी इस प्रकार एक लिग मे उच्चारण की जाने वाली भाषा पदार्थ का कथन करने के लिए प्रयुक्त होने से प्रज्ञापनी है तथा यह यथार्थ वस्तु का कथन करने वाली होने से सत्य है, क्योकि शब्द चाहे किसी भी लिंग का हो, यदि वह जातिवाचक है तो देश, काल और प्रसग के अनुसार उस जाति के अन्तर्गत वह तीनो लिगो वाले अर्थों का बोधक होता है । यह भाषा न तो परपीडाजनक है, न किसी को धोखा देने आदि के उद्देश्य से बोली जाती है । इस कारण यह प्रज्ञापनी भाषा मृषा नही कही जा सकती । (२) इसी प्रकार (सू ८३३ मे प्ररूपित) शाला, माला आदि स्त्रीवचन (स्त्रीवाचक भाषा), घट, पट आदि पुरुषवचन (पुरुषवाचक भाषा) तथा धन, वन आदि नपुसकवचन (नपुसकवाचक भाषा) है, परन्तु इन शब्दो मे स्त्रीत्व, पुरुषत्व या नपुसत्क के लक्षण घटित नही होते । जैसे कि कहा है—जिसके बडे-बडे स्तन और केश हो, उसे स्त्री समझना चाहिए, जिसके सभी अगो मे रोम हो, उसे पुरुष कहते है तथा जिसमे स्त्री और पुरुष दोनो के लक्षण घटित न हो, उसे नपुसक जानना चाहिए ।

स्त्री आदि के उपर्युक्त लक्षणो के अनुसार शाला, माला आदि स्त्रीलिगवाचक, घट-पट आदि पुरुषलिंगवाचक और धन वन आदि नपुसकलिंगवाचक शब्दो मे, इनमे से स्त्री आदि का कोई भी लक्षण घटित नही होता । ऐसी स्थिति मे किसी शब्द को स्त्रीलिग, किसी को पुरुषलिंग और किसी

को नपुंसकलिंग कहना क्या प्रज्ञापनी भाषा है और क्या यह सत्य है ? मिथ्या नही ? भगवान् ने इसका उत्तर हाँ मे दिया है। किसी भी शब्द का प्रयोग किया जाता है तो वह शब्द पूर्वोक्त स्त्री, पुरुष या नपुंसक के लक्षणो का वाचक नही होता। विभिन्न लिंगो वाले शब्दो के लिंगो की व्यवस्था शब्दानुशासन या गुरु की उपदेशपरम्परा से होती है। इस प्रकार शाब्दिक व्यवहार की अपेक्षा से यथार्थ *वस्तु का प्रतिपादन करने के कारण यह भाषा प्रज्ञापनी है। इसका प्रयोग न तो किसी दूषित आशय* से किया जाता है और न ही इनसे किसी को पीड़ा उत्पन्न होती है। अतः इस प्रकार की प्रज्ञापनी भाषा सत्य है, मिथ्या नही। (३) सूत्र ८३४ के अनुसार प्रश्न का आशय यह है कि जिस भाषा से किसी स्त्री या किसी पुरुष या किसी नपुंसक को आज्ञा दी जाए, ऐसी क्रमशः स्त्री-आज्ञापनी, पुरुष-आज्ञापनी या नपुंसक-आज्ञापनी भाषा क्या प्रज्ञापनी है और सत्य है ? क्योकि प्रज्ञापनी भाषा ही सत्य होती है, जबकि यह तो आज्ञापनी भाषा है, सिर्फ आज्ञा देने मे प्रयुक्त होती है। जिसे आज्ञा दी जाती है, वह तदनुसार क्रिया करेगा ही, यह निश्चित नही है। कदाचित् न भी करे। जैसे—कोई श्रावक किसी श्राविका से कहे—'प्रतिदिन सामायिक करो,' या श्रावक अपने पुत्र से कहे—'यथासमय धर्म की आराधना करो,' या श्रावक किसी नपुंसक से कहे—'नौ तत्त्वो का चिन्तन किया करो,' ऐसी आज्ञा देने पर जिसे आज्ञा दी गई है, वह यदि उस आज्ञानुसार क्रिया न करे तो ऐसी स्थिति में आज्ञा देने वाले की भाषा क्या प्रज्ञापनी और सत्य कहलाएगी ? भगवान् का उत्तर इस प्रकार है कि जो भाषा किसी स्त्री, पुरुष, या नपुंसक के लिए आज्ञात्मक है, वह आज्ञापनी भाषा प्रज्ञापनी है, मृषा नही है। तात्पर्य यह है कि आज्ञापनी भाषा दो प्रकार की है--परलोकबाधिनी और परलोकबाधा-अनुत्पादक। इनमे से जो भाषा स्वपरानुग्रहबुद्धि से, बिना किसी शठता के, किसी पारलौकिक फल की सिद्धि के लिए अथवा किसी विशिष्ट इहलौकिक कार्यसिद्धि के लिए विनेय स्त्री, पुरुष, नपुंसक जनो के प्रति बोली जाती है, वह भाषा परलोकबाधिनी नही होती, यही साधुवर्ग के लिए प्रज्ञापनी भाषा है और सत्य है, किन्तु इससे भिन्न प्रकार की जो भाषा होती है, वह स्व-पर-सक्लेश उत्पन्न करती है, परलोक-बाधिनी है, अतएव अप्रज्ञापनी है और मृषा है। (४) सू ८३५ के प्रश्न का आशय यह है कि यह जो स्त्रीप्रज्ञापनी—स्त्री के लक्षण बतलाने वाली, पुरुषप्रज्ञापनी—पुरुष के लक्षण बतलाने वाली तथा नपुंसकप्रज्ञापनी- नपुंसक के लक्षण बतलाने वाली भाषा है, क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है और सत्य है ? मृषा नही है ? इसका तात्पर्य यह है कि 'खट्वा', 'घट' और 'वनम्' आदि क्रमशः स्त्रीलिंग, पुल्लिंग और नपुंसकलिंग के शब्द है। ये शब्द व्यवहारबल से अन्यत्र भी प्रयुक्त होते हैं। इनमे से खट्वा (खाट) मे विशिष्ट स्तन और केश आदि के लक्षण घटित नही होते, इसी तरह 'घट.' शब्द मे पुरुष के लक्षण घटित नही होते और न 'वनम्' मे नपुंसक के लक्षण घटित होते है, फिर भी इन तीनो मे से स्त्रीलिंगी शब्द 'खट्वा' खट्वा पदार्थ का वाचक होता है, पुल्लिंगी शब्द 'घटः' घट पदार्थ का वाचक होता है तथा नपुंसकलिंगी 'वनम्' शब्द वन पदार्थ का वाचक होता है। ऐसी स्थिति मे स्त्री आदि के लक्षण न होने पर भी स्त्रीलक्षण आदि कथन करने वाली भाषा प्रज्ञापनी एव सत्य है या नही ? यह सशय उत्पन्न होता है।

भगवान् का उत्तर यह है कि जो भाषा-स्त्रीप्रज्ञापनी है, पुरुषप्रज्ञापनी है या नपुंसकप्रज्ञापनी है, वह भाषा प्रज्ञापनी है, मृषा नही। इसका तात्पर्य यह है कि स्त्री आदि के लक्षण दो प्रकार के होते हैं—एक शाब्दिक व्यवहार के अनुसार, दूसरे वेद के अनुसार। शाब्दिक व्यवहार की अपेक्षा से किसी भी लिंग वाले शब्द का प्रयोग शब्दानुशासन के नियमानुसार या उस भाषा के व्यवहारानुसार करना प्रज्ञापनी भाषा है और वह सत्य है। इसी प्रकार वेद (रमणाभिलाषा) के अनुसार प्रतिपादन करना

इष्ट हो, तब स्त्री आदि के लक्षणानुसार उस-उस लिंग के शब्द का प्रयोग करना, वास्तविक अर्थ का निरूपण करना है, ऐसी भाषा प्रज्ञापनी होती है, मृषा नही होती। (५) सूत्र ८३६ के प्रश्न का आशय यह है कि जो जाति (सामान्य) के अर्थ मे स्त्रीवचन (स्त्रीलिंग शब्द) है, जैसे—सत्ता तथा जाति के अर्थ मे जो पुरुषवचन (पुल्लिग शब्द) है, जैसे भाव: एव जाति के अर्थ मे जो नपुंसकवचन है, जैसे सामान्यम्, क्या यह भाषा प्रज्ञापनी और सत्य है, मृषा नही है ? इसका तात्पर्य यह कि जाति का अर्थ यहाँ सामान्य है। सामान्य का न तो लिंग के साथ कोई सम्बन्ध है और न ही सख्या (एकवचन, बहुवचन आदि) के साथ। अन्यतीथिको ने तो वस्तुओ का लिग और सख्या के साथ सम्बन्ध स्वीकार किया है। अत: यदि केवल जाति मे एकवचन और नपुसकलिंग सगत हो तो उसमे त्रिलिंगता सभव नही है, किन्तु जातिवाचक शब्द तीनो लिंगो में प्रयुक्त होते है, जैसे सत्ता आदि। ऐसी स्थिति मे शका होती है कि इस प्रकार की जात्यात्मक त्रिलिंगी भाषा प्रज्ञापनी एव सत्य है या नही ? भगवान् का उत्तर है--जातिवाचक जो स्त्रीबचन, पुरुषवचन और नपुसकवचन है, (जैसे—सत्ता, भाव· और सामान्यम्), यह भाषा प्रज्ञापनी है, मृषा नही है, क्योकि यहाँ जाति शब्द सामान्य का वाचक है। वह अन्यतीर्थीय-परिकल्पित एकान्तरूप से एक, निरवयव और निष्क्रिय नही है, क्योकि ऐसा मानना प्रमाणबाधित है। वस्तुत वस्तु का समान परिणमन ही सामान्य है और समानपरिणाम अनेकधर्मात्मक होता है। धर्म परस्पर भी और धर्मी से भी कथचित् अभिन्न होते है। अतएव जाति मे भी त्रिलिगता सम्भव है। इस कारण यह भाषा प्रज्ञापनी है और मृषा नही है। (६) सूत्र ८३७ मे प्ररूपित प्रश्न का आशय इस प्रकार है कि जो भाषा जाति की अपेक्षा से स्त्री-आज्ञापनी (स्त्री-आदेशदायिनी) होती है, जैसे कि 'यह क्षत्रियाणी ऐसा करे' तथा जो भाषा जाति की अपेक्षा से पुरुष-आज्ञापनी होती है, जैसे कि —'यह क्षत्रिय ऐसा करे', इसी प्रकार जो भाषा नपुसक-आज्ञापनी (नपुसक को आदेश देने वाली) है, क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ? यह भाषा मृषा तो नही है ? तात्पर्य यह है कि जिसके द्वारा किसी स्त्री आदि को कोई आज्ञा दी जाए, वह आज्ञापनीभाषा है। किन्तु जिसे आज्ञा दी जाए, वह उस आज्ञा के अनुसार क्रिया-सम्पादन करे ही, यह निश्चित नही है। अगर न करे तो वह आज्ञापनीभाषा अप्रज्ञापनी तथा मृषा कही जाए या नही ? इस शका का निवारण करते हुए भगवान् कहते हैं --हाँ, गौतम ! जाति की अपेक्षा से स्त्री, पुरुष, नपुसक को आज्ञादायिनी आज्ञापनी भाषा प्रज्ञापनी ही है और वह मृषा नही है। इसका तात्पर्य यह है कि परलोकसम्बन्धी बाधा न पहुँचाने वाली जो आज्ञापनी भाषा स्वपरानुग्रह-बुद्धि से अभीष्ट कार्य को सम्पादन करने मे समर्थ विनीत स्त्री आदि विनेय जनो को आज्ञा देने के लिए बोली जाती है, जैसे 'हे साध्वी ! आज शुभनक्षत्र है, अत अमुक अग का या श्रुतस्कन्ध का अध्ययन करो।' ऐसी आज्ञापनी भाषा प्रज्ञापनी है, निर्दोष है, सत्य है, किन्तु जो भाषा आज्ञापनी तो हो, किन्तु पूर्वोक्त तथ्य से विपरीत हो, अर्थात्—स्वपरपीडा-जनक हो तो वह भाषा अप्रज्ञापनी है और मृषा है। (७) सूत्र ८३८ मे प्ररूपित प्रश्न का आशय यह है कि जो भाषा जाति की अपेक्षा स्त्रीप्रज्ञापनी हो, अर्थात्—स्त्री के लक्षण (स्वरूप) का प्रतिपादन करने वाली हो, जैसे कि स्त्री स्वभाव से तुच्छ होती है, उसमे गौरव की बहुलता होती है, उसकी इन्द्रिया चचल होती है, वह धैर्य रखने मे दुर्बल होती है, तथा जो भाषा जाति की अपेक्षा से पुरुषप्रज्ञापनी यानी पुरुष के लक्षण (स्वरूप) का निरूपण करने वाली हो, यथा- पुरुष स्वाभाविक रूप से गभीर आशयवाला, विपत्ति आ पडने पर भी कायरता धारण न करने वाला होता है तथा धैर्य का परित्याग नही करता इत्यादि। इसी प्रकार जो भाषा जाति की अपेक्षा से नपुसक के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाली होती है, जैसे—नपुसक स्वभाव से क्लीब होता है और वह मोहरूपी

वड़वानल की ज्वालाओ से जलता रहता है, इत्यादि। तात्पर्य यह है कि यद्यपि स्त्री, पुरुष और नपुंसक जाति के गुण नही होते हैं जो ऊपर बता आए है, तथापि कही किसी में अन्यथा भाव भी देखा जाता है। जैसे कोई स्त्री भी गभीर आशयवाली और उत्कृष्ट सत्वशालिनी होती है, इसके विपरीत कोई पुरुष भी प्रकृति से तुच्छ, चपलेन्द्रिय और जरा-सी विपत्ति आ पड़ने पर कायरता धारण करते देखे जाते है और कोई नपुंसक भी कम मोहवाला और सत्त्ववान् होता है। अतएव यह शका उपस्थित होती है कि पूर्वोक्त प्रकार की भाषा प्रज्ञापनी समझी जाए या मृषा समझी जाए ? इसके उत्तर मे भगवान् कहते है कि जो स्त्रीप्रज्ञापनी या नपुंसकप्रज्ञापनी भाषा है, वह प्रज्ञापनी अर्थात् सत्य भाषा है, मृषा नही। इसका तात्पर्य यह है कि जातिगण गुणो का निरूपण बाहुल्य को लेकर किया जाता है, एक-एक व्यक्ति की अपेक्षा से नही। यही कारण है कि जब किसी समग्र जाति के गुणो का निरूपण करना होता है तो निर्मल बुद्धि वाले प्ररूपणकर्ता 'प्राय:' शब्द का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं—'प्राय. ऐसा समझना चाहिए।' जहाँ 'प्राय' शब्द का प्रयोग नही होता, वहाँ भी उसे प्रसगवश समझ लेना चाहिए। अत कदाचित् कही किसी व्यक्ति मे जाति गुण से विपरीत पाई जाए तो भी बहुलता के कारण कोई दोष न होने से वह भाषा प्रज्ञापनी है, मृषा नही।[1]

अबोध बालक-बालिका तथा ऊंट आदि की अनुपयुक्त—अपरिपक्व दशा की भाषा

८३९. अह भंते! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणइ बुयमाणे अहमेसे बुयामि अहमेसे बुयामीति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो।

[८३९ प्र] भगवन् ! अब प्रश्न यह है कि क्या मन्द कुमार (अबोध नवजात शिशु) अथवा मन्द कुमारिका (अबोध बालिका) बोलती हुई ऐसा जानती है कि मै बोल रही हूँ ?

[८३९ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है, सिवाय सज्ञी (अवधिज्ञानी, जातिस्मरण विशिष्ट पटु मन वाले) के।

८४०. अह भंते! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणइ आहारमाहारेमाणे अहमेसे आहारमाहारेमि अहमेसे आहारमाहारेमि त्ति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो।

[८४० प्र.] भगवन् ! क्या मन्द कुमार अथवा मन्द कुमारिका आहार करती हुई जानती है कि मैं इस आहार को करती हूँ ?

[८४० उ] गौतम ! सज्ञी (अवधिज्ञानी आदि पूर्वोक्त) को छोड कर यह अर्थ समर्थ नही है।

८४१. अह भंते! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणइ अयं मे अम्मा-पियरो २ ?

गोयमा ! णो इणट्ठे, समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो।

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २४९ से २५२ तक

(ख) 'प्रज्ञाप्यतेऽर्थोऽनयेति प्रज्ञापनी, अर्थप्रतिपादनी, प्ररूपणीयेति यावत्

(ग) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ३, पृ. २४७ से २६० तक

[८४१ प्र] भगवन् ! क्या मन्द कुमार अथवा मन्द कुमारिका यह जानती है कि ये मेरे माता-पिता है ?

[८४१ उ] गौतम ! संज्ञी (पूर्वोक्त अवधिज्ञानी आदि) को छोडकर यह अर्थ समर्थ नही है ।

८४२. अह भंते ! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणइ अय मे अतिराउले अय मे अतिराउले त्ति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

[८४२ प्र] भगवन् ! मन्द कुमार अथवा मन्द कुमारिका क्या यह जानती है कि यह मेरे स्वामी (अधिराज) का घर (कुल) है ?

[८४२ उ] गौतम ! सिवाय सज्ञी (पूर्वोक्त अवधिज्ञानादि सज्ञायुक्त) के यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है ।

८४३. अह भंते ! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणइ अय मे भट्टिदारए अय मे भट्टिदारए त्ति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

[८४३ प्र.] भगवन् ! क्या मन्द कुमार या मन्द कुमारिका यह जानती है कि यह मेरे भर्ता (स्वामी) का दारक (पुत्र) है।

[८४३ उ] गौतम ! सज्ञी को छोडकर यह अर्थ समर्थ नही है ।

८४४ अह भंते ! उट्टे गोणे खरे घोडए अए एलए जाणइ बुयमाणे अहमेसे बुयामि अहमेसे बुयामि ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

[८४४ प्र] भगवन् ! इसके पश्चात् प्रश्न है कि ऊट, बैल, गधा, घोडा, बकरा और भेड (इनमे से प्रत्येक) क्या बोलता हुआ यह जानता है कि मै यह बोल रहा हूँ ? मै यह बोल रहा हूँ ?

[८४४ उ] गौतम ! सज्ञी (विशिष्ट ज्ञानवान् या जातिस्मरणज्ञानी) को छोड कर यह अर्थ (अन्य किसी ऊट आदि के लिए) शक्य नही है ।

८४५. अह भंते ! उट्टे जाव एलए जाणइ आहारेमाणे अहमेसे आहारेमि अहमेसे आहारेमि त्ति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

[८४५ प्र] भगवन् ! (अब यह बताएँ कि) उष्ट्र से लेकर यावत् एलक (भेड़) तक (इनमे से प्रत्येक) आहार करता हुआ यह जानता है कि मै यह आहार करता हूँ, मै यह आहार कर रहा हूँ ?

[८४५ उ] गौतम ! सिवाय सज्ञी के, यह अर्थ समर्थ नही है ।

८४६. अह भंते ! उट्टे गोण खरे घोडए अए एलए जाणइ अयं मे अम्मा-पियरो २ त्ति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

[८४६ प्र] भगवन् ! ऊँट, बैल, गधा, घोडा, अज और एलक (भेड) क्या यह जानता है कि ये मेरे माता-पिता हैं ।

[८४६ उ] गौतम ! सिवाय सज्ञी के यह अर्थ समर्थ नही है ।

८४७. अह भंते ! उट्टे जाव एलए जाणइ अयं मे अतिराउले २ ?

गोयमा ! जाव णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

[८४७ प्र] भगवन् ! ऊँट, बैल, गधा, घोडा, बकरा और भेडा (या भेड) क्या यह जानता है कि यह मेरे स्वामो का घर है ?

[८४७ उ] गौतम ! सज्ञी को छोड कर, यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है ।

८४८. अह भंते ! उट्टे जाव एलए जाणइ अयं मे भट्टिदारए २ ?

गोयमा ! जाव णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

[८४८ प्र] भगवन् ! ऊँट से (लेकर) यावत् एलक (भेड) तक (का जीव) क्या यह जानता है कि यह मेरे स्वामी का पुत्र है ?

[८४८ उ] गौतम ! सिवाय सज्ञी (पूर्वोक्त विशिष्ट ज्ञानवान्) के (अन्य के लिए) यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है ।

विवेचन अबोध बालक-बालिका तथा ऊँट आदि के अनुपयुक्त-अपरिपक्व दशा की भाषा का निर्णय--प्रस्तुत दस सूत्रो (सू ८३९ से ८४८ तक) मे से पाच सूत्र अबोध कुमार-कुमारिका से सम्बन्धित है और पाच सूत्र ऊँट आदि पशुओ से सम्बन्धित है ।

पंचसूत्री का निष्कर्ष अवधिज्ञानी, जातिस्मरणज्ञानी या विशिष्टक्षयोपशम वाले नवजात शिशु (बच्चा या बच्ची) के सिवाय अन्य कोई भी अबोध शिशु बोलता हुआ यह नही जानता कि मै यह बोल रहा हूँ, वह आहार करता हुआ भी यह नही जानता कि मै यह आहार कर रहा हूँ, वह यह जानने मे भी समर्थ नही होता कि ये मेरे माता-पिता हैं, यह मेरे स्वामी का घर है, अथवा यह मेरे स्वामी का पुत्र है ।

उष्ट्र आदि से सम्बन्धित पचसूत्री का निष्कर्ष--उष्ट्रादि के सम्बन्ध मे भी शास्त्रकार ने पूर्वोक्त पचसूत्री जैसी भाषा की पुनरावृत्ति की है, इसलिए इस पचसूत्री का भी निष्कर्ष यही है कि विशिष्ट ज्ञानवान् या जातिस्मरणज्ञानी (सज्ञी) के सिवाय किसी भी ऊँट आदि को इन या ऐसी अन्य बातो का बोध नही होता । वृत्तिकार ने उष्ट्रादि की पचसूत्री के सम्बन्ध मे एक विशेष बात सूचित की है कि प्रस्तुत पचसूत्री मे ऊँट आदि अति शैशवावस्था वाले ही समझना चाहिए, परिपक्व वय वाले नही, क्योकि परिपक्व अवस्था वाले ऊँट आदि को तो इन बातो का परिज्ञान होना सम्भव है ।[1]

१. (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ २१०-२११

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक २५२

भाषा के सन्दर्भ में ही यह दशसूत्री : एक स्पष्टीकरण—इससे पूर्व सूत्रो में भाषाविषयक निरूपण किया गया था। अतः इन दस सूत्रो मे भी परोक्षरूप से भाषा से सम्बन्धित कुछ विशेष बातो की प्ररूपणा की गई है। इस दससूत्री पर से फलित होता है कि भाषा दो प्रकार की होती है—एक सम्यक् प्रकार से उपयुक्त (उपयोग वाले) सयत की भाषा और दूसरी अनुपयुक्त (उपयोगशून्य) असयत जन की भाषा। जो पूर्वापरसम्बन्ध को समझ कर एव श्रुतज्ञान के द्वारा अर्थों का विचार करके बोलता है, वह सम्यक् प्रकार से उपयुक्त कहलाता है वह जानता है कि मैं यह बोल रहा हूँ, किन्तु जो इन्द्रियो की अपटुता (अविकास) के कारण अथवा वात आदि के विषम या विकृत हो जाने से, चैतन्य का विघात हो जाने से विक्षिप्तचित्तता, उन्माद, पागलपन या नशे की दशा मे पूर्वापर-सम्बन्ध नही जोड सकता, अतएव जैसे-तैसे मानसिक कल्पना करके बोलता है, वह अनुपयुक्त कहलाता है। उस स्थिति मे वह यह भी नही जानता कि मै क्या बोल रहा हूँ ? क्या खा रहा हूँ ? कौन मेरे माता-पिता हैं ? मेरे स्वामी का घर कौनसा है ? तथा मेरे स्वामी का पुत्र कौनसा है ? अत ऐसी अनुपयुक्त दशा (मन्द या विकृत चैतन्यावस्था) मे वह जो कुछ भी बोलता है, वह भाषा सत्य नही है, ऐसा शास्त्रकार का आशय प्रतीत होता है। यही बात उष्ट्रादि के सम्बन्ध मे समझनी चाहिए।[1]

'मन्द कुमार, मन्द कुमारिका' की भाषा की व्याख्या—बालक आदि भी बोलते देखे जाते हैं, परन्तु उनकी भाषा, पूर्वोक्त चार भेदो मे मे कौन-सी है, इसी शका को लेकर श्रीगौतम स्वामी के ये प्रश्न है। मन्द कुमार का अर्थ—सरल आशय वाला, नवजात शिशु या अबोध नन्हा बच्चा, जिसका बोध (समझ) अभी परिपक्व नही है, जो अभी तुतलाता हुआ बोलता है, जिसे पदार्थो का बहुत ही कम ज्ञान है। इसी प्रकार की मन्द कुमारिका भी अबोध शिशु है। इस प्रकार के अबोध शिशु के सम्बन्ध मे प्रश्न है कि जब वह भाषायोग्य पुद्गलो का ग्रहण करके एव उन्हें भाषा के रूप मे परिणत करके वचन रूप मे उत्सर्ग करता है, तब क्या उसे मालूम रहता है कि मै यह बोल रहा हूँ, या मै यह खा रहा हूँ, या ये मेरे माता-पिता है, अथवा यह मेरे स्वामी का घर है, या यह मेरे स्वामी का पुत्र है ? भगवान् कहते हैं—सिवाय सज्ञी के, ऐसा होना शक्य नही है। यद्यपि वह अबोध शिशु भाषा और मन की पर्याप्ति से पर्याप्त है, फिर भी उसका मन अभी तक अपटु (अविकसित) है। मन की अपटुता के कारण उसका क्षयोपशम भी मन्द होता है। श्रुतज्ञानावरणकर्म का क्षमोपशम प्राय मनोरूप करण की पटुता के आश्रय से उत्पन्न होता है, यही शास्त्रसम्मत एव लोकप्रत्यक्ष है।

संज्ञी की व्याख्या—यहाँ सज्ञी शब्द का अर्थ समनस्क अभिप्रेत नही है, किन्तु सज्ञा से युक्त है। सज्ञा का अर्थ है—अवधिज्ञान, जातिस्मरणज्ञान या मन की विशिष्ट पटुता। जो शिशु या जो उष्ट्रादि शैशवावस्था मे होते हुए भी इस प्रकार की विशिष्ट संज्ञा से युक्त (सज्ञी) होते है, वे तो इन बातो को जानते हैं।[2]

एकवचनादि तथा स्त्रीवचनादि से युक्त भाषा की प्रज्ञापनिता का निर्णय

८४९ **अह भंते ! मणुस्से महिसे आसे हत्थी सीहे वग्घे वगे दीविए अच्छे तरच्छे परस्सरे रासभे सियाले विराले सुणए कोलसुणए कोक्कतिए ससए चित्तए चिल्ललए जे यावऽण्णे तहप्पगारा सव्वा सा एगवयू ?**

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २५२-२५३

२. वही, मलय. वृत्ति, पत्राक २५२-२५३

हंता गोयमा ! मणुस्से जाव चिल्ललए जे यावऽण्णे तहप्पगारा सव्वा सा एगवयू ।

[८४९ प्र] भगवन् ! मनुष्य, महिष (भैंसा), अश्व, हाथी, सिंह, व्याघ्र, वृक (भेड़िया), द्वीपिक (दीपड़ा), ऋक्ष (रीछ=भालू), तरक्ष, पाराशर (गेंडा), रासभ (गधा), सियार, विडाल (बिलाव), शुनक, (कुत्ता=श्वान), कोलशुनक (शिकारी कुत्ता), कोकन्तिकी (लोमड़ी), शशक (खरगोश), चीता (चित्रक) और चिल्ललक (वन्य हिंस्र पशु), ये और इसी प्रकार के जो (जितने) भी अन्य जीव हैं, क्या वे सब एकवचन हैं ?

[८४९ उ] हाँ गौतम ! मनुष्य से लेकर चिल्ललक तक तथा ये और अन्य जितने भी इसी प्रकार के प्राणी है, वे सब एकवचन हैं ।

८५०. अह भंते ! मणुस्सा जाव चिल्ललगा जे यावऽण्णे तहप्पगागा सव्वा सा बहुवयू ?

हंता गोयमा ! मणुस्सा जाव चिल्ललगा सव्वा सा बहुवयू ।

[८५० प्र.] भगवन् ! मनुष्यो (बहुत-से मनुष्य) से लेकर बहुत चिल्ललक तथा ये और इसी प्रकार के जो अन्य प्राणी है, वे सब क्या बहुवचन है ?

[८५० उ] हाँ गौतम ! मनुष्यो (बहुत से मनुष्य) से लेकर बहुत चिल्ललक तक तथा अन्य इसी प्रकार के प्राणी, ये सब बहुवचन है ।

८५१. अह भते ! मणुस्सी महिसी वलवा हत्थिणिया सीही वग्घी वगी दीविया अच्छी तरच्छी परस्सरी सियाली विराली सुणिया कोलसुणिया कोक्कतिया ससिया चित्तिया चिल्ललिया जा यावऽण्णा तहप्पगारा सव्वा सा इत्थिवयू ?

हंता गोयमा ! मणुस्सी जाव चिल्ललिया जा यावऽण्णा तहप्पगारा सव्वा सा इत्थिवयू ।

[८५१ प्र] भगवन् ! मानुषी (स्त्री), महिषी (भैंस), वडवा (घोडी), हस्तिनी (हथिनी), सिंही (सिंहनी), व्याघ्री, वृकी (भेड़िनी), द्वीपिनी, रीछनी, तरक्षी, पराशरा (गैंडी), रासभी (गधी), शृगाली (सियारनी), बिल्ली, कुत्ती (कुतिया), शिकारी कुत्ती, कोकन्तिका (लोमड़ी), शशकी (खरगोशनी), चित्रकी (चित्ती), चिल्ललिका, ये और अन्य इसी प्रकार के (स्त्रीजाति विशिष्ट) जो भी (जीव) है, क्या वे सब स्त्रीवचन हैं ?

[८५१ उ] हाँ, गौतम ! मानुषी से (लेकर) यावत् चिल्ललिका, ये और अन्य इसी प्रकार के जो भी (जीव) हैं, वे सब स्त्रीवचन हैं ।

८५२. अह भंते ! मणुस्से जाव चिल्ललए जे यावऽन्ने तहप्पगारा सव्वा सा पुमवयू ?

हंता गोयमा ! मणुस्से महिसे आसे हत्थी सीहे वग्घे वगे दीविए अच्छे तरच्छे परस्सरे सियाले विराले सुणए कोलसुणए कोक्कतिए ससए चित्तए चिल्ललए जे यावऽण्णे तहप्पगारा सव्वा सा पुमवयू ।

[८५२ प्र] भगवन् ! मनुष्य से लेकर यावत् चिल्ललक तक तथा जो अन्य भी इसी प्रकार के प्राणी (नर जीव) है, क्या वे सब पुरुषवचन (पुल्लिंग) हैं ?

[८५२ उ] हाँ, गौतम ! मनुष्य, महिष, (भैंसा), अश्व, हाथी, सिंह, व्याघ्र, भेडिया, दीपडा रीछ तरक्ष, पाराशर (गैंडा), सियार, विडाल, (बिलाव), कुत्ता, शिकारीकुत्ता, कोकन्तिक, (लोमडा), शशक (खरगोश), चीता और चिल्ललक तथा ये और इसी प्रकार के अन्य जो भी प्राणी हैं, वे सब पुरुषवचन (पुल्लिंग) हैं।

८५३. अह भंते ! कंस कसोय परिमंडल सेल थूभ जाल थाल तार रूव अच्छि मव्व कुड पउम दुद्धं दहिय णवणीय आसण सयण भवण विमाणं छत्त चामरं भिंगार अगण निरंगण आभरणं रयणं जे यावऽण्णे तहप्पगारा सव्व त णपुंसगवयू ?

हंता गोयमा ! कसं जाव रयण जे यावऽण्णे तहप्पगारा सव्व त णपुसगवयू ।

[८५३ प्र] भगवन् ! कास्य (कासा), कसोक (कसोल), परिमण्डल, शैल, स्तूप, जाल, स्थाल, तार, रूप, अक्षि, (नेत्र), पर्व (पोर), कुण्ड, पद्म, दुग्ध (दूध), दधि (दही), नवनीत (मक्खन), आसन, शयन, भवन, विमान, छत्र, चामर, भृंगार, अगन (आगन), निरगन (निरजन), आभरण (आभूषण) और रत्न, ये और इसी प्रकार के अन्य जितने भी (शब्द) है, वे सब क्या (संस्कृत-प्राकृत भाषानुसार) नपुंसकवचन (नपुंसकलिंग) है ?

[८५३ उ] हाँ, गौतम ! कास्य से लेकर रत्न तक (तथा) इसी प्रकार के अन्य जितने भी (शब्द) है, वे सब नपुंसकवचन है।

८५४. अह भंते ! पुढवीति इत्थीवयू आउ त्ति पुमवयू, धण्णे त्ति णपुंसगवयू, पण्णवणी ण एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

हंता गोयमा ! पुढवी त्ति इत्थिवयू आउ त्ति पुमवयू, धण्णे त्ति णपुंसगवयू पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा ।

[८५४ प्र.] भगवन् ! पृथ्वी यह (शब्द) स्त्रीवचन (स्त्रीलिंग) है, आउ (पानी) यह (शब्द) पुरुषवचन (पुल्लिंग) है और धान्य, यह (शब्द) नपुंसकवचन (नपुंसकलिंग) है, क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ? क्या यह भाषा मृषा नहीं है ?

[८५४ उ.] हाँ गौतम ! पृथ्वी, यह (शब्द) स्त्रीवचन है, अप् (पानी) यह (प्राकृत मे) पुरुष-वचन है और धान्य, यह (शब्द) नपुंसकवचन है। यह भाषा प्रज्ञापनी है, यह भाषा मृषा नहीं है।

८५५. अह भंते ! पुढवीति इत्थीआणमणी आउ त्ति पुमआणमणी धण्णे त्ति नपुंसगाणमणी पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

हंता गोयमा ! पुढवीति इत्थिआणमणी, आउ त्ति पुमआणमणी, धण्णे त्ति णपुंसगआणमणी, पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा ।

[८५५ प्र] भगवन् ! पृथ्वी, यह (भाषा) स्त्री-आज्ञापनी है, अप् यह (भाषा) पुरुष-आज्ञापनी है और धान्य, यह (भाषा) नपुंसक-आज्ञापनी है, क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ? क्या यह भाषा मृषा नहीं है ?

[८५५ उ] हाँ, गौतम ! पृथ्वी, यह (जो) स्त्री-आज्ञापनी (भाषा) है, अप्, यह (जो) पुरुष-आज्ञापनी (भाषा) है और धान्य, यह (जो) नपुसक-आज्ञापनी (भाषा) है, यह भाषा प्रज्ञापनी है, यह भाषा मृषा नही है।

८५६. अह भंते ! पुढवीति इत्थिपण्णवणी आउ त्ति पुमपण्णवणी धण्णे त्ति णपुंसगपण्णवणी आराहणी ण एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?[1]

हंता गोयमा ! पुढवीति इत्थिपण्णवणी आउ त्ति पुमपण्णवणी धण्णे त्ति णपुंसगपण्णवणी आराहणी ण एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

[८५६ प्र] भगवन् ! पृथ्वी, यह (जो) स्त्री-प्रज्ञापनी (भाषा) है, अप्, यह (जो) पुरुष-प्रज्ञापनी (भाषा) है और धान्य, यह (जो) नपुसक-प्रज्ञापनी (भाषा) है, क्या यह भाषा आराधनी है ? क्या यह भाषा मृषा नही है।

[८५६ उ] हाँ, गौतम ! पृथ्वी, यह (जो) स्त्री-प्रज्ञापनी (भाषा) है, अप्, यह (जो) पुरुष-प्रज्ञापनी (भाषा) है और धान्य, यह (जो) नपुसक-प्रज्ञापनी (भाषा) है, यह भाषा आराधनी है। यह भाषा मृषा नही है।

८५७. इच्चेव भंते ! इत्थिवयणं वा पुमवयण वा णपुंसगवयणं वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

हंता गोयमा ! इत्थिवयण वा पुमवयण वा णपुंसगवयण वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

[८५७ प्र] भगवन् ! इसी प्रकार स्त्रीवचन या पुरुषवचन अथवा नपुसकवचन बोलते हुए (व्यक्ति की) क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ? क्या यह भाषा मृषा नही है ?

[८५७ उ] हाँ, गौतम ! स्त्रीवचन, पुरुषवचन, अथवा नपुसकवचन बोलते हुए (व्यक्ति की) यह भाषा प्रज्ञापनी है, यह भाषा मृषा नहीं है।

विवेचन—एकवचनादि तथा स्त्रीवचनादि विशिष्ट भाषा की प्रज्ञापनिता का निर्णय— प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू ८४९ से ८५७ तक) मे प्रज्ञापनी भाषा के विषय मे वचन, लिंग, आज्ञापन, प्रज्ञापन आदि की अपेक्षा से निर्णयात्मक विचार प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत नौ सूत्रोक्त प्रश्नोत्तरो की व्याख्या--(१) सू ८४९ मे प्ररूपित प्रश्न का आशय यह है कि मनुष्य से चिल्ललक तक के तथा इसी प्रकार के अन्य शब्द एकत्ववाचक होने से क्या एकवचन है ? अर्थात् —इस प्रकार की भाषा क्या एकत्वप्रतिपादिका भाषा है ? तात्पर्य यह है कि—वस्तु धर्म-धर्मिसमुदायात्मक होती है, और प्रत्येक वस्तु मे अनन्त धर्म पाए जाते है। 'मनुष्य' कहने से धर्म-धर्मिसमुदायात्मक सकल (अखण्ड), परिपूर्ण वस्तु की प्रतीति होती है, ऐसा ही व्यवहार भी देखा जाता है ,किन्तु एक पदार्थ के लिए एकवचन का और बहुत-से पदार्थों के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है। इस दृष्टि से यहाँ 'मनुष्य', इस प्रकार का एकवचन का प्रयोग किया गया है, जबकि

---

१ ग्रन्थाग्रम् ४०००।

एकत्वविशिष्ट मनुष्य से मनुष्यगत अनेक धर्मों का बोध होता है। लोक मे तो एकवचन के द्वारा व्यवहार होता है। ऐसी स्थिति में क्या मनुष्य आदि के लिए एकत्वप्रतिपादिका भाषा के रूप में एकवचनान्त प्रयोग समीचीन है ?

भगवान् का उत्तर है—मनुष्य से लेकर चिल्ललक तक तथा इसी प्रकार के अन्य जितने भी शब्द हैं, वह सब एकत्ववाचक भाषा है। तात्पर्य यह है कि शब्दो की प्रवृत्ति विवक्षा के अधीन है और विवक्षा वक्ता के विभिन्न प्रयोजनो के अनुसार कभी और कही एक प्रकार की होती है, तो कभी और कही उससे भिन्न प्रकार की, अत: विवक्षा अनियत होती है। उदाहरणार्थ—किसी एक ही व्यक्ति को उसका पुत्र पिता के रूप में विवक्षित करता है, तब वह व्यक्ति पिता कहलाता है तथा वही पुत्र उसे अपने अध्यापक के रूप मे विवक्षित करता है, तब वही व्यक्ति 'उपाध्याय' कहलाने लगता है। इसी प्रकार यहाँ भी जब धर्मों को गौण करके धर्मी की प्रधानरूप से विवक्षा की जाती है तब धर्मी होने से एकवचन का ही प्रयोग होता है। उस समय समस्त धर्म, धर्मी के अन्तर्गत हो जाते है। इस कारण सम्पूर्ण वस्तु की प्रतीति हो जाती है। किन्तु जब धर्मी (मनुष्य) की गौण-रूप में विवक्षा की जाती है और धर्मों की प्रधानरूप से विवक्षा की जाती है, तब धर्म बहुत होने के कारण धर्मी एक होने पर भी बहुवचन का प्रयोग होता है। निष्कर्ष यह है कि जब धर्मी से धर्मों को अभिन्न मान कर एकत्व की विवक्षा की जाती है तब एकवचन का प्रयोग होता है और जब धर्मी को गौण करके अनेक धर्मों की प्रधानता से विवक्षा की जाती है तब बहुवचन का प्रयोग होता है। यहाँ भी अनन्तधर्मात्मक वस्तु मनुष्य आदि भी धर्मी के एक होने से एकवचन द्वारा प्रतिपादित की जा सकती है। इसलिए यह भाषा एकत्वप्रतिपादिका है। (२) सूत्र ८५० मे प्ररूपित प्रश्न का आशय यह है कि 'मनुष्या' से 'चिल्ललका:' तक तथा इसी प्रकार के अन्य बहुवचनान्त जो शब्द है, वह सब क्या बहुत्वप्रतिपादक वाणी है ? इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य आदि पूर्वोक्त शब्द जातिवाचक है और जाति का अर्थ है—सामान्य। सामान्य के लिए कहा जाता है कि वह एक होता है तथा नित्य, निरवयव, अक्रिय और सर्वव्यापी होता है। ऐसी स्थिति मे ये जातिवाचक शब्द बहुवचनान्त कैसे हो सकते हैं ? जबकि इन शब्दो का प्रयोग बहुवचन मे देखा गया है। यही इस पृच्छा का कारण है। भगवान् के उत्तर का आशय यह है कि 'मनुष्या.' से लेकर 'चिल्ललका·' तक जो बहुवचनान्त शब्द है, वह सब बहुत्वप्रतिपादिका वाणी है। इसका कारण यह है कि यद्यपि पूर्वोक्त 'मनुष्या.' आदि शब्द जातिवाचक हैं, तथापि जाति सदृश परिणामरूप होती है और सदृश परिणाम विसदृश परिणाम का अविनाभावी होता है, अर्थात् सामान्यपरिणाम और असमानपरिणाम या सदृशता और विसदृशता साथ-साथ ही रहते है और दोनो मे कथचित् अभेद भी है। अत· जब असमानपरिणाम से युक्त समानपरिणाम की प्रधानता से विवक्षा की जाती है और असमानपरिणाम प्रत्येक व्यक्ति (विशेष) मे भिन्न-भिन्न होता है, अतएव जब उसका कथन किया जाता है, तब बहुवचन-प्रयोग सगत ही है, जैसे—'घटा' इत्यादि बहुवचन के समान। जब केवल एक ही समानपरिणाम की प्रधानता से विवक्षा की जाती है, और असमानपरिणाम को गौण कर दिया जाता है, तब सर्वत्र समानपरिणाम एक ही होता है, अतएव उसके प्रतिपादन करने में एकवचन का प्रयोग भी सगत है, जैसे—'सर्व घट पृथुबुध्नोदराकार (मोटा और गोल पेट के आकार का) होता है।' यहाँ 'मनुष्या.' इत्यादि शब्दप्रयोगो मे असमानपरिणाम से युक्त समानपरिणाम की ही प्रधानता से विवक्षा की गई है और असमानपरिणाम अनेक होता है। इस

कारण यहाँ बहुवचन का प्रयोग उचित है। (३) सूत्र ८५१ मे प्ररूपित प्रश्न का आशय यह है कि 'मानुषी से लेकर 'चिल्ललिका' तक तथा इसी प्रकार के अन्य 'आ' एव 'ई' अन्त वाले जितने भी शब्द हैं, क्या वे सब स्त्रीवचन हैं ? अर्थात्—यह सब क्या स्त्रीत्व की प्रतिपादिका भाषा है ? इस पृच्छा का तात्पर्य यह है कि यहाँ सर्व वस्तु त्रिलिंगी है। जैसे—यह '(अयं) मृत्रूप.' (मिट्टी के रूप मे परिणत) है, यहाँ पुल्लिग है, '(इय) मृत्परिणति घटाकार परिणति है' यहाँ स्त्रीलिंग है, और '(इद) वस्तु' है, यहाँ नपु सकलिंग है। इस प्रकार यहाँ एक ही वाच्य को तीनो लिंगो के प्रतिपादक वचनो द्वारा प्रतिपादित किया गया है। ऐसी स्थिति मे केवल एक स्त्रीलिंग मात्र का प्रतिपादक शब्द तीनो लिंगो के द्वारा प्रतिपाद्य वस्तु का यथार्थरूप मे वाचक कैसे हो सकता है ? 'नरसिंह' शब्द में केवल 'नर' शब्द या केवल 'सिंह' शब्द दोनो—नर एव सिंह—का वाचक नही हो सकता, किन्तु लोकव्यवहार मे स्त्रीलिंगी शब्द अपने-अपने वाच्य के वाचक देखे जाते है। अत· प्रश्न होता है कि क्या इस प्रकार के सभी वचन स्त्रीत्व के प्रतिपादक होते हैं ? भगवान् का उत्तर 'हाँ' मे है। मानुषी से लेकर चिल्लिका तक तथा इसी प्रकार के अन्य 'आ' 'ई' अन्त वाले शब्द स्त्रीवचन है, अर्थात्—स्त्रीलिंग-विशिष्ट अर्थ के प्रतिपादक हैं। इसका भावार्थ इस प्रकार है—यद्यपि वस्तु अनेक धर्मात्मक होती है, तथापि शब्दशास्त्र का न्याय यह है कि जिस धर्म से विशिष्ट वस्तु का प्रतिपादन करना इष्ट होता है, उसे मुख्य करके उसी धर्म से विशिष्ट धर्मी का प्रतिपादन किया जाता है, उसके सिवाय शेष जो भी धर्म होते हैं, उन्हे गौण करके अविवक्षित कर दिया जाता है। जैसे—किसी पुरुष मे पुरुषत्व भी है, शास्त्रज्ञता भी है, दातृत्व, भोक्तृत्व, जनत्व तथा अध्यापकत्व भी है, फिर भी जब उसका पुत्र उसे आता देखता है तो कहता है—पिताजी आ रहे हैं, उसका शिष्य कहता है—उपाध्याय आ रहे हैं, वैसे ही यहाँ भी मानुषी आदि सभी शब्द यद्यपि त्रिलिंगात्मक हैं, तथापि योनि, मृदुता, अस्थिरता, चपलता आदि (स्त्रीत्व) की प्रधानता से विवक्षा करके, उससे विशिष्ट धर्मों को प्रधान करके जब (मानुषी आदि) धर्मी का प्रतिपादन किया जाता है, तब मानुषी आदि भाषा स्त्रीवाक्—अर्थात् स्त्रीत्व-प्रतिपादिका भाषा कहलाती है। (४-५) सूत्र ८५२ एव ८५३ मे प्ररूपित प्रश्नो के कारण भी पूर्ववत् समझना चाहिए कि -(४) मनुष्य से लेकर चिल्ललक तक शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य शब्द क्या पुरुषवाक् है—अर्थात् क्या यह सब पुल्लिगप्रतिपादक भाषा है ? तथा (५) कास्य से लेकर रत्न तक के शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य शब्द क्या नपु सकवचन हैं, अर्थात्—क्या यह सब नपु सकलिंग प्रतिपादक भाषा है ? इनके उत्तर का भी आशय पूर्ववत् ही समझना चाहिए। निष्कर्ष यह है कि यद्यपि मनुष्य आदि शब्द तथा कास्यादि शब्द त्रिलिगात्मक है, फिर भी प्रधानरूप से पु स्त्व धर्म अथवा नपु सकत्व धर्म की विवक्षा के कारण इन्हे क्रमश. पुल्लिग (पुरुषवचन) तथा नपु सकलिंग (नपु सकवचन) कहा जाता है। (६) सूत्र ८५४ के प्रश्नोत्तर का निष्कर्ष यह है कि 'पृथ्वी' यह स्त्रीवाक् (स्त्रीलिंग विशिष्ट अर्थ की प्रतिपादिका भाषा) है, 'अप' शब्द पुवाक् (पुल्लिगविशिष्ट अर्थ की प्रतिपादिका भाषा) है तथा 'धान्य' शब्द नपु सकवाक् (नपुंसकलिंगविशिष्ट अर्थ की प्रतिपादिका भाषा) है, यह भाषा प्रज्ञापनी अर्थात् सत्य है, मृषा नही है, क्योकि यह सत्य अर्थ का प्रतिपादन करती है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि 'आऊ' (अप् = जल) शब्द प्राकृत भाषा के व्याकरणानुसार पुल्लिग है, सस्कृत भाषा के अनुसार तो वह स्त्रीलिंग ही है। (७) सू. ८५५ मे प्ररूपित प्रश्न का आशय है कि 'पृथ्वी' कुरु, पृथ्वीमानय' (पृथ्वी को बनाओ, पृथ्वी लाओ), इस प्रकार जो स्त्री (स्त्रीलिंग की) आज्ञापनी भाषा है; आप. आनय (पानी लाओ), इस प्रकार जो पुरुष (पुल्लिग की) आज्ञापनी भाषा है तथा धान्य आनय (धान्य लाओ) इस प्रकार की जो नपुंसक (नपुंसकलिंग की)

प्रज्ञापनी भाषा है, क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ? मृषा नही है ? भगवान् ने इसका स्वीकृतिसूचक उत्तर दिया है, जिसका आशय यह है कि पूर्वोक्त तीनो स्थानो पर क्रमश स्त्रीलिंग, पुल्लिग और नपु सर्कलिग की ही विवक्षा होने से, अन्य धर्मों को गौण करके, उन्ही से विशिष्ट पृथ्वी, अप् एव धान्यरूप धर्मों का यह भाषा प्रतिपादन करती है। (८) सू. ८५६ मे प्ररूपित प्रश्न का आशय यह है कि 'पृथ्वी' इस प्रकार की स्त्रीप्रज्ञापनी (स्त्रीत्वस्वरूप की प्ररूपणी), 'आप' इस प्रकार की पुरुष-प्रज्ञापनी (पु स्त्वस्वरूप-प्ररूपणी) तथा 'धान्य' इस प्रकार की नपु सक-प्रज्ञापनी (नपु सकत्वरूप-प्ररूपणी) भाषा क्या आराधनी (मुक्तिमार्ग की अविरोधिनी) भाषा है। यह भाषा मृषा तो नही है ? अर्थात्—इस प्रकार कहने वाले साधक को मिथ्याभाषण का प्रसग तो नहीं होता ? भगवान् ने इसके उत्तर मे कहा कि यह भाषा आराधनी (मोक्षमार्ग के आराधन के योग्य) भाषा है, यह मृषा नही है, क्योकि यह भाषा शाब्दिक व्यवहार की अपेक्षा से यथार्थ वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन करने वाली है। (९) सू ८५७ मे प्ररूपित प्रश्न समुच्चयरूप से अतिदेशात्मक है। उसका आशय यह है कि पूर्वोक्त प्रकार से अन्य भी स्त्रीलिंगप्रतिपादक को स्त्रीवचन, पुल्लिगप्रतिपादक को पुरुषवचन तथा नपु सकलिग-प्रतिपादक को नपु सकवचन के रूप मे कहे जाने पर क्या वक्ता की वह भाषा प्रज्ञापनी (सत्य) है, मृषा नही है ? भगवान् इसका उत्तर भी स्वीकृतिसूचक देते है। जिसका आशय है कि यह प्रज्ञापनी है, शाब्दिक (शब्दानुशासन के) व्यवहार के अनुसार इसमे कोई दोष नही है। दोष तो तभी होता है, जब वस्तुस्वरूप कुछ और हो और कथन अन्य रूप मे किया जाये। जिस वस्तु का जैसा वस्तुस्वरूप है, उसे वैसा ही कहा जाए तो उसमे क्या दोष है ? [1]

विविध दृष्टियों से भाषा का सर्वांगीण स्वरूप

८५८. भासा ण भंते ! किमादीया किंपहवा किंसठिया किंपज्जवसिया ?

गोयमा ! भासा णं जीवादीया सरीरपहवा वज्जसंठिया लोगंतपज्जवसिया पण्णत्ता।

[८५८ प्र] भगवन् ! भाषा की आदि (मूल कारण) क्या है ? (कहाँ से है ?) (भाषा का) प्रभव (उत्पत्ति)—स्थान क्या है ? (भाषा) का आकार कैसा है ? भाषा का पर्यवसान (अन्त) कहाँ होता है ?

[८५८ उ] गौतम ! भाषा की आदि (मूल कारण) जीव है। (उसका) प्रभव (उत्पाद-स्थान) शरीर है। (भाषा) वज्र के आकार की है। लोक के अन्त मे उसका पर्यवसान (अन्त) होता है ऐसा कहा गया है।

८५९. भासा कओ य पहवति ? कतिहिं च समएहिं भासती भासं ? ।
भासा कतिप्पगारा ? कति वा भासा अणुमयाओ ? ।।१९२।।
सरीरप्पहवा भासा, दोहि य समएहि भासती भास ।
भासा चउप्पगारा, दोण्णि य भासा अणुमयाओ ।।१९३।।

[८५९-प्रश्नात्मक गाथार्थ] भाषा कहाँ से उद्भूत होती है ? भाषा कितने समयो मे बोली जाती है ? भाषा कितने प्रकार की है ? और कितनी भाषाएँ अनुमत हैं ? ।।१९२।।

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २४५-२५५
(ख) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका, भा. ३, पृ २८० से २९३ तक

[८५९-उत्तरात्मक गाथार्थ] भाषा का उद्भव (उत्पत्ति) शरीर से होता है। भाषा दो समयों में बोली जाती है। भाषा चार प्रकार की है, उनमें से दो भाषाएँ (भगवान् द्वारा बोलने के लिए) अनुमत हैं ॥१९३॥

विवेचन—विविध दृष्टियों से भाषा का सर्वांगीण स्वरूप—प्रस्तुत दो सूत्रों में भाषा के आदि कारण, उत्पत्तिस्थान, आकार, अन्त, बोलने के समय, प्रकार, अनुमतियोग्य प्रकार आदि का निरूपण किया गया है।

भाषा का मौलिक कारण भाषा के उपादान कारण के अतिरिक्त उसका (आदि) मूल कारण क्या है? यह प्रथम प्रश्न है। उत्तर यह है कि अवबोधबीज भाषा का मूलकारण जीव है, क्योंकि जीव के तथाविध उच्चारणादि प्रयत्न के बिना अवबोधबीज भाषा की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं है। आचार्य भद्रबाहुस्वामी ने कहा है—'औदारिक, वैक्रिय और आहारक, इन तीनों शरीरों में जीव से सम्बद्ध जीव-(आत्म) प्रदेश होते हैं, जिनसे जीव भाषा द्रव्यों को ग्रहण करता है। तत्पश्चात् ग्रहणकर्त्ता (वह भाषक जीव) उस भाषा को बोलता है अर्थात् गृहीत भाषाद्रव्यों का त्याग करता है।

भाषा का प्रभव- उत्पत्ति कहाँ से ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि भाषा शरीर-प्रभवा है अर्थात् औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर से भाषा की उत्पत्ति होती है, क्योंकि इन तीनों में से किसी एक शरीर के सामर्थ्य से भाषाद्रव्य का निर्गम होता है।

भाषा का संस्थान आकार भाषा वज्रसंस्थिता बताई गई है, जिसका तात्पर्य यह कि भाषा का आकार वज्रसदृश होता है, क्योंकि जीव के विशिष्ट प्रयत्न द्वारा निःसृष्ट (निकले हुए) भाषा के द्रव्य सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं और लोक वज्र के आकार का है। अतएव भाषा भी वज्राकृति कही गई है।

भाषा का पर्यवसान कहाँ ? भाषा का अन्त लोकान्त (लोक के सिरे) में होता है। अर्थात् जहाँ लोक का अन्त है वहीं भाषा का अन्त है, क्योंकि लोकान्त से आगे गतिसहायक धर्मास्तिकाय का अभाव होने से भाषाद्रव्यों का गमन असम्भव है, ऐसा मैंने एवं शेष तीर्थंकरों ने प्ररूपित किया है।

भाषा का उद्भव किस योग से ? यहाँ प्रथम गाथा में प्रश्न किया गया है कि भाषा का उद्भव (उत्पत्ति) किस योग से होता है? काययोग से, वचनयोग से या मनोयोग से? उत्तर में—पूर्ववत् **'सरीरप्पहवा (शरीरप्रभवा)'** कहा गया है, किन्तु वृत्तिकार इसका अर्थ करते हैं—**काययोग-प्रभवा;** क्योंकि प्रथम काययोग से भाषा के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके, उन्हें भाषारूप में परिणत करके फिर वचनयोग से उन्हें निकालता—उच्चारण करता है। इस कारण भाषा को 'काययोगप्रभवा' कहना उचित है। आचार्य भद्रबाहुस्वामी कहते हैं—जीव कायिकयोग से (भाषा योग्य पुद्गलों को) ग्रहण करता है तथा वाचिकयोग से (उन्हें) निकालता है।[२]

---

१ **'तिविहंमि सरीरंमि, जीवपएसा हवंति जीवस्स।**
जेहिं उ गेण्हइ गहणं, तो भासइ भासओ भासं ॥'

—प्रज्ञापना. मलय वृत्ति, पत्रांक २५६ में उद्धृत

२. **'गिण्हइ य काइएणं, निसरइ तह वाइएण जोगेण।'**

— प्रज्ञापना म वृ. पत्रांक २५७ में उद्धृत

भाषा का भाषणकाल—जीव दो समयो मे भाषा बोलता है, क्योकि वह एक समय मे भाषा योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है और दूसरे समय मे उन्हे भाषारूप मे परिणत करके छोडता (निकालता) है ।

भाषा के प्रकार—इससे पूर्व भाषा के चार प्रकार स्वरूपसहित बताए जा चुके हैं—सत्या, मृषा (असत्या), सत्यामृषा (मिश्र) और असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा ।

अनुमत भाषाएँ—भगवान् द्वारा दो प्रकार की भाषा बोलने की अनुमति साधुवर्ग को दी गई है—सत्याभाषा और असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा । इसका फलितार्थ यह हुआ कि भगवान् ने मिश्र (सत्यामृषा) भाषा और मृषा (असत्य) भाषा बोलने की अनुज्ञा नही दी है, क्योकि ये दोनो भाषाएँ यथार्थ वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन नही करती, अतएव ये मोक्ष की विरोधनी हैं ।[1]

पर्याप्तिका-अपर्याप्तिका भाषा और इनके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा

८६०. कतिविहा णं भंते ! भासा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा भासा पण्णत्ता । त जहा— पज्जत्तिया य अपज्जत्तिया य ।

[८६० प्र] भगवन् ! भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

[८६० उ] गौतम ! भाषा दो प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—पर्याप्तिका और अपर्याप्तिका ।

८६१. पज्जत्तिया ण भंते ! भासा कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । त जहा सच्चा य मोसा य ।

[८६१ प्र] भगवन् ! पर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

[८६१ उ.] गौतम ! पर्याप्तिका भाषा दो प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—सत्या और मृषा ।

८६२ सच्चा णं भंते ! भासा पज्जत्तिया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता । त जहा—जणवयसच्चा १ सम्मतसच्चा २ ठवणासच्चा ३ णामसच्चा ४ रूवसच्चा ५ पडुच्चसच्चा ६ ववहारसच्चा ७ भावसच्चा ८ जोगसच्चा ९ ओवम्मसच्चा १० ।

जणवय १ सम्मत २ ठवणा ३ णामे ४ रूवे ५ पडुच्चसच्चे ६ य ।
ववहार ७ भाव ८ जोगे ९ दसमे ओवम्मसच्चे १० य ।।१९४।।

[८६२ प्र] भगवन् ! सत्या-पर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

[८६२ उ] गौतम ! दस प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—(१) जनपदसत्या,

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २५६, २५७

(२) सम्मतसत्या, (३) स्थापनासत्या, (४) नामसत्या, (५) रूपसत्या, (६) प्रतीत्यसत्या (७) व्यवहारसत्या, (८) भावसत्या, (९) योगसत्या और (१०) औपम्यसत्या।

[सग्रहणीगाथार्थ—] (दस प्रकार के सत्य)—(१) जनपदसत्य, (२) सम्मतसत्य, (३) स्थापनासत्य, (४) नामसत्य, (५) रूपसत्य, (६) प्रतीत्यसत्य, (७) व्यवहारसत्य, (८) भावसत्य, (९) योगसत्य और (१०) दसवाँ औपम्यसत्य। ॥१९४॥

८६३. मोसा ण भंते ! भासा पज्जत्तिया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता। तं जहा—कोहणिस्सिया १ माणणिस्सिया २ मायाणिस्सिया ३ लोभणिस्सिया ४ पेज्जणिस्सिया ५ दोसणिस्सिया ६ हासणिस्सिया ७ भयणिस्सिया ८ अक्खाइया-णिस्सिया ९ उवघायणिस्सिया १०।

कोहे १ माणे २ माया ३ लोभे ४ पेज्जे ५ तहेव दोसे ६ य।
हास ७ भए ८ अक्खाइय ९ उवघाइयणिस्सिया १० दसमा ॥१९५॥

[८६३ प्र] भगवन् ! मृषा-पर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

[८६३ उ] गौतम ! (वह) दस प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) क्रोध-निःसृता, (२) माननिःसृता, (३) मायानिःसृता, (४) लोभनिःसृता, (५) प्रेयनिःसृता (रागनिःसृता), (६) द्वेषनिःसृता, (७) हास्यनिःसृता, (८) भयनिःसृता, (९) आख्यायिकानिःसृता और (१०) उपघातनिःसृता।

[सग्रहणीगाथार्थ—] क्रोधनिःसृत, माननिःसृत, मायानिःसृत, लोभनिःसृत, प्रेय (राग)-निःसृत, तथा द्वेषनिःसृत, हास्यनिःसृत, भयनिःसृत, आख्यायिकानिःसृत और दसवाँ उपघातनिःसृत असत्य। ॥१९५॥

८६४. अपज्जत्तिया ण भंते ! भासा कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सच्चामोसा य असच्चामोसा य।

[८६४ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

[८६४ उ.] गौतम ! (वह) दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—सत्या-मृषा और असत्यामृषा।

८६५. सच्चामोसा ण भंते ! भासा अपज्जत्तिया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता। तं जहा—उप्पण्णमिस्सिया १ विगयमिस्सिया २ उप्पण्णविगय-मिस्सिया ३ जीवमिस्सिया ४ अजीवमिस्सिया ५ जीवाजीवमिस्सिया ६ अणंतमिस्सिया ७ परित्त-मिस्सिया ८ अद्धामिस्सिया ९ अद्धद्धामिस्सिया १०।

[८६५ प्र] भगवन् ! सत्यामृषा-अपर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

[८६५ उ] गौतम ! (वह) दस प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) उत्पन्न-मिश्रिता, (२) विगतमिश्रिता, (३) उत्पन्न-विगतमिश्रिता, (४) जीवमिश्रिता, (५) अजीवमिश्रिता,

(६) जीवाजीवमिश्रिता, (७) अनन्त-मिश्रिता, (८) परित्त (प्रत्येक)-मिश्रिता, (९) अद्धामिश्रिता और (१०) अद्धद्धामिश्रिता।

८६६ असच्चामोसा णं भंते ! भासा अपज्जत्तिया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुवालसविहा पण्णत्ता। त जहा--

आमतणि १ याऽऽणमणी २ जायणि ३ तह पुच्छणी ४ य पण्णवणी ५।
पच्चक्खाणी भासा ६ भासा इच्छाणुलोमा ७ य ॥१९६॥
अणभिग्गहिया भासा ८ भासा य अभिग्गहम्मि बोद्धव्वा ९।
संसयकरणी भासा १० वोयडा ११ अव्वोयडा १२ चेव ॥१९७॥

[८६६ प्र] भगवन् ! असत्यामृषा-अपर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

[८६६ उ] गौतम ! (वह) बारह प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार

[गाथार्थ--] (१) आमत्रणी, (२) आज्ञापनी, (३) याचनी, (४) पृच्छनी, (५) प्रज्ञापनी, (६) प्रत्याख्यानी भाषा, (७) इच्छानुलोमा भाषा, (८) अनभिगृहीता भाषा, (९) अभिगृहीता भाषा, (१०) सशयकरणी भाषा, (११) व्याकृता और (१२) अव्याकृता भाषा ॥१९६-१९७॥

विवेचन- पर्याप्तिका-अपर्याप्तिका भाषा और इनके भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा प्रस्तुत सात सूत्रो (सू ८६० से ८६६ तक) मे भाषा के मूल दो भेद पर्याप्तक, अपर्याप्तक के भेद प्रभेदो का निरूपण किया गया है।

पर्याप्तिका-अपर्याप्तिका की व्याख्या--पर्याप्तिका--वह भाषा है, जो प्रतिनियत रूप मे समझी जा सके। पर्याप्तिका भाषा सत्या और मृषा, ये दो ही होती है, क्योकि ये दो भाषाएँ ही प्रतिनियत-रूप से अवधारित की जा सकती है। **अपर्याप्तिका** भाषा वह है, जो मिश्रितप्रनिरूप अथवा मिश्रित-प्रतिषेधरूप होने के कारण प्रतिनियतरूप मे अवधारित न की जा सके। अर्थात् -ठीक तरह से निश्चित न की जा सकने के कारण जिसे सत्य या असत्य दोनो मे से किसी एक कोटि मे रखा न जा सके। अपर्याप्तिका भाषाएँ दो है -सत्यामृषा और अस यामृषा। ये दोनो ही प्रति नियतरूप मे अवधारित नही की जा सकती।

दशविध सत्यपर्याप्तिका भाषा की व्याख्या--(१) जनपदसत्या विभिन्न जनपदो (प्रान्तो या प्रदेशो) मे जिस शब्द का जो अर्थ इष्ट है, उस इष्ट अर्थ का बोध कराने वाली होने के कारण व्यवहार का हेतु होने से जो सत्य मानी जाती है। जैसे कोकण आदि प्रदेशो मे पय को 'पिच्चम्' कहते है। **सम्मतसत्या** जो समस्तलोक मे सम्मत होने के कारण सत्यरूप मे प्रसिद्ध है। जैसे - शैवाल, कुमुद (चन्द्रविकासी कमल) और कमल (सूर्यविकासी कमल) ये सब पकज है--कीचड मे ही उत्पन्न होते है, किन्तु 'पकज' शब्द से जनसाधारण 'कमल' अर्थ ही समझते है। शैवाल आदि को कोई पकज नही कहता। अतएव कमल को 'पकज' कहना सम्मतसत्य भाषा है। (३) **स्थापनासत्या** - तथाविध (विशेष प्रकार के) अकादि के विन्यास तथा मुद्रा आदि के ऊपर रचना (छाप) देखकर जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, वह स्थापनासत्य भाषा है। जैसे '१' अक के आगे दो बिन्दु देखकर कहना--यह सौ (१००) है, तीन बिन्दु देखकर कहना--यह एक हजार (१०००) है।

अथवा मिट्टी, चादी, सोना आदि पर अमुक मुद्रा (मुहरछाप) अकित देखकर माष, कार्षापण, मुहर (गिन्नी), रुपया आदि कहना। (४) **नामसत्या**--केवल नाम के कारण ही जो भाषा सत्य मानी जाती है, वह नामसत्या कहलाती है। जैसे--कोई व्यक्ति अपने कुल की वृद्धि नही करता, फिर भी उसका नाम 'कुलवर्द्धन' कहा जाता है। (५) **रूपसत्या**--जो भाषा केवल अमुक रूप (वेशभूषा आदि) से ही सत्य है। जैसे--किसी व्यक्ति ने दम्भपूर्वक साधु का रूप (स्वाग) बना लिया हो, उसे, 'साधु' कहना रूपसत्या भाषा है। (६) **प्रतीत्यसत्या**--जो किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा से सत्य हो। जैसे--अनामिका अगुली को 'कनिष्ठा' (सबसे छोटी) अगुली की अपेक्षा से दीर्घ कहना, और मध्यमा की अपेक्षा से ह्रस्व कहना प्रतीत्यसत्या भाषा है। (७) **व्यवहारसत्या**--व्यवहार से--लोकविवक्षा से जो सत्य हो वह व्यवहारसत्य भाषा है। जैसे--किसी ने कहा--'पहाड जल रहा है' यहाँ पहाड के साथ घास की अभेदविवक्षा करके ऐसा कहा गया है। अत लोकव्यवहार की अपेक्षा से ऐसा बोलने वाले साधु को भाषा भी व्यवहारसत्या होती है। (८) **भावसत्या**--भाव से अर्थात्--वर्ण आदि (की उत्कटता) को लेकर जो भाषा बोली जाती हो, वह भावसत्या भाषा है। अर्थात्--जो भाव जिस पदार्थ मे अधिकता से पाया जाता है, उसी के आधार पर भाषा का प्रयोग करना भावसत्या भाषा है। जैसे--बलाका (बगुलो की पक्ति) मे पाचो वर्ण होने पर भी उसे श्वेत कहना। (९) **योगसत्या**--योग का अर्थ है--सम्बन्ध, सयोग, उसके कारण जो भाषा सत्य मानी जाए। जैसे--छत्र के योग से किसी को छत्री कहना, भले ही शब्दप्रयोगकाल मे उसके पास छत्र न हो। इसी प्रकार किसी को दण्ड के योग से दण्डी कहना। (१०) **औपम्यसत्या** उपमा से जो भाषा सत्य मानी जाए। जैसे गौ के समान गवय (रोम्भ) होता है। इस प्रकार की उपमा पर आश्रित भाषा औपम्यसत्या कहलाती है।

दशविध पर्याप्तिका मृषाभाषा की व्याख्या--(१) **क्रोधनि सृता**--क्रोधवश मुह से निकली हुई भाषा, (२) **माननिःसृता**-पहले अनुभव न किये हुए ऐश्वर्य का, अपना आत्मोत्कर्ष बताने के लिए कहना कि हमने भी एक समय ऐश्वर्य का अनुभव किया था, यह कथन मिथ्या होने से मान-नि सृता है। (३) **मायानिःसृता**-परवचना आदि के अभिप्राय से निकली हुई वाणी। (४) **लोभ-निःसृता**--लोभवश, झूठा तौल-नाप करके पूछने पर कहना यह तौल-नाप ठीक प्रमाणोपेत है, ऐसी भाष लोभनि सृता है। (५) **प्रेय (राग) निःसृता**--किसी के प्रति अत्यन्त रागवश कहना--'मै तो आपका दास हूँ', ऐसी भाषा प्रेयनि.सृता है। (६) **द्वेषनिःसृता** द्वेषवश तीर्थंकरादि का अवर्णवाद करना। (७) **हास्यनिःसृता**--हसी-मजाक मे झूठ बोलना। (८) **भयनिःसृता**--भय से निकली हुई भाषा। जैसे--चोरो आदि के डर से कोई अटसट या ऊटपटाग बोलता है, उसकी भाषा भयनि सृता है। (९) **आख्यायिकानिःसृता** किसी कथा-कहानी के कहने मे असम्भव वस्तु का कथन करना। (१०) **उपघात-निःसृता**--दूसरे के हृदय को उपघात (आघात-चोट) पहुँचाने की दृष्टि से मुख से निकाली हुई भाषा। जैसे--किसी पर अभ्याख्यान लगाना कि 'तू चोर है।' अथवा किसी को अधा या काना कहना।

दशविध सत्यामृषा भाषा की व्याख्या--(१) **उत्पन्नमिश्रिता**-अनुत्पन्नो (जो उत्पन्न नही हुए है) के साथ सख्यापूर्ति के लिए उत्पन्नो को मिश्रित करके बोलना। जैसे-किसी ग्राम या नगर मे कम या अधिक शिशुओ का जन्म होने पर भी कहना कि आज इस ग्राम या नगर मे दस शिशुओ का जन्म हुआ है। (२) **विगतमिश्रिता**--विगत का अर्थ है--मृत। जो विगत न हो, वह अविगत है।

अविगतो (जीवितो) के साथ विगतों (मृतो) को संख्या की पूर्ति हेतु मिला कर कहना। जैसे—किसी ग्राम या नगर में कम या अधिक बूढ़ो के मरने पर भी ऐसे कहना कि आज इस ग्राम या नगर मे बारह बूढ़े मर गए। यह भाषा विगतमिश्रिता सत्यामृषा है। (३) **उत्पन्नविगतमिश्रिता**—उत्पन्नो (जन्मे हुओ) और मृतको (मरे हुओ) की सख्या नियत होने पर भी उसमे गडबड करके कहना। (४) **जीवमिश्रिता**—शख आदि की ऐसी राशि हो, जिसमे बहुत-से जीवित हो और कुछ मृत हों, उस एक राशि को देख कर कहना कि कितनी बडी जीवराशि है, यह जीवमिश्रिता सत्यामृषा भाषा है, क्योकि यह भाषा जीवित शखो की अपेक्षा सत्य है और मृत शखो की अपेक्षा से मृषा। (५) **अजीवमिश्रिता**—बहुत-से मृतको और थोड़े-से जीवित शखो की एक राशि को देखकर कहना कि 'कितनी बडी मृतको की राशि है', इस प्रकार की भाषा अजीवमिश्रिता सत्यामृषा भाषा कहलाती है, क्योकि यह भाषा भी मृतको की अपेक्षा से सत्य और जीवितो की अपेक्षा मृषा है। (६) **जीवाजीवमिश्रिता**—उसी पूर्वोक्त राशि को देखकर, सख्या मे विसवाद होने पर भी नियतरूप से निश्चित कह देना कि इसमे इतने मृतक हैं, इतने जीवित है। यहाँ जीवो और अजीवो की विद्यमानता सत्य है, किन्तु उनकी सख्या निश्चित कहना मृषा है। अतएव यह जोवाजीवमिश्रिता सत्यामृषा भाषा है। (७) **अनन्तमिश्रिता**—मूली, गाजर आदि अनन्तकाय कहलाते है, उनके साथ कुछ प्रत्येकवनस्पतिकायिक भी मिले हुए है, उन्हे देख कर कहना कि 'ये सब अनन्तकायिक है', यह भाषा अनन्तमिश्रिता सत्यामृषा है। (८) **प्रत्येकमिश्रिता**—प्रत्येक वनस्पतिकाय का सघात अनन्तकायिक के साथ ढेर करके रखा हो, उसे देखकर कहना कि 'यह सब प्रत्येकवनस्पतिकायिक है', इस प्रकार की भाषा प्रत्येकमिश्रिता सत्यामृषा है। (९) **अद्धामिश्रिता**—अद्धा कहते है—काल को। यहाँ प्रसग अद्धा से दिन या रात्रि अर्थ ग्रहण करना चाहिए, जिसमे दोनो का मिश्रण करके कहा जाए। जैसे—अभी दिन विद्यमान है, फिर भी किसी से कहा—उठ, रात पड गई। अथवा अभी रात्रि शेष है, फिर भी कहना उठ, सूर्योदय हो गया। (१०) **अद्धाद्धामिश्रिता**—अद्धाद्धा कहते है—दिन या रात्रि काल के एक देश (अश) को। जिस भाषा के द्वारा उन कालाशो का मिश्रण करके बोला जाए। जैसे—अभी पहला पहर चल रहा है, फिर भी कोई व्यक्ति किसी को जल्दी करने की दृष्टि से कहे कि 'चल, मध्याह्न हो गया है', ऐसी भाषा अद्धाद्धामिश्रिता है।

बारह प्रकार की असत्यामृषा भाषा की व्याख्या—(१) **आमत्रणी**—सम्बोधनसूचक भाषा। जैसे—हे देवदत्त !। (२) **आज्ञापनी**—जिसके द्वारा दूसरे को किसी प्रकार की आज्ञा दी जाए। जैसे—'तुम यह कार्य करो।' आज्ञापनी भाषा दूसरे को कार्य मे प्रवृत्त करने वाली होती है। (३) **याचनी**—किसी वस्तु की याचना करने (मागने) के लिए प्रयुक्त की जाने वाली भाषा। जैसे—मुझे दीजिए। (७) **पृच्छनी**—किसी सदिग्ध या अनिश्चित वस्तु के विषय मे किसी विशिष्ट ज्ञाता से जिज्ञासावश पूछना कि 'इस शब्द का अर्थ क्या है ?' (५) **प्रज्ञापनी**—विनीत शिष्यादि जनो के लिए उपदेशरूप भाषा। जैसे—जो प्राणिहिंसा से निवृत्त होते हैं, वे दूसरे जन्म मे दीर्घायु होते है।[१] (६) **प्रत्याख्यानी**—जिस भाषा के द्वारा अमुक वस्तु का प्रत्याख्यान कराया जाए या प्रकट किया जाए। जैसे—आज तुम्हारे एक प्रहर तक आहार करने का प्रत्याख्यान है। अथवा किसी के द्वारा याचना करने पर कहना कि 'मैं यह वस्तु तुम्हे नही दे सकता।' (७) **इच्छानुलोमा**—जो भाषा इच्छा

१ 'पाणिवहाउ नियत्ता हवति दीहाउया अरोगा य। एमाई पण्णत्ता पण्णवणी वीयरागेहिं ॥

—प्रज्ञापना. म वृ., प. २५९

के अनुकूल हो, अर्थात्—वक्ता के इष्ट अर्थ का समर्थन करने वाली हो। इसके अनेक प्रकार हो सकते हैं—(१) जैसे कोई किसी गुरुजन आदि से कहे—'आपकी अनुमति (इच्छा) हो तो मैं प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ।' (२) कोई व्यक्ति किसी साथी से कहे—'आपकी इच्छा हो तो यह कार्य कीजिए', (३) आप यह कार्य कीजिए, इसमें मेरी अनुमति है। (या ऐसी मेरी इच्छा है)। इस प्रकार की भाषा इच्छानुलोमा कहलाती है। (८) **अनभिगृहीता**—जो भाषा किसी नियत अर्थ का अवधारण न कर पाती हो, वक्ता की जिस भाषा मे कार्य का कोई निश्चित रूप न हो, वह अनभिगृहीता भाषा है। जैसे किसी के सामने बहुत-से कार्य उपस्थित हैं, अतः वह अपने किसी बडे या अनुभवी से पूछता है—'इस समय मैं कौन-सा कार्य करूं ?' इस पर वह उत्तर देता है—'जो उचित समझो, करो।' ऐसी भाषा से किसी विशिष्ट कार्य का निर्णय नही होता, अत इसे अनभिगृहीता भाषा कहते हैं। (९) **अभिगृहीता**—जो भाषा किसी नियत अर्थ का निश्चय करने वाली हो, जैसे- "इस समय अमुक कार्य करो, दूसरा कोई कार्य न करो।' इस प्रकार की भाषा 'अभिगृहीता' है। (१०) **संशयकरणी**—जो भाषा अनेक अर्थों को प्रकट करने के कारण दूसरे के चित्त मे संशय उत्पन्न कर देती हो। जैसे—किसी ने किसी से कहा—'सैन्धव ले आओ।' सैन्धव शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे—घोड़ा, नमक, वस्त्र और पुरुष। 'सैन्धव' शब्द को सुनकर यह सशय उत्पन्न होता है कि यह नमक मगवाता है, या घोडा आदि। यह सशयकरणी भाषा है। (११) **व्याकृता**—जिस भाषा का अर्थ स्पष्ट हो, जैसे—यह घडा है। (१२) **अव्याकृता**—जिस भाषा का अर्थ अत्यन्त ही गूढ हो, अथवा अव्यक्त (अस्पष्ट) अक्षरो का प्रयोग करना अव्याकृता भाषा है, क्योकि वह भाषा ही समझ मे नही आती।

यह बारह प्रकार की अपर्याप्ता असत्यामृषा भाषा है। यह भाषा पूर्वोक्त सत्या, मृषा और मिश्र इन तीनो भाषाओ के लक्षण से विलक्षण होने के कारण न तो सत्य कहलाती है, न असत्य और न ही सत्यामृषा। यह भाषा केवल व्यवहारप्रवर्त्तक है, जो साधुजनो के लिए भी बोलने योग्य मानी गई है।[1]

समस्त जीवों के विषय में भाषक-अभाषक प्ररूपणा

८६७. जीवा ण भंते ! किं भासगा अभासगा ?

गोयमा ! जीवा भासगा वि अभासगा वि।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति जीवा भासगा वि अभासगा वि ?

गोयमा ! जीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संसारसमावण्णगा य असंसारसमावण्णगा य। तत्थ णं जे ते अससारसमावण्णगा ते ण सिद्धा, सिद्धा णं अभासगा। तत्थ णं जे ते ससारसमावण्णगा ते णं दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सेलेसिपडिवण्णगा य असेलेसिपडिवण्णगा य। तत्थ ण जे ते सेलेसिपडिवण्णगा ते णं अभासगा। तत्थ ण जे ते असेलेसिपडिवण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता, त जहा—एगिंदिया य अणेगिंदिया य। तत्थ ण जे ते एगिंदिया ते णं अभासगा। तत्थ णं जे ते अणेगिंदिया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तत्थ णं जे त अपज्जत्तगा ते णं अभासगा। तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते ण भासगा। से एतेणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चति जीवा भासगा वि अभासगा वि।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २ ५७ से २५९ तक
(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका सहित भा ३, पृ ३०३ से ३२० तक

[८६७ प्र.] भगवन् ! जीव भाषक हैं या अभाषक ?

[८६७ उ] गौतम ! जीव भाषक भी है और अभाषक भी है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि जीव भाषक भी है और अभाषक भी हैं ?

[उ] गौतम ! जीव दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार ससारसमापन्नक और असंसार-समापन्नक। उनमे से जो असंसारसमापन्नक जीव है, वे सिद्ध हैं और सिद्ध अभाषक होते हैं तथा उनमे जो ससारसमापन्नक (ससारी) जीव हैं, वे (भी) दो प्रकार के हैं - शैलेशीप्रतिपन्नक और अशैलेशी-प्रतिपन्नक। उनमें जो शैलशीप्रतिपन्नक हैं, वे अभाषक हे। उनमे जो अशैलेशीप्रतिपन्नक है, वे दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—एकेन्द्रिय (स्थावर) और अनेकेन्द्रिय (त्रस)। उनमे से जो एकेन्द्रिय हैं, वे अभाषक है। उनमे से जो अनेकेन्द्रिय है, वे दो प्रकार के है। वे इस प्रकार पर्याप्तक और अपर्याप्तक। जो अपर्याप्तक है, वे अभाषक है। जो पर्याप्तक है, वे भाषक है। हे गौतम ! इसी हेतु से ऐसा कहा जाता है कि जीव भाषक भी हैं और अभाषक भी है।

८६८ नेरइया णं भंते ! किं भासगा अभासगा ?

गोयमा ! नेरइया भासगा वि अभासगा वि।

से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति नेरइया भासगा वि अभासगा वि ?

गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते ण अभासगा, तत्थ ण जे ते पज्जत्तगा ते ण भासगा, से एएणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ णेरइया भासगा वि अभासगा वि।

[८६८ प्र] भगवन् ! नैरयिक भाषक हैं या अभाषक।

[८६८ उ] गौतम ! नैरयिक भाषक भी हैं, अभाषक भी।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहते हैं कि नैरयिक भाषक भी है और अभाषक भी ?

[उ.] गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इनमे जो अपर्याप्तक है, वे अभाषक हैं और जो पर्याप्तक हैं, वे भाषक है। हे गौतम ! इसी हेतु से ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक भाषक भी हैं और अभाषक भी।

८६९. एव एगिंदियवज्जाण णिरंतर भाणियव्वं।

[८६९.] इसी प्रकार एकेन्द्रियो को छोडकर (द्वीन्द्रियो से लेकर वैमानिक देवो पर्यन्त) निरन्तर (लगातार) सभो के विषय मे समझ लेना चाहिए।

विवेचन समस्त जीवो के विषय में भाषक-अभाषक-प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ८६७ से ८६९ तक) मे समुच्चय जीवो की भाषकता-अभाषकता का विश्लेषण करके नैरयिक से लेकर वैमानिक तक चौबीस दण्डकवर्ती ससारी जीवो की भाषकता-अभाषकता का निरूपण किया गया है।

एकेन्द्रिय जीव अभाषक क्यों - जिह्वेन्द्रिय से रहित होने के कारण एकेन्द्रिय जीव अभाषक ही होते है।[1]

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा १ (मूलपाठ) प्र २१४-२१५, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ३, पृ ३२७

चतुर्विध भाषाजात एवं समस्त जीवों में उसकी प्ररूपणा

८७०. कति ण भंते ! भासज्जता पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि भासज्जाता पण्णत्ता । तं जहा—सच्चमेग भासज्जातं १ बितियं मोसं २ ततियं सच्चामोसं ३ चउत्थ असच्चामोस ४ ।

[८७० प्र] भगवन् ! भाषाजात (भाषा के प्रकार–रूप) कितने कहे गए हैं ?

[८७० उ] गौतम ! चार भाषाजात कहे गए है । वे इस प्रकार हैं—(१) एक सत्य भाषा-जात, (२) दूसरा मृषा भाषाजात, (३) तीसरा सत्यामृषा भाषाजात और (४) चौथा असत्यामृषा भाषाजात ।

८७१ जीवा ण भंते ! किं सच्च भासं भासंति ? मोसं भासं भासंति ? सच्चामोसं भासं भासंति ? असच्चामोसं भासं भासति ?

गोयमा ! जीवा सच्चं पि भास भासंति, मोसं पि भासं भासंति, सच्चामोसं पि भासं भासंति, असच्चामोस पि भास भासंति ।

[८७१ प्र] भगवन् ! जीव क्या सत्यभाषा बोलते है, मृषाभाषा बोलते है, सत्यामृषा भाषा बोलते है अथवा असत्यामृषा भाषा बोलते है ?

[८७१ उ.] गौतम ! जीव सत्यभाषा भी बोलते हैं, मृषाभाषा भी बोलते है सत्या-मृषा भाषा भी बोलते है और असत्यामृषा भाषा भी बोलते हैं ।

८७२ णेरइया ण भंते ! किं सच्चं भास भासति जाव किं असच्चामोसं भासं भासंति ?
गोयमा ! णेरइया णं सच्च पि भासं भासति जाव असच्चामोसं पि भासं भासति ।

[८७२ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक सत्यभाषा बोलते है, मृषाभाषा बोलते है, सत्यामृषा भाषा बोलते हैं , अथवा असत्यामृषा भाषा बोलते हैं ।

[८७२ उ] गौतम ! नैरयिक सत्यभाषा भी बोलते हैं, मृषाभाषा भी बोलते हैं, सत्यामृषा भाषा भी बोलते है और असत्यामृषा भाषा भी बोलते हैं ।

८७३. एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा ।

[८७३] इसी प्रकार असुरकुमारो से लेकर यावत् स्तनितकुमारो तक (की भाषा के विषय के समझ लेना चाहिए ।)

८७४. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया य णो सच्चं णो मोसं णो सच्चामोसं भासं भासंति, असच्चामोसं भासं भासंति ।

[८७४] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव न तो सत्यभाषा (बोलते हैं) , न मृषाभाषा (बोलते हैं) और न ही सत्यामृषा भाषा बोलते हैं, (किन्तु वे) असत्यामृषा भाषा बोलते हैं ।

८७५. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! किं सच्चं भासं भासंति ? जाव (सु. ८७१) किं असच्चामोसं भासं भासंति ?

गोयमा ! पचेंदियतिरिक्खजोणिया णो सच्चं भासं भासंति, णो मोसं भासं भासंति, णो सच्चामोसं भासं भासंति, एगं असच्चामोसं भासं भासंति, णऽण्णत्थ सिक्खापुव्वगं उत्तरगुणलद्धिं वा पडुच्च सच्चं भासं भासंति, मोसं पि भासं भासंति, सच्चामोसं पि भासं भासंति, असच्चामोसं पि भासं भासंति ।

[८७५ प्र.] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव क्या सत्यभाषा बोलते है ? यावत् क्या (वे) असत्यामृषा भाषा बोलते हैं ?

[८७५ उ] गौतम ! पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव, न तो सत्यभाषा बोलते है, न मृषा भाषा बोलते हैं और न ही सत्यामृषा भाषा बोलते हैं, वे सिर्फ एक असत्यामृषा भाषा बोलते है, सिवाय शिक्षापूर्वक अथवा उत्तरगुणलब्धि की अपेक्षा से (तैयार हुए पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के, जो कि) सत्यभाषा भी बोलते हैं, मृषाभाषा भी बोलते है, सत्यामृषा भाषा भी बोलते है तथा असत्यामृषा भाषा भी बोलते हैं ।

८७६ मणुस्सा जाव वेमाणिया एए जहा जीवा (८७१) तहा भाणियव्वा ।

[८७६] मनुष्यो से लेकर (वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क) वैमानिको तक की भाषा के विषय मे औघिक जीवो की भाषाविषयकप्ररूपणा के समान (सूत्र ८७१ के अनुसार) कहना चाहिए ।

विवेचन—चतुर्विध भाषाजात एव समस्त जीवो मे उसकी प्ररूपणा प्रस्तुत सात सूत्रो (सू ८७० से ८७६ तक) मे चार प्रकार की भाषाओ का निरूपण करके समुच्चय जीव एव चौवीस दण्डको के अनुसार नैरयिको से वैमानिको तक के जीवो मे से कौन, कौन-कौनसी भाषा बोलते हैं ? इसकी सक्षिप्त प्ररूपणा की गई है ।

द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियों एवं तिर्यञ्चपचेन्द्रियो की भाषाविषयक प्ररूपणा—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में केवल असत्यामृषा के सिवाय शेष तीनो भाषाओ का जो निषेध किया गया है, उसका कारण यह है कि उनमे न तो सम्यग्ज्ञान होता है और न ही परवचना आदि का अभिप्राय हो सकता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चपचेन्द्रियो मे सिवाय कुछ अपवादो के केवल असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा के अतिरिक्त शेष तीनो भाषाओ का निषेध किया गया है, इसका कारण यह है कि वे न तो सम्यक् रूप से, यथावस्थित वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन करने के अभिप्राय से बोलते हैं और न ही दूसरो को धोखा देने या ठगने के आशय से बोलते है, किन्तु कुपित अवस्था मे या दूसरो को मारने की कामना से जब भी वे बोलते हे, तब इसी एक ही रूप से बोलते है । अतएव उनकी भाषा असत्यामृषा होती है । शास्त्रकार इनके विषय मे कुछ अपवाद भी बताते है, वह यह है कि शुक (तोता), सारिका (मैना) आदि किन्ही विशिष्ट तिर्यञ्च पचेन्द्रियो को यदि प्रशिक्षित (Trained) किया जाय, अथवा सस्कारित किया जाय तथा विशिष्ट प्रकार का क्षयोपशम होने से किन्ही को जातिस्मरणज्ञानादि रूप किसी उत्तरगुण की लब्धि हो जाए, अथवा विशिष्ट व्यवहारकौशलरूप लब्धि प्राप्त हो जाए तो

वे सत्यभाषा भी बोलते है, असत्यभाषा भी बोलते हैं और सत्यामृषा (मिश्र) भाषा भी बोलते है। अर्थात्-वे चारो ही प्रकार की भाषा बोलते हैं।

जीव द्वारा ग्रहणयोग्य भाषाद्रव्यों के विभिन्नरूप

८७७. [१] जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गेण्हति ताइं किं ठियाइं गेण्हति ? अठियाइं गेण्हति ?

गोयमा ! ठियाइं गेण्हति, णो अठियाइं गेण्हति ।

[८७७-१ प्र] भगवन् ! जीव जिन द्रव्यो को भाषा के रूप मे ग्रहण करता है, सो स्थित (गमनक्रियारहित) द्रव्यो को ग्रहण करता है या अस्थित (गमन क्रियावान्) द्रव्यो को ग्रहण करता है ?

[८७७-१ उ] गौतम ! (वह) स्थित द्रव्यो को ग्रहण करता है, अस्थित द्रव्यो को ग्रहण नही करता।

[२] जाइं भंते ! ठियाइं गेण्हति ताइं किं दव्वओ गेण्हति ? खेत्तओ गेण्हति ? कालओ गेण्हति ? भावओ गेण्हति ?

गोयमा ! दव्वओ वि गेण्हति, खेत्तओ वि गेण्हति, कालओ वि गेण्हति, भावओ वि गेण्हति ।

[८७७-२ प्र] भगवन् ! (जीव) जिन स्थित द्रव्यो को (भाषा के रूप मे) ग्रहण करता है, उन्हे क्या (वह) द्रव्य से ग्रहण करता है, क्षेत्र से ग्रहण करता है, काल से ग्रहण करता है, अथवा भाव से ग्रहण करता है ?

[८७७-२ उ] गौतम ! (वह उन स्थित द्रव्यो को) द्रव्यत भी ग्रहण करता है, क्षेत्रत भी ग्रहण करता है, कालत भी ग्रहण करता है और भावत भी ग्रहण करता है।

[३] जाइं दव्वओ गेण्हति ताइं किं एगपएसियाइं गिण्हति दुपएसियाइं गेण्हति जाव अणंतपएसियाइं गेण्हति ?

गोयमा ! णो एगपएसियाइं गेण्हति जाव णो असंखेज्जपएसियाइं गेण्हति, अणंतपएसियाइं गेण्हति ।

[८७७-३ प्र] भगवन् ! (जीव) जिन (स्थित द्रव्यो) को द्रव्यत. ग्रहण करता है, क्या वह उन एकप्रदेशी (द्रव्यो) को ग्रहण करता है, द्विप्रदेशी को ग्रहण करता है ? यावत् अनन्तप्रदेशी द्रव्यो को ग्रहण करता है ?

[८७७-३ उ.] गौतम ! (जीव) न तो एकप्रदेशी द्रव्यो को ग्रहण करता है, यावत् न असख्येयप्रदेशी द्रव्यो को ग्रहण करता है, (किन्तु) अनन्तप्रदेशी द्रव्यो को ग्रहण करता है।

[४] जाइं खेत्तओ ताइं किं एगपएसोगाढाइं गेण्हति दुपएसोगाढाइं गेण्हति जाव असंखेज्जपएसोगाढाइं गेण्हति ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २६०

गोयमा ! णो एगपएसोगाढाइं गेण्हति जाव णो संखेज्जपएसोगाढाइं गेण्हति, असंखेज्जपए-सोगाढाइं गेण्हति ।

[८७७-४ प्र.] जिन (स्थित द्रव्यों को जीव) क्षेत्रत ग्रहण करता है, क्या (वह जीव) एकप्रदेशावगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है, द्विप्रदेशावगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है, यावत् असंख्येय-प्रदेशावगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

[८७७-४ उ] गौतम ! (वह) न तो एकप्रदेशावगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है, यावत् न संख्यातप्रदेशावगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है, (किन्तु) असंख्यातप्रदेशावगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है ।

[५] जाइं कालओ गेण्हति ताइं किं एगसमयट्ठितीयाइं गेण्हति दुसमयठितीयाइं गेण्हति जाव असंखेज्जसमयठितीयाइं गेण्हति ?

गोयमा ! एगसमयठितीयाइं पि गेण्हति, दुसमयठितीयाइं पि गेण्हति, जाव असंखेज्जसमय-ठितीयाइं पि गेण्हति ।

[८७७-५ प्र] (जीव) जिन (स्थित द्रव्यों) को कालत ग्रहण करता है, क्या (वह) एक समय की स्थिति वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है, दो समय की स्थिति वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है ? यावत् असंख्यात समय की स्थिति वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

[८७७-५ उ] गौतम ! (वह) एक समय की स्थिति वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है, दो समय की स्थिति वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है, यावत् असंख्यात समय की स्थिति वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है ।

[६] जाइं भावओ गेण्हति ताइं किं वण्णमंताइं गेण्हति गंधमंताइं गेण्हति रसमंताइं गेण्हति फासमंताइं गेण्हति ?

गोयमा ! वण्णमंताइं पि गेण्हति जाव फासमंताइं पि गेण्हति ।

[८७७-६ प्र] (जीव) जिन (स्थित द्रव्यों) को भावत ग्रहण करता है, क्या वह वर्ण वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है, गन्ध वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है, रस वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है अथवा स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

[८७७-६ उ] गौतम ! (वह) वर्ण वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है, गन्ध वाले द्रव्यों को भी यावत् स्पर्श वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है ।

[७] जाइं भावओ वण्णमंताइं गेण्हति ताइं किं एगवण्णाइं गेण्हति जाव पंचवण्णाइं गेण्हति ?

गोयमा ! गहणदव्वाइं पडुच्च एगवण्णाइं पि गेण्हति जाव पंचवण्णाइं पि गेण्हति, सव्वग्गहणं पडुच्च णियमा पंचवण्णाइं गेण्हति, तं जहा कालाइं नीलाइं लोहियाइं हालिद्दाइं सुक्किलाइं ।

[८७७-७ प्र] भावत जिन वर्णवान् (स्थित) द्रव्यों को (जीव) ग्रहण करता है क्या (वह) एक वर्ण वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है, यावत् पांच वर्ण वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

[८७७-७ उ] गौतम ! ग्रहण (ग्राह्य) द्रव्यों की अपेक्षा से (वह) एक वर्ण वाले द्रव्यों को

भी ग्रहण करता है, यावत् पाच वर्ण वाले द्रव्यो को भी ग्रहण करता है। (किन्तु) सर्वग्रहण की अपेक्षा से (वह) नियमतः पाच वर्णों वाले द्रव्यो को ग्रहण करता है। जैसे कि—काले, नीले, लाल, पीले और शुक्ल (सफेद)।

[८] जाइं वण्णग्रो कालाइ गेण्हति ताइ किं एगगुणकालाइं गेण्हति जाव अणंतगुणकालाइं गेण्हति ?

गोयमा ! एगगुणकालाइं पि गेण्हति जाव अणतगुणकालाइं पि गेण्हति। एव जाव सुक्किलाइं पि।

[८७७-८ प्र.] भगवन् ! वर्ण से काले जिन (स्थित द्रव्यो) को (जीव) ग्रहण करता है, क्या (वह) उन एकगुण काले द्रव्यो को ग्रहण करता है ? अथवा यावत् अनन्तगुण काले द्रव्यो को ग्रहण करता है ?

[८७७-८ उ] गौतम ! (वह) एकगुणकृष्ण (भाषाद्रव्यो) को भी ग्रहण करता है और यावत् अनन्तकृष्ण (भाषाद्रव्यो) को भी ग्रहण करता है। इसी प्रकार यावत् शुक्ल वर्ण तक के ग्राह्य भाषाद्रव्यो के ग्रहण के विषय मे भी कहना चाहिए।

[९] जाइ भावग्रो गधमताइ गेण्हति ताइ किं एगगंधाइं गेण्हति दुगंधाइं गेण्हति ?

गोयमा ! गहणदव्वाइ पडुच्च एगगधाइ पि गेण्हति दुगंधाइ पि गेण्हति, सव्वग्गहणं पडुच्च नियमा दुगधाइ गेण्हति।

[८७७-९ प्र] भावत. जिन गन्धवान् भाषाद्रव्यो को (जीव) ग्रहण करता है, क्या (वह) एक गन्ध वाले द्रव्यो को ग्रहण करता है ? या दो गन्ध वाले द्रव्यो को ग्रहण करता है ?

[८७७-९ उ] गौतम ! ग्रहण द्रव्यो की अपेक्षा से (वह) एक गन्ध वाले (भाषाद्रव्यो को) भी ग्रहण करता है, तथा दो गन्ध वाले (द्रव्यो को) भी ग्रहण करता है, (किन्तु) सर्वग्रहण की अपेक्षा से नियमत दो गन्ध वाले द्रव्यो को ग्रहण करता है।

[१०] जाइ गधग्रो सुब्भिगधाइ गेण्हति ताइ किं एगगुणसुब्भिगधाइ गेण्हति जाव अणतगुणसुब्भिगधाइं गेण्हति ?

गोयमा ! एगगुणसुब्भिगधाइ पि गेण्हति जाव अणंतगुणसुब्भिगधाइ पि गेण्हति। एवं दुब्भिगधाइ पि गेण्हति।

[८७७-१० प्र] (भगवन् !) गन्ध से सुगन्ध वाले जिन (भाषाद्रव्यो) को (जीव) ग्रहण करता है, क्या (वह) एकगुण सुगन्ध वाले (भाषाद्रव्यो को) ग्रहण करता है, (अथवा) यावत् अनन्तगुण सुगन्ध वाले (भाषाद्रव्यो को) ग्रहण करता है ?

[८७७-१० उ.] गौतम ! (वह) एकगुण सुगन्ध वाले (भाषाद्रव्यो को) भी ग्रहण करता है, यावत् अनन्तगुण सुगन्ध वाले (भाषाद्रव्यो को) भी ग्रहण करता है। इसी तरह वह एकगुण दुर्गन्ध वाले (भाषाद्रव्यो को) भी ग्रहण करता है, यावत् अनन्तगुण दुर्गन्ध वाले (भाषाद्रव्यो को) भी ग्रहण करता है।

[११] जाइं भावतो रसमंताइं गेण्हति ताइं किं एगरसाइं गेण्हति ? जाव किं पंचरसाइं गेण्हति ?

गोयमा ! गहणदव्वाइं पडुच्च एगरसाइं पि गेण्हति जाव पंचरसाइं पि गेण्हति, सव्वगहणं पडुच्च णियमा पंचरसाइं गेण्हति ।

[८७७-११प्र] भावत. रस वाले जिन भाषाद्रव्यो को जीव ग्रहण करता है, क्या वह एक रस वाले (भाषाद्रव्यो को) ग्रहण करता है, (अथवा) यावत् पाच रस वाले (द्रव्यो को) ग्रहण करता है ?

[८७७-११ उ] गौतम ! ग्रहणद्रव्यो की अपेक्षा से (वह) एक रस वाले (भाषाद्रव्यो को) भी ग्रहण करता है, यावत् पाच रस वाले द्रव्यो को भी ग्रहण करता है; किन्तु सर्वग्रहण की अपेक्षा से नियमत· पांच रस वाले भाषाद्रव्यो को ग्रहण करता है ।

[१२] जाइं रसतो तित्तरसाइं गेण्हति ताइं किं एगगुणतित्तरसाइं गेण्हति जाव अणंतगुण-तित्तरसाइं गेण्हति ?

गोयमा ! एगगुणतित्तरसाइं पि गेण्हति जाव अणंतगुणतित्तरसाइं पि गेण्हति । एवं जाव महुरो रसो ।

[८७७-१२ प्र] रस से तिक्त (तीखे) रस वाले जिन (भाषाद्रव्यो) को ग्रहण करता है, क्या (वह) उन एकगुण तिक्तरस वाले (भाषाद्रव्यो को) ग्रहण करता है, यावत् (अथवा) अनन्तगुण तिक्तरस वाले (भाषाद्रव्यो को) ग्रहण करता है ?

[८७७-१२ उ] गौतम ! (वह) एकगुण तिक्तरस वाले (भाषाद्रव्यो को) भी ग्रहण करता है, यावत् अनन्तगुण तिक्तरस वाले (द्रव्यो को) भी ग्रहण करता है । इसी प्रकार यावत् मधुर रस वाले भाषाद्रव्यो के ग्रहण के विषय मे कहना चाहिए ।

[१३] जाइं भावतो फासमंताइं गेण्हति ताइं किं एगफासाइं गेण्हति, जाव अट्ठफासाइं गेण्हति ?

गोयमा ! गहणदव्वाइं पडुच्च णो एगफासाइं गिण्हति, दुफासाइं गिण्हति जाव चउफासाइं पि गेण्हति, णो पंचफासाइं गेण्हति, जाव णो अट्ठफासाइं पि गेण्हति । सव्वग्गहणं पडुच्च णियमा चउफासाइं गेण्हति । तं जहा—सीयफासाइं गेण्हति, उसिणफासाइं गेण्हति, णिद्धफासाइं गेण्हति, लुक्ख-फासाइं गेण्हति ।

[८७७-१३ प्र] भावत: जिन स्पर्श वाले भाषाद्रव्यो को (जीव) ग्रहण करता है, (तो) क्या (वह) एक स्पर्श वाले (भाषाद्रव्यो को) ग्रहण करता है, (अथवा) यावत् आठ स्पर्श वाले भाषाद्रव्यो को ग्रहण करता है ?

[८७७-१३ उ.] गौतम ! ग्रहणद्रव्यो की अपेक्षा से एक स्पर्श वाले द्रव्यो को ग्रहण नही करता, दो स्पर्श वाले भाषाद्रव्यो को ग्रहण करता है, यावत् चार स्पर्श वाले द्रव्यो को ग्रहण करता है, किन्तु पाच स्पर्श वाले द्रव्यो को ग्रहण नही करता, यावत् आठ स्पर्श वाले भाषाद्रव्यो को ग्रहण नही करता । सर्वग्रहण की अपेक्षा से नियमत चार स्पर्श वाले (चतु स्पर्शी) भाषाद्रव्यो को (वह)

ग्रहण करता है, वे चार स्पर्श वाले द्रव्य इस प्रकार हैं—शीतस्पर्श वाले (द्रव्यों को) ग्रहण करता है, उष्णस्पर्श वाले (द्रव्यों को) ग्रहण करता है, स्निग्ध (चिकने) स्पर्श वाले (द्रव्यों को) ग्रहण करता है, और रूक्षस्पर्श वाले (द्रव्यों को) ग्रहण करता है।

[१४] जाइं फासओ सीयाइं गेण्हति ताइं किं एगगुणसीयाइं गेण्हति जाव अणंतगुणसीयाइं गेण्हति ?

गोयमा ! एगगुणसीयाइं पि गेण्हति जाव अणंतगुणसीयाइं पि गेण्हति। एवं उसिण-णिद्ध-लुक्खाइं जाव अणंतगुणाइं पि गिण्हति।

[८७७-१४ प्र] स्पर्श से जिन शीतस्पर्श वाले भाषाद्रव्यों को (जीव) ग्रहण करता है, क्या (वह) एकगुण शीतस्पर्श वाले (भाषाद्रव्यों को) ग्रहण करता है, (अथवा) यावत् अनन्तगुण शीत-स्पर्श वाले (भाषाद्रव्यों को) ग्रहण करता है ?

[८७७-१४ उ] गौतम ! (वह) एकगुण शीत द्रव्यों को भी ग्रहण करता है, यावत् अनन्त-गुण शीतस्पर्श वाले (भाषाद्रव्यों को) भी ग्रहण करता है। इसी प्रकार उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श वाले (भाषाद्रव्यों के ग्रहण करने के विषय में), अनन्तगुण उष्णादि स्पर्श वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है (तक कहना चाहिए।)

[१५] जाइं भंते ! जाव अणंतगुणलुक्खाइं गेण्हति ताइं किं पुट्ठाइं गेण्हति अपुट्ठाइं गेण्हति ?

गोयमा ! पुट्ठाइं गेण्हति, णो अपुट्ठाइं गेण्हति।

[८७७-१५ प्र] भगवन् ! जिन एकगुण कृष्णवर्ण से लेकर अनन्तगुण रूक्षस्पर्श तक के (भाषा) द्रव्यों को (जीव) ग्रहण करता है, क्या (वह) उन स्पृष्ट द्रव्यों को ग्रहण करता है, अथवा अस्पृष्ट द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

[८७७-१५ उ] गौतम ! (वह) स्पृष्ट भाषाद्रव्यों को ग्रहण करता है, अस्पृष्ट द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता।

[१६] जाइं भंते ! पुट्ठाइं गेण्हति ताइं किं ओगाढाइं गेण्हति अणोगाढाइं गिण्हति ?

गोयमा ! ओगाढाइं गेण्हति, णो अणोगाढाइं गेण्हति।

[८७७-१६ प्र] भगवन् ! जिन स्पृष्ट द्रव्यों को जीव ग्रहण करता है, क्या वह अवगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है, अथवा अनवगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

[८७७-१६ उ] गौतम ! वह अवगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है, अनवगाढ द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता।

[१७] जाइं भंते ! ओगाढाइं गेण्हति ताइं किं अणंतरोगाढाइं गेण्हति, परंपरोगाढाइं गेण्हति ?

गोयमा ! अणंतरोगाढाइं गेण्हति, णो परंपरोगाढाइं गेण्हति।

[८७७-१७ प्र] भगवन् ! (जीव) जिन अवगाढ द्रव्यो को ग्रहण करता है, क्या (वह) उन अनन्तरावगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है, अथवा परम्परावगाढ द्रव्यो को ग्रहण करता है ?

[८७७-१७ उ] गौतम ! (वह) अनन्तरावगाढ द्रव्यो को ग्रहण करता है, किन्तु परम्परा-वगाढ द्रव्यो को ग्रहण नही करता ।

[१८] जाइं भंते ! अणतरोगाढाइ गेण्हति ताइं किं अणूइ गेण्हति ? बादराइं गेण्हति ?

गोयमा ! अणूइं पि गेण्हइ बादराइं पि गेण्हति ।

[८७७-१८ प्र] भगवन् (जीव) जिन अनन्तरावगाढ द्रव्यो को ग्रहण करता है, क्या (वह) अणुरूप द्रव्यो को ग्रहण करता है, अथवा बादर द्रव्यो को ग्रहण करता है ?

[८७७-१८ उ] गौतम ! (वह) अणुरूप द्रव्यो को भी ग्रहण करता है और बादर द्रव्यो को भी ग्रहण करता है ।

[१९] जाइं भते ! अणूइं पि गेण्हति बायराइं पि गेण्हति ताइं किं उड्ढं गेण्हति ? अहे गेण्हति ? तिरियं गेण्हति ?

गोयमा ! उड्ढ पि गिण्हति, अहे वे गिण्हति, तिरियं पि गेण्हति ।

[८७७-१९ प्र] भगवन् जिन अणुद्रव्यो को (जीव) ग्रहण करता है, क्या उन्हे (वह) ऊर्ध्व (दिशा मे) स्थित द्रव्यो को ग्रहण करता है, अध (नीचे) दिशा अथवा तिर्यक् दिशा मे स्थित द्रव्यो को ग्रहण करता है ?

[८७७-१९ उ] गौतम ! (वह) अणुद्रव्यो को ऊर्ध्व दिशा मे, अध (नीचे) दिशा में और तिरछी दिशा मे स्थित द्रव्यो को ग्रहण करता है ।

[२०] जाइं भते ! उड्ढं पि गेण्हति अहे वि गेण्हति तिरियं पि गेण्हति ताइ किं आइं गेण्हति ? मज्झे गेण्हति ? पज्जवसाणे गेण्हति ?

गोयमा ! आइ पि गेण्हति, मज्झे वि गेण्हति, पज्जवसाणे वि गेण्हति ।

[८७७-२० प्र] भगवन् ! (जीव) जिन (अणुद्रव्यो) को ऊर्ध्व, अध और तिर्यक् दिशा मे स्थित द्रव्यो को ग्रहण करता है, क्या वह उन्हे आदि (प्रारम्भ) मे ग्रहण करता है, मध्य मे ग्रहण करता है, अथवा अन्त में ग्रहण करता है ?

[८७७-२० उ] गौतम ! वह उन (ऊर्ध्वादिगृहीत द्रव्यो) को आदि मे भी ग्रहण करता है, मध्य मे भी ग्रहण करता है और पर्यवसान (अन्त) मे भी ग्रहण करता है ।

[२१] जाइ भंते ! आइं पि गेण्हति मज्झे वि गेण्हति पज्जवसाणे वि गेण्हति ताइं किं सविसए गेण्हति ? अविसए गेण्हति ?

गोयमा ! सविसए गेण्हति, णो अविसए गेण्हति ।

[८७७-२१ प्र.] जिन (भाषा) को जीव आदि, मध्य और अन्त मे ग्रहण करता है,

क्या वह उन स्वविषयक (स्पृष्ट, अवगाढ एवं अनन्तरावगाढ) द्रव्यो को ग्रहण करता है अथवा अविषयक (अस्वगोचर) द्रव्यो को ग्रहण करता है ?

[८७७-२१उ.] गौतम ! वह स्वविषयक (स्वगोचर)द्रव्यो को ग्रहण करता है, किन्तु अविषयक (अस्वगोचर) द्रव्यो को ग्रहण नही करता।

[२२] जाइं भंते ! सविसए गेण्हति ताइं किं आणुपुव्वि गेण्हति ? अणाणुपुव्वि गेण्हति ?

गोयमा ! आणुपुव्वि गेण्हति, णो अणाणुपुव्वि गेण्हति ।

[८७७-२२ प्र] भगवन् ! जिन स्वविषयक द्रव्यो को जीव ग्रहण करता है, क्या वह उन्हें आनुपूर्वी से ग्रहण करता है, अथवा अनानुपूर्वी से ग्रहण करता है ?

[८७७-२२ उ] गौतम ! (वह उन स्वगोचर द्रव्यो को) आनुपूर्वी से ग्रहण करता है, अनानुपूर्वी से ग्रहण नही करता।

[२३] जाइं भंते ! आणुपुव्वि गेण्हति ताइं किं तिदिसिं गेण्हति जाव छद्दिसिं गेण्हति ?

गोयमा ! णियमा छद्दिसिं गेण्हति ।

पुट्ठोगाढ अणंतर अणू य तह बायरे य उड्डमहे ।
आदि विसयाऽऽणुपुव्वि णियमा तह छद्दिसिं चेव ॥१९८॥

[८७७-२३ प्र] भगवन् ! जिन द्रव्यो को जीव आनुपूर्वी से ग्रहण करता है, क्या उन्हे तीन दिशाओ से ग्रहण करता है, यावत् (अथवा) छह दिशाओं से ग्रहण करता है ?

[८७७-२३ उ] गौतम ! (वह) उन द्रव्यो को नियमत छह दिशाओ से ग्रहण करता है।

[संग्रहणीगाथार्थ] स्पृष्ट अवगाढ, अनन्तरावगाढ, अणु तथा बादर, ऊर्ध्व, अध , आदि, स्वविषयक, आनुपूर्वी तथा नियम से छह दिशाओ से (भाषायोग्य द्रव्यों को जीव ग्रहण करता है।)

८७८ जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गेण्हति ताइं किं संतरं गेण्हति ? निरंतरं गेण्हति ?

गोयमा ! संतरं पि गेण्हति निरंतरं पि गेण्हति । संतरं गिण्हमाणे जहण्णेण एग समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जसमए अंतरं कट्टु गेण्हति । निरंतरं गिण्हमाणे जहण्णेणं दो समए, उक्कोसेणं असंखेज्जसमए अणुसमय अविरहियं निरंतरं गेण्हति ।

[८७८ प्र] भगवन् ! जिन द्रव्यो को जीव भाषा के रूप मे ग्रहण करता है, क्या (वह) उन्हे सान्तर (बीच-बीच मे कुछ समय का व्यवधान डाल कर या बीच-बीच मे रुक कर) ग्रहण करता है या निरन्तर (लगातार) ग्रहण करता रहता है ?

[८७८ उ.] गौतम ! वह उन द्रव्यो को सान्तर भी ग्रहण करता है और निरन्तर भी ग्रहण करता है। सान्तर ग्रहण करता हुआ (जीव) जघन्यत: एक समय का तथा उत्कृष्टत: असख्यात समय का अन्तर करके ग्रहण करता है और निरन्तर ग्रहण करता हुआ जघन्य दो समय तक और उत्कृष्ट असख्यात समय तक प्रतिसमय बिना विरह (विराम) के लगातार ग्रहण करता है।

८७९. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गहियाइं णिसिरति ताइं किं संतरं णिसिरति णिरंतरं णिसिरति ?

गोयमा ! संतरं णिसिरति, णो णिरंतर णिसिरति । संतरं णिसिरमाणे एगेणं समएणं गेण्हइ एगेण समएण णिसिरति,

०	नि	नि	नि	नि	नि	नि	नि
ग्र	ग्र	ग्र	ग्र	ग्र	ग्र	ग्र	०

एएणं गहण-णिसिरणोवाएणं जहण्णेणं दुसमइयं उक्कोसेणं असंखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं गहण-णिसिरणोवाय (णिसिरणं) करेति ।

[८७९ प्र] भगवन् ! जिन द्रव्यो को जीव भाषा के रूप मे ग्रहण करके निकालता है (त्यागता है), क्या वह उन्हे सान्तर निकालता है या निरन्तर निकालता है ?

[८७९ उ] गौतम ! (वह उन्हे) सान्तर निकालता है, निरन्तर नही निकालता (त्यागता) । सान्तर निकालता हुआ जीव एक समय मे (उन भाषायोग्य द्रव्यो को) ग्रहण करता है और एक समय से निकालता (त्यागता) है। इस ग्रहण और नि:सरण के उपाय से जघन्य दो समय के और उत्कृष्ट असख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त तक ग्रहण और नि सरण करता है।

विवेचन—जीव द्वारा ग्रहणयोग्य भाषाद्रव्यों के विभिन्न रूप—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ८७७ से ८७९ तक) मे जीव ग्राह्य स्थित भाषाद्रव्यो को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से किन-किन रूपो मे, कैसे-कैसे ग्रहण करता है, इसकी सांगोपाग चर्चा की गई है ।

मुखादि से बाहर निकालने से पूर्व ग्राह्य भाषाद्रव्यों के विभिन्न रूप—यह तो पहले बताया जा चुका है कि जीव भाषा निकालने से पूर्व भाषा के रूप मे परिणत करने के लिए भाषाद्रव्यो को अर्थात् भाषावर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करता है । इन तीन सूत्रो मे इन्ही ग्राह्य भाषाद्रव्यो की चर्चा का निष्कर्ष क्रमश. इस प्रकार है—

(१) जीव स्थित (स्थिर, हलन-चलन से रहित) द्रव्यो को ग्रहण करता है, अस्थिर (गमन-क्रियायुक्त) द्रव्यो को नही ।

(२) वह स्थित द्रव्यो को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से ग्रहण करता है ।

(३) द्रव्य से, एकप्रदेशी (एक परमाणु) से लेकर असख्यातप्रदेशी भाषाद्रव्यो को ग्रहण नही करता, क्योकि वे स्वभावत· अग्राह्य होते है, किन्तु अनन्तप्रदेशी द्रव्यो को ही ग्रहण करता है, क्योकि अनन्त परमाणुओ से बना हुआ स्कन्ध ही जीव द्वारा ग्राह्य होता है ।

(४) क्षेत्र से, भाषा रूप मे परिणमन करने के लिए ग्राह्य भाषाद्रव्य आकाश के एक प्रदेश से लेकर सख्यात प्रदेशो मे अवगाह वाले नही होते, किन्तु असख्यात प्रदेशो मे अवगाढ होते है ।

(५) काल से, वह एक समय की स्थिति वाले भाषाद्रव्यो से लेकर असख्यात समय की स्थिति वाले भाषाद्रव्यो तक को ग्रहण करता है, क्योकि पुद्गलो (अनन्तप्रदेशी स्कन्ध) की अवस्थिति (हलन-चलन से रहितता) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट असख्यातसमय तक रहती है ।

(६) भाव से, भाषा रूप मे ग्राह्य द्रव्य वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले होते है ।

(७) भावत. वर्ण वाले जिन भाषाद्रव्यो को ग्रहण करता है, वे ग्रहणयोग्य पृथक्-पृथक्

द्रव्यापेक्षया कोई एक, कोई दो, यावत् कोई पांच वर्णों से युक्त होते हैं, किन्तु सर्वग्रहणापेक्षया अर्थात् ग्रहण किए हुए समस्त द्रव्यों के समुदाय की अपेक्षा से वे नियमत. पांच वर्णों से युक्त होते है।

(८) वर्ण की अपेक्षा से भाषारूप में परिणत करने हेतु एकगुण कृष्ण से लेकर अनन्तगुण कृष्ण भाषाद्रव्यों को ग्रहण करता है। इसी प्रकार नील, रक्त, पीत, शुक्ल वर्णों के विषय मे समझ लेना चाहिए।

(९) ग्रहणयोग्यद्रव्यापेक्षया एक गन्ध वाले एव दो गन्ध वाले द्रव्यो को भी ग्रहण करता है, किन्तु सर्वग्रहणापेक्षया दो गन्धवाले द्रव्यो को ही ग्रहण करता है।

(१०) एक गुण सुगन्ध वाले से लेकर यावत् अनन्तगुण सुगन्ध वाले भाषाद्रव्यो को ग्रहण करता है, तथैव एकगुण दुर्गन्ध से लेकर अनन्तगुण दुर्गन्ध तक के भाषापुद्गलो को ग्रहण करता है।

(११) ग्रहणयोग्य द्रव्यो की अपेक्षा से एक रस वाले भाषाद्रव्यो को भी ग्रहण करता है, किन्तु सर्वग्रहणापेक्षया नियमत. पाच रसो वाले भाषाद्रव्यो को ग्रहण करता है।

(१२) भाषा के रूप मे परिणत करने हेतु एकगुण तिक्तरस वाले से लेकर अनन्तगुण तिक्त-रस वाले भाषाद्रव्यो तक को ग्रहण करता है। इसी प्रकार कटु, कषाय, अम्ल और मधुर रसो वाले भाषाद्रव्यो के विषय मे समझना चाहिए।

(१३) भावत स्पर्श वाले जिन द्रव्यो को भाषारूप मे परिणत करने हेतु जीव ग्रहण करता है, वे भाषाद्रव्य ग्रहणद्रव्यापेक्षया एकस्पर्शी नही होते, क्योकि एक परमाणु मे दो स्पर्श अवश्य होते हैं।[1] अत वे द्रव्य द्विस्पर्शी, त्रिस्पर्शी या चतु स्पर्शी होते है। किन्तु पचस्पर्शी से लेकर अष्टस्पर्शी तक नही होते। सर्वग्रहण की अपेक्षा से नियमत. शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष चतु स्पर्शी भाषाद्रव्यो को ग्रहण करता है।

(१४) शीतस्पर्श वाले जिन भाषाद्रव्यो को भाषारूप मे परिणत करने हेतु जीव ग्रहण करता है, वे एकगुण शीतस्पर्श वाले यावत् अनन्तगुण शीतस्पर्श वाले होते है। इसी प्रकार उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श वाले भाषा द्रव्यो के विषय मे समझना चाहिए।

(१५) एकगुण कृष्णवर्ण से लेकर अनन्तगुण रूक्षस्पर्श तक के जिन द्रव्यो को जीव भाषा के रूप परिणत करने के लिए ग्रहण करता है, वे द्रव्य आत्मप्रदेशो के साथ स्पृष्ट होते है, अस्पृष्ट नही तथा वह अवगाढ द्रव्यो (जिन आकाशप्रदेशो मे जीव के प्रदेश है, उन्ही आकाशप्रदेशो मे अवस्थित भाषाद्रव्यो) को ग्रहण करता है, अनवगाढ द्रव्यो को नही; विशेषत अनन्तरावगाढ (व्यवधानरहित) द्रव्यो को ही ग्रहण करता है, परम्परावगाढ (व्यवहितरूप से अवस्थित) द्रव्यो को नही तथा अनन्तरावगाढ जिन द्रव्यो को जीव ग्रहण करता है, वे अणु (थोडे प्रदेशो वाले स्कन्ध) भी होते है और बादर (बहुत प्रदेशो से उपचित) भी होते हैं। फिर जितने क्षेत्र मे जीव के ग्रहणयोग्य भाषाद्रव्य अवस्थित हैं, उतने ही क्षेत्र मे जीव उन अणुरूप द्रव्यो को ऊर्ध्वदिशा, अधो-दिशा और तिर्यग्दिशा से भी ग्रहण करता है तथा उन्हे आदि (प्रथम समय) मे भी ग्रहण करता है, मध्य (द्वितीय आदि समयो) मे भी ग्रहण करता है और अन्त (ग्रहण के उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-प्रमाणकाल रूप मे अन्तिम समय) मे भी ग्रहण करता है। इस प्रकार के वे भाषाद्रव्य स्वविषय

---

१ कारणमेव तदन्त्य सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणु । एकरसगन्धवर्णो द्विस्पर्श कार्यलिंगश्च ॥

(स्वगोचर अर्थात्—स्पृष्ट, अवगाढ और अनन्तरावगाढरूप) होते हैं, अविषय (स्व के अगोचर अर्थात् -स्पृष्ट, अवगाढ और अनन्तरावगाढ से भिन्न रूप) नही होते तथा उन द्रव्यो को भी जीव आनुपूर्वी से (अनुक्रम से—ग्रहण की अपेक्षा सामीप्य के अनुसार) ग्रहण करता है, अनानुपूर्वी से (आसन्नता का उल्लघन करके) नही एव नियम से छह दिशाओ से आए हुए भाषाद्रव्यो को ग्रहण करता है, क्योंकि नियमत त्रसनाड़ी मे अवस्थित भाषक त्रसजीव छहो दिशाओ के द्रव्यो का ग्रहण करता है।

(१६) जीव जिन द्रव्यो को भाषा के रूप मे ग्रहण करता है, उन्हे सान्तर (बीच मे कुछ समय का व्यवधान डाल कर अथवा रुक-रुककर) भी ग्रहण करता है और निरन्तर (लगातार—बीच-बीच मे व्यवधान डाले बिना) भी ग्रहण करता है। अगर जीव भाषाद्रव्यो को सान्तर ग्रहण करे तो जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट असख्यात समयो का अन्तर करके ग्रहण करता है। यदि कोई लगातार बोलता रहे तो उसकी अपेक्षा से जघन्य एक समय का अन्तर समझना चाहिए। जैसे—कोई वक्ता प्रथम समय मे भाषा के जिन पुद्गलो को ग्रहण करता है, दूसरे समय मे उनको निकालता तथा दूसरे समय मे गृहीत पुद्गलो को तीसरे समय मे निकालता है। इस प्रकार प्रथम समय मे सिर्फ ग्रहण होता है, बीच के समयो मे ग्रहण और निसर्ग, दोनो होते है, अन्तिम समय मे सिर्फ निसर्ग होता है। भाषापुद्गलो का ग्रहण और निसर्ग, ये दोनो परस्पर विरोधी कार्य एक समय मे कैसे हो सकते है?[१] इस शका का समाधान यह है कि यद्यपि जैनसिद्धान्तानुसार एक समय मे दो उपयोग सम्भव नही हैं। किन्तु एक समय मे क्रियाएँ तो अनेक हो सकती हैं, उनके होने मे कोई विरोध भी नही। एक ही समय मे एक नर्तकी भ्रमणादि क्रिया करती हुई, हाथो-पैरो आदि से विविध प्रकार की क्रियाएँ करती है, यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। सभी वस्तुओ का एक ही समय मे उत्पाद और व्यय देखा जाता है, इसी प्रकार भाषाद्रव्यो के ग्रहण और निसर्ग के परस्पर विरोधी प्रयत्न भी एक ही समय मे हो सकते है। इसलिए कहा गया है कि भाषाद्रव्यो को जीव बिना व्यवधान के निरन्तर ग्रहण करता रहे तो जघन्य दो समय तक और उत्कृष्ट असख्यात समयो तक निरतर ग्रहण करता है। कोई असख्यात समयो तक एक ही ग्रहण न समझ ले, इस भ्रान्ति के निवारणार्थ 'अनुसमय' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है—'एक समय के पश्चात्'। कोई व्यक्ति बीच मे व्यवधान होने पर भी 'अनुसमय' समझ सकता है, इस भ्रमनिवारण के लिए 'अविरहित' शब्द प्रयुक्त किया है। इस प्रकार प्रथम समय मे ग्रहण ही होता है, निसर्ग नही, क्योकि बिना ग्रहण के निसर्ग सम्भव नही। और अन्तिम मे भाषा का अभिप्राय उपरत हो जाने से ग्रहण नही होता, केवल निसर्ग ही होता है। शेष (बीच के) दूसरे, तीसरे आदि समयो मे ग्रहण-निसर्ग दोनो साथ-साथ होते है। किन्तु पूर्व समय मे गृहीत पुद्गल उसके पश्चात् के उत्तर समय मे ही छोडे जाते है। ऐसा नही होता कि जिन पुद्गलो को जिस समय मे ग्रहण किया, उसी समय मे निसर्ग भी हो जाए।

(१७) भाषा के रूप मे गृहीत द्रव्यो को जीव सान्तर निकालता है, निरन्तर नही, क्योकि जिस समय मे जिन भाषाद्रव्यो को जीव ग्रहण करता है, उसी समय मे उन द्रव्यो को नही निकालता अर्थात् प्रथम समय मे गृहीत भाषाद्रव्यो को प्रथम समय मे नही, किन्तु दूसरे समय मे और दूसरे समय मे गृहीत द्रव्यों को तीसरे समय मे निकालता है, इत्यादि। निष्कर्ष यह है कि पूर्व मे गृहीत द्रव्यो को

---

१ गहणनिसग्गपयत्ता परोप्परविरोहिणो कह समये? समय दो उवओगा, न होज्ज, किरियाण को दोसो?
—भाष्यकार

अगले-अगले समय मे निकालता है। पहले ग्रहण होने पर ही निसर्ग का होना सम्भव है, अगृहीत का नही। इसीलिए कहा गया है कि निसर्ग सान्तर होता है। ग्रहण की अपेक्षा से ही निसर्ग को सान्तर कहा गया है। गृहीत द्रव्य का अनन्तर अर्थात् अगले समय मे नियम से निसर्ग होता है। इस दृष्टि से निरन्तर ग्रहण और निसर्ग का काल जघन्य दो समय और उत्कृष्ट असख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त तक का है।[1]

भेद-अभेद-रूप में भाषाद्रव्यों के निःसरण तथा ग्रहणनिःसरण सम्बन्धी प्ररूपणा

८८०. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गहियाइं णिसिरति ताइं किं भिण्णाइं णिसिरति ? अभिण्णाइं णिसिरति ?

गोयमा ! भिण्णाइं पि णिसिरति, अभिण्णाइं पि णिसिरति। जाइं भिण्णाइं णिसिरति ताइं अणंतगुणपरिवड्ढीए परिवड्ढमाणाइं परिवड्ढमाणाइं लोयंतं फुसंति। जाइं अभिण्णाइं णिसिरति ताइं असंखेज्जाओ ओगाहणवग्गणाओ गंता भेयमावज्जंति, संखेज्जाइं जोयणाइं गंता विद्धंसमागच्छंति।

[८८० प्र.] भगवन् ! जीव भाषा के रूप मे गृहीत जिन द्रव्यो को निकालता है, उन द्रव्यो को भिन्न (भेदप्राप्त भेदन किए हुए को) निकालता है, अथवा अभिन्न (भेदन नही किए हुए को) निकालता है ?

[८८० उ] गौतम ! (कोई जीव) भिन्न द्रव्यो को निकालता है, (तो कोई) अभिन्न द्रव्यो को भी निकालता है। जिन भिन्न द्रव्यो को (जीव) निकालता है, वे द्रव्य अनन्तगुणवृद्धि से वृद्धि को प्राप्त होते हुए लोकान्त को स्पर्श करते है तथा जिन अभिन्न द्रव्यो को निकालता है, वे द्रव्य असख्यात अवगाहनवर्गणा तक जा कर भेद को प्राप्त हो जाते है। फिर सख्यात योजनो तक आगे जाकर विध्वस को प्राप्त हो जाते है।

८८१. तेसि णं भंते ! दव्वाणं कतिविहे भेए पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे भेए पण्णत्ते। तं जहा खंडाभेए १ पतराभेए २ चुण्णियाभेए ३ अणुतडियाभेए ४ उक्करियाभेए ५।

[८८१ प्र] भगवन् ! उन द्रव्यो के भेद कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[८८१ उ.] गौतम ! भेद पाच प्रकार के कहे गए हैं ? वे इस प्रकार- (१) खण्डभेद, (२) प्रतरभेद, (३) चूर्णिकाभेद, (४) अनुतटिकाभेद और (५) उत्कटिका (उत्करिका) भेद।

८८२ से किं त खंडाभेए।

२. जण्णं अयखंडाण वा तउखंडाण वा तंबखंडाण वा, सीसगखंडाण वा रययखंडाण वा जायरूवखंडाण वा खंडएण भेदे भवति। से त्तं खंडाभेदे।

[८८२ प्र.] वह (पूर्वोक्त) खण्डभेद किस प्रकार का होता है ?

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २६२ से २६६ तक

(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा. ३, पृ ३४८ से ३७९ तक।

[८८२ उ.] खण्डभेद (वह है), जो (जैसे) लोहे के खडो का, रागे के खडो का, तांबे के खडो का, शीशे के खडो का, चादी के खडो का अथवा सोने के खडो का, खण्डक (टुकड़े करने वाले औजार—हथौड़े आदि) से भेद (टुकड़े) करने पर होता है। यह हुआ उस खण्डभेद (का स्वरूप।)

८८३ से किं तं पयराभेद ?

२. जण्ण वसाण वा वेत्ताण वा णलाण वा कदलिथंभाण वा अब्भपडलाण वा पयरएणं भेए भवति। से त्तं पयराभेदे।

[८८३ प्र.] वह (पूर्वोक्त) प्रतरभेद क्या है ?

[८८३ उ] प्रतरभेद (वह है), जो बासो का, बेतो का, नलो का, केले के स्तम्भो का, अभ्रक के पटलो (परतो)का प्रतर से (भोजपत्रादि की तरह) भेद करने पर होता है। यह है वह प्रतरभेद।

८८४. से किं तं चुण्णियाभेए ?

२. जण्णं तिलचुण्णाण वा मुग्गचुण्णाण वा मासचुण्णाण वा पिप्पलिचुण्णाण वा मिरियचुण्णाण वा सिंगबेरचुण्णाण वा चुण्णियाए भेदे भवति। से त्त चुण्णियाभेदे।

[८८४ प्र] वह (पूर्वोक्त) चूर्णिकाभेद क्या है ?

[८८४ उ] चूर्णिकाभेद (वह है), जो (जैसे) तिल के चूर्णों (चूरो) का, मूग के चूर्णों (चूरे या आटे) का, उडद के चूर्णो (चूरो) का, पिप्पली (पीपल) के चूरो का, कालीमिर्च के चूरो का, चूर्णिका (इमामदस्ते या चक्की आदि) से भेद करने (कूटने या पीसने) पर होता है। यह हुआ उक्त चूर्णिका भेद का स्वरूप।

८८५ से किं त अणुतडियाभेदे ?

२. जण्ण अगडाण वा तलागाण वा दहाण वा णदीण वा वावीण वा पुक्खरिणीण वा दीहियाण वा गुंजालियाण वा सराण वा सरपतियाण वा सरसरपतियाण वा अणुतडियाए भेदे भवति। से त्तं अणुतडियाभेदे।

[८८५ प्र.] वह अनुतटिकाभेद क्या है (कैसा है) ?

[८८५ उ] अनुतटिकाभेद (वह है,) जो कूपो के, तालाबो के, ह्रदो के, नदियो के, बावडियो के, पुष्करिणियो (गोलाकार बावडियो) के, दीर्घिकाओ (लम्बी बावडियो) के, गुजालिकाओ टेढीमेढी बावडियो के, सरोवरो के, पक्तिबद्ध सरोवरो के और नाली के द्वारा जल का सचार होने वाले पक्तिबद्ध सरोवरो के अनुतटिकारूप मे(फट जाने, दरार पड जाने या किनारे घिस या कट जाने से) भेद होता है। यह अनुतटिकाभेद का स्वरूप है।

८८६. से किं तं उक्करियाभेदे ?

२ जण्णं मूसगाण वा मगूसाण वा तिलसिंगाण वा मुग्गसिंगाण वा माससिंगाण वा एरंडबीयाण वा फुडित्ता उक्करियाए भेदे भवति। से त्त उक्करियाभेए।

[८८६ प्र] वह (पूर्वोक्त) उत्कटिकाभेद कैसा होता है ?

[८८६ उ] मूषो-मसूर के, मगूसो (मूगफलियो या चौलाई की फलियो) के, तिल की फलियो के, मूग की फलियो के, उडद की फलियो के अथवा एरण्ड के बीजो के फटने या फाडने से जो भेद होता है, वह उत्कटिकाभेद है। यह उत्कटिका (उत्करिका) भेद का स्वरूप है।

८८७. एएसि णं भंते ! दव्वाणं खंडाभेएणं पयराभेएणं चुण्णियाभेएण अणुतडियाभेदेणं उक्करियाभेदेण य भिज्जमाणाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवाइ दव्वाइ उक्करियाभेएण भिज्जमाणाइ, अणुतडियाभेदेणं भिज्जमाणाइ अणंतगुणाइ, चुण्णियाभेएण भिज्जमाणाइं अणंतगुणाइ पयराभेएणं भिज्जमाणाइ अणतगुणाइं, खंडाभेएणं भिज्जमाणाइं अणतगुणाइं।

[८८७ प्र] भगवन्! खण्डभेद से, प्रतरभेद से, चूर्णिकाभेद से, अनुतटिकाभेद से और उत्कटिकाभेद से भिदने (भिन्न होने) वाले इन भाषाद्रव्यो मे कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[८८७ उ] गौतम! सबसे थोडे भाषाद्रव्य उत्कटिकाभेद से भिन्न होते है, उनसे अनन्तगुणे अनुतटिकाभेद से भिन्न होते है, उनकी अपेक्षा चूर्णिकाभेद से भिन्न होने वाले अनन्तगुणे हैं, उनसे अनन्तगुणे प्रतरभेद से भिन्न होने वाले और उनसे भी अनन्तगुणे अधिक खण्डभेद से भिन्न होने वाले द्रव्य हैं।

८८८. [१] णेरइए ण भंते ! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गेण्हति ताइं किं ठियाइं गेण्हति ? अठियाइं गेण्हति ?

गोयमा ! एवं चेव जहा जीवे वत्तव्वया भणिया (सु. ८७७) तहा णेरइयस्सवि जाव अप्पाबहुय।

[८८८-१ प्र] भगवन्! नैरयिक जिन द्रव्यो को भाषा के रूप मे ग्रहण करता है, उन्हे (वह) स्थित (ग्रहण करता) है अथवा अस्थित (ग्रहण करता) है ?

[८८८-१ उ] गौतम! जैसे (औघिक) जीव के विषय मे वक्तव्यता (सू ८७७ मे) कही है, वैसे ही अल्पबहुत्व तक नैरयिक के विषय मे भी कहना चाहिए।

[२] एवं एगिंदियवज्जो दंडओ जाव वेमाणिया।

[८८८-२] इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोड कर यावत् वैमानिको तक दण्डक कहना चाहिए।

८८९. जीवा णं भंते ! जाइ दव्वाइ भासत्ताए गेण्हति ताइ किं ठियाइ गेण्हति ? अठियाइं गेण्हति ?

गोयमा ! एवं चेव पुहुत्तेण वि णेयव्वं जाव वेमाणिया।

[८८९ प्र] जीव जिन द्रव्यो को भाषा के रूप मे ग्रहण करते हैं, क्या (वे) उन स्थित द्रव्यो को ग्रहण करते हैं, अथवा अस्थित द्रव्यो को ग्रहण करते हैं ?

[८८९ उ] गौतम! (वे स्थित भाषाद्रव्यो को ग्रहण करते हैं।) जिस प्रकार एकत्व-

एकवचनरूप में कथन किया गया था, उसी प्रकार पृथक्त्व (बहुवचन के) रूप में (नैरयिकों से लेकर) यावत् वैमानिक तक समझ लेना चाहिए।

८९०. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं सच्चभासत्ताए गेण्हति ताइं किं ठियाइं गेण्हति ? अठियाइं गेण्हति ?

गोयमा ! जहा ओहियदंडओ (सु. ८७७) तहा एसो वि। नवरं विगलेंदिया ण पुच्छिज्जंति। एवं मोसभासाए वि सच्चामोसभासाए वि।

[८९० प्र.] भगवन् ! जीव जिन द्रव्यों को सत्यभाषा के रूप मे ग्रहण करता है, क्या (वह) उन स्थितद्रव्यों को ग्रहण करता है, अथवा अस्थितद्रव्यों को ?

[८९० उ.] गौतम ! जैसे (सू. ८७७ में) औघिक जीवविषयक दण्डक है, वैसे यह दण्डक भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि विकलेन्द्रियों के विषय मे (उनकी भाषा सत्य न होने से) पृच्छा नही करनी चाहिए। जैसे सत्यभाषाद्रव्यों के ग्रहण के विषय मे कहा है, वैसे ही मृषाभाषा के (द्रव्यों) तथा सत्यामृषाभाषा के (द्रव्यों के ग्रहण के विषय मे भी कहना चाहिए।)

८९१. असच्चामोसभासाए वि एवं चेव। नवरं असच्चामोसभासाए विगलिंदिया वि पुच्छिज्जंति इमेणं अभिलावेणं—

विगलिंदिए णं भंते ! जाइं दव्वाइं असच्चामोसभासत्ताए गेण्हति ताइं किं ठियाइं गेण्हति ? अठियाइं गेण्हति ?

गोयमा ! जहा ओहियदंडओ (सु. ८७७)। एवं एते एगत्तपुहत्तेणं दस दंडगा भाणियव्वा।

[८९१] असत्यामृषाभाषा के (द्रव्यों के ग्रहण के) विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि असत्यामृषाभाषा के ग्रहण के सम्बन्ध मे इस अभिलाप के द्वारा विकलेन्द्रियों की भी पृच्छा करनी चाहिए—

[प्र.] भगवन् ! विकलेन्द्रिय जीव जिन द्रव्यों को असत्यामृषाभाषा के रूप मे ग्रहण करता है, क्या वह उन स्थितद्रव्यों को ग्रहण करता है, अथवा अस्थितद्रव्यों को ग्रहण करता है ?

[उ.] गौतम ! जैसे (सू. ८७७ मे) औघिक दण्डक कहा गया है, वैसे ही (यहाँ समझ लेना चाहिए।) इस प्रकार एकत्व (एकवचन) और पृथक्त्व (बहुवचन) के ये दस दण्डक कहने चाहिए।

८९२. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं सच्चभासत्ताए गेण्हति ताइं किं सच्चभासत्ताए णिसिरति ? मोसभासत्ताए णिसिरति ? सच्चामोसभासत्ताए णिसिरति ? असच्चामोसभासत्ताए णिसिरति ?

गोयमा ! सच्चभासत्ताए णिसिरति, णो मोसभासत्ताए णिसिरति, णो सच्चामोसभासत्ताए णिसिरति, णो असच्चामोसभासत्ताए णिसिरति। एवं एगिंदिय-विगलिंदियवज्जो दंडओ जाव वेमाणिए। एवं पुहत्तेण वि।

[८९२ प्र.] भगवन् ! जीव जिन द्रव्यों को सत्यभाषा के रूप मे ग्रहण करता है, क्या उनको

वह सत्यभाषा के रूप मे निकालता है, मृषाभाषा के रूप मे निकालता है, सत्यामृषाभाषा के रूप में निकालता है, अथवा असत्यामृषाभाषा के रूप मे निकालता है ?

[८९२ उ] गौतम ! वह (सत्यभाषा के रूप में गृहीत उन द्रव्यो को) सत्यभाषा के रूप मे निकालता है, किन्तु न तो मृषाभाषा के रूप में निकालता है, न सत्यामृषाभाषा के रूप मे निकालता है, और न ही असत्यामृषाभाषा के रूप में निकालता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड कर (एकवचन का) दण्डक कहना चाहिए तथा इसी तरह पृथक्त्व (बहुवचन) का दण्डक भी कहना चाहिए।

८९३. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं मोसभासत्ताए गेण्हति ताइं किं सच्चभासत्ताए णिसिरति ? मोसभासत्ताए णिसिरति ? सच्चामोसभासत्ताए णिसिरति ? असच्चामोसभासत्ताए णिसिरति ?

गोयमा ! णो सच्चभासत्ताए णिसिरति, मोसभासत्ताए णिसिरति, णो सच्चामोसभासत्ताए णिसिरति, णो असच्चामोसभासत्ताए णिसिरति ।

[८९३ प्र.] भगवन् ! जीव जिन द्रव्यो को मृषाभाषा के रूप मे ग्रहण करता है, क्या उन्हें वह सत्यभाषा के रूप मे निकालता है ? अथवा मृषाभाषा के रूप मे निकालता है ? या सत्यामृषा भाषा के रूप मे निकालता है ? अथवा असत्यामृषाभाषा के रूप मे निकालता है ?

[८९३ उ] गौतम ! (वह मृषाभाषारूप मे गृहीत द्रव्यो को) सत्यभाषा के रूप मे नही निकालता , किन्तु मृषाभाषा के रूप मे ही निकालता है, तथा सत्यामृषा भाषा के रूप मे नही निकलता और न ही असत्यामृषा भाषा के रूप मे निकलता है।

८९४. एवं सच्चामोसभासत्ताए वि ।

[८९४] इसी प्रकार सत्यामृषाभाषा के रूप मे (गृहीत द्रव्यो के विषय मे भी समझना चाहिए।)

८९५. असच्चामोसभासत्ताए वि एवं चेव । णवरं असच्चामोसभासत्ताए विगलिंदिया तहेव पुच्छिज्जति । जाए चेव गेण्हति ताए चेव णिसिरति । एवं एते एगत्त-पुहत्तिया अट्ठ दंडगा भाणियव्वा ।

[८९५] असत्यामृषाभाषा के रूप मे गृहीत द्रव्यो के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेषता यह है कि असत्यामृषाभाषा के रूप मे गृहीत द्रव्यो के विषय मे विकलेन्द्रियो की भी पृच्छा उसी प्रकार (पूर्ववत्) करनी चाहिए। (सिद्धान्त यह है कि) जिस भाषा के रूप मे द्रव्यो को ग्रहण करता है, उसी भाषा के रूप मे ही द्रव्यो को निकालता है। इस प्रकार एकत्व (एकवचन) और पृथक्त्व (बहुवचन) के ये (कुल मिला कर) आठ दण्डक कहने चाहिए।

विवेचन —भाषाद्रव्यो के भेद-अभेदरूप में निःसरण तथा ग्रहण-निःसरण के विषय में प्ररूपणा— प्रस्तुत सोलह सूत्रो (८८० से ८९५ तक) मे भाषाद्रव्यो के भिन्न तथा अभिन्न रूप मे नि.सरण, भेदों के अल्पबहुत्व तथा भाषाद्रव्यो के ग्रहण-नि.सरण के विषय मे प्ररूपणा की गई है।

नैरयिक आदि के विषय में अतिदेश—नैरयिक जिन द्रव्यो को भाषा के रूप मे ग्रहण करता है, वे स्थित (स्थिर) होते है या अस्थित (संचरणशील) ? इस प्रश्न के पूछे जाने पर शास्त्रकार अति-

देश करते हुए कहते हैं—स्थित-अस्थित द्रव्यों के ग्रहण की प्ररूपणा से लेकर अल्पबहुत्व तक की जैसी प्ररूपणा समुच्चय जीव के विषय में की है, वैसी ही प्ररूपणा नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त (एकेन्द्रिय को छोडकर) करनी चाहिए।

भिन्न-अभिन्न भाषाद्रव्यों के निःसरण की व्याख्या—वक्ता दो प्रकार के होते हैं, तीव्रप्रयत्न वाले और मन्दप्रयत्न वाले। जो वक्ता रोगग्रस्तता, जराग्रस्तता या अनादरभाव के कारण मन्द-प्रयत्न वाला होता है, उसके द्वारा निकाले हुए भाषाद्रव्य अभिन्न—स्थूलखण्डरूप एव अव्यक्त होते है। जो वक्ता नीरोग, बलवान् एव आदरभाव के कारण तीव्रप्रयत्नवाला होता है, उसके द्वारा निकाले हुए भाषाद्रव्य खण्ड-खण्ड एव स्फुट होते हैं।[1] तीव्रप्रयत्नवान् वक्ता द्वारा छोडे गये भाषाद्रव्य खडित होने के कारण सूक्ष्म होने से और अन्य द्रव्यो को वासित करने के कारण अनन्तगुण वृद्धि को प्राप्त होकर लोक के अत तक पहुचते हैं और सपूर्ण लोक मे व्याप्त हो जाते हैं। मदप्रयत्न द्वारा छोडे गये भाषाद्रव्य लोकान्त तक नही पहुच पाते। वे असख्यात अवगाहन वर्गणा तक जाते हैं। वहाँ जाकर भेद को प्राप्त होते हैं, फिर सख्यात योजन तक आगे जाकर विध्वस्त हो जाते हैं।

एकत्व और पृथक्त्व के दस दण्डक—असत्यामृषाभाषा के रूप मे जिन द्रव्यो को ग्रहण किया जाता है, वे स्थित होते है, अस्थित नही। इस विषय मे विकलेन्द्रियसहित दस दण्डक होते हैं, वे इस प्रकार है नारक, भवनपति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यञ्चपचेन्द्रिय, मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। अथवा दस दण्डक अर्थात्—आलापक इस प्रकार होते हैं—सामान्य एक जीव के भाषाद्रव्य ग्रहण के सम्बन्ध मे एक तथा चार पृथक्-पृथक् चार भाषाओ के द्रव्य ग्रहण करने के सम्बन्ध मे, यो ५ एकवचन के और ५ ही बहुवचन के दण्डक (पाठ) मिल कर दस दण्डक होते हैं।

एकत्व और पृथक्त्व के आठ दण्डक—एकेन्द्रिय को छोडकर नैरयिको से लेकर ४ भाषाओ के द्रव्यो के ग्रहण-निःसरण-सम्बन्धी एकवचन के चार दण्डक और बहुवचन के चार दण्डक, यो आठ दण्डक हुए।[2]

सोलह वचनों तथा चार भाषाजातों के आराधक-विराधक एवं अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

८९६. कतिविहे णं भंते ! वयणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! सोलसविहे वयणे पण्णत्ते। तं जहा—एगवयणे १ दुवयणे २ बहुवयणे ३ इत्थिवयणे ४ पुमवयणे ५ णपुंसगवयणे ६ अज्झत्थवयणे ७ उवणीयवयणे ८ अवणीयवयणे ९ उवणीयावणीयवयणे १० अवणीयउवणीयवयणे ११ तीतवयणे १२ पडुप्पन्नवयणे १३ अणागयवयणे १४ पच्चक्खवयणे १५ परोक्खवयणे १६।

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २६७

(ख) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा. ३, पृ. ३८०

"कोई मदपयत्तो निसिरइ सकलाइ सव्वदव्वाइ।
अन्नो तिव्वपयत्तो सो मु चइ भिंदिउ ताइ॥"

प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, पृ ३८०

२ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २६७

(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा ३, पृ ३७३ से ४०५ तक

[८९६ प्र.] भगवन् ! वचन कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[८९६ उ] गौतम ! वचन सोलह प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार हैं—१. एकवचन, २. द्विवचन, ३. बहुवचन, ४. स्त्रीवचन, ५. पुरुषवचन, ६. नपु सकवचन, ७. अध्यात्मवचन, ८ उपनीतवचन, ९ अपनीतवचन, १० उपनीतापनीतवचन, ११. अपनीतोपनीतवचन, १२ अतीतवचन, १३ प्रत्युत्पन्न (वर्तमान), वचन, १४. अनागतवचन (भविष्यत्वचन) १५ प्रत्यक्षवचन और १६ परोक्षवचन ।

८९७. इच्चेयं भंते ! एगवयणं वा जाव परोक्खवयण वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

हंता गोयमा ! इच्चेय एगवयण वा जाव परोक्खवयण वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा ।

[८९७ प्र] इस प्रकार एकवचन (से लेकर) परोक्षवचन (तक १६ प्रकार के वचन) को बोलते हुये (जीव) की क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ? यह भाषा मृषा तो नही है ?

[८९७ उ] हाँ, गौतम ! इस प्रकार एकवचन से लेकर परोक्षवचन तक (१६ वचनो) को बोलते हुए (जीव की) भाषा प्रज्ञापनी है, यह भाषा मृषा नही है ।

८९८. कति ण भते ! भासज्जाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि भासज्जाया पण्णत्ता । त जहा—सच्चमेगं भासज्जायं ? बितिय मोस भासज्जाय २ ततिय सच्चामोस भासज्जायं ३ चउत्थ असच्चामोस भासज्जाय ४ ।

[८९८ प्र.] भगवन् ! भाषाजात (भाषा के प्रकार) कितने है ?

[८९८ उ] गौतम ! भाषाजात चार कहे गये है । वे इस प्रकार है—(१) भाषा का एक जात (प्रकार) सत्या है, (९) भाषा का दूसरा प्रकार मृषा है, (३) भाषा का तीसरा प्रकार सत्या-मृषा हे और (४) भाषा का चौथा प्रकार असत्यामृषा है ।

८९९. इच्चेयाइ भते ! चत्तारि भासज्जायाइ भासमाणे कि आराहए विराहए ?

गोयमा ! इच्चेयाइ चत्तारि भासज्जायाइ आउत्त भासमाणे आराहए, णो विराहए । तेण पर असंजयाऽविरयाऽपडिहयाऽपच्चक्खायपावकम्मे सच्च वा भासं भासंतो मोस वा सच्चामोस वा असच्चामोसं वा भास भासमाणे णो आराहए, विराहए ।

[८९९ प्र.] भगवन् ! इन चारो भाषा-प्रकारो को बोलता हुआ (जीव) आराधक होता है, अथवा विराधक ?

[८९९ उ] गौतम ! इन चारो प्रकार की भाषाओ को उपयोगपूर्वक (आयुक्त होकर) बोलने वाला आराधक होता है, विराधक नही । उससे पर—(अर्थात् उपयोगपूर्वक बोलने वाले से भिन्न) जो असयत, अविरत, पापकर्म का प्रतिघात और प्रत्याख्यान न करने वाला सत्यभाषा बोलता हुआ तथा मृषाभाषा, सत्यामृषा और असत्यामृषा भाषा बोलता हुआ (व्यक्ति) आराधक नही है, विराधक है ।

९००. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सच्चभासगाणं मोसभासगाणं सच्चामोसभासगाणं असच्चामोसभासगाणं अभासगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सच्चभासगा, सच्चामोसभासगा असंखेज्जगुणा, मोसभासगा असंखेज्जगुणा, असच्चामोसभासगा असंखेज्जगुणा, अभासगा अणंतगुणा ।

।। पण्णवणाए भगवईए एक्कारसमं भासापयं समत्तं ।।

[९०० प्र] भगवन् ! इन सत्यभाषक, मृषाभाषक, सत्यामृषाभाषक और असत्यामृषाभाषक तथा अभाषक जीवो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[९०० उ] गौतम ! सबसे थोडे जीव सत्यभाषक हैं, उनसे असंख्यातगुणे सत्यामृषाभाषक हैं, उनकी अपेक्षा मृषाभाषक असख्यातगुणे हैं, उनसे असख्यातगुणे असत्यामृषाभाषक जीव है और उनकी अपेक्षा अभाषक जीव अनन्तगुणे है ।

विवेचन सोलह वचनो और चार भाषाजातो के आराधक-विराधक एवं अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू ८९६ से ९०० तक) मे सोलह प्रकार के वचनो तथा सत्यादि चार प्रकार की भाषाओ का उल्लेख करके उनकी प्रज्ञापनिता (सत्यता) और उनके भाषको की आराधकता-विराधकता की प्ररूपणा की गई है । अन्त मे उक्त चारो प्रकार की भाषाओ के भाषको के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

सोलह प्रकार के वचनो की व्याख्या १ एकवचन—एकत्वप्रतिपादक भाषा, जैसे पुरुष अर्थात्—एक पुरुष । २. **द्विवचन**—द्वित्वप्रतिपादक भाषा, जैसे—पुरुषौ, अर्थात् दो पुरुष । ३. **बहुवचन**—बहुत्वप्रतिपादक कथन, जैसे—पुरुषा अर्थात्—बहुत-से पुरुष । ४. **स्त्रीवचन**—स्त्रीलिंगवाचक शब्द, जैसे—इयं स्त्री—यह स्त्री । ५ **पुरुषवचन**—पुल्लिंगवाचक शब्द, जैसे - अयं पुमान्—यह पुरुष । ६. **नपुंसकवचन** - नपुंसकत्ववाचक शब्द, जैसे—इदं कुण्डम् यह कुण्ड । ७. **अध्यात्मवचन**—मन मे कुछ और सोच कर ठगने की बुद्धि से कुछ और कहना चाहता हो, किन्तु अचानक मुख से वही निकल पडे, जो सोचा हो । ८. **उपनीतवचन**—प्रशसावाचक शब्द, जैसे 'यह स्त्री अत्यन्त सुशीला है ।' ९ **अपनीतवचन**—निन्दात्मक वचन, जैसे—यह कन्या कुरूपा है । १० **उपनीतापनीतवचन**—पहले प्रशसा करके फिर निन्दात्मक शब्द कहना, जैसे—यह सुन्दरी है, किन्तु दु शीला है । ११. **अपनीतोपनीतवचन**—पहले निन्दा करके, फिर प्रशसा करने वाला शब्द कहना, जैसे—यह कन्या यद्यपि कुरूपा है, किन्तु है सुशीला । १२. **अतीतवचन**—भूतकालद्योतक वचन, जैसे—अकरोत् (किया) । १३ **प्रत्युत्पन्नवचन**—वर्तमानकालवाचक वचक, जैसे—करोति (करता है) । १४. **अनागतवचन**—भविष्यत्कालवाचक शब्द, जैसे—करिष्यति (करेगा) । १५. **प्रत्यक्षवचन**—प्रत्यक्षसूचक शब्द, जैसे—'यह घर है ।' और १६. **परोक्षवचन**—परोक्षसूचक शब्द, जैसे—वह यहाँ रहता था । ये सोलह ही वचन यथावस्थित—वस्तुविषयक है, काल्पनिक नही, अत. जब कोई इन वचनो को सम्यक्रूप से उपयोग करके बोलता है, तब उसकी भाषा 'प्रज्ञापनी' समझनी चाहिए,[१] मृषा नही ।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २६७

चार प्रकार की भाषा के भाषक आराधक या विराधक ?—प्रस्तुत चारो प्रकार की भाषाओ को जो जीव सम्यक् प्रकार से उपयोग रख कर प्रवचन (सघ) पर आई हुई मलिनता की रक्षा करने में तत्पर होकर बोलता है, अर्थात्—प्रवचन (सघ) को निन्दा और मलिनता से बचाने के लिए गौरव-लाघव का पर्यालोचन करके चारो मे से किसी भी प्रकार की भाषा बोलता हुआ साधुवर्ग आराधक होता है, विराधक नही। किन्तु जो उपयोगपूर्वक बोलने वाले से पर—भिन्न है तथा असंयत (मन-वचन-काय के सयम से रहित) है, जो सावद्यव्यापार (हिंसादि पापमय प्रवृत्ति) से विरत नही (अविरत) है, जिसने अपने भूतकालिक पापो को **मिच्छा मि दुक्कड** (मेरा दुष्कृत मिथ्या हो), देकर तथा प्रायश्चित आदि स्वीकार करके प्रतिहत (नष्ट) नही किया है तथा जिसने भविष्यकालसम्बन्धी पाप न हो, इसके लिए पापकर्मों का प्रत्याख्यान नही किया है, ऐसा जीव चाहे सत्यभाषा बोले या मृषा, सत्यामृषा या असत्यामृषा मे से कोई भी भाषा बोले, वह आराधक नही, विराधक है।[1]

चारो भाषाओं के भाषको मे अल्पबहुत्व की यथार्थता—प्रस्तुत चारो भाषाओ के भाषको के अल्पबहुत्व की चर्चा करते हुए सबसे कम सत्यभाषा के भाषक बताए है, इसका कारण यह है कि सम्यक् उपयोग (ध्यान) पूर्वक सर्वज्ञमतानुसार वस्तुतत्त्व की स्थापना (प्रतिपादन) करने की बुद्धि (दृष्टि) से जो बोलते है, वे ही सत्यभाषक है, जो पृच्छाकाल मे बहुत विरले ही मिलते है। सत्य-भाषको से सत्यामृषाभाषक असख्यातगुणे इसलिए हैं कि लोक मे बहुत-से इस प्रकार के सच-झूठ जैसे-तैसे बोलने वाले मिलते है। उनमे मृषाभाषक असख्यातगुणे इसलिए है कि क्रोधादि कषायो के वशीभूत होकर परवचनादि बुद्धि से बोलने वाले ससार मे प्रचुर सख्या मे मिलते है, वे सभी मृषा-भाषी है। उनसे असख्यातगुणे अधिक असत्यामृषाभाषक हैं, क्योकि द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव असत्यामृषाभाषक की कोटि मे आते है।[2] इन सबसे अनन्तगुणे अभाषक इसलिए है कि अभाषको की गणना मे सिद्ध जीव एव एकेन्द्रिय जीव आते है, वे दोनो ही अनन्त हैं। सिद्ध जीवो से भी वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे है।

॥ प्रज्ञापनासूत्र : ग्यारहवाँ भाषापद समाप्त ॥

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २६८
२. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक २६८-२६९

बारसमं सरीरपयं

बारहवाँ शरीरपद

प्राथमिक

- यह प्रज्ञापनासूत्र का बारहवाँ शरीरपद है।
- ससार-दशा मे शरीर के साथ जीव का अतीव निकट और निरन्तर सम्पर्क रहता है। शरीर और शरीर से सम्बन्धित सजीव-निर्जीव पदर्थों के प्रति मोह-ममत्व के कारण ही कर्मबन्ध होता है। अतएव शरीर के विषय मे जानना आवश्यक है। शरीर क्या है ? आत्मा की तरह अविनाशी है या नाशवान् ? इसके कितने प्रकार है ? इन प्रकारो के बद्ध-मुक्त शरीरो के कितने-कितने परिमाण मे है ? नैरयिको से लेकर वैमानिक देवो तक किस मे कितने शरीर पाए जाते है ? आदि-आदि। इसी हेतु से शास्त्रकार ने इस पद की रचना की है।
- प्रस्तुत पद मे जैनदृष्टि से पाच शरीरो की चर्चा है—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण। उपनिषदो मे आत्मा के अन्नमय आदि पाच कोषो की विचारणा मिलती है। उसमे से अन्नमयकोष की औदारिक शरीर के साथ तथा साख्य आदि दर्शनो मे जो अव्यक्त, सूक्ष्म या लिंगशरीर माना गया है, उसकी तुलना तैजस—कार्मणशरीर के साथ हो सकती है।[1]
- प्रस्तुत पद मे सर्वप्रथम औदारिकादि पाच शरीरो का निरूपण है। वृत्तिकार ने **औदारिकशरीर** के विभिन्न अर्थ, उसकी प्रधानता, प्रयोजन और महत्ता की दृष्टि से समझाए है। तीर्थंकर आदि विशिष्ट पुरुषो को औदारिक शरीर होता है तथा देवो को भी यह शरीर दुर्लभ है, इस कारण इसका प्राधान्य और महत्त्व है। नारको और देवो के सिवाय समस्त जीवो को यह शरीर जन्म से मिलता है, इसलिए अधिकाश जीवराशि इसी स्थूल एव प्रधान शरीर की धारक है। जो शरीर विविध एव विशेष प्रकार की क्रिया कर सकता है, अर्थात्—अनेक प्रकार के रूप धारण कर सकता है, वह **वैक्रियशरीर** है। यह शरीर देवो और नारको को जन्म से प्राप्त होता है, पर्याप्त वायुकायिको के भी होता है। किन्तु मनुष्य को ऋद्धि—लब्धिरूप से प्राप्त होता है। चतुर्दशपूर्वधारी मुनि किसी प्रकार के शका-समाधानादि प्रयोजनवश योगबल से तीर्थंकर के पास जाने के लिए जिस शरीर की रचना करते है, वह **आहारकशरीर** है। शरीर मे जो तेजस् (ओज, तेज या तथारूप धातु एव पाचनादि कार्य मे अग्नि) का कार्य करता है, वह **तैजसशरीर** है और कर्मनिर्मित जो सूक्ष्मशरीर है, वह **कार्मणशरीर** है। तैजस और कार्मण, ये दोनो

---

१ (क) पण्णवणासुत्त (मू पा) भाग १, पृ २२३

(ख) तैत्तिरीय उपनिषद् भृगुवल्ली। साख्यकारिका ३९-४० बेलवलकर

(ग) (मालवणिया) गणधरवाद प्रस्तावना।

(घ) षट्खण्डागम पृ १४, सू १२९,२३६, पृ २३७, ३२१

शरीर जीव से सिद्धिप्राप्त होने से पूर्व तक कभी विमुक्त नही होते । अनादिकाल से ये दोनों शरीर जीव के साथ जुडे हुए हैं। पुनर्जन्म के लिए गमन करने वाले जीव के साथ भी ये दो शरीर तो अवश्य होते हैं, औदारिकादि शरीरो का निर्माण बाद मे होता है।[1]

* तत्पश्चात् चौबीस दण्डको मे से किसको कितने व कौन से शरीर होते है ? इसकी चर्चा है। फिर इन पाचों शरीरो के बद्ध– वर्तमान में जीव के साथ बधे हुए तथा मुक्त—पूर्वकाल मे बाध कर त्यागे हुए शरीरो तथा समुच्चय मे द्रव्य, क्षेत्र, काल की अपेक्षा से उनके परिमाण की चर्चा की गई है। इसके अनन्तर नैरयिको, भवनवासियो, एकेन्द्रियो, विकलेन्द्रियो, तिर्यंचपंचेन्द्रियो, मनुष्यो, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक देवो के बद्ध-मुक्त पाचो शरीरो के परिमाण की चर्चा द्रव्य, क्षेत्र, काल की दृष्टि से की गई है। गणित विद्या की दृष्टि से यह अतीव रसप्रद है।[2]

१ (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति पत्रांक २६८-२६९,
(ख) पण्णवणासुत्तं भा २ बारहवें पद की प्रस्तावना, पृ ८८-८९

२. (क) पण्णवणासुत्त भा. १, पृ २२३ से २२८
(ख) पण्णवणासुत्त भा. २, बारहवे पद की प्रस्तावना, पृ ८९

बारसमं सरीरपयं

बारहवाँ शरीरपद

पांच प्रकार के शरीरों का निरूपण

९०१. कति णं भंते ! सरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंच सरीरा पण्णत्ता। तं जहा—ओरालिए १ वेउव्विए २ आहारए ३ तेयए ४ कम्मए ५।

[९०१ प्र] भगवन् ! शरीर कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[९०१ उ] गौतम ! शरीर पाच प्रकार के कहे गए है, वे इस प्रकार—(१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस और (५) कार्मण।

विवेचन—पांच प्रकार के शरीरों का निरूपण—प्रस्तुत सूत्र (९०१) मे जैनसिद्धान्त प्रसिद्ध औदारिक आदि पाच प्रकार के शरीरो का निरूपण किया गया है।

शरीर का अर्थ—उत्पत्ति के समय से लगातार प्रतिक्षण जो शीर्ण-जर्जरित होता है, वह शरीर है।

औदारिक शरीर की व्याख्या—उदार से औदारिक शब्द बना है। वृत्तिकार ने उदार के तीन अर्थ किए हैं -(१) जो शरीर उदार अर्थात्—प्रधान हो। औदारिक शरीर की प्रधानता तीर्थंकरो और गणधरो के शरीर की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि औदारिक शरीर के अतिरिक्त अन्य शरीर, यहाँ तक कि अनुत्तर विमानवासी देवो का शरीर भी अनन्तगुणहीन होता है। (२) उदार अर्थात् विस्तारवान्=विशाल शरीर। औदारिक शरीर का अवस्थितस्वभाव (आजीवन स्थायीरूप) से विस्तार कुछ अधिक एक हजार योजन प्रमाण होता है, जबकि वैक्रियशरीर का इतना अवस्थित-प्रमाण नही होता। उसका अधिक से अधिक अवस्थितप्रमाण पाच सौ धनुष का होता है और वह भी सिर्फ सातवी नरकपृथ्वी मे ही, अन्यत्र नही। जो उत्तरवैक्रियशरीर एक लाख योजनप्रमाण तक का होता है, वह भवपर्यन्त स्थायी न होने के कारण अवस्थित नही होता। (३) सैद्धान्तिक परिभाषानुसार उदार का अर्थ होता है—मास, हड्डियाँ, स्नायु आदि से अवबद्ध शरीर। उदार ही औदारिक कहलाता है।

वैक्रियशरीर की व्याख्या—(१) प्राकृत के 'वेउव्विय' का सस्कृत मे 'वैकुर्विक' रूप होता है। विकुर्वणा के अर्थ मे 'विकुर्व' धातु से वैकुर्विक शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है—विविध क्रियाओ को करने मे सक्षम शरीर। (२) अथवा विविध या विशिष्ट (विलक्षण) क्रिया विक्रिया है। विक्रिया करने वाला शरीर वैक्रिय है।

आहारक, तैजस और कार्मण शरीर की व्याख्या—चतुर्दशपूर्वधारी मुनि के द्वारा कार्य होने पर योगबल मे जिस शरीर का आहरण—निष्पादन किया जाता है, उसे आहारकशरीर कहते है।

तेज का जो विकार हो, उसे तैजस शरीर और जो शरीर कर्म का समूह रूप हो, उसे कर्मज या कार्मण शरीर कहते हैं।

उत्तरोत्तर सूक्ष्मशरीर—औदारिक आदि शरीरो का इस प्रकार का क्रम रखने का कारण उनकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मता है।[1]

चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में शरीर-प्ररूपणा

९०२. णेरइयाण भंते ! कति सरीरया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तम्रो सरीरया पण्णत्ता। तं जहा—वेउव्विए तेयए कम्मए।

[९०२ प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितने शरीर कहे गए है ?

[९०२ उ.] गौतम ! उनके तीन शरीर कहे हैं, वे इस प्रकार वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर।

९०३ एव असुरकुमाराण वि जाव थणियकुमाराण।

[९०३] इसी प्रकार असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो तक के शरीरो की प्ररूपणा समझना चाहिये।

९०४. पुढविक्काइयाण भंते ! कति सरीरया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तम्रो सरीरया पण्णत्ता। तं जहा—ओरालिए तेयए कम्मए।

[९०४ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिको के कितने शरीर कहे गए है ?

[९०४ उ] गौतम ! उनके तीन शरीर कहे है, वे इस प्रकार—औदारिक, तैजस एव कार्मणशरीर।

९०५ एवं वाउक्काइयवज्जं जाव चउरिंदियाण।

[९०५] इसी प्रकार वायुकायिको को छोडकर चतुरिन्द्रियो तक के शरीरो के विषय मे जानना चाहिए।

९०६. वाउक्काइयाण भंते ! कति सरीरया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि सरीरया पण्णत्ता। तं जहा—ओरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए।

[९०६ प्र] भगवन् ! वायुकायिको मे कितने शरीर कहे गए हैं ?

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक २६८-२६९

(ख) "औरालं नाम वित्थरालं विसालंति ज भणिय होइ, कह ?' साइरेगजोयणसहस्समवट्ठियप्पमाणओरालियं अन्नमेहहमेत्त नत्थित्ति विउव्विय होज्जा तं तु अणवट्ठियप्पमाणं, अवट्ठिय पुण पच धणुसयाइं अहेसत्तमाए इमं पुण अवट्ठियप्पमाणं साइरेग जोयणसहस्स ॥"

(ग) "विविहा विसिट्ठगा य किरिया, तीए उ ज भवं तमिह।
वेउव्वियं तयं पुण नारगदेवाण पगईए॥" -प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्राक २६९

[९०६ उ.] गौतम ! (उनके) चार शरीर कहे हैं, वे इस प्रकार—औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर।

९०७. एवं पंचिवियतिरिक्खजोणियाण वि।

[९०७] इसी प्रकार पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको के शरीरो के विषय मे भी समझना चाहिए।

९०८. मणूसाणं भंते ! कति सरीरया पण्णत्ता ?

गोयमा ! पच सरीरया पण्णत्ता। त जहा ओरालिए वेउव्विए आहारए तेयए कम्मए।

[९०८ प्र.] भगवन् ! मनुष्यो के कितने शरीर कहे गए है ?

[९०८ उ] गौतम ! मनुष्यो के पाच शरीर कहे गए है, वे इस प्रकार—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण।

९०९. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणियाण जहा णारगाण [सु. ९०२]।

[९०९] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको के शरीरो की वक्तव्यता नारको की तरह (सू ९०२ से अनुसार) कहना चाहिए।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे शरीरप्ररूपणा—नैरयिक से लेकर वैमानिक तक २४ दण्डको मे से किसमे कितने शरीर पाए जाते है ? इसकी प्ररूपणा प्रस्तुत आठ सूत्रो मे की गई है।

पांचो शरीरो के बद्ध-मुक्त शरीरों का परिमाण

९१०. [१] केवइया ण भंते ! ओरालियसरीरया पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ ण जे ते बद्धेल्लगा ते ण असंखेज्जगा, असखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते ण अणता, अणताहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणता लोगा, दव्वओ अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणा सिद्धाण अणतभागो।

[९१०-१ प्र] भगवन् ! औदारिक शरीर कितने कहे गए है ?

[९१०-१ उ] गौतम ! (वे) दो प्रकार के कहे गए है, यथा बद्ध और मुक्त। उनमे जो बद्ध (जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए) है, वे असख्यात है, काल मे -वे असख्यात उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो (कालचक्रो) से अपहृत होते है। क्षेत्र से - वे असख्यातलोक-प्रमाण है। उनमे जो मुक्त (जीव के द्वारा छोडे हुए -त्यागे हुए) है, वे अनन्त है। काल से- वे अनन्त उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो से अपहृत होते है। क्षेत्र से—अनन्तलोकप्रमाण हैं। द्रव्यत. मुक्त औदारिक शरीर अभवसिद्धिक (अभव्य) जीवो से अनन्तगुणे और सिद्धो के अनन्तवे भाग है।

[२] केवइया ण भंते ! वेउव्वियसरीरया पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। त जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते ण असखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असखेज्जाओ

सेढीओ पयरस्स असखेज्जतिभागो । तत्थ ण जेते मुक्केल्लगा ते णं अणंता, अणतार्हि उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीर्हि अवहीरंति कालओ, जहा ओरालियस्स मुक्केल्लगा तहेव वेउव्वियस्स वि भाणियव्वा ।

[९१०-२ प्र.] भगवन् ! वैक्रिय शरीर कितने कहे गए है ?

[९१०-२ उ.] गौतम ! (वे) दो प्रकार के कहे है—बद्ध और मुक्त, उनमे जो बद्ध है, वे असख्यात है, कालत वे असख्यात उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो से अपहृत होते है, क्षेत्रत. वे असख्यात श्रेणी-प्रमाण तथा (वे श्रेणिया) प्रतर के असख्यातवे भाग है । उनमे जो मुक्त है, वे अनन्त है । कालत. वे अनन्त उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो से अपहृत होते है; जैसे औदारिक शरीर के मुक्तो के विषय मे कहा गया है, वैसे ही वैक्रियशरीर के मुक्तो के विषय मे भी कहना चाहिए ।

[३] **केवइया णं भते ! आहारगसरीरया पण्णत्ता ?**

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । त जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य । तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते ण सिय अत्थि सिय णत्थि । जति अत्थि जहण्णेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सहस्स-पुहुत्तं । तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणता जहा ओरालियस्स मुक्केल्लया तहा भाणियव्वा ।

[९१०-३ प्र] भगवन् ! आहारक शरीर कितने कहे गए हैं ?

[९१०-३ उ] गौतम ! आहारक शरीर दो प्रकार के कहे है, वे इस प्रकार—बद्ध और मुक्त । उनमे जो बद्ध है, वे कदाचित् होते है, कदाचित् नही होते । यदि हो तो जघन्य एक, दो या तीन होते हैं, उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व होते है । उनमे जो मुक्त हैं, वे अनन्त है । जैसे औदारिक शरीर के मुक्त के विषय मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ कहना चाहिए ।

[४] **केवइया ण भंते ! तेयगसरीरया पण्णत्ता ?**

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा – बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य । तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते ण अणंता, अणतार्हि उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीर्हि अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, दव्वओ सिद्धेहितो अणतगुणा सव्वजोवाणतभागूणा । तत्थ ण जे ते मुक्केल्लया ते णं अणता, अणतार्हि उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीर्हि अवहीरति कालओ, खेत्तओ अणता लोगा, दव्वओ सव्वजीवेहितो अणतगुणा, जीववग्गस्स अणंतभागो ।

[९१०-४ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर कितने कहे गए है ?

[९१०-४ उ] गौतम ! (वे) दो प्रकार के कहे है, वे इस प्रकार—बद्ध और मुक्त । उनमे जो बद्ध हैं, वे अनन्त है, कालत.—अनन्त उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो से अपहृत होते है, क्षेत्रत —वे अनन्तलोकप्रमाण है, द्रव्यत - सिद्धो से अनन्तगुण तथा सर्वजीवो से अनन्तवे भाग कम है । उनमे से जो मुक्त है, वे अनन्त है, कालत.—वे अनन्त उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो से अपहृत होते हैं, क्षेत्रत.—वे अनन्तलोकप्रमाण हैं । द्रव्यत —(वे) समस्त जीवो से अनन्तगुणे हैं तथा जीववर्ग के अनन्तवे भाग हैं ।

[५] एव कम्मगसरीरा वि भाणियव्वा ।

[९१०-५] इसी प्रकार कार्मण शरीर के विषय मे भी कहना चाहिए ।

विवेचन—पांचों बद्ध-मुक्त शरीरो का परिमाण—प्रस्तुत सूत्र (९१०-१ से ५) मे द्रव्य, क्षेत्र, और काल की अपेक्षा से पाचो शरोरो के बद्ध और मुक्त शरीरो का परिमाण दिया गया है ।

बद्ध और मुक्त की परिभाषा— प्ररूपणा करते समय जीवो द्वारा जो शरीर परिगृहीत (ग्रहण किए हुए) हैं, वे **बद्धशरीर** कहलाते हैं, जिन शरीरो का जीवो ने पूर्वभवो मे ग्रहण करके परित्याग कर दिया है, वे मुक्तशरीर कहलाते है ।

बद्ध-मुक्त शरीरो का परिमाण—पाचो शरीरो के बद्धरूप और मुक्तरूप का द्रव्य की अपेक्षा से अभव्य आदि से, क्षेत्र की अपेक्षा से श्रेणि, प्रतर आदि से और काल की अपेक्षा से आवलिकादि द्वारा परिमाण का विचार शास्त्रकारो ने किया है ।

बद्ध और मुक्त औदारिकशरीरो का परिमाण—बद्ध औदारिकशरीर असख्यात है । यद्यपि बद्ध औदारिकशरीर के धारक जीव अनन्त है, तथापि यहाँ जो बद्ध औदारिकशरीरो का परिमाण असख्यात कहा है, उसका कारण यह है— औदारिकशरीरधारी जीव दो प्रकार के होते हैं—प्रत्येक-शरीरी और अनन्तकायिक । प्रत्येकशरीरी जीवो का अलग-अलग औदारिकशरीर होता है, किन्तु जो अनन्तकायिक होते हैं, उनका औदारिकशरीर पृथक्-पृथक् नही होता, अनन्तानन्त जीवो का एक ही होता है । इस कारण औदारिकशरीरी जीव अनन्तानन्त होते हुए भी उनके शरीर असख्यात ही है । **काल की अपेक्षा से**—बद्धऔदारिक शरीर असख्यात उत्सर्पिणियो और असख्यात अवसर्पिणियो मे अपहृत होते है, इसका तात्पर्य यह है कि यदि उत्सर्पिणी और अवसर्पिणो काल के एक-एक समय मे एक-एक औदारिकशरीर का अपहरण किया जाए तो समस्त औदारिकशरीरो का अपहरण करने मे असख्यात उत्सर्पिणियाँ और अवसर्पिणियाँ व्यतीत हो जाएँ । **क्षेत्र की अपेक्षा से** बद्धऔदारिक शरीर असख्यातलोकप्रमाण है, इसका अर्थ हुआ—अगर समस्त बद्ध औदारिक शरीरो को अपनी-अपनी अवगाहना से परस्पर अपिण्डरूप मे (पृथक्-पृथक्) आकाशप्रदेशो मे स्थापित किया जाए तो असख्यातलोकाकाश उन पृथक्-पृथक् स्थापित शरीरो से व्याप्त हो जाएँ । मुक्त औदारिक शरीर अनन्त होते है, उनका परिमाण **कालतः** अनन्त उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो के अपहरणकाल के बराबर है, अर्थात्—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालो के एक-एक समय मे एक-एक मुक्त औदारिक शरीर का अपहरण किया जाए तो समस्त मुक्त औदारिकशरीरो का अपहरण करने मे अनन्त उत्सर्पिणियाँ और अनन्त अवसर्पिणियाँ समाप्त हो जाएँ । सक्षेप मे, इसे यो कह सकते है कि अनन्त उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो मे जितने समय होते है, उतनी ही मुक्त औदारिक-शरीरो की सख्या है । **क्षेत्र की अपेक्षा से** वे अनन्तलोकप्रमाण है। इसका तात्पर्य यह है कि एक लोक मे असख्यातप्रदेश होते है । ऐसे-ऐसे अनन्त लोको के जितने आकाशप्रदेश हो, उतने ही मुक्त औदारिक शरीर है । **द्रव्य की अपेक्षा से**—मुक्त औदारिकशरीर अभव्य जीवो से अनन्तगुणे होते हुए भी सिद्ध जीवो के अनन्तवे भाग मात्र ही है, अर्थात्—वे सिद्ध जीवराशि के बराबर नही है । इस सम्बन्ध मे एक शका है—यदि अविकल (ज्यो के त्यो) मुक्त औदारिकशरीरो की यह सख्या मानी जाए तो भी वे अनन्त नही हो सकते, क्योकि नियमानुसार पुद्गलो की स्थिति अधिक-से-अधिक असंख्यातकाल तक की होने से वे मुक्त शरीर अविकल रूप से अनन्तकाल तक ठहर नही सकते ।

यदि यहाँ उन पुद्गलो को लिया जाए, जिन्हे जीव ने औदारिकशरीर के रूप में अतीतकाल मे ग्रहण करके त्याग दिया है, तो सभी जीवो ने सभी पुद्गलो को औदारिकशरीर के रूप मे ग्रहण करके त्यागा है, कोई पुद्गल शेष नही बचा है। ऐसी स्थिति मे मुक्त औदारिकशरीर अभव्यो से अनन्तगुणे और सिद्ध जीवों के अनन्तवे भाग है, यह कथन कैसे सगत हो सकता है? इसका समाधान यह है कि यहाँ मुक्त औदारिक शरीरो से न तो केवल अविकल (अखडित) शरीरो का ही ग्रहण किया जाता है, और न औदारिकशरीर के रूप मे ग्रहण करके त्यागे हुए पुद्गलो का ग्रहण किया है अत. यहाँ पूर्वोक्त दोषापत्ति नही है। जिस औदारिक शरीर को जीव ने ग्रहण करके त्याग दिया है और वह विनष्ट होता हुआ अनन्त भेदो वाला होता है। वे अनन्त भेदो को प्राप्त होते हुए औदारिक पुद्गल जब तक औदारिक पर्याय का परित्याग नही करते, तब तक वे औदारिकशरीर कहलाते है। जिन पुद्गलो ने औदारिक पर्याय का परित्याग कर दिया, वे औदारिकशरीर नही कहलाते। इस प्रकार एक ही शरीर के अनन्त शरीर सम्भव हो जाते है। इस तरह एक-एक शरीर अनन्त-अनन्त भेदो वाला होने से एक ही समय मे प्रचुर अनन्त शरीर पाए जाते है। वे असख्यातकाल तक अवस्थित रहते है। उस असख्यातकाल मे जीवो द्वारा त्यागे हुए अन्य असख्यात शरीर भी होते है। उन सबके भी प्रत्येक के अनन्त-अनन्त भेद होते है। उनमे से उस काल मे जो औदारिकशरीरपर्याय का परित्याग कर देते है, उनकी गणना भी इनमे नही की जाती, शेष की गणना औदारिकशरीरो मे होती है। अतएव मुक्त औदारिकशरीरो का जो परिमाण ऊपर बताया गया है, वह कथन सगत हो जाता है। जिस प्रकार लवणपरिणाम मे परिणत लवण थोड़ा हो या ज्यादा, वह (विभिन्न लवणो का) पुद्गलसघात लवण ही कहलाता है, इसी प्रकार औदारिक रूप से परिणत औदारिक शरीरयोग्य पुद्गलसघात भी चाहे थोडा (आधा, पाव भाग या एक देश भी) हो, चाहे बहुत (पूर्ण औदारिकशरीर) हो, वह भी औदारिक शरीर ही कहलाता है। यहाँ तक कि शरीर का अनन्तवा भाग भी शरीर ही कहलाता है।

अब प्रश्न यह है कि अनन्तानन्त लोकाकाशप्रदेश प्रमाण औदारिक शरीर एक ही लोक मे कैसे अवगाढ होकर रहे (समाए) हुए है? इसका समाधान यह है कि दीपक के प्रकाश के समान उनका भी एक लोक मे समावेश हो जाता है। जैसे—एक दीपक का प्रकाश समग्र भवन मे व्याप्त होकर रहता है और अन्य अनेक दीपको का प्रकाश भी उस भवन मे परस्पर विरोध न होने से रह सकता है, वैसे ही अनन्तानन्त मुक्त औदारिक शरीर भी एक ही लोकाकाश मे समाविष्ट होकर रहते है।

बद्ध-मुक्त वैक्रियशरीरो का परिमाण—बद्ध वैक्रियशरीर असख्यात होते हैं। कालत: **असंख्यात की प्ररूपणा** - अगर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के एक-एक समय मे एक-एक वैक्रिय शरीर का अपहरण किया जाए तो समस्त वैक्रियशरीरो का अपहरण करने मे असख्यात उत्सर्पिणियाँ और अवसर्पिणियाँ व्यतीत हो जाएँ। सक्षेप मे यो कहा जा सकता है—असख्यात उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो के जितने समय होते है, उतने ही बद्ध वैक्रियशरीर है। क्षेत्र की अपेक्षा से बद्ध वैक्रिय-शरीर असख्यातश्रेणीप्रमाण है और उन श्रेणियो का परिमाण प्रतर का असख्यातवाँ भाग है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रतर के असख्यातवे भाग मे जितनी श्रेणियाँ है और उन श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश होते है उतने ही बद्ध वैक्रियशरीर हैं।

श्रेणी का परिमाण यो है—घनीकृत लोक सब ओर से ७ रज्जु प्रमाण होता है। ऐसे लोक की लम्बाई मे सात रज्जु एव मुक्तावली के समान एक आकाशप्रदेश की पक्ति श्रेणी कहलाती है। घनीकृत लोक का सप्त रज्जुप्रमाण इस प्रकार होता है—समग्र लोक ऊपर से नीचे तक चौदह रज्जुप्रमाण है। उसका विस्तार नीचे कुछ कम सात रज्जु का है। मध्य मे एक रज्जु है। ब्रह्मलोक नामक पचम देवलोक के बिलकुल मध्य मे पाच रज्जु है और ऊपर एक रज्जु विस्तार पर लोक का अन्त होता है। रज्जु का परिमाण स्वयम्भूरमणसमुद्र की पूर्वतटवर्ती वेदिका के अन्त से लेकर उसकी परवेदिका के अत तक समझना चाहिए। इतनी लम्बाई-चौडाई वाले लोक की आकृति दोनो हाथ कमर पर रख कर नाचते हुए पुरुष के समान है। इस कल्पना से त्रसनाडी के दक्षिणभागवर्ती अधोलोकखण्ड को (जो कि कुछ कम तीन रज्जु विस्तृत है, और सात रज्जु से कुछ अधिक ऊँचा है) लेकर त्रसनाडी के उत्तर पार्श्व से, ऊपर का भाग नीचे और नीचे का भाग ऊपर करके इकट्ठा रख दिया जाय, फिर ऊर्ध्वलोक मे त्रसनाडी के दक्षिण भागवर्ती कूर्पर (कोहनी) के आकार के जो दो खण्ड हैं, जो कि प्रत्येक कुछ कम साढे तीन रज्जु ऊँचे होते है, उन्हे कल्पना मे लेकर विपरीत रूप मे उत्तर पार्श्व मे इकट्ठा रख दिया जाए। ऐसा करने मे नीचे का लोकार्ध कुछ कम चार रज्जु विस्तृत और ऊपर का अर्ध भाग तीन रज्जु विस्तृत एव कुछ कम सात रज्जु ऊँचा हो जाता है। तत्पश्चात् ऊपर के अर्ध भाग को कल्पना मे लेकर नीचे के अर्ध भाग के उत्तरपार्श्व मे रख दिया जाए। ऐसा करने से कुछ अधिक सात रज्जु ऊँचा और कुछ कम सात रज्जु विस्तार वाला घन बन जाता है। सात रज्जु से ऊपर जो अधिक है, उसे ऊपर-नीचे के आयत (लम्बे) भाग को उत्तरपार्श्व मे मिला दिया जाता हे। इसमे विस्तार मे भी पूरे सात रजु हो जाते है। इस प्रकार लोक को घनीकृत किया जाता है। जहाँ कही घनत्व से सात रज्जुप्रमाण की पूर्ति न हो सके, वहाँ कल्पना से पूर्ति कर लेनी चाहिए। सिद्धान्त (शास्त्र) मे जहाँ कही भी श्रेणी अथवा प्रतर का ग्रहण हो, वहाँ सर्वत्र इसी प्रकार घनीकृत सात रज्जुप्रमाण लोक की श्रेणी अथवा प्रतर समझना चाहिए।

मुक्त वैक्रियशरीर भी मुक्त औदारिकशरीरो के समान अनन्त है। अत उनकी अनन्तता भी पूर्वोक्त मुक्त औदारिको के समान समझ लेनी चाहिए।

बद्ध-मुक्त आहारकशरीरो का परिमाण--बद्ध आहारकशरीर कदाचित् होते है, कदाचित् नही होते, क्योकि आहारकशरीर का अन्तर (विरहकाल) जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक का है।[1] यदि आहारकशरीर होते है तो उनकी सख्या जघन्य एक, दो या तीन होती है, और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) सहस्रपृथक्त्व अर्थात् दो हजार से लेकर नौ हजार तक होती है। मुक्त आहारकशरीरो का परिमाण मुक्त औदारिकशरीरो की तरह समझना चाहिए।

बद्ध-मुक्त तैजसशरीरो का परिमाण—बद्ध तैजसशरीर अनन्त है क्योकि साधारणशरीरी निगोदिया जीवो के तैजसशरीर अलग-अलग होते है, औदारिक की तरह एक नही। उसकी अनन्तता का कालत परिमाण (पूर्ववत) अनन्त उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो के समयो के बराबर है। क्षेत्रत —अनन्त लोकप्रमाण है। अर्थात्—अनन्त लोकाकाशो मे जितने प्रदेश हो, उतने ही बद्ध तैजसशरीर हैं। द्रव्य की अपेक्षा से बद्ध तैजसशरीर सिद्धो से अनन्तगुणे है, क्योकि तैजसशरीर समस्त ससारी जीवो के होते है और ससारी जीव सिद्धो से अनन्तगुणे है। इसलिए तैजसशरीर भी

---

१ आहारगाइ लोए छम्मासे जा न होंति वि कयाइ। उक्कोसेण नियमा, एक समय जहन्नेण ॥

—प्रज्ञापना म वृ, प २७३ में उद्धृत

सिद्धों से अनन्तगुणे हैं। किन्तु सम्पूर्ण जीवराशि की दृष्टि से विचार किया जाए तो वे समस्त जीवो से अनन्तवे भाग कम है, क्योकि सिद्धो के तैजसशरीर नही होता और सिद्ध सर्व जीवराशि से अनन्तवे भाग हैं, अतः उन्हे कम कर देने से तैजसशरीर सर्वजीवो के अनन्तवे भाग न्यून हो गए। **मुक्त तैजसशरीर** भी अनन्त है। काल और क्षेत्र की अपेक्षा उसकी अनन्तता पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। द्रव्य की अपेक्षा से मुक्त तैजसशरीर समस्त जीवो से अनन्तगुणे हैं, क्योकि प्रत्येक जीव का एक तैजसशरीर होता है। जीवो के द्वारा जब उनका परित्याग कर दिया जाता है तो वे पूर्वोक्त प्रकार से अनन्त भेदो वाले हो जाते है और उनका असख्यातकालपर्यन्त उस पर्याय मे अवस्थान रहता है, इतने समय मे जीवो द्वारा परित्यक्त (मुक्त) अन्य तैजसशरीर प्रतिजीव असख्यात पाए जाते हैं, और वे सभी पूर्वोक्त प्रकार से अनन्त भेदो वाले हो जाते है। अत उन सबकी सख्या समस्त जीवो से अनन्तगुणी कही गई है।

क्या समस्त मुक्त तैजसशरीरो की सख्या जीववर्गप्रमाण होती है? इस शका का समाधान करते हुए शास्त्रकार कहते है- वे जीववर्ग के अनन्तभागप्रमाण होते है। वे समस्त मुक्ततैजसशरीर जीववर्गप्रमाण तो तब हो पाते, जबकि एक-एक जीव के तैजसशरोर सर्वजीवराशिप्रमाण होते, या उससे कुछ अधिक होते और उनके साथ सिद्धजीवो के अनन्त भाग की पूर्ति होती। उसी राशि का उसी राशि से गुणा करने पर वर्ग होता है। जैसे ४ को ४ से गुणा करने पर (४×४=१६) सोलह सख्या वाला वर्ग होता है। किन्तु एक-एक जीव के मुक्त तैजसशरीर सर्वजीवराशि-प्रमाण या उससे कुछ अधिक नही हो सकते, अपितु उससे बहुत कम ही होते हे और वे भी असख्यातकाल तक ही रहते है। उतने काल मे जो अन्य मुक्त तैजसशरीर होते है, वे भी थोडे ही होते हैं, क्योकि काल थोडा है। इस कारण मुक्त तैजसशरीर जीववर्गप्रमाण नही होते, किन्तु जीववर्ग के अनन्त-भागमात्र ही होते है।

बद्ध-मुक्त कार्मणशरीरो का परिमाण— भी तैजसशरीरो के समान ही समझना चाहिए। क्योकि तैजस और कार्मणशरीरो की सख्या समान है।[1]

नैरयिकों के बद्ध-मुक्त पंच शरीरों की प्ररूपणा

९११ [१] णेरइयाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं णत्थि। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं अणंता जहा ओरालियमुक्केल्लगा (सु. ९१० [१]) तहा भाणियव्वा।

[९११-१ प्र] भगवन्! नैरयिको के कितने औदारिकशरीर कहे गए हैं?

[९११-१ उ] गौतम! (उनके औदारिकशरीर) दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—बद्ध और मुक्त। उनमे से जो बद्ध औदारिकशरीर हैं, वे उनके नही होते। जो मुक्त औदारिकशरीर हैं, वे (उनके) अनन्त होते है, जैसे (सू ९१०-१ मे) (औघिक) औदारिक मुक्त

---

१. प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्रांक २७० से २७४ तक

शरीरों के विषय में कहा है, उसी प्रकार (यहाँ—नैरयिको के मुक्त औदारिकशरीरो के विषय मे) भी कहना चाहिए।

[२] णेरइयाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते ण असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहि अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पतरस्स असंखेज्जतिभागो, तासि ण सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूल बीयवग्गमूल-पडुप्पणं, अहव ण अंगुलबितियवग्गमूलघणप्पमाणमेत्ताओ सेढीओ। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं जहा ओरालियस्स मुक्केल्लगा (सु. ९११ [१]) तहा भाणियव्वा।

[९११-२ प्र.] भगवन् ! नैरयिको के वैक्रियशरीर कितने कहे गए है ?

[९११-२ उ] गौतम ! (नैरयिको के वैक्रियशरीर) दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—बद्ध और मुक्त। उनमे जो बद्ध (वैक्रियशरीर) है, वे असख्यात है। कालत —(वे) असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालो मे अपहृत होते है। क्षेत्रत (वे) असख्यात श्रेणी-प्रमाण है। (श्रेणी) प्रतर का असख्यातवा भाग है। उन श्रेणियो की विष्कम्भसूची (विस्तार की अपेक्षा मे एक प्रदेशी श्रेणी) अगुल के प्रथम वर्गमूल को दूसरे वर्गमूल मे गुणित (करने पर निष्पन्न राशि जितनी) होती है अथवा अगुल के द्वितीय वर्गमूल के घन-प्रमाणमात्र श्रेणियो जितनी है तथा जो (नैरयिको के) मुक्त वैक्रियशरीर है, उनके परिमाण के विषय मे (नारको के) मुक्त औदारिक शरीर के समान (९११-१ के अनुसार) कहना चाहिए।

[३] णेरइयाण भते ! केवतिया आहारगसरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। त जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। एव जहा ओरालिया बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य भणिया (सु. ९११[१]) तहेव आहारगा वि भाणियव्वा।

[९११-३ प्र] भगवन् ! नैरयिको के आहारकशरीर कितने कहे गए है ?

[९११-३ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—बद्ध और मुक्त। जैसे (नारको के) औदारिक बद्ध और मुक्त (सू. ९११-१ मे) कहे गए हैं, उसी प्रकार (नैरयिको के बद्ध और मुक्त) आहारकशरीरो के विषय मे कहना चाहिए।

[४] तेया-कम्मगाइं जहा एतेसिं चेव वेउव्वियाइं।

[९११-४] (नारको के) तैजस-कार्मण शरीर इन्ही के वैक्रियशरीरो के समान कहने चाहिए।

विवेचन—नैरयिको के बद्ध-मुक्त पच शरीरो की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (सू ९११-१ से ४) मे नैरयिको के बद्ध और मुक्त पच शरीरो के परिमाण के विषय मे प्ररूपणा की गई है।

नैरयिको के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो की प्ररूपणा—नैरयिको के बद्ध औदारिकशरीर नही होते, क्योकि जन्म से ही उनमे औदारिकशरीर सभव नही है। उनके मुक्त औदारिकशरीरो का कथन पूर्वोक्त औधिक मुक्त औदारिकशरीरो के समान समझना चाहिए।

नारकों के बद्ध-मुक्त वैक्रियशरीरों की प्ररूपणा—नारको के बद्ध वैक्रियशरीर उतने ही हैं, जितने नैरयिक हैं, क्योंकि प्रत्येक नारक का एक बद्ध वैक्रियशरीर होता है। नारक जीवो की संख्या असख्यात होने से उनके बद्ध वैक्रियशरीरो की संख्या भी असख्यात ही है। इस असंख्यातता को काल और क्षेत्र से प्ररूपणा करते हुए शास्त्रकार कहते है—**कालतः**—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीकालो के एक-एक समय मे यदि एक-एक शरीर का अपहरण किया जाए तो असख्यात उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो मे उन सब शरीरो का अपहरण होता है। दूसरे शब्दो मे कहे तो असख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियो के जितने समय है, उतने ही नारको के बद्ध वैक्रियशरीर होते हैं। **क्षेत्रतः**—वे असंख्यातश्रेणी-प्रमाण है और प्रतर का असख्यातवाँ भाग ही श्रेणी कहलाती है। ऐसी असख्यात श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उतने ही नारको के बद्ध वैक्रियशरीर होते है।

अब प्रश्न यह है कि सकल (सम्पूर्ण) प्रतर मे भी असख्यात श्रेणियाँ होती है, प्रतर के अर्द्धभाग मे भी और तृतीय (तिहाई) भाग आदि मे भी असख्यात श्रेणियाँ होती है, ऐसी स्थिति मे यहाँ कितनी सख्या वाली श्रेणियाँ समझी जाएँ? इसी जिज्ञासा का समाधान करने के लिए मूलपाठ मे कहा गया है—प्रतर का असख्यातवाँ भाग। अर्थात्—प्रतर के असख्यातवे भाग मे जितनी श्रेणियाँ होती हैं, उतनी ही श्रेणियाँ यहाँ ग्रहण करनी चाहिए। फिर यहाँ उनका विशेष परिमाण बतलाने के लिए कहा गया है—उन श्रेणियो की विष्कम्भ सूची अर्थात् विस्तार को लेकर सूची=एकप्रादेशिकी श्रेणी उतनी होती है, 'जितनी अगुल के प्रथम वर्गमूल को द्वितीय वर्गमूल से गुणा करने पर (जो) राशि निष्पन्न होती है। आशय यह है कि एक अगुल-प्रमाणमात्र क्षेत्र के प्रदेशो की जितनी प्रदेशराशि होती है, उसके असख्यात वर्गमूल होते है। यथा—प्रथमवर्गमूल का भी जो वर्गमूल होता है, वह द्वितीय वर्गमूल होता है, उस द्वितीय वर्गमूल का जो वर्गमूल होता है, वह तृतीय वर्गमूल होता है, इस प्रकार उत्तरोत्तर असख्यात वर्गमूल होते हैं। अत प्रस्तुत मे प्रथम वर्गमूल को दूसरे वर्गमूल के साथ गुणित करने पर जितने प्रदेश होते हैं, उतने प्रदेशो की सूची की बुद्धि से कल्पना कर ली जाए। तत्पश्चात् विस्तार मे उसे दक्षिण-उत्तर मे लम्बी स्थापित कर ली जाए। वह स्थापित की हुई सूची जितनी श्रेणियो को स्पर्श करती है, उतनी श्रेणियाँ यहाँ ग्रहण कर लेनी चाहिए। उदाहरणार्थ—यो तो एक अगुलमात्र क्षेत्र मे असख्यात प्रदेशराशि होती है, फिर भी असत्कल्पना से उसकी सख्या २५६ मान ले। इस २५६ सख्या का प्रथम वर्गमूल सोलह (२×५=१०+६=१६) होता है। दूसरा वर्गमूल ४ और तृतीय वर्गमूल २ होता है। इनमे से जो द्वितीय वर्गमूल चार सख्या वाला है, उसके साथ सोलह सख्या वाले प्रथम वर्गमूल को गुणित करने पर ६४ (चौसठ) सख्या आती है। बस, इतनी ही इसकी श्रेणियाँ समझनी चाहिए। इस बात को शास्त्रकार प्रकारान्तर से कहते है—अथवा अगुल के द्वितीय वर्गमूल के घन-प्रमाण (घन जितनी) श्रेणियाँ समझनी चाहिए। इसका आशय यह है कि एक अगुलमात्र क्षेत्र मे जितने प्रदेश होते हैं, उन प्रदेशो की राशि के साथ द्वितीय वर्गमूल का, अर्थात्—असत्कल्पना से चार का जो घन हो, उतने प्रमाण वाली श्रेणियाँ समझनी चाहिए। जिस राशि का जो वर्ग हो, उसे उसी राशि से गुणा करने पर 'घन' होता है। जैसे—दो का घन आठ है। वह इस प्रकार है—दो राशि का वर्ग चार है, उस को (चार को) दो के साथ गुणा करने पर आठ सख्या होती है। इसलिए दो राशि का घन आठ हुआ। इसी प्रकार यहाँ पर भी चार (४) राशि का वर्ग सोलह होता है, उस को (सोलह को) चार राशि के साथ गुणा करने पर चार का घन वही चौसठ (६४) आता है।

इस तरह इन दोनो प्रकार (तरीको) मे कोई वास्तविक भेद नही है। यहाँ वृत्तिकार एक तीसरा प्रकार भी बताते हैं—अंगुलप्रमाण क्षेत्र के प्रदेशो की राशि को अपने प्रथम वर्गमूल के साथ गुणा करने पर जितनी प्रदेशराशि होती है, उतने ही प्रमाण वाली सूची जितनी श्रेणियो को स्पर्श करती है, उतनी श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश हो, उतने ही नारको के बद्ध वैक्रियशरीर होते हैं। नारको के मुक्त वैक्रियशरीर की प्ररूपणा उनके मुक्त औदारिकशरीरो के समान समझनी चाहिए।

नारकों के बद्ध-मुक्त आहारकशरीर—जैसे नारको के बद्ध औदारिकशरीरो के विषय मे कहा गया है, वैसा ही उनके बद्ध आहारकशरीर के विषय मे भी समझना चाहिए। नारको के बद्ध आहारकशरीर होते ही नही, क्योकि उनमे आहारकलब्धि सम्भव नही है। आहारकशरीर तो केवल आहारकलब्धिसम्पन्न चतुर्दश पूर्वधारी मुनियो को ही होता है। नैरयिको के मुक्त आहारकशरीरो के विषय मे पूर्ववत् समझना चाहिए।[1]

भवनवासियों के बद्ध-मुक्त शरीरो का परिमाण

९१२. [१] असुरकुमाराण भते ! केवतिया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहा णेरइयाण ओरालिया भणिया (सु. ९११ [१]) तहेव एतेसिं पि भाणियव्वा।

[९१२-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमारो के कितने औदारिकशरीर कहे गए है ?

[९१२-१ उ] गौतम ! जैसे नैरयिको के (बद्ध-मुक्त) औदारिकशरीरो के विषय मे (सू ९११-१ मे) कहा गया है, उसी प्रकार इनके (असुरकुमारो के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो के) विषय मे भी कहना चाहिए।

[२] असुरकुमाराण भंते ! केवतिया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ ण जे ते बद्धेल्लगा ते ण असखेज्जा, असखेज्जाहिं उस्सप्पिणि ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असखेज्जाओ सेढीओ पतरस्स असंखेज्जतिभागो, तासि ण सेढीण विक्खभसूई अगुलपढमवग्गमूलस्स सखेज्जतिभागो। तत्थ ण जे ते मुक्केल्लगा ते ण जहा ओरालियस्स मुक्केल्लगा तहा भाणियव्वा (सु. ९१० [१])।

[९१२-२ प्र] भगवन् ! असुरकुमारो के वैक्रियशरीर कितने कहे गये है ?

[९१२-२ उ] गौतम ! (वे) दो प्रकार के कहे गए है -बद्ध और मुक्त। उनमे जो बद्ध है, वे असख्यात है। काल की अपेक्षा से असख्यात उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो मे वे अपहृत होते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा से असख्यात श्रेणियो (जितने) है। (वे श्रेणिया) प्रतर का असख्यातवां भाग (प्रमाण है।) उन श्रेणियो की विष्कम्भसूची अगुल के प्रथम वर्गमूल का सख्यातवां भाग (प्रमाण) है। उनमे जो (असुरकुमारो के) मुक्त (वैक्रिय) शरीर है, उनके विषय मे जैसे (सू ९१०-१ मे) मुक्त औदारिक शरीरो के विषय मे कहा गया है, उसी तरह कहना चाहिए।

---

१ (क) प्रज्ञापना सूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक २७४-२७५

(ख) 'अगुलबिइयवग्गमूलं पढमवग्गमूलपडुप्पण्ण' - प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक २७५ मे उद्धृत

[३] आहारयसरीरा जहा एतेसि णं चेव ओरालिया तहेव दुविहा भाणियव्वा ।

[९१२-३] (इनके) (बद्ध-मुक्त) आहारकशरीरो के विषय में, इन्ही के (बद्ध-मुक्त) दोनों प्रकार के औदारिकशरीरो की तरह प्ररूपणा करनी चाहिए।

[४] तेया-कम्मसरीरा दुविहा वि जहा एतेसि णं चेव वेउव्विया ।

[९१२-४] (इनके बद्ध-मुक्त) दोनो प्रकार के तजस और कार्मण शरीरो (का कथन) भी इन्ही के (बद्ध-मुक्त) वैक्रियशरीरो के समान समझ लेना चाहिए।

९१३. एवं जाव थणियकुमारा ।

[९१३] स्तनितकुमारो तक के बद्ध-मुक्त सभी शरीरो की प्ररूपणा भी इसी प्रकार (करनी चाहिए।)

विवेचन--**असुरकुमारादि के बद्धमुक्त शरीरों की प्ररूपणा**—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ९१२-९१३) मे असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के दसो भवनपतिदेवो के बद्ध एव मुक्त औदारिकादि पाचों शरीरो की प्ररूपणा की गई है।

असुरकुमारो के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीर— इनके बद्ध औदारिकशरीर नही होते, क्योकि नारको की तरह इनका भी भवस्वभाव इसमे बाधक कारण है। इनके मुक्त औदारिकशरीर नैरयिको की तरह समझने चाहिए।

असुरकुमारो के बद्ध-मुक्त वैक्रियशरीरों का निरूपण—इनके बद्ध वैक्रियशरीर असुरकुमार देवो की असख्यात सख्या के बराबर असख्यात है। काल से तो पूर्ववत् असख्यात उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो के समयों के तुल्य है। क्षेत्र की अपेक्षा से—असख्यात श्रेणी प्रमाण है। असख्यात श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उतने ही बद्धवैक्रियशरीर है। वे श्रेणियाँ प्रतर के असख्यात भाग-प्रमाण होती है। यहाँ नारको की अपेक्षा विशेषतर परिमाण बताते हुए शास्त्रकार कहते है उन श्रेणियो से परिमाण के लिए जो विष्कम्भसूची है, वह अगुल-प्रमाण क्षेत्र के प्रदेशो की राशि के प्रथम वर्गमूल का सख्यातवाँ भाग है। जैसे कि असत्कल्पना से एक अगुलप्रमाण क्षेत्र की प्रदेश-राशि २५६ मानी गई। उसका जो प्रथम वर्गमूल है, वह १६ सख्यावाला माना गया। उसके सख्यातवे भाग मे जितने आकाशप्रदेश हो, असत्कल्पना से पाच या छह हो, उतने प्रदेशो वाली श्रेणी परिमाण के लिए विष्कम्भसूची समझनी चाहिए। इस दृष्टि से नैरयिको की अपेक्षा असुरकुमारदेवो की विष्कम्भसूची असख्यातगुणहीन है, क्योकि नारको की श्रेणी के परिमाण के लिए गृहीत विष्कम्भसूची द्वितीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूल जितने प्रदेशो वाली है। वस्तुत. द्वितीय वर्गमूल असख्यातप्रदेशात्मक होता है। अतएव असख्यातगुणयुक्त प्रथम वर्गमूल के प्रदेशो जितनी नारको की सूची है, जबकि असुरकुमारादि की विष्कम्भसूची अगुल के प्रथम वर्गमूल के सख्यातभाग-प्रदेशरूप ही है। यह युक्तियुक्त भी है। क्योकि महादण्डक में भी समस्त भवनवासियो को रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिको से भी असख्यातगुणहीन कहा गया है। इस दृष्टि से समस्त नारको की अपेक्षा उनकी असख्यातगुणहीनता स्वत सिद्ध हो जाती है। इनके मुक्त वैक्रियशरीरो की प्ररूपणा औघिक मुक्त वैक्रियशरीरो की तरह करनी चाहिए।

इनके बद्ध-मुक्त आहारक-तैजसकार्मण शरीर—इनके आहारकशरीरो की प्ररूपणा नैरयिको की तरह, बद्ध तैजस-कार्मण बद्धवैक्रियशरीरो की तरह तथा इनके मुक्त तैजस-कार्मणशरीरों की प्ररूपणा औघिक मुक्त तैजस के समान समझनी चाहिए ।[1]

एकेन्द्रियों के बद्ध-मुक्त शरीरों की प्ररूपणा

९१४. [१] पुढविकाइयाणं भंते ! केवतिया ओरालियसरीरगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य । तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा । तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणा, सिद्धाणं अणंतभागो ।

[९१४-१ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिको के कितने औदारिकशरीर कहे गए है ?

[९१४-१ उ.] गौतम ! (वे) दो प्रकार के कहे गये है—बद्ध और मुक्त । उनमे जो बद्ध है, वे असख्यात हैं । काल की अपेक्षा से—(वे) असख्यात उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो से अपहृत होते हैं । क्षेत्र की अपेक्षा से वे असख्यात लोक-प्रमाण है । उनमे से जो मुक्त है, वे अनन्त हैं । कालत (वे) अनन्त उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो से अपहृत होते हैं । क्षेत्रत (वे) अनन्तलोक-प्रमाण है । (द्रव्यत वे) अभव्यो से अनन्तगुणे है, सिद्धो के अनन्तवे भाग है ।

[२] पुढविकाइयाणं भंते ! केवतिया वेउव्वियसरीरगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य । तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं णत्थि । तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं जहा एतेसिं चेव ओरालिया भणिया तहेव भाणियव्वा ।

[९१४-२ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिको के वैक्रियशरीर कितने कहे गए है ?

[९१४-२ उ.] गौतम ! (वे) दो प्रकार के कहे गए है—बद्ध और मुक्त । उनमे जो बद्ध हैं, वे इनके नही होते । उनमे जो मुक्त है, उनके विषय मे, जैसे इन्ही के औदारिकशरीरो के विषय मे कहा गया है, वैसे ही कहना चाहिए ।

[३] एवं आहारगसरीरा वि ।

[९१४-३] इनके आहारकशरीरो की वक्तव्यता इन्ही के वैक्रियशरीरो के समान समझनी चाहिए ।

[४] तेया-कम्मगा जहा एतेसिं चेव ओरालिया ।

[९१४-४] (इनके बद्ध-मुक्त) तैजस-कार्मणशरीरो (की प्ररूपणा) इन्ही के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो के समान समझनी चाहिए ।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २७६-२७७

९१५. एवं आउक्काइया तेउक्काइया वि ।

[९१५] इसी प्रकार अप्कायिको और तेजस्कायिको (के बद्ध-मुक्त सभी शरीरो) की वक्तव्यता (समझनी चाहिए ।)

९१६. [१] वाउक्काइयाणं भंते ! केवतिया ओरालिया सरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य । दुविहा वि जहा पुढविकाइयाणं ओरालिया (सु. ९१४ [१]) ।

[९१६-१ प्र.] भगवन् ! वायुकायिक जीवो के औदारिकशरीर कितने कहे गए हैं ?

[९१६-१ उ] गौतम ! (वे) दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—बद्ध और मुक्त । इन बद्ध और मुक्त दोनो प्रकार के औदारिकशरीरो की वक्तव्यता जैसे (सू. ९१४-१ मे) पृथ्वीकायिको के (बद्ध-मुक्त) औदारिकशरीरो की (वक्तव्यता है), तदनुसार समझना चाहिए ।

[२] वेउव्वियाण पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । त जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य । तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते ण असंखेज्जा, समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमेत्तेणं कालेण अवहीरंति णो चेव ण अवहिया सिया । मुक्केल्लगा जहा पुढविक्काइयाण (सु. ९१४ [२]) ।

[९१६-२ प्र] भगवन् ! वायुकायिको के वैक्रियशरीर कितने कहे गए हैं ?

[९१६-२ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के है—बद्ध और मुक्त । उनमे जो बद्ध है, वे असख्यात हैं । (कालत·) यदि समय-समय मे एक-एक शरीर का अपहरण किया जाए तो पल्योपम के असख्यातवे भागप्रमाण काल मे उनका पूर्णत अपहरण होता है । किन्तु कभी अपहरण किया नही गया है (उनके) मुक्त शरीरो की प्ररूपणा (सू ९१४-२ मे उल्लिखित) पृथ्वीकायिको (के मुक्त वैक्रियशरीरो) की तरह समझनी चाहिए ।

[३] आहराय-तेया-कम्मा जहा पुढविकाइयाणं (सु. ९१४ [३-४]) । तहा भाणियव्वा ।

[९१६-३] (इनके बद्ध-मुक्त) आहारक, तैजस और कार्मण शरीरो (की प्ररूपणा) (सू. ९१४-३।४ मे उल्लिखित) पृथ्वीकायिको (के बद्ध-मुक्त आहारक, तैजस और कार्मण शरीरो) की तरह करनी चाहिए ।

९१७. वणप्फइकाइयाणं जहा पुढविकाइयाणं । णवरं तेया-कम्मगा जहा ओहिया तेया-कम्मगा (सु. ९१० [४-५]) ।

[९१७] वनस्पतिकायिको (के बद्ध-मुक्त औदारिकादि शरीरो) की प्ररूपणा पृथ्वीकायिको (के बद्ध-मुक्त औदारिकादि शरीरो) की तरह समझना चाहिए । विशेष यह है कि इनके तैजस और कार्मण शरीरों का निरूपण (सू ९१०-४।५ के अनुसार) औधिक तैजस-कार्मण-शरीरो के समान करना चाहिए ।

विवेचन—एकेन्द्रियों के बद्ध-मुक्त औदारिकादि शरीरों की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. ९१४ से ९१७ तक) मे पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीवो के बद्ध और मुक्त औदारिकादि शरीरो की प्ररूपणा की गई है।

पृथ्वीकायिकों आदि के बद्ध-मुक्त औदारिक शरीर—पृथ्वी-अप् तेजस्कायिको के बद्ध औदारिकशरीर असख्यात है। काल से असंख्यात उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो के समयो के बराबर हैं, और क्षेत्र से असख्यात लोकप्रमाण हैं। इस सम्बन्ध मे युक्ति पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। इनके मुक्त औदारिकशरीर औघिक मुक्त औदारिकशरीरो के समान समझना चाहिए।

पृथ्वीकायिको आदि के वैक्रिय-आहारक-तैजस-कार्मणशरीरो की प्ररूपणा—इनमे वैक्रियलब्धि एव आहारकलब्धि का अभाव होने से इनके बद्ध-वैक्रिय एव आहारकशरीर नही होते। मुक्त आहारक एवं वैक्रिय शरीरो का कथन मुक्त औदारिकशरीरवत् समझना चाहिए। इनके तैजस और कार्मण शरीरो की प्ररूपणा इन्ही के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो के समान जाननी चाहिए।

वायुकायिकों के बद्ध-मुक्त पांचो शरीरो की प्ररूपणा वायुकायिको के बद्ध-मुक्त औदारिक पृथ्वीकायिको के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो की तरह समझना चाहिए। वायुकाय मे वैक्रिय शरीर पाया जाता है, अत वायुकायिको के बद्ध वैक्रियशरीर असख्यात होते है। काल की अपेक्षा से यदि प्रतिसमय एक-एक वैक्रियशरीर का अपहरण किया जाये तो पल्योपम के असख्यातवे भाग काल मे उनका पूर्णतया अपहरण हो। तात्पर्य यह कि पल्योपम के असख्यातवे भाग काल के जितने समय हैं, उतने ही वायुकायिको के बद्ध वैक्रियशरीर होते है। वायुकायिक जीवो के सूक्ष्म और बादर ये दो-दो भेद है, फिर उनके प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो-दो भेद है। इनमे से बादर-पर्याप्त-वायुकायिको के अतिरिक्त शेष तीनो मे प्रत्येक असख्यात लोकाकाशप्रमाण है, बादर-पर्याप्त-वायुकायिक प्रतर के असख्यात-भाग-प्रमाण है। इनमे से तीन प्रकार के वायुकायिको के वैक्रियलब्धि नही होती, सिर्फ बादर वायुकायिको मे से भी सख्यातभागमात्र मे ही वैक्रियलब्धि होती है। क्योकि पृच्छा के समय पल्योपम के असख्येयभागमात्र ही वैक्रियशरीर वाले पाए जाते हैं। अत सिर्फ इनके ही वैक्रियशरीर होता है, अन्य तीनो के नही। वायुकायिको के मुक्त वैक्रियशरीर के विषय मे औघिक मुक्त वैक्रियशरीर की तरह ही कहना चाहिए। इनके बद्ध तैजस-कार्मण-शरीर के विषय मे बद्ध औदारिकशरीर की तरह तथा मुक्त तैजस-कार्मणशरीर मुक्त औघिक तैजस-कार्मण-शरीर की तरह समझना चाहिए। वायुकायिको मे आहारकलब्धि का अभाव होने से केवल अनन्त मुक्त आहारकशरीर ही होते है, बद्ध नही।

वनस्पतिकायिको के बद्ध-मुक्त पांचो शरीरों की प्ररूपणा—वनस्पतिकायिको के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो का कथन पृथ्वीकायिको के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीर की तरह करना चाहिए। बद्ध-मुक्त तैजस-कार्मणशरीरो की प्ररूपणा औघिक तैजस-कार्मणशरीरो की तरह समझनी चाहिए। उनके वैक्रिय और आहारक शरीर मुक्त ही होते हैं, बद्ध नही, क्योकि उनमे वैक्रियलब्धि तथा आहारक-लब्धि नही होती।[1]

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २७७

(ख) **तिण्ह ताव रासीण वेउव्वियलद्धी चेव नत्थि। बायरपज्जत्ताणं पि सखेज्जइभागमेत्ताण लद्धी अत्थि॥**

—प्रज्ञापना चूर्णि, प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक २७७ मे उद्धृत

द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यंचों तक के बद्ध-मुक्त शरीरों का परिमाण

९१८. [१] बेइंदियाणं भंते ! केवतिया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता तं जहा- -बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य । तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते ण असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ असंखेज्जाइ सेढिवग्गमूलाइ । बेइंदियाणं ओरालियसरीरेहिं बद्धेल्लगेहिं पयरं अवहीरति, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं कालओ, खेत्तओ अंगुलपयरस्स आवलियाए य असंखेज्जइभागपलिभागेणं । तत्थ ण जे ते मुक्केल्लगा ते जहा ओहिया ओरालिया मुक्केल्लगा (सु. ९१० [१]) ।

[९१८-१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रियजीवो के कितने औदारिकशरीर कहे गए हैं ?

[९१८-१ उ] गौतम ! (वे) दो प्रकार के कहे गए हैं--बद्ध और मुक्त। उनमे जो बद्ध औदारिकशरीर है, वे असख्यात है। कालत —(वे) असख्यात उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो से अपहृत होते है। क्षेत्रतः—असख्यात श्रेणि-प्रमाण हैं। (वे श्रेणियाँ) प्रतर के असख्यात भाग (प्रमाण) है। उन श्रेणियो की विष्कम्भसूची, असख्यात कोटाकोटी योजनप्रमाण है । (अथवा) असख्यात श्रेणि वर्ग-मूल के समान होती है। द्वीन्द्रियो के बद्ध औदारिक शरीरो से प्रतर अपहृत किया जाता है। काल की अपेक्षा से --असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी-कालो से (अपहार होता है) । क्षेत्र की अपेक्षा से अगुल-मात्र प्रतर और आवलिका के असख्यात भाग प्रतिभाग-(प्रमाण खण्ड) से (अपहार होता है) । उनमे जो मुक्त औदारिक शरीर है, (उनके विषय मे) जैसे (सू ९१०-१ मे) औघिक मुक्त औदारिक शरीरो के (विषय मे कहा है), वैसे (कहना चाहिए) ।

[२] वेउव्विया आहारगा य बद्धेल्लगा णत्थि, मुक्केल्लगा जहा ओहिया ओरालिया मुक्केल्लया (सु. ९१० [१]) ।

[९१८-२ प्र] (इनके) वैक्रियशरीर और आहारकशरीर बद्ध नही होते । मुक्त (वैक्रिय और आहारक शरीरो का कथन) (सू ९१०-१ मे उल्लिखित) औघिक मुक्त औदारिकशरीरो के समान करना चाहिए।

[३] तेया-कम्मगा जहा एतेसिं चेव ओहिया ओरालिया ।

[९१८-३] (इनके बद्ध-मुक्त) तैजस-कार्मणशरीरो के विषय मे इन्ही के समुच्चय (औघिक) औदारिकशरीरो के समान (कहना चाहिए) ।

९१९. एवं जाव चउरिंदिया ।

[९१९] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रियो तक (त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियो के समस्त बद्ध-मुक्त शरीरो के विषय मे) कहना चाहिए ।

९२०. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं एवं चेव । नवरं वेउव्वियसरीरएसु इमो विसेसो—पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतिया वेउव्वियसरीरया पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य । तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखेज्जा जहा असुरकुमाराणं (सु. ९१२ [२]) । णवर तासि णं सेढीण विक्खंभसूई अंगुल-पढमवग्गमूलस्स असंखेज्जतिभागो । मुक्केल्लगा तहेव ।

[९२०] पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको के (समस्त बद्ध-मुक्त शरीरो के) विषय मे इसी प्रकार (कहना चाहिए ।) इनके (बद्ध-मुक्त) वैक्रिय शरीरो (के विषय) मे यह विशेषता है—

[प्र.] भगवन् ! पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको के कितने वैक्रियशरीर कहे हैं ?

[उ] गौतम ! वे दो प्रकार के हैं, वे इस प्रकार- बद्ध और मुक्त । उनमें जो बद्ध वैक्रियशरीर हैं, वे असंख्यात हैं, उनकी प्ररूपणा (सू ९१२-२ मे) उल्लिखित असुरकुमारो के (बद्ध-मुक्त वैक्रियशरीरो के) समान (करनी चाहिए ।) विशेष यह है कि (यहाँ) उन श्रेणियो की विष्कम्भ-सूची अगुल के प्रथम वर्गमूल का असख्यातवाँ भाग (समझना चाहिए) । इनके मुक्त वैक्रियशरीरो के विषय मे भी उसी प्रकार (औधिक मुक्त वैक्रियशरीरो के समान) समझना चाहिए ।

विवेचन द्वीन्द्रियो से तिर्यंचपंचेन्द्रियो तक के बद्ध-मुक्त शरीरो की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और तिर्यञ्चपचेन्द्रियो के बद्ध-मुक्त औदारिकादि पाचो शरीरो की प्ररूपणा की गई है ।

द्वीन्द्रियो के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरों की प्ररूपणा -द्वीन्द्रियो के बद्ध औदारिकशरीर असख्यात है । उनका काल से परिमाण इस प्रकार है—यदि उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालो के एक-एक समय मे एक-एक औदारिकशरीर का अपहरण किया जाए तो असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो मे इन सब का अपहरण सम्भव है । दूसरे शब्दो मे कहे तो असख्यात उत्सर्पिणी एव अवसर्पिणी कालों मे जितने समय होते हैं, उतने प्रमाण मे बद्ध औदारिकशरीर है । क्षेत्र की अपेक्षा से वे असख्यात श्रेणियो के बराबर हैं, अर्थात्— असख्यात श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उतने ही प्रमाण मे इनके बद्ध औदारिकशरीर है । उन श्रेणियो का परिमाणविशेष इस प्रकार है—पूर्वोक्त प्रकार से वे श्रेणियाँ प्रतर के असख्यातभाग-प्रमाण होती है । अर्थात्—प्रतर के असख्यातभाग-प्रमाण असख्यातश्रेणियाँ होती है । नारको और भवनपतियो के शरीरो के प्रतरासख्येयभाग की अपेक्षा द्वीन्द्रियो के शरीरो का प्रतरासख्येयभाग कुछ भिन्न प्रकार का है । वह इस प्रकार है—उन श्रेणियो का परिमाण निश्चित करने के लिए जो विष्कम्भ (विस्तार-) सूची मानी है, वह असख्यातकोटाकोटी योजन-प्रमाण समझनी चाहिए । अथवा—एक परिपूर्ण श्रेणी के प्रदेशो की जो राशि होती है, उसका जो प्रथम, द्वितीय, तृतीय, यावत् असख्यातवाँ वर्गमूल है, उन सबको सकलित कर लिया जाय । उन सबको सकलित करने पर जितनी प्रदेशराशि हो, उतने प्रदेशो वाली विष्कम्भसूची समझनी चाहिए । इसे एक उदाहरण के द्वारा समझिए—यद्यपि श्रेणी मे असख्यात-प्रदेश होते है, किन्तु असत्कल्पना से उन्हे मूल ६५५३६ (पैंसठ हजार पाच सौ छत्तीस) मान ले, तो उनका प्रथम वर्गमूल २५६ आता है, दूसरा वर्गमूल १६, तीसरा वर्गमूल ४ और चौथा वर्गमूल २ आता है । इन सब सख्याओ का योग २७८ होता है । असत्कल्पना से इतने प्रदेशो की सूची समझनी चाहिए ।

द्वीन्द्रिय जीवो के शरीर कितनी अवगाहना के द्वारा कितने काल मे सम्पूर्ण प्रतर को पूरा करते है ? इसका समाधान शास्त्रकार यो करते हैं—द्वीन्द्रिय जीवो के बद्ध औदारिकशरीर असख्यात

उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी-कालो में सम्पूर्ण प्रतर को पूर्ण करते हैं। **क्षेत्र और काल की अपेक्षा से परिमाण**--एक प्रादेशिकश्रेणीरूप अगुलमात्र प्रतर के असख्यातभाग-प्रतिभागप्रमाण खण्ड से यह क्षेत्रदृष्टि से परिमाण है तथा काल की दृष्टि से परिमाण -आवलिका के असख्येयभाग प्रतिभाग से—अर्थात् असख्यातवे प्रतिभाग से अपहृत होता है। इसका तात्पर्य यह है कि एक द्वीन्द्रिय के द्वारा अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण खण्ड आवलिका के असख्यातवे भाग से अपहृत होता है। द्वितीय द्वीन्द्रिय के द्वारा भी उतने ही प्रमाण वाला खण्ड उतने ही काल मे अपहृत होता है। इस प्रकार से अपहृत किया जाने वाला प्रतर समस्त द्वीन्द्रियो द्वारा असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालो मे सम्पूर्ण अपहृत होता है।

द्वीन्द्रियो के मुक्त औदारिकशरीरो की प्ररूपणा समुच्चय मुक्त औदारिकशरीरो के समान समझनी चाहिए।

द्वीन्द्रियों के बद्ध-मुक्त वैक्रिय, आहारक, तैजस-कार्मणशरीरो की प्ररूपणा द्वीन्द्रियो के बद्ध वैक्रिय और आहारक शरीर नही होते। मुक्त वैक्रिय और आहारक शरीरो की प्ररूपणा समुच्चय मुक्त औदारिक शरीरवत् समझनी चाहिए। इनके बद्ध मुक्त तैजस-कार्मणशरीरो की प्ररूपणा इन्ही के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो की तरह जाननी चाहिए।

त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियों के बद्ध-मुक्त औदारिकादिशरीर—द्वीन्द्रियो के बद्ध-मुक्त शरीरो के समान ही इनके बद्ध-मुक्त सब शरीरो की प्ररूपणा करनी चाहिए।

पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के बद्ध-मुक्त शरीरो की प्ररूपणा पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो का कथन द्वीन्द्रियो के समान ही समझना चाहिए। बद्ध-वैक्रिय शरीर असख्यात होते है। काल और क्षेत्र की अपेक्षा से परिमाण की सब प्ररूपणा असुरकुमारो के समान समझनी चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि असुरकुमारो की वक्तव्यता मे श्रेणियो की विष्कम्भसूची का प्रमाण अगुल के प्रथम वर्गमूल का सख्यातवाँ भाग बतलाया था, जबकि यहाँ असख्यातवाँ भाग समझना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि एक अगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशो की राशि के प्रथम वर्गमूल के असख्यातवे भाग मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उतने प्रदेशरूप सूची की जो श्रेणियाँ स्पृष्ट है उन श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उतने प्रमाण मे ही तिर्यञ्चपचेन्द्रियो के बद्धवैक्रियशरीर होते हैं। इनके मुक्त वैक्रियशरीरो की प्ररूपणा औघिक (समुच्चय) वैक्रियशरीरो के समान समझनी चाहिए। बद्ध आहारकशरीर इनके नही होते। मुक्त आहारकशरीर की प्ररूपणा पूर्ववत् समझनी चाहिए। इनके बद्ध तैजस-कार्मण-शरीर इन्ही के बद्ध औदारिकशरीरवत् है। मुक्त तैजस-कार्मण-शरीर समुच्चय मुक्त तैजस-कार्मण-शरीरवत् समझना चाहिए।[1]

मनुष्यों के बद्ध-मुक्त औदारिकादि शरीरों का परिमाण

९२१. [१] मणुस्साणं भंते! केवतिया ओरालियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं सिय संखेज्जा सिय असखेज्जा, जहण्णपए सखेज्जा संखेज्जाओ कोडाकोडीओ तिजमलपयस्स

१ (क) प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्राक २७७ से २९७ तक

(ख) अंगुलमूलासंखेयभागप्पमियाउ होंति सेढीओ।
उत्तरविउव्वियाण तिरियाणं सन्निपज्जाणं॥ —प्रज्ञापना

उवरिं चउजमलपयस्स हेट्ठा, अहव णं छट्ठो वग्गो पंचमवग्गपडुप्पण्णो, अहव णं छण्णउईछेयणगदाई रासी; उक्कोसपदे असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ रूवपक्खित्तेहिं मणुस्सेहिं सेढी अवहीरति, तीसे सेढीए काल-खेत्तेहिं अवहारो मग्गिज्जइ—असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं कालओ, खेत्तओ अंगुलपढमवग्गमूलं ततियवग्गमूलपडुप्पण्णं। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते जहा ओरालिया ओहिया मुक्केल्लगा (सु. ९१० [१])।

[९२१-१ प्र] भगवन्! मनुष्य के औदारिकशरीर कितने कहे गए हैं?

[९२१-१ उ.] गौतम! (वे) दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—बद्ध और मुक्त। उनमें से जो बद्ध हैं, वे कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात होते हैं। जघन्य पद में संख्यात होते हैं। संख्यात कोटाकोटी तीन यमलपद के ऊपर तथा चार यमलपद से नीचे होते हैं। अथवा पंचमवर्ग से गुणित (प्रत्युत्पन्न) छठे वर्ग-प्रमाण होते हैं, अथवा छियानवै (९६) छेदनकदायी राशि (जितनी संख्या है।) उत्कृष्टपद में असंख्यात हैं। कालतः—(वे) असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं। क्षेत्र से—एक रूप जिनमें प्रक्षिप्त किया गया है, ऐसे मनुष्यों से श्रेणी अपहृत होती है, उस श्रेणी की काल और क्षेत्र से अपहार की मार्गणा होती है—कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकालों से (असंख्यात मनुष्यों का) अपहार होता है। क्षेत्रतः—(वे) तीसरे वर्गमूल से गुणित अंगुल का प्रथमवर्गमूल (-प्रमाण होते है।) उनमें जो मुक्त औदारिकशरीर हैं, उनके विषय में (सू ९१०-१ में उल्लिखित) औधिक मुक्त औदारिकशरीरों के समान जानना चाहिए।

[२] वेउव्वियाणं भंते! पुच्छा?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं संखेज्जा, समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा संखेज्जेणं कालेणं अवहीरंति णो चेव णं अवहिया सिया। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं जहा ओरालिया ओहिया (सु.९१० [१])।

[९२१-२ प्र.] भगवन्! मनुष्यों के वैक्रिय शरीर कितने प्रकार के कहे गए है?

[९२१-२ उ.] गौतम! (वे) दो प्रकार के कहे गए है—बद्ध और मुक्त। उनमें जो बद्ध है, वे संख्यात है। समय-समय में (वे) अपहृत होते-होते संख्यातकाल में अपहृत होते है, किन्तु अपहृत नहीं किए गए हैं। उनमें से जो मुक्त वैक्रियशरीर हैं, उनके विषय में (सू ९१०-१ में उल्लिखित) औधिक औदारिकशरीरों के समान समझना चाहिए।

[३] आहारगसरीरा जहा ओहिया (सु. ९१० [३])।

[९२१-३] (इनके बद्ध-मुक्त) आहारकशरीरों की प्ररूपणा (सू ९१०-३ में उल्लिखित) औधिक आहारकशरीरों के समान समझनी चाहिए।

[४] तेया-कम्मया जहा एतेसिं चेव ओरालिया।

[९२१-४] (मनुष्यों के बद्ध-मुक्त) तैजस-कार्मणशरीरों का निरूपण इन्हीं के (बद्ध-मुक्त) औदारिकशरीरों के समान (समझना चाहिए।)

विवेचन—मनुष्यों के बद्ध-मुक्त औदारिकादि शरीरों का परिमाण—प्रस्तुत सूत्र (९२१-१-४) मे मनुष्यो के बद्ध और मुक्त औदारिकादि पाच शरीरो की प्ररूपणा की गई है।

मनुष्यो के बद्ध-मुक्त शरीरों की प्ररूपणा—मनुष्यो के बद्ध औदारिक शरीर—कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—गर्भज और सम्मूर्च्छिम। गर्भज मनुष्य (प्रवाहरूप से) सदा स्थायी रहते है। कोई भी काल ऐसा नहीं होता, जो गर्भज मनुष्यों से रहित हो; किन्तु सम्मूर्च्छिम मनुष्य कभी होते है, कदाचित् उनका सर्वथा अभाव हो जाता है; क्योकि सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की उत्कृष्ट आयु भी अन्तर्मुहूर्त की होती है। उनकी उत्पत्ति का अन्तर (विरहकाल) उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त प्रमाण कहा गया है। अतएव जिस काल में सम्मूर्च्छिम मनुष्य सर्वथा विद्यमान नही होते, अपितु केवल गर्भज मनुष्य ही होते हैं; उस समय बद्ध औदारिकशरीर सख्यात ही होते हैं, क्योकि गर्भज मनुष्यों को सख्या सख्यात ही है; वे महाशरीररूप मे या प्रत्येकशरीररूप मे होने से परिमितक्षेत्रवर्त्ती होते है। जब सम्मूर्च्छिम मनुष्य विद्यमान होते हैं, तब मनुष्यो की सख्या असंख्यात होती है। सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्कृष्टत श्रेणी के असख्यातवे भागवर्ती आकाशप्रदेशो को राशि-प्रमाण होते हैं। इसी दृष्टि से मूलपाठ में कहा गया है—'**जहन्नपवे संखेज्जा**।' जघन्यपद का अभिप्राय है—जहाँ सबसे थोडे मनुष्य पाए जाते है। प्रश्न होता है—क्या वे (सबसे कम मनुष्य) सम्मूर्च्छिम होते है या गर्भज ? इसके उत्तर मे यही कहा जा सकता है कि गर्भज मनुष्य ही होते है, जो सदैव स्थायी होने से सम्मूर्च्छिमो के अभाव मे सबसे थोडे पाए जाते है। उत्कृष्टपद मे गर्भज और सम्मूर्च्छिम दोनो का ही ग्रहण होता है। इस जघन्यपद से यहाँ सख्यात मनुष्यो का ग्रहण होता है, किन्तु सख्यात के भी सख्यात-भेद होते हैं, इसलिए सख्यात कहने से कितनी सख्या है, इसका विशेष बोध नही होता, इसलिए शास्त्रकार विशिष्ट सख्या निर्धारित करते है—सख्यातकोटाकोटी है। इस परिमाण को और अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से कहते है—'तीन यमलपद के ऊपर और चार यमलपद के नीचे।' इसका आशय इस प्रकार है—मनुष्यो की सख्या का प्रतिपादन करने वाले उनतीस (२९) अक आगे कहे जाएँगे। शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार आठ-आठ अको की एक 'यमलपद' सज्ञा है। अत चौबीस (२४) अकों के तीन यमलपद हुए। इसके पश्चात् (२४ अको के बाद) पाच अक-स्थान शेष रहते हैं। किन्तु चौथे यमलपद की पूर्ति आठ अको से होती है, उसमे तीन अकस्थान कम है। अत चौथा यमलपद पूरा नही होता। इसी कारण यहाँ मनुष्य-सख्याप्रतिपादक २९ अको के लिए कहा गया है—'**तीन यमलपदो के ऊपर और चार यमलपदो से नीचे**'—अर्थात् २९ अक प्रमाण। अथवा—दो वर्ग मिलकर एक यमलपद होता है। चार वर्ग मिलकर दो यमलपद होते है, तथा छह वर्ग मिलकर तीन यमलपद होते है और आठ वर्ग मिलकर चार यमलपद होते है। अत. छह वर्गों के ऊपर और सातवें वर्ग के नीचे कहे, चाहे तीन यमलपदो के ऊपर और चार यमलपदो से नीचे कहे, एक ही बात हुई।

अब इससे भी अधिक स्पष्ट रूप से मनुष्यो की सख्या का प्रतिपादन करते है—पचम वर्ग से छठे वर्ग को गुणित करने पर जो राशि निष्पन्न होती है, जघन्यपद मे उस राशिप्रमाण मनुष्यो की सख्या है। एक को एक के साथ गुणाकार करने पर गुणनफल एक ही आता है, सख्या मे वृद्धि नही होती, अत. 'एक' की वर्ग के रूप में गणना नही होती। किन्तु दो का दो के साथ गुणाकार करने पर ४ संख्या आती है, यह प्रथम वर्ग हुआ। चार के साथ चार को गुणा करने पर १६ सख्या आई,

यह द्वितीय वर्ग हुआ, फिर १६ को १६ के साथ गुणा करने पर २५६ सख्या आई, यह तृतीय वर्ग हुआ। २५६ को २५६ के साथ गुणा करने पर ६५५३६ राशि आती है, यह चौथा वर्ग हुआ। इस चौथे वर्ग को राशि का पुनः इसी राशि के साथ गुणा करने पर ४२९४९६७२९६ सख्या आती है। यह पाचवां वर्ग हुआ। पचम वर्ग की 'चार सौ उनतीस करोड, उनचास लाख, सडसठ हजार दो सौ छयानवे' राशि का इसी राशि के साथ गुणाकार करने पर १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ राशि आई, यह छठा वर्ग हुआ।[1] इस छठे वर्ग का पूर्वोक्त पचमवर्ग के साथ गुणाकार करने पर जो राशि निष्पन्न होती है, जघन्यपद में उतने हो मनुष्य है। यह राशि पूर्वोक्त २९ (उनतीस) अको मे इस प्रकार से है—७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६- ये उनतीस अक कोटाकोटी आदि के द्वारा किसी भी तरह कहे नही जा सकते। अनुयोगद्वारवृत्ति मे (विपरीत क्रम से अको की गणना होती है इस न्याय के अनुसार) यह सख्या दो गाथाओ द्वारा बताई है। अथवा पूर्वाचार्यों ने अको के प्रथम अक्षर को लेकर विपरीत क्रम से एक गाथा मे यही सख्या बताई है।[2] अब इसी सख्या को प्रकारान्तर से समझाने के लिए शास्त्रकार कहते है। **'अहव ण छण्णउईछेयणगदायी रासी'** छियानवै छेदनकदायी राशि की व्याख्या इस प्रकार है—जो आधी-आधी छेदन करते-करते छियानवै वार छेदन को प्राप्त हो और अन्त मे एक बच जाए, वह छियानवै छेदनकदायी राशि कहलाती है। यह राशि उतनी ही है, जितनी पचमवर्ग का छठे वर्ग के साथ गुणाकार करने पर होती है। वह सख्या इस प्रकार होती है- प्रथम (पूर्वोक्त) वर्ग यदि छेदा जाए तो दो छेदनक देता है पहला छेदनक दो और दूसरा छेदनक एक। दोनो को मिलाकर दो छेदनक हुए। इसी प्रकार दूसरे वर्ग के चार छेदनक होते है, क्योकि वह १६ सख्या वाला है। उसका प्रथम छेदनक ८, दूसरा ४, तीसरा २ और

---

१ चत्तारि य कोडिसया अउणत्तीस च होंति कोडीओ।
अउणावन्न लक्खा सत्तट्ठी चेव य सहस्सा ॥ १ ॥
दोय सया छण्णउया पचमवग्गो समासओ होइ।
एयस्स कतो वग्गो छट्ठो जो होइ त वोच्छ ॥ २ ॥
लक्ख कोडाकोडी चउरासीइ भवे सहस्साइ।
चत्तारि य सत्तट्ठा होति सया कोडकोडीण ॥ ३ ॥
चउयाल लक्खाइ कोडीण सत्त चेव य सहस्सा।
तिण्णि सया सत्तयरी कोडीण हुति नायव्वा ॥ ४ ॥
पचाणउई लक्खा एकावन्न भवे सहस्साइ।
छसोलसुत्तरसया एसो छट्ठो हवइ वग्गो ॥ ५ ॥
—प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्रांक २८

२ छत्तिन्नि तिन्नि सुन्न पचेव य नव य तिन्नि चत्तारि।
पचेव तिण्णि नव पच सत्त तिन्नेव तिन्नेव ॥ १ ॥
चउ छद्दो चउ एक्को पण छक्केक्कगो य अट्ठेव।
दो दो नव सत्तेव य अकट्ठाणा परा हुता ॥ —अनुयोग० वृत्ती
छ-ति-ति-सु -पण-नव-ति-च-प-ति-ण-प-स-ति-ति-चउ-छ-दो।
च-ए-प-दो-छ-ए-अ-बे-बे-ण-स पढमक्खरसतियट्ठाणा ॥ १ ॥
—प्र म वृ. पत्राक. २८१

चौथा १ छेदनक होता है। तीसरा वर्ग २५६ सख्या का है। अतः इसके ८ छेदनक होते है। इसी प्रकार चौथे वर्ग के १६ छेदनक, पाचवे वर्ग के ३२ छेदनक और छठे वर्ग के ६४ छेदनक होते है। इस प्रकार सब छेदनको का योग करने पर कुल ९६ छेदनक होते हैं, जो कि पाचवे वर्ग से छठे वर्ग को गुणित करने पर होते हैं। जिस-जिस वर्ग का जिस-जिस वर्ग के साथ गुणाकार किया जाता है, उस वर्ग में गुण्य और गुणक दोनो वर्गों के छेदनक होते है। जैसे—प्रथम वर्ग के साथ दूसरे वर्ग का गुणाकार करने पर छह छेदनक होते है। सोलह सख्या के द्वितीय वर्ग का चार सख्या वाले प्रथम वर्ग के साथ गुणाकार करने पर (१६ × ४ = ६४) चौसठ सख्या आती है। उसका प्रथम छेदनक ३२, दूसरा छेदनक १६, तीसरा छेदनक ८, चौथा छेदनक ४, पाचवां छेदनक २, और छठा छेदनक १ होता है। इस प्रकार ६ छेदनक होते हैं। इसी प्रकार आगे सर्वत्र समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार पाचवे वर्ग से छठे वर्ग का गुणाकार करने पर ९६ भग होते है, यह सिद्ध हुआ। अथवा किसी एक अक को स्थापित करके उसे छियानवे वार दुगुना-दुगुना करने पर यदि उतनी हो राशि आ जाए तो वह राशि छियानवे छेदनकदायी राशि कहलाती है। यह जघन्यपद मे मनुष्यो को सख्या कही गई। **उत्कृष्टपद मे मनुष्यो की सख्या**—इस प्रकार है · उत्कृष्टपद मे मनुष्यो की सख्या असख्यात है। **काल की अपेक्षा से परिमाण** एक-एक समय मे यदि एक-एक मनुष्य के शरीर का अपहार किया जाए तो असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काला मे उसका पूर्णरूप से अपहार होता है। **क्षेत्र की अपेक्षा से**—एक रूप प्रक्षिप्त करने पर मनुष्यो से पूर्ण एक श्रेणी का अपहार होता है। इसका तात्पर्य यह है कि उत्कृष्ट पद मे जो मनुष्य है, उनमे असत्कल्पना से एक मिला देने पर एक सम्पूर्ण श्रेणी का अपहार हो जाता है। क्षेत्र और काल से उस श्रेणी के अपहार की मार्गणा इस प्रकार है—कालतः असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालो मे असख्यात मनुष्यो का अपहार होता है। क्षेत्रत वे अगुल के तृतीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूल-प्रमाण होते है। असत्कल्पना से अगुलप्रमाण क्षेत्र के प्रदेशो की राशि २५६ होती है, जिसका प्रथम वर्गमूल सोलह होता है। उसका तृतीय वर्गमूल दो के साथ गुणा करने पर प्रदेशो की राशि (१६ × २ = ३२) बत्तीस आती है। इतनी सख्या वाले खण्डो से अपहृत की गई श्रेणी पूर्णता तक पहुच जाती है, और यही मनुष्यो की सख्या की पराकाष्ठा है।

प्रश्न होता है—एक श्रेणी का उपर्युक्त प्रमाण वाले खण्डो से अपहार करने मे असख्यात उत्सर्पिणियाँ-अवसर्पिणियां कैसे लग जाती है? इसका समाधान इस प्रकार है—क्षेत्र अतिसूक्ष्म होता है। कहा भी है—काल सूक्ष्म होता है, उससे भी सूक्ष्मतर क्षेत्र होता है, क्योकि अगुल मात्र श्रेणी मे असख्यात उत्सर्पिणियां समा जाती है।[1] अर्थात्—एक अगुल प्रमाण क्षेत्र मे जो प्रदेशराशि होती है, वह असख्यात उत्सर्पिणियो के समयो से भी अधिक होती है।

मनुष्यो के मुक्त औदारिकशरीरो की प्ररूपणा समुच्चय मुक्त औदारिकशरीरो के समान समझनी चाहिए।

मनुष्यो के बद्ध-मुक्त वैक्रियशरीर आदि की प्ररूपणा—मनुष्यो के बद्ध वैक्रियशरीर सख्यात हैं, क्योकि गर्भज मनुष्यो मे ही वैक्रियलब्धि सम्भव है, और वह भी किसी-किसी मे, सबमे नही।

१. सुहुमो स होइ कालो, तत्तो सुहुमयर हवइ खेत्त। अगुलसेढीमेत्ते उस्सप्पिणीओ असखेज्जाओ॥

—प्रज्ञा. म. वृ., पत्राक २८२

इनके मुक्त वैक्रियशरीरो का कथन औघिक मुक्त वैक्रियशरीरो के समान ही समझना चाहिए। मनुष्यों के बद्ध-मुक्त आहारकशरीरो की प्ररूपणा औघिक बद्ध-मुक्त आहारकशरीरो के समान समझनी चाहिए। मनुष्यों के बद्ध तैजस और कार्मण शरीर इन्ही के बद्ध औदारिकशरीर के समान समझने चाहिए। मुक्त तैजस-कार्मण-शरीरो की प्ररूपणा औघिक मुक्त तैजस-कार्मण-शरीरो के समान करनी चाहिए।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों के बद्ध-मुक्त औदारिकादि शरीरों की प्ररूपणा

९२२ वाणमंतराणं जहा णेरइयाण ओरालिया आहारगा य। वेउव्वियसरीरगा जहा णेरइयाणं, णवरं तासि णं सेढीणं विक्खभसूई सखेज्जजोयणसयवग्गपलिभागो पयरस्स। मुक्केल्लगा जहा ओहिया ओरालिया (सु. ९१० [१])। तेया-कम्मया जहा एएसिं चेव वेउव्विया।

[९२२] वाणव्यन्तर देवो के बद्ध-मुक्त औदारिक और आहारक शरीरो का निरूपण नैरयिको के बद्ध-मुक्त औदारिक एव आहारक शरीरो के समान जानना चाहिए। इनके वैक्रियशरीरो का निरूपण नैरयिको के समान है। विशेषता यह है कि उन (असख्यात) श्रेणियो की विष्कम्भसूची (कहनी चाहिए)। प्रतर के पूरण और अपहार मे वह सूची सख्यात योजनशतवर्ग-प्रतिभाग (खण्ड) है। (इनके) मुक्त वैक्रियशरीरो का कथन औघिक औदारिकशरीरो की तरह (सू ९१०-१ के अनुसार) समझना चाहिए। इनके बद्ध-मुक्त तैजस और कार्मण शरीरो का कथन इनके ही वैक्रियशरीरो के कथन के समान समझना चाहिए।

९२३ जोतिसियाणं एव चेव। णवर तासि णं सेढीणं विक्खभसूई बेछप्पण्णगुलसयवग्गपलिभागो पयरस्स।

[९२३] ज्योतिष्क देवो (के बद्ध-मुक्त शरीरो) की प्ररूपणा भी इसी तरह (समझनी चाहिए।) विशेषता यह है कि उन श्रेणियो की विष्कम्भसूची दो सौ छप्पन अगुल वर्गप्रमाण प्रतिभाग (खण्ड) रूप प्रतर के पूरण और अपहार मे समझना चाहिए।

९२४ वेमाणियाणं एव चेव। णवर तासि ण सेढीणं विक्खंभसूई अगुलबितियवग्गमूलं ततियवग्गमूलपडुप्पण्ण, अहव णं अंगुलततियवग्गमूलघणपमाणमेत्ताओ सेढीओ। सेस तं चेव।

॥ पण्णवणाए भगवईए बारसम सरीरपय समत्तं ॥

[९२४] वैमानिको (के बद्ध-मुक्त शरीरो) की प्ररूपणा भी इसी तरह (समझनी चाहिए।) विशेषता यह है कि उन श्रेणियो की विष्कम्भसूची तृतीय वर्गमूल से गुणित अगुल के द्वितीय वर्गमूल

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २७९ से २८२ तक

प्रमाण है अथवा अंगुल के तृतीय वर्गमूल के घन के बराबर श्रेणियाँ हैं। शेष सब पूर्वोक्त कथन के समान समझना चाहिए।

विवेचन—वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के बद्ध-मुक्त शरीरों की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रों (९२२ से ९२४ तक) मे क्रमशः वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के बद्ध-मुक्त शरीरो की प्ररूपणा की गई है।

व्यन्तरदेवो के बद्ध-मुक्त शरीरों की प्ररूपणा- व्यन्तरदेवो के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो के विषय मे नैरयिको के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो की तरह समझना चाहिए। व्यन्तरो के बद्ध वैक्रिय शरीर नारको की तरह असख्यात है। काल की अपेक्षा से एक-एक समय मे एक-एक शरीर का अपहार करने पर असंख्यात उत्सर्पिणी और असख्यात अवसर्पिणी कालो मे वाणव्यन्तरो के समस्त बद्धवैक्रियशरीरो का अपहार होता है। क्षेत्र की अपेक्षा से वे असख्यात श्रेणी प्रमाण हैं। अर्थात्—असख्यात श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उतने ही वे शरीर हैं। वे श्रेणियाँ प्रतर के असख्यात भाग है। केवल उनकी सूची मे कुछ विशेषता (अन्तर) है। उन असख्यात श्रेणियो की विष्कम्भसूची (विस्तार सूची) इस प्रकार है। जैसे महादण्डक मे पचेन्द्रिय तिर्यञ्च नपुसको से व्यन्तरदेव असख्यातगुणहीन कहे है, वैसे ही इनकी (व्यन्तरदेवो की) विष्कम्भसूची भी तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो की विष्कम्भसूची से असख्यातगुणहीन कहनी चाहिए। प्रतर के पूरण और अपहरण मे वह सूची सख्यातयोजनशतवर्ग प्रतिभाग (खण्ड) प्रमाण है। तात्पर्य यह है कि असख्यात योजन शतवर्गप्रमाण श्रेणिखण्ड मे यदि एक-एक व्यन्तर की स्थापना की जाए तो वे सम्पूर्ण प्रतर को पूर्ण करते है, अथवा यदि एक-एक व्यन्तर के अपहार मे एक-एक संख्यात-योजनशतवर्गप्रमाण श्रेणिखण्ड का अपहरण होता है, तब सभी मिलकर व्यन्तर पूर्ण होते है, उससे पर सकल प्रतर है।

वाणव्यन्तरो के मुक्त वैक्रियशरीरो का कथन मुक्त औधिक वैक्रियशरीरवत् समझना चाहिए। बद्ध-मुक्त आहारक शरीरो का कथन नैरयिको के बद्ध-मुक्त आहारकशरीरवत् समझना चाहिए। इनके बद्ध तैजस-कार्मणशरीरो का कथन इन्ही के बद्ध वैक्रियशरीरवत् समझना चाहिए। मुक्त तैजस-कार्मण शरीरो के विषय मे औधिक मुक्त तैजस-कार्मणशरीर के समान समझना चाहिए।

ज्योतिष्कदेवों के बद्ध-मुक्त शरीरो की प्ररूपणा-इनके बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो का कथन नैरयिकवत् समझना चाहिए। बद्ध वैक्रियशरीर असख्यात है। काल की अपेक्षा से मार्गणा करने पर एक समय मे एक-एक शरीर का अपहरण करने पर असख्यात-उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी-कालो मे उनका सम्पूर्णरूप से अपहार होता है। क्षेत्र की अपेक्षा असख्यात श्रेणियाँ है, वे श्रेणियाँ प्रतर के असख्यातभाग प्रमाण जाननी चाहिए। विशेष यह है कि उन श्रेणियो की विष्कम्भसूची व्यन्तरो की विष्कम्भसूची से सख्यातगुणी अधिक होती है, क्योकि महादण्डक मे व्यन्तरो से ज्योतिष्क-देव सख्यातगुणे अधिक बताए गए है। इसलिए प्रतिभाग के विषय मे भी विशेष स्पष्टतया कहते है—उन श्रेणियो की विष्कम्भसूची २५६ वर्ग प्रमाणखण्डरूप प्रतर के पूरण और अपहरण मे जानना। आशय यह है कि २५६ अगुलवर्गप्रमाण श्रेणिखण्ड मे यदि एक-एक ज्योतिष्क की स्थापना की जाए तो वे सम्पूर्ण प्रतर को पूर्ण कर पाते है। अथवा यदि एक-एक ज्योतिष्क के अपहार से एक-एक दो

सौ छप्पन अगुल वर्गप्रमाण श्रेणिखण्ड का अपहार होता है, तब सब मिलकर ज्योतिष्को की पूर्णता होती है। दूसरी ओर सकलप्रतर पूर्ण होता है। ज्योतिष्को के मुक्त वैक्रियशरीर मुक्त समुच्चयवत् और आहारकशरीर नारकवत्। शेष पूर्ववत् समझना चाहिए। वैमानिको के क्षेत्रत. वैक्रियशरीर-परिमाण असख्यातश्रेणीप्रमाण हैं। अर्थात्—असख्यात श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उतने ही शरीर हैं। इन श्रेणियो का परिमाण प्रतर का असख्यातवाँ भाग है, किन्तु नारकादि की अपेक्षा से प्रतर के असख्यातवे भाग के परिमाण मे कुछ भिन्नता है, विष्कम्भसूची तृतीयवर्गमूल (१६ × १६ = २५६) से गुणित द्वितीय वर्गमूल (४ × ४ = १६) है, अथवा अगुल के तृतीय वर्गमूल के घन के बराबर श्रेणियाँ है। शेष सब पूर्वोक्त के समान समझना चाहिए।[1]

॥ प्रज्ञापनासूत्र : बारहवाँ शरीरपद समाप्त ॥

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २८२-२८४ तक

तेरसमं परिणामपयं

तेरहवाँ परिणामपद

प्राथमिक

- यह प्रज्ञापनासूत्र का तेरहवाँ 'परिणामपद' है ।

- 'परिणाम' शब्द के यहाँ दो अर्थ अभिप्रेत है—(१) किसी भी द्रव्य का सर्वथा विनाश या सर्वथा अवस्थान न होकर एक पर्याय से दूसरे पर्याय (अवस्था) मे जाना **परिणाम** है अथवा (२) पूर्ववर्ती सत्पर्याय की अपेक्षा से विनाश और उत्तरवर्ती असत्पर्याय की अपेक्षा से प्रादुर्भाव होना **परिणाम** है ।[१] प्रस्तुत पद मे जीव और अजीव दोनों के परिणामो का विचार किया गया है ।

- भारतीय दर्शनो मे साख्य आदि दर्शन परिणामवादी है, जबकि न्याय आदि दर्शन परिणामवादी नही हैं । धर्म और धर्मी का अभेद मानने वाले दार्शनिक परिणामवाद को स्वीकार करते हैं और जो दार्शनिक धर्म और धर्मी का आत्यन्तिक भेद मानते है, उन्होने परिणामवाद को नही माना । किसी भी वस्तु का सर्वथा विनाश नही हो जाता, किन्तु उसका रूपान्तर या अवस्थान्तर होता है । पूर्वरूप का नाश होता है, तो उत्तररूप का उत्पाद होता है, यही परिणामवाद का मूलाधार है । इसीलिए जैनदर्शन के मूर्धन्य ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र मे बताया—**'तद्भाव: परिणाम'** (अर्थात्- उसका होना, यानी स्वरूप मे स्थित रहते हुए उत्पन्न तथा नष्ट होना परिणाम है । (इस दृष्टि से मनुष्यादि गति, इन्द्रिय, योग, लेश्या, कषाय, आदि विभिन्न अपेक्षाओ से जीव चाहे जिस रूप मे या अवस्था (पर्याय) मे उत्पन्न या विनष्ट होता हो उसमे आत्मत्व अर्थात् मूल जीवद्रव्यत्व ध्रुव रहता है । इसी प्रकार अजीव का अपने मूल स्वरूप मे रहते हुए विभिन्न रूपान्तरो या अवस्थान्तरो मे परिणमन होना अजीव-परिणाम है ।

- प्रस्तुत पद मे इसी परिणामिनित्यता का अनुसरण करते हुए सर्वप्रथम जीव के परिणामो के भेद-प्रभेद बताए हैं, तत्पश्चात् नारकादि चौबीस दण्डको मे उनका विचार किया गया है । तदनन्तर अजीव के परिणामो के भेद-प्रभेदो की गणना की है । अजीवपरिणामो में यहाँ सिर्फ पुद्गल के परिणामों की गणना प्रस्तुत की गई है, धर्मास्तिकायादि अरूपी द्रव्यो के परिणामो की नही है । सम्भव है, अजीवपरिणामो मे अगुरु-लघु परिणाम (जो कि एक ही प्रकार का बताया गया है) मे धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन अरूपी द्रव्यो के परिणाम का समावेश किया हो ।[३]

---

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्राक २८४

२. (क) पण्णवणासुत्त भा २, परिमाणपद की प्रस्तावना पृ ९३ (ख) तत्त्वार्थ, अ ५ सू ४१

(ग) द्वयी चेय नित्यता कूटस्थनित्यता परिणामिनित्यता च । तत्र कूटस्थनित्यता पुरुषस्य, परिणामिनित्यता गुणानाम् । —पात. भाष्य ४, ३३

३. (क) प्रज्ञापना. म. वृ , पत्राक २८९ (ख) पण्णवणासुत्तं भा. १, पृ २३०-२३१

तेरसमं परिणामपयं

तेरहवाँ परिणामपद

परिणाम और उसके दो प्रकार

९२५. कतिविहे ण भंते ! परिणामे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे परिणामे पण्णत्ते । तं जहा—जीवपरिणामे य अजीवपरिणामे य ।

[९२५ प्र] भगवन् ! परिणाम कितने प्रकार के कहे गये है ?

[९२५ उ] गौतम ! परिणाम के दो प्रकार कहे गये हैं। वे इस प्रकार—जीव-परिणाम और अजीव-परिणाम ।

विवेचन परिणाम और उसके दो प्रकार—प्रस्तुत सूत्र मे परिणाम के दो भेदो—जीव-परिमाण और अजीवपरिणाम का निरूपण किया गया है ।

'परिणाम' की व्याख्या—'परिणाम' शब्द यहाँ पारिभाषिक है। उसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ होता है परिणमन होना, अर्थात्—किसी द्रव्य की एक अवस्था बदल कर दूसरी अवस्था हो जाना । परिणाम नयो के भेद से विविध और विचित्र प्रकार का होता है। नैगम आदि अनेक नय है, परन्तु समस्त नयो के सग्राहक मुख्य दो नय हैं द्रव्यास्तिकनय और पर्यायास्तिकनय । अत द्रव्यास्तिकनय के अनुसार परिणाम (परिणमन) का अर्थ होता है—त्रिकालस्थायी (सत्) पदार्थ ही उत्तरपर्याय रूप धर्मान्तर को प्राप्त हाता है, ऐसी स्थिति मे पूर्वपर्याय का न तो सर्वथा (एकान्तरूप से) अवस्थान और न ही एकान्तरूप से विनाश ही परिणाम है । कहा भी है- परिणाम के वास्तविकरूप के ज्ञाता, द्रव्य का एक पर्याय से दूसरे पर्याय (अर्थान्तर) मे जाना ही परिणाम मानते है, क्योंकि द्रव्य का न तो सर्वथा अवस्थान होता है और न सर्वथा विनाश। किन्तु पर्यायार्थिकनय के अनुसार पूर्ववर्त्ती सत्पर्याय की अपेक्षा विनाश होना और उत्तरकालिक असत्पर्याय की अपेक्षा से प्रादुर्भाव होना परिणाम कहलाता है ।[1]

परिणाम के दो प्रकार : क्यो और कैसे ?—परिणाम वैसे तो अनेक प्रकार के होते है, किन्तु मुख्यतया दो द्रव्यो का आधार लेकर परिणाम होते है, इसलिए शास्त्रकार ने परिणाम के दो मुख्य प्रकार बताए है -जीवपरिणाम और अजीवपरिणाम। जीव के परिणाम को जीवपरिणाम और अजीव के परिणाम को अजीवपरिणाम कहते है।

१ (क) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक २८४

(ख) **'परिणमन परिणाम ।'**

'परिणामो ह्यर्थान्तरगमन, न च सर्वथा व्यवस्थानम् ।

न च सर्वथा विनाश. परिणामस्तद्विदामिष्ट: ॥१॥'

सत्पर्यायेण विनाश प्रादुर्भावोऽसद्भावपर्ययत । द्रव्याणा परिणाम प्रोक्त खलु पर्ययनयस्य ॥२॥

दशविध जीवपरिणाम और उसके भेद-प्रभेद

९२६ जीवपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दसविहे पण्णत्ते । तं जहा - गतिपरिणामे १ इंदियपरिणामे २ कसायपरिणामे ३ लेसापरिणामे ४ जोगपरिणामे ५ उवओगपरिणामे ६ णाणपरिणामे ७ दंसणपरिणामे ८ चरित्तपरिणामे ९ वेदपरिणामे १० ।

[९२६ प्र] भगवन् ! जीवपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९२६ उ] गौतम ! (जीवपरिणाम) दस प्रकार का कहा है । वह इस प्रकार —(१) गतिपरिणाम, (२) इन्द्रियपरिणाम, (३) कषायपरिणाम, (४) लेश्यापरिणाम, (५) योगपरिणाम, (६) उपयोगपरिणाम, (७) ज्ञानपरिणाम, (८) दर्शनपरिणाम, (९) चारित्रपरिणाम और (१०) वेदपरिणाम ।

९२७. गतिपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउविहे पण्णत्ते । तं जहा—णिरयगतिपरिणामे १ तिरियगतिपरिणामे २ मणुयगतिपरिणामे ३ देवगतिपरिणामे ४ ।

[९२७ प्र] भगवन् ! गतिपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९२७ उ] गौतम ! (गतिपरिणाम) चार प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार - (१) निरयगतिपरिणाम (२) तिर्यग्गतिपरिणाम (३) मनुष्यगतिपरिणाम और (४) देवगतिपरिणाम ।

९२८. इंदियपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते । तं जहा—सोइंदियपरिणामे १ चक्खिदियपरिणामे २ घाणिदियपरिणामे ३ जिब्भिदियपरिणामे ४ फासिंदियपरिणामे ५ ।

[९२८ प्र] भगवन् ! इन्द्रियपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९२८ उ.] गौतम ! पाच प्रकार का कहा गया है (१) श्रोत्रेन्द्रियपरिणाम, (२) चक्षुरिन्द्रियपरिणाम, (३) घ्राणेन्द्रियपरिणाम, (४) जिह्वेन्द्रियपरिणाम और (५) स्पर्शेन्द्रियपरिणाम ।

९२९ कसायपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते । तं जहा—कोहकसायपरिणामे १ माणकसायपरिणामे २ मायाकसायपरिणामे ३ लोभकसायपरिणामे ४ ।

[९२९ प्र] भगवन् ! कषायपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९२९ उ] गौतम ! कषायपरिणाम चार प्रकार का है । वह इस प्रकार- (१) क्रोधकषायपरिणाम, (२) मानकषायपरिणाम, (३) मायाकषायपरिणाम और (४) लोभकषायपरिणाम ।

९३० लेस्सापरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते । तं जहा—कण्हलेस्सापरिणामे १ णीललेस्सापरिणामे २ काउलेस्सापरिणामे ३ तेउलेस्सापरिणामे ४ पम्हलेस्सापरिणामे ५ सुक्कलेस्सापरिणामे ६ ।

[९३० प्र.] भगवन् ! लेश्यापरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९३० उ.] गौतम ! (लेश्यापरिणाम) छह प्रकार का कहा है, वह इस प्रकार— (१) कृष्णलेश्यापरिणाम, (२) नीललेश्यापरिणाम, (३) कापोतलेश्यापरिणाम, (४) तेजोलेश्यापरिणाम, (५) पद्मलेश्यापरिणाम और (६) शुक्ललेश्यापरिणाम।

९३१. जोगपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—मणजोगपरिणामे १ वइजोगपरिणामे २ कायजोगपरिणामे ३।

[९३१ प्र.] भगवन् ! योगपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है।

[९३१ उ.] गौतम ! (योगपरिणाम) तीन प्रकार का है—(१) मनोयोगपरिणाम, (२) वचनयोगपरिणाम और (३) काययोगपरिणाम।

९३२. उवओगपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—सागारोवओगपरिणामे य अणागारोवओगपरिणामे य।

[९३२ प्र.] भगवन् ! उपयोगपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९३२ उ.] गौतम ! (उपयोगपरिणाम) दो प्रकार का कहा है—(१) साकारोपयोगपरिणाम और (२) अनाकारोपयोगपरिणाम।

९३३. णाणपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—आभिणिबोहियणाणपरिणामे १ सुयणाणपरिणामे २ ओहिणाणपरिणामे ३ मणपज्जवणाणपरिणामे ४ केवलणाणपरिणामे ५।

[९३३ प्र.] भगवन् ! ज्ञानपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९३३ उ.] गौतम ! (ज्ञानपरिणाम) पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) आभिनिबोधिकज्ञानपरिणाम, (२) श्रुतज्ञानपरिणाम, (३) अवधिज्ञानपरिणाम, (४) मन-पर्यवज्ञानपरिणाम और (५) केवलज्ञानपरिणाम।

९३४. अण्णाणपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—मतिअण्णाणपरिणामे १ सुयअण्णाणपरिणामे २ विभंगणाणपरिणामे ३।

[९३४ प्र.] भगवन् ! अज्ञानपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९३४ उ.] गौतम ! (अज्ञानपरिणाम) तीन प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) मति-अज्ञानपरिणाम, (२) श्रुत-अज्ञानपरिणाम और (३) विभंगज्ञानपरिणाम।

९३५. दंसणपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सम्मद्दंसणपरिणामे १ मिच्छादंसणपरिणामे २ सम्मामिच्छादंसणपरिणामे ३।

[९३५ प्र.] भगवन् ! दर्शनपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९३५ उ.] गौतम ! (दर्शनपरिणाम) तीन प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) सम्यग्दर्शनपरिणाम, (२) मिथ्यादर्शनपरिणाम और (३) सम्यग्मिथ्यादर्शनपरिणाम।

९३६. चरित्तपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—सामाइयचरित्तपरिणामे १ छेदोवट्ठावणियचरित्तपरिणामे २ परिहारविसुद्धियचरित्तपरिणामे ३ सुहुमसंपरायचरित्तपरिणामे ४ अहक्खायचरित्तपरिणामे।

[९३६ प्र.] भगवन् ! चारित्रपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९३६ उ.] गौतम ! (चारित्रपरिणाम) पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) सामायिकचारित्रपरिणाम, (२) छेदोपस्थापनीयचारित्रपरिणाम, (३) परिहारविशुद्धिचारित्रपरिणाम, (४) सूक्ष्मसम्परायचारित्रपरिणाम और (५) यथाख्यातचारित्रपरिणाम।

९३७. वेयपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—इत्थिवेयपरिणामे १ पुरिसवेयपरिणामे २ णपुंसगवेयपरिणामे ३।

[९३७ प्र.] भगवन् ! वेदपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९३७ उ.] गौतम ! (वेदपरिणाम) तीन प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) स्त्रीवेदपरिणाम (२) पुरुषवेदपरिणाम और (३) नपुंसकवेदपरिणाम।

विवेचन—दशविध जीवपरिणाम और उसके भेद-प्रभेद—प्रस्तुत १२ सूत्रों (सू. ९२६ से ९३७ तक) में गतिपरिणाम आदि १० प्रकार के जीवपरिणामों का उल्लेख करके प्रत्येक के भेदों का निरूपण किया गया है।

गतिपरिणाम आदि की व्याख्या—(१) **गति-परिणाम**—नरकादि गति नामकर्म के उदय से जिसकी प्राप्ति हो, उसे 'गति' कहते हैं, नरकादिगतिरूप परिणाम, अर्थात् नारकत्व आदि पर्याय-परिणति जीव का गतिपरिणाम है। (२) **इन्द्रिय-परिणाम**—इन्दन होने से,—अर्थात्—ज्ञानरूप परम-ऐश्वर्य के योग से आत्मा 'इन्द्र' कहलाता है। जो इन्द्र का लिंग—साधन हो, वह इन्द्रिय है। इसका फलितार्थ यह हुआ कि (इन्द्र) आत्मा का जो मुख्य साधन (करण) हो, वह इन्द्रिय है। इन्द्रियरूप परिणाम इन्द्रियपरिणाम है। (३) **कषायपरिणाम**—जिसमें प्राणी परस्पर एक-दूसरे का कर्षण—हिंसा (घात) करते हैं, उसे 'कष' कहते हैं या जो कष अर्थात्—संसार को प्राप्त कराते हैं, वे कषाय हैं। जीव की कषायरूप परिणति को कषायपरिणाम कहते हैं। (४) **लेश्यापरिणाम**—लेश्या का स्वरूप आगे कहा जाएगा। लेश्यारूप परिणमन को लेश्यापरिणाम कहते हैं। (५) **योगपरिणाम**—मन, वचन एवं काय के व्यापार को योग कहते हैं। योगरूप परिणमन योगपरिणाम है। (६) **उपयोगपरिणाम**—चेतनाशक्ति के व्यापार रूप साकार-अनाकार-ज्ञानदर्शनात्मक परिणाम को कहते हैं। उपयोगरूप परिणाम उपयोगपरिणाम है। (७) **ज्ञानपरिणाम**—मतिज्ञानादिरूप परिणाम को ज्ञानपरिणाम कहते हैं। (८) **दर्शनपरिणाम**—सम्यग्दर्शन आदि रूप परिणाम दर्शन-परिणाम है।

(९) **चारित्रपरिणाम**—जीव का सामायिक-आदि चारित्ररूप परिणाम चारित्रपरिणाम है।
(१०) **वेदपरिणाम**—स्त्रीवेद आदि के रूप में जीव का परिणमन वेदपरिणाम है।

दशविध जीवपरिणामों के क्रम की संगति औदयिक आदि भाव के आश्रित सभी भाव गतिपरिणाम के विना प्रादुर्भूत नहीं होते। इसलिए सर्वप्रथम गतिपरिणाम का प्रतिपादन किया गया है। गतिपरिणाम के होने पर इन्द्रियपरिणाम अवश्य होता है, इसलिए उसके पश्चात् इन्द्रियपरिणाम कहा है। इन्द्रियपरिणाम के पश्चात् इष्ट-अनिष्ट विषय के सम्पर्क से राग-द्वेषपरिणाम उत्पन्न होता है। अतः इसके बाद कषायपरिणाम कहा है। कषायपरिणाम लेश्यापरिणाम का अविनाभावी है किन्तु लेश्यापरिणाम कषायपरिणाम के विना भी होता है। इसलिए कषायपरिणाम के पश्चात् लेश्यापरिणाम का निर्देश है। लेश्यापरिणाम योगपरिणामात्मक है, इसलिए लेश्यापरिणाम के अनन्तर योगपरिणाम का निर्देश किया है। योगपरिणत संसारी जीवों का उपयोगपरिणाम होता है, इसलिए योगपरिणाम के पश्चात् उपयोगपरिणाम का क्रम है। उपयोगपरिणाम होने पर ज्ञान-परिणाम उत्पन्न होता है। इस कारण उपयोगपरिणाम के अनन्तर ज्ञानपरिणाम कहा है। ज्ञानपरिणाम के दो रूप है—सम्यग्ज्ञानपरिणाम और मिथ्याज्ञानपरिणाम। ये दोनों परिणाम क्रमशः सम्यक्त्व, मिथ्यात्व (सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन) के विना नहीं होते, इसलिए ज्ञानपरिणाम के अनन्तर दर्शन-परिणाम कहा है। सम्यग्दर्शन-परिणाम के होने पर जीवों द्वारा जिन भगवान् के वचनश्रवण से अपूर्व-अपूर्व संवेग का आविर्भाव होने पर चारित्रवरणकर्म के क्षय-क्षयोपशम से चारित्रपरिणाम उत्पन्न होता है। इसलिए दर्शनपरिणाम के अनन्तर चारित्रपरिणाम कहा गया है। चारित्रपरिणाम के प्रभाव से महासत्त्वपुरुष वेदपरिणाम का विनाश करते हैं, इसलिए चारित्रपरिणाम के अनन्तर वेद-परिणाम का प्रतिपादन किया गया है।[1]

नैरयिकों में दशविध-परिणामों की प्ररूपणा

९३८ णेरइया गतिपरिणामेण णिरयगतिया, इंदियपरिणामेण पंचिंदिया, कसायपरिणामेणं कोहकसाई वि जाव लोभकसाई वि, लेस्सापरिणामेणं कण्हलेस्सा वि णीललेस्सा वि काउलेस्सा वि, जोगपरिणामेण मणजोगी वि वइजोगी वि कायजोगी वि, उवओगपरिणामेण सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि, णाणपरिणामेणं आभिणिबोहियणाणी वि सुयणाणी वि ओहिणाणी वि, अण्णाण-परिणामेण मतिअण्णाणी वि सुयअण्णाणी वि विभंगणाणी वि, दंसणपरिणामेणं सम्मद्दिट्ठी वि मिच्छ-दिट्ठी वि सम्मामिच्छद्दिट्ठी वि, चरित्तपरिणामेण णो चरित्ती णो चरित्ताचरित्ती अचरित्ती, वेद-परिणामेणं णो इत्थिवेयगा णो पुरिसवेयगा णपुंसगवेयगा।

[९३८] नैरयिक जीव गतिपरिणाम की अपेक्षा नरकगतिक (नरकगति वाले) हैं, इन्द्रिय-परिणाम से पचेन्द्रिय है, कषायपरिणाम से क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी है, लेश्यापरिणाम से कृष्णलेश्यावान् भी है, नीललेश्यावान् भी और कापोतलेश्यावान् भी हैं, योगपरिणाम से वे मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी भी है, उपयोगपरिणाम से साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग) वाले भी हैं, और अनाकारोपयोग (दर्शनोपयोग) वाले भी है, ज्ञानपरिणाम से (वे) आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानी भी है, श्रुतज्ञानी भी हैं और अवधिज्ञानी भी हैं, अज्ञानपरिणाम से (वे) मति-अज्ञानी भी हैं,

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्रांक २८५

श्रुत अज्ञानी भी और विभंगज्ञानी भी हैं; दर्शनपरिणाम से वे सम्यग्दृष्टि भी हैं, मिथ्यादृष्टि भी हैं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी हैं , चारित्रपरिणाम से (वे) न तो चारित्री हैं, न चारित्राचारित्री है, किन्तु अचारित्री हैं, वेदपरिणाम से नारकजीव न स्त्रीवेदी है, न पुरुषवेदी, किन्तु नपुंसकवेदी है।

विवेचन—नैरयिकों में दशविधपरिणामों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (९३८) मे जीवपरिणामो के दस प्रकारो मे से नारको मे कौन-कौन-सा परिणाम किस रूप मे पाया जाता है, इसकी प्ररूपणा की गई है।

नैरयिकों में तीन लेश्याएँ ही क्यो ?—नारको मे प्रारम्भ की तीन लेश्याएँ होती हैं, शेष तीन लेश्याएँ नही होती। इनमे से भी रत्नप्रभा और शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे कापोतलेश्या, वालुकाप्रभा के नारको मे कापोत और नीललेश्या, पकप्रभापृथ्वी के नारको मे नीललेश्या, धूमप्रभा-पृथ्वी के नारको में नील और कृष्णालेश्या तथा तम·प्रभा और तमस्तम.प्रभापृथ्वी के नारको मे सिर्फ कृष्णलेश्या ही होती है। इसलिए लेश्यापरिणाम की दृष्टि से समुच्चय नारको को प्रारम्भ की तीन लेश्याओ वाला कहा है।

नारको में चारित्रपरिणाम क्यों नहीं ?—चारित्रपरिणाम की दृष्टि से नारकजीव न तो चारित्री होते हैं और न ही चारित्राचारित्री (देशचारित्री), वे अचारित्री ही रहते है। सम्पूर्ण चारित्र मनुष्यो के ही सम्भव है तथा देशचारित्र मनुष्य और तिर्यञ्चपचेन्द्रिय मे ही हो सकता है, इसलिए नारको मे चारित्रपरिणाम बिलकुल नही होता।

वेदपरिणाम से नारक नपुंसकवेदी ही क्यों ?—नारक न तो स्त्री और न पुरुष होते है; इसलिए नारक सिर्फ नपुंसकवेदी ही होते हैं। तत्त्वार्थसूत्र मे भी कहा है—'नारक और सम्मूर्च्छिम जीव नपुंसक होते हैं।'[1]

असुरकुमारादि भवनवासियों की परिणामसम्बन्धी प्ररूपणा

९३९. [१] असुरकुमारा वि एवं चेव। नवरं देवगतिया, कण्हलेसा वि जाव तेउलेसा वि, वेदपरिणामेणं इत्थिवेयगा वि पुरिसवेयगा वि, णो णपुंसगवेयगा। सेसं तं चेव।

[९३९-१] असुरकुमारो की (परिणामसम्बन्धी वक्तव्यता) भी इसी प्रकार जाननी चाहिए। विशेषता यह है कि (वे गतिपरिणाम से) देवगतिक होते हैं, (लेश्यापरिणाम से) कृष्ण लेश्यावान् भी होते हैं तथा नील, कापोत एव तेजोलेश्या वाले भी होते हैं, वेदपरिणाम से वे स्त्रीवेदक भी होते है, पुरुषवेदक भी होते हैं, किन्तु नपुंसकवेदक नही होते। (इसके अतिरिक्त) शेष (सब) कथन उसी तरह (पूर्ववत्) समझना चाहिए।

[२] एव जाव थणियकुमारा।

[९३९-२] इसी प्रकार (असुरकुमारो के समान नागकुमारो से लेकर) स्तनितकुमारो तक (की परिणामसम्बन्धी प्ररूपणा करनी चाहिए।)

---

१. 'नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि'—तत्त्वार्थ. अ २ सू ५०
प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक २८७

विवेचन—असुरकुमारादि भवनवासियों की परिणामसम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (९३९) में असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो तक दस प्रकार के भवनवासी देवो के दशविध परिणामो की प्ररूपणा कुछेक बातो को छोड़कर नारको के अतिदेशपूर्वक की गई है।

भवनवासी देवों का नारकों से कुछ परिणामों मे अन्तर- भवनवासी देवो के अधिकतर परिणाम तो नैरयिको के समान ही होते हैं, कुछ परिणामो मे अन्तर है, जैसे कि वे गतिपरिणाम से देवगतिवाले होते हैं। लेश्यापरिणाम की अपेक्षा से नारको की तरह उनमे भी प्रारम्भ की तीन लेश्याएँ होती हैं, किन्तु महर्द्धिक भवनवासी देवो के चौथी तेजोलेश्या भी होती है। वेदपरिणाम की दृष्टि से वे नारको की तरह नपु सकवेदी नही होते, क्योंकि देव नपु सक नही होते,[1] अतः भवन वासियों में स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी ही होते हैं।[2]

एकेन्द्रिय से तिर्यंचपंचेन्द्रिय जीवों तक के परिणामो की प्ररूपणा

९४० [१] पुढविकाइया गतिपरिणामेणं तिरियगतिया, इंदियपरिणामेणं एगिदिया, सेस जहा णेरइयाण (सु.९३८)। णवरं लेस्सापरिणामेण तेउलेस्सा वि, जोगपरिणामेणं कायजोगी, णाण-परिणामो णत्थि, अण्णाणपरिणामेणं मतिअण्णाणी वि सुयअण्णाणी वि, दसणपरिणामेणं मिच्छद्दिट्ठी। सेसं तं चेव।

[९४०-१] पृथ्वीकायिकजीव गतिपरिणाम से तिर्यञ्चगतिक है, इन्द्रियपरिणाम से एकेन्द्रिय है, शेष (सब परिणामो की वक्तव्यता) नैरयिको के समान (समझनी चाहिए।) विशेषता यह है कि लेश्यापरिणाम से (ये) तेजोलेश्या वाले भी होते हैं। योगपरिणाम से (ये सिर्फ) काययोगी होते है, इनमे ज्ञानपरिणाम नही होता। अज्ञानपरिणाम से ये मति-अज्ञानी भी होते है, श्रुत-अज्ञानी भी, (किन्तु विभगज्ञानी नही होते।) दर्शनपरिणाम से (ये केवल) मिथ्यादृष्टि होते है, (सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते।) शेष (सब वर्णन) उसी प्रकार (पूर्ववत् जानना चाहिए।)

[२] एव आउ-वणप्फइकाइया वि।

[९४०-२] इसी प्रकार (की परिणामसम्बन्धी वक्तव्यता) अप्कायिक एव वनस्पतिकायिको की (समझनी चाहिए।)

[३] तेऊ वाऊ एवं चेव। णवरं लेस्सापरिणामेणं जहा णेरइया (सु ९३८)।

[९४०-३] तेजस्कायिको एव वायुकायिको की भी (परिणामसम्बन्धी वक्तव्यता) इसी प्रकार है। विशेष यह है कि लेश्यापरिणाम से लेश्यासम्बन्धी प्ररूपणा (सू ९३८ मे उल्लिखित) नैरयिको के समान (तीन लेश्याएँ समझनी चाहिए।)

९४१. [१] बेइंदिया गतिपरिणामेण तिरियगतिया, इंदियपरिणामेणं बेइंदिया, सेसं जहा णेरइयाणं (सु. ९३८)। णवरं जोगपरिणामेणं वइयोगी वि काययोगी वि, णाणपरिणामेणं आभिणि-

---

१. 'न देवाः'—तत्त्वार्थ अ. २, सू ५१

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक २८७

बोहियणाणी वि सुयणाणी वि, अण्णाणपरिणामेणं मतिअण्णाणी वि सुयअण्णाणी वि, णो विभंगणाणी, दंसणपरिणामेणं सम्मद्दिट्ठी वि, मिच्छद्दिट्ठी वि, णो सम्मामिच्छद्दिट्ठी । सेसं तं चेव ।

[९४१-१] द्वीन्द्रियजीव गतिपरिणाम से तिर्यञ्चगतिक है, इन्द्रियपरिणाम से (वे) द्वीन्द्रिय (दो इन्द्रियो वाले) होते है । शेष (सब परिणामो का निरूपण) (सू. ९३८ मे उल्लिखित) नैरयिको की तरह (समझना चाहिए ।) विशेषता यह कि (वे) योगपरिणाम से वचनयोगी भी होते हैं, काययोगी भी, ज्ञानपरिणाम से आभिनिबोधिक ज्ञानी भी होते है और श्रुतज्ञानी भी, अज्ञानपरिणाम से मति-अज्ञानी भी होते है और श्रुत-अज्ञानी भी, (किन्तु वे) विभगज्ञानी नही होते । दर्शनपरिणाम से वे सम्यग्दृष्टि भी होते है और मिथ्यादृष्टि भी, (किन्तु) सम्यगिमथ्यादृष्टि नही होते । शेष (सब वर्णन) उसी तरह (पूर्वोक्त नैरयिकवत् समझना चाहिए ।)

[२] एवं जाव चउरिंदिया । णवरं इंदियपरिवुड्ढी कायव्वा ।

[९४१-२] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रियजीवो (त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) तक समझना चाहिए । विशेष यह है कि (त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय मे उत्तरोत्तर एक-एक) इन्द्रिय की वृद्धि कर लेनी चाहिए ।

९४२. पचेंदियतिरिक्खजोणिया गतिपरिणामेण तिरियगतीया । सेस जहा णेरइयाणं (सु. ९३८) । णवर लेस्सापरिणामेण जाव सुक्कलेस्सा वि, चरित्तपरिणामेण णो चरित्ती, अचरित्ती वि चरित्ताचरित्ती वि, वेदपरिणामेण इत्थिवेयगा वि पुरिसवेयगा वि णपुंसगवेयगा वि ।

[९४२] पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव गतिपरिणाम मे तिर्यञ्चगतिक है । शेष (सू ९३८ मे) जैसे नैरयिको का (परिणामसम्बन्धी कथन) है, (वैसे ही समझना चाहिए ।) विशेष यह है कि लेश्यापरिणाम से (वे कृष्णलेश्या से लेकर) यावत् शुक्ललेश्या वाले भी होते है, चारित्रपरिणाम से वे (पूर्ण) चारित्री नही होते, अचारित्री भी होते है और चारित्राचारित्री (देशचारित्री) भी, वेद-परिणाम गे वे स्त्रीवेदक भी होते है, पुरुषवेदक भी और नपु सकवेदक भी होते है ।

एकेन्द्रिय से तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय जीवों तक के परिणामों की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे से सू ९४० मे एकेन्द्रियो के, सू ९४१ मे विकलेन्द्रियो (द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियो) तथा सू ९४२ मे पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो की परिणामसम्बधी प्ररूपणा कुछेक बातो को छोडकर नैरयिकजीवो के समान अतिदेशपूर्वक की गई है ।

इनसे नैरयिकों के परिणामसम्बन्धी निरूपण में अन्तर—गतिपरिणाम से नैरयिक नरकगतिक होते है, जबकि एकेन्द्रिय से लेकर तिर्यञ्चपचेन्द्रिय तक तिर्यञ्चगतिक होते है, इन्द्रियपरिणाम से नैरयिक पचेन्द्रिय होते है, जबकि पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय सिर्फ एक स्पर्शेन्द्रिय वाले, द्वीन्द्रिय स्पर्श-नेन्द्रिय एव रसनेन्द्रिय, इन दो इन्द्रियो वाले, त्रीन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, एव घ्राणेन्द्रिय, इन तीन इन्द्रियो वाले तथा चतुरिन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय एव चक्षुरिन्द्रिय, इन चार इन्द्रियो वाले एवं तिर्यंचपचेन्द्रिय पाच इन्द्रियो (स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र) वाले होते है । लेश्यापरिणाम से -नारको मे आदि की तीन लेश्याएँ होती हैं, जबकि (पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकायिक) एकेन्द्रियो मे चौथी तेजोलेश्या भी होती है, क्योकि सौधर्म और ईशान देवलोक तक के देव भी इनमें

उत्पन्न हो सकते है । तेजस्कायिक-वायुकायिको मे नारको की तरह प्रारम्भ की तीन लेश्याएँ ही होती हैं । तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीवो मे शुक्ललेश्या तक छहो लेश्याएँ सम्भव हैं । योगपरिणाम से नारको मे तीनों योग पाए जाते हैं, जबकि पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय सिर्फ काययोगी होते हैं , विकलेन्द्रिय वचन-योगी और काययोगी तथा तिर्यञ्चपचेन्द्रिय तीनो योगो वाले होते है । ज्ञानपरिणाम से नारक तीन ज्ञान वाले होते हैं, जबकि एकेन्द्रियो मे ज्ञानपरिणाम नही होता, क्योकि पृथ्वीकायिकादि पचो मे सास्वादनसम्यक्त्व का भी आगमो मे निषेध है, इसलिए इनमे ज्ञान का निषेध किया गया है। विकलेन्द्रिय आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी भी होते है, क्योंकि कोई-कोई द्वीन्द्रिय जीव करणापर्याप्त-अवस्था मे सास्वादनसम्यक्त्वी भी पाए जाते है, इसलिए उन्हे ज्ञानद्वयपरिणत कहा है । पचेन्द्रियतिर्यंचो को नारको की तरह तीन ज्ञान होते हैं । अज्ञानपरिणाम से नरक तीनो अज्ञानो से परिणत होते है, जबकि सम्यक्त्व के अभाव मे एकेन्द्रियो एव विकलेन्द्रिय जीवो मे मति-अज्ञान और श्रुत अज्ञान ये दो अज्ञान होते है, विभंगज्ञान नही, तिर्यञ्चपचेन्द्रियो मे तीनो अज्ञान होते है । दर्शनपरिणाम से नारकजीव तीनो दृष्टियो से युक्त होते है, जबकि एकेन्द्रिय सिर्फ मिथ्यादृष्टि, विकलेन्द्रिय सास्वादनसम्यक्त्व की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि तथा तिर्यचपचेन्द्रिय तीनो दृष्टियो वाले होते है । वेदपरिणाम की दृष्टि से नारको की तरह एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय जीव नपुसकवेदी ही होते है, जबकि तिर्यंचपचेन्द्रिय तीनो वेद (स्त्री-पुरुष-नपुसकवेद) वाले होते है । चारित्रपरिणाम से एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियो मे तो नारको की तरह चारित्रपरिणाम सर्वथा असम्भव है, तिर्यंचपचेन्द्रियो मे देशत चारित्रपरिणाम सम्भव है ।[1] ये परिणाम समुच्चय नारको आदि की अपेक्षा से कहे गए है, यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए । यही नारको से इनमे परिणामसम्बन्धी अन्तर है ।

मनुष्यों की परिणामसम्बन्धी प्ररूपणा

९४३. मणुस्सा गतिपरिणामेण मणुयगतिया, इंदियपरिणामेण पचेंदिया अणिदिया वि, कसायपरिणामेण कोहकसाई वि जाव अकसाई वि, लेस्सापरिणामेणं कण्हलेस्सा वि जाव अलेस्सा वि, जोगपरिणामेण मणजोगी वि जाव अजोगी वि, उवओगपरिणामेणं जहा णेरइया (सु. ९३८), णाण-परिणामेणं आभिणिबोहियणाणी वि जाव केवलणाणी वि, अण्णाणपरिणामेणं तिण्णि वि अण्णाणा, दंसणपरिणामेणं तिन्नि वि दंसणा, चरित्तपरिणामेणं चरित्ती वि अचरित्ती वि चरित्ताचरित्ती वि, वेदपरिणामेणं इत्थिवेयगा वि पुरिसवेयगा वि नपुंसगवेयगा वि अवेयगा वि ।

[९४३] मनुष्य, गतिपरिणाम से मनुष्यगतिक है, इन्द्रियपरिणाम से पचेन्द्रिय होते है, अनिन्द्रिय भी, कषायपरिणाम से क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी तथा अकषायी भी होते हैं, लेश्यापरिणाम से कृष्णलेश्या से शुक्ललेश्या वाले तक तथा अलेश्यी भी होते हैं, योगपरिणाम से मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी तथा अयोगी भी होते है, उपयोगपरिणाम से (सू ९३८ मे उल्लिखित) नैरयिको के (उपयोगपरिणाम के) समान है, ज्ञानपरिणाम से (वे) आभिनिबोधिकज्ञानो से यावत् केवलज्ञानी तक भी होते है, अज्ञानपरिणाम से (इनमे) तीनो ही

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २८७

(ख) पण्णवणासुत्त भा १ (मूलपाठ), पृ २३०-२३१

अज्ञान वाले होते हैं; दर्शनपरिमाण से (इनमें) तीनों ही दर्शन (सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन और सम्यग्मिथ्यादर्शन) होते हैं; चारित्रपरिणाम से (ये) चारित्री भी होते हैं, अचारित्री भी और चारित्राचारित्री (देशचारित्री) भी होते हैं; वेदपरिणाम से (ये) स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक एव नपु सक-वेदक भी तथा अवेदक भी होते हैं।

विवेचन – मनुष्यों की परिणामसम्बन्धी प्ररूपणा प्रस्तुत सूत्र (९४३) मे मनुष्यो (समुच्चय मनुष्यजाति) की गति आदि दसो परिणामो की अपेक्षा से विचारणा की गई है।

विशेषता—मनुष्य कई परिणामो से अन्य जीवो से विशिष्ट है तथा कई परिणामो से अतीत भी होते है, जैसे अनिन्द्रिय, अकषायी, अलेश्यी, अयोगी, केवलज्ञानी, मन पर्यवज्ञानी, अवेदक आदि।[1]

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की परिणामसम्बन्धी प्ररूपणा

९४४. वाणमंतरा गतिपरिणामेणं देवगइया जहा असुरकुमारा (सु. ९३९ [१])।

[९४४] वाणव्यन्तर देव गतिपरिणाम से देवगतिक हैं, शेष (समस्त परिणामसम्बन्धी वक्तव्यता) (सू. ९३९-१ मे उल्लिखित) असुरकुमारो की तरह (समझना चाहिए।)

९४५. एव जोतिसिया वि। णवरं लेस्सापरिणामेण तेउलेस्सा।

[९४५] इसी प्रकार ज्योतिष्को के समस्त परिणामो के विषय मे भी समझना चाहिए। विशेष यह कि लेश्यापरिणाम से (वे सिर्फ) तेजोलेश्या वाले होते हैं।

९४६ वेमाणिया वि एवं चेव। णवरं लेस्सापरिणामेण तेउलेस्सा वि पम्हलेस्सा वि सुक्क-लेस्सा वि। से त्त जीवपरिणामे।

[९४६] वैमानिको की परिणामसम्बन्धी प्ररूपणा भी इसी प्रकार (समझनी चाहिए।) विशेष यह कि लेश्यापरिणाम से वे तेजोलेश्या वाले भी होते हैं, पद्मलेश्या वाले भी और शुक्ल-लेश्या वाले भी होते हैं।

यह जीवप्ररूपणा हुई।

विवेचन—वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की परिणामसम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे से सू ९४४ मे वाणव्यन्तर देवो की, सू. ९४५ मे ज्योतिष्क देवो की एव सू ९४६ मे वैमानिक देवो की परिणामसम्बन्धी प्ररूपणा कुछेक बातो को छोडकर असुरकुमारो के अतिदेश-पूर्वक की गई है।

ज्योतिष्कों और वैमानिकों के लेश्यापरिणाम में विशेषता—ज्योतिष्को मे सिर्फ तेजोलेश्या ही होती है, जबकि वैमानिको मे तेजोलेश्या, पद्मलेश्या एव शुक्ललेश्या ये तीन शुभ लेश्याएँ होती है, तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं।[2]

---

१. पण्णावणासुत्त भा १ (मूलपाठ), पृ २३२

२ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति- पत्राक २८७ (ख) 'पीतान्तलेश्या.'—तत्त्वार्थ अ ४, सू ७

(ख) पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वि-त्रि-शेषेषु। —तत्त्वार्थ अ. ४, सू २३

अजीवपरिणाम और उसके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा

९४७. अजीवपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दसविहे पण्णत्ते । तं जहा—बंधणपरिणामे १ गतिपरिणामे २ संठाणपरिणामे ३ भेदपरिणामे ४ वण्णपरिणामे ५ गंधपरिणामे ६ रसपरिणामे ७ फासपरिणामे ८ अगरुयलहुयपरिणामे ९ सद्दपरिणामे १० ।

[९४७ प्र] भगवन् ! अजीवपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९४७ उ] गौतम ! (अजीवपरिणाम) दस प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) बन्धनपरिणाम, (२) गतिपरिणाम, (३) संस्थान परिणाम, (४) भेदपरिणाम, (५) वर्णपरिणाम, (६) गन्धपरिणाम, (७) रसपरिणाम, (८) स्पर्शपरिणाम, (९) अगुरुलघुपरिणाम और (१०) शब्द परिणाम ।

९४८. बंधणपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—णिद्धबंधणपरिणामे य लुक्खबंधणपरिणामे य ।

समणिद्धयाए बंधो ण होति, समलुक्खयाए वि ण होति ।
वेमायणिद्ध-लुक्खत्तणेण बंधो उ खंधाणं ॥१९९॥
णिद्धस्स णिद्धेण दुयाहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएणं ।
णिद्धस्स लुक्खेणण उवेइ बंधो जहण्णवज्जो विसमो समो वा ॥२००॥

[९४८ प्र] भगवन् ! बन्धनपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९४८ उ] गौतम ! (बन्धनपरिणाम) दो प्रकार का है, वह इस प्रकार- (१) स्निग्ध-बन्धनपरिणाम (२) रूक्षबन्धनपरिणाम ।

[गाथार्थ -] सम (समान-गुण) स्निग्धता होने से बन्ध नहीं होता और न ही सम (समान-गुण) रूक्षता होने से भी बन्ध होता है । विमात्रा (विषममात्रा) वाले स्निग्धत्व और रूक्षत्व के होने पर स्कन्धों का बन्ध होता है ॥ १९९॥ दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ स्निग्ध का तथा दो गुण अधिक रूक्ष के साथ रूक्ष का एवं स्निग्ध का रूक्ष के साथ बन्ध होता है; किन्तु जघन्यगुण को छोड कर, चाहे वह सम हो अथवा विषम हो ॥२००॥

९४९. गतिपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । तं जहा-फुसमाणगतिपरिणामे य अफुसमाणगतिपरिणामे य, अहवा दीहगइपरिणामे य हस्सगइपरिणामे य ।

[९४९ प्र] भगवन् ! गतिपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९४९ उ] गौतम ! (गतिपरिणाम) दो प्रकार का कहा है । वह इस प्रकार—(१) स्पृशद्-गतिपरिणाम और (२) अस्पृशद्गतिपरिणाम, अथवा (१) दीर्घगतिपरिणाम और (२) ह्रस्वगति-परिणाम ।

९५०. संठाणपरिणामे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते । तं जहा—परिमंडलसंठाणपरिणामे जाव आययसंठाणपरिणामे ।

[९५० प्र] भगवन् ! संस्थानपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९५० उ] गौतम ! (संस्थानपरिणाम) पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) परिमण्डलसंस्थानपरिणाम, यावत् [(२) वृत्तसंस्थानपरिणाम, (३) त्र्यस्रसंस्थानपरिणाम, (४) चतुरस्रसंस्थानपरिणाम और] (५) आयतसंस्थानपरिणाम ।

९५१. भेयपरिणामे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते । त जहा—खंडाभेदपरिणामे जाव उक्करियाभेदपरिणामे ।

[९५१ प्र] भगवन् ! भेदपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९५१ उ] गौतम ! (भेदपरिणाम) पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) खण्डभेदपरिणाम, यावत् [(२) प्रतरभेदपरिणाम, (३) चूर्णिका (चूर्ण) भेदपरिणाम, (४) अनुतटिका-भेदपरिणाम और] (५) उत्कटिका (उत्करिका) भेदपरिणाम ।

९५२. वण्णपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते । त जहा—कालवण्णपरिणामे जाव सुक्किलवण्णपरिणामे ।

[९५२ प्र] भगवन् ! वर्णपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९५२ उ.] गौतम ! (वर्णपरिणाम) पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) कृष्णवर्णपरिणाम, यावत् [(२) नीलवर्णपरिणाम, (३) रक्तवर्णपरिणाम, (४) पीतवर्णपरिणाम और] (५) शुक्ल (श्वेत) वर्णपरिणाम ।

९५३ गंधपरिणामे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । त जहा—सुब्भिगंधपरिणामे य दुब्भिगंधपरिणामे य ।

[९५३ प्र] भगवन् ! गन्धपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९५३ उ] गौतम ! (गन्धपरिणाम) दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—सुगन्ध-परिणाम और दुर्गन्धपरिणाम ।

९५४. रसपरिणामे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते । तं जहा—तित्तरसपरिणामे जाव महुररसपरिणामे ।

[९५४ प्र.] भगवन ! रसपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९५४ उ] गौतम ! (रसपरिणाम) पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) तिक्तरसपरिणाम, यावत् [(२) कटुरसपरिणाम, (३) कषायरसपरिणाम, (४) अम्ल (खट्टा) रस-परिणाम और] (५) मधुररसपरिणाम ।

९५५. फासपरिणामे णं भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते । तं जहा—कक्खडफासपरिणामे य जाव लुक्खफासपरिणामे य ।

[९५५ प्र] भगवन् ! स्पर्शपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९५५ उ.] गौतम ! (स्पर्शपरिणाम) आठ प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार— (१) कर्कश (कठोर) स्पर्शपरिणाम, यावत् [(२) मृदुस्पर्शपरिणाम, (३) गुरुस्पर्शपरिणाम, (४) लघुस्पर्श-परिणाम, (५) उष्णस्पर्शपरिणाम, (६) शीतस्पर्शपरिणाम, (७) स्निग्धस्पर्शपरिणाम और] (८) रूक्षस्पर्शपरिणाम ।

९५६ अगरुयलहुयपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते ।

[९५६ प्र] भगवन् ! अगुरुलघुपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९५६ उ] गौतम ! (अगुरुलघुपरिणाम) एक ही प्रकार का कहा गया है ।

९५७. सद्दपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । त जहा - सुब्भिसद्दपरिणामे य दुब्भिसद्दपरिणामे य ।

से त्तं अजीवपरिणामे ।

।। पण्णवणाए भगवईए तेरसमं परिणामपयं समत्तं ।।

[९५७ प्र] भगवन् ! शब्दपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९५७ उ] गौतम ! (शब्दपरिणाम) दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार— सुरभि (शुभ—मनोज्ञ) शब्दपरिणाम और दुरभि (अशुभ—अमनोज्ञ) शब्दपरिणाम ।

यह हुई अजीवपरिणाम की प्ररूपणा ।

विवेचन—अजीवपरिणाम तथा उसके भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू ९४७ से ९५७ तक) मे से प्रथम सूत्र (९४७) मे अजीवपरिणाम के दस भेदो की तथा शेष दस सूत्रो मे उन दस भेदो मे से प्रत्येक के प्रभेदों की क्रमश प्ररूपणा की गई है ।

बन्धनपरिणाम की व्याख्या—दो या अधिक पुद्गलो का परस्पर बन्ध (जुड) जाना, श्लिष्ट हो जाना, एकत्वपरिणाम या पिण्डरूप हो जाना बन्धन या बन्ध है । इसके दो प्रकार है- स्निग्धबन्धन-परिणाम और रूक्षबन्धनपरिणाम । स्निग्ध पुद्गल का बन्धनरूप परिणाम स्निग्धबन्धनपरिणाम है और रूक्ष पुद्गल का बन्धनरूप परिणाम रूक्षबन्धनपरिणाम है ।

बन्धनपरिणाम के नियम—स्निग्ध का तथा रूक्ष का बन्धनपरिणाम किस प्रकार एव किस नियम से होता है ? इसे शास्त्रकार दो गाथाओ द्वारा समझाते हैं- यदि पुद्गलो मे परस्पर सम-स्निग्धता- समगुणस्निग्धता होगी तो उनका बन्ध (बन्धन) नही होगा, इसी प्रकार पुद्गलो मे परस्पर समरूक्षता—समगुणरूक्षता (समान अश-गुणवाली रूक्षता) होगी तो भी उनका बन्ध नही होगा । तात्पर्य यह है कि समगुणस्निग्ध परमाणु आदि का समगुणस्निध परमाणु आदि के साथ सम्बन्ध (बन्ध) नही होता, इसी प्रकार समगुणरूक्ष परमाणु आदि का समगुणरूक्ष परमाणु आदि के साथ बन्ध नही होता; किन्तु स्निग्धत्व और रूक्षत्व की विषममात्रा होती है, तभी स्कन्धो का बन्ध होता है । अर्थात्- स्निग्ध स्कन्ध यदि स्निग्ध के साथ और रूक्ष स्कन्ध यदि रूक्ष स्कन्ध के

साथ विषमगुण होते हैं, तब विषममात्रा होने के कारण उनका परस्पर सम्बन्ध (बन्ध) होता है। निष्कर्ष यह है कि बन्ध विषम मात्रा होने पर ही होता है। अतः विषममात्रा का स्पष्टीकरण करने हेतु शास्त्रकार फिर कहते हैं—यदि स्निग्धपरमाणु आदि का, स्निग्धगुण वाले परमाणु आदि के साथ बन्ध हो सकता है तो वह नियम से दो आदि अधिक (द्व्याद्यधिक) गुण वाले परमाणु के साथ ही होता है, इसी प्रकार यदि रूक्षगुण वाले परमाणु आदि का रूक्षगुण वाले परमाणु आदि के साथ बन्ध होता है, तब वह भी इसी नियम से दो, तीन, चार आदि अधिक गुण वाले के साथ ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। जब स्निग्ध और रूक्ष पुद्गलों का परस्पर बन्ध होता है, तब किस नियम से होता है ? इसके लिए शास्त्रकार कहते हैं—स्निग्धपरमाणु आदि का रूक्षपरमाणु आदि के साथ बन्ध जघन्यगुण को छोड़ कर होता है। जघन्य का आशय है—एकगुणस्निग्ध और एक-गुणरूक्ष। इनको छोड़कर, शेष दो गुण वाले (स्निग्ध आदि) का दो गुण वाले रूक्ष आदि के साथ बन्ध होता है, चाहे वे दोनों (स्निग्ध और रूक्ष) सममात्रा में हों या विषममात्रा में हों।[1]

गतिपरिणाम की व्याख्या—गमनरूप परिणमन गतिपरिणाम है। वह दो प्रकार का है—स्पृशद्गतिपरिणाम और अस्पृशद्गतिपरिणाम। बीच में आने वाली दूसरी वस्तुओं को स्पर्श करते हुए जो गति होती है, उसे स्पृशद्गति कहते हैं। उस गतिरूप परिणाम को स्पृशद्गतिपरिणाम कहते हैं। उदाहरणार्थ—जल पर प्रयत्नपूर्वक तिरछी फेंकी हुई ठीकरी बीच-बीच में जल का स्पर्श करती हुई गति करती है, यह उस ठीकरी का स्पृशद्गतिपरिणाम है। जो वस्तु बीच में आने वाले किसी भी पदार्थ को स्पर्श न करती हुई गमन करती है, वह उसकी अस्पृशद्गति है। वह अस्पृशद्-गतिरूप परिणाम अस्पृशद्गतिपरिणाम है। जैसे- सिद्ध (मुक्त) जीव सिद्धशिला की ओर गमन करते हैं, तब उनकी गति अस्पृशद्गति होती है। अथवा प्रकारान्तर से गतिपरिणाम के दो भेद प्रतिपादित करते हैं दीर्घगतिपरिणाम और ह्रस्वगतिपरिणाम। अतिदूरवर्ती देश की प्राप्ति का कारणभूत जो परिणाम हो, वह दीर्घगति परिणाम है और निकटवर्ती देशान्तर की प्राप्ति का कारणभूत जो परिणाम हो, वह ह्रस्वगतिपरिणाम कहलाता है।

इनकी व्याख्या पूर्वोक्तवत्—संस्थानपरिणाम, भेदपरिणाम, वर्णपरिणाम, गन्धपरिणाम, रसपरिणाम और स्पर्शपरिणाम की व्याख्या पहले पर्यायपद, भाषापद आदि में की जा चुकी है।[2]

अगुरुलघुपरिणाम- **'कम्मग-मण-भासाइ एयाइं अगुरुलघुयाइं'**—अर्थात् कार्मणवर्गणा, मनो-वर्गणा एवं भाषावर्गणा, ये अगुरुलघु होते हैं, इस आगमवचन के अनुसार उपर्युक्त पदार्थों को तथा अमूर्त्त आकाशादि द्रव्यों को भी अगुरुलघु समझना चाहिए। प्रसंगवश यहाँ गुरुलघुपरिणाम को भी समझ लेना चाहिए।[3] औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस गुरुलघु होते हैं।[4]

॥ प्रज्ञापनासूत्र : तेरहवाँ परिणामपद समाप्त ॥

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २८८-२८९

(ख) **'स्निग्ध-रूक्षत्वाद् बन्धः'**- तत्त्वार्थसूत्र अ ५, सू. ३२

(ग) **'न जघन्यगुणानाम्' 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' 'द्व्यधिकादिगुणानां तु'** —तत्त्वार्थसूत्र अ ५, सू ३३, ३४, ३५

२. इसके लिए देखिये प्रज्ञापना. का पर्यायपद और भाषापद आदि।

३. **'ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेय गुरुलहूदव्वा'** —प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्र २८९ में उद्धृत।

४ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २८९

चोद्दसमं कसायपयं

चौदहवाँ कषायपद

प्राथमिक

- यह प्रज्ञापनासूत्र का कषायपद नामक चौदहवाँ पद है ।
- कषाय ससार के वृद्धि करने वाले, पुनर्भव के मूल को मीचने वाले तथा शुद्धस्वभाव युक्त आत्मा को क्रोधादिविकारो से मलिन करने वाले है तथा अष्टविध कर्मों के चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना आदि के कारणभूत है । जीव के आत्मप्रदेशो के साथ सम्बद्ध होने से इनका विचार करना अतीव आवश्यक है । इसी कारण कषायपद की रचना हुई है ।[1]
- इस पद मे सर्वप्रथम कषायो के क्रोधादि चार मुख्य प्रकार बताए हैं । तदनन्तर बताया गया है कि ये चारो कषाय चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे पाए जाते है । तत्पश्चात् एक महत्त्वपूर्ण चर्चा यह की गई है कि क्रोधादि चारो कषायो के भाजन-अभाजन की दृष्टि से उनके चार आधार है—आत्मप्रतिष्ठित, परप्रतिष्ठित, उभयप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित । साथ ही क्रोधादि कषायो की उत्पत्ति के भी चार-चार कारण बताए है—क्षेत्र, वास्तु, शरीर और उपधि । ससार के सभी जीवो मे कषायोत्पत्ति के ये ही कारण हैं ।
- इसके पश्चात् क्रोधादि कषायो के अनन्तानुबन्धी आदि तथा आभोगनिर्वर्तित आदि चार-चार प्रकार बता कर उनका समस्त ससारी जीवो मे अस्तित्व बताया है ।
- अन्त मे जीव द्वारा कृत क्रोधादि कषायो के फल के रूप मे आठ कर्मप्रकृतियो के चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा, इन ६ को पृथक्-पृथक् बताया है ।[2]
- जैन-आगमो मे आत्मा के विविध दोषो—विकारो का वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है । उन दोषो का सग्रह भी पृथक्-पृथक् रूप में किया गया है, उनमे से एक सग्रह-प्रकार है—राग, द्वेष और मोह । परन्तु कर्मसिद्धान्त मे प्राय उक्त चार कषाय और मोह के आधार पर ही विचारणा की गई है ।
- इससे पूर्वपद मे आत्मा के विविध परिणामो का निरूपण किया गया है, उसमे से कषाय भी आत्मा का एक परिणाम है ।
- इस पद का वर्णन सू ९५८ से लेकर ९७१ तक कुल १४ सूत्रो मे है ।[3]

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २८९
   (ख) देखिये 'कषायपाहुड' टीकासहित

२ पण्णवणासुत्त भा १, पृ. २३४ से २३६ तक

३. (क) पण्णवणासुत्त भा २, कषायपद की प्रस्तावना, पृ. ९७
   (ख) गणधरवाद (प्रस्तावना) पृ. १००
   (ग) कषायपाहुड टीकासहित

चोद्दसमं कसायपयं

चौदहवाँ कषायपद

कषाय और उसके चार प्रकार

९५८. कति ण भंते ! कसाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि कसाया पण्णत्ता । तं जहा—कोहकसाए १ माणकसाए २ मायाकसाए ३ लोहकसाए ४ ।

[९५८ प्र] भगवन् ! कषाय कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[९५८ उ] गौतम ! (वे) चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) क्रोधकषाय, (२) मानकषाय, (३) मायाकषाय और (४) लोभकषाय।

विवेचन—कषाय और उसके चार प्रकार—प्रस्तुत सूत्र मे कषाय के क्रोधादि चार प्रकारो का उल्लेख किया गया है।

कषाय की व्याख्या—कषाय शब्द के तीन व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ मिलते है—(१) कष अर्थात् ससार, उसका आय-लाभ जिससे हो, वह कषाय है। (२) 'कृष' धातु विलेखन अर्थ मे है, उससे भी कृष को कष आदेश हो कर 'आय' प्रत्यय लगने से कषाय शब्द बनता है। जिसका अर्थ होता है—जो कर्मरूपी क्षेत्र (खेत) को सुख-दु खरूपी धान्य की उपज के लिए विलेखन (कर्षण) करते हैं—जोतते हैं, वे कषाय है। (३) 'कलुष' धातु को 'कष' आदेश हो कर भी कषाय शब्द बनता है। जिसका अर्थ होता है—जो स्वभावत शुद्ध जीव को कलुषित-कर्ममलिन करते है, वे कषाय हैं।[1]

कषाय से ही कर्मों का आदान—तत्त्वार्थसूत्र मे बताया है—**'सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते'**—कषाययुक्त होकर जीव कर्म के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है। दशवैकालिक सूत्र मे भी कहा है—ये चारो कषाय पुनर्भव के मूल का सिंचन करते हैं।[2]

---

१ (क) आचारांग शीलांक वृत्ति, (ख) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्रांक २८९

(ग) **'कषः ससारः, तस्य आयः लाभ —कषायः ।'**

(घ) **'कृषन्ति विलिखन्ति कर्मरूपं क्षेत्रं सुखदुःखशस्योत्पादनायेति कषायाः ।'**

'कलुषयन्ति शुद्धस्वभावं सन्त कर्ममलिनं कुर्वन्ति जीवमिति कषायाः ।'

(ङ) **'सुहदुक्खबहुस्सइयं कम्मखेत्तं कसंति ते जम्हा ।**

कलुसंति ज च जीवं तेण कसायत्ति वुच्चंति ॥'

२. (क) तत्त्वार्थसूत्र अ. ९, सू २

(ख) **'चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स ।'**—दशवैकालिकसूत्र अ. ९

चौवीस दण्डकों में कषाय की प्ररूपणा

९५९. णेरइयाणं भंते ! कति कसाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि कसाया पण्णत्ता । तं जहा– कोहकसाए जाव लोभकसाए । एवं जाव वेमाणियाणं ।

[९५९ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीवो मे कितने कषाय होते है ?

[९५९ उ] गौतम ! उनमे चार कषाय होते है। वे इस प्रकार है—क्रोधकषाय से (लेकर) लोभकषाय तक। इसी प्रकार वैमानिक तक (चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे चारो कषाय पाए जाते हैं।)

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवों में कषायो की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (९५९) मे नैरयिको से वैमानिको तक समस्त ससारी जीवो मे इन चारो कषायो का सद्भाव बताया है।

कषायों के प्रतिष्ठान की प्ररूपणा

९६० **[१] कतिपतिट्ठिए णं भंते ! कोहे पण्णत्ते ?**

गोयमा ! चउपतिट्ठिए कोहे पण्णत्ते । तं जहा—आयपतिट्ठिए १ परपतिट्ठिए २ तदुभयपतिट्ठिए ३ अप्पतिट्ठिए ४ ।

[९६०-१ प्र] भगवन् ! क्रोध कितनो पर प्रतिष्ठित (आश्रित) है ? (अर्थात् -किस-किस आधार पर रहा हुआ है ?)

[९६०-१ उ] गौतम ! क्रोध को चार (निमित्तो) पर प्रतिष्ठित (आधारित) कहा है। वह इस प्रकार—(१) आत्मप्रतिष्ठित, (२) परप्रतिष्ठित, (३) उभय-प्रतिष्ठित और (४) अप्रतिष्ठित।

[२] एवं णेरइयादीणं जाव वेमाणियाणं दंडओ ।

[९६०-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर वैमानिको तक (चौवीस दण्डकवर्ती जीवो) के विषय मे दण्डक (आलापक कहना चाहिए।)

[३] एवं माणेण दंडओ, मायाए दंडओ, लोभेण दंडओ ।

[९६०-३] क्रोध की तरह मान की अपेक्षा से, माया की अपेक्षा से और लोभ की अपेक्षा से भी (प्रत्येक का) एक-एक दण्डक (आलापक कहना चाहिए।)

विवेचन—क्रोधादि चारो कषायों के प्रतिष्ठान आधार की प्ररूपणा प्रस्तुत सूत्र (९६०-१, २, ३) मे क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारो कषायो को चार-चार स्थानो पर प्रतिष्ठित—आधारित बताया गया है।

चतुष्प्रतिष्ठित क्रोधादि—(१) **आत्मप्रतिष्ठित क्रोधादि**—अपने आप पर ही आधारित होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि स्वय आचरित किसी कर्म के फलस्वरूप जब कोई जीव अपना इहलौकिक अनिष्ट (अपाय=हानि) देखता है, तब वह अपने पर क्रोध, मान, माया या लोभ करता है, वह आत्मप्रतिष्ठित क्रोधादि है। यह क्रोध आदि अपने ही प्रति किया जाता है। (२) **परप्रतिष्ठित**

क्रोधादि—जब किसी अन्य व्यक्ति या जीव-अजीव को अपने अनिष्ट मे निमित्त मानकर जीव क्रोध आदि करता है, अथवा जब दूसरा कोई व्यक्ति आक्रोशादि करके क्रोध आदि उत्पन्न करता है, भडकाता है, तब उसके प्रति जो क्रोधादि उत्पन्न होता है, वह परप्रतिष्ठित क्रोधादि है। (३) **उभयप्रतिष्ठित क्रोधादि**—कई बार जीव अपने पर भी क्रोधादि करता है और दूसरो पर भी करता है, जैसे—अपने और दूसरे के द्वारा किए गए अपराध के कारण जब कोई व्यक्ति स्वपर-विषयक क्रोधादि करता है, तब वह क्रोधादि उभयप्रतिष्ठित होता है। (४) **अप्रतिष्ठित क्रोधादि**—जब कोई क्रोध आदि दुराचरण, आक्रोश आदि निमित्त कारणो के बिना, निराधार ही केवल क्रोध आदि (वेदनीय) मोहनीय के उदय से उत्पन्न हो जाता है, तब वह क्रोधादि अप्रतिष्ठित होता है। ऐसा क्रोधादि न तो आत्मप्रतिष्ठित होता है, क्योकि वह स्वय के दुराचरणादि के कारण उत्पन्न नही होता और न वह परप्रतिष्ठित होता है, क्योकि दूसरे का प्रतिकूल आचरण, व्यवहार या अपराध न होने से उस क्रोधादि का कारण 'पर' भी नही होता, न यह क्रोधादि उभयप्रतिष्ठित होता है, क्योकि इसमे दोनो ही प्रकार के निमित्त नही होते। अत' यह क्रोधादि मोहनीय (वेदनीय) के उदय से बाह्य कारण के बिना ही उत्पन्न होने वाला क्रोधादि है। ऐसा व्यक्ति बाद मे कहता है– ओहो! मैने अकारण ही क्रोधादि किया, न तो कोई मेरे प्रतिकूल बोलता है, न ही मेरा कोई विनाश करता है।[1]

कषायों की उत्पत्ति के चार-चार कारण

९६१. [१] **कतिहि ण भते ! ठाणेहिं कोहुप्पत्ती भवति ?**

गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं कोहुप्पत्ती भवति। त जहा—खेत्तं पडुच्च १ वत्थुं पडुच्च २ सरीरं पडुच्च ३ उवहिं पडुच्च ४।

[९६१-१ प्र] भगवन् ! कितने स्थानो (कारणो) से क्रोध की उत्पत्ति होती है ?

[९६१-१ उ.] गौतम ! चार स्थानो (कारणो) से क्रोध की उत्पत्ति होती है, वे इस प्रकार—(१) क्षेत्र (खेत या खुली जमीन) को लेकर, (२) वास्तु (मकान आदि) को लेकर, (३) शरीर के निमित्त से और (४) उपधि (उपकरणो—साधनसामग्री) के निमित्त से।

[२] एव णेरइयादीणं जाव वेमाणियाण।

[९६१-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर वैमानिको तक (क्रोधोत्पत्ति के विषय मे प्ररूपणा करनी चाहिए।)

[३] एव माणेण वि मायाए वि लोभेण वि। एव एते वि चत्तारि दडगा।

[९६१-३] क्रोधोत्पत्ति के विषय मे जैसा कहा है, उसी प्रकार मान, माया और लोभ की उत्पत्ति के विषय मे भी उपर्युक्त चार कारण कहने चाहिए। इस प्रकार ये चार दण्डक (आलापक) होते हैं।

विवेचन—क्रोधादि कषायों की उत्पत्ति के चार-चार कारण—प्रस्तुत सूत्र (९६१-१, २, ३) मे क्रोधादि कषायो की उत्पत्ति के क्षेत्र, वास्तु, शरीर और उपधि, ये चार-चार कारण प्रस्तुत किये गए हैं।

---

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्राक २९०

क्षेत्र, वास्तु, शरीर और उपधि, क्रोधादि की उत्पत्ति के कारण क्यों ?—क्षेत्र का अर्थ खेत या जमीन होता है, परन्तु नारकों के लिए नैरयिक क्षेत्र, तिर्यञ्चो के लिए तिर्यक्‌क्षेत्र, मनुष्य के लिए मनुष्यक्षेत्र के निमित्त एव देवो के लिए देवक्षेत्र के निमित्त से क्रोधादि कषायोत्पत्ति समझनी चाहिए। 'वत्थु' के दो अर्थ होते हैं—वास्तु और वस्तु। वास्तु का अर्थ मकान, इमारत, बगला, कोठी, महल आदि और वस्तु का अर्थ है—सजीव, निर्जीव पदार्थ। महल, मकान आदि को लेकर भी क्रोधादि उमड़ते हैं। सजीव वस्तु में माता, पिता, स्त्री, पुत्र या मनुष्य तथा किसी अन्य प्राणी को लेकर क्रोध, संघर्ष, अभिमान आदि उत्पन्न होते है। निर्जीव वस्तु पलग, सोना, चादी, रत्न, माणक, मोती, वस्त्र, आभूषण आदि को लेकर क्रोधादि उत्पन्न होते हैं। दु स्थित या विरूप या सचेतन-अचेतन शरीर को लेकर भी क्रोधादि उत्पन्न होते हैं। अव्यवस्थित एव बिगडे हुए उपकरणादि को लेकर अथवा चौरादि के द्वारा अपहरण किये जाने पर क्रोधादि उत्पन्न होता है। जमीन, मकान, शरीर और अन्य साधनो को जब किसी कारण से हानि या क्षति पहुँचती है तो क्रोधादि उत्पन्न होते हैं। यहाँ 'उपधि' मे जमीन, मकान तथा शरीर के सिवाय शेष सभी वस्तुओ का समावेश समझ लेना चाहिए।[1]

कषायों के भेद-प्रभेद

९६२. [१] **कतिविहे णं भंते ! कोहे पण्णत्ते ?**

गोयमा ! चउव्विहे कोहे पण्णत्ते। त जहा—अणताणुबंधी कोहे १ अपच्चक्खाणे कोहे २ पच्चक्खाणावरणे कोहे ३ संजलणे कोहे ४।

[९६२-१ प्र.] भगवन् ! क्रोध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९६२-१ उ] गौतम ! क्रोध चार प्रकार का कहा है, वह इस प्रकार—(१) अनन्तानुबन्धी क्रोध, (२) अप्रत्याख्यान क्रोध, (३) प्रत्याख्यानावरण क्रोध और (४) सज्वलन क्रोध।

[२] **एवं णेरइयाण जाव वेमाणियाणं।**

[९६२-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर वैमानिको तक (चौवीस दण्डकवर्ती जीवो) मे (क्रोध के इन चारो प्रकारो की प्ररूपणा समझनी चाहिए।)

[३] **एवं माणेण मायाए लोभेण। एए वि चत्तारि दंडया।**

[९६२-३] इसी प्रकार मान की अपेक्षा से, माया की अपेक्षा से और लोभ की अपेक्षा से, (इन चार-चार भेदो का तथा नैरयिकों से लेकर वैमानिको तक मे इनके पाए जाने का कथन करना चाहिए।) ये भी चार दण्डक होते हैं।

९६३. [१] **कतिविहे ण भंते ! कोहे पण्णत्ते ?**

गोयमा ! चउव्विहे कोहे पण्णत्ते। त जहा आभोगणिव्वत्तिए अणाभोगणिव्वत्तिए उवसंते अणुवसते।

[९६३-१ प्र.] भगवन् ! क्रोध कितने प्रकार का कहा गया है ?

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २९०-२९१
(ख) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा. ३, पृ ५५९

[९६३-१ उ] गौतम ! क्रोध चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) आभोग-निर्वर्तित, (२) अनाभोगनिर्वर्तित, (३) उपशान्त और (४) अनुपशान्त ।

[२] एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं ।

[९६३-२] इसी प्रकार नारको से लेकर वैमानिको तक मे चार प्रकार के क्रोध का कथन करना चाहिए ।

[३] एवं माणेण वि मायाए वि लोभेण वि चत्तारि दंडया ।

[९६३-३] क्रोध के समान ही मान के, माया के और लोभ के (आभोगनिर्वर्तित आदि) चार-चार भेद होते है तथा (नारको से लेकर वैमानिको तक मे) मान, माया और लोभ के भी ये ही चार-चार भेद (दण्डक) समझने चाहिए ।

विवेचना—क्रोध आदि कषायों के भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ९६२, ९६३) मे क्रोध आदि कषायो के अनन्तानुबन्धी आदि चार भेद करके समस्त ससारी जीवो मे उनके पाए जाने का निरूपण किया गया है तथा क्रोध आदि कषायो के प्रकारान्तर से आभोगनिर्वर्तित आदि चार प्रभेदो और समस्त ससारी जीवो मे उनके सद्भाव की प्ररूपणा की गई है ।

अनन्तानुबन्धी आदि चारो की परिभाषा इन चारो कषायो के शब्दार्थों का विचार कर्म-प्रकृतिपद मे किया जाएगा । यहाँ चारो की परिभाषा दी जाती है **अनन्तानुबन्धी**—सम्यक्त्व गुणविघातक, **अप्रत्याख्यान** -देशविरतिगुणविघाती, **प्रत्याख्यानावरण**—सर्वविरतिगुणविघाति और **सज्वलन** यथाख्यातचारित्रविघातक ।

आभोगनिर्वर्तित आदि चारो प्रकार के क्रोधादि की व्याख्या– **आभोगनिर्वर्तित (उपयोगपूर्वक उत्पन्न हुआ) क्रोध**—जब दूसरे के अपराध को जानकर और क्रोध के पुष्ट कारण का अवलम्बन लेकर तथा प्रकारान्तर से इसे शिक्षा नही मिल सकती, इस प्रकार का उपयोग (विचार) करके कोई क्रोध करता है, तब वह क्रोध **आभोगनिर्वर्तित** (विचारपूर्वक उत्पन्न) कहलाता है । **अनाभोगनिर्वर्तित क्रोध**—(बिना उपयोग उत्पन्न हुआ)—जब यो ही साधारणरूप से मोहवश गुण-दोष की विचारणा से शून्य पराधीन बना हुआ जीव क्रोध करता है, तब वह क्रोध **अनाभोगनिर्वर्तित** कहलाता है । **उपशान्त क्रोध**—जो क्रोध उदयावस्था को प्राप्त न हो, वह **उपशान्त** कहलाता है । **अनुपशान्त क्रोध**—जो क्रोध उदयावस्था को प्राप्त हो, वह **'अनुपशान्त'** कहलाता है ।[1]

कषायों से अष्ट कर्मप्रकृतियों के चयादि की प्ररूपणा

९६४. [१] जीवा ण भंते ! कतिहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिसु ?

गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिसु । त जहा—कोहेणं १ माणेण २ मायाए ३ लोभेणं ४ ।

[९६४-१ प्र.] भगवन् ! जीवो ने कितने कारणो (स्थानो) से आठ कर्मप्रकृतियो का चय किया ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक २९१

[९६४-१ उ.] गौतम ! चार कारणो से जीवो ने आठ कर्मप्रकृतियो का चय किया, वे इस प्रकार हैं—१ क्रोध से, २. मान से, ३. माया से और ४ लोभ से ।

[२] एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाण ।

[९६४-२] इसी प्रकार की प्ररूपणा नैरयिको से लेकर वैमानिको तक के विषय मे समझनी चाहिए ।

९६५. [१] जीवा णं भंते ! कतिहि ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणंति ?

गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं । तं जहा—कोहेण १ माणेण २ मायाए ३ लोभेणं ४ ।

[९६५-१ प्र.] भगवन् ! जीव कितने कारणो मे आठ कर्मप्रकृतियो का चय करते है ?

[९६५-१ उ.] गौतम ! चार कारणो से जीव आठ कर्मप्रकृतियो का चय करते है, वे इस प्रकार हैं—(१) क्रोध से, (२) मान से, (३) माया से और (४) लोभ से ।

[२] एवं णेरइया जाव वेमाणिया ।

[९६५-२] इसी प्रकार नारको से लेकर वैमानिको तक के (विषय मे प्ररूपणा करनी चाहिए ।)

९६६. [१] जीवा णं भंते ! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिस्संति ?

गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिस्सति । तं जहा—कोहेण १ माणेणं २ मायाए ३ लोभेणं ४ ।

[९६६-१ प्र] भगवन् ! जीव कितने कारणो से आठ कर्मप्रकृतियो का चय करेगे ?

[९६६-१ उ.] गौतम ! चार कारणो से जीव आठ कर्मप्रकृतियो का चय करेगे, वे इस प्रकार है —(१) क्रोध से, (२) मान से, (३) माया से और (४) लोभ से ।

[२] एव णेरइया जाव वेमाणिया ।

[९६६-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर वैमानिको तक के (विषय मे प्ररूपणा करनी चाहिए ।)

९६७. [१] जीवा णं भते ! कइहिं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणिंसु ।

गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणिंसु । तं जहा—कोहेण १ माणेण २ मायाए ३ लोभेणं ४ ।

[९६७-१ प्र.] भगवन् ! जीवो ने कितने कारणो से आठ कर्मप्रकृतियो का उपचय किया है ?

[९६७-१ उ.] गौतम ! जीवो ने चार कारणो से आठ कर्मप्रकृतियो का उपचय किया है, वे इस प्रकार है—(१) क्रोध से, (२) मान से, (३) माया से और (४) लोभ से ।

[२] एव णेरइया जाव वेमाणिया ।

[९६७-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर यावत् वैमानिको तक के (विषय मे समझना चाहिए) ।

९६८. [१] जीवा णं भंते ! पुच्छा ।

गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं उवचिणंति-कोहेण १ जाव लोभेणं ४ ।

[९६८-१ प्र] भगवन् ! जीव कितने कारणो से आठ कर्मप्रकृतियो का उपचय करते हैं ?

[९६८-१ उ] गौतम ! चार कारणो से जीव आठ कर्मप्रकृतियो का उपचय करते हैं, वे इस प्रकार हैं—(१) क्रोध से, (२) मान से, (३) माया से और (४) लोभ से ।

[२] एवं णेरइया जाव वेमाणिया ।

[९६८-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर यावत् वैमानिको तक (के विषय में कहना चाहिए ।)

९६९. एवं उवचिणिस्संति ।

[९६९] इसी प्रकार (पूर्वोक्त चार कारणो से जीव आठ कर्मप्रकृतियो का) उपचय करेंगे, (यह कहना चाहिए ।)

९७०. जीवा णं भंते ! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ बंधिसु ३ ?

गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं । तं जहा—कोहेण १ जाव लोभेणं ४ ।

[९७० प्र] भगवन् ! जीवो ने कितने कारणो से आठ कर्मप्रकृतियो को बाधा है ?, बाधते है, बाधेंगे ?

[९७० उ.] गौतम ! चार कारणो से जीवो ने आठ कर्मप्रकृतियो को बाधा है, बाधते है और बाधेंगे, वे इस प्रकार हैं—क्रोध मे यावत् लोभ से ।

९७१. एव णेरइया जाव वेमाणिया बंधेंसु बंधति बंधिस्संति, उदीरेंसु उदीरंति उदीरिस्संति, वेइंसु वेएंति वेइस्संति, निज्जरेंसु निज्जरिंति णिज्जरिस्संति । एव एते जीवाईया वेमाणियपज्जवसाणा अट्ठारस दंडगा जाव वेमाणिया णिज्जरिंसु णिज्जरंति णिज्जरिस्संति ।

आयपइट्ठिय खेत्तं पडुच्चऽणंताणुबंधि आभोगे ।
चिण उवचिण बंध उदीर वेय तह निज्जरा चेव ।।२०१।।

।। पण्णवणाए भगवतीए चोद्दसम कसायपयं समत्तं ।।

[९७१] इसी प्रकार नैरयिको से वैमानिको तक के (जीवों ने) (पूर्वोक्त चार कारणो से आठ कर्मप्रकृतियो को) बाधा, बाधते है और बाधेंगे, उदीरणा की, उदीरणा करते है और उदीरणा करेंगे तथा वेदन किया (भोगा), वेदन करते (भोगते) हैं और वेदन करेंगे (भोगेंगे), (इसी प्रकार) निर्जरा की, निर्जरा करते हैं और निर्जरा करेंगे ।

इस प्रकार समुच्चय जीवो तथा नैरयिको से लेकर वैमानिको पर्यन्त आठ कर्मप्रकृतियो के चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदन एव निर्जरा की अपेक्षा से छह, तीनो (भूत, वर्तमान एव भविष्य) काल के तीन-तीन भेद के कुल अठारह दण्डक (आलापक) वैमानिको ने निर्जरा की, निर्जरा करते हैं तथा निर्जरा करेंगे, (तक कहने चाहिए ।)

[संग्रहणी गाथार्थ—] (प्रस्तुत प्रकरण मे) आत्मप्रतिष्ठित क्षेत्र की अपेक्षा से, अनन्तानुबन्धी (आदि कषाय), आभोग (निर्वर्तित आदि-कषाय), अष्ट कर्मप्रकृतियो के चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना तथा निर्जरा (का कथन किया गया है।)

विवेचन—जीवों के द्वारा अष्टविध कर्मप्रकृतियो के चयादि के कारणभूत चार कषायों का निरूपण—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू ९६४ से ९७१ तक) मे समुच्चय जीवो तथा चौवीस दण्डकवर्ती जीवो द्वारा आठ कर्मप्रकृतियो के त्रैकालिक चय, उपचय बन्ध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा के कारणभूत चारो कषायो की पृथक्-पृथक् प्ररूपणा की गई है।

निष्कर्ष—भूत, वर्त्तमान और भविष्य इन तीनो कालो मे समुच्चय जीव तथा नारको से लेकर वैमानिको तक चौवीस दण्डको के जीवो द्वारा क्रोध, मान, माया और लोभ के कारण आठ कर्मप्रकृतियो का चय, उपचय, बन्ध, उदोरणा, वेदना और निर्जरा की गई है, की जाती है और की जाएगी।

चय, उपचय आदि शब्दो की शास्त्रीय परिभाषा—चय—कषायपरिणत होकर जीव द्वारा कर्मयोग्य पुद्गलो का उपादान (ग्रहण) करना। **उपचय**—अपने अबाधाकाल के उपरान्त ज्ञानावरणीय आदि कर्म-पुद्गलो के वेदन (भोगने) के लिए निषेक (कर्म-पुद्गलो की रचना) करना। निषेक रचना को कहते हैं। उसका क्रम इस प्रकार है प्रथम स्थिति मे सबसे अधिक द्रव्य, दूसरी स्थिति मे विशेषहीन, तीसरी स्थिति मे उसकी अपेक्षा भी विशेषहीन, इस प्रकार उत्तरोत्तर विशेषहीन-विशेषहीन कर्मपुद्गल वेदन के लिए स्थापित किए जाते है। **बन्ध** जिन ज्ञानावरणीयादि कर्मपुद्गलो को यथोक्तप्रकार से निषक्त किया है, उनका विशिष्ट कषायपरिणति से निकाचन होना बन्ध कहलाता है। **उदीरणा**—कर्म अभी उदय मे नही आए है, उन्हे उदीरणीकरण के द्वारा जो उदयावलिका मे ले आना। **वेदना**—आबाधाकाल समाप्त होने पर उदयप्राप्त या उदीरित करके—उदीरणा करके कर्म का उपभोग करना (भोग लेना) वेदना—कहलाता है। **निर्जरा**—कर्मपुद्गलो का वेदन (भोग) के पश्चात् अकर्मरूप मे हो जाना अर्थात् आत्मप्रदेशो से झड जाना। प्रस्तुत प्रकरण मे देशनिर्जरा का कथन किया गया है। सर्वनिर्जरा तो कषाय से रहित होकर योगो का सर्वथा निरोध करके मोक्षप्रासाद पर आरूढ होने वाले को होती है। देशनिर्जरा सभी जीव सदैव करते रहते है।[1]

॥ प्रज्ञापनासूत्र चौदहवाँ कषायपद समाप्त ॥

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २९२

पन्नरसमं इंदियपयं : पढमो उद्देसओ

पन्द्रहवाँ इन्द्रियपद : प्रथम उद्देशक

प्राथमिक

- यह प्रज्ञापनासूत्र का पन्द्रहवाँ इन्द्रियपद है ।
- इन्द्रिया आत्मा को पहचानने के लिए लिंग है, इन्ही से आत्मा के अस्तित्व की प्रतीति होती है ।
- इस पद मे इन्द्रियो के सम्बन्ध मे सभी पहलुओ से विश्लेषण किया गया है । इसके दो उद्देशक हैं । प्रथम उद्देशक मे प्रारम्भ मे निरूपणीय २४ द्वारो का कथन है । द्वितीय उद्देशक मे १२ द्वारो के माध्यम से इन्द्रियो की प्ररूपणा की गई है ।
- प्रथम उद्देशक मे सस्थान से लेकर अल्पबहुत्व तक ६ द्वारो की चर्चा करके उनका २४ दण्डकों की अपेक्षा मे विचार किया है । सातवे स्पृष्टद्वार से नौवे विषय द्वार तक का विवरण है। इन मे चौवीस दण्डको की अपेक्षा मे विचार नही किया गया है, अपितु इन्द्रियो से सम्बन्धित विचार है । इसके अनन्तर अनगार और आहार को लेकर इन्द्रियो का—विशेषत चक्षुरिन्द्रिय की चर्चा है । तत्पश्चात् बारहवे से अठारहवे द्वार तक आदर्श से लेकर वसा तक ७ द्वारो के माध्यम मे विशेषत चक्षुरिन्द्रिय सम्बन्धी और फिर कम्बल, स्थणा (स्तम्भ), थिग्गल, द्वीपोदधि, लोक और अलोक तक के ६ द्वारो के माध्यम से विशेषतः स्पर्शेन्द्रिय सम्बन्धी प्ररूपणा की गई है ।
- द्वितीय उद्देशक मे इन्द्रियो का उपचय, निर्वर्त्तना, समय, लब्धि, उपयोगकाल, अल्पबहुत्व, अवग्रहण, ईहा, अवाय, व्यजनावग्रह, द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय इन १२ द्वारो के माध्यम से इन्द्रिय सम्बन्धी स्वरूप एव प्रकारो की प्ररूपणा करके उसका २४ दण्डको की अपेक्षा से विचार किया गया है ।[1] उपचय, निर्वर्तना, लब्धि और उपयोग इन चारो का तत्त्वार्थसूत्र मे क्रमशः प्रारम्भ की दो का द्रव्येन्द्रिय मे तथा अन्तिम दो का भावेन्द्रिय मे समावेश किया है ।
- आदर्शद्वार आदि का आशय आचार्य मलयगिरि ने दृश्यविषयक माना है । दृश्य चाहे जो हो, जिस विषय का उपयोग या विकल्प आत्मा को होता है, उसे ही दृश्य माना जाए तो प्रतिविम्ब देखते समय भान, उपयोग या विकल्प तो आदर्श आदि-गत प्रतिविम्ब विषयक ही है । निशीथभाष्य आदि मे इसकी रोचक चर्चा है ।
- द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय द्वार मे २४ दण्डकवर्ती जीवो की अतीत, बद्ध (वर्तमान) और अनागत (पुरस्कृत) उभय इन्द्रियो की विस्तृत चर्चा की गई है ।[2]

---

१. 'निवृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्, लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्' -तत्त्वार्थ. अ २, सू १७-१८

२ (क) पण्णवणासुत्त प्रथम भाग, पृ २३७ से २६० तक

(ख) पण्णवणासुत्त द्वितीय भाग प्रस्तावना, पृ ९७ से १०० तक

(ग) निशीथभाष्य गा ४३१८ आदि (घ) तत्त्वार्थ. सिद्धसेनीया टीका, पृ ३६४

पनरसमं इंदियपयं : पढमो उद्देसओ

पन्द्रहवाँ इन्द्रियपद : प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशक में प्ररूपित चौवीस द्वार

९७२. सठाण १ बाहल्लं २ पोहत्त ३ कतिपएस ४ ओगाढे ५।
अप्पाबहु ६ पुट्ठ ७ पविट्ठ ८ विसय ९ अणगार १० आहारे ११ ॥२०२॥
अद्दाय १२ असी १३ य मणी १४ उडुपाणे[1] १५ तेल्ल १६ फाणिय १७ वसा १८ य।
कबल १९ थूणा २० थिग्गल २१ दीवोदहि[2] २२ लोगऽलोगे २३-२४ य ॥२०३॥

[९७२ प्रथम उद्देशक की अर्थाधिकार गाथाओ का अर्थ—] १ 'सस्थान, २ बाहल्य (स्थूलता), ३ पृथुत्व (विस्तार), ४ कति-प्रदेश (कितने प्रदेश वाली) ५. अवगाढ, ६ अल्पबहुत्व, ७ स्पृष्ट, ८ प्रविष्ट, ९ विषय, १० अनगार, ११ आहार, १२ आदर्श (दर्पण), १३ असि (तलवार), १४. मणि, १५ उदपान (या दुग्धपानक), १६ तैल, १७ फाणित (गुडराब), १८ वसा (चर्बी), १९ कम्बल, २० स्थूणा (स्तूप या ठू ठ), २१ थिग्गल (आकाश थिग्गल—पैबन्द), २२ द्वीप और उदधि, २३ लोक और २४ अलोक, इन चौवीस द्वारो के माध्यम से इन्द्रिय-सम्बन्धी प्ररूपणा की जाएगी ॥ २०२-२०३ ॥

विवेचन—प्रथम उद्देशक में प्ररूपित चौवीस द्वार—प्रस्तुत दो गाथाओ के द्वारा प्रथम उद्देशक मे प्ररूपित इन्द्रिय-सम्बन्धी चौवीम द्वारो का नामोल्लेख किया गया है।

चौवीस द्वारो का स्पष्टीकरण—(१) **सस्थानद्वार**—इसमे इन्द्रियो के सस्थान—आकार की प्ररूपणा है, (२) **बाहल्यद्वार**—इसमे इन्द्रियो की स्थूलता (बहलता) यानी पिण्ड-रूपता का वर्णन है, (३) **पृथुत्वद्वार**—इसमे इन्द्रियो के विस्तार का निरूपण है, (४) **कति-प्रदेशद्वार** इसमे बताया गया है कि किस इन्द्रिय के कितने प्रदेश है, (५) **अवगाढद्वार**—इसमे यह वर्णन है कि कौन-सी इन्द्रिय कितने प्रदेशो मे अवगाढ है। (६) **अल्पबहुत्वद्वार**—इसमे अवगाहनासम्बन्धी और कर्कशता सम्बन्धी अल्पबहुत्व का प्रतिपादन है, (७) **स्पृष्टद्वार**—इसमे स्पृष्ट अस्पृष्ट विषयक प्ररूपणा है, (८) **प्रविष्टद्वार**—इसमे प्रविष्ट-अप्रविष्ट सम्बन्धी चर्चा है, (९) **विषयद्वार** इसमे विषयो के परिमाण का वर्णन है, (१०) **अनगारद्वार**—इसमे अनगार से सम्बन्धित सूत्र है, (११) **आहारद्वार**—इसमे आहारविषयक सूत्र हैं, (१२) **आदर्शद्वार** इसमे दर्पणविषयक निरूपण है, (१३) **असिद्वार**—इसमे असि-सम्बन्धित प्ररूपणा है, (१४) **मणिद्वार**-मणिविषयक वक्तव्य, (१५) **उदपानद्वार**—उदकपान अथवा उडुपानविषयक प्ररूपणा (अथवा दुग्ध और पानविषयक प्ररूपणा), (१६) **तैलद्वार**—इसमे तैलविषयक वक्तव्य हैं, (१७) **फाणितद्वार**—इसमे फाणित (गुडराब) के विषय मे

१. अनेक प्रतियो मे इसके बदले पाठान्तर है—'दुद्धपाणे'—जिसमे दुग्ध और पान ये दो द्वार पृथक्-पृथक् कर दिये गए हैं। किन्तु निशीथसूत्र (उ १३) के पाठ के अनुसार 'उडुपाणे' पाठ ही प्रामाणिक होता है।

२. कोई-कोई आचार्य द्वीप और उदधि, यो दो द्वार मानते है।

प्ररूपणा है, (१८) **वसाद्वार**—इसमे वसा (चर्बी) के विषय में वर्णन है, (१९) **कम्बलद्वार**—इसमे कम्बलविषयक निरूपण है, (२०) **स्थूणाद्वार**—इसमे स्थूणा (स्तूप या ठूठ) से सम्बन्धित निरूपण है, (२१) **थिग्गलद्वार** -इसमे आकाशथिग्गल विषयक वर्णन है, (२२) **द्वीपोदधिद्वार**—इसमे द्वीप और समुद्र विषयक प्ररूपणा है, (२३) **लोकद्वार**—लोकविषयक वक्तव्य, और (२४) **अलोकद्वार**—अलोक सम्बन्धी प्ररूपणा है।[1]

इन्द्रियों की संख्या

९७३. कति ण भंते ! इंदिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचइंदिया पण्णत्ता। त जहा—सोइंदिए १ चक्खिदिए २ घाणिंदिए ३ जिब्भिदिए ४ फासिंदिए ५।

[९७३ प्र] भगवन् ! इन्द्रियाँ कितनी कही गई हैं ?

[९७३ उ] गौतम ! पाच इन्द्रियाँ कही है। वे इस प्रकार—(१) श्रोत्रेन्द्रिय, (२) चक्षुरिन्द्रिय (३) घ्राणेन्द्रिय, (४) जिह्वेन्द्रिय और (५) स्पर्शेन्द्रिय।

विवेचन—इन्द्रियों की सख्या - प्रस्तुत सूत्र मे श्रोत्रेन्द्रिय आदि पाच इन्द्रियो की प्ररूपणा की गई है।

अन्य दार्शनिक मन्तव्य—साख्यादि दर्शनो मे श्रोत्रेन्द्रिय आदि पाच इन्द्रियों को ज्ञानेन्द्रिय कहा गया है तथा वाक्, पाणि (हाथ), पाद (पैर), पायु (मूत्रद्वार) और उपस्थ (मलद्वार), इन पाच इन्द्रियो को कर्मेन्द्रिय कहा गया है। किन्तु पाच कर्मेन्द्रियो की मान्यता युक्तिसगत नही है। जैन-दर्शन मे द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय के रूप से प्रत्येक के दो-दो भेद तथा द्रव्येन्द्रिय के निर्वृत्ति और उपकरण एव भावेन्द्रिय के लब्धि और उपयोग रूप दो-दो प्रकार बताये गये हैं। इनका निरूपण इसी पद के द्वितीय उद्देशक मे किया जायेगा।[2]

प्रथम संस्थानद्वार

९७४ [१] सोइंदिए ण भंते ! किसंठिते पण्णत्ते ?

गोयमा ! कलंबुयापुप्फसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

[९७४-१ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय किस आकार की कही गई है ?

[९७४-१ उ] गौतम ! (वह) कदम्बपुष्प के आकार की कही गई है।

[२] चक्खिदिए ण भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! मसूरचंदसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

[९७४-२ प्र] भगवन् ! चक्षुरिन्द्रिय किस आकार की कही गई है ?

[९७४-२ उ] गौतम (चक्षुरिन्द्रिय) मसूर-चन्द्र के आकार की कही है।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २९३

२ (क) साख्यकारिका, योगदर्शन (ख) प्रज्ञापना. मलय वृत्ति, पत्राक २९३
(ग) 'निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्', 'लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्'—तत्त्वार्थसूत्र अ २, सू १७, १८

[३] घाणिंदिए णं पुच्छा ।

गोयमा ! अइमुत्तगचंदसंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[९७४-३ प्र] भगवन् ! घ्राणेन्द्रिय का आकार किस प्रकार है ? यह प्रश्न है ?

[९७४-३ उ.] गौतम ! (घ्राणेन्द्रिय) अतिमुक्तकपुष्प के आकार की कही है ।

[४] जिब्भिंदिए णं पुच्छा ।

गोयमा ! खुरप्पसंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[९७४-४ प्र] भगवन् ! जिह्वेन्द्रिय किस आकार की है ? यह प्रश्न है ।

[९७४-४ उ] गौतम ! (जिह्वेन्द्रिय) खुरपे के आकार की है ।

[५] फासिंदिए णं पुच्छा ।

गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[९७४-५ प्र] भगवन् ! स्पर्शेन्द्रिय के आकार के लिये प्रश्न है ?

[९७४-५ उ] गौतम ! स्पर्शेन्द्रिय नाना प्रकार के आकार की कही गई है ।

विवेचन - प्रथम संस्थानद्वार—पांच इन्द्रियों के आकार का निरूपण - प्रस्तुत सूत्र में पाचो इन्द्रियो के आकार का निरूपण किया गया है ।

प्रत्येन्द्रिय का निर्वृत्तिरूप भेद ही सस्थान प्रत्येक इन्द्रिय के विशिष्ट और विभिन्न सस्थान-विशेष (रचनाविशेष) को निर्वृति कहते है । वह निर्वृति भी दो प्रकार की होती है बाह्य और आभ्यन्तर । बाह्य निर्वृति पर्पटिका आदि है । वह विविध—विचित्र प्रकार की होती है । अतएव उसको किसी एक नियत रूप मे नही कहा जा सकता । उदाहरणार्थ—मनुष्य के श्रोत्र (कान) दोनो नेत्रो के दोनो पार्श्व (बगल) मे होते है । उसकी भौहे ऊपर के श्रवणबन्ध की अपेक्षा से सम होती है, किन्तु घोड़े के कान नेत्रो के ऊपर होते है और उनके अग्रभाग तीक्ष्ण होते है । इस जातिभेद से इन्द्रियो की बाह्य निर्वृत्ति (रचना या आकृति) नाना प्रकार की होती है, किन्तु इन्द्रियो की आभ्यन्तर-निर्वृत्ति सभी जीवो की समान होती है । यहाँ सस्थानादिविषयक प्ररूपणा इसी आभ्यन्तरनिर्वृत्ति को लेकर की गई है । केवल स्पर्शेन्द्रिय-निर्वृत्ति के बाह्य और आभ्यन्तर भेद नही करने चाहिए । वृत्तिकार ने स्पर्शेन्द्रिय को बाह्यसस्थानविषयक बताकर उसको व्याख्या इस प्रकार की है—बाह्यनिर्वृतिखड्ग के समान है और तलवार की धार के समान स्वच्छतर पुद्गलसमूहरूप आभ्यन्तरनिर्वृत्ति है ।

द्वितीय-तृतीय बाहल्य-पृथुत्वद्वार

९७५. [१] सोइंदिए ण भंते ! केवतिय बाहल्लेण पण्णत्ते ?

गोयमा ! अगुलस्स असखेज्जतिभाग बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

[९७५-१ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय का बाहल्य (जाडाई-मोटाई) कितना कहा गया है ?

[९७५-१ उ] गौतम ! (श्रोत्रेन्द्रिय का) बाहल्य अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण कहा गया है ।

[२] एव जाव फासिंदिए ।

[९७५-२] इसी प्रकार (चक्षुरिन्द्रिय से लेकर) यावत् स्पर्शेन्द्रिय के बाहल्य के विषय में समझना चाहिए ।

९७६. [१] सोइंदिए णं भंते ! केवतियं पोहत्तेणं पण्णत्ते ।

गोयमा ! अंगुलस्स असंखेज्जति भाग पोहत्तेणं पण्णत्ते ।

[९७६-१ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय कितनी पृथु = विशाल (विस्तारवाली) कही गई है ?

[९७६-१ उ.] गौतम ! (श्रोत्रेन्द्रिय) अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण पृथु--विशाल कही है ।

[२] एवं चक्खिदिए वि घाणिंदिए वि ।

[९७६-२] इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय एव घ्राणेन्द्रिय (की पृथुता—विशालता) के विषय मे (समझना चाहिए) ।

[३] जिब्भिदिए ण पुच्छा ।

गोयमा ! अंगुलपुहत्तं पोहत्तेणं पण्णत्ते ।

[९७६-३ प्र] भगवन् ! जिह्वेन्द्रिय कितनी पृथु (विस्तृत) कही गई है ?

[९७६-३ उ] गौतम ! जिह्वेन्द्रिय अगुल-पृथक्त्व (दो अगुल से नौ अगुल तक) विशाल (विस्तृत) है ।

[४] फासिंदिए णं पुच्छा ।

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ते पोहत्तेण पण्णत्ते ।

[९७६-४ प्र] भगवन् ! स्पर्शेन्द्रिय के पृथुत्व (विस्तार) के विषय मे पृच्छा (का समाधान क्या है ?)

[९७६-४ उ] गौतम ! स्पर्शेन्द्रिय शरीरप्रमाण पृथु (विशाल) कही है ।

विवेचन—द्वितीय-तृतीय बाहल्य-पृथुत्वद्वार प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ९७५-९७६) मे दो द्वारो के माध्यम से पाचो इन्द्रियो के बाहल्य (स्थूलता) एव पृथुत्व (विस्तार) का प्रमाण प्रतिपादित किया गया है ।

सभी इन्द्रियो का बाहल्य समान क्यो ? बाहल्य की अपेक्षा से सभी इन्द्रियाँ अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है । इस विषय मे एक शका है कि 'यदि स्पर्शेन्द्रिय का बाहल्य (स्थूलता) अगुल का असख्यातवाँ भाग प्रमाण है तो तलवार, छुरी आदि का आघात लगने पर शरीर के अन्दर वेदना का अनुभव क्यो होता है ?' इसका समाधान यह है कि जैसे चक्षुरिन्द्रिय का विषय रूप है, घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध है, वैसे ही स्पर्शेन्द्रिय का विषय शीत आदि स्पर्श है, किन्तु जब तलवार और छुरी आदि का आघात लगता है, तब शरीर मे शीत आदि स्पर्श का वेदन नही होता, अपितु दु ख का वेदन होता है । दु खरूप उस वेदन को आत्मा समग्र शरीर से अनुभव करती है, केवल स्पर्शेन्द्रिय से नही । जैसे -ज्वर आदि का वेदन सम्पूर्ण शरीर मे होता है । शीतलपेय (ठडे शर्बत आदि) के पीने

से जो भीतर में (शरीर में) शीतस्पर्शवेदन का अनुभव होता है, उसका कारण यह है कि स्पर्शेन्द्रिय सर्वप्रदेशपर्यन्तवर्ती होती है। इसलिए त्वचा के अन्दर तथा खाली जगह के ऊपर भी स्पर्शेन्द्रिय का सद्भाव होने से शरीर के अन्दर शीतस्पर्श का अनुभव होना युक्तियुक्त है।[1]

इन्द्रियों का पृथुत्व—जिह्वेन्द्रिय के सिवाय शेष चारो इन्द्रियो का पृथुत्व (विशालता= विस्तार) अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है। जिह्वेन्द्रिय का पृथुत्व अगुलपृथक्त्वप्रमाण है, किन्तु यहाँ यह ध्यान रखना है कि स्पर्शेन्द्रिय के अतिरिक्त शेष चारो इन्द्रियो का पृथुत्व (विस्तार) आत्मांगुल से समझना चाहिए। केवल स्पर्शेन्द्रिय का पृथुत्व उत्सेधागुल से जानना चाहिए।[2]

चतुर्थ-पंचम कतिप्रदेशद्वार एवं अवगाढद्वार

९७७. [१] सोइंदिए णं भंते ! कतिपएसिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! अणंतपएसिए पण्णत्ते।

[९७७-१ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय कितने प्रदेश वाली कही गई है ?

[९७७-१ उ.] गौतम ! (श्रोत्रेन्द्रिय) अनन्त-प्रदेशी कही गई है।

[२] एवं जाव फासिंदिए।

[९७७-२] इसी प्रकार यावत् स्पर्शेन्द्रिय (के प्रदेशो के सम्बन्ध मे कहना चाहिए)।

९७८. [१] सोइंदिए णं भंते ! कतिपएसोगाढे पण्णत्ते ?

गोयमा ! असखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

[९७८-१ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय कितने प्रदेशो मे अवगाढ कही गई है ?

[९७८-१ उ] गौतम ! (श्रोत्रेन्द्रिय) असख्यात प्रदेशो मे अवगाढ कही है।

[२] **एव जाव फासिंदिए।**

[९७८-२] इसी प्रकार (चक्षुरिन्द्रिय से लेकर) यावत् स्पर्शेन्द्रिय तक के विषय मे कहना चाहिए।

विवेचन - चतुर्थ-पंचम कतिप्रदेशद्वार एवं अवगाढद्वार—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ९७७-९७८) मे बताया गया है कि कौन-सी इन्द्रिय कितने प्रदेशो वाली है तथा कितने प्रदेशो मे अवगाढ है ?

अवगाहनादि की दृष्टि से अल्पबहुत्वद्वार

९७९ **एएसि ण भंते ! सोइंदिय-चक्खिदिय-घाणिदिय-जिब्भिदिय-फासिंदियाणं ओगाहणट्ठयाए पएसट्ठयाए ओगाहणपएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवे चक्खिदिए ओगहणट्ठयाए सोइंदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे, घाणिदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे, जिब्भिदिए ओगाहणट्ठयाए असखेज्जगुणे, फासिंदिए ओगाहणट्ठ-

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २९४

२ वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक २९४

याए संखेज्जगुणे; पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवे चक्खिदिए पदेसट्ठयाए, सोइंदिए पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणे, घाणिदिए पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे, जिब्भिदिए पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणे, फासिदिए पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे; ओगाहणपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवे चक्खिदिए ओगाहणट्ठयाए, सोइंदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे, घाणिदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे, जिब्भिदिए ओगाहणट्ठयाए असंखेज्जगुणे, फासिदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे, फासिदियस्स ओगाहणट्ठयाएहितो चक्खिदिए पएसट्ठयाए अणंतगुणे, सोइंदिए पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे, घाणिदिए पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे, जिब्भिदिए पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणे, फासिदिए पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे ।

[९७९ प्र.] भगवन् ! इन श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय मे से अवगाहना की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से तथा अवगाहना और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[९७९ उ] गौतम ! अवगाहना की अपेक्षा से सबसे कम चक्षुरिन्द्रिय है, (उससे) श्रोत्रेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से सख्यातगुणी है, (उससे) घ्राणेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से सख्यातगुणी है, (उससे) जिह्वेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से असख्यातगुणी है, (उसकी अपेक्षा) स्पर्शनेन्द्रिय अवगाहना की दृष्टि से सख्यातगुणी है । प्रदेशो की अपेक्षा से—सबसे कम चक्षुरिन्द्रिय है, (उससे) श्रोत्रेन्द्रिय प्रदेशो की अपेक्षा से सख्यातगुणी है, (उससे) घ्राणेन्द्रिय प्रदेशो की अपेक्षा से सख्यातगुणी है, (उससे) जिह्वेन्द्रिय प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणी है, (उसकी अपेक्षा) स्पर्शनेन्द्रिय प्रदेशो की अपेक्षा से सख्यातगुणी है । अवगाहना और प्रदेशो की अपेक्षा से—सबसे कम अवगाहना की दृष्टि से चक्षुरिन्द्रिय है, (उससे) अवगाहना की अपेक्षा से श्रोत्रेन्द्रिय सख्यातगुणी है, (उससे) घ्राणेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से सख्यातगुणी है, (उससे) जिह्वेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से असख्यातगुणी है, (उससे) स्पर्शनेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से सख्यातगुणी है, स्पर्शनेन्द्रिय की अवगाहनार्थता से चक्षुरिन्द्रिय प्रदेशार्थता से अनन्तगुणी है, (उससे) श्रोत्रेन्द्रिय प्रदेशो की अपेक्षा से सख्यातगुणी है, (उससे) घ्राणेन्द्रिय प्रदेशो की अपेक्षा से सख्यातगुणी है, (उससे) जिह्वेन्द्रिय प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणी है, (उससे) स्पर्शनेन्द्रिय प्रदेशो की अपेक्षा से सख्यातगुणी है ।

९८०. [१] सोइंदियस्स ण भंते ! केवतिया कक्खडगरुयगुणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता कक्खडगरुयगुणा पण्णत्ता ।

[९८०-१ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश और गुरु गुण कितने कहे गए है ?

[९८०-१ उ] गौतम ! (श्रोत्रेन्द्रिय के) अनन्त कर्कश और गुरु गुण कहे गए हैं ।

[२] एवं जाव फासिदियस्स ।

[९८०-२] इसी प्रकार (चक्षुरिन्द्रिय से लेकर) यावत् स्पर्शनेन्द्रिय (तक के कर्कश और गुरु गुण के विषय मे कहना चाहिए ।)

९८१. [१] सोइंदियस्स ण भंते ! केवतिया मउयलहुयगुणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता मउयलहुयगुणा पण्णत्ता ।

[९८१-१ प्र.] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय के मृदु और लघु गुण कितने कहे गए है ?

[९८१-१ उ] गौतम ! (श्रोत्रेन्द्रिय के) मृदु और लघु गुण अनन्त कहे गए है।

[२] एवं जाव फासिंदियस्स ।

[९८१-२] इसी प्रकार (चक्षुरिन्द्रिय से लेकर) स्पर्शनेन्द्रिय (तक के मृदु-लघु गुण के विषय मे कहना चाहिए ।)

९८२. एतेसि णं भंते ! सोइंदिय-चक्खिदिय-घाणिदिय-जिब्भिदिय-फासिंदियाणं कक्खडगरुयगुणाणं मउयलहुयगुणाण कक्खडगरुयगुण-मउयलहुयगुणाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा चक्खिदियस्स कक्खडगरुयगुणा, सोइंदियस्स कक्खडगरुयगुणा अणंतगुणा, घाणिदियस्स कक्खडगरुयगुणा अणतगुणा, जिब्भिदियस्स कक्खडगरुयगुणा अणतगुणा, फासेंदियस्स कक्खडगरुयगुणा अणंतगुणा; मउयलहुयगुणाण- सव्वत्थोवा फासिंदियस्स मउयलहुयगुणा, जिब्भिदियस्स मउयलहुयगुणा अणतगुणा, घाणिदियस्स मउयलहुयगुणा अणतगुणा, सोइंदियस्स मउयलहुयगुणा अणतगुणा, चक्खिदियस्स मउयलहुयगुणा अणतगुणा, कक्खडगरुयगुणाण मउयलहुयगुणाण य सव्वत्थोवा चक्खिदियस्स कक्खडगरुयगुणा, सोइंदियस्स कक्खडगरुयगुणा अणतगुणा, घाणिदियस्स कक्खडगरुयगुणा, अणंतगुणा, जिब्भिदियस्स कक्खडगरुयगुणा अणतगुणा, फासिंदियस्स कक्खडगरुयगुणा अणंतगुणा, फासिंदियस्स कक्खडगरुयगुणेहिंतो तस्स चेव मउयलहुयगुणा अणतगुणा, जिब्भिदियस्स मउयलहुयगुणा अणंतगुणा, घाणिदियस्स मउयलहुयगुणा अणतगुणा, सोइंदियस्स मउयलहुयगुणा अणंतगुणा, चक्खिदियस्स मउयलहुयगुणा अणंतगुणा ।

[९८२ प्र.] भगवन् ! इन श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरु-गुणो और मृदु-लघु-गुणो मे मे कौन, किनमे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[९८२ उ.] गौतम ! सबसे कम चक्षुरिन्द्रिय के कर्कश-गुरु-गुण है, (उनमे) श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश-गुरु-गुण अनन्तगुणे है, (उनसे) घ्राणेन्द्रिय के कर्कश-गुरु-गुण अनन्तगुणे है, (उनसे) जिह्वेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुण अनन्तगुणे है (और उनमे) स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरु-गुण अनन्तगुणे है। मृदु-लघु गुणो मे से—सबसे थोडे स्पर्शनेन्द्रिय के मृदु-लघुगुण है, (उनसे) जिह्वेन्द्रिय के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे है, (उनसे) घ्राणेन्द्रिय के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे है, (उनसे) श्रोत्रेन्द्रिय के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे है, (उनमे) चक्षुरिन्द्रिय के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे है। कर्कश-गुरुगुणो और मृदु-लघुगुणो मे से सबसे कम चक्षुरिन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुण है, (उनसे) श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुण अनन्तगुणे है, (उनसे) घ्राणेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुण अनन्तगुणे है, (उनसे) जिह्वेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुण अनन्तगुणे है, (उनसे) स्पर्शेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुण अनन्तगुणे है। स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुणो से उसी के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे है, (उनसे) जिह्वेन्द्रिय के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे है, (उनसे) घ्राणेन्द्रिय के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे हैं, (उनसे) श्रोत्रेन्द्रिय के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे है, (और उनसे भी) चक्षुरिन्द्रिय के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे है ।

विवेचन—इन्द्रियो के अवगाहना-प्रदेश, कर्कश-गुरु तथा मृदु-लघुगुण आदि की अपेक्षा से

अल्पबहुत्व—प्रस्तुत चार सूत्रो में इन्द्रियो के अवगाहना, प्रदेश एव अवगाहना-प्रदेश की अपेक्षा से तथा इन्द्रियो के कर्कश-गुरु एव मृदु-लघु गुणो मे अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

अवगाहना की दृष्टि से अल्पबहुत्व—अवगाहना की दृष्टि से सबसे कम प्रदेशो मे अवगाढ चक्षुरिन्द्रिय है, उससे श्रोत्रेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा सख्यातगुणी अधिक है, क्योकि वह चक्षुरिन्द्रिय की अपेक्षा अत्यधिक प्रदेशो मे अवगाढ है। उसकी अपेक्षा घ्राणेन्द्रिय की अवगाहना सख्यातगुणी अधिक है, क्योकि वह और भी अधिक प्रदेशो मे अवगाढ है। उससे जिह्वेन्द्रिय अवगाहना की दृष्टि से असख्यातगुणी अधिक है, क्योकि जिह्वेन्द्रिय का विस्तार अगुलपृथक्त्व-प्रमाण है, जबकि पूर्वोक्त चक्षु आदि तीन इन्द्रियाँ, प्रत्येक अगुल के असख्यातवे भाग विस्तार वाली हैं। जिह्वेन्द्रिय से स्पर्शनेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा सख्यातगुणी अधिक ही सगत होती है, असख्यातगुणी अधिक नही, क्योकि जिह्वेन्द्रिय का विस्तार अगुलपृथक्त्व- (दो अगुल से नौ अगुल तक) का होता है, जबकि स्पर्शनेन्द्रिय शरीर-परिमाण है। शरीर अधिक से अधिक बडा लक्ष योजन तक का हो सकता है। ऐसी स्थिति मे वह कैसे असख्यातगुणी अधिक हो सकती है? अतएव जिह्वेन्द्रिय से स्पर्शनेन्द्रिय को सख्यातगुणा अधिक कहना ही युक्तिसगत है।

इसी क्रम से प्रदेशो की अपेक्षा से तथा अवगाहना और प्रदेशो की अपेक्षा से उपर्युक्त युक्ति के अनुसार अल्पबहुत्व की प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए।

इन्द्रियो के कर्कश-गुरु और मृदु-लघु गुणो का अल्पबहुत्व—पाचो इन्द्रियो मे कर्कशता तथा मृदुता एव गुरुता तथा लघुता गुण विद्यमान है। उनका अल्पबहुत्व यहाँ प्ररूपित है। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और स्पर्शनेन्द्रियाँ अनुक्रम से कर्कश-गुरुगुण मे अनन्त-अनन्तगुणी अधिक हैं। इन्ही इन्द्रियो के मृदु-लघुगुण पश्चानुक्रम से अनन्त-अनन्तगुणे अधिक बतलाए गए हैं। कर्कश-गुरुगुणो और मृदु-लघुगुणो के युगपद् अल्पबहुत्व-विचार मे स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुणो से उसी के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे बताए है, उसका कारण यह है कि शरीर मे कुछ ही ऊपरी प्रदेश शीत, आतप आदि के सम्पर्क से कर्कश होते है, तदन्तर्गत बहुत-से अन्य प्रदेश तो मृदु ही रहते है। अतएव स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुणो की अपेक्षा से उसके मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे अधिक होते हैं।[1]

चौबीस दण्डको में संस्थानादि छह द्वारों की प्ररूपणा

९८३. [१] णेरइयाणं भंते! कइ इंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! पचेंदिया पण्णत्ता। त जहा—सोइंदिए जाव फासिंदिए।

[९८३-१ प्र] भगवन्! नैरयिको के कितनी इन्द्रियाँ कही है?

[९८३-१ उ] गौतम! (उनके) पाच इन्द्रियाँ कही है, वे इस प्रकार—श्रोत्रेन्द्रिय से लेकर स्पर्शनेन्द्रिय तक।

[२] णेरइयाण भंते! सोइंदिए किसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! कलंबुयासंठाणसंठिए पण्णत्ते। एव जहेव ओहियाण वत्तव्वया भणिया (सु. ९७४ तः ९८२) तहेव णेरइयाणं पि जाव अप्पाबहुयाणि दोण्णि वि। णवर णेरइयाण भते! फासिंदिए किसंठिए पण्णत्ते?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक २९६

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—भवधारणिज्जे य उत्तरवेउव्विए य, तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से णं हुंडसठाणसंठिए पण्णत्ते, तत्थ ण जे से उत्तरवेउव्विए से वि तहेव । सेसं तं चेव ।

[९८३-२ प्र.] भगवन् ! नारको की श्रोत्रेन्द्रिय किस आकार की होती है ?

[९८३-२ उ.] गौतम ! (उनकी श्रोत्रेन्द्रिय) कदम्बपुष्प के आकार की होती है। इसी प्रकार जैसे समुच्चय जीवो की पचेन्द्रियो की वक्तव्यता कही है, वैसी ही नारको की सस्थान, बाहल्य, पृथुत्व, कतिप्रदेश, अवगाढ और अल्पबहुत्व, इन छह द्वारो की भी वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि नैरयिको की स्पर्शनेन्द्रिय किस आकार की कही गई है ? (इस प्रश्न के उत्तर मे इस प्रकार कहा गया है—) गौतम ! नारको की स्पर्शनेन्द्रिय दो प्रकार की कही गई है, यथा—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। उनमें से जो भवधारणीय (स्पर्शनेन्द्रिय) है, वह हुण्डकसस्थान की है और जो उत्तरवैक्रिय स्पर्शनेन्द्रिय है, वह भी हुण्डकसस्थान की है। शेष (सब प्ररूपणा पूर्ववत् समझनी चाहिए।)

९८४. असुरकुमाराणं भंते ! कति इंदिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचेंदिया पण्णत्ता । एव जहा ओहियाण (९७३ तः ९८२) जाव अप्पाबहुयाणि दोण्णि वि । णवर फासेंदिए दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—भवधारणिज्जे य उत्तरवेउव्विए य । तत्थ ण जे से भवधारणिज्जे से ण समचउरसठाणसठिए पण्णत्ते, तत्थ ण जे से उत्तरवेउव्विए से ण णाणासंठाणसठिए पण्णत्ते । सेस तं चेव । एव जाव थणियकुमाराण ।

[९८४ प्र] भगवन् ! असुरकुमारो के कितनी इन्द्रियाँ कही गई है ?

[९८४ उ] गौतम ! (उनके) पाच इन्द्रियाँ कही है। इसी प्रकार जैसे (९७३ से ९८२ तक मे) समुच्चय (औधिक) जीवो (के इन्द्रियो के सस्थान से लेकर दोनो प्रकार के अल्पबहुत्व तक) की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार असुरकुमारो की इन्द्रियसम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह कि (इनकी) स्पर्शनेन्द्रिय दो प्रकार की कही है, यथा भवधारणीय (स्पर्शनेन्द्रिय) समचतुरस्र-सस्थान वाली है और उत्तरवैक्रिय (स्पर्शनेन्द्रिय) नाना सस्थान वाली होती है। इसी प्रकार की (इन्द्रियसम्बन्धी) वक्तव्यता नागकुमार से लेकर स्तनितकुमारो तक की (समझ लेनी चाहिए।)

९८५ [१] पुढविकाइयाणं भते ! कति इंदिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगे फासिदिए पण्णत्ते ।

[९८५-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो के कितनी इन्द्रियाँ कही गई है ?

[९८५-१ उ] गौतम ! (उनके) एक स्पर्शनेन्द्रिय (ही) कही है।

[२] **पुढविकाइयाणं भंते ! फासिदिए किंसंठिए पण्णत्ते ?**
गोयमा ! मसूरचंदसंठिए पण्णत्ते ।

[९८५-२ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिको की स्पर्शनेन्द्रिय किस आकार (सस्थान) की कही गई है ?

[९८५-२ उ] गौतम ! (उनकी स्पर्शनेन्द्रिय) मसूर-चन्द्र के आकार की कही है।

[३] पुढविकाइयाण भंते ! फासिंदिए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! अंगुलस्स असंखेज्जइभाग बाहल्लेण पण्णत्ते ।

[९८५-३ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिको की स्पर्शनेन्द्रिय का बाहल्य (स्थूलता) कितना कहा गया है ?

[९८५-३.] गौतम ! (उसका) बाहल्य अगुल से असख्यातवे भाग (-प्रमाण) कहा है।

[४] पुढविकाइयाण भंते ! फासिदिए केवतिय पोहत्तेण पण्णत्ते ?

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ते पोहत्तेणं पण्णत्ते ।

[९८५-४ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिको की स्पर्शनेन्द्रिय का पृथुत्व (विस्तार) कितना कहा गया है ?

[९८५-४] गौतम ! (उनकी स्पर्शनेन्द्रिय का) विस्तार उनके शरीरप्रमाणमात्र है।

[५] पुढविकाइयाण भते ! फासिंदिए कतिपएसिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! अणतपएसिए पण्णत्ते ।

[९८५-५ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिको की स्पर्शनेन्द्रिय कितने प्रदेशो की कही है ?

[९८५-८ उ] गौतम ! अनन्तप्रदेशी कही गई है।

[६] पुढविकाइयाणं भते ! फासिदिए कतिपएसोगाढे पण्णत्ते ?

गोयमा ! असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते ।

[९८५-६ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिको की स्पर्शनेन्द्रिय कितने प्रदेशो मे अवगाढ कही है ?

[९८५-६ उ] गौतम ! असंख्यातप्रदेशों मे अवगाढ कही है।

[७] एतेसि ण भते ! पुढविकाइयाण फासिंदियस्स ओगाहण-पएसट्टयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे पुढविकाइयाण फासिंदिए ओगाहणट्ठयाए, से चेव पएसट्ठयाए अणतगुणे ।

[९८५-७ प्र.] भगवन् ! इन पृथ्वोकायिको की स्पर्शनेन्द्रिय, अवगाहना की अपेक्षा और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[९८५-७ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिको की स्पर्शनेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा सबसे कम है, प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणी (अधिक) है।

[८] पुढविकाइयाण भंते ! फासिंदियस्स केवतिया कक्खडगरुयगुणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता । एव मउयलहुयगुणा वि ।

[९८५-८ प्र.] भगवन् ! पृथ्वोकायिको की स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरु-गुण कितने कहे गए है ?

[९८५-८ उ] गौतम ! (वे) अनन्त कहे है। इसी प्रकार (उसके) मृदु-लघुगुणो के विषय मे भी समझना चाहिए।

[९] एतेसि णं भंते ! पुढविकाइयाणं फासेंदियस्स कक्खडगरुयगुण-मउयलहुयगुणाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पुढविकाइयाण फासेंदियस्स कक्खडगरुयगुणा, तस्स चेव मउयलहुयगुणा अणंतगुणा।

[९८५-९ प्र] भगवन् ! इन पृथ्वीकायिको की स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुणो और मृदु-लघुगुणो मे से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[९८५-९ उ.] गौतम ! पृथ्वीकायिको के स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश और गुरु गुण सबसे कम हैं, (उनकी अपेक्षा) मृदु तथा लघु गुण अनन्तगुणे है।

९८६. एवं आउक्काइयाण वि जाव वणप्फइकाइयाणं। णवरं संठाणे इमो विसेसो दट्ठव्वो— आउक्काइयाण थिबुगबिंदुसंठाणसंठिए पण्णत्ते, तेउक्काइयाण सूईकलावसंठाणसंठिए पण्णत्ते, वाउक्काइयाणं पडागासंठाणसंठिए पण्णत्ते, वणप्फइकाइयाणं णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

[९८६] पृथ्वीकायिको (के स्पर्शनेन्द्रिय संस्थान के बाहल्य आदि) की (सू ९८५-१ से ९ तक मे उल्लिखित) वक्तव्यता के समान अप्कायिको से लेकर (तेजस्कायिक, वायुकायिक, और) वनस्पतिकायिको तक (के स्पर्शनेन्द्रियसम्बन्धी संस्थान, बाहल्य आदि) की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए, किन्तु इनके संस्थान के विषय मे यह विशेषता समझ लेनी चाहिए—अप्कायिको की स्पर्शनेन्द्रिय (जल) विन्दु के आकार की कही है, तेजस्कायिको की स्पर्शनेन्द्रिय सूचीकलाप (सूइयो के ढेर) के आकार की कही है, वायुकायिको की स्पर्शनेन्द्रिय पताका के आकार की कही है तथा वनस्पतिकायिको की स्पर्शनेन्द्रिय का आकार नाना प्रकार का कहा गया है।

९८७. [१] बेइंदियाणं भंते ! कति इंदिया पण्णत्ता।

गोयमा ! दो इंदिया पण्णत्ता। त जहा—जिब्भिंदिए य फासिंदिए य। दोण्ह पि इंदियाण संठाणं बाहल्लं पोहत्तं पदेसा ओगाहणा य जहा ओहियाण भणिया (सु. ९७४-९७८) तहा भाणियव्वा। णवरं फासेंदिए हुंडसंठाणसंठिए पण्णत्ते त्ति इमो विसेसो।

[९८७-१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों के कितनी इन्द्रियाँ कही गई हैं ?

[९८७-१ उ] गौतम ! दो इन्द्रियाँ कही गई है, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय। दोनो इन्द्रियो के संस्थान, बाहल्य, पृथुत्व, प्रदेश और अवगाहना के विषय मे जैसे (सू. ९८४ से ९७८ तक मे) समुच्चय के संस्थानादि के विषय मे कहा है, वैसा कहना चाहिए। विशेषता यह है कि (इनकी) स्पर्शनेन्द्रिय हुण्डकसंस्थान वाली होती है।

[२] एतेसि णं भंते ! बेइंदियाण जिब्भिंदिय-फासेंदियाण ओगाहणट्ठयाए पएसट्ठयाए ओगाहणपएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे बेइंदियाणं जिब्भिदिए ओगाहणट्ठयाए, फासेंदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे; पएसट्ठयाए—सव्वत्थोवे बेइंदियाणं जिब्भिदिए पएसट्ठयाए, फासेंदिए पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे, ओगाहणपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवे बेइंदियस्स जिब्भिदिए ओगाहणट्ठयाए, फासिंदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे, फासेंदियस्स ओगाहणट्ठयाएहिंतो जिब्भिदिए पएसट्ठयाए अणंतगुणे, फासिंदिए पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे ।

[९८७-२ प्र] भगवन् ! इन द्वीन्द्रियो की जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय मे से अवगाहना की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से तथा अवगाहना और प्रदेशो (दोनो) की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[९८७-२ उ] गौतम ! अवगाहना की अपेक्षा से—द्वीन्द्रियो की जिह्वेन्द्रिय सबसे कम है, (उससे) अवगाहना की दृष्टि से सख्यातगुणी (उनकी) स्पर्शनेन्द्रिय है। प्रदेशो की अपेक्षा से—सबसे कम द्वीन्द्रिय की जिह्वेन्द्रिय है, (उसको अपेक्षा) प्रदेशो की अपेक्षा से उनकी स्पर्शनेन्द्रिय है। अवगाहना और प्रदेशो की अपेक्षा से—द्वीन्द्रियो की जिह्वेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से सबसे कम है, (उससे उनकी) स्पर्शनेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से सख्यातगुणी अधिक है, स्पर्शनेन्द्रिय की अवगाहनार्थता से जिह्वेन्द्रिय प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणी है। (उसकी अपेक्षा) स्पर्शनेन्द्रिय प्रदेशो की अपेक्षा से सख्यातगुणी है।

[३] **बेइंदियाण भंते ! जिब्भिदियस्स केवइया कक्खडगरुयगुणा पण्णत्ता ?**

गोयमा ! अणता । एव फासेंदियस्स वि । एव मउयलहुयगुणा वि ।

[९८७-३ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रियो की जिह्वेन्द्रिय के कितने कर्कश-गुरुगुण कहे गए है ?

[९८७-३ उ] गौतम ! इनकी जिह्वेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुण) अनन्त है। इसी प्रकार इनको स्पर्शनेन्द्रिय के भी (कर्कश-गुरुगुण अनन्त समझने चाहिए।) इसी तरह (इनकी जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के) मृदु-लघुगुण भी (अनन्त समझने चाहिए।)

[४] **एतेसि ण भंते ! बेइंदियाण जिब्भिदिय-फासेंदियाणं कक्खडगरुयगुणाणं मउयलहुयगुणाण कक्खडगरुयगुण-मउयलहुयगुणाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवा बेइंदियाणं जिब्भिदियस्स कक्खडगरुयगुणा, फासेंदियस्स कक्खडगरुयगुणा अणंतगुणा, फासेंदियस्स कक्खडगरुयगुणेहिंतो तस्स चेव मउयलहुयगुणा अणंतगुणा, जिब्भिदियस्स मउयलहुयगुणा अणंतगुणा ।

[९८७-४ प्र] भगवन् ! इन द्वीन्द्रियो की जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुणो तथा मृदु-लघुगुणो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[९८७-४ उ.] गौतम ! सबसे थोडे द्वीन्द्रियो के जिह्वेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुण हैं, (उनसे) स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुण अनन्तगुणे हैं। स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरुगुणो से (इन्द्रिय) के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे हैं (और उससे भी) जिह्वेन्द्रिय के मृदु-लघुगुण अनन्तगुणे हैं।

[५] एवं जाव चउरिंदिय त्ति । णवर इंदियपरिवुड्ढी कायव्वा । तेइंदियाणं घाणेंदिए थोवे, चउरिंदियाणं चक्खिंदिए थोवे । सेसं तं चेव ।

[९८७-५] इसी प्रकार (द्वीन्द्रियो के सस्थान, बाहल्य, पृथुत्व, प्रदेश, अवगाहना और अल्प-बहुत्व के समान) यावत् चतुरिन्द्रिय (त्रीन्द्रिय एव चतुरिन्द्रिय के सस्थानादि) के विषय मे कहना चाहिए। विशेष यह है कि (उत्तरोत्तर एक-एक) इन्द्रिय की परिवृद्धि करनी चाहिए। त्रीन्द्रिय जीवो की घ्राणेन्द्रिय थोड़ी होती है, (इसी प्रकार) चतुरिन्द्रिय जीवों की चक्षुरिन्द्रिय थोडी होती है। शेष (सब वक्तव्यता) उसी तरह (पूर्ववत् द्वीन्द्रियो के समान) ही है।

९८८. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणूसाण य जहा णेरइयाण (सु. ९८३)। णवर फासिंदिए छव्विहसंठाणसंठिए पण्णत्ते। तं जहा—समचउरसे १ णग्गोहपरिमंडले २ साती ३ खुज्जे ४ वामणे ५ हुंडे ६।

[९८८] पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो की इन्द्रियो की सस्थानादि सम्बन्धी वक्तव्यता (सूत्र ९८३ मे अकित) नारको की इन्द्रिय-सस्थानादि सम्बन्धी वक्तव्यता के समान समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि उनकी स्पर्शनेन्द्रिय छह प्रकार के सस्थानो वाली होती है। वे (छह सस्थान) इस प्रकार हैं— (१) समचतुरस्र, (२) न्यग्रोधपरिमण्डल, (३) सादि, (४) कुब्जक, (५) वामन और (६) हुण्डक।

९८९. वाणमतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं (सु ९८४)।

[९८९] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की (इन्द्रिय-सस्थानादि सम्बन्धी वक्तव्यता) (सू ९८४ मे अकित) असुरकुमारो की (इन्द्रिय-सस्थानादि सम्बन्धी वक्तव्यता के समान कहना चाहिए)।

विवेचन—चौवीस दण्डको मे सस्थानादि छह द्वारो की प्ररूपणा —नैरयिको से लेकर वैमानिको तक चौवीस दण्डकवर्त्ती जीवो की इन्द्रियो के सस्थान, बाहल्य, पृथुत्व, प्रदेश, अवगाहना एव अल्प बहुत्व के सम्बन्ध मे सात सूत्रो (सू ९८३ से ९८९ तक) मे प्ररूपणा की गई है।

नैरयिको और असुरकुमारादि भवनवासियो की स्पर्शनेन्द्रिय के विशिष्ट सस्थान नैरयिको के शरीर (वैक्रियशरीर) दो प्रकार के होते है भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। भवधारणीय शरीर (स्पर्शनेन्द्रिय) उन्हे भवस्वभाव से मिलता है, जो कि अत्यन्त बीभत्स सस्थान (हुण्डक आकार) वाला होता है। उनका उत्तरवैक्रिय शरीर भी हुण्डकसस्थान वाला ही होता है। क्योकि वे चाहते तो है शुभ-सुखद शरीर की विक्रिया करना, किन्तु उनके अतीव अशुभ तथाविध नामकर्म के उदय से अत्यन्त अशुभतर वैक्रियशरीर बनता है।

असुरकुमारादि भवनवासियो के भी दो प्रकार के शरीर (स्पर्शनेन्द्रिय) होते है --भवधारणीय एव उत्तरवैक्रिय। उनका भवधारणीय शरीर तो समचतुरस्रसस्थान वाला होता है, जो कि भव के प्रारम्भ से अन्त तक रहता है। उनका उत्तरवैक्रियशरीर नाना सस्थान (आकार) वाला होता है, क्योकि उत्तरवैक्रियशरीर की मनचाही रचना वे स्वेच्छा से कर लेते है।[1]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २९७-२९८

सप्तम-अष्टम स्पृष्ट एवं प्रविष्ट द्वार

९९०. [१] पुट्ठाइं भंते ! सद्दाइं सुणेइ ? अपुट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ ?

गोयमा ! पुट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ, नो अपुट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ ।

[९९०-१ प्र] भगवन् (श्रोत्रेन्द्रिय) स्पृष्ट शब्दो को सुनती है या अस्पृष्ट शब्दो को (सुनती है) ?

[९९०-१ उ] गौतम ! (वह) स्पृष्ट शब्दो को सुनती है, अस्पृष्ट शब्दो को नही सुनती ।

[२] पुट्ठाइ भते ! रूवाइं पासइ ? अपुट्ठाइ रूवाइं पासइ ?

गोयमा ! णो पुट्ठाइं रूवाइं पासइ, अपुट्ठाइं रूवाइं पासति ।

[९९०-२ प्र.] भगवन् ! (चक्षुरिन्द्रिय) स्पृष्ट रूपो को देखती है, अथवा अस्पृष्ट रूपो को (देखती है) ?

[९९०-२ उ] गौतम ! (वह) अस्पृष्ट रूपो को देखती है, स्पृष्ट रूपो को नही देखती ।

[३] पुट्ठाइं भते ! गंधाइं अग्घाइ ? अपुट्ठाइ गंधाइ अग्घाइ ?

गोयमा ! पुट्ठाइ गधाइ अग्घाइ, णो अपुट्ठाइ गधाइ अग्घाइ ।

[९९०-३ प्र] भगवन् ! (घ्राणेन्द्रिय) स्पृष्ट गन्धो को सू घती है, अथवा अस्पृष्ट गन्धो को (सू घती है) ?

[९९०-३ उ] गौतम ! (वह) स्पृष्ट गन्धो को सू घती है, अस्पृष्ट गन्धो को नही सू घती ।

[४] एवं रसाणवि फासाणवि । णवरं रसाइं अस्साएइ फासाइं पडिसवेवेति त्ति अभिलावो कायव्वो ।

[९९०-४ प्र.] इस प्रकार (घ्राणेन्द्रिय की तरह जिह्वेन्द्रिय द्वारा) रसो के और (स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा) स्पर्शों के ग्रहण करने के विषय मे भी समझना चाहिए । विशेष यह है कि (जिह्वेन्द्रिय) रसो का आस्वादन करती (चखती) है और (स्पर्शनेन्द्रिय) स्पर्शों का प्रतिसवेदन (अनुभव) करती है, ऐसा अभिलाप (शब्दप्रयोग) करना चाहिए ।

९९१. [१] पविट्ठाइं भंते ! सद्दाइं सुणेइ ? अपविट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ ?

गोयमा ! पविट्ठाइ सद्दाइ सुणेइ, णो अपविट्ठाइ सद्दाइं सुणेइ ।

[९९१-१ प्र] भगवन् ! (श्रोत्रेन्द्रिय) प्रविष्ट शब्दो को सुनती है या अप्रविष्ट शब्दो को (सुनती है) ?

[९९१-१ उ] गौतम ! (वह) प्रविष्ट शब्दो को सुनती है, अप्रविष्ट शब्दो को नही सुनती ।

[२] एवं जहा पुट्ठाणि तहा पविट्ठाणि वि ।

[९९१-२] इसी प्रकार जैसे स्पृष्ट के विषय मे कहा, उसी प्रकार प्रविष्ट के विषय मे भी कहना चाहिए ।

विवेचन– **सप्तम-अष्टम स्पृष्ट एवं प्रविष्ट द्वार**—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ९९०-९९१) मे यह प्रतिपादन किया गया है कि कौन-सी इन्द्रिय अपने स्पृष्ट विषय को ग्रहण करती है और कौन-सी अस्पृष्ट विषय को ? तथा कौन-सी इन्द्रिय प्रविष्ट विषय को ग्रहण करती है और कौन-सी अप्रविष्ट विषय को ?

स्पृष्ट और अस्पृष्ट की व्याख्या—जैसे शरीर पर रेत लग जाती है, उसी तरह इन्द्रिय के साथ विषय का स्पर्श हो तो वह स्पृष्ट कहलाता है। जिस इन्द्रिय का अपने विषय के साथ स्पर्श नही होता, वह अस्पृष्ट विषय कहलाता है। जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय के साथ जिनका स्पर्श हुआ हो, वे शब्द (विषय) स्पृष्ट कहलाते है, किन्तु चक्षुरिन्द्रिय के साथ जिनका स्पर्श न हुआ हो, ऐसे रूप (विषय) अस्पृष्ट कहलाते हैं।[1]

स्पृष्टसूत्र का विशेष स्पष्टीकरण—प्रस्तुत समाधान से एक विशिष्ट अर्थ भी ध्वनित होता है कि श्रोत्रेन्द्रिय स्पृष्टमात्र शब्दद्रव्यो को ही सुनती—ग्रहण कर लेती है। जैसे घ्राणेन्द्रियादि बद्ध और स्पृष्ट गन्धादि को ग्रहण करती है, वैसे श्रोत्रेन्द्रिय नही करती। इसका कारण यह है कि घ्राणेन्द्रियादि के विषयभूत द्रव्यो की अपेक्षा शब्द (भाषावर्गणा) के द्रव्य (पुद्गल) सूक्ष्म और बहुत होते हैं तथा शब्दद्रव्य उस-उस क्षेत्र मे रहे हुए शब्द रूप मे परिणमनयोग्य अन्य शब्दद्रव्यो को भी वासित कर लेते है। अतएव शब्दद्रव्य आत्मप्रदेशो के साथ स्पृष्ट होते ही निर्वृ त्तीन्द्रिय मे प्रवेश करके झटपट उपकरणेन्द्रिय (शब्द ग्रहण करने वाली शक्ति) को अभिव्यक्त करते हैं। इसके अतिरिक्त घ्राणेन्द्रिय आदि की अपेक्षा श्रोत्रेन्द्रिय अपने विषय को ग्रहण करने मे अधिक पटु है, इसलिए श्रोत्रेन्द्रिय स्पृष्ट होने मात्र से ही शब्दो को ग्रहण कर लेती है, किन्तु अस्पृष्ट—आत्मप्रदेशो के साथ सर्वथा सम्बन्ध को अप्राप्त—विषयो (शब्दो) को ग्रहण नही करती, क्योकि प्राप्यकारी होने से उसका स्वभाव प्राप्त-स्पृष्ट विषय को ग्रहण करने का है। यद्यपि मूलपाठ मे कहा गया है कि 'घ्राणेन्द्रिय स्पृष्ट गन्धो को सू घती है, इत्यादि, तथापि वह **बद्ध-स्पृष्ट** गन्धो को सू घती है, ऐसा समझना चाहिए। आवश्यकनिर्यु क्ति मे कहा गया है कि श्रोत्रेन्द्रिय स्पृष्ट शब्द को सुनती है, किन्तु चक्षुरिन्द्रिय अस्पृष्ट रूप को देखती है तथा गन्ध, रस और स्पर्श को क्रमश घ्राणेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय (अपने-अपने) बद्ध-स्पृष्ट विषय को ग्रहण करती है, ऐसा कहना चाहिए।[2] स्पृष्ट का अर्थ—आत्मप्रदेशो के साथ सम्पर्कप्राप्त है, जबकि बद्ध का अर्थ है—आत्मप्रदेशो के द्वारा प्रगाढ सबध को प्राप्त।[3] विषय, स्पृष्ट तो स्पर्शमात्र से ही हो जाते है किन्तु बद्ध-स्पृष्ट तभी होते है, जब वे आत्मप्रदेशो के साथ एकमेक हो जाते है। गृहीत होने के लिए गन्धादि द्रव्यो का बद्ध और स्पृष्ट होना इसलिए आवश्यक है कि वे बादर है, अल्प हैं, वे अपने समकक्ष द्रव्यो को भावित नही करते तथा श्रोत्रेन्द्रिय की अपेक्षा घ्राणेन्द्रिय आदि इन्द्रियाँ मन्दशक्ति वाली भी हैं। चक्षुरिन्द्रिय अप्राप्यकारी होने से अस्पृष्ट रूपो को ग्रहण करती है।

प्रविष्ट-अप्रविष्ट की व्याख्या—स्पृष्ट और प्रविष्ट मे अन्तर यह है कि स्पर्श तो शरीर मे रेत लगने की तरह होता है, किन्तु प्रवेश मुख मे कौर (ग्रास) जाने की तरह है, इसलिए इन दोनो के

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २९८

२ **पुट्ठं सुणेइ सद्दं, रूव पुण पासइ अपुट्ठं तु।**
गध रस च फास च बद्ध-पुट्ठ वियागरे ॥ —आवश्यकनिर्यु क्ति

३ **'बद्धमप्पीकय पएसेहिं'** प्रज्ञापना म वृ, पत्राक २९८ मे उद्धृत

शब्दार्थ भिन्न होने से दोनो को पृथक्-पृथक् प्रस्तुत किया है। इन्द्रियो द्वारा अपने अपने उपकरण मे प्रविष्ट विषयो को ग्रहण करना प्रविष्ट कहलाता है। जैसे श्रोत्रेन्द्रिय प्रविष्ट अर्थात्—कर्णकुहर मे प्राप्त शब्दो को सुनती है, अप्रविष्ट शब्दो को नही। चक्षुरिन्द्रिय चक्षु मे अप्रविष्ट रूप को ग्रहण करती है। घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय अपने-अपने उपकरण मे बद्ध-प्रविष्ट विषय को ग्रहण करती हैं।[1]

नौवाँ विषय(-परिमाण)द्वार

९९२ [१] सोइंदियस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असखेज्जतिभागाओ, उक्कोसेण बारसहिं जोयणेहिंतो अच्छिण्णे पोग्गले पुट्ठे पविट्ठाइ सद्दाइ सुणेति।

[९९२-१ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय का विषय कितना कहा गया है ?

[९९२-१ उ] गौतम ! (श्रोत्रेन्द्रिय) जघन्य अगुल के असख्यात भाग (दूर शब्दो को) एव उत्कृष्ट बारह योजनो से (१२ योजन दूर से) आए अविच्छिन्न (विच्छिन्न, विनष्ट या बिखरे न हुए) शब्दवर्गणा के पुद्गल के स्पृष्ट होने पर (निर्वृत्तीन्द्रिय मे) प्रविष्ट शब्दो को सुनती है।

[२] चक्खिदियस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! जहण्णेणं अगुलस्स सखेज्जतिभागाओ, उक्कोसेण सातिरेगाओ जोयणसयसहस्साओ अच्छिण्णे पोग्गले अपुट्ठे अपविट्ठाइ रूवाइ पासति।

[९९२-२ प्र] भगवन् ! चक्षुरिन्द्रिय का विषय कितना कहा गया है ?

[९९२-२ उ] गौतम ! (चक्षुरिन्द्रिय) जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग (दूर स्थित रूपो को) एव उत्कृष्ट एक लाख योजन से कुछ अधिक (दूर) के अविच्छिन्न (रूपवान्) पुद्गलो के अस्पृष्ट एव अप्रविष्ट रूपो को देखती है।

[३] घाणिंदियस्स पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अगुलस्स असंखेज्जतिभागातो, उक्कोसेण णवहिं जोयणेहिंतो अच्छिण्णे पोग्गले पुट्ठे पविट्ठाइं गंधाइ अग्घाति।

[९९२-३ प्र] भगवन् ! घ्राणेन्द्रिय का विषय कितना कहा गया है ? यह प्रश्न है।

[९९२-३ उ] गौतम ! (घ्राणेन्द्रिय) जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग (दूर से आए गन्धो को) और उत्कृष्ट नौ योजनो से आए अविच्छिन्न (गन्ध-) पुद्गल के स्पृष्ट होने पर (निर्वृत्तीन्द्रिय मे) प्रविष्ट गन्धो को सूघ लेती है।

[४] एवं जिब्भिदियस्स वि फासिंदियस्स वि।

[९९२-४] जैसे घ्राणेन्द्रिय के विषय (-परिमाण) का निरूपण किया है, वैसे ही जिह्वेन्द्रिय एव स्पर्शनेन्द्रिय के विषय-परिमाण के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए।

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २९८-२९९

विवेचन—नौवाँ विषय (-परिमाण) द्वार—प्रस्तुत सूत्र (९९२) मे क्रमश बताया गया है कि कतनी दूर से पाचों इन्द्रियो में अपने-अपने विषय को ग्रहण करने की जघन्य और उत्कृष्ट क्षमता है ?

इन्द्रियों की विषय-ग्रहणक्षमता—(१) श्रोत्रेन्द्रिय जघन्यत. आत्मागुल के असख्यातवे भाग र से आए हुए शब्दो को सुन सकती है और उत्कृष्ट १२ योजन दूर से आए हुए शब्दो को सुनती , बशर्ते कि वे शब्द अच्छिन्न अर्थात्—अव्यवहित हो, उनका ताता टूटना या बिखरना नही चाहिए। सरे शब्दो या वायु आदि से उनकी शक्ति प्रतिहत न हो गई हो, साथ ही वे शब्द-पुद्गल स्पृष्ट ोने चाहिए, अस्पृष्ट शब्दो को श्रोत्र ग्रहण नही कर सकते। इसके अतिरिक्त वे शब्द निर्वृ त्तीन्द्रिय । प्रविष्ट भी होने चाहिए। इससे अधिक दूरी से आए हुए शब्दो का परिणमन मन्द हो जाता है, इसलिए वे श्रवण करने योग्य नही रह जाते। (२) चक्षुरिन्द्रिय जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग की ूरी पर स्थित रूप को तथा उत्कृष्ट एक लाख योजन दूरी पर स्थित रूप को देख सकती है। किन्तु ह रूप अच्छिन्न (दीवाल आदि के व्यवधान से रहित), अस्पृष्ट और अप्रविष्ट पुद्गलो को देख कती है। इससे आगे के रूप को देखने की शक्ति नेत्र मे नही है, चाहे व्यवधान न भी हो। निष्कर्ष ह है कि श्रोत्र आदि चार इन्द्रियाँ प्राप्यकारी होने से जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग दूर के शब्द, ान्ध, रस और स्पर्श को ग्रहण कर सकती है, जबकि चक्षुरिन्द्रिय अप्राप्यकारी होने से जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग दूर स्थित अव्यवहित रूपी द्रव्य को देखती है, इससे अधिक निकटवर्तीरूप को ह नही जान सकती, क्योकि अत्यन्त सन्निकृष्ट अजन, रज, मस आदि को भी नही देख पाती। ोष सभी इन्द्रियो के द्वारा विषयग्रहण की क्षमता का प्रतिपादन स्पष्ट ही है।[1]

दसवाँ अनगार-द्वार

९९३ अणगारस्स ण भते ! भाविअप्पणो मारणतियसमुग्घाएण समोहयस्स जे चरिमा णिज्जरापोग्गला सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो ! सव्वलोग पि य ण ते ओगाहित्ता ण चिट्ठति ?

हंता गोयमा ! अणगारस्स ण भाविअप्पणो मारणतियसमुग्घाएण समोहयस्स जे चरिमा णिज्जरापोग्गला सुहुमा ण ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो ! सव्वलोग पि य ण ते ओगाहित्ता ण चिट्ठति।

[९९३ प्र] भगवन् ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत भावितात्मा अनगार के जो चरम निर्जरा-पुद्गल है, क्या वे पुद्गल सूक्ष्म कहे गए है ? हे आयुष्मन् श्रमण ! क्या वे सर्वलोक को अवगाहन करके रहते है ?

[९९३ उ] हाँ, गौतम ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत भावितात्मा अनगार के जो

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २९९ से ३०२ तक

(ख) वारसहिंतो सोत्त, सेसाण नवहि जोयणेहिंतो।
गिण्हति पत्तमत्थ एत्तो परतो न गिण्हति॥
- विशेषा भाष्य

चरमनिर्जरा-पुद्गल है, वे सूक्ष्म कहे है; हे आयुष्मन् श्रमण ! वे समग्र लोक को अवगाहन करके रहते है।

९९४. छउमत्थे ण भंते ! मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं किं आणत्तं वा णाणत्तं वा ओमत्त वा तुच्छत्तं वा गरुयत्तं वा लहुयत्तं वा जाणइ पासइ ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चइ छउमत्थे णं मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि आणत्तं वा णाणत्तं वा ओमत्तं वा तुच्छत्त वा गरुयत्त वा लहुयत्तं वा जाणइ पासइ ?

गोयमा ! देवे वि य ण अत्थेगइए जे णं तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि आणत्तं वा णाणत्तं वा ओमत्त वा तुच्छत्त वा गरुयत्तं वा लहुयत्तं वा जाणइ पासइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ छउमत्थे ण मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि आणत्तं वा णाणत्तं वा ओमत्तं वा तुच्छत्त वा गरुयत्त वा लहुयत्त वा जाणइ पासइ, सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो !, सव्व-लोगं पि य ण ते ओगाहित्ता चिट्ठंति।

[९९४ प्र] भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य उन (चरम-) निर्जरा-पुद्गलो के अन्यत्व या नानात्व, हीनत्व (अवमत्व) अथवा तुच्छत्व, गुरुत्व या लघुत्व को जानता-देखता है ?

[९९४ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) शक्य नही है।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहते है कि छद्मस्थ मनुष्य उन (भावितात्मा अनगार के चरमनिर्जरा पुद्गलो) के अन्यत्व, नानात्व, हीनत्व, तुच्छत्व, गुरुत्व अथवा लघुत्व को नही जानता-देखता है ?

[उ] (मनुष्य तो क्या) कोई-कोई (विशिष्ट) देव भी उन निर्जरापुद्गलो के अन्यत्व, नानात्व, हीनत्व, तुच्छत्व, गुरुत्व या लघुत्व को किंचित् भी नही जानता-देखता है। हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरापुद्गलो के अन्यत्व, नानात्व, हीनत्व, तुच्छत्व, गुरुत्व या लघुत्व को नही जान-देख पाता, (क्योकि) हे आयुष्मन् श्रमण ! वे (चरमनिर्जरा-) पुद्गल सूक्ष्म हैं। वे सम्पूर्ण लोक को अवगाहन करके रहते हैं।

विवेचन - **दसवां अनगार-द्वार**—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ९९३-९९४) मे भावितात्मा अनगार के सूक्ष्म एव सर्वलोकावगाढ पुद्गलो को छद्मस्थ द्वारा जानने-देखने की असमर्थता की प्ररूपणा की गई है।

भावितात्मा अनगार - जिसके द्रव्य और भाव से कोई अगार—गृह नही है, वह अनगार-संयत है। जिसने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपोविशेष से अपनी आत्मा भावित—वासित की है, वह भावितात्मा कहलाता है।

चरमनिर्जरापुद्गल—उक्त भावितात्मा अनगार जब मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होता है, तब उसके चरम अर्थात् शैलेशी अवस्था के अन्तिम समय मे होने वाले जो निर्जरापुद्गल

होते है, अर्थात्--कर्म रूप परिणमन से मुक्त-कर्मपर्याय से रहित जो पुद्गल यानी परमाणु होते हैं, वे चरमनिर्जरापुद्गल कहलाते हैं।[1]

इस प्रश्न के उत्थान का कारण—इसी प्रकरण मे पहले कहा गया था कि श्रोत्रादि चार इन्द्रियाँ स्पृष्ट और प्रविष्ट शब्दादि द्रव्यो को ग्रहण करती है, ऐसी स्थिति मे यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि चरमनिर्जरापुद्गल तो सर्वलोकस्पर्शी है, क्या उनका श्रोत्रादि से स्पर्श एव प्रवेश नही होता ? दूसरी बात यह है कि यहाँ यह प्रश्न छद्मस्थ मनुष्य के लिए किया गया है, क्योकि केवली को तो इन्द्रियो से जानना-देखना नही रहता, वह तो समस्त आत्मप्रदेशो से सर्वत्र सब कुछ जानता-देखता है। छद्मस्थ मनुष्य अगोपागनामकर्मविशेष से सस्कृत इन्द्रियो के द्वारा जानता-देखता है।

छद्मस्थ मनुष्य चरमनिर्जरापुद्गलो को जानने-देखने मे असमर्थ क्यो ?—जो मनुष्य छद्मस्थ है, अर्थात् विशिष्ट अवधिज्ञान एव केवलज्ञान से विकल है, वह शैलेशी-अवस्था के अन्तिम समयसम्बन्धी कर्मपर्यायमुक्त उन निर्जरापुद्गलो (परमाणुओ) के अन्यत्व अर्थात् ये निर्जरापुद्गल अमुक श्रमण के है, ये अमुक श्रमण के, इस प्रकार के भिन्नत्व को तथा एक पुद्गलगत वर्णादि के नाना भेदो (नानात्व) को तथा उनके हीनत्व, तुच्छत्व (नि सारत्व), गुरुत्व (भारीपन) एव लघुत्व (हल्केपन) को जान-देख नही सकता। इसके दो मुख्य कारण बताए है एक तो वे पुद्गल इतने सूक्ष्म हैं कि चक्षु आदि इन्द्रियपथ से अगोचर एव अतीत है। दूसरा कारण यह है कि वे अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुरूप पुद्गल समग्र लोक का अवगाहन करके रहे हुए है, वे बादर रूप नही है, इसलिए उन्हे ये इन्द्रियाँ ग्रहण नही कर सकती। इसी बात को पुष्ट करते हुए शास्त्रकार कहते हैं -देवो की इन्द्रियाँ तो मनुष्यो की अपेक्षा अपने विषय को ग्रहण करने मे अत्यन्त पटुतर होती है। ऐसा कोई कर्मपुदगल-विषयक अवधिज्ञानविकल देव भी उन भावितात्मा अनगारो के चरमनिर्जरापुद्गलो के अन्यत्व आदि को किंचित् भी (जरा-सा भी) जान-देख नही सकता, तब छद्मस्थ मनुष्य की तो बात ही दूर रही।[2]

ग्यारहवाँ आहारद्वार

९९५. [१] **णेरइया णं भंते ! ते णिज्जरापोग्गले किं जाणंति पासंति आहारेंति ? उदाहु ण जाणंति ण पासंति ण आहारेंति ?**

गोयमा ! णेरइया ण ते णिज्जरापोग्गले ण जाणंति ण पासंति, आहारेंति।

[९९५-१ प्र] भगवन् ! क्या नारक उन (चरम-) निर्जरापुद्गलो को जानते-देखते हुए (उनका) आहार (ग्रहण) करते है अथवा (उन्हे) नही जानते-देखते और नही आहार करते ?

[९९५-१ उ.] गौतम ! नैरयिक उन निर्जरापुद्गलो को जानते नही, देखते नही किन्तु आहार (ग्रहण) करते हैं।

[२] **एवं जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिया।**

---

१. प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक ३०३

२ वही, मलय वृत्ति, पत्राक ३०३

[९९५-२] इसी प्रकार (असुरकुमारो से लेकर) यावत् पचेन्द्रियतिर्यञ्चों तक के विषय मे कहना चाहिए।

९९६. मणूसा णं भंते ! ते णिज्जरापोग्गले किं जाणति पासति आहारेंति ? उदाहु ण जाणति ण पासति ण आहारेंति ?

गोयमा ! अत्थेगइया जाणति पासंति आहारेंति, अत्थेगइया ण जाणति ण पासंति आहारेंति।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ अत्थेगइया जाणंति पासंति आहारेंति ? अत्थेगइया ण जाणति ण पासति आहारेंति ?

गोयमा ! मणूसा दुविहा पण्णता। तं जहा सण्णिभूया य असण्णिभूया य। तत्थ ण जे ते असण्णिभूया ते णं ण जाणंति ण पासति आहारेंति। तत्थ णं जे ते सण्णिभूया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा -उवउत्ता य अणुवउत्ता य। तत्थ ण जे ते अणुवउत्ता ते ण ण जाणंति ण पासति आहारेंति, तत्थ णं जे ते उवउत्ता ते ण जाणति पासति आहारेंति, से एएणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—अत्थेगइया ण जाणंति ण पासति आहारेंति अत्थेगइया जाणति पासति आहारेंति।

[९९६ प्र] भगवन् ! क्या मनुष्य उन निर्जरापुद्गलो को जानते-देखते है और (उनका) आहरण करते है ? अथवा (उन्हे) नही जानते, नही देखते और नही आहरण करते हैं ?

[९९६ उ] गौतम ! कोई-कोई मनुष्य (उनको) जानते-देखते है और (उनका) आहरण करते है और कोई-कोई मनुष्य नही जानते, नहो देखते और (उनका) आहरण करते है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते है कि कोई-कोई मनुष्य (उनको) जानते-देखते है और (उनका) आहार करते है और कोई-कोई मनुष्य नही जानते, नही देखते किन्तु आहरण करते है ?

[उ] गौतम ! मनुष्य दो प्रकार के कहे गए है, यथा—सज्ञीभूत (विशिष्ट अवधिज्ञानी) और असज्ञीभूत (विशिष्ट अवधिज्ञान से रहित)। उनमे से जो असज्ञीभूत है, वे (उन चरमनिर्जरा-पुद्गलो को) नही जानते, नही देखते, आहार करते है। उनमे से जो सज्ञीभूत है, वे दो प्रकार के कहे गये हैं—उपयोग से युक्त और उपयोग से रहित (अनुपयुक्त)। उनमे से जो उपयोगरहित है, वे नही जानते, नही देखते, आहार करते है। उनमे से जो उपयोग से युक्त है, वे जानते है, देखते है और आहार करते है। इस हेतु से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि कोई-कोई मनुष्य नही जानते, नही देखते (किन्तु) आहार करते है और कोई-कोई मनुष्य जानते है, देखते है, आहार करते है।

९९७. वाणमतर-जोइसिया जहा णेरइया (सु. ९९५ [१])।

[९९७] वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देवो से सम्बन्धित वक्तव्यता (सू ९९५-१ मे उल्लिखित) नैरयिको की वक्तव्यता के समान (जानना चाहिए।)

९९८. वेमाणिया णं भते ! ते णिज्जरापोग्गले किं जाणंति पासति आहारेंति ?

गोयमा ! जहा मणूसा (सु. ९९६)। णवर वेमाणिया दुविहा[1] पण्णत्ता। तं जहा - माइ-मिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा य अमाइसम्मद्दिट्ठिउववण्णगा य। तत्थ णं जे ते माइमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा ते ण

१. ग्रन्थाग्रम् ४५००

न याणंति न पासंति आहारेंति। तत्थ णं जे ते अमाइसम्मद्दिट्ठिउववन्नगा ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—अणंतरोववन्नगा य परंपरोववन्नगा य। तत्थ णं जे ते अणंतरोववण्णगा ते ण ण याणंति ण पासंति आहारेंति। तत्थ णं जे ते परंपरोववण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते ण ण याणंति ण पासंति आहारेंति। तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—उवउत्ता य अणुवउत्ता य। तत्थ णं जे ते अणुवउत्ता ते णं ण याणंति ण पासंति आहारेंति, तत्थ णं जे ते उवउत्ता ते णं जाणंति पासंति आहारेंति। से एणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति—अत्थेगइया ण जाणंति जाव अत्थेगइया० आहारेंति।

[९९८ प्र] भगवन्! क्या वैमानिक देव उन निर्जरापुद्गलो को जानते हैं, देखते है, आहार अर्थात् ग्रहण करते है?

[९९८ उ] गौतम! जैसे मनुष्यो से सम्बन्धित वक्तव्यता (सू ९९६ मे) कही है, उसी प्रकार वैमानिको की वक्तव्यता समझनी चाहिए। विशेष यह है कि वैमानिक दो प्रकार के कहे गए है, वे इस प्रकार—मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक। उनमे से जो मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक होते है, वे (उन्हे) नही जानते, नही देखते, (किन्तु) आहार करते है। उनमे से जो अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक है, वे दो प्रकार के कहे गए है, वे इस प्रकार—अनन्त-रोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। उनमे से जो अनन्तरोपपन्नक (अनन्तर-उत्पन्न) हैं, वे नही जानते, नही देखते, आहार करते है। उनमे से जो परम्परोपपन्नक है, वे दो प्रकार के कहे है, यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। उनमे से जो अपर्याप्तक है, वे नही जानते, नही देखते, आहार करते है। उनमे जो पर्याप्तक है, वे दो प्रकार के कहे गए है उपयोगयुक्त और उपयोगरहित। जो उपयोगरहित है, वे नही जानते, नही देखते, (किन्तु) आहार करते है। उनमे से जो उपयोगयुक्त है, वे जानते हैं, देखते है और आहार करते है। इस हेतु से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि कोई-कोई नही जानते हैं यावत् कोई-कोई आहार करते है।

विवेचन—ग्यारहवाँ आहारद्वार—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ९९५ से ९९८ तक) मे चौवीस दण्डको मे निर्जरापुद्गलो के जानने, देखने और आहार करने मे सम्बन्धित प्ररूपणा की गई है।

प्रश्न और उत्तर का आशय-प्रस्तुत प्रश्न का आशय यह है कि पुद्गलो का स्वभाव नाना रूपो मे परिणत होने का है, अतएव योग्य सामग्री मिलने पर निर्जरापुद्गल आहार के रूप मे भी परिणत हो सकते है। जब वे आहाररूप मे परिणत होते है तब नैरयिक उक्त निर्जरापुद्गलो को जानते-देखते हुए आहार (लोमाहार) करते है, अथवा नही जानते, नही देखते हुए आहार करते हैं? भगवान् के द्वारा प्रदत्त उत्तर का आशय भी इसी प्रकार का है वे नही जानते, नही देखते हुए आहार करते है, क्योकि वे पुद्गल (परमाणु) अत्यन्त सूक्ष्म होने से चक्षु आदि इन्द्रियपथ से अगोचर होते है और नैरयिक कार्मणशरीरपुद्गलो को जान सकने योग्य अवधिज्ञान से रहित होते है। इसी प्रकार का प्रश्न और उत्तर का आशय सर्वत्र समझना चाहिए।[१]

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३०४

संज्ञीभूत-असंज्ञीभूत मनुष्य—जो सज्ञी हो, वे सज्ञीभूत और जो असज्ञी हो वे असज्ञीभूत कहलाते हैं। यहाँ संज्ञी का अर्थ है—वे अवधिज्ञानी मनुष्य, जिनका अवधिज्ञान कार्मणपुद्गलो को जान सकता है। जो मनुष्य इस प्रकार के अवधिज्ञान से रहित हो, वे असज्ञीभूत कहलाते है। इन दोनो प्रकार के मनुष्यो में जो सज्ञीभूत हैं, उनमे भी जो उपयोग लगाये हुए होते है, वे ही उन पुद्गलों को जानते-देखते हुए उनका आहार करते हैं, शेष असज्ञीभूत तथा उपयोगशून्य सज्ञीभूत मनुष्य उन पुद्गलो को जान-देख नही पाते, केवल उनका आहार करते हैं।

मायि-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायि-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक—माया तृतीय कषाय है, उसके ग्रहण द्वारा उपलक्षण से अन्य सभी कषायो का ग्रहण कर लेना चाहिये। जिनमे मायाकषाय विद्यमान हो, उसे मायी अर्थात्—उत्कट राग-द्वेषयुक्त कहते है। मायी (सकषाय) होने के साथ-साथ जो मिथ्यादृष्टि हो वे मायी-मिथ्यादृष्टि कहलाते है। जो (वैमानिक देव) मायि-मिथ्यादृष्टि रूप मे उत्पन्न (उपपन्न) हुए हो, वे मायि-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक कहलाते है। इनसे विपरीत जो हो वे अमायि-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक है। सिद्धान्तानुसार मायि-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक नौवे ग्रैवेयक-पर्यन्त देवो मे पाये जा सकते है। यद्यपि ग्रैवेयको मे और उनसे पहले के कल्पो मे सम्यग्दृष्टि देव होते हैं, किन्तु उनका अवधिज्ञान इतना उत्कट नही होता कि वे उन निर्जरापुद्गलो को जान-देख सके। इसलिए वे भी मायि-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नको के अन्तर्गत ही कहे जाते हैं। जो अमायि-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक है, वे अनुत्तरविमान वासी देव है। **अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक**—जिनको उत्पन्न हुए पहला ही समय हुआ हो, वे **अनन्तरोपपन्नक देव** कहलाते है और जिन्हे उत्पन्न हुए एक समय से अधिक हो चुका हो, उन्हे **परम्परोपपन्नक देव** कहते है। इन दोनो प्रकार के अमायि-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक देवो मे से अनन्तरोपपन्नक देव तो निर्जरापुद्गलो को जान-देख नही सकते, केवल परम्परोपपन्नक और उनमे भी अपर्याप्तक और पर्याप्तको मे भी उपयोगयुक्त देव ही निर्जरापुद्गलो को जान-देख सकते हैं। जो अपर्याप्तक और उपयोगरहित होते हैं, वे उन्हे जान-देख नही सकते, केवल उनका आहार करते हैं।[1]

'आहार करते हैं' का अर्थ—यहाँ सर्वत्र 'आहार करते है' का अर्थ –'लोमाहार करते है' ऐसा समझना चाहिए।[2]

बारहवें आदर्शद्वार से अठारहवें वसाद्वार तक की प्ररूपणा

९९९. [१] अद्दाए ण भंते ! पेहमाणे मणूसे किं अद्दायं पेहेति ? अत्ताण पेहेति ? पलिभागं पेहेति ?

गोयमा ! अद्दायं पेहेति णो अत्ताणं पेहेति, पलिभाग पेहेति।

[९९९-१ प्र] भगवन् ! दर्पण देखता हुआ मनुष्य क्या दर्पण को देखता है ? अपने आपको (शरीर को) देखता है ? अथवा (अपने) प्रतिबिम्ब को देखता है ?

[९९९-१ उ.] गौतम ! (वह) दर्पण को देखता है, अपने शरीर को नही देखता, किन्तु (अपने शरीर का) प्रतिबिम्ब देखता है।

---

१ (क) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक ३०४

(ख) **संखेज्ज कम्मदव्वे लोगे, थोवूणगं पलियं,**
संभिन्नलोगनालिं पासंति अणुत्तरा देवा। —प्रज्ञापना म वृ, पत्राक ३०४ मे उद्धृत

२ प्रज्ञापना. म वृत्ति, पत्राक ३०४

[२] एव एतेणं अभिलावेणं असिं मणिं उडुपाणं तेल्लं फाणियं वसं ।

[९९९-२] इसी प्रकार (दर्पण के सम्बन्ध मे जो कथन किया गया है) उसी अभिलाप के अनुसार क्रमशः असि, मणि, उदपान (दुग्ध और पानी), तेल, फाणित (गुडराब) और वसा (चर्बी) (के विषय मे अभिलाप-कथन करना चाहिए ।)

विवेचन— बारहवें आदर्शद्वार से अठारहवें वसाद्वार तक की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (९९९) में आदर्श आदि की अपेक्षा से चक्षुरिन्द्रिय-विषयक सात अभिलापो की प्ररूपणा की गई है ।

दर्पण आदि का द्रष्टा क्या देखता है ?—दर्पण, तलवार, मणि, पानी, दूध, तेल, गुडराब और (पिघली हुई) वसा को देखता हुआ मनुष्य वास्तव मे क्या देखता है ? यह प्रश्न है । शास्त्रकार कहते हैं—वह दर्पण आदि को तथा अपने शरीर के प्रतिबिम्ब को देखता है, किन्तु आत्मा को अर्थात्—अपने शरीर को नही देखता, क्योकि अपना शरीर तो अपने आप मे स्थित रहता है, दर्पण मे नही, फिर वह अपने शरीर को कैसे देख सकता है ? वह (द्रष्टा) जो प्रतिबिम्ब देखता है, वह छाया-पुद्गलात्मक होता है, क्योकि सभी इन्द्रियगोचर स्थूल वस्तुएँ किरणो वाली तथा चय-अपचय धर्म वाली होती है । किरणें छाया-पुद्गलरूप है, सभी स्थूल वस्तुओ की छाया की प्रतीति प्रत्येक प्राणी को होती है । तात्पर्य यह है कि मनुष्य के जो छायापरमाणु दर्पण मे उपसक्रान्त होकर स्वदेह के वर्ण और आकार के रूप मे परिणत होते है, उनकी वहाँ उपलब्धि होती है, शरीर की नही । वे (छायापरमाणु) प्रतिबिम्ब शब्द से व्यवहृत होते है ।[1]

'अद्दाइ पेहति' और 'नो अद्दाइ पेहति' इस प्रकार यहाँ पाठभेद है । विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने स्वीकृत पाठो का समर्थन भी किया है । पाठान्तर के अनुसार अर्थ होता है-- दर्पण को नही देखता । तत्त्व केवलिगम्य है ।

उन्नीसवाँ वीसवाँ कम्बलद्वार-स्थूणाद्वार

१०००. कबलसाडए ण भंते ! आवेढियपरिवेढिए समाणे जावतियं ओवासंतरं फुसित्ता ण चिट्ठति विरल्लिए वि य णं समाणे तावतियं चेव ओवासंतरं फुसित्ता ण चिट्ठति ?

हंता गोयमा ! कबलसाडए ण आवेढियपरिवेढिए समाणे जावतियं तं चेव ।

[१००० प्र] भगवन् ! कम्बलरूप शाटक (चादर या साडी) आवेष्टित-परिवेष्टित किया हुआ (लपेटा हुआ, खूब लपेटा हुआ) जितने अवकाशान्तर (आकाशप्रदेशो) को स्पर्श करके रहता है, (वह) फैलाया हुआ भी क्या उतने हो अवकाशान्तर (आकाश-प्रदेशो) को स्पर्श करके रहता है ?

[१००० उ] हाँ, गौतम ! कम्बलशाटक आवेष्टित-परिवेष्टित किया हुआ जितने अवकाशान्तर को स्पर्श करके रहता है, फैलाये जाने पर भी वह उतने ही अवकाशान्तर को स्पर्श करके रहता है ।

---

१ (क) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक ३०५

(ख) असिं देहमाणे मणूसे किं असिं देहइ, अत्ताणं देहइ पलिभागं देहइ ? इत्यादि ।

१००१. थूणा णं भंते ! उड्ढं ऊसिया समाणी जावतियं खेत्तं ओगाहित्ता णं चिट्ठति तिरियं पि य णं आयया समाणी तावतियं चेव खेत्तं ओगाहित्ता णं चिट्ठति ?

हंता गोयमा ! थूणा णं उड्ढं ऊसिया त चेव जाव चिट्ठति ।

[१००१ प्र.] भगवन् ! स्थूणा (ठूठ, बल्ली या खम्भा) ऊपर उठी हुई जितने क्षेत्र को अवगाहन करके रहती है, क्या तिरछी लम्बी की हुई भी वह उतने ही क्षेत्र को अवगाहन करके रहती है ?

[१००१ उ] हाँ, गौतम ! स्थूणा ऊपर (ऊँची) उठी हुई जितने क्षेत्र को, (इत्यादि उसी पाठ को यावत् (उतने ही क्षेत्र को अवगाहन करके) रहती है, (कहना चाहिए।)

विवेचन उन्नीसवाँ-वीसवाँ कम्बलद्वार-स्थूणाद्वार—प्रस्तुत दो सूत्रो मे क्रमशः कम्बल और स्थूणा को लेकर आकाशप्रदेशस्पर्शन और क्षेत्रावगाहन की चर्चा की गई है ।

अतीन्द्रिय वस्तुग्रहण सम्बन्धी प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत दोनो द्वारो मे अतीन्द्रिय वस्तुओ के ग्रहण सम्बन्धी प्रश्नोत्तर है । उनका आशय क्रमश इस प्रकार है—(१) कम्बल को तह पर तह करके लपेट दिए जाने पर वह जितने आकाशप्रदेशो को घेरता है, क्या उसे फैला दिए जाने पर वह उतने ही आकाशप्रदेशो को घेरता है ? भगवान् का उत्तर हाँ मे है । (२) स्थूणा (थून) ऊँची खडी की हुई, जितने क्षेत्र को अवगाहन कर (व्याप्त करके) रहती है, क्या वह तिरछी लम्बी पडी हुई भी उतने ही क्षेत्र को अवगाहन करके रहती (व्याप्त करती) है ? इसका उत्तर भी भगवान् ने स्वीकृतिसूचक दिया है ।[1]

इक्कीस-बाईस-तेईस-चौवीसवाँ थिग्गल-द्वीपोदधि-लोक-अलोकद्वार

१००२ आगासथिग्गले ण भते ! किणा फुडे ? कइहिं वा काएहिं फुडे ? किं धम्मत्थिकाएणं फुडे ? किं धम्मत्थिकायस्स देसेणं फुडे ? धम्मत्थिकायस्स पदेसेहिं फुडे ? एव अधम्मत्थिकाएण आगासत्थिकाएण ? एएण भेदेण जाव किं पुढविकाइएण फुडे जाव तसकाएण फुडे ? अद्धासमएण फुडे ?

गोयमा ! धम्मत्थिकाएणं फुडे, णो धम्मत्थिकायस्स देसेणं फुडे, धम्मत्थिकायस्स पदेसेहिं फुडे । एव अधम्मत्थिकाएणं वि । णो आगासत्थिकाएणं फुडे, आगासत्थिकायस्स देसेणं फुडे, आगासत्थिकायस्स पदेसेहिं फुडे जाव वणप्फइकाइएणं फुडे । तसकाएणं सिय फुडे, सिय णो फुडे । अद्धासमएणं देसे फुडे, देसे णो फुडे ।

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३०६

(ख) यही मन्तव्य नेत्रपट को लेकर अन्यत्र भी कहा गया है—

'जह खलु महप्पमाणो नेत्तपडो कोडिओ नहग्गंमि ।

तंमि वि तावइए च्चिय फुसइ पएसे (विरल्लिए वि) ॥'

(अर्थात्—सकुचित किया हुआ नेत्रपट जितने आकाशप्रदेश मे रहता है, विस्तृत करने (फैलाने) पर भी वह (नेत्रपट) उतने ही प्रदेशो को स्पर्श करता है ।) —प्रज्ञापना. म. वृत्ति. पत्राक ३०६ मे उद्धृत

[१००२ प्र] भगवन् ! आकाश-थिग्गल (अर्थात्—लोक) किस से स्पृष्ट है ?, कितने कायों से स्पृष्ट है ?, क्या (वह) धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है, या धर्मास्तिकाय के देश से स्पृष्ट है, अथवा धर्मास्तिकाय के प्रदेशो से स्पृष्ट है ? इसी प्रकार (क्या वह) अधर्मास्तिकाय से (तथा अधर्मास्तिकाय के देश से, या प्रदेशों से) स्पृष्ट है ? (अथवा वह) आकाशास्तिकाय से, (या उसके देश, या प्रदेशो से) स्पृष्ट है ? इन्ही भेदो के अनुसार (क्या वह पुद्गलास्तिकाय से, जीवास्तिकाय से तथा पृथ्वीकायादि से लेकर) यावत् (वनस्पतिकाय तथा) त्रसकाय से स्पृष्ट है ? (अथवा क्या वह) अद्धासमय से स्पृष्ट है ?

[१००२ उ] गौतम ! (वह आकाशथिग्गल=लोक धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है, धर्मास्तिकाय के देश से स्पृष्ट नही है, धर्मास्तिकाय के प्रदेशो से स्पृष्ट है, इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय से भी (स्पृष्ट है, अधर्मास्तिकाय के देश से स्पृष्ट नही, अधर्मास्तिकाय के प्रदेशो से स्पृष्ट है ।) आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट नही है, आकाशास्तिकाय के देश से स्पृष्ट है तथा आकाशास्तिकाय के प्रदेशो से स्पृष्ट है (तथा पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय एव पृथ्वीकायादि से लेकर) यावत् वनस्पतिकाय से स्पृष्ट है, त्रसकाय से कथचित् स्पृष्ट है और कथचित् स्पृष्ट नही है, अद्धा-समय (कालद्रव्य) से देश से स्पृष्ट है तथा देश से स्पृष्ट नही है ।

१००३. [१] जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे किण्णा फुडे ? कतिहि वा काएहि फुडे ? किं धम्मत्थिकाएणं जाव आगासत्थिकाएणं फुडे ?

गोयमा ! णो धम्मत्थिकाएणं फुडे धम्मत्थिकायस्स देसेणं फुडे धम्मत्थिकायस्स पएसेहि फुडे, एव अधम्मत्थिकायस्स वि आगासत्थिकायस्स वि, पुढविकाइएण फुडे जाव वणप्फइकाएणं फुडे, तसकाएण सिय फुडे, सिय णो फुडे, अद्धासमएण फुडे ।

[१००३-१ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप किससे स्पृष्ट है ? या (वह) कितने कायो से स्पृष्ट है ? क्या वह धर्मास्तिकाय से (लेकर पूर्वोक्तानुसार) यावत् आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट है ? (पूर्वोक्त परिपाटी के अनुसार 'अद्धा-समय' तक के स्पर्श-सम्बन्धी सभी प्रश्न यहाँ समझने चाहिए ।)

[१००३-१ उ] गौतम ! (वह) धर्मास्तिकाय (समग्र) से स्पृष्ट नही है, (किन्तु) धर्मास्तिकाय के देश से स्पृष्ट है तथा धर्मास्तिकाय के प्रदेशो से स्पृष्ट है । इसी प्रकार वह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के देश और प्रदेशो से स्पृष्ट है, पृथ्वीकाय से (लेकर) यावत् वनस्पतिकाय से स्पृष्ट है (तथा) त्रसकाय से कथचित् स्पृष्ट है, कथचित् स्पृष्ट नही है, अद्धा-समय (कालद्रव्य) से स्पृष्ट है ।

[२] एवं लवणसमुद्दे धायइसंडे दीवे कालोए समुद्दे अब्भितरपुक्खरद्धे । बाहिरपुक्खरद्धे एव चेव, णवर अद्धासमएणं णो फुडे । एवं जाव सयभुरमणे समुद्दे । एसा परिवाडी इमाहि गाहाहि अणुगंतव्वा । त जहा—

जंबुद्दीवे लवणे धायइ कालोय पुक्खरे वरुणे ।
खीर घत खोत नंदि य अरुणवरे कुंडले रुयए ॥२०४॥

आभरण-वत्थ-गधे उप्पल-तिलए य पुढवि-णिहि-रयणे ।
वासहर-वह-नवीओ विजया वक्खार-कप्पिदा ॥२०५॥

कुरु-मंदर-आवासा कूडा णक्खत्त-चंद-सूरा य ।
देवे णागे जक्खे भूए य सयंभुरमणे य ।।२०६।।

एवं जहा बाहिरपुक्खरद्धे भणितं तहा जाव सयभुरमणे समुद्दे जाव अद्धासमएणं णो फुडे ।

[१००३-२] इसी प्रकार लवणसमुद्र, धातकीखण्डद्वीप, कालोदसमुद्र, आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध और बाह्य पुष्करार्द्ध (द्वीप) के विषय में इसी प्रकार को (पूर्वोक्तानुसार धर्मास्तिकायादि से लेकर अद्धा-समय तक की अपेक्षा से स्पृष्ट-अस्पृष्ट की प्ररूपणा करनी चाहिए ।) विशेष यह है कि बाह्य पुष्करार्ध से लेकर आगे के समुद्र एव द्वीप अद्धा-समय से स्पृष्ट नही है । स्वयम्भूरमणसमुद्र तक इसी प्रकार (की प्ररूपणा करनी चाहिए ।) यह परिपाटी (द्वीप-समुद्रो का क्रम) इन गाथाओ के अनुसार जान लेनी चाहिए । यथा—

[गाथार्थ—] १. जम्बूद्वीप, २ लवणसमुद्र, ३. धातकीखण्डद्वीप, ४. पुष्करद्वीप, ५ वरुणद्वीप, ६ क्षीरवर, ७ घृतवर, ८. क्षोद (इक्षु), ९ नन्दीश्वर, १० अरुणवर, ११. कुण्डलवर १२ रुचक, १३. आभरण, १४. वस्त्र, १५ गन्ध, १६ उत्पल, १७ तिलक, १८ पृथ्वी, १९ निधि, २० रत्न, २१. वर्षधर, २२ द्रह, २३. नदियाँ, २४. विजय, २५ वक्षस्कार, २६. कल्प, २७ इन्द्र, २८ कुरु, २९ मन्दर, ३० आवास, ३१ कूट, ३२. नक्षत्र, ३३. चन्द्र, ३४ सूर्य, ३५. देव, ३६ नाग, ३७ यक्ष, ३८ भूत और ३९ स्वयम्भूरमण समुद्र ।।२०४, २०५, २०६ ।।

इस प्रकार जैसे (धर्मास्तिकायादि से लेकर अद्धा-समय तक की अपेक्षा से) बाह्यपुष्करार्द्ध के (स्पृष्टास्पृष्ट के) विषय मे कहा गया उसी प्रकार (वरुणद्वीप से लेकर) स्वयम्भूरमणसमुद्र (तक) के विषय मे 'अद्धा-समय से स्पृष्ट नही होता,' पर्यन्त (कहना चाहिए ।)

१००४ लोगे ण भते ! किणा फुडे ? कतिहि वा काएहि ?
जहा आगासथिग्गले (सु. १००२) ।

[१००४ प्र उ.] भगवन् ! लोक किससे स्पृष्ट है ? (वह) कितने कायो से स्पृष्ट है (इत्यादि समस्त वक्तव्यता जिस प्रकार (सू १००२ मे) आकाश-थिग्गल के विषय मे कही गई है, (उसी प्रकार कहनी चाहिए ।)

१००५. अलोए ण भते ! किणा फुडे ? कतिहि वा काएहि पुच्छा ।

गोयमा ! णो धम्मत्थिकाएण फुडे जाव णो आगासत्थिकाएण फुडे, आगासत्थिकायस्स देसेणं फुडे आगासत्थिकायस्स पदेसेहि फडे, णो पुढविक्काइएणं फुडे जाव णो अद्धासमएणं फुडे, एगे अजीव-दव्वदेसे अगुरुलहुए अणंतेहि अगुरुलहुयगुणेहि सजुत्ते सव्वागासे अणंतभागूणे ।

।। इंदियपयस्स पढमो उद्देसो समत्तो ।।

[१००५ प्र] भगवन् ! अलोक किससे स्पृष्ट है ? (वह) कितने कायो से स्पृष्ट है ? इत्यादि सर्व पृच्छा यहाँ पूर्ववत् करनी चाहिए ।

[१००५ उ.] गौतम ! अलोक धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट नही है, (अधर्मास्तिकाय से लेकर) यावत् (समग्र) आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट नही है; (वह) आकाशास्तिकाय के देश से स्पृष्ट है तथा

आकाशास्तिकाय के प्रदेशो से स्पृष्ट है, (किन्तु) पृथ्वीकाय से स्पृष्ट नही है, यावत् अद्धा-समय (कालद्रव्य) से स्पष्ट नही है। अलोक एक अजीवद्रव्य का देश है, अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघुगुणो से सयुक्त है, सर्वाकाश के अनन्तवे भाग कम है। (लोकाकाश को छोडकर सर्वाकाश प्रमाण है।)

विवेचन- इक्कीस-बाईस-तेईस-चौवीसवाँ थिग्गल-द्वीपोदधि-लोक-अलोकद्वार—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू. १००२ से १००५ तक) मे आकाशरूप थिग्गल, द्वीप-सागरादि, लोक और अलोक के धर्मास्तिकायादि से लेकर अद्धा-समय तक से स्पृष्ट-अस्पृष्ट होने की प्ररूपणा की गई है।

आकाशथिग्गल के स्पृष्ट-अस्पृष्ट की समीक्षा—'थिग्गल' शब्द से यहाँ आकाशथिग्गल समझना चाहिए। सम्पूर्ण आकाश एक विस्तृत पट के समान है। उसके बीच मे लोक उस विस्तृत पट के थिग्गल (पैबन्द) की तरह प्रतीत होता है। अत लोकाकाश को थिग्गल कहा गया है। प्रथम सामान्य प्रश्न है—इस प्रकार का आकाशथिग्गलरूप लोकाकाश किससे स्पृष्ट अर्थात् व्याप्त है? तत्पश्चात् विशेषरूप में प्रश्न किया गया है कि धर्मास्तिकाय से लेकर त्रसकाय तक, यहाँ तक कि 'अद्धा-समय' तक से कितने कायो से स्पृष्ट है?

लोक सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है, क्योकि धर्मास्तिकाय पूरा का पूरा लोक मे ही अवगाढ है, अतएव वह धर्मास्तिकाय के देश से स्पृष्ट नही है, क्योकि जो जिसमे पूरी तरह व्याप्त है, उसे उसके एक देश मे व्याप्त नही कहा जा सकता किन्तु लोक धर्मास्तिकाय के प्रदेशो से व्याप्त तो है ही, क्योकि धर्मास्तिकाय के सभी प्रदेश लोक मे ही अवगाढ है। यही बात अधर्मास्तिकाय के विषय मे समझनी चाहिए, किन्तु लोक सम्पूर्ण आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट नही है, क्योकि लोक सम्पूर्ण आकाशास्तिकाय का एक छोटा-सा खण्डमात्र ही है, किन्तु वह आकाशास्तिकाय के देश से और प्रदेशो से स्पृष्ट है, यावत् पुद्गलास्तिकाय से, जीवास्तिकाय से तथा पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय से स्पृष्ट है। सूक्ष्म पृथ्वीकायादि समग्र लोक मे व्याप्त हैं। अतएव उनके द्वारा भी वह पूर्णरूप से स्पृष्ट है, किन्तु त्रसकाय से क्वचित् स्पृष्ट होता है, क्वचित् स्पृष्ट नही भी होता। जब केवली, समुद्घात करते हैं, तब चौथे समय मे वे अपने आत्मप्रदेशो से समग्र लोक को व्याप्त कर लेते है। केवली भगवान् त्रसकाय के ही अन्तर्गत है, अतएव उस समय समस्त लोक त्रसकाय से स्पृष्ट होता है। इसके अतिरिक्त अन्य समय मे सम्पूर्ण लोक त्रसकाय से स्पृष्ट नही होता। क्योकि त्रसजीव सिर्फ त्रसनाडी मे ही पाए जाते है। जो सिर्फ एक राजू चौडी और चौदह राजू ऊँची है। अद्धा-समय से लोक का कोई भाग स्पृष्ट होता है और कोई भाग स्पृष्ट नही होता। अद्धा-काल अढाई द्वीप मे ही है, आगे नही।

'आकाशथिग्गल' और 'लोक' मे अन्तर—पहले लोक को 'आकाशथिग्गल' शब्द से प्ररूपित किया था, अब इसी को सामान्यरूप से 'लोक' शब्द द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इसलिए विशेष और सामान्य का अन्तर है। **'लोक'** सबधी निरूपण **'आकाशथिग्गल'** के समान ही है।[1]

॥ पन्द्रहवाँ इन्द्रियपद : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१. प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक ३०७-३०८

बीओ उद्देसओ : द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक के बारह द्वार

१००६ इंदियउवचय १ णिव्वत्तणा य २ समया भवे असंखेज्जा ३ ।
लद्धी ४ उवओगद्धा ५ अप्पाबहुए विसेसहिया ॥२०७॥
ओगाहणा ७ अवाए ८ ईहा ९ तह वंजणोग्गहे चेव १० ।
दव्विंदिया ११ भाविंदिय १२ तीया बद्धा पुरेक्खडिया ॥२०८॥

[१००६ अर्थाधिकार गाथाओ का अर्थ—] १ इन्द्रियोपचय, २ (इन्द्रिय-) निर्वर्तना, ३ निर्वर्तना के असख्यात समय, ४ लब्धि, ५ उपयोगकाल, ६ अल्पबहुत्व मे विशेषाधिक उपयोग काल ॥२०७॥ ७ अवग्रह, ८ अवाय (अपाय), ९ ईहा तथा १०. व्यजनावग्रह और अर्थावग्रह, ११ अतीतबद्धपुरस्कृत (आगे होने वाली) द्रव्येन्द्रिय, १२ भावेन्द्रिय ॥२०८॥ (इस प्रकार दूसरे उद्देशक मे बारह द्वारो के माध्यम से इन्द्रियविषयक अर्थाधिकार प्रतिपादित है ।)

विवेचन—द्वितीय उद्देशक के बारह द्वार—प्रस्तुत सूत्र मे दो गाथाओ द्वारा इन्द्रियोपचय आदि बारह द्वारो के माध्यम से इन्द्रियविषयक प्ररूपणा की गई ।

बारह द्वार—(१) **इन्द्रियोपचयद्वार** (इन्द्रिययोग्य पुद्गलो को ग्रहण करने की शक्ति—इन्द्रिय पर्याप्ति, (२) **इन्द्रियनिर्वर्तनाद्वार** (बाह्याभ्यन्तर निर्वृत्ति का निरूपण), (३) **निर्वर्तनसमयद्वार** (आकृति निष्पन्न होने का काल), (४) **लब्धिद्वार** (इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम का कथन), (५) **उपयोगकालद्वार**, (६) **अल्पबहुत्वाविशेषाधिकद्वार**, (७) **अवग्रहणाद्वार** (अवग्रह का कथन), (८) **अवायद्वार**, (९) **ईहाद्वार**, (१०) **व्यञ्जनावग्रहद्वार**, (११) **द्रव्येन्द्रियद्वार** और (१२) **भावेन्द्रिय** अतीतबद्धपुरस्कृतद्वार (भावेन्द्रिय की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत इन्द्रियो का कथन), इन बारह द्वारो के माध्यम से इन्द्रियविषयक प्ररूपणा की जाएगी ।[1]

प्रथम इन्द्रियोपचय द्वार

१००७. कतिविहे णं भंते ! इंदिओवचए पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे इंदिओवचए पण्णत्ते । तं जहा—सोइंदिओवचए चक्खिदिओवचए घाणिंदिओवचए जिब्भिदिओवचए फासिंदिओवचए ।

[१००७ प्र] भगवन् ! इन्द्रियोपचय कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१००७ उ] गौतम ! इन्द्रियोपचय पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) श्रोत्रेन्द्रियोपचय, (२) चक्षुरिन्द्रियोपचय, (३) घ्राणेन्द्रियोपचय, (४) जिह्वेन्द्रियोपचय और (५) स्पर्शनेन्द्रियोपचय ।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३०९

१००८. [१] णेरइयाणं भंते ! कतिविहे इंदिओवचए पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे इंदिओवचए पण्णत्ते । तं जहा—सोइंदिओवचए जाव फासिंदिओवचए ।

[१००८-१ प्र] भगवन् ! नैरयिको के इन्द्रियोपचय कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१००८-१ उ.] गौतम ! (उनके) इन्द्रियोपचय पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—श्रोत्रेन्द्रियोपचय यावत् स्पर्शनेन्द्रियोपचय ।

[२] एवं जाव वेमाणियाणं । जस्स जइ इंदिया तस्स तइविहो चेव इंदिओवचय भाणियव्वो ।। १ ।।

[१००८-२] इसी प्रकार (असुरकुमारो से लेकर) यावत् वैमानिको के इन्द्रियोपचय के विषय मे कहना चाहिए । जिसके जितनी इन्द्रियाँ होती है, उसके उतने ही प्रकार का इन्द्रियोपचय कहना चाहिए ।।१।।

विवेचन—**प्रथम इन्द्रियोपचयद्वार**—प्रस्तुत सूत्रद्वय (१००७-१००८) मे पाच प्रकार के इन्द्रियोपचय का तथा चौवीस दण्डको मे पाए जाने वाले इन्द्रियोपचय का कथन किया गया है। **इन्द्रियोपचय** अर्थात्—इन्द्रियो के योग्य पुद्गलो का सग्रह ।[1]

द्वितीय-तृतीय निर्वर्तनासमयद्वार

१००९. [१] कतिविहा णं भंते ! इंदियनिव्वत्तणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा इंदियनिव्वत्तणा पण्णत्ता । तं जहा—सोइंदियनिव्वत्तणा जाव फासिंदियनिव्वत्तणा ।

[१००९-१ प्र.] भगवन् ! इन्द्रियनिर्वर्त्तना (निर्वृत्ति) कितने प्रकार की कही गई है ?

[१००९-१ उ.] गौतम ! इन्द्रियनिर्वर्त्तना पाच प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—श्रोत्रेन्द्रियनिर्वर्त्तना यावत् स्पर्शनेन्द्रियनिर्वर्त्तना ।

[२] एवं नेरइयाण जाव वेमाणियाण । नवरं जस्स जतिंदिया अत्थि ।। २ ।।

[१००९-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर वैमानिको तक निर्वर्तना-विषयक प्ररूपणा करनी चाहिए । विशेष यह कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ होती है, (उसकी उतनी ही इन्द्रियनिर्वर्तना कहनी चाहिए।) ।।२।।

१०१०. [१] सोइंदियणिव्वत्तणा णं भंते ! कतिसमइया पन्नत्ता ?

गोयमा ! असंखिज्जसमइया अंतोमुहुत्तिया पन्नत्ता । एवं जाव फासिंदियनिव्वत्तणा ।

[१०१०-१ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रियनिर्वर्त्तना कितने समय की कही गई है ?

[१०१०-१ उ] गौतम ! (वह) असख्यात समयो के अन्तर्मुहूर्त्त की कही है। इसी प्रकार स्पर्शनेन्द्रियनिर्वर्त्तना-काल तक कहना चाहिए ।

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३०९

(ख) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ २४९

[२] एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं ॥ ३ ॥

[१०१०-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर यावत् वैमानिको की इन्द्रियनिर्वर्तना के काल के विषय मे कहना चाहिए ।

विवेचन—द्वितीय-तृतीय निर्वर्तनाद्वार एवं निर्वर्तनासमयद्वार—प्रस्तुत दो सूत्रो मे से प्रथम सूत्र मे पाच प्रकार की निर्वर्तना और द्वितीय सूत्र मे प्रत्येक इन्द्रिय की निर्वर्तना के समयो की प्ररूपणा की गई है ।

निर्वर्तना का अर्थ—बाह्याभ्यन्तररूप निर्वृत्ति-आकार की रचना ।[1]

चतुर्थ-पंचम-षष्ठ लब्धिउपयोगाद्धा, अल्पबहुत्व उपयोग काल का द्वार

१०११. [१] कतिविहा ण भंते ! इंदियलद्धी पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा इंदियलद्धी पण्णत्ता । तं जहा—सोइंदियलद्धी जाव फासिंदियलद्धी ।

[१०११-१ प्र] भगवन् ! इन्द्रियलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[१०११-१ उ] गौतम ! इन्द्रियलब्धि पाच प्रकार की कही है, वह इस प्रकार—श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि यावत् स्पर्शेन्द्रियलब्धि ।

[२] एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाण । नवरं जस्स जति इंदिया अत्थि तस्स तावतिया लद्धी भाणियव्वा ॥ ४ ॥

[१०११-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर वैमानिको तक इन्द्रियलब्धि की प्ररूपणा करनी चाहिए । विशेष यह कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ हो, उसके उतनी ही इन्द्रियलब्धि कहनी चाहिए ।

१०१२ [१] कतिविहा णं भंते ! इंदियउवओगद्धा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा इंदियउवओगद्धा पण्णत्ता । तं जहा—सोइंदियउवओगद्धा जाव फासिंदिय-उवओगद्धा ।

[१०१२-१ प्र] भगवन् ! इन्द्रियो के उपयोग का काल (अद्धा) कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१०१२-१ उ] गौतम ! इन्द्रियो का उपयोगकाल पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—श्रोत्रेन्द्रिय-उपयोगकाल यावत् स्पर्शेन्द्रिय-उपयोगकाल ।

[२] एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं । णवरं जस्स जति इंदिया अत्थि ॥ ५ ॥

[१०१२-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर वैमानिकों तक के इन्द्रिय-उपयोगकाल के विषय मे समझना चाहिए । विशेष यह है कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ हो, उसके उतने ही इन्द्रियोपयोगकाल कहने चाहिए ।

---

१ प्रज्ञापना. मलय वृत्ति, पत्रांक ३०९

१०१३. एतेसि णं भंते ! सोइंदिय-चक्खिदिय-घाणिंदिय-जिब्भिदिय-फासिंदियाणं जहण्णियाए उवओगद्धाए उक्कोसियाए उवओगद्धाए जहण्णुक्कोसियाए उवओगद्धाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा चक्खिदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा, सोइंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, घाणिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, जिब्भिदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, फासेंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया । उक्कोसियाए उवओगद्धाए सव्वत्थोवा चक्खिदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा, सोइंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, घाणिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, जिब्भिदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, फासेंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया । जहण्णुक्कोसियाए उवओगद्धाए सव्वत्थोवा चक्खिदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा, सोइंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, घाणिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, जिब्भिदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, फासेंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, फासेंदियस्स जहण्णियाहिंतो उवओगद्धाहिंतो चक्खिदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, सोइंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, घाणिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, जिब्भिदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, फासेंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया ।। ६ ।।

[१०१३ प्र.] भगवन् ! इन श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय के जघन्य उपयोगाद्धा, उत्कृष्ट उपयोगाद्धा और जघन्योत्कृष्ट उपयोगाद्धा मे कौन, किससे अल्प, बहुत तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[१०१३ उ] गौतम ! चक्षुरिन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा (उपयोगकाल) सबसे कम है, (उसकी अपेक्षा) श्रोत्रेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उसकी अपेक्षा) घ्राणेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उससे) जिह्वेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उस की अपेक्षा) स्पर्शेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है । उत्कृष्ट उपयोगाद्धा मे चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा सबसे कम है, (उसकी अपेक्षा) श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उससे) घ्राणेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उससे) जिह्वेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उसकी अपेक्षा) स्पर्शेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है । जघन्योत्कृष्ट उपयोगाद्धा की अपेक्षा से सबसे कम चक्षुरिन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा है, (उसकी अपेक्षा) श्रोत्रेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उसकी अपेक्षा) घ्राणेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उसकी अपेक्षा) जिह्वेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उसकी अपेक्षा, स्पर्शेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, स्पर्शेन्द्रिय के जघन्य उपयोगाद्धा से चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उसकी अपेक्षा) श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उसकी अपेक्षा) घ्राणेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उसकी अपेक्षा) जिह्वेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, (उसकी अपेक्षा) स्पर्शेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है ।।६।।

विवेचन - चतुर्थ-पंचम-षष्ठ लब्धिद्वार, उपयोगाद्धाद्वार एवं अल्पबहुत्वद्वार—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे क्रमश. लब्धिद्वार, उपयोगाद्धाद्वार एव उपयोगाद्धाविशेषाधिकद्वार के माध्यम से इन्द्रियावरण-कर्म के क्षयोपशम की, इन्द्रियो के उपयोगकाल की एव इन्द्रियो के उपयोगकाल के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

इन्द्रियलब्धि आदि पदो के अर्थ—इन्द्रियावरणकर्म के क्षयोपशम को इन्द्रियलब्धि, इन्द्रियो के उपयोग (उपयोग से युक्त व्यापृत रहने) के काल को इन्द्रियउपयोगाद्धा एव उपयोगाद्धा के अल्प-बहुत्व या विशेषाधिक को उपयोगाद्धाविशेषाधिक कहते हैं।[1]

सातवाँ, आठवाँ, नौवाँ और दसवाँ क्रमशः इन्द्रिय-अवग्रहण-अवाय-ईहा-अवग्रह द्वार

१०१४. [१] कतिविहा णं भंते ! इंदियओगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा इंदियओगाहणा पण्णत्ता । तं जहा—सोइंदियओगाहणा जाव फासेंदिय-ओगाहणा ।

[१०१४-१ प्र] भगवन् ! इन्द्रिय-अवग्रहण (अवग्रह) कितने प्रकार के कहे है ?

[१०१४-१ उ.] गौतम ! पाच प्रकार के इन्द्रियावग्रहण कहे है, वे इस प्रकार— श्रोत्रेन्द्रिय-अवग्रहण यावत् स्पर्शेन्द्रिय-अवग्रहण ।

[२] एवं णेरइयाण जाव वेमाणियाण । णवरं जस्स जइ इंदिया अत्थि ।। ७ ।।

[१०१४-२] इसी प्रकार नारको से लेकर वैमानिको तक (पूर्ववत् कहना चाहिए)। विशेष यह है कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ हो, (उसके उतने ही अवग्रहण समझने चाहिए।) ।।७।।

१०१५. [१] कतिविहे णं भंते ! इंदियअवाए पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे इंदियअवाये पण्णत्ते । तं जहा – सोइंदियअवाए जाव फासेंदियअवाए ।

[१०१५-१ प्र] भगवन् ! इन्द्रिय-अवाय कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१०१५-१ उ] गौतम ! इन्द्रिय-अवाय पाच प्रकार का गया कहा है, वह इस प्रकार— श्रोत्रेन्द्रिय अवाय (से लेकर) यावत् स्पर्शेन्द्रिय-अवाय ।

[२] एव णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं । नवरं जस्स जत्तिया इंदिया अत्थि ।। ८ ।।

[१०१५-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर वैमानिको तक (अवाय के विषय मे कहना चाहिए)। विशेष यह कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ हो, (उसके उतने ही अवाय कहने चाहिए।) ।।८।।

१०१६ [१] कतिविहा ण भंते ! ईहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा ईहा पण्णत्ता । तं जहा – सोइंदियईहा जाव फासेंदियईहा ।

[१०१६-१ प्र] भगवन् ! ईहा कितने प्रकार की कही गई है ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३०९

[१०१६-१ उ.] गौतम ! ईहा पाच प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—श्रोत्रेन्द्रिय-ईहा, यावत् स्पर्शेन्द्रिय-ईहा ।

[२] एवं जाव वेमाणियाणं । णवरं जस्स जति इंदिया ॥ ९ ॥

[१०१६-२] इसी प्रकार (नैरयिकों से लेकर) यावत् वैमानिको तक (ईहा के विषय मे कहना चाहिए ।) विशेष यह कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ हो, (उसके उतनी ही ईहा कहनी चाहिए ।) ॥९॥

१०१७. कतिविहे णं भंते ! उग्गहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे उग्गहे पण्णत्ते । त जहा—अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य ।

[१०१७ प्र] भगवन् ! अवग्रह कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१०१७ उ.] गौतम ! अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—अर्थावग्रह और व्यजनावग्रह ।

१०१८. वजणोग्गहे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते । त जहा—सोइंदियवंजणोग्गहे घाणिंदियवंजणोग्गहे जिब्भिंदिय-वंजणोग्गहे फासिंदियवंजणोग्गहे ।

[१०१८ प्र] भगवन् ! व्यंजनावग्रह कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१०१८ उ] गौतम ! (व्यञ्जनावग्रह) चार प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार–श्रोत्रेन्द्रियावग्रह, घ्राणेन्द्रियावग्रह, जिह्वेन्द्रियावग्रह और स्पर्शेन्द्रियावग्रह ।

१०१९ अत्थोग्गहे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे अत्थोग्गहे पण्णत्ते । तं जहा—सोइंदियअत्थोग्गहे चक्खिदियअत्थोग्गहे घाणिंदियअत्थोग्गहे जिब्भिंदियअत्थोग्गहे फासिंदियअत्थोग्गहे णोइंदियअत्थोग्गहे ।

[१०१९ प्र] भगवन् ! अर्थावग्रह कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१०१९ उ] गौतम ! अर्थावग्रह छह प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह, चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह, जिह्वेन्द्रिय-अर्थावग्रह, स्पर्शेन्द्रिय-अर्थावग्रह और नोइन्द्रिय (मन)-अर्थावग्रह ।

१०२० [१] णेरइयाणं भंते ! कतिविहे उग्गहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे उग्गहे पण्णत्ते । त जहा अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य ।

[१०२०-१ प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितने अवग्रह कहे गए हैं ?

[१०२०-१ उ] गौतम ! (उनके) दो प्रकार के अवग्रह कहे हैं, यथा—अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह ।

[२] एवं असुरकुमाराणं जाव थणियकुमाराणं ।

[१०२०-२] इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक (के अवग्रह के विषय में कहना चाहिए)।

१०२१. [१] पुढविकाइयाणं भंते ! कतिविहे उग्गहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे उग्गहे पण्णत्ते । तं जहा—अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य ।

[१०२१-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिकों के कितने अवग्रह कहे गए हैं ?

[१०२१-१ उ] गौतम ! (उनके) दो प्रकार के अवग्रह कहे गए हैं। वे इस प्रकार—अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह।

[२] पुढविकाइयाणं भंते ! वंजणोग्गहे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगे फासिंदियअत्थोग्गहे पण्णत्ते ।

[१०२१-२ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिकों के व्यंजनावग्रह कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१०२१-२ उ] गौतम ! (उनके केवल) एक स्पर्शेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह कहा गया है।

[३] पुढविकाइयाणं भंते ! कतिविहे अत्थोग्गहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगे फासिंदियअत्थोग्गहे पण्णत्ते ।

[१०२१-३ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिकों के कितने अर्थावग्रह कहे गए हैं।

[१०२१-३ उ] गौतम ! (उनके केवल) एक स्पर्शेन्द्रिय-अर्थावग्रह कहा गया है।

[४] एवं जाव वणप्फइकाइयाणं ।

[१०२१-४] (अप्कायिकों से लेकर) यावत् वनस्पतिकायिक (के व्यंजनावग्रह एवं अर्थावग्रह के विषय में) इसी प्रकार कहना चाहिए।

१०२२. [१] एवं बेइंदियाण वि । णवरं बेइंदियाणं वंजणोग्गहे दुविहे पण्णत्ते, अत्थोग्गहे दुविहे पण्णत्ते ।

[१०२२-१] इसी प्रकार द्वीन्द्रियों के अवग्रह के विषय में समझना चाहिए। विशेष यह है कि द्वीन्द्रियों के व्यंजनावग्रह दो प्रकार के कहे गए हैं तथा (उनके) अर्थावग्रह भी दो प्रकार के कहे गए हैं।

[२] एवं तेइंदिय-चउरिंदियाण वि । णवरं इंदियपरिवुड्ढी कायव्वा । चउरिंदियाणं वंजणोग्गहे तिविहे पण्णत्ते, अत्थोग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते ।

[१०२२-२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के (व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह के) विषय में भी समझना चाहिए। विशेष यह है कि (उत्तरोत्तर एक-एक) इन्द्रिय की परिवृद्धि होने से एक-एक व्यंजनावग्रह एवं अर्थावग्रह की भी वृद्धि कहनी चाहिए। चतुरिन्द्रिय जीवों के व्यञ्जनावग्रह तीन प्रकार के कहे हैं और अर्थावग्रह चार प्रकार के कहे हैं।

१०२३. सेसाण जहा णेरइयाण (सु. १०२० [१]) जाव वेमाणियाणं ॥१०॥

[१०२३] वैमानिको तक शेष समस्त जीवो के अवग्रह के विषय मे जैसे (सू १०२०-१ में) **नैरयिको के अवग्रह के विषय मे कहा है, वैसे ही समझ लेना चाहिए ॥१०॥**

विवेचन—सातवाँ, आठवाँ, नौवाँ और दसवाँ इन्द्रिय-अवग्रहण-अवाय-ईहा-अवग्रहद्वार— प्रस्तुत दस सूत्रो सू १०१४ से १०२३ तक) मे चार द्वारो के माध्यम से क्रमश इन्द्रियो के अवग्रहण, अवाय, ईहा और अवग्रह के विषय मे कहा गया है।

इन्द्रियावग्रहण का अर्थ- इन्द्रियो द्वारा होने वाले सामान्य परिच्छेद (ज्ञान) को इन्द्रियावग्रह या इन्द्रियावग्रहण कहते है।

इन्द्रियावाय की व्याख्या अवग्रहज्ञान से गृहीत और ईहाज्ञान से ईहित अर्थ का निर्णयरूप जो अध्यवसाय होता है, वह अवाय या 'अपाय' कहलाता है। जैसे—यह शख का ही शब्द है, अथवा यह सारगी का ही स्वर है, इत्यादि रूप अवधारणात्मक (निश्चयात्मक) निर्णय होना। तात्पर्य यह है कि ज्ञानोपयोग मे सर्वप्रथम अवग्रहज्ञान होता है, जो अपर सामान्य को विषय करता है। तत्पश्चात् ईहाज्ञान की उत्पत्ति होती है, जिसके द्वारा ज्ञानोपयोग सामान्यधर्म से आगे बढकर विशेषधर्म को ग्रहण करने के लिए अभिमुख होता है। ईहा के पश्चात् अवायज्ञान होता है, जो वस्तु के विशेषधर्म का निश्चय करता है। अवग्रहादि ज्ञान मन से भी होते है और इन्द्रियो से भी, किन्तु यहा इन्द्रियो से होने वाले अवग्रहादि के सम्बन्ध मे ही प्रश्न और उत्तर है।

ईहाज्ञान की व्याख्या सद्भूत पदार्थ की पर्यालोचनरूप चेष्टा ईहा कहलाती है। ईहाज्ञान अवग्रह के पश्चात् और अवाय से पूर्व होता है। यह (ईहाज्ञान) पदार्थ के सद्भूत धर्मविशेष को ग्रहण करने और असद्भूत अर्थविशेष को त्यागने के अभिमुख होता है। जैसे—यहाँ मधुरता आदि शखादिशब्द के धर्म उपलब्ध हो रहे है, सारग आदि के कर्कशता-निष्ठुरता आदि शब्द के धर्म नही, अतएव यह शब्द शख का होना चाहिए। इस प्रकार की मतिविशेष ईहा कहलाती है।

अर्थावग्रह और व्यजनावग्रह अर्थ का अवग्रह **अर्थावग्रह** कहलाता है। अर्थात्—शब्द द्वारा नही कहे जा सकने योग्य अर्थ के सामान्यधर्म को ग्रहण करना **अर्थावग्रह** है। कहा भी है—रूपादि विशेष से रहित अनिर्देश्य सामान्यरूप अथ का ग्रहण, अर्थावग्रह है। जैसे तिनके का स्पर्श होते ही सर्वप्रथम होने वाला—'यह कुछ है' इस प्रकार का ज्ञान। दीपक के द्वारा जैसे घट व्यक्त किया जाता है, वैसे ही जिसके द्वारा अर्थ व्यक्त किया जाए, उसे व्यजन कहते है। तात्पर्य यह है कि उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय और शब्दादिरूप मे परिणत द्रव्यो के परस्पर सम्बन्ध होने पर ही श्रोत्रेन्द्रिय आदि इन्द्रियाँ शब्दादिविषयो को व्यक्त करने मे समर्थ होती है, अन्यथा नही। अत इन्द्रिय और उसके विषय का सम्बन्ध व्यजन कहलाता है। यो व्यजनावग्रह का निर्वचन तीन प्रकार से होता है—उपकरणेन्द्रिय और उसके विषय का सम्बन्ध व्यजन कहलाता है। उपकरणेन्द्रिय भी व्यजन कहलाती है और व्यक्त होने योग्य शब्दादि विषय भी व्यजन कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि दर्शनोपयोग के पश्चात् अत्यन्त अव्यक्तरूप परिच्छेद (ज्ञान) व्यञ्जनावग्रह है।

पहले कहा जा चुका है कि उपकरण द्रव्येन्द्रिय और शब्दादि के रूप मे परिणत द्रव्यो का परस्पर जो सम्बन्ध होता है, वह व्यञ्जनावग्रह है, इस दृष्टि से चार प्राप्यकारी इन्द्रियाँ हो ऐसी हैं,

जिनका अपने विषय के साथ सम्बन्ध होता है, चक्षु और मन ये दोनो अप्राप्यकारी हैं, इसलिए इन का अपने विषय के साथ सम्बन्ध नही होता। इसी कारण व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का बताया गया है, जबकि अर्थावग्रह छह प्रकार का निर्दिष्ट है।

व्यञ्जनावग्रह और अर्थावग्रह में व्युत्क्रम क्यो?—व्यञ्जनावग्रह पहले उत्पन्न होता है, और अर्थावग्रह बाद मे, ऐसी स्थिति मे बाद मे होने वाले अर्थावग्रह का कथन पहले क्यो किया गया? इसका समाधान यह कि अर्थावग्रह अपेक्षाकृत स्पष्टस्वरूप वाला होता है तथा स्पष्टस्वरूप वाला होने से सभी उसे समझ सकते हैं। इसी हेतु से अर्थावग्रह का कथन पहले किया गया है। इसके अतिरिक्त अर्थावग्रह सभी इन्द्रियो और मन से होता है, इस कारण भी उसका उल्लेख पहले किया गया है। व्यञ्जनावग्रह ऐसा नही है, वह चक्षु और मन से नही होता तथा अतीव अस्पष्ट स्वरूप वाला होने के कारण सबके सवेदन मे नही आता, इसलिए उसका कथन बाद मे किया गया है।[1]

ग्यारहवाँ द्रव्येन्द्रियद्वार

१०२४. कतिविहा णं भंते! इंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। त जहा—दव्विंदिया य भाविंदिया य।

[१०२४ प्र] भगवन्! इन्द्रियाँ कितने प्रकार की कही है?

[१०२४ उ] गौतम! इन्द्रियाँ दो प्रकार की कही गई है, व इस प्रकार—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

१०२५ कति ण भते! दव्विंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! अट्ठ दव्विंदिया पण्णत्ता। त जहा दो सोया २ दो णेत्ता ४ दो घाणा ६ जीहा ७ फासे ८।

[१०२५ प्र.] भगवन्! द्रव्येन्द्रियाँ कितनी कही गई है?

[१०२५ उ] गौतम! द्रव्येन्द्रियाँ आठ प्रकार की कही गई है, वे इस प्रकार—दो श्रोत्र, दो नेत्र, दो घ्राण (नाक), जिह्वा और स्पर्शन।

१०२६. [१] णेरइयाणं भंते! कति दव्विंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! अट्ठ, एते चेव।

[१०२६-१ प्र] भगवन्! नैरयिको के कितनी द्रव्येन्द्रियाँ कही गई है?

[१०२६-१ उ] गौतम! (उनके) ये ही आठ द्रव्येन्द्रियाँ है।

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३१०-३११

(ख) वजिज्जइ जेणत्थो घडोव्व दीवेण वजण त च।
उवगरणिंदिय सद्दाइपरिणयदव्वसबन्धो ॥ १ ॥ —विशेषा. भाष्य

—प्रज्ञापना. म वृत्ति, पत्र ३११ मे उद्धृत

[२] एवं असुरकुमाराणं जाव थणियकुमाराणं वि ।

[१०२६-२] इसी प्रकार असुरकुमारो से स्तनितकुमारो तक (ये ही आठ द्रव्येन्द्रियाँ) समझनी चाहिए ।

१०२७. [१] पुढविकाइयाण भते ! कति दव्विदिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगे फासेंदिए पण्णत्ते ।

[१०२७-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिको के कितनी द्रव्येन्द्रियाँ कही गई है ?

[१०२७-१ उ] गौतम ! (उनके केवल) एक स्पर्शनेन्द्रिय कही है ।

[२] एवं जाव वणप्फतिकाइयाण ।

[१०२७-२] (अप्कायिको से ले कर) वनस्पतिकायिको तक के इसी प्रकार (एक स्पर्शनेन्द्रिय समझनी चाहिए ।)

१०२८. [१] बेइंदियाणं भंते ! कति दव्विदिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! दो दव्विदिया पण्णत्ता । तं जहा—फासिंदिए य जिब्भिदिए य ।

[१०२८-१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो के कितनी द्रव्येन्द्रियाँ कही गई है ?

[१०२८-१ उ] गौतम ! उनके दो द्रव्येन्द्रियाँ कही गई है, वे इस प्रकार—स्पर्शनेन्द्रिय और जिह्वेन्द्रिय ।

[२] तेइंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! चत्तारि दव्विदिया पण्णत्ता । त जहा—दो घाणा २ जीहा ३ फासे ४ ।

[१०२८-२ प्र] भगवन् ! त्रीन्द्रिय जीवो के कितनी द्रव्येन्द्रियाँ कही गई है ?

[१०२८-२ उ] गौतम ! (उनके) चार द्रव्येन्द्रियाँ कही गई है, वे इस प्रकार—दो घ्राण, जिह्वा और स्पर्शन ।

[३] चउरिंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! छ दव्विदिया पण्णत्ता । तं जहा—दो णेत्ता २ दो घाणा ४ जीहा ५ फासे ६ ।

[१०२८-३ प्र] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवो के कितनी द्रव्येन्द्रियाँ कही गई है ?

[१०२८-३ उ] गौतम ! उनके छह द्रव्येन्द्रियाँ कही गई है, वे इस प्रकार—दो नेत्र, दो घ्राण, जिह्वा और स्पर्शन ।

१०२९ सेसाणं जहा णेरइयाणं (सु १०२६ [१]) जाव वेमाणियाण ।

[१०२९] शेष सबके (तिर्यञ्चपचेन्द्रियो, मनुष्यो, वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्को) यावत् वमानिको के (सू १०२६-१ मे उल्लिखित) नेरयिको की तरह (आठ द्रव्येन्द्रियाँ कहनी चाहिए।)

विवेचन—ग्यारहवाँ द्रव्येन्द्रियद्वार—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू १०२४ से १०२९ तक) मे द्रव्येन्द्रियो के आठ प्रकार और चौवीस दण्डको मे उनकी प्ररूपणा की गई है ।

चौवीस दण्डकों की अतीत-बद्ध-पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की प्ररूपणा

१०३०. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स केवतिया दव्विदिया अतीया ?

गोयमा ! अणंता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! अट्ठ ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! अट्ठ वा सोलस वा सत्तरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा ।

[१०३० प्र] भगवन् ! एक-एक नैरयिक की अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?
[१०३० उ] गौतम ! अनन्त है ।
[प्र] (भगवन् ! एक-एक नैरयिक की) कितनी (द्रव्येन्द्रियाँ) बद्ध हैं ?
[उ] गौतम ! आठ हैं ।
[प्र] भगवन् ! एक-एक नैरयिक की पुरस्कृत (आगे होने वाली) द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?
[उ] गौतम ! (आगामी द्रव्येन्द्रियाँ) आठ हैं, सोलह हैं, सख्यात हैं, असख्यात है अथवा अनन्त है ।

१०३१. [१] एगमेगस्स ण भंते ! असुरकुमारस्स केवतिया दव्विदिया अतीता ?

गोयमा ! अणता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! अट्ठ ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! अट्ठ वा णव वा सखेज्जा वा असखेज्जा वा अणंता वा ।

[१०३१-१ प्र] भगवन् ! एक-एक असुरकुमार के अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?
[१०३१-१ उ] गौतम ! अनन्त है ।
[प्र] (भगवन् ! एक-एक असुरकुमार के) कितनी (द्रव्येन्द्रियाँ) बद्ध हैं ?
[उ] गौतम ! आठ हैं ।
[प्र] (भगवन् ! एक-एक असुरकुमार के) पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?
[उ] गौतम ! आठ हैं, नौ हैं, सख्यात है, असख्यात हैं, या अनन्त है ।

[२] एवं जाव थणियकुमाराणं ताव भाणियव्वं ।

[१०३१-२] नागकुमार से ले कर स्तनितकुमार तक (की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो के विषय मे भी) इसी प्रकार कहना चाहिए ।

१०३२. [१] एवं पुढविक्काइय-आउक्काइय-वणप्फइकाइयस्स वि । णवरं केवतिया बद्धेल्लगा ? त्ति पुच्छाए उत्तरं एक्के फासिंदिए पण्णत्ते ।

[१०३२-१] पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक (की अतीत और पुरस्कृत इन्द्रियों के विषय में) भी इसी प्रकार (कहना चाहिए।)

[प्र उ.] विशेषत. इनकी (प्रत्येक की) बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ऐसी पृच्छा का उत्तर है—(इनकी बद्ध द्रव्येन्द्रिय) एक (मात्र) स्पर्शनेन्द्रिय कही गई है।

[२] एवं तेउक्काइय-वाउक्काइयस्स वि। णवर पुरेक्खडा णव वा दस वा।

[१०३२-२] तेजस्कायिक और वायुकायिक की अतीत और बद्ध द्रव्येन्द्रियो के विषय मे भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) कहना चाहिए। विशेष यह है कि इनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ नौ या दस होती हैं।

१०३३ [१] एवं बेइंदियाण वि। णवरं बद्धेल्लगपुच्छाए दोण्णि।

[१०३३-१] द्वीन्द्रियो की (प्रत्येक की अतीत और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो के विषय मे) भी इसी प्रकार पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेष यह कि (इनकी प्रत्येक की) बद्ध (द्रव्येन्द्रियो) की पृच्छा होने पर दो द्रव्येन्द्रियाँ (कहनी चाहिए।)

[२] एवं तेइंदियस्स वि। णवरं बद्धेल्लगा चत्तारि।

[१०३३-२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय की (अतीत और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो के विषय मे समझना चाहिए।) विशेष यह कि (इसकी) बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ चार होती हैं।

[३] एव चउरिंदियस्स वि। नवरं बद्धेल्लगा छ।

[१०३३-३] इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय की (अतीत और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो के विषय मे) भी (जानना चाहिए।) विशेष यह कि (इसकी) बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ छह होती है।

१०३४ पचेंदियतिरिक्खजोणिय-मणूस-वाणमतर- जोइसिय-सोहम्मीसाणगदेवस्स जहा असुरकुमारस्स (सु. १०३१)। णवरं मणूसस्स पुरेक्खडा कस्सइ णत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा नव वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा।

[१०३४] पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म, ईशान देव की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो के विषय मे (सू १०३१ मे) जिस प्रकार असुरकुमार के विषय मे (कहा है, उसी प्रकार समझना चाहिए।) विशेष यह है कि पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी मनुष्य के होती है, किसी के नही होती। जिसके (पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ) होती हैं, उसके आठ, नौ सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होती हैं।

[१०३५. सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-सुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुय-गेवेज्जगदेवस्स य जहा नेरइयस्स (सु. १०३०)।

[१०३५] सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत और ग्रैवेयक देव की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो के विषय मे (सू १०३० मे उक्त) नैरयिक के (अतीतादि के) समान जानना चाहिए।

१०३६. एगमेगस्स णं भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवस्स केवतिया दव्विंदिया अतीया ?

गोयमा ! अणंता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! अट्ठ ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखेज्जा वा ।

[१०३६ प्र.] भगवन् ! एक-एक विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव की अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[१०३६ उ.] गौतम ! अनन्त है।

[प्र.] भगवन् ! विजयादि चारों में से प्रत्येक की बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ.] गौतम ! आठ है।

[प्र.] भगवन् ! (इनकी प्रत्येक की) पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ.] गौतम ! (वे) आठ, सोलह, चौवीस या सख्यात होती है।

१०३७. सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स अतीता अणंता, बद्धेल्लगा अट्ठ, पुरेक्खडा अट्ठ ।

[१०३७] सर्वार्थसिद्ध देव की (प्रत्येक की) अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त, बद्ध आठ और पुरस्कृत भी आठ होती हैं।

१०३८. [१] णेरइयाणं भंते ! केवतिया दव्विंदिया अतीया ?

गोयमा ! अणंता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! असंखेज्जा ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! अणंता ।

[१०३८-१ प्र.] भगवन् ! (बहुत-से) नारकों की अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[१०३८-१ उ.] गौतम ! अनन्त हैं।

[प्र.] (उनकी) बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ.] गौतम ! असख्यात हैं।

[प्र.] (उनकी) पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ.] गौतम ! अनन्त हैं।

[२] एवं जाव गेवेज्जगदेवाणं । णवरं मणूसाणं बद्धेल्लगा सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा ।

[१०३८-२] इसी प्रकार (असुरकुमारों से लेकर) यावत् (बहुत-से) ग्रैवेयक देवों (की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों) के विषय में (समझ लेना चाहिए।) विशेष यह कि मनुष्यों की बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कदाचित् सख्यात और कदाचित् असख्यात होती है।

१०३९. विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवाणं पुच्छा ?

गोयमा ! अतीता अणता, बद्धेल्लगा असखेज्जा, पुरेक्खडा असखेज्जा ।

[१०३९ प्र] भगवन् ! पृच्छा है कि (बहुत-से) विजय, वेजयन्त, जयन्त और अपराजित देवो की (अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी-कितनी है ?

[१०३९ उ] गौतम ! (इनकी) अतीत (द्रव्येन्द्रियाँ) अनन्त हैं, बद्ध असख्यात हैं (और) पुरस्कृत असख्यात है।

१०४०. सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं पुच्छा। गोयमा ! अईया अणंता, बद्धेल्लगा सखेज्जा, पुरेक्खडा संखेज्जा।

[१०४० प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध देवो की (अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी-कितनी हैं ?

[१०४० उ] गौतम ! (इनकी) अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हैं, बद्ध सख्यात है (और) पुरस्कृत सख्यात हैं।

१०४१ [१] एगमेगस्स ण भते ! णेरइयस्स णेरइअत्ते केवतिया दव्विदिया अतीया ?

गोयमा ! अणंता।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! अट्ठ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा सखेज्जा वा असखेज्जा वा अणता वा।

[१०४१-१ प्र] भगवन् ! एक-एक नैरयिक की नैरयिकपन (नारक अवस्था) मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[१०४१-१ उ] गौतम ! अनन्त हैं।

[प्र] बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ] गौतम ! (वे) आठ है।

[प्र] पुरस्कृत (आगामी काल मे होने वाली) द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ] गौतम ! (पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ) किसी (नारक) की होती हैं, किसी की नहीं होती। जिसकी होती है, उसकी आठ, सोलह, चौबीस, सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होती है।

[२] एगमेगस्स णं भते ! णेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवतिया दव्विदिया अतीता ?

गोयमा ! अणता।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा । एवं जाव थणियकुमारत्ते ।

[१०४१-२ प्र.] भगवन् ! एक-एक नैरयिक की असुरकुमार पर्याय मे अतीत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी हैं ?

[१०४१-२ उ.] गौतम ! अनन्त है।

[प्र.] बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी हैं ?

[उ] (वे) नही हैं।

[प्र] पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ] गौतम ! (वे) किसी को होती है, किसी की नही होती, जिसकी होती है, उसकी आठ, सोलह, चौवीस, सख्यात, असख्यात या अनन्त होती हैं।

इसी प्रकार एक-एक नैरयिक की (नागकुमारपर्याय से लेकर) यावत् स्तनितकुमारपर्याय मे (अतीत, बद्ध एव पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो के विषय मे कहना चाहिए।)

[३] एगमेगस्स ण भंते ! णेरइयस्स पुढविकाइयत्ते केवतिया दव्विदिया अतीया ?

गोयमा ! अणता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एक्को वा दो वा तिण्णि वा सखेज्जा वा असखेज्जा वा अणता वा । एव जाव वणप्फइकाइयत्ते ।

[१०४१-३ प्र] भगवन् ! एक-एक नैरयिक की पृथ्वीकायपन मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[१०४१-३ उ] गौतम ! (वे) अनन्त है।

[प्र] बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ] गौतम ! (वे) नही हैं।

[प्र.] (भगवन् ! इनकी) पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ] गौतम ! किसी की होती हैं, किसी को नही होती। जिसकी होती हैं, उसकी एक, दो, तीन या सख्यात, असख्यात या अनन्त होती है।

इसी प्रकार एक-एक नारक की अप्कायपर्याय से लेकर यावत् वनस्पतिकायपन मे (अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो के विषय मे कहना चाहिए।)

[४] एगमेगस्स ण भंते ! णेरइयस्स बेइंदियत्ते केवतिया दव्विदिया अतीया ?

गोयमा ! अणंता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया ! पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि दो वा चत्तारि वा छ वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा । एवं तेइंदियत्ते वि, णवरं पुरेक्खडा चत्तारि वा अट्ठ वा बारस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा । एवं चउरिंदियत्ते वि णवरं पुरेक्खडा छ वा बारस वा अट्ठारस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा ।

[१०४१-४ प्र] भगवन् ! एक-एक नैरयिक की द्वीन्द्रियपन मे कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ हैं ?

[१०४१-४ उ] गौतम ! अनन्त है ।

[प्र.] (भगवन् ! वैसी) बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ] गौतम ! (वे) नही है ।

[प्र] भगवन् ! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ.] गौतम ! किसी की होती है, किसी की नही होती । जिसकी होती हैं, उसकी दो, चार, छह, सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होती हैं ।

इसी प्रकार (एक-एक नैरयिक की) त्रीन्द्रियपन मे (अतीत और बद्ध द्रव्येन्द्रियो के विषय मे समझना चाहिए ।) विशेष यह है कि उसकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ चार, आठ या बारह, सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होती है ।

इसी प्रकार (एक-एक नैरयिक की) चतुरिन्द्रियपन मे (अतीत और बद्ध द्रव्येन्द्रियो) के विषय मे जानना चाहिए । विशेष यह है कि उसकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ छह, बारह, अठारह, सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त है ।

[५] पंचेंदियतिरिक्खजोणियत्ते जहा असुरकुमारत्ते ।

[१०४१-५] (एक-एक नैरयिक की) पचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याय मे (अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो के विषय मे असुरकुमारपर्याय मे जिस प्रकार कहा गया है, उसी प्रकार कहना चाहिए ।

[६] मणूसत्ते वि एव चेव । णवर केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा । सव्वेसिं मणूसवज्जाण पुरेक्खडा मणूसत्ते कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि त्ति एवं ण वुच्चति ।

[१०४१-६] मनुष्यपर्याय मे भी इसी प्रकार अतीतादि द्रव्येन्द्रियो के विषय मे कहना चाहिए ।

[प्र] विशेष यह है कि पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ] गौतम ! आठ, सोलह, चौवीस, सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होती है । मनुष्यो को छोड कर शेष सबकी (तेईस दण्डको के जीवो की) पुरस्कृत (भावी) द्रव्येन्द्रियाँ मनुष्यपन मे किसी की होती हैं, किसी की नही होती, ऐसा नही कहना चाहिए ।

[७] वाणमंतर-जोइसिय-सोहम्मग जाव गेवेज्जगदेवत्ते अतीया अणंता, बद्धेल्लगा णत्थि; पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि जस्सऽत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा ।

[१०४१-७] (एक-एक नैरयिक की) वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म से लेकर ग्रैवेयक देव तक के रूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हैं, बद्ध नही हैं और पुरस्कृत इन्द्रियाँ किसी की हैं, किसी की नही हैं। जिसकी है, उसकी आठ, सोलह, चौवीस, सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त हैं।

[८] एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीया ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा सोलस वा ।

[१०४१-८ प्र] भगवन् ! एक नैरयिक की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित-देवत्व के रूप मे कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ हैं ?

[१०४१-८ उ.] गौतम ! (वे) नही हैं।

[प्र] भगवन् ! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ] गौतम ! (वे) नही हैं।

[प्र] भगवन् ! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ] गौतम ! किसी की होती हैं, किसी की नही होती, जिसकी होती है, उसकी आठ या सोलह होती है।

[९] सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते अतीया णत्थि, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ ।

[१०४१-९] सर्वार्थसिद्ध-देवपन मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ नही है, बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ भी नही है, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होती है, किसी की नही होती है। जिसकी होती है, उसकी आठ होती है।

१०४२. एव जहा णेरइयदंडओ णीओ तहा असुरकुमारेण वि णेयव्वो जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएणं। णवर जस्स सट्ठाणे जति बद्धेल्लगा तस्स तइ भाणियव्वा ।

[१०४२] जैसे (सू. १०४१-१ से ९ मे) नैरयिक (की नैरयिकादि त्रिविधरूप मे पाई जाने वाली अतीत, बद्ध एव पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो) के विषय मे दण्डक कहा, उसी प्रकार असुरकुमार के विषय मे भी पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक तक के दण्डक कहने चाहिए। विशेष यह है कि जिसकी स्वस्थान मे जितनी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कही है, उसकी उतनी कहनी चाहिए।

१०४३. [१] एगमेगस्स णं भंते ! मणूसस्स णेरइयत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीया ?

गोयमा ! अणंता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा ।

[१०४३-१ प्र.] भगवन् ! एक-एक मनुष्य की नैरयिकपन मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[१०४३-१ उ] गौतम ! (वे) अनन्त है।

[प्र.] (भगवन् ! उसकी) बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ.] गौतम ! नही है।

[प्र.] (भगवन् ! उसकी) पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है।

[उ.] गौतम ! किसी की होती है, किसी की नही होती, जिसकी होती है, उसकी आठ, सोलह, चौवीस, सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होती है।

[२] एव जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणियत्ते । णवरं एगिंदिय-विगलिंदिएसु जस्स जत्तिया पुरेक्खडा तस्स तत्तिया भाणियव्वा ।

[१०४३-२] इसी प्रकार यावत् पचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याय मे (अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो के विषय मे) कहना चाहिए । विशेष यह है कि एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियो मे से जिसकी जितनी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कही है, उसकी उतनी कहनी चाहिए।

[३] एगमेगस्स ण भते ! मणूसस्स मणूसत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीया ?

गोयमा ! अणता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! अट्ठ ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा सखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणता वा ।

[१०४३-३ प्र.] भगवन् ! मनुष्य की मनुष्यपर्याय मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[१०४३-३ उ] गौतम ! अनन्त है।

[प्र.] बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ.] गौतम ! (वे) आठ है।

[प्र.] पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होती है ?

[उ.] गौतम (वे) किसी की होती है, किसी की नही होती, जिसकी होती है, उसकी आठ, सोलह, चौवीस, सख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होती है ?

[४] वाणमतर-जोतिसिय जाव गेवेज्जगदेवत्ते जहा णेरइयत्ते ।

[१०४३-४] (एक-एक मनुष्य की) वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और (सौधर्म से लेकर) यावत् ग्रैवेयक देवत्व के रूप मे (अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो के विषय मे) नैरयिकत्व रूप मे उक्त (सू १०४३-१ मे उल्लिखित) अतीतादि द्रव्येन्द्रियो के समान समझना चाहिए।

[५] एगमेगस्स णं भते ! मणूसस्स विजय-वेजयत-जयताऽपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीया ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा सोलस वा ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा सोलस वा ।

[१०४३-५ प्र.] भगवन् ! एक-एक मनुष्य की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित-देवत्व के रूप में कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ है ?

[१०४३-५ उ] गौतम ! किसी की होती हैं, किसी की नही होती है। जिसकी होती हैं, उसकी आठ या सोलह होती हैं।

[प्र] बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ] गौतम ! नही है।

[प्र] पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ] गौतम ! किसी की होती है और किसी की नही होती। जिसकी होती हैं, उसकी आठ या सोलह होती है।

[६] एगमेगस्स णं भंते ! मणूसस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीता ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ।

[१०४३-६ प्र] भगवन् ! एक-एक मनुष्य की सर्वार्थसिद्धदेवत्वरूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[१०४३-६ उ] गौतम ! (वे) किसी की होती है, किसी की नही होती हैं। जिसकी होती है, उसकी आठ होती है ?

[प्र] (उसकी) बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होती है ?

[उ] गौतम ! नही होती है।

[प्र] (भगवन् ! उसकी) पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होती है ?

[उ] गौतम ! किसी की होती है, किसी की नही होती है। जिसकी होती हैं, उसकी आठ होती है।

१०४४. वाणमंतर-जोतिसिए जहा णेरइए (सु १०४१)।

[१०४४] वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देव की तथारूप मे अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की वक्तव्यता (सू १०४१ मे उल्लिखित) नैरयिक की वक्तव्यता के समान कहना चाहिए।

१०४५. [१] सोहम्मगदेवे वि जहा णेरइए (सु. १०४१)।

णवर सोहम्मगदेवस्स विजय-वेजयंत-जयत-अपराजियत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीता ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा सोलस वा। सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते जहा णेरइयस्स।

[१०४५-१] सौधर्मकल्प देव की (तथारूप मे अतीतादि द्रव्येन्द्रियो की वक्तव्यता) भी (सू. १०४१ मे अकित) नैरयिक की (वक्तव्यता के समान कहना चाहिए।)

[प्र] विशेष यह है कि सौधर्मदेव की विजय, वैजयन्त जयन्त और अपराजितदेवत्व के रूप में कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ है ?

[उ] गौतम ! किसी की होती है, किसी की नही होती है। जिसकी होती है, उसकी आठ होती हैं।

[प्र] (उसकी) बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ] गौतम ! नही है।

[प्र] (उसकी) पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ] गौतम ! किसी की होती है, किसी की नही होती हैं। जिसकी होती है, आठ या सोलह होती हैं। (सौधर्मदेव की) सर्वार्थसिद्धदेवत्वरूप मे (अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की वक्तव्यता (सू १०४१ के अनुसार) नैरयिक (की वक्तव्यता) के समान (समझनी चाहिए।)

[२] एवं जाव गेवेज्जगदेवस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते ताव णेयव्वं।

[१०४५-२] (ईशानदेव से लेकर) ग्रैवेयकदेव तक की यावत् सर्वार्थसिद्धदेवत्वरूप मे अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की वक्तव्यता भी इसी प्रकार कहनी चाहिए।

१०४६. [१] एगमेगस्स णं भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवस्स णेरइयत्ते केवतिया दव्विदिया अतीता ?

गोयमा ! अणंता।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! णत्थि।

[१०४६-१ प्र] भगवन् ! एक-एक विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव की नैरयिक के रूप मे कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ है ?

[१०४६-१ उ] गौतम ! अनन्त हैं।

[प्र] (उसकी) बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ] गौतम ! नही है।

[प्र] (उसकी) पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ] गौतम ! नही हैं।

[२] एवं जाव पचेंदियतिरिक्खजोणियत्ते।

[१०४६-२] इन चारो की प्रत्येक की, असुरकुमारत्व से लेकर यावत् पचेन्द्रियतिर्यञ्च-योनिकत्वरूप मे (अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की वक्तव्यता भी) इसी प्रकार (समझनी चाहिए।)

[३] मणूसत्ते अतीया अणंता, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखेज्जा वा ।

[१०४६-३] (इन्ही की प्रत्येक की) मनुष्यत्व के रूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हैं, बद्ध नही हैं, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ आठ, सोलह या चौवीस होती है, अथवा सख्यात होती है ।

[४] वाणमंतर-जोतिसियत्ते जहा णेरइयत्ते (सु. १०४१) ।

[१०४६-४] (इन्ही की प्रत्येक की) वाणव्यन्तर एव ज्योतिष्क देवत्व के रूप मे (अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की वक्तव्यता सू १०४१ मे उल्लिखित) नैरयिकत्वरूप की अतीतादि की वक्तव्यता के अनुसार (कहना चाहिए ।)

[५] सोहम्मगदेवत्ते अतीया अणंता । बद्धेल्लगा णत्थि । पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सई णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखेज्जा वा ।

[१०४६-५] (इन चारो की प्रत्येक की) सौधर्मदेवत्वरूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त है, बद्ध नही है और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होती है, किसी की नही होती है । जिसकी होती हैं, उसकी आठ, सोलह, चौवीस अथवा सख्यात होती है ।

[६] एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते ।

[१०४६-६] (इन्ही चारो की प्रत्येक की) (ईशानदेवत्व से लेकर) यावत् ग्रैवेयकदेवत्व के रूप मे (अतीतादि द्रव्येन्द्रियो की वक्तव्यता) इसी प्रकार (समझनी चाहिए ।)

[७] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियत्ते अतीया कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ ।
केवतिया बद्धेल्लगा ?
गोयमा ! अट्ठ ।
केवतिया पुरेक्खडा ?
गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ ।

[१०४६-७] (इन चारो की प्रत्येक की) विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होती है और किसी की नही होती हैं । जिसकी होती है उसकी आठ होती हैं ।

[प्र] बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ] गौतम ! (वे) आठ है ।

[प्र] कितनी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ हैं ?

[उ] गौतम ! किसी की होती हैं और किसी की नही होती हैं, जिसकी होती हैं, उसके आठ होती हैं ।

[८] एगमेगस्स ण भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीया ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ ।

[१०४६-८ प्र] भगवन् ! एक-एक विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव की सर्वार्थसिद्धदेवत्व के रूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[१०४६-८ उ] गौतम ! (वे) नही हैं ।

[प्र.] बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ.] गौतम ! (वे) नही हैं ।

[प्र] पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ] गौतम ! किसी की होती है, किसी की नही होती हैं । जिसकी होती है, वे आठ होती है ।

१०४७. [१] एगमेगस्स णं भंते ! सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स णेरइयत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीया ?

गोयमा ! अणंता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! णत्थि ।

[१०४७-१ प्र] भगवन् ! एक-एक सर्वार्थसिद्धदेव की नारकपन मे कितनी द्रव्येन्द्रियाँ अतीत है ?

[१०४७-१ उ.] गौतम ! अनन्त है ।

[प्र.] (उसकी) बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ] गौतम ! नही है ।

[प्र] कितनी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ है ?

[उ] गौतम ! नही हैं ।

[२] एवं मणूसवज्जं जाव गेवेज्जगदेवत्ते । णवर मणूसत्ते अतीया अणंता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! अट्ठ ।

[१०४७-२] इसी प्रकार (असुरकुमारत्व से लेकर) मनुष्यत्व को छोडकर यावत् ग्रैवेयकदेवत्वरूप में (एक-एक सर्वार्थसिद्धदेव की) (अतीतादि द्रव्येन्द्रियो की वक्तव्यता समझनी चाहिए ।)

विशेष यह है कि (एक-एक सर्वार्थसिद्धदेव की) मनुष्यत्वरूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त है।

[प्र.] बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी हैं ?

[उ.] गौतम ! (वे) नहीं हैं।

[प्र.] पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी हैं ?

[उ] गौतम ! (वे) आठ हैं।

[३] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते अतीया कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! णत्थि।

[१०४७-३] (एक-एक सर्वार्थसिद्धदेव की) विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजितदेवत्व-रूप मे अतीत (द्रव्येन्द्रियाँ) किसी को हैं और किसी की नही है। जिसकी होती है, वे आठ होती है।

[प्र] (उसकी) बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ] गौतम ! नही है।

[प्र] कितनी पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) है ?

[उ.] गौतम नही है।

[४] एगमेगस्स ण भंते ! सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीया ?

गोयमा ! णत्थि।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! अट्ठ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! णत्थि।

[१०४७-४ प्र] भगवन् ! एक-एक सर्वार्थसिद्धदेव की सर्वार्थसिद्धदेवत्वरूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[१०४७-४] गौतम ! नही है।

[प्र] (उसकी) बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ] गौतम ! (वे) आठ है।

[प्र] उसकी पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ.] गौतम ! (वे) नही हैं।

१०४८ [१] णेरइयाण भंते ! णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीया ?

गोयमा ! अणंता।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! असंखेज्जा ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! अणंता ।

[१०४८-१ प्र] भगवन् ! (बहुत-से) नैरयिको की नारकत्वरूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[१०४८-१ उ] गौतम ! (वे) अनन्त है ।

[प्र] (उनकी) बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ] गौतम ! (वे) असख्यात है ।

[प्र] (उनकी) पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ] गौतम ! (वे) अनन्त है ।

[२] णेरइयाण भंते ! असुरकुमारत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीता ?

गोयमा ! अणंता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! अणंता ।

[१०४८-२ प्र] भगवन् ! (बहुत-से) नैरयिको की असुरकुमारत्वरूप मे (अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[१०४८-२ उ] गौतम ! (वे) अनन्त है ।

[प्र] (उनकी) बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ] गौतम ! नही है ।

[प्र] (उनकी) पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ] गौतम ! अनन्त है ।

[३] एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते ।

[१०४८-३] (बहुत-से नारको की) नागकुमारत्व से लेकर यावत् ग्रैवेयकदेवत्वरूप मे (अतीत बद्ध पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की वक्तव्यता भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) जाननी चाहिए ।

[४] णेरइयाण भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीता ?

णत्थि ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

असंखेज्जा ।

[१०४८-४ प्र.] भगवन् ! (बहुत-से) नैरयिकों की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित-देवत्व के रूप के अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[१०४८-४ उ.] गौतम ! नही है ।

[प्र.] (उनकी) बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ.] (गौतम !) नही है ।

[प्र] (उनकी) पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ.] (गौतम !) असख्यात है ।

[५] एवं सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते वि ।

[१०४८-५] (नैरयिको की) सर्वार्थसिद्धदेवत्व रूप मे (अतीत बद्ध पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की वक्तव्यता) भी इसी प्रकार (जाननी चाहिए) ।

१०४९. एव जाव पचेंदियतिरिक्खजोणियाण सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते भाणियव्व ।

णवरं वणस्सइकाइयाण विजय-वेजयंत-जयत-अपराजियदेवत्ते सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते य पुरेक्खडा अणंता, सव्वेसिं मणूस-सव्वट्ठसिद्धगवज्जाणं सट्ठाणे बद्धेल्लगा असंखेज्जा, परट्ठाणे बद्धेल्लगा णत्थि, वणस्सइकाइयाणं सट्ठाणे बद्धेल्लगा अणंता ।

[१०४९] (असुरकुमारो स लेकर) यावत् (बहुत-से) पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको की (नैरयिकत्व से लेकर) सर्वार्थसिद्ध देवत्वरूप (तक) मे (अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की) प्ररूपणा इसी प्रकार (पूर्ववत्) करनी चाहिए ।

विशेष यह है कि वनस्पतिकायिको की, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व तथा सर्वार्थसिद्धदेवत्व के रूप मे पुरस्कृत द्रव्येन्द्रिया अनन्त है । मनुष्यो और सर्वार्थसिद्धदेवो को छोडकर सबकी स्वस्थान मे बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) असख्यात है, परस्थान मे बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) नही है । वनस्पति-कायिको को स्वस्थान मे बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त है ।

१०५० [१] मणुस्साण णेरइयत्ते अतीता अणता, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा अणता ।

[१०५०-१] मनुष्यो की नैरयिकत्व के रूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त है, बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नही है और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त है ।

[२] एव जाव गेवेज्जगदेवत्ते । णवर सट्ठाणे अतीता अणंता, बद्धेल्लगा सिय सखेज्जा सिय असंखेज्जा, पुरेक्खडा अणता ।

[१०५०-२] मनुष्यो की (असुरकुमारत्व से लेकर) यावत् ग्रैवेयकदेवत्वरूप मे (अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की प्ररूपणा) इसी प्रकार (पूर्ववत्) (समझनी चाहिए ।) विशेष यह है कि (मनुष्यो की) स्वस्थान मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त है, बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कदाचित् सख्यात और कदाचित् असख्यात है और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त है ।

[३] मणूसाणं भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीता ? संखेज्जा ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा । एवं सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते वि ।

[१०५०-३ प्र] भगवन् ! मनुष्यों की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित-देवत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[१०५०-३ उ] (गौतम ! वे) संख्यात हैं।

[प्र] (उनकी) बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी हैं ?

[उ] (गौतम !) नहीं हैं।

[प्र.] (उनकी) पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ] (गौतम ! वे) कदाचित् संख्यात हैं, कदाचित् असंख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्ध-देवत्वरूप में भी (अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए)।

१०५१. वाणमंतर-जोइसियाणं जहा णेरइयाणं (सु १०४८) ।

[१०५१] (बहुत-से) वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों की अतीत, बद्ध, पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियों) की वक्तव्यता (नैरयिकत्व से लेकर सर्वार्थसिद्धदेवत्व रूप तक में सू १०४८ में उक्त) नैरयिकों की (वक्तव्यता के समान जानना चाहिए)।

१०५२. सोहम्मगदेवाणं एवं चेव । णवरं विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते अतीता असंखेज्जा, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा असंखेज्जा । सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते अतीता णत्थि, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा असंखेज्जा ।

[१०५२] सौधर्म देवों को अतीतादि की वक्तव्यता इसी प्रकार है। विशेष यह है कि विजय, वैजयन्त, जयन्त तथा अपराजितदेवत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात हैं, बद्ध नहीं हैं तथा पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात हैं। सर्वार्थसिद्धदेवत्व रूप में अतीत नहीं हैं, बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ भी नहीं हैं, किन्तु पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात हैं।

१०५३. एवं जाव गेवेज्जगदेवाणं ।

[१०५३] (बहुत-से) (ईशानदेवों से लेकर) यावत् ग्रैवेयकदेवों की (अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता भी) इसी प्रकार (समझनी चाहिए)।

१०५४. [१] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवाणं भंते ! णेरइयत्ते केवतिया दव्वेंदिया अतीता ?

गोयमा ! अणंता ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

णत्थि ।

[१०५४-१ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों की नैरयिकत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[१०५४-१ उ.] गौतम ! (वे) अनन्त हैं ?

[प्र.] (उनकी) बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी हैं ?

[उ.] (गौतम !) नहीं है।

[प्र.] (उनकी) पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ.] (गौतम !) नहीं है।

[२] एवं जाव जोइसियत्ते। णवरमेसिं मणूसत्ते अतीया अणंता; केवतिया बद्धेल्लगा ? णत्थि, पुरेक्खडा असंखेज्जा।

[१०५४-२] इसी प्रकार यावत् ज्योतिष्कदेवत्वरूप में भी (अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में कहना चाहिए।) के विशेष यह है कि इनकी मनुष्यत्वरूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त है।

[प्र.] (इनकी) बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है।

[उ.] (गौतम !) नहीं है।

[प्र.] (इनकी) पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?

[उ.] (गौतम ! वे) असंख्यात है ?

[३] एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते। सट्ठाणे अतीता असंखेज्जा।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

असंखेज्जा।

केवतिया पुरेक्खडा ?

असंखेज्जा।

[१०५४-३] (विजयादि चारों की) सौधर्मादि देवत्व से लेकर यावत् ग्रैवेयकदेवत्व के रूप में अतीतादि द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता इसी प्रकार है। इनकी स्वस्थान में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात है।

[प्र.] बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ.] असंख्यात है।

[प्र.] (उनकी) पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ.] (गौतम ! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ) असंख्यात हैं।

[४] सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते अतीता णत्थि, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा असंखेज्जा।

[१०५४-४] (इन चारों देवों) की सर्वार्थसिद्धदेवत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं है, बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ भी नहीं है, किन्तु पुरस्कृत असंख्यात हैं।

१०५५. [१] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते ! णेरइयत्ते केवतिया दव्वेंदिया अतीता ?

गोयमा ! अणंता।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

णत्थि।

केवतिया पुरेक्खडा ?

णत्थि ।

[१०५५-१ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध देवो की नैरयिकत्व के रूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[१०५५-१ उ] गौतम ! (वे) अनन्त हैं।
[प्र] (उनकी) बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?
[उ] (गौतम !) नही है।
[प्र] (उनकी) पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?
[उ] (गौतम !) नही हैं।

[२] एवं मणूसवज्जं जाव गेवेज्जगदेवत्ते ।

[१०५५-२] मनुष्य को छोड कर यावत् ग्रैवेयकदेवत्व तक के रूप मे भी इसी प्रकार (इनकी अतीतादि द्रव्येन्द्रियो की वक्तव्यता कहनी चाहिए।)

[३] मणूसत्ते अतीता अणता, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा संखेज्जा ।

[१०५५-३] (इनकी) मनुष्यत्व के रूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त है, बद्ध नही है, पुरस्कृत सख्यात है।

[४] विजय-वेजयत-जयंतापराजियदेवत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीता ?

संखेज्जा ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

नत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

णत्थि ।

[१०५५-४ प्र] विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप मे इनकी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[१०५५-४ उ] (वे) सख्यात है।
[प्र] (इनकी) बद्ध (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी है ?
[उ] (गौतम !) नही है।
[प्र] उनकी पुरस्कृत (द्रव्येन्द्रियाँ) कितनी हैं ?
[उ] (गौतम !) नही है।

[५] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते ! सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवतिया दव्विंदिया अतीता ?

णत्थि ।

केवतिया बद्धेल्लगा ?

संखेज्जा ।

केवइया पुरेक्खडा ?

णत्थि । ११ दारं ।।

[१०५५-५ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध देवो की सर्वार्थसिद्धदेवत्व रूप मे अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[१०५५-५ उ] गौतम ! (वे) नही है ।

[प्र] बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ] (गौतम ! वे) सख्यात हैं ।

[प्र] (उनकी) पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ] (गौतम ! वे) नही है । ।। ११ द्वार ।।

विवेचन—चौवीस दण्डको की अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारहवे द्वार के अन्तर्गत नैरयिको से लेकर वैमानिको तक समस्त जीवो की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की एकत्व, बहुत्व आदि विभिन्न पहलुओ से प्ररूपणा की गई है ।

अतीतादि का स्वरूप—अतीत का अर्थ है भूतकालीन द्रव्येन्द्रियाँ, बद्ध का अर्थ है—वर्तमान मे प्राप्त द्रव्येन्द्रियाँ एव पुरस्कृत यानी आगामीकाल मे प्राप्त होने वाली द्रव्येन्द्रियाँ ।

चार पहलुओ से अतीतादि द्रव्येन्द्रियो की प्ररूपणा—(१) एक-एक नैरयिक से लेकर एक-एक सर्वार्थसिद्धदेव तक की अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियो की प्ररूपणा, (२) बहुत-से नैरयिको से लेकर बहुत-से सर्वार्थसिद्ध देवो तक की अतीतादि द्रव्येन्द्रियो की प्ररूपणा, (३) एक-एक नैरयिक से लेकर सर्वार्थसिद्ध देवो तक की नैरयिकत्व से लेकर सर्वार्थसिद्धत्व के रूप के अतीतादि द्रव्येन्द्रियो की प्ररूपणा और (४) बहुत-से नैरयिको से सर्वार्थसिद्ध देवो तक की नैरयिकत्व से सर्वार्थसिद्धदेवत्व के रूप मे अतीतादि द्रव्येन्द्रियो की प्ररूपणा ।

एक नैरयिक की पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ—एक-एक जीवविषयक पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ आठ, सोलह, सत्रह, सख्यात, असख्यात या अनन्त बताई गई है, वे इस प्रकार से है—जो नारक अगले ही भव मे मनुष्यपर्याय प्राप्त करके सिद्ध हो जाएगा, उसको मनुष्यभवसम्बन्धी आठ ही द्रव्येन्द्रियाँ होगी । जो नारक नरक से निकल पचेन्द्रियतिर्यंचयोनि मे उत्पन्न होगा और फिर मनुष्यगति प्राप्त करके सिद्धि प्राप्त करेगा, उसकी तिर्यंचभवसम्बन्धी आठ और मनुष्यभवसम्बन्धी आठ, यो कुल मिलकर सोलह होगी । जो नारक नरक से निकलकर पचेन्द्रियतिर्यंच होगा, तदनन्तर एकेन्द्रियकाय मे उत्पन्न होगा और फिर मनुष्यभव पाकर सिद्ध हो जाएगा, उसकी पचेन्द्रियतिर्यंचभव को आठ, एकेन्द्रियभव की एक और मनुष्यभव की आठ, यो सब मिलकर सत्तरह द्रव्येन्द्रियाँ होगी । जो नारक संख्यातकाल तक ससार के परिभ्रमण करेगा, उसकी सख्यात, जो असख्यात काल तक भवभ्रमण करेगा उसकी असख्यात और जो अनन्तकाल तक ससार मे परिभ्रमण करेगा, उसकी अनन्त पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ होगी ।

मनुष्य की आगामी (पुरस्कृत) द्रव्येन्द्रियाँ—किसी मनुष्य की होती हैं और किसी की नही भी होती है । जो मनुष्य उसी भव से सिद्ध हो जाते हैं, उनकी नही होती है, शेष मनुष्य की होती है तो वे आठ, नौ, सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होती है । वह यदि अनन्तरभव मे पुन मनुष्य होकर

सिद्ध हो जाता है तो उसकी आठ द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं। जो मनुष्य पृथ्वीकायादि मे एक भव के पश्चात् मनुष्य होकर सिद्धिगामी होता है, उसकी ९ इन्द्रियाँ होती है। शेष भावना पूर्ववत् समझनी चाहिए।

असुरकुमारों की पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ--असुरकुमार के भव से निकलने के पश्चात् मनुष्यत्व को प्राप्त कर जो सिद्ध होता है, उसकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ ८ होती हैं। ईशानपर्यन्त एक एक असुर-कुमारादि पृथ्वीकाय, अप्काय एव वनस्पतिकाय मे उत्पन्न होता है, वह अनन्तर भव मे पृथ्वीकायादि किसी एकेन्द्रिय मे जाकर तदनन्तर मनुष्यभव प्राप्त करके सिद्ध हो जाता है, उसके नौ पुरस्कृत इन्द्रियाँ होती हैं। सख्यातादि की भावना पूर्ववत् समझनी चाहिए।

पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय की पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ--पृथ्वीकायादि मर कर अनन्तर मनुष्यो मे उत्पन्न होकर सिद्ध होते हैं, उनमे जो अनन्तरभव मे मनुष्यत्व को प्राप्त करके सिद्ध हो जाता है, उसकी मनुष्यभव सम्बन्धी आठ इन्द्रियाँ होगी। जो पृथ्वीकायादि अनन्तर एक पृथ्वीकायादि भव पाकर तदनन्तर मनुष्य होकर सिद्ध हो जाते हैं, उनकी ९ इन्द्रियाँ होगी।

तेजस्कायिक-वायुकायिक एव विकलेन्द्रिय की पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ—तेजस्कायिक और वायुकायिक मरकर तदनन्तर मनुष्यभव नही प्राप्त करते। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव अनन्तर आगामी भव मे मनुष्यत्व तो प्राप्त कर सकते है, किन्तु सिद्धि प्राप्त नही कर सकते, अतएव उनकी जघन्य नौ-नौ इन्द्रियाँ कहनी चाहिए। शेष प्ररूपणा पूर्वोक्तानुसार समझनी चाहिए।

सनत्कुमारादि की पुरस्कृत इन्द्रियाँ- सनत्कुमारादि देव च्यव करके पृथ्वीकायादि मे उत्पन्न नही होते, किन्तु पचेन्द्रियो मे उत्पन्न होते हैं। अतएव उनका कथन नैरयिको की तरह समझना चाहिए।

विजयादि चार की पुरस्कृत इन्द्रियाँ- जो अनन्तरभव मे ही मनुष्यभव प्राप्त करके सिद्ध होगा, उसकी ८ इन्द्रियाँ होती हैं। जो एक वार मनुष्य होकर पुन. मनुष्यभव पाकर सिद्ध होगा, उसके १६ इन्द्रियाँ होती हैं। जो बीच मे एक देवत्व का अनुभव करके मनुष्य होकर सिद्धिगामी हो तो उसके २४ इन्द्रियाँ होती हैं। मनुष्यभव मे आठ, देवभव मे ८ और पुन मनुष्यभव मे आठ, यो कुल २४ इन्द्रियाँ होगी। विजयादि चार विमानगत देव प्रभूत असख्यातकाल या अनन्तकाल तक ससार मे नही रहते। इस कारण उनकी आगामी द्रव्येन्द्रियाँ सख्यात ही कही है, असख्यात या अनन्त नही।

सर्वार्थसिद्धदेव की पुरस्कृत इन्द्रियाँ -सर्वार्थसिद्धविमान के देव नियमत अगले भव मे सिद्ध होते है, इस कारण उनकी आगामी द्रव्येन्द्रियाँ ८ ही कही है।

अनेक मनुष्यों की बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ—कदाचित् सख्यात और कदाचित् असख्यात होती हैं। इसका कारण यह है कि किसी समय सम्मूर्च्छिम मनुष्यो का सर्वथा अभाव हो जाता है, उनका अन्तर चौवीस मुहूर्त का है। जब सम्मूर्च्छिम मनुष्य सर्वथा नही होते, तब मनुष्यो की बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ सख्यात होती है, क्योकि गर्भज मनुष्य सख्यात ही होते है, किन्तु जब सम्मूर्च्छिम मनुष्य भी होते है, तब बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ असख्यात होती हैं।

नारक की नारकभव अवस्था में भावी द्रव्येन्द्रियाँ—किसी नारक की भविष्यत्कालिक द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं किसी की नही होती है। जो नारक नरक से निकलकर फिर कभी नारक पर्याय मे उत्पन्न नही होगा, उसकी भावी द्रव्येन्द्रियाँ नही होती हैं। जो नारक कभी पुन नारक मे उत्पन्न होगा, उसकी

होती हैं। अगर वह एक ही वार उत्पन्न होने वाला हो तो उसकी आठ, दो वार नारको मे उत्पन्न होने वाला हो तो सोलह, तीन वार उत्पन्न होने वाला हो तो चौवीस, सख्यात वार उत्पन्न होने वाला हो तो सख्यात और असख्यात या अनन्त वार उत्पन्न होने वाला हो तो भावी द्रव्येन्द्रियाँ भी क्रमश. असंख्यात या अनन्त होती हैं।

एक नारक की पृथ्वीकायपने मे अतीत बद्ध इन्द्रियाँ—एक नारक की अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त होती हैं। बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ बिलकुल नही होती हैं, क्योकि नरकभव मे वर्तमान नारक का पृथ्वीकायिक के रूप मे वर्तमान होना सभव नही है, इस कारण बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नही होती है।

विजयादि पांच अनुत्तरौपपातिकदेवो की अतीतादि द्रव्येन्द्रियाँ—जो जीव एक वार विजयादि विमानो मे उत्पन्न हो जाता है, उसका फिर से नारको, तिर्यञ्चपचेन्द्रियो, वाणव्यन्तरो और ज्योतिष्को मे जन्म नही होता। अत उनमे नारकादि सबधी द्रव्येन्द्रियाँ सम्भव नही है। सर्वार्थसिद्ध देवो के रूप मे अतीत और बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नही होती है। नारकजीव अतीतकाल मे कभी सर्वार्थसिद्ध जीव हुआ नही है। अत. सर्वार्थसिद्धदेवत्व रूप मे उसकी द्रव्येन्द्रियाँ असम्भव है। सर्वार्थसिद्ध विमान मे एक वार उत्पन्न होने के पश्चात् मनुष्यभव पाकर जीव सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

वनस्पतिकायिको की विजयादि के रूप मे भावी द्रव्येन्द्रियाँ—अनन्त है, क्योकि वनस्पतिकायिक जीव अनन्त होते है।

बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ–मनुष्य और सर्वार्थसिद्ध देवो को छोडकर सभी की स्वस्थान मे बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ असख्यात जाननी चाहिए। परस्थान मे बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ होती नही है। क्योकि जो जीव जिस भव मे वर्तमान है, वह उसके अतिरिक्त परभव मे वर्तमान नही हो सकता। वनस्पतिकायिको की बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ असख्यात होती है, क्योकि वनस्पतिकायिको के औदारिकशरीर असख्यात ही होते है।[1]

बारहवाँ भावेन्द्रियद्वार

१०५६. कति ण भंते ! भाविंदिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! पच भाविंदिया पण्णत्ता। तं जहा--सोइंदिए जाव फासिंदिए।

[१०५६ प्र] भगवन् ! भावेन्द्रियाँ कितनी कही गई है ?

[१०५६ उ.] गौतम ! भावेन्द्रियाँ पाच कही है, वे इस प्रकार—श्रोत्रेन्द्रिय से (लेकर) स्पर्शेन्द्रिय तक।

१०५७ णेरइयाण भंते ! कति भाविंदिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! पच भाविंदिया पण्णत्ता। तं जहा—सोइंदिए जाव फासेंदिए। एवं जस्स जति इंदिया तस्स तत्तिया भाणियव्वा जाव वेमाणियाण।

[१०५७ प्र.] भगवन् ! नैरयिको की कितनी भावेन्द्रियाँ कही गई है ?

[१०५७ उ] गौतम ! भावेन्द्रियाँ पाच कही है, वे इस प्रकार--श्रोत्रेन्द्रिय से स्पर्शेन्द्रिय तक। इसी प्रकार जिसकी जितनी इन्द्रियाँ हो, उतनी वैमानिको तक भावेन्द्रियाँ कह लेनी चाहिए।

---

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्राक ३१५-३१६

१०५८. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स केवतिया भावेंदिया अतीता ?

गोयमा ! अणंता । केवतिया बद्धेल्लगा ? पंच । केवतिया पुरेक्खडा ? पंच वा दस वा एक्कारस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा ।

[१०५८ प्र.] भगवन् ! एक-एक नैरयिक के कितनी अतीत भावेन्द्रियाँ है ?
[१०५८ उ.] गौतम ! वे अनन्त है ।
[प्र] (उनकी) कितनी (भावेन्द्रियाँ) बद्ध है ?
[उ.] (गौतम !) (वे) पाच हैं ।
[प्र.] (उनकी) पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ कितनी कही है ?
[उ] (गौतम !) वे पाच है, दस है, ग्यारह है, सख्यात है या असख्यात है अथवा अनन्त हैं ।

१०५९. एव असुरकुमारस्स वि । णवरं पुरेक्खडा पंच वा छ वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणता वा । एवं जाव थणियकुमारस्स ।

[१०५९] इसी प्रकार असुरकुमारो की (भावेन्द्रियो के विषय मे कहना चाहिए ।) विशेष यह है कि पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ पाच, छह, सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त है ।

इसी प्रकार स्तनितकुमार तक की (भावेन्द्रियो के विषय मे समझ लेना चाहिए ।)

१०६०. एव पुढविकाइय-आउकाइय-वणस्सइकाइयस्स वि, बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियस्स वि । तेउक्काइय-वाउक्काइयस्स वि एव चेव, णवर पुरेक्खडा छ वा सत्त वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणता वा ।

[१०६०] इसी प्रकार (एक-एक) पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय की तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय की, तेजस्कायिक एव वायुकायिक की (अतीतादि भावेन्द्रियो के विषय मे कहना चाहिए ।) विशेष यह है कि (इनकी) पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ छह, सात, सख्यात, असख्यात या अनन्त होती है ।

१०६१. पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स जाव ईसाणस्स जहा असुरकुमारस्स (सु. १०५९) । णवरं मणूसस्स पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि त्ति भाणियव्व ।

[१०६१] पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक से लेकर यावत् ईशानदेव की अतीतादि भावेन्द्रियो के विषय मे (सू १०५९ मे उक्त) असुरकुमारो की भावेन्द्रियो की प्ररूपणा की तरह कहना चाहिए । विशेष यह कि मनुष्य की पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ किसी की होती हैं, किसी की नही होती हैं, इस प्रकार (सब पूर्ववत्) कहना चाहिए ।

१०६२ सणंकुमार जाव गेवेज्जगस्स जहा णेरइयस्स (सु. १०५७-५८) ।

[१०६२] सनत्कुमार से लेकर ग्रैवेयकदेव तक की (अतीतादि भावेन्द्रियो का कथन) (सू १०५७-१०५८ मे उक्त) नैरयिको की वक्तव्यता के समान करना चाहिए ।

१०६३. विजय- वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवस्स अतीता अणंता, बद्धेल्लगा पंच, पुरेक्खडा पंच वा दस वा पण्णरस वा संखेज्जा वा। सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स अतीता अणंता, बद्धेल्लगा पंच।

केवतिया पुरेक्खडा ?

पंच।

[१०६३] विजय, वैजयन्त, जयन्त एवं अपराजित देव की अतीत भावेन्द्रियाँ अनन्त हैं, बद्ध पाच हैं और पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ पाच, दस, पन्द्रह या सख्यात हैं।

सर्वार्थसिद्धदेव की अतीत भावेन्द्रियाँ अनन्त हैं, बद्ध पाच हैं।

[प्र.] पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ.] वे पाच है।

१०६४ णेरइयाणं भंते ! केवतिया भाविंदिया अतीया ?

गोयमा ! अणंता। केवतिया बद्धेल्लगा ? असंखेज्जा।

केवतिया पुरेक्खडा ? अणंता।

एवं जहा दव्विंदिएसु पोहत्तेणं दंडओ भणिओ तहा भाविंदिएसु वि पोहत्तेण दंडओ भाणियव्वो, णवरं वणस्सइकाइयाणं बद्धेल्लगा वि अणंता।

[१०६४ प्र] भगवन् ! (बहुत-से) नैरयिको की अतीत भावेन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[१०६४ उ] गौतम ! वे अनन्त है।

[प्र] (भगवन् ! उनकी) बद्ध भावेन्द्रियाँ कितनी है ?

[उ.] (वे) असख्यात है।

[प्र] भगवन् ! पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ कितनी हैं ?

[उ.] गौतम ! वे अनन्त है।

इसी प्रकार जैसे—द्रव्येन्द्रियो में पृथक्त्व (बहुवचन से) दण्डक कहा है, इसी प्रकार भावेन्द्रियो मे भी पृथक्त्व (बहुवचन से) दण्डक कहना चाहिए। विशेष यह है कि वनस्पतिकायिको की बद्ध भावेन्द्रियाँ अनन्त है।

१०६५. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया भाविंदिया अतीता ?

गोयमा ! अणंता, बद्धेल्लगा पंच, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि पंच वा दस वा पण्णरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा। एवं असुरकुमारत्ते जाव थणियकुमारत्ते, णवरं बद्धेल्लगा णत्थि।

[१०६५ प्र] भगवन् ! एक-एक नैरयिक की नैरयिकत्व के रूप मे कितनी अतीत भावेन्द्रियाँ है ?

[१०६५ उ] गौतम ! वे अनन्त हैं।

इसकी बद्ध भावेन्द्रियाँ पाँच है और पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ किसी की होती है, किसी की नही होती है। जिसको होती हैं, उसको पाच, दस, पन्द्रह, सख्यात, असख्यात या अनन्त होती है।

इसी प्रकार (एक-एक नैरयिक की) असुरकुमारत्व से लेकर यावत् स्तनितकुमारत्व के रूप मे (अतीतादि भावेन्द्रियो का कथन करना चाहिए।) विशेष यह है कि इसकी बद्ध भावेन्द्रियाँ नही हैं।

१०६६. [१] पुढविक्काइयत्ते जाव बेइंदियत्ते जहा दव्विंदिया।

[१०६६-१] (एक-एक नैरयिक की) पृथ्वीकायत्व से लेकर यावत् द्वीन्द्रियत्व के रूप मे (अतीतादि भावेन्द्रियो का कथन) द्रव्येन्द्रियो की तरह (करना चाहिए।)

[२] तेइंदियत्ते तहेव, णवर पुरेक्खडा तिण्णि वा छ वा णव वा संखेज्जा वा असखेज्जा वा अणंता वा।

[१०६६-२] त्रीन्द्रियत्व के रूप मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह कि (इसकी) पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ तीन, छह, नौ, सख्यात, असख्यात या अनन्त होती हैं।

[३] एवं चउरिंदियत्ते वि णवरं पुरेक्खडा चत्तारि वा अट्ठ वा बारस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणता वा।

[१०६६-३] इसी प्रकार चतुरिन्द्रियत्व रूप के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेष यह कि (इसकी) पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ चार, आठ, बारह, सख्यात, असख्यात या अनन्त है।

१०६७. एवं एते चेव गमा चत्तारि णेयव्वा जे चेव दव्विंदिएसु। नवर तइयगमे जाणियव्वा जस्स जइ इंदिया ते पुरेक्खडेसु मुणेयव्वा। चउत्थगमे जहेव दव्विंदिया जाव सव्वट्ठसिद्धगदेवाण सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवतिया भाविंदिया अतीता? णत्थि, बद्धेल्लगा संखेज्जा, पुरेक्खडा णत्थि ॥ १२ ॥

॥ बीओ उद्देसो समत्तो ॥

॥ पण्णवणाए भगवतीए पनरसम इंदियपय समत्तं ॥

[१०६७] इस प्रकार ये (द्रव्येन्द्रियो के विषय मे कथित) हो चार गम यहाँ समझने चाहिए। विशेष—तृतीय गम (मनुष्य सम्बन्धी अभिलाप) मे जिसकी जितनी भावेन्द्रियाँ हो, (वे) उतनी पुरस्कृत भावेन्द्रियो मे समझनी चाहिए। चतुर्थ गम (देवसम्बन्धी अभिलाप) मे जिस प्रकार सर्वार्थसिद्ध की सर्वार्थसिद्धत्व के रूप मे कितनी भावेन्द्रियाँ अतीत हैं? 'नही है।'

बद्ध भावेन्द्रियाँ सख्यात है, पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ नही हैं, यहाँ तक कहना चाहिए। ॥१२॥

विवेचन—बारहवां भावेन्द्रियद्वार—प्रस्तुत बारह सूत्रो (सू १०५६ से १०६७ तक) में नैरयिक से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक की एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा से तथा नैरयिकत्व से सर्वार्थसिद्धत्व तक के रूप मे अतीत, बद्ध एव पुरस्कृत इन्द्रियो का प्ररूपण किया है।

नारक की नारकत्वरूप में पुरस्कृत (भावी) भावेन्द्रियाँ—किसी की होती है, किसी की नही। जो नारक नरक से निकलकर अन्य गति मे उत्पन्न होकर पुन: नरक मे उत्पन्न होने वाला है, उसकी नरकपन मे भावी भावेन्द्रियाँ होती है, किन्तु जिस जीव का वर्तमान नारकभव अन्तिम है अर्थात्—जो नरक से निकल कर फिर कभी नरक मे उत्पन्न नही होगा, उसकी नारकत्वरूप मे भावी भावेन्द्रियाँ नही होती है। जिसकी नारकरूप मे भावी भावेन्द्रियाँ होती हैं, उसकी पाच, दस, पन्द्रह, सख्यात, असख्यात या अनन्त भी होती हैं। जो भविष्य मे एक बार फिर नरक मे उत्पन्न होगा, उसकी पाच, जो दो बार उत्पन्न होगा, उसकी दस, तीन बार उत्पन्न होगा उसकी पन्द्रह; सख्यात, असख्यात या अनन्त बार उत्पन्न होने वाले की सख्यात, असख्यात या अनन्त भावी (पुरस्कृत) भावेन्द्रियाँ होती है। इसी प्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिए।

भावेन्द्रिय विषयक चार गम—जिस प्रकार द्रव्येन्द्रियो के विषय मे नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देव सम्बन्धी ये चार गम कहे है, उसी प्रकार यहाँ भी चार गम समझ लेने चाहिए।[1]

।। पन्द्रहवां इन्द्रियपद द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

।। पन्द्रहवाँ इन्द्रियपद समाप्त ।।

1. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक ३१७

सोलसमं पओगपयं

सोलहवाँ प्रयोगपद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र का यह सोलहवाँ प्रयोगपद है।

- मन-वचन-काय के आधार से होने वाला आत्मा का व्यापार प्रयोग कहलाता है। इस दृष्टि से यह पद महत्त्वपूर्ण है। अगर आत्मा न हो तो इन तीनो की विशिष्ट क्रिया नही हो सकती। जैनपरिभाषानुसार ये तीनो पुद्गलमय है। पुद्गलो का सामान्य व्यापार (गति) तो आत्मा के बिना भी हो सकता है, किन्तु जब पुद्गल मन-वचन-कायरूप मे परिणत हो जाते है, तब आत्मा के सहकार से उनका विशिष्ट व्यापार होता है। पुद्गल का मन आदि रूप मे परिणमन भी आत्मा के कर्म के अधीन है, इस कारण उनके व्यापार को आत्मव्यापार कहा जा सकता है। इसी आत्मव्यापार रूप प्रयोग के विषय मे सभी पहलुओ से यहाँ विचार किया गया है।

- प्रस्तुत पद मे दो मुख्य विषयो का प्रतिपादन किया गया है—(१) प्रयोग, उसके प्रकार और चौवीस दण्डको मे प्रयोगो की प्ररूपणा तथा (२) गतिप्रपात के पाच भेद और उनके प्रभेद और स्वरूप।

- सत्यादि चार मन प्रयोग, चार वचनप्रयोग और सात औदारिक, औदारिकमिश्र आदि शरीर-कायप्रयोग, यों प्रयोग के १५ प्रकार है।

- तदनन्तर समुच्चय जीवो और चौवीस दण्डको मे से किस मे कितने प्रयोग पाए जाते हैं ? यह प्ररूपणा की गई है।

- तत्पश्चात् चौवीसदण्डकवर्ती जीवो मे से किसमे कितने बहुत्व-विशिष्ट प्रयोग सदैव पाए जाते हैं तथा एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा एकसयोगी, द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी और चतु सयोगी कितने विकल्प पाए जाते है, उनकी प्ररूपणा की गई है।

- पन्द्रह प्रकार के प्रयोगो की चर्चा समाप्त होने के बाद गतिप्रपात (गतिप्रवाद) का निरूपण है। सू १०८६ से ११२३ तक मे गति की चर्चा की गई है, जो प्रयोग से ही सम्बन्धित है।

- गतिप्रपात नामक प्रकरण मे जिन-जिन के साथ गति का सम्बन्ध है, उन सब व्यवहारो का सग्रह करके गति के पाच प्रकार बताए है—प्रयोगगति, ततगति, बन्धनछेदनगति, उपपातगति और विहायोगति।

✤ इसमे से प्रथम प्रयोगगति तो वही है, जिसके १५ प्रकारो की चर्चा पहले की गई है। ततगति मजिल पर पहुँचने से पहले की सारी विस्तीर्ण गति को कहा गया है, फिर जीव और शरीर का बन्धन छूटने से होने वाली बन्धनछेदनगति, फिर नारकादि चार भवोपपातगति, क्षेत्रोपपात गति और नोभवोपपात (पुद्गलो और सिद्धो की) गति का वर्णन है। अन्त मे १७ प्रकार की आकाश-अवकाश मे सम्बन्धित विहायोगति का वर्णन है। इन भेदो के वर्णन पर से गति की नाना प्रकार की विशेषताए स्पष्ट प्रतीत होती है।[1]

१ (क) पण्णवणासुत्त भा २ प्रस्तावना पृ १०१ से १०३
(ख) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ), भा १, पृ २६१ से २७३ तक
(ग) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३१९ से ३३० तक

सोलसमं पओगपयं

सोलहवाँ प्रयोगपद

प्रयोग और उसके प्रकार

१०६८. कइविहे णं भंते ! पओगे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पण्णरसविहे पण्णत्ते । तं जहा—सच्चमणप्पओगे १ मोसमणप्पओगे २ सच्चामोसमणप्पओगे ३ असच्चामोसमणप्पओगे ४ एवं वइप्पओगे वि चउहा ८ ओरालियसरीरकायप्पओगे ९ ओरालियमीससरीरकायप्पओगे १० वेउव्वियसरीरकायप्पओगे ११ वेउव्वियमीससरीरकायप्पओगे १२ आहारगसरीरकायप्पओगे १३ आहारगमीससरीरकायप्पओगे १४ कम्मासरीरकायप्पओगे १५ ।

[१०६८ प्र.] भगवन् ! प्रयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१०६८ उ.] गौतम ! (प्रयोग) पन्द्रह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार (१) सत्य-मन प्रयोग, (२) असत्य (मृषा) मन प्रयोग, (३) सत्य-मृषा (मिश्र) मन प्रयोग, (४) असत्या-मृषा मन प्रयोग, इसी प्रकार वचनप्रयोग भी चार प्रकार का है [(५) सत्यभाषाप्रयोग, (६) मृषा-भाषाप्रयोग (७) सत्यामृषाभाषाप्रयोग और (८) असत्यामृषाभाषाप्रयोग], (९) औदारिक शरीरकाय-प्रयोग, (१०) औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोग, (११) वैक्रियशरीरकाय-प्रयोग, (१२) वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोग, (१३) आहारकशरीरकाय-प्रयोग, (१४) आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोग और (१५) कर्म-(कार्मण) शरीरकाय-प्रयोग ।

विवेचन - प्रयोग और उसके प्रकार—प्रस्तुत सूत्र मे पन्द्रह प्रकार के प्रयोगो का नामोल्लेख किया गया है।

प्रयोग की परिभाषा—'प्र' उपसर्गपूर्वक युज् धातु से 'प्रयोग' शब्द निष्पन्न हुआ है । जिसके कारण प्रकर्षरूप से आत्मा क्रियाओ से युक्त—व्यापृत या सम्बन्धित हो, अथवा साम्परायिक और ईर्यापथ कर्म (आश्रव) से सयुक्त—सम्बद्ध हो, वह प्रयोग कहलाता है, अथवा प्रयोग का अर्थ है परिस्पन्द क्रिया अर्थात्—आत्मा का व्यापार ।

पन्द्रह प्रकार के प्रयोगो के अर्थ—(१) **सत्यमनःप्रयोग**— सन्त का अर्थ— मुनि अथवा सत् पदार्थ । ये दोनो मुक्ति-प्राप्ति के कारण हैं । इन दोनो के विषय मे यथावस्थित वस्तुस्वरूप का चिन्तन करने मे जो साधु (श्रेष्ठ) हो, वह 'सत्य' मन है । अथवा जीव सत् (स्वरूप से सत्) और असत् (पररूप से असत्) रूप है, देहमात्रव्यापी है, इत्यादि रूप से यथावस्थित वस्तुचिन्तन-परायण मन सत्यमन है। सत्यमन का प्रयोग अर्थात् व्यापार सत्यमन प्रयोग है । (२) **असत्यमनःप्रयोग**—सत्य से विपरीत असत्य है । यथा जीव नही है, अथवा जीव एकान्त सत्-रूप है, इत्यादि कुविकल्प करने मे तत्पर मन असत्यमन है, उसका प्रयोग-व्यापार असत्यमन प्रयोग है । (३) **सत्यमृषामनःप्रयोग**—जो सत्य और असत्य, उभयरूप चिन्तन-तत्पर हो, वह सत्यमृषामन है । जैसे—किसी वन मे बड,

पीपल, खैर, पलाश, अशोक आदि अनेक जाति के वृक्ष हैं, किन्तु अशोक वृक्षो की बहुलता होने से यह सोचना कि यह अशोकवन है। कतिपय अशोक वृक्षो का सद्भाव होने से यह सोचना सत्य है, किन्तु उनके अतिरिक्त उस वन मे अन्य बड, पोपल आदि का भी सद्भाव होने से ऐसा सोचना असत्य है। किन्तु व्यवहारनय को अपेक्षा से ऐसा सोचना सत्यासत्य कहलाता है, परमार्थ (निश्चयनय) की दृष्टि से तो ऐसा सोचना असत्य है, क्योकि वस्तु जैसी है, वैसी नही सोची गई है। (४) **असत्यामृषामनःप्रयोग** –जो सत्य भी न हो और असत्य भी न हो, ऐसा मनोव्यापार असत्यामृषामन प्रयोग है। विप्रतिपत्ति (शका या विवाद) होने पर वस्तुतत्त्व को सिद्धि की इच्छा से सर्वज्ञ के मतानुसार विकल्प करता है। यथा—जीव है, वह सत्-असत् रूप है। यह चिन्तन सत्य-परिभाषित होने से आराधक है और सत्यमन प्रयाग है। जो विप्रतिपत्ति होने पर वस्तुतत्त्व की प्रतिष्ठा (स्थापना) करने की इच्छा होने पर भी सर्वज्ञमत के विरुद्ध विकल्प करता है। जैसे—जीव नही है अथवा जीव एकान्त नित्य है, इत्यादि। यह चिन्तन विराधक होने से असत्य है। किन्तु वस्तु को सिद्धि की इच्छा के बिना भी स्वरूपमात्र का पर्यालोचनपरक चिन्तन करना असत्यामृषामन प्रयोग है। जैसे—किसी ने चिन्तन किया—देवदत्त मे घडा लाना है, या अमुक व्यक्ति से गाय मागना है, इत्यादि। यह चिन्तन स्वरूपमात्र पर्यालोचनपरक होने मे न तो तथारूप सत्य है, न ही मिथ्या है; इसलिए व्यवहारनय की दृष्टि से इसे असत्यामृषा कहा जाता है। अगर किसी को ठगने या धोखा देने की बुद्धि से ऐसा चिन्तन किया जाता है तो वह असत्य के अन्तर्गत है, **अन्यथा सरलभाव से वस्तुस्वरूपपर्यालोचन** करना सत्य मे समाविष्ट है। ऐसे असत्यामृषामन का प्रयोग असत्यामृषामन प्रयोग है। (५-८) मन के चार प्रकार के इन प्रयोगो की तरह वचनप्रयोग भी चार प्रकार के है, अन्तर यही है कि वहाँ मन का प्रयोग है, यहाँ वाणी का प्रयोग है। वे चार इस प्रकार है—(५) सत्यवाक्प्रयोग, (६) असत्यवाक्प्रयोग, (७) सत्यामृषावाक्प्रयोग और (८) असत्यामृषावाक्प्रयोग। (९) **औदारिकशरीरकाय-प्रयोग** -औदारिक आदि का लक्षण पहले बता चुके है। जो शरीर उदार-स्थूल हो, उसे औदारिकशरीर कहते है। काय कहते है –पुद्गलो के समूह को अथवा अस्थि आदि के उपचय को। इन दोनो लक्षणो स युक्त काय औदारिकशरीर रूप होने से औदारिकशरीरकाय कहलाता है। उसका प्रयोग **औदारिकशरीरकाय-प्रयोग** है। यह तिर्यचो और पर्याप्तक मनुष्यो के होता है। (१०) **औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोग**– जो काय औदारिक हो और कार्मणशरीर के साथ मिश्र हो, वह औदारिक मिश्रशरीर कहलाता है, ऐसे शरीरकाय के प्रयोग को औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोग कहते है। औदारिकशरीर के साथ कार्मणशरीर होने पर भी इसका नाम 'कार्मणमिश्रशरीर' न रखकर 'औदारिकमिश्र' रखा है, उसके तोन कारण है—(१) उत्पत्ति की अपेक्षा से औदारिक की प्रधानता होने से, (२) कादाचित्क होने से तथा (३) सन्देहरहित अभीष्ट पदार्थ का बोध कराने का हेतु होने से। अतएव औदारिकशरीरधारी मनुष्य, पचेन्द्रियतिर्यञ्च या पर्याप्त बादर वायुकायिक-जीव वैक्रियलब्धि से सम्पन्न होकर वैक्रिया करता है, तब औदारिकशरीर की ही प्रारम्भिकता और प्रधानता होने के कारण वैक्रियमिश्र न कहलाकर वह **औदारिकमिश्र** ही कहलाता है। इसी प्रकार औदारिकशरीरधारी आहारकलब्धिसम्पन्न चतुर्दशपूर्वधर मुनि द्वारा आहारकशरीर बनाने पर औदारिक और आहारक शरीर की मिश्रता होने पर भी प्रधानता के कारण '**औदारिकमिश्र**' ही कहा जाता है। (११) **वैक्रियशरीरकाय-प्रयोग** – वैक्रियशरीर रूप काय से होने वाला प्रयाग 'वैक्रियशरीरकाय-प्रयोग' कहलाता है। यह वैक्रियशरीरपर्याप्ति से पर्याप्त जीव को होता है। (१२) **वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोग**—देवो और नारको की अपर्याप्त अवस्था मे कार्मणशरीर के साथ मिश्रित

वैक्रियशरीर का प्रयोग। जब कोई पचेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य या वायुकायिक जीव वैक्रियशरीरी होकर अपना कार्य सम्पन्न करके कृतकृत्य हो चुकने के पश्चात् वैक्रियशरीर को त्यागने और औदारिकशरीर मे प्रवेश करने का इच्छुक होता है, तब वहाँ वैक्रियशरीर के सामर्थ्य से औदारिक-शरीरकाययोग को ग्रहण करने से प्रवृत्त होने तथा वैक्रियशरीर की प्रधानता होने के कारण वह 'औदारिकमिश्र' नही, किन्तु **वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोग** कहलाता है। (१३) **आहारकशरीरकाय-प्रयोग**—आहारकशरीरपर्याप्ति से पर्याप्त आहारकलब्धिधारी चतुर्दशपूर्वधर मुनि के आहारक-शरीर द्वारा होने वाला प्रयोग। (१४) **आहारकमिश्रशरीर-काय-प्रयोग** -आहारकशरीरी सयमी मुनि जब अपना कार्य पूर्ण करके पुन औदारिकशरीर को ग्रहण करता है, तब आहारकशरीर के बल से औदारिकशरीर मे प्रवेश करने तथा आहारकशरीर की प्रधानता होने के कारण औदारिक मिश्रशरीर न कहलाकर आहारकमिश्रशरीर ही कहलाता है। इस प्रकार का प्रयोग आहारकमिश्र-शरीरकाय-प्रयोग है। (१५) **कार्मणशरीरकाय-प्रयोग** -विग्रहगति मे तथा केवलीसमुद्घात के तीसरे, चौथे और पाचवे समय मे होने वाला प्रयोग कार्मणशरीरकाय-प्रयोग कहलाता है। तैजस और कार्मण दोनो सहचर है, अत एक साथ दोनो का ग्रहण किया गया है।[1]

समुच्चय जीवो और चौवीस दण्डकों मे प्रयोग की प्ररूपणा

१०६९. जीवाणं भंते ! कतिविहे पओगे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते । त जहा—सच्चमणप्पओगे जाव कम्मासरीरकाय-प्पओगे ।

[१०६९ प्र] भगवन् ! जीवो के कितने प्रकार के प्रयोग कहे है ?

[१०६९ उ] गौतम ! जीवो के पन्द्रह प्रकार के प्रयोग कहे गये है, वे इस प्रकार सत्य-मन प्रयोग से (लेकर) कार्मणशरीरकाय-प्रयोग तक।

१०७०. णेरइयाण भते ! कतिविहे पओगे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एक्कारसविहे पओगे पण्णत्ते। त जहा—सच्चमणप्पओगे १ जाव असच्चामोस-वइप्पओगे ८ वेउव्वियसरीरकायप्पओगे ९ वेउव्वियमीससरीरकायप्पओगे १० कम्मासरीरकायप्पओगे ११ ।

[१०७० प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितने प्रकार के प्रयोग कहे है ?

[१०७० उ] गौतम ! (उनके) ग्यारह प्रकार के प्रयोग कहे गए है। वे इस प्रकार—(१-८) सत्यमन प्रयोग से लेकर असत्यामृषावचन-प्रयोग, वैक्रियशरीरकाय-प्रयोग, १०-वैक्रियमिश्र-शरीरकाय-प्रयोग और ११-कार्मणशरीरकायप्रयोग।

१०७१. एव असुरकुमाराण वि जाव थणियकुमाराण ।

[१०७१] इसी प्रकार असुरकुमारो मे स्तनितकुमारो तक के (प्रयोगो के विषय मे समझना चाहिए।)

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३१९

१०७२ पुढविक्काइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! तिविहे पओगे पण्णत्ते । तं जहा ओरालियसरीरकायप्पओगे १ ओरालियमीससरीरकायप्पओगे २ कम्मासरीरकायप्पओगे ३ । एव जाव वणप्फइकाइयाण । णवरं वाउक्काइयाणं पचविहे पओगे पण्णत्ते, त जहा--ओरालियसरीरकायप्पओगे १ ओरालियमीससरीरकायप्पओगे २ वेउव्विए दुविहे ४ कम्मासरीरकायप्पओगे य ५ ।

[१०७२ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिकों के कितने प्रयोग कहे गए हैं ?

[१०७२ उ] गौतम ! उनके तीन प्रकार के प्रयोग कहे गए है । वे इस प्रकार है - १ औदारिकशरीरकाय-प्रयोग, २ औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोग और ३. कार्मणशरीरकाय-प्रयोग । इसी प्रकार (अप्कायिकों से लेकर) वनस्पतिकायिकों तक समझना चाहिए । विशेष यह है कि वायुकायिकों के पाच प्रकार के प्रयोग कहे है, वे इस प्रकार १ औदारिकशरीरकाय-प्रयोग २ औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोग, ३-४ वैक्रियशरीरकाय-प्रयोग और वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोग तथा ५ कार्मणशरीरकाय-प्रयोग ।

१०७३ बेइंदियाण पुच्छा ।

गोयमा ! चउव्विहे पओगे पण्णत्ते । त जहा--असच्चामोसवइप्पओगे १ ओरालियसरीरकायप्पओगे २ ओरालियमीससरीरकायप्पओगे ३ कम्मासरीरकायप्पओगे ४ । एवं जाव चउरिंदियाण ।

[१०७३ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रियजीवों के कितने प्रकार के प्रयोग कहे गए है ?

[१०७३ उ] गौतम ! (उनके) चार प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं, वे इस प्रकार—(१) असत्यामृषावचन-प्रयोग, (२) औदारिकशरीरकाय प्रयोग, (३) औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोग और (४) कार्मणशरीरकाय-प्रयोग ।

इसी प्रकार (त्रीन्द्रिय और) चतुरिन्द्रिय जीवों के प्रयोग के विषय मे समझना चाहिए ।

१०७४. पचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! तेरसविहे पओगे पण्णत्ते । त जहा सच्चमणप्पओगे १ मोसमणप्पओगे २ सच्चामोसमणप्पओगे ३ असच्चामोसमणप्पओगे ४ एव वइप्पओगे वि ८ ओरालियसरीरकायप्पओगे ९ ओरालियमीससरीरकायप्पओगे १० वेउव्वियसरीरकायप्पओगे ११ वेउव्वियमीससरीरकायप्पओगे १२ कम्मासरीरकायप्पओगे १३ ।

[१०७४ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के कितने प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं ?

[१०७४ उ] गौतम ! (उनके) तेरह प्रकार के प्रयोग कहे गए है, वे इस प्रकार—(१) सत्यमन प्रयोग, (२) मृषामन.प्रयोग, (३) सत्यमृषामन प्रयोग, (४) असत्यामृषामन.प्रयोग इसी तरह चार प्रकार का (५ से ८ तक) वचनप्रयोग, (९) औदारिकशरीरकाय-प्रयोग, (१०) औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोग, (११) वैक्रियशरीरकाय-प्रयोग, (१२) वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोग और (१३) कार्मणशरीरकाय-प्रयोग ।

१०७५. मणूसाणं पुच्छा ।

गोयमा ! पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते । त जहा—सच्चमणप्पओगे १ जाव कम्मासरीरकायप्पओगे १५ ।

[१०७५ प्र] भगवन् ! मनुष्यो के कितने प्रकार के प्रयोग कहे गए है ?

[१०७५ उ.] गौतम ! उनके पन्द्रह प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं, वे इस प्रकार सत्यमन-प्रयोग से लेकर कार्मणशरीरकाय-प्रयोग तक ।

१०७६ वाणमतर जोतिसिय-वेमाणियाण जहा णेरइयाण (सु १०७०) ।

[१०७६] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के प्रयोग के विषय मे नैरयिको (की सू १०७० मे अकित वक्तव्यता) के समान (समझना चाहिए ।)

विवेचन समुच्चय जीवों और चौवीस दण्डको मे प्रयोगो की प्ररूपणा —प्रस्तुत ८ सूत्रो (सू १०६९ मे १०७६ तक) मे समुच्चय जीवो मे कितने प्रयोग होते है ? यह प्ररूपणा की गई है ।

निष्कर्ष—समुच्चय जीवो मे १५ प्रयोग होते है, क्योकि नाना जीवो की अपेक्षा से सदैव पन्द्रह प्रयोग पाए जाते है । नैरयिको तथा व्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिको मे ग्यारह प्रयोग पाए जाते है, क्योकि इनमे औदारिक, औदारिकमिश्र, आहारक और आहारकमिश्र प्रयोग नही होते । वायुकायिको को छोडकर शेष चार पृथ्वीकायादि स्थावरो मे तीन प्रयोग पाये जाते है—औदारिक, औदारिकमिश्र और कार्मणशरीरकाय प्रयोग । वायुकायिको मे इन तीनो के उपरान्त वैक्रिय और वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोग भी पाए जाते है । द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवो मे प्रत्येक के ४-४ प्रयोग पाए जाते है—असत्यामृषाभाषाप्रयोग, औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्मणशरीरकाय प्रयोग । पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे आहारक और आहारकमिश्र को छोडकर शेष १३ प्रयोग पाए जाते है, जबकि मनुष्यो मे १५ ही प्रयोग पाए जाते है ।[1]

समुच्चय जीवो में विभाग से प्रयोगप्ररूपणा

१०७७. जीवा ण भते ! किं सच्चमणप्पओगी जाव किं कम्मासरीरकायप्पओगी ?

गोयमा ! जीवा सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओगी वि जाव वेउव्वियमीससरीरकायप्पओगी वि कम्मासरीरकायप्पओगी वि, अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगमीससरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारगमीससरीरकायप्पओगिणो य ४ चउभगो, अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीससरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ४, एए जीवाणं अट्ठ भगा ।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३२०

[१०७७ प्र] भगवन् ! जीव सत्यमन प्रयोगी होते हैं अथवा यावत् कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं ?

[१०७७ उ] गौतम ! (१) जीव सभी सत्यमन प्रयोगी भी होते हैं, यावत् मृषामन प्रयोगी, सत्यमृषामन प्रयोगी, असत्यामृषामन प्रयोगी आदि तथा वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगी भी एव कार्मणशरीरकायप्रयोगी भी, (इस प्रकार तेरह पदो के वाच्य) होते है, (१) अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी होता है, (२) अथवा बहुत-से आहारकशरीरकायप्रयोगी होते है, (३) अथवा एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होता है, (४) अथवा बहुत-से जीव आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होते है। ये चार भग हुए। तेरह पदो वाले प्रथम भग की इनके साथ गणना की जाए तो पाच भग हो जाते है। (द्विकसयोगी चार भग) १ अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकाय प्रयोगी, २ अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और बहुत-से आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, ३ अथवा बहुत-से आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, ४ अथवा बहुत-से आहारकशरीरकायप्रयोगी और बहुत-से आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी। ये समुच्चय जीवो के प्रयोग की अपेक्षा मे आठ भग हुए। (इनमे प्रथम भग को मिलाने से नौ भग होते है।)

विवेचन समुच्चय जीवों मे विभाग से प्रयोगप्ररूपणा प्रस्तुत सूत्र (१०७७) मे समुच्चय जीवो मे प्रयोग की अपेक्षा से पाए जाने वाले आठ भगों का निरूपण किया गया है।

समुच्चय जीवों में तेरह पदो का एक भग—समुच्चय जीवो मे आहारक और आहारकमिश्र को छोड कर शेष १३ पदो का एक भग होता है। तात्पर्य यह है कि सदैव बहुत-से जीव सत्यमनप्रयोगी भी पाए जाते हैं, असत्यमन.प्रयोगी भी, यावत् वैक्रियशरीरकायप्रयोगी भी पाए जाते है, तथैव कार्मणशरीरकायप्रयोगी भी पाए जाते है। नारक जीव सदैव उपपात के पश्चात् उत्तरवैक्रिय आरम्भ कर देते हैं, इसलिए सदैव वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगी भी होते है। वनस्पति आदि के जीव सदैव विग्रह के कारण अन्तरालगति मे पाए जाते है, इसलिए वे सदैव कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हे, किन्तु आहारकशरीरी कदाचित् सर्वथा नही पाए जाते, क्योकि उनका अन्तर उत्कृष्टत छह मास तक का सम्भव है।[1] अर्थात् छह महीनो तक एक भी आहारकशरीरी न पाया जाए, यह भी सम्भव है। जब वे पाए भी जाते है तो जघन्य एक, दो या तीन, तथा उत्कृष्टत. सहस्रपृथक्त्व (दो हजार से नौ हजार) तक होते है। इस प्रकार जब आहारकशरीरकायप्रयोगी और आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी एक भी नही पाया जाता, तब बहुत जीवो की अपेक्षा से बहुवचनविशिष्ट १३ पदो वाला एक भग होता है, क्योकि उक्त १३ पदो वाले जीव सदैव बहुत रूप मे रहते है।

आठ भगों का क्रम—प्रथमभग जब पूर्वोक्त तेरह पदो के साथ एक आहारकशरीरकायप्रयोगी पाया जाता है, तब एक भग होता है। **द्वितीयभंग** - पूर्वोक्त तेरह पद वालो के साथ बहुत-से

१ आहारगाइ लोए छम्मासे जा न होंति वि कयाई।
उक्कोसेण नियमा, एक समय जहन्नेण ॥ १ ॥
होताइ जहन्नेण इक्क दो तिण्णि पच व हवति।
उक्कोसेण जुगव पुहुत्तमेत्त सहस्साण ॥ २ ॥

आहारकशरीरकायप्रयोगी पाए जाते हैं, तब दूसरा भग होता है। **तृतीय-चतुर्थ भंग** इसी प्रकार पूर्वोक्त १३ पदो के साथ जब एक जीव आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होता है, अथवा बहुत जीव आहारकशरीरकायप्रयोगी होते है, तब तीसरा और चौथा भग होता है। यो क्रमश: ये ४ भग हुए। **पंचम से अष्टम भग तक**—चार भग द्विकसयोगी होते हैं, जो पहले बताए जा चुके है। पूर्वोक्त तेरह पदो वाले भग को मिलाने से ये सब ९ भग होते है।[1]

नारकों और भवनपतियों की विभाग से प्रयोगप्ररूपणा

१०७८. णेरइया ण भते! कि सच्चमणप्पओगी जाव कि कम्मासरीरकायप्पओगी ?

गोयमा! णेरइया सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओगी वि जाव वेउव्वियमीससरीरकायप्पओगी वि, अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २।

[१०७८ प्र] भगवन्! नैरयिक सत्यमन प्रयोगी होते है, अथवा यावत् कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं ?

[१०७८ उ] गौतम! नैरयिक सभी सत्यमन प्रयोगी भी होते है, यावत् वैक्रियमिश्रशरीर कायप्रयोगी भी होते है, १ -अथवा कोई एक (नैरयिक) कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है, २- अथवा कोई अनेक (नैरयिक) कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं।

१०७९. एव असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा वि।

[१०७९] इसी प्रकार असुरकुमारो की भी यावत् स्तनितकुमारो की प्रयोगप्ररूपणा करनी चाहिए।

विवेचन - नारको और भवनपतियो की विभाग से प्रयोगप्ररूपणा - प्रस्तुत दो सूत्रो मे एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से नारको और भवनपतिदेवो की प्रयोग-सम्बन्धी तीन भगो की प्ररूपणा की गई है।

नारको मे सदैव पाए जाने वाले बहुत्वविशिष्ट दस पद नारको मे सत्यमन प्रयोगी से लेकर वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगी पर्यन्त सदैव बहुत्वविशिष्ट दस पद पाए जाते है,[2] किन्तु कार्मणशरीरकायप्रयोगी नारक कभी-कभी एक भी नही पाया जाता, क्योकि नरकगति के उपपात का विरह बारह मुहूर्त का कहा गया है। यह एक भग हुआ।

द्वितीय-तृतीय भंग जब कार्मणशरीरकायप्रयोगी नारक पाए जाते है, तब जघन्य एक या दो और उत्कृष्ट असख्यात पाए जाते है। इस दृष्टि से जब एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी पाया जाता है, तब द्वितीय भग होता है और जब बहुत-से कार्मणशरीरकायप्रयोगी पाये जाते हैं, तब तृतीय भग होता है। असुरकुमारादि दशविध भवनवासियो की एकत्व-बहुत्व-विशिष्ट प्रयोग-सम्बन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार समझ लेनी चाहिए।[3]

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३२३-३२४

२ भगवतीसूत्र श ८ उ १ मे देवो और नारको मे अपर्याप्त दशा मे ही वैक्रियमिश्रशरीरप्रयोग माना गया है।

३ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३२४

एकेन्द्रियों, विकलेन्द्रियों और तिर्यंचपंचेन्द्रियों की प्रयोग सम्बन्धी प्ररूपणा

१०८०. पुढविकाइया ण भंते ! किं ओरालियसरीरकायप्पओगी ओरायलियमीससरीरकायप्पओगी कम्मासरीरकायप्पओगी ?

गोयमा ! पुढविकाइया ण ओरालियसरीरकायप्पओगी वि ओरालियमीससरीरकायप्पओगी वि कम्मासरीरकायप्पओगी वि । एव जाव वणस्सइकाइयाण । णवर वाउक्काइया वेउव्वियसरीरकायप्पओगी वि वेउव्वियमीससरीरकायप्पओगी वि ।

[१०८० प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव क्या औदारिकशरीरकाय-प्रयोगी है, औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी है अथवा कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी है ?

[१०८० उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव औदारिकशरीरकाय-प्रयोगी भी है, औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी भी है और कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी भी है ।

इसी प्रकार अप्कायिक जीवो मे ले कर वनस्पतिकायिको तक (प्रयोग सम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए ।) विशेष यह है कि वायुकायिक वैक्रियशरीरकाय-प्रयोगी भी है और वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी भी है ।

१०८१. बेइंदिया ण भंते ! किं ओरालियसरीरकायप्पओगी जाव कम्मासरीरकायप्पओगी ?

गोयमा ! बेइंदिया सव्वे वि ताव होज्जा असच्चामोसवइप्पओगी वि ओरालियसरीरकायप्पओगी वि ओरालियमीससरीरकायप्पओगी वि, अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २ । एव जाव चउरिंदिया ।

[१०८१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव क्या औदारिकशरीरकाय-प्रयोगी है, अथवा यावत् कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी है ?

[१०८१ उ] गौतम ! सभी द्वीन्द्रिय जीव असत्यामृषावचन-प्रयोगी भी होते है, औदारिकशरीरकाय-प्रयोगी भी होते है, औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी भी होते है । १—अथवा कोई एक (द्वीन्द्रिय जीव) कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, २—या बहुत-से (द्वीन्द्रिय जीव) कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है ।

(त्रीन्द्रिय एव) चतुरिन्द्रियो (की प्रयोग सम्बन्धी वक्तव्यता) भी इसी प्रकार (समझनी चाहिए ।)

१०८२ पचेंदियतिरिक्खजोणिया जहा णेरइया (सु १०७८) । णवर ओरालियसरीरकायप्पओगी वि ओरालियमीससरीरकायप्पओगी वि, अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २ ।

[१०८२] पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको की प्रयोग सम्बन्धी वक्तव्यता (सू १०७८ मे उल्लिखित) नैरयिको की प्रयोगवक्तव्यता के समान कहना चाहिए । विशेष यह है कि यह (एक पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक) औदारिकशरीरकाय-प्रयोगी भी होता है तथा औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी

भी होता है। १—अथवा कोई एक (पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक) कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी भी होता है, २—अथवा बहुत-से (पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीव) कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है।

विवेचन—एकेन्द्रियो, विकलेन्द्रियों और तिर्यञ्चपचेन्द्रियो की विभाग से प्रयोगसम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू १०८० से १०८२ तक) मे एकेन्द्रिय से लेकर तिर्यंचपचेन्द्रिय तक के जीवो की एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा से प्रयोगसम्बन्धी प्ररूपणा की गई है।

निष्कर्ष—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक एव वनस्पतिकायिक जीव औदारिकशरीरकाय-प्रयोगी, औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी एव कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी सदैव बहुसख्या मे पाए जाते हैं, इसलिए ये तीनो पद बहुवचनान्त है, यह एक भग है, किन्तु वायुकायिको मे पूर्वोक्त तीन प्रयोगो के अतिरिक्त वैक्रियद्विक (वैक्रियशरीरकाय-प्रयोग एव वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोग) भी पाए जाते है। अर्थात्—वायुकायिको मे ये पाचो पद सदैव बहुत्वरूप मे पाए जाते है। इन पाचो का बहुत्वरूप एक भग होता है।

सभी द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीव असत्यामृषावचन-प्रयोगी होते है, क्योकि वे न तो सत्यवचन का प्रयोग करते है, न असत्यवचन का प्रयोग करते है और न ही उभयरूप वचन का प्रयोग करते है। वे औदारिकशरीरकाय-प्रयोगी भी होते है और औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी भी होते हैं। यद्यपि द्वीन्द्रियादि जीवो के अन्तर्मुहूर्तमात्र उपपात का विरहकाल है, किन्तु उपपातविरहकाल का अन्तर्मुहूर्त छोटा है और औदारिकमिश्र का अन्तर्मुहूर्त प्रमाण मे बहुत बडा होता है। अत उनमे औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी सदैव पाये जाते है। इस प्रकार इन तीनो का एक भग हुआ। उनमे कभी-कभी एक भी कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी नही पाया जाता, क्योकि उनके उपपात का विरह अन्तर्मुहूर्त कहा गया है। जब वे पाए जाते है तो जघन्यत एक या दो और उत्कृष्टत: असख्यात पाए जाते है। इस प्रकार जब एक भी कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी नही पाया जाता है, तब पूर्वोक्त तीनो पदो का प्रथम भग होता है। जब एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी पाया जाता है, तब एकत्वविशिष्ट दूसरा भग होता है। जब बहुत-से द्वीन्द्रियादि जीव कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है, तब तीसरा भग होता है।

पचेन्द्रियतिर्यञ्चो का प्रयोग विषयक कथन नारको के समान जानना चाहिए, किन्तु उनमे विशेषता यह है कि वे नारको की तरह वैक्रियशरीरकाय-प्रयोगी तथा वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी के उपरान्त औदारिकशरीरकाय-प्रयोगी और औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी भी होते है। इसके सिवाय ४ प्रकार के मन प्रयोग और चार प्रकार के वचनप्रयोग, इन ८ पदो को पूर्वोक्त ४ पदो मे मिलाने से कुल १२ पद हुए, जो पचेन्द्रियतिर्यंचो मे सदैव बहुत रूप मे पाए जाते हैं। कार्मणशरीरकाय प्रयोगी कभी-कभी पचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे एक भी नही पाया जाता, क्योकि उनके उपपात का विरहकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा गया है। यो जब कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी एक भी नही होता, तब पूर्वोक्त प्रथम भग होता है।

जब कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी एक होता है, तब दूसरा भग होता है और जब कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी बहुत होते है, तब तीसरा भग होता है।[1]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३२४-३२५

मनुष्यों में विभाग से प्रयोग-प्ररूपणा

१०८३. मणूसा णं भंते ! किं सच्चमणप्पओगी जाव किं कम्मासरीरकायप्पओगी ?

गोयमा ! मणूसा सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओगी वि जाव ओरालियसरीरकायप्पओगी वि वेउव्वियसरीरकायप्पओगी वि वेउव्वियमीससरीरकायप्पओगी वि, अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीससरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य ४ अहवेगे य आहारगमीससरीरकायप्पओगी य ५ अहवेगे य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ६ अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगी य ७ अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य ८, एते अट्ठ भंगा पत्तेयं ।

अहवेगे य ओरालियमीससरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीससरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य ४ एवं एते चत्तारि भंगा, अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ४ चत्तारि भंगा, अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ४ एते चत्तारि भंगा, अहवेगे य आहारगशरीरकायप्पओगी य आहारगमीससरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ४ चत्तारि भंगा, अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य ४ चत्तारि भंगा, अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगमीससरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारगमीससरीरकाय-प्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य ४ चत्तारि भंगा, एवं चउवीसं भंगा ।

अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीससरीरकायप्पओगी य १, अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य

आहारगमीससरीरकायप्पओगिणो य २, अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीससरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ४ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहरगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ५ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ६ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ७ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ८ एते अट्ठ भगा, अहवेगे य ओरालियमीसासरीर कायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मयसरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य ४ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगी य ५ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य ६ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ७ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ८ एते अट्ठ भगा। अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ४ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य ५ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ६ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसारीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ७ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ८ एते अट्ठ भगा। अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीमासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ४ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य ५ अहवेगे य

आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ६ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ७ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ८ एव एते तियसंजोएण चत्तारि अट्ठभंगा, सव्वे वि मिलिया बत्तीसं भंगा जाणियव्वा ३२ ।

अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ४ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य ५ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ६ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ७ अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ८ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य ९ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य १० अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ११ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य १२ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य १३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य १४ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य १५ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य १६, एवं एते चउसंजोएणं सोलस भगा भवति । सव्वे वि य णं संपिंडिया असीतिं भगा भवति ८० ।

[१०८३ प्र.] भगवन् ! मनुष्य क्या सत्यमनःप्रयोगी अथवा यावत् कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं ?

[१०८३ उ] गौतम ! मनुष्य सत्यमन प्रयोगी यावत् (अर्थात्—चारो प्रकार के मन-प्रयोगी, चारो प्रकार के वचनप्रयोगी) औदारिकशरीरकाय-प्रयोगी भी होते है, वैक्रियशरीरकाय-प्रयोगी भी होते है, और वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी भी होते है । १ अथवा कोई एक औदारिकमिश्र-शरीरकाय-प्रयोगी होता है, २ अथवा अनेक (मनुष्य) औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं, ३ अथवा कोई एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ४ अथवा अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं, अथवा ५ कोई एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ६. अथवा अनेक आहारकमिश्र-शरीरकाय-प्रयोगी होते हैं, ७ अथवा कोई एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ८ अथवा अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है । (इस प्रकार) एक-एक के (सयोग से) ये आठ भग होते हैं ।

१ अथवा कोई एक (मनुष्य) औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक आहारकशरीर-काय-प्रयोगी होता है, २. अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीर-काय-प्रयोगी होते है, ३ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ४ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी होते है । इस प्रकार ये चार भग है ।

१ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, २ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी है, ३ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ४ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होते है । ये (द्विकसयोगी) चार भग है ।

१ अथवा कोई एक (मनुष्य) औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और (एक) कार्मणशरीर-काय-प्रयोगी होता है, २ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ३ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ४ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं । ये चार भग है ।

१ अथवा एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होता है, २ अथवा एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ३ अथवा अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ४ अथवा अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होते है । (इस प्रकार) ये चार भग है ।

१ अथवा एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, २ अथवा एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ३ अथवा अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ४ अथवा अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है। (इस प्रकार ये) चार भग है ।

१. अथवा आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, २ अथवा एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं, ३. अथवा अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है;

४. अथवा अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं। ये चार भग हैं। इस प्रकार (द्विकसयोगी कुल) चौबीस भग हुए।

१ अथवा एक औदारिकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होता है, २. अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होते हैं, ३ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ४ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ५ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ६ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय प्रयोगी एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ७ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ८ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी होते है। (इस प्रकार) ये आठ भग है।

१ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, २. अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ३ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ४ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीरकाय-प्रयोगी होते है, ५ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ६ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं, ७ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ८ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते है। (इस प्रकार) ये आठ भग हैं।

१ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, २ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं, ३ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ४ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ५ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है; ६ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ७ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ८ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है। ये ८ भंग हैं।

१. अथवा एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, २ अथवा एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ३. अथवा एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ४ अथवा एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीर-काय-प्रयोगी होते हैं; ५ अथवा अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ६ अथवा अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं, ७ अथवा अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ८ अथवा अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है। इस प्रकार त्रिकसयोग से ये चार अष्टभग होते है। ये सब मिलकर कुल बत्तीस भग जान लेने चाहिए ।।३२।।

१. अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, २ अथवा एक औदारिकमिश्र-शरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं, ३ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारक-शरीरकाय-प्रयोगी अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ४. अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारक-मिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ५. अथवा एक औदारिकमिश्र-शरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ६ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहा-रकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं, ७ अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारक-मिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, ८. अथवा एक औदारिकमिश्र-शरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं, ९ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारक-शरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, १० अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारक-मिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते है, ११ अथवा अनेक औदारिक-मिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, १२ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी एक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीर-काय-प्रयोगी होते हैं, १३. अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, और एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है, १४ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं, १५ अथवा अनेक औदारिकमिश्र-शरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और

एक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होता है; १६ अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकाय-प्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं। इस प्रकार चतु.सयोगी ये सोलह भग होते है तथा ये सभी (असयोगी ८, द्विकसयोगी २४, त्रिकसयोगी ३२ और चतु.सयोगी १६ मिलकर अस्सी भग होते हैं ।।८०।।

विवेचन - मनुष्यो मे विभाग से प्रयोग-प्ररूपणा - प्रस्तुत सूत्र (१०८३) में असयोगी, द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी और चतु सयोगी ८० भगो के द्वारा मनुष्यो मे पाए जाने वाले प्रयोगो की प्ररूपणा की गई है।

मनुष्यों मे सदैव पाए जाने वाले ग्यारह पद - मनुष्यो मे १५ प्रकार के प्रयोगो में ११ पद (प्रयोग) तो सदैव बहुवचन से पाए जाते है, यथा—चारो प्रकार के मन प्रयोगी, चारो प्रकार के वचन-प्रयोगी तथा औदारिकशरीरकाय-प्रयोगी और वैक्रियद्विकप्रयोगी (वैक्रियशरीरकायप्रयोगी और वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी)। मनुष्यो मे वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी विद्याधरो की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि विद्याधर तथा अन्य कतिपय मिथ्यादृष्टि आदि वैक्रियलब्धिसम्पन्न अन्यान्यभाव से सदैव विकुर्वणा करते पाए जाते हैं। मनुष्यो मे औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी और कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी कभी-कभी सर्वथा नही भी पाए जाते, क्योकि ये नवीन उपपात के समय पाए जाते है और मनुष्यो के उपपात का विरहकाल बारह मुहूर्त का कहा गया है। आहारकशरीरकाय-प्रयोगी और आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी भी कभी-कभी होते है, यह पहले ही कहा जा चुका है। अत औदारिकमिश्र आदि चारो प्रयोगो का अभाव होने से उपर्युक्त बहुवचन विशिष्ट ग्यारह पदो वाला यह प्रथम भग है।

एकसंयोगी आठ भंग—औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी एकत्व-बहुत्वविशिष्ट दो भग, इसी प्रकार आहारकशरीरकाय-प्रयोगी दो भग, आहारकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगी दो भग, कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी दो भग इस प्रकार एक-एक का सयोग करने पर आठ भग होते हैं।

द्विकसयोगी चौबीस भग—औदारिकमिश्र एव आहारकपद को लेकर एकवचन-बहुवचन से चार, औदारिकमिश्र तथा आहारकमिश्र इन दोनो पदो को लेकर चार, औदारिकमिश्र एव कार्मण पद को लेकर चार, आहारक और आहारकमिश्र को लेकर चार, आहारक और कार्मण को लेकर चार, तथा आहारकमिश्र और कार्मण को लेकर चार, ये सब मिलाकर द्विकसयोगी कुल २४ भग होते हैं।

त्रिकसयोगी बत्तीस भंग—औदारिकमिश्र, आहारक और आहारकमिश्र, इन तीन पदो के एकवचन और बहुवचन को लेकर ८ भग, औदारिकमिश्र, आहारक और कार्मण इन तीनो के ८ भग, औदारिकमिश्र, आहारकमिश्र और कार्मण, इन तीन पदो के आठ भग और आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण, इन तीनो पदो के आठ, ये सब मिलकर त्रिकसयोगी कुल ३२ भग होते हैं।

चतुःसयोगी सोलह भंग—औदारिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण, इन चारो पदो के एकवचन और बहुवचन को लेकर सोलह भग होते है। इस प्रकार असयोगी, द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी और चतु सयोगी मिलकर ८० भग होते है।[१]

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ३२५

वाणव्यन्तरादि देवों को विभाग से प्रयोगप्ररूपणा

१०८४ वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा (सु. १०७९)।

[१०८४] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के प्रयोग (सू १०७९ मे उक्त) असुर-कुमारो के प्रयोग के समान समझना चाहिए।

विवेचन वाणव्यन्तरादि देवो की विभाग से प्रयोगप्ररूपणा—प्रस्तुत (सूत्र. १०८४) मे वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की प्ररूपणा असुरकुमारो के अतिदेशपूर्वक की गई है।

पांच प्रकार का गतिप्रपात

१०८५. कतिविहे ण भंते ! गतिप्पवाए पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—पओगगती १ ततगती २ बंधणच्छेयणगती ३ उववाय-गती ४ विहायगती ५।

[१०८५ प्र] भगवन् ! गतिप्रपात कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१०८५ उ] गौतम ! (गतिप्रपात) पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) प्रयोगगति, (२) ततगति, (३) बन्धनछेदनगति, (४) उपपातगति और (५) विहायोगति।

विवेचन—पांच प्रकार का गतिप्रपात—प्रस्तुत सूत्र मे प्रयोगगति आदि पाच प्रकार के गतिप्रपात का प्रतिपादन किया गया है।

गतिप्रपात की व्याख्या—गमन करना, गति या प्राप्ति है। वह प्राप्ति दो प्रकार की है—देशान्तरविषयक और पर्यायान्तरविषयक। दोनो मे गति शब्द का प्रयोग देखा जाता है। यथा—'देवदत्त कहाँ गया है ? पत्तन को गया' तथा 'कहते ही वह कोप को प्राप्त हो गया।' इस प्रकार के उभयविध लौकिक-प्रयोग की तरह उभयविध लोकोत्तर-प्रयोग भी होता है। जैसे—'परमाणु एक समय मे एक लोकान्त से अपर लोकान्त (तक) को जाता है' तथा उन-उन अवस्थान्तरो को प्राप्त होता है।' अत यहाँ गति का अर्थ है- एक देश से दूसरे देश को प्राप्त होना। अथवा एक पर्याय को त्याग कर दूसरे पर्याय को प्राप्त होना। गति का प्रपात गतिप्रपात कहलाता है।[1]

प्रयोगगति- विशेष व्यापार रूप प्रयोग के पन्द्रह प्रकार इसी पद मे पहले कहे जा चुके है। प्रयोग रूप गति प्रयोगगति है। यह देशान्तरप्राप्ति रूप है, क्योकि जीव के द्वारा प्रेरित सत्यमन आदि के पुद्गल थोडी या बहुत दूर देशान्तर तक गमन करते है।

ततगति—विस्तीर्ण गति ततगति कहलाती है। जैसे—जिनदत्त ने किसी ग्राम के लिए प्रस्थान किया है, किन्तु अभी तक उस ग्राम तक पहुँचा नही है, बीच रास्ते मे है और एक-एक कदम आगे बढ रहा है। इस प्रकार की देशान्तरप्राप्ति रूप गति **ततगति** है। यद्यपि कदम बढाना जिनदत्त के शरीर का प्रयोग ही है, इस कारण इस गति को भी प्रयोगगति के अन्तर्गत माना जा सकता है, तथापि इसमे विस्तृता की विशेषता होने से इसका प्रयोगगति से पृथक् कथन किया गया है। इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ३२७-३२८

बन्धनछेदनगति--बन्धन का छेदन होना बन्धनछेदन है और उससे होने वाली गति **बन्धन-छेदनगति** है। यह गति जीव के द्वारा विमुक्त (छोडे हुए) शरीर की, अथवा शरीर से च्युत (बाहर निकले हुए) जीव की होती है। कोश के फटने से एरण्ड के बीज की जो ऊर्ध्वगति होती है, वह एक प्रकार की विहायोगति है, बन्धनछेदनगति नही, ऐसा टीकाकार का अभिमत है।

उपपातगति--उपपात का अर्थ है -प्रादुर्भाव। वह तीन प्रकार का है--क्षेत्रोपपात, भवोपपात और नोभवोपपात। क्षेत्र का अर्थ है—आकाश, जहाँ नारकादि प्राणी, सिद्ध और पुद्गल रहते है। भव का अर्थ है—कर्म का सपर्क से होने वाले जीव के नारकादि पर्याय। जिसमे प्राणी कर्म के वशवर्ती होते हैं उसे **भव** कहते है। भव मे अतिरिक्त अर्थात् —कर्मसम्पर्कजनित नारकत्व आदि पर्यायों से रहित पुद्गल **अथवा** सिद्ध **नोभव** है। उक्त दोनो (तथारूप पुद्गल और सिद्ध) पूर्वोक्त भव के लक्षण से रहित है। इस प्रकार की उपपात रूप गति उपपातगति कहलाती है। **विहायोगति**- विहायस् अर्थात् आकाश मे गति होना विहायोगति है।

गतिप्रपात के प्रभेद-भेद एवं उनके स्वरूप का निरूपण

१०८६. से किं त पओगगती ?

पओगगती पण्णरसविहा पण्णत्ता। त जहा—सच्चमणप्पओगगती जाव कम्मगसरीरकायप्प-ओगगती। एवं जहा पओगो भणिओ तहा एसा वि भाणियव्वा।

[१०८६ प्र] (भगवन् !) वह प्रयोगगति क्या है ?

[१०८६ उ] गौतम ! प्रयोगगति पन्द्रह प्रकार की कही है। वह इस प्रकार—सत्यमन-प्रयोगगति यावत् कार्मणशरीरकायप्रयोगगति। जिस प्रकार प्रयोग (पन्द्रह प्रकार का) कहा गया है, उसी प्रकार यह (गति) भी (पन्द्रह प्रकार की) कहनी चाहिए।

१०८७. जीवाण भंते ! कतिविहा पओगगती पण्णत्ता ?

गोयमा ! पण्णरसविहा पण्णत्ता। त जहा—सच्चमणप्पओगगती जाव कम्मासरीरकायप्प-ओगगती।

[१०८७ प्र] भगवन् ! जीवो की प्रयोगगति कितने प्रकार की कही गई है ?

[१०८७ उ.] गौतम ! (वह) पन्द्रह प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार सत्यमन प्रयोग-गति यावत् कार्मणशरीरप्रयोगगति।

१०८८. णेरइयाण भंते ! कतिविहा पओगगती पण्णत्ता ?

गोयमा ! एक्कारसविहा पण्णत्ता। तं जहा—सच्चमणप्पओगगती एवं उवउज्जिऊण जस्स जइविहा तस्स ततिविहा भाणितव्वा जाव वेमाणियाण।

[१०८८ प्र] भगवन् ! नैरयिको की कितने प्रकार की प्रयोगगति कही गई है ?

[१०८८ उ] गौतम ! नैरयिको की प्रयोगगति ग्यारह प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है—सत्यमन प्रयोगगति इत्यादि। इस प्रकार उपयोग करके (असुरकुमारो से लेकर) वैमानिक पर्यन्त जिसको जितने प्रकार की गति है, उसकी उतने प्रकार की गति कहनी चाहिए।

१०८९. जीवा णं भंते ! किं सच्चमणप्पओगगती जाव कम्मगसरीरकायप्पओगगती ?

गोयमा ! जीवा सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओगगती वि, एवं तं चेव पुव्ववण्णियं भाणियव्वं भगा तहेव जाव वेमाणियाणं । से त्त पओगगती ।

[१०८९ प्र] भगवन् ! जीव क्या सत्यमन प्रयोगगति वाले है, अथवा यावत् कार्मणशरीरकाय प्रयोगगतिक हैं ?

[१०८९ उ] गौतम ! जीव सभी प्रकार की गति वाले होते है, सत्यमनः प्रयोगगति वाले भी होते हैं, इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिए। उसी प्रकार (पूर्ववत्) (नैरयिको से लेकर) वैमानिको तक कहना चाहिए । यह हुई प्रयोगगति (की प्ररूपणा ।)

१०९०. से किं त ततगती ?

ततगती जेणं ज गामं वा जाव सण्णिवेस वा संपट्ठिते असपत्ते अंतरापहे वट्टति । से त्तं ततगती ।

[१०९० प्र.] (भगवन् !) वह ततगति किस प्रकार की है ?

[१०९० उ] (गौतम !) ततगति वह है, जिसके द्वारा जिस ग्राम यावत् सन्निवेश के लिए प्रस्थान किया हुआ व्यक्ति (अभी) पहुँचा नही, बीच मार्ग मे ही है । यह है ततगति (का स्वरूप ।)

१०९१ से किं तं बंधणच्छेयणगती ?

बंधणच्छेयणगती जेणं जीवो वा सरीराओ सरीरं वा जीवाओ । से त्तं बंधणच्छेयणगती ।

[१०९१ प्र] वह बन्धनछेदनगति क्या है ?

[१०९१ उ] बन्धनछेदनगति वह है, जिसके द्वारा जीव शरीर से (बन्धन तोडकर बाहर निकालता है), अथवा शरीर जीव से (पृथक् होता है ।) यह हुआ बन्धनछेदनगति (का निरूपण)

१०९२. से किं त उववायगती ?

उववायगती तिविहा पण्णत्ता । त जहा—खेत्तोववायगती १ भवोववायगती २ णोभवोववात-गती ३ ।

[१०९२ प्र] उपपातगति कितने प्रकार की है ?

[१०९२ उ] उपपातगति तीन प्रकार की कही गई है, यथा—१. क्षेत्रोपपातगति, २ भवोप-पातगति और ३. नोभवोपपातगति ।

१०९३. से किं तं खेत्तोववायगती ?

खेत्तोववायगती पचविहा पण्णत्ता । त जहा—णेरइयखेत्तोववातगती १ तिरिक्खजोणियखेत्तो ववायगती २ मणूसखेत्तोववातगती ३ देवखेत्तोववातगती ४ सिद्धखेत्तोववायगती ५ ।

[१०९३ प्र] क्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

[१०९३ उ] क्षेत्रोपपोतगति पाच प्रकार की कही गई है । यथा—१ नैरयिकक्षेत्रोपपात-गति, २ तिर्यञ्चयोनिकक्षेत्रोपपातगति, ३ मनुष्यक्षेत्रोपपातगति, ४ देवक्षेत्रोपपातगति और ५ सिद्धक्षेत्रोपपातगति ।

१०९४. से किं तं णेरइयखेत्तोववातगती ?

णेरइयखेत्तोववायगती सत्तविहा पण्णत्ता। तं जहा – रयणप्पभापुढविणेरइयखेत्तोववातगती जाव अहेसत्तमापुढविणेरइयखेत्तोववायगती। से त्तं णेरइयखेत्तोववायगती।

[१०९४ प्र.] नैरयिकक्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

[१०९४ उ.] (वह) सात प्रकार की कही गई है—रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिकक्षेत्रोपपातगति यावत् अधस्तनसप्तमपृथ्वीनैरयिकक्षेत्रोपपातगति। यह हुई नैरयिक क्षेत्रोपपातगति (की प्ररूपणा)।

१०९५. से किं तं तिरिक्खजोणियखेत्तोववायगती ?

तिरिक्खजोणियखेत्तोववायगती पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—एगिंदियतिरिक्खजोणियखेत्तोववायगती जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणियखेत्तोववायगती। से त्तं तिरिक्खजोणियखेत्तोववायगती।

[१०९५ प्र.] तिर्यञ्चयोनिकक्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

[१०९५ उ.] (वह) पांच प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—१ एकेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकक्षेत्रोपपातगति, २ द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकक्षेत्रोपपातगति, ३ त्रीन्द्रियतिर्यग्योनिकक्षेत्रोपपातगति, ४ चतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिकक्षेत्रोपपातगति और ५ पचेन्द्रियतिर्यग्योनिकक्षेत्रोपपातगति। यह हुआ तिर्यग्योनिकक्षेत्रोपपातगति का निरूपण।

१०९६. से किं तं मणूसखेत्तोववायगई ?

मणूसखेत्तोववायगई दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिममणूसखेत्तोववायगती गब्भवक्कंतियमणुस्सखेत्तोववायगई। से त्तं मणूसखेत्तोववायगती।

[१०९६ प्र.] वह मनुष्यक्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

[१०९६ उ.] (वह) दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१. सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-क्षेत्रोपपातगति और २ गर्भज-मनुष्यक्षेत्रोपपातगति। यह हुआ मनुष्यक्षेत्रोपपातगति का प्रतिपादन।

१०९७. से किं तं देवखेत्तोववायगती ?

देवखेत्तोववायगती चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—भवणवइ जाव वेमाणियदेवखेत्तोववायगती। से त्तं देवखेत्तोववायगती।

[१०९७ प्र.] वह देवक्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

[१०९७ उ.] (वह) चार प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—१. भवनपतिदेवक्षेत्रोपपातगति, यावत् (२ वाणव्यन्तरदेवक्षेत्रोपपातगति, ३ ज्योतिष्कदेवक्षेत्रोपपातगति और) ४ वैमानिक देव क्षेत्रोपपातगति। यह हुआ देवक्षेत्रोपपातगति का निरूपण।

१०९८. से किं तं सिद्धखेत्तोववायगती ?

सिद्धखेत्तोववायगती, अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवयवाससपक्खि सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगती, जंबुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवत-सिहरिवासहरपव्वयसपक्खि सपडिदिसिं

सिद्धखेत्तोववायगती, जंबुद्दीवे दीवे हेमवय-हेरण्णवयवाससपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववातगती, जबुद्दीवे दीवे सद्दावति-वियडावतिवट्टवेयड्ढसपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववायगती, जबुद्दीवे दीवे महाहिमवत-रुप्पिवासहरपव्वयसपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववातगती, जंबुद्दीवे दीवे हरिवास-रम्मग-वाससपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववातगती, जबुद्दीवे दीवे गंधावती-मालवंतपरियायवट्टवेयड्ढसपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववातगती, जंबुद्दीवे दीवे णिसढ-णीलवंतवासहरपव्वयसपक्खि सपडिदिसि सिद्ध-खेत्तोववातगती, जबुद्दीवे दीवे पुव्वविदेह-प्रवरविदेहसपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववातगती, जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुत्तरकुरुसपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववायगती, जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स सपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववायगती, लवणसमुद्दे सपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववायगती, धायइसडे दीवे पुरिमद्धपच्छिमद्धमंदरपव्वयस्स सपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववातगती, कालोयसमुद्दे सपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववातगती, पुक्खरवरदीवड्ढपुरिमड्ढभरहेरवयवाससपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तो-ववातगती, एव जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्छिमड्ढमदरपव्वयसपक्खि सपडिदिसि सिद्धखेत्तोववातगती। से त्त सिद्धखेत्तोववातगती। से त्तं खेत्तोववातगती १।

[१०९८ प्र] वह सिद्धक्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

[१०९८ उ] सिद्धक्षेत्रोपपातगति अनेक प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भरत और ऐरवत वर्ष (क्षेत्र) मे सब दिशाओ मे, सब विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपात-गति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे क्षुद्र हिमवान् और शिखरी वर्षधरपर्वत मे सब दिशाओ मे और विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे हैमवत और हैरण्यवत वर्ष मे सब दिशाओं और विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे शब्दापाती और विकटापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत मे समस्त दिशाओ-विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे महाहिमवन्त और रुक्मी नामक वर्षधर पर्वतों में सब दिशाओ-विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे हरिवर्ष और रम्यकवर्ष मे सब दिशाओ-विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे गन्धावती (गन्धापाती) माल्यवन्त-पर्याय वृत्तवैताढ्यपर्वत मे समस्त दिशाओ-विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे निषध और नीलवन्त नामक वर्षधर पर्वत मे सब दिशाओ और विदिशाओ मे सिद्ध-क्षेत्रोपपातगति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे पूर्वविदेह और अपरविदेह मे सब दिशाओ और विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे देवकुरु और उत्तरकुरु (क्षेत्र) मे सब दिशाओ-विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति है तथा जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दरपर्वत की सब दिशाओ और विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति है। लवणसमुद्र मे सब दिशाओ और विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति है, धातकीषण्डद्वीप मे पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध मन्दरपर्वत की सब दिशाओ-विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति है, कालोदसमुद्र मे समस्त दिशाओ-विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपात-गति है, पुष्करवरद्वीपार्द्ध के पूर्वार्द्ध के भरत और ऐरवत वर्ष मे सब दिशाओ और विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति है, पुष्करवरद्वीपार्द्ध के पश्चिमार्द्ध मन्दरपर्वत मे सब दिशाओ-विदिशाओ मे सिद्धक्षेत्रोपपातगति है।

यह हुआ सिद्धक्षेत्रोपपातगति का वर्णन। इस प्रकार क्षेत्रोपपातगति का निरूपण पूर्ण हुआ ।।१।।

१०९९. से किं तं भवोववातगती ?

भवोववातगती चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—णेरइय० जाव देवभवोववातगती ।

से किं तं णेरइयभवोववातगती ? णेरइयभवोववातगती सत्तविहा पण्णत्ता । तं जहा० । एव सिद्धवज्जो भेओ भाणियव्वो, जो चेव खेत्तोववातगतीए सो चेव भवोववातगतीए । से तं भवोववातगती २ ।

[१०९९ प्र] भवोपपातगति कितने प्रकार की है ?

[१०९९ उ] भवोपपातगति चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—नैरयिक-भवोपपातगति (से लेकर) देवभवोपपातगति पर्यन्त ।

[प्र] नैरयिकभवोपपातगति किस प्रकार की है ?

[उ] नैरयिक भवोपपातगति सात प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—इत्यादि सिद्धो को छोड कर सब भेद (तिर्यग्योनिकभवोपपातगति के भेद, मनुष्यभवोपपातगति के भेद और देव-भवोपपातगति के भेद) कहने चाहिए । जो प्ररूपणा क्षेत्रोपपातगति के विषय मे की गई थी, वही भवोपपातगति के विषय में कहनी चाहिए ।

यह हुआ भवोपपातगति का निरूपण ।

११००. से किं तं णोभवोववातगती ?

णोभवोववातगती दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पोग्गलणोभवोववातगती य सिद्धणोभवोववातगती य ।

[११०० प्र] वह नोभवोपपातगति किस प्रकार की है ?

[११०० उ] नोभवोपपातगति दो प्रकार की कही है, वह इस प्रकार—पुद्‍गल-नोभवोपपातगति और सिद्ध-नोभवोपपातगति ।

११०१. से किं तं पोग्गलणोभवोववातगती ?

पोग्गलणोभवोववातगती जण्णं परमाणुपोग्गले लोगस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्छिमिल्लं चरिमंतं एगसमएण गच्छति, पच्छिमिल्लाओ वा चरिमंताओ पुरत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएण गच्छति, दाहिणिल्लाओ वा चरिमंताओ उत्तरिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति, एवं उत्तरिल्लातो दाहिणिल्लं, उवरिल्लाओ हेट्ठिल्लं, हेट्ठिल्लाओ वा उवरिल्लं । से त्तं पोग्गलणोभवोववातगती ।

[११०१ प्र] वह पुद्‍गल-नोभवोपपातगति क्या है ?

[११०१ उ] जो पुद्‍गल परमाणु लोक के पूर्वी चरमान्त अर्थात् छोर से पश्चिमी चरमान्त तक एक ही समय मे चला जाता है, अथवा पश्चिमी चरमान्त से पूर्वी चरमान्त तक एक समय मे गमन करता है, अथवा दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त तक एक समय मे गति करता है, या उत्तरी चरमान्त से दक्षिणी चरमान्त तक तथा ऊपरी चरमान्त (छोर) से नीचले चरमान्त तक एव नीचले चरमान्त से ऊपरी चरमान्त तक एक समय मे ही गति करता है, यह पुद्‍गल-नोभवोपपातगति कहलाती है । यह हुआ पुद्‍गल-नोभवोपपातगति का निरूपण ।

११०२ से किं तं सिद्धणोभवोववातगती ?

सिद्धणोभवोववातगती दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—अणंतरसिद्धणोभवोववातगती य परंपरसिद्धणोभवोववातगती य ।

[११०२ प्र] वह सिद्ध-नोभवोपपातगति कितने प्रकार की है ?

[११०२ उ] सिद्ध-नोभवोपपातगति दो प्रकार की कही है, वह इस प्रकार—अनन्तर-सिद्ध-नोभवोपपातगति और परम्परसिद्ध-नोभवोपपातगति ।

११०३. से किं तं अणंतरसिद्धणोभवोववातगति ?

अणंतरसिद्धणोभवोववातगती पन्नरसविहा पण्णत्ता । तं जहा—तित्थसिद्धअणंतरसिद्धणोभवोववातगति य जाव अणेगसिद्धणोभवोववातगती य । [से तं अणंतरसिद्धणोभवोववातगती ।]

[११०३ प्र] वह अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपातगति कितने प्रकार की है ?

[११०३ उ] अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपातगति पन्द्रह प्रकार की है । वह इस प्रकार—तीर्थसिद्ध-अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपातगति (से लेकर) यावत् अनेकसिद्ध-अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपातगति ।

यह हुआ उस अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपातगति का निरूपण ।

११०४ से किं तं परंपरसिद्धणोभवोववातगती ?

परंपरसिद्धणोभवोववातगती अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा अपढमसमयसिद्धणोभवोववातगती एवं दुसमयसिद्धणोभवोववातगती जाव अणंतसमयसिद्धणोभवोववातगती । से त्तं परंपरसिद्धणोभवोववातगती । से त्तं सिद्धणोभवोववातगती । से त्तं णोभवोववायगती ३ । से त्तं उववातगती ।

[११०४ प्र] परम्परसिद्ध-नोभवोपपातगति कितने प्रकार की है ?

[११०४ उ] परम्परसिद्ध-नोभवोपपातगति अनेक प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—अप्रथमसमयसिद्ध-नोभवोपपातगति, एवं द्विसमयसिद्ध-नोभवोपपातगति यावत् (त्रिसमय से लेकर संख्यातसमय, असंख्यातसमयसिद्ध) अनन्तसमयसिद्ध-नोभवोपपातगति । यह हुआ परम्पर-सिद्ध-नोभवोपपातगति (का निरूपण ।) (इसके साथ ही) उक्त सिद्ध-नोभवोपपातगति (का वर्णन हुआ । तदनुसार) पूर्वोक्त नोभवोपपातगति (की प्ररूपणा समाप्त हुई ।) (इसकी समाप्ति के साथ ही) उपपातगति (का वर्णन पूर्ण हुआ ।)

११०५. से किं तं विहायगती ?

विहायगती सत्तरसविहा पण्णत्ता । तं जहा फुसमाणगती १ अफुसमाणगती २ उवसंपज्जमाणगती ३ अणुवसंपज्जमाणगती ४ पोग्गलगती ५ मंडूयगती ६ णावागती ७ णयगती ८ छायागती ९ छायाणुवायगती १० लेसागती ११ लेस्साणुवायगती १२ उद्दिस्सपविभत्तगती १३ चउपुरिसपविभत्तगती १४ वंकगती १५ पंकगती १६ बंधणविमोयणगती १७ ।

[११०५ प्र] विहायोगति कितने प्रकार की है ?

[११०५ उ] विहायोगति सत्तरह प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) स्पृशद्-गति, २ अस्पृशद्गति, ३ उपसम्पद्यमानगति, ४ अनुपसम्पद्यमानगति, ५ पुद्गलगति, ६ मण्डूकगति, ७ नौकागति, ८ नयगति, ९ छायागति, १० छायानुपातगति, ११ लेश्यागति, १२ लेश्यानुपात-गति, १३ उद्दिश्यप्रविभक्तगति, १४ चतुःपुरुषप्रविभक्तगति, १५ वक्रगति, १६ पकगति और १७ बन्धनविमोचनगति।

११०६ से किं तं फुसमाणगती ?

फुसमाणगती जण्णं परमाणुपोग्गले दुपदेसिय जाव अणंतपदेसियाणं खंधाणं अण्णमण्णं फुसित्ता णं गती पवत्तइ। से त्तं फुसमाणगती १।

[११०६ प्र] वह स्पृशद्गति क्या है ?

[११०६ उ] परमाणु पुद्गल की अथवा द्विप्रदेशी (से लेकर) यावत् (त्रिप्रदेशी, चतुःप्रदेशी, पञ्चप्रदेशी, षट्प्रदेशी, सप्तप्रदेशी, अष्टप्रदेशी, नवप्रदेशी, दशप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी) अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की एक दूसरे को स्पर्श करते हुए जो गति होती है, वह स्पृशद्गति है। यह हुआ स्पृशद्गति का वर्णन ॥ १ ॥

११०७. से किं तं अफुसमाणगती ?

अफुसमाणगती जण्णं एतेसिं चेव अफुसित्ता णं गती पवत्तइ। से त्तं अफुसमाणगती २।

[११०७ प्र] अस्पृशद्गति किसे कहते हैं ?

[११०७ उ] उन्हीं पूर्वोक्त परमाणु पुद्गलों से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की परस्पर स्पर्श किये बिना ही जो गति होती है, वह अस्पृशद्गति है। यह हुआ अस्पृशद्गति का स्वरूप ॥ २ ॥

११०८. से किं तं उवसपज्जमाणगती ?

उवसपज्जमाणगती जण्णं रायं वा जुवरायं वा ईसरं वा तलवरं वा माडंबियं वा कोडुंबियं वा इब्भं वा सिट्ठिं वा सेणावइं वा सत्थवाहं वा उवसंपज्जित्ता णं गच्छति। से त्तं उवसपज्जमाणगती ३।

[११०८ प्र] वह उपसम्पद्यमानगति क्या है ?

[११०८ उ] उपसम्पद्यमानगति वह है, जिसमें व्यक्ति राजा, युवराज, ईश्वर (ऐश्वर्यशाली), तलवार (किसी नृप द्वारा नियुक्त पट्टधर शासक), माडम्बिक (मण्डलाधिपति), इभ्य (धनाढ्य), सेठ, सेनापति या सार्थवाह को आश्रय करके (उनके सहयोग या सहारे से) गमन करता हो। यह हुआ उपसम्पद्यमानगति का स्वरूप ॥ ३ ॥

११०९ से किं तं अणुवसंपज्जमाणगती ?

अणुवसपज्जमाणगती जण्णं एतेसिं चेव अण्णमण्णं अणुवसंपज्जित्ता णं गच्छति। से त्तं अणुव-संपज्जमाणगती ४।

[११०९ प्र] वह अनुपसम्पद्यमानगति क्या है ?

[११०९ उ] इन्हीं पूर्वोक्त (राजा आदि) का परस्पर आश्रय न लेकर जो गति होती है, वह अनुपसम्पद्यमान गति है। यह हुआ अनुपसम्पद्यमान गति का स्वरूप ।। ४ ।।

१११०. से किं तं पोग्गलगती ?

पोग्गलगती जण्णं परमाणुपोग्गलाण जाव अणंतपएसियाण खंधाण गती पवत्तति । से त्त पोग्गलगती ५ ।

[१११० प्र.] पुद्गलगति क्या है ?

[१११० उ] परमाणु पुद्गलो की यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्धो की गति पुद्गलगति है। यह हुआ पुदगलगति का स्वरूप ।। ५ ।।

११११. से किं तं मंडूयगती ?

मंडूयगती जण्णं मंडूए उप्फिडिया उप्फिडिया गच्छति । से त्त मंडूयगती ६ ।

[११११ प्र] मण्डूकगति का क्या स्वरूप है ?

[११११ उ] मेढक जो उछल-उछल कर गति करता है, वह मण्डूकगति कहलाती है। यह हुआ मण्डूकगति (का स्वरूप।) ।। ६ ।।

१११२. से किं तं णावागती ?

णावागती जण्ण णावा पुव्ववेयालीओ दाहिणवेयालिं जलपहेण गच्छति, दाहिणवेयालीओ वा अवरवेयालिं जलपहेण गच्छति । से त्त णावागती ७ ।

[१११२ प्र] वह नौकागति क्या है ?

[१११२ उ] जैसे नौका पूर्व वैताली (तट) से दक्षिण वैताली की ओर जलमार्ग से जाती है, अथवा दक्षिण वैताली से अपर वैताली की ओर जलपथ से जाती है, ऐसी गति नौकागति है। यह हुआ नौकागति का स्वरूप ।। ७ ।।

१११३. से किं त णयगती ?

णयगती जण्ण णेगम-संगह-ववहार-उज्जुसुय-सद्द-समभिरूढ-एवंभूयाण णयाण जा गती अहवा सव्वणया वि ज इच्छति । से त्त णयगती ८ ।

[१११३ प्र] नयगति का क्या स्वरूप है ?

[१११३ उ] नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवम्भूत, इन सात नयो की जो प्रवृत्ति है, अथवा सभी नय जो मानने (चाहते या विवक्षा करते) है, वह नयगति है। यह हुआ नयगति का स्वरूप ।। ८ ।।

१११४. से किं तं छायागती ?

छायागती जण्ण हयच्छायं वा गयच्छायं वा नरच्छायं वा किन्नरच्छायं वा महोरगच्छायं वा गंधव्वच्छायं वा उसहच्छायं वा रहच्छायं वा छत्तच्छायं वा उवसंपज्जित्ता णं गच्छति । से त्त छायागती ९ ।

[१११४ प्र.] छायागति किसे कहते है ?

[१११४ उ] अश्व की छाया, हाथी की छाया, मनुष्य की छाया, किन्नर की छाया, महोरग की छाया, गन्धर्व की छाया, वृषभछाया, रथछाया, छत्रछाया का आश्रय करके (छाया का अनुसरण करके या छाया का आश्रय लेने के लिए) जो गमन होता है, वह छायागति है। यह है छायागति का वर्णन ।। ९ ।।

१११५. से किं त छायाणुवातगती ?

छायाणुवातगती जण्ण पुरिसं छाया अणुगच्छति णो पुरिसे छाय अणुगच्छति। से त्त छायाणुवातगती १० ।

[१११५ प्र] छायानुपातगति किसे कहते हैं ?

[१११५ उ] छाया पुरुष आदि अपने निमित्त का अनुगमन करती है, किन्तु पुरुष छाया का अनुगमन नही करता, वह छायानुपातगति है। यह हुआ छायानुपातगति (का स्वरूप।) ।। १० ।।

१११६ से किं त लेस्सागती ?

लेस्सागती जण्ण कण्हलेस्सा णीललेस्स पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति, एव णीललेस्सा काउलेस्स पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए परिणमति, एव काउलेस्सा वि तेउलेस्सं, तेउलेस्सा वि पम्हलेस्स, पम्हलेस्सा वि सुक्कलेस्स पप्प तारूवत्ताए जाव परिणमति। से त्त लेस्सागती ११ ।

[१११६ प्र] लेश्यागति का क्या स्वरूप है ?

[१११६ उ] कृष्णलेश्या (के द्रव्य) नीललेश्या (के द्रव्य) को प्राप्त होकर उसी के वर्णरूप मे, उसी के गन्धरूप मे, उसी के रसरूप मे तथा उसी के स्पर्शरूप मे बार-बार जो परिणत होती है, इसी प्रकार नीललेश्या भी कापोतलेश्या को प्राप्त होकर उसी के वर्णरूप मे यावत् उसी के स्पर्शरूप मे जो परिणत होती है, इसी प्रकार कापोतलेश्या भी तेजोलेश्या को, तेजोलेश्या पद्मलेश्या को तथा पद्मलेश्या शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर जो उसी के वर्णरूप मे यावत् उसी के स्पर्शरूप मे परिणत होती है, वह लेश्यागति है।

यह है लेश्यागति का स्वरूप ।। ११ ।।

१११७. से कि त लेस्साणुवायगती ?

लेस्साणुवायगती जल्लेस्साइ दव्वाइं परियाइत्ता काल करेति तल्लेसेसु उववज्जति। तं जहा—कण्हलेस्सेसु वा जाव सुक्कलेस्सेसु वा। से त्त लेस्साणुवायगती १२ ।

[१११७ प्र] लेश्यानुपातगति किसे कहते है ?

[१११७. उ] जिस लेश्या के द्रव्यो को ग्रहण करके (जीव) काल करता (मरता) है, उसी लेश्या वाले (जीवो) मे उत्पन्न होता है। जैसे -कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले द्रव्यो मे। (इस प्रकार की गति) लेश्यानुपातगति है।

यह हुआ लेश्यानुपातगति का निरूपण ।। १२ ।।

१११८. से किं तं उद्दिस्सपविभत्तगती ?

उद्दिस्सपविभत्तगती जेणं आयरियं वा उवज्झायं वा थेरं वा पवत्तिं वा गणिं वा गणहरं वा गणावच्छेइयं वा उद्दिसिय २ गच्छति । से त्तं उद्दिस्सपविभत्तगती १३ ।

[१११८ प्र.] उद्दिश्यप्रविभक्तगति का क्या स्वरूप है ?

[१११८ उ.] आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्त्तक, गणि, गणधर अथवा गणावच्छेदक को लक्ष्य (उद्देश्य) करके जो गमन किया जाता है, वह उद्दिश्यप्रविभक्तगति है ।

यह हुआ उद्दिश्यप्रविभक्तगति का स्वरूप ।।१३।।

१११९. से किं तं चउपुरिसपविभत्तगती ?

चउपुरिसपविभत्तगती से जहाणामए चत्तारि पुरिसा समगं पट्ठिता समगं पज्जवट्ठिया १ समगं पट्ठिया विसमं पज्जवट्ठिया २ विसमं पट्ठिया समगं पज्जवट्ठिया ३ विसमं पट्ठिया विसमं पज्जवट्ठिया ४ । से त्तं चउपुरिसपविभत्तगती १४ ।

[१११९ प्र.] चतुःपुरुषप्रविभक्तगति किसे कहते है ?

[१११९ उ.] जैसे—१. किन्ही चार पुरुषो का एक साथ प्रस्थान हुआ और एक ही साथ पहुँचे, २ (दूसरे) चार पुरुषो का एक साथ प्रस्थान हुआ, किन्तु वे एक साथ नही (आगे-पीछे) पहुँचे, ३ (तीसरे) चार पुरुषो का एक साथ प्रस्थान नहीं (आगे-पीछे) हुआ, किन्तु पहुँचे चारो एक साथ, तथा ४ (चौथे) चार पुरुषो का प्रस्थान एक साथ नही (आगे-पीछे) हुआ और एक साथ भी नही (आगे-पीछे) पहुँचे, इन चारो पुरुषो की चतुर्विकल्पात्मकगति चतुःपुरुषप्रविभक्तगति है । यह हुआ चतुःपुरुषप्रविभक्तगति का स्वरूप ।।१४।।

यह है वक्रगति का निरूपण ।। १५ ।।

११२०. से किं तं वंकगती ?

वंकगती चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—घट्टणया १ थंभणया २ लेसणया ३ पवडणया ४ । से त्तं वंकगती १५ ।

[११२० प्र.] वक्रगति किस प्रकार की है ?

[११२० उ.] वक्रगति चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) घट्टन से, (२) स्तम्भन से, (३) श्लेषण से और (४) प्रपतन से ।

यह हुआ पंकगति (का स्वरूप) ।।१५।।

११२१. से किं तं पंकगती ?

पंकगती से जहाणामए केइ पुरिसे सेयंसि वा पंकंसि वा उदयंसि वा कायं उव्वहिया २ गच्छति । से त्तं पंकगती १६ ।

[११२१ प्र.] पंकगति का क्या स्वरूप है ?

[११२१ उ.] जैसे कोई पुरुष कादे मे, कीचड मे अथवा जल मे (अपने) शरीर को दूसरे के साथ जोडकर गमन करता है, (उसकी) यह (गति) पंकगति है ।

११२२ से किं तं बंधणविमोयणगती ?[1]

बंधणविमोयणगती जण्णं अंबाण वा अंबाडगाण वा माउलुंगाण वा बिल्लाण वा कविट्ठाण वा भल्लाण वा फणसाण वा दाडिमाण वा पारेवताण वा अक्खोडाण वा चोराण वा बोराण वा तिंदुयाण वा पक्काण परियागयाणं बंधणाओ विप्पमुक्काण णिव्वाघाएण अहे वीससाए गती पवत्तइ। से त्तं बंधणविमोयणगती १७। [से त्तं विहायगती। से त्तं गइप्पवाए।]

।। पण्णवणाए भगवतीए सोलसमं पओगपयं समत्तं ।।

[११२२ प्र] वह बन्धनविमोचनगति क्या है ?

[११२२ उ] अत्यन्त पक कर तैयार हुए, अतएव बन्धन से विमुक्त (छूटे हुए) आम्रो, आम्रातको, बिजौरो, बिल्वफलो (बेल के फलो) कवीठो, भद्र नामक फलो, कटहलो (पनसो), दाडिमो, पारेवत नामक फलविशेषो, अखरोटो, चोर फलो (चारो), बोरो अथवा तिन्दुकफलो की रुकावट (व्याघात) न हो तो स्वभाव से ही जो अधोगति होती है, वह बन्धनविमोचनगति है।

यह हुआ बन्धनविमोचनगति का स्वरूप ।।१७।। इसके साथ ही विहायोगति की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

यह हुआ गतिप्रपात का वर्णन।

विवेचन--गतिप्रपात के भेद-प्रभेद एव उनके स्वरूप का निरूपण—प्रस्तुत ३७ सूत्रो (सू. १०८६ से ११२२ तक) मे प्रयोगगति आदि पाचो प्रकार के गतिप्रपातो के स्वरूप एव प्रकारो की प्ररूपणा की गई है।

विहायोगति की व्याख्या आकाश मे होने वाली गति को विहायोगति कहते है। वह १७ प्रकार की है। (१) **स्पृशद्गति**—परमाणु आदि अन्य वस्तुओ के साथ स्पृष्ट हो-होकर अर्थात्-परस्पर सम्बन्ध को प्राप्त हो करके जो गमन करते है, वह स्पृशद्गति कहलाती है। (२) **अस्पृशद्गति**--परमाणु आदि अन्य परमाणु आदि से अस्पृष्ट रहकर यानि परस्पर सम्बन्ध का अनुभव न करके जो गमन करते है, वह अस्पृशद्गति है। जैसे परमाणु एक ही समय मे एक लोकान्त से अपर लोकान्त तक पहुँच जाता है। (३) **उपसम्पद्यमानगति** किसी दूसरे का आश्रय लेकर (यानी दूसरे के सहारे से) गमन करना। जैसे--धन्ना सार्थवाह के आश्रय से धर्मघोष आचार्य का गमन। (४) **अनुपसम्पद्यमानगति**—बिना किसी का आश्रय लिये मार्ग मे गमन करना।(५) **पुद्गलगति**—पुद्गल की गति। (६) **मण्डूकगति** मेढक की तरह उछल-उछल कर चलना। (७) **नौकागति**—नौका द्वारा महानदी आदि मे गमन करना। (८) **नयगति**—नैगमादि नयो द्वारा स्वमत की पुष्टि करना अथवा सभी नयो द्वारा परस्पर सापेक्ष होकर प्रमाण से अबाधित वस्तु को व्यवस्थापना करना। (९) **छायागति** छाया का अनुसरण (अनुगमन) करके अथवा उसके सहारे से गमन करना। (१०) **छायानुपातगति**—छाया का अपने निमित्तभूत पुरुष का अनुपात—अनुसरण करके गति करना छायानुपातगति है, क्योकि छाया पुरुष का अनुसरण करती है, किन्तु पुरुष छाया का अनुसरण नही करता। (११) **लेश्यागति**—तिर्यचो और मनुष्यो के कृष्णादि लेश्या के द्रव्य नीलादि लेश्या के द्रव्यो को

१ ग्रन्थाग्रम् ५०००

प्राप्त करके तद्रूप मे परिणत होते है, वह लेश्यागति है। (१२) **लेश्यानुपातगति**—लेश्या के अनुपात अर्थात्—अनुसार गमन करना लेश्यानुपातगति है। जीव लेश्याद्रव्यो का अनुसरण करता है, लेश्याद्रव्य जीव का अनुसरण नही करता। जैसा कि मूलपाठ मे कहा गया है जिस लेश्या के द्रव्यो को ग्रहण करके जीव काल करता है, वह उसी लेश्या मे उत्पन्न होता है। (१३) **उद्दिश्यप्रविभक्तगति**—प्रविभक्त यानि प्रतिनियत आचार्यादि का उद्देश्य करके उनके पास से धर्मोपदेश सुनने या उनसे प्रश्न पूछने के लिए जो गमन किया जाता है, वह उद्दिश्यप्रविभक्तगति है। (१४) **चतुःपुरुषप्रविभक्तगति**—चार प्रकार के पुरुषो की चार प्रकार की प्रविभक्त - प्रतिनियत गति चतु पुरुषप्रविभक्तगति कहलाती है। (१५) **वक्रगति**— चार प्रकार से वक्र -टेढी-मेढी गति करना। वक्रगति के चार प्रकार ये है—**घट्टनता**—खजा (लगड़ी) चाल (गति), **स्तम्भनता**—गर्दन मे धमनी आदि नाडी का स्तम्भन होना अथवा आत्मा के अगप्रदेशो का स्तब्ध हो जाना स्तम्भनता है, **श्लेषणता**—घुटनो आदि के साथ जाघो आदि का सयोग होना **श्लेषणता** है, **प्रपतन** – ऊपर से गिरना। (१६) **पकगति**—पक अर्थात् कीचड मे गति करना। उपलक्षण से पक शब्द से 'जल' का भी ग्रहण करना चाहिए। अत. पक अथवा जल मे अपने शरीर को किसी के साथ बाध कर उसके बल से चलना पकगति है। (१७) **बन्धनविमोचनगति**— आम आदि फलो का अपने वृन्त (बधन) से छूट कर स्वभावत नीचे गिरना, बन्धनविमोचनगति है।[1]

सपक्ष सप्रतिदिक् - पक्ष का अर्थ है—पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण रूप पार्श्व। प्रतिदिक् का अर्थ है— विदिशाएँ, इनके साथ।

॥ प्रज्ञापनासूत्र : सोलहवाँ प्रयोगपद समाप्त ॥

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय· वृत्ति, पत्राक ३२८-३२९

सत्तरसमं लेस्सापयं

सत्तरहवाँ लेश्यापद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र का यह सत्तरहवाँ 'लेश्यापद' है।

- 'लेश्या' आत्मा के साथ कर्मों को श्लिष्ट करने वाली है। जीव का यह एक परिणाम-विशेष है। इसलिए आध्यात्मिक विकास मे अवरोधक होने से लेश्या पर सभी पहलुओ से विचार करना आवश्यक है। इसी उद्देश्य से इस पद मे छह उद्देशको द्वारा लेश्या का सागोपाग विचार किया गया है।

- लेश्या का मुख्य कारण मन-वचन-काया का योग है। योगनिमित्तक होने पर भी लेश्या योगान्तर्गत कृष्णादि द्रव्यरूप है। योगान्तर्गत द्रव्यो मे कषायो को उत्तेजित करने का सामर्थ्य है। अत जहाँ कषाय से अनुरजित आत्मा का परिणाम हुआ, वहाँ लेश्या अशुभ, अशुभतर एव अशुभतम बनती जाती है, जहाँ अध्यवसाय केवल योग के साथ होता है, वहाँ लेश्या प्रशस्त एव शुभ होती जाती है।[1]

- प्रस्तुत पद के छह उद्देशको मे से प्रथम उद्देशक मे नारक आदि चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के आहार, शरीर, श्वासोच्छ्वास, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया और आयुष्य की समता-विषमता के सम्बन्ध मे पृथक्-पृथक् सकारण विचार किया गया है। इसके पश्चात् कृष्णादि लेश्या-विशिष्ट २४ दण्डकवर्ती जीवो के विषय मे पूर्वोक्त आहारादि सप्त द्वारो की दृष्टि से विचारणा की गई है।

- द्वितीय उद्देशक मे लेश्या के ६ भेद बता कर नरकादि चार गतियो के जीवो मे से छह लेश्याओ में से किसके कितनी लेश्याएँ होती हैं, इसकी चर्चा की गई है। साथ ही कृष्णादिलेश्याविशिष्ट चौवोस दण्डकीय जीवो के अल्पबहुत्व की विस्तृत प्ररूपणा की गई है। अन्त मे कृष्णादि-लेश्यायुक्त जीवो मे कौन किससे अल्पर्द्धिक या महर्द्धिक है ? इसका विचार किया गया है।

- तृतीय उद्देशक मे कृष्णादिलेश्यायुक्त चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के उत्पाद और उद्वर्तन के सम्बन्ध मे एकत्व-बहुत्व एव सामूहिक लेश्या की अपेक्षा से चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। इस पर से जन्मकाल और मृत्युकाल मे कौन-सा जीव किस लेश्या वाला होता है, यह स्पष्ट फलित हो जाता है। तत्पश्चात् उस-उस लेश्या वाले जीवो के अवधिज्ञान की विषयमर्यादा तथा उस-उस लेश्या वाले जीव मे कितने और कौन-से ज्ञान होते है ? यह प्ररूपणा की गई है।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३२९-३३०

(ख) 'लेश्याभिरात्मनि कर्माणि सश्लिष्यन्ते। योग-परिणामो लेश्या। जम्हा अयोगिकेवली अलेस्सो।'

—आवश्यक चूर्णि

(ग) जैन आगम साहित्य मनन और मीमासा, पृ २४७

- चतुर्थ उद्देशक मे बताया गया है कि एक लेश्या का, अन्य लेश्या के रूप मे परिणमन किस प्रकार होता है। छहो लेश्याओ के पृथक्-पृथक् वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की प्ररूपणा की गई है। तत्पश्चात् कृष्णादि लेश्याओ के कितने परिणाम, प्रदेश, प्रदेशावगाह, वर्गणा एव स्थान होते हैं, इसको प्ररूपणा की गई है। अन्त मे कृष्णादि लेश्याओ के स्थान की जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम दृष्टि से द्रव्य, प्रदेश एव द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व की विस्तृत प्ररूपणा की गई है।

- पचम उद्देशक के प्रारम्भ मे तो चतुर्थ उद्देशक के परिणामाधिकार की पुनरावृत्ति की गई है; उसके पश्चात् ऐसा निरूपण है कि उस-उस लेश्या का अन्य लेश्या के रूप मे तथा उनके वर्णादि रूप मे परिणमन नही होता। वृत्तिकार इस पूर्वापर विरोध का समाधान करते हुए कहते है कि चतुर्थ उद्देशक मे एक लेश्या का अन्य लेश्या के रूप मे परिणत होने का जो विधान है, वह तिर्यञ्चो और मनुष्यो को अपेक्षा से समझना चाहिए तथा पचम उद्देशक मे एक लेश्या का दूसरी लेश्या के रूप मे परिणत होने का जो निषेध है, वह देवो और नारको की अपेक्षा से समझना चाहिए।

- छठे उद्देशक मे भरतादि विविध क्षेत्रो मे रहने वाले मनुष्यो और मनुष्य-स्त्रियो की लेश्या सम्बन्धी चर्चा की गई है। इसके बाद यह प्रतिपादन किया गया है कि जनक और जननी की जो लेश्या होती है, वही लेश्या जन्य की होनी चाहिए, ऐसा कोई नियम नही है। जनक और जन्य की या जननी और जन्य की लेश्याएँ सम भी हो सकती है, विषम भी।[1]

- प्रस्तुत लेश्यापद इतना विस्तृत एव छह उद्देशकों मे विभक्त होते हुए भी उत्तराध्ययन आदि आगम-ग्रन्थो मे उस-उस लेश्यावाले जीवो के अध्यवसायो की तथा उनके लक्षण, स्थिति, गति एव परिणति की जैसी विस्तृत चर्चा है तथा भगवतीसूत्र आदि मे लेश्या के द्रव्य और भाव, इन दो भेदो का जो वर्णन मिलता है, वह इसमे नही है। कही-कही वर्णन मे पुनरावृत्ति भी हुई है।[2]

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा २, प्रस्तावना पृ १०४ से १०७ तक (ख) पण्णवणासुत्त भा १, पृ २७४ से ३०३ तक

२ (क) उत्तराध्ययन अ ३४, गा २१ से ६१ तक (ख) लेश्याकोष (सपा मोहनलाल बाठिया)

(ख) Doctrine of the Jainas (Sheubring)

(ग) भगवतीसूत्र श १२, उद्देशक ५, सू ४५२ पत्र ५७२

(घ) षट्खण्डागम पु १, पृ १३२, ३८६, पु. ३ पु ४५९, पु ४ पृ २९०

सत्तरसमं लेस्सापयं : पढमो उद्देसओ

सत्तरहवाँ लेश्यापद : प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशक में वर्णित सप्त द्वार

११२३. आहार सम सरीरा उस्सासे १ कम्म २ वण्ण ३ लेस्सासु ४ ।
समवेदण ५ समकिरिया ६ समाउया ७ चेव बोद्धव्वा ।।२०९।।[1]

[११२३ प्रथम-उद्देशक अधिकारगाथार्थ-] १ समाहार, सम-शरीर और (सम) उच्छ्वास, २ कर्म, ३ वर्ण, ४ लेश्या, ५ समवेदना, ६. समक्रिया तथा ७ समायुष्क, (इस प्रकार सात द्वार प्रथम उद्देशक मे) जानने चाहिए ।।२०९।।

विवेचन—प्रथम उद्देशक मे लेश्या से सम्बन्धित सप्तद्वार प्रस्तुत सूत्र मे लेश्यासम्बन्धी सम-आहार, शरीर-उच्छ्वासादि सातो द्वारो का निरूपण किया गया है ।

आहारादि प्रत्येक पद के साथ 'सम' शब्द प्रयोग—प्रस्तुत गाथा के पूर्वार्द्ध मे 'सम' शब्द का प्रयोग एक वार किया गया है, उसका सम्बन्ध प्रत्येक पद के साथ जोड लेना चाहिए । जैसे समाहार, समशरीर, समउच्छ्वास, समकर्म, समवर्ण, समलेश्या, समवेदना, समक्रिया और समायुष्क ।

लेश्या की व्याख्या जिसके द्वारा आत्मा कर्मों के साथ श्लेष को प्राप्त होता है, वह **लेश्या** है । लेश्या की शास्त्रीय परिभाषा है कृष्णादि द्रव्यो के सान्निध्य से होने वाला आत्मा का परिणाम **लेश्या** है । कहा भी है जैसे स्फटिक मणि के पास जिस वर्ण की वस्तु रख दी जाती है, स्फटिक मणि उसी वर्ण वाली प्रतीत होती है, उसी प्रकार कृष्णादि द्रव्यो के ससर्ग से आत्मा मे भी उसी तरह का परिणाम होता है । वही परिणाम **लेश्या** कहलाता है ।[2]

लेश्या का निमित्तकारण : योग या कषाय ? कृष्णादि द्रव्य क्या है ? इसका उत्तर यह है कि योग के सद्भाव मे लेश्या का सद्भाव होता है, योग का अभाव होने पर लेश्या का भी अभाव हो जाता है । इस प्रकार योग के साथ लेश्या का अन्वय-व्यतिरेक देखा जाता है । अतएव यह सिद्ध हुआ कि लेश्या योगनिमित्तक है । लेश्या योगनिमित्तक होने पर भी योग के अन्तर्गत द्रव्यरूप है, योग-निमित्तक कर्मद्रव्यरूप नही । अगर लेश्या को कर्मद्रव्यरूप माना जाएगा तो प्रश्न होगा—लेश्या घातिकर्मद्रव्यरूप है या अघातिकर्मद्रव्यरूप ? लेश्या घातिकर्मद्रव्यरूप तो हो नही सकती, क्योकि सयोगी केवली मे घातिकर्मों का अभाव होने पर भी लेश्या का सद्भाव होता है । वह अघातिकर्म-

---

१ **पाठान्तर** - किन्ही प्रतियो मे प्रस्तुत सात द्वारो के बदले 'आहार' के साथ शरीर और उच्छ्वास को सम्मिलित न मान कर पृथक्-पृथक् माना है, अतएव नौ द्वार गिनाए हैं । -स

२ (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ३२९

(ख) कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात् परिणामो य आत्मन ।
स्फटिकस्येव तत्राय, लेश्याशब्द प्रवर्त्तते ।।

द्रव्य भी नही कही जा सकती, क्योकि अयोगिकेवली मे अघातिकर्मों का सद्‌भाव होने पर भी लेश्या का अभाव होता है। अतएव पारिशेष्यन्याय से लेश्या को योगान्तर्गत द्रव्य ही मानना उचित है। वे ही योगान्तर्गत द्रव्य जब तक कषायो की विद्यमानता है, तब तक उनके उदय को भडकाने वाले होते हैं; क्योकि योग के अन्तर्गत द्रव्यो में कषाय के उदय को भडकाने का सामर्थ्य देखा जाता है। लेश्या कर्मों की स्थिति का कारण नही है, किन्तु कषाय स्थिति के कारण हैं। जो लेश्याएँ कषायोदयान्तर्गत होती है, वे ही अनुभागबन्ध का हेतु हैं।[1]

नैरयिकों में समाहारादि सात द्वारों की प्ररूपणा

११२४. णेरइया णं भंते ! सव्वे समाहारा सव्वे समसरीरा सव्वे समुस्सासणिस्सासा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ णेरइया णो सव्वे समाहारा जाव णो सव्वे समुस्सासणिस्सासा ?

गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—महासरीरा य अप्पसरीरा य। तत्थ ण जे ते महासरीरा ते ण बहुतराए पोग्गले आहारेंति बहुतराए पोग्गले परिणामेंति बहुतराए पोग्गले उस्ससति बहुतराए पोग्गले णीससंति, अभिक्खण आहारेंति अभिक्खणं परिणामेंति अभिक्खण ऊससति अभिक्खण णीससति। तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते णं अप्पतराए पोग्गले आहारेंति अप्पतराए पोग्गले परिणामेंति अप्पतराय पोग्गले ऊससति अप्पतराए पोग्गले णीससति आहच्च आहारेंति आहच्च परिणामेति आहच्च ऊससति आहच्च णीससति, से एतेणणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ णेरइया णो सव्वे समाहारा णो सव्वे समसरीरा णो सव्वे समुस्सासणीसासा १।

[११२४ प्र] भगवन् ! क्या नारक सभी समान आहार वाले है, सभी समान शरीर वाले है तथा सभी समान उच्छ्‌वास-नि श्वास वाले होते है ?

[११२४ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते हैं कि नारक सभी समाहार नही है, यावत् सम उच्छ्‌वास-नि श्वास वाले नही होते ?

[उ] गौतम ! नारक दो प्रकार के है, वे इस प्रकार—महाशरीर वाले और अल्पशरीर वाले। उनमे से जो महाशरीर वाले नारक होते है, वे बहुत अधिक पुद्‌गलो का आहार करते हैं, प्रभूततर पुद्‌गलो को परिणत करते है, बहुत-से पुद्‌गलो का उच्छ्‌वास लेते है और बहुत से पुद्‌गलो का नि श्वास छोडते है। वे बार-बार आहार करते है, बार-बार (पुद्‌गलो को) परिणत करते है, बार-बार उच्छ्‌वसन करते हे और बार-बार नि श्वसन करते हैं। उनमे जो छोटे (अल्प) शरीर वाले हैं, वे अल्पतर (थोडे) पुद्‌गलो का आहार करते हैं, अल्पतर पुद्‌गलो को परिणत करते हैं, अल्पतर पुद्‌गलो का उच्छ्‌वास लेते है और अल्पतर पुद्‌गलो का नि श्वास छोडते हैं। वे कदाचित्

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३३०-३३१
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भाग ४, पृ. ४-५

आहार करते हैं, कदाचित् (पुद्गलो को) परिणत करते है तथा कदाचित् उच्छ्वसन करते है और कदाचित् नि:श्वसन करते है। इस हेतु से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि नारक सभी समान आहार वाले नही होते, समान शरीर वाले नही होते और न ही समान उच्छ्वास-नि.श्वास वाले होते हैं। —प्रथम द्वार ॥१॥

११२५ णेरइया ण भंते सव्वे समकम्मा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? णेरइया णो सव्वे समकम्मा ?

गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पुव्वोववण्णगा य पच्छोववण्णगा य । तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते ण अप्पकम्मतरागा । तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा ते णं महाकम्मतरागा, एएणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चइ णेरइया णो सव्वे समकम्मा २ ।

[११२५ प्र] भगवन् ! नैरयिक क्या सभी समान कर्म वाले होते है ?

[११२५ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते हैं कि नारक सभी समान कर्म वाले नही होते ?

[उ] गौतम ! नारक दो प्रकार के कहे गए है, वे इस प्रकार पूर्वोपपन्नक (पहले उत्पन्न हुए) और पश्चादुपपन्नक (पीछे उत्पन्न हुए)। उनमे जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे (अपेक्षाकृत) अल्प कर्म वाले है और उनमे जो पश्चादुपपन्नक है, वे महाकर्म (बहुत कर्म) वाले हैं। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक सभी समान कर्म वाले नही होते। द्वितीय द्वार ॥२॥

११२६. णेरइया णं भंते ! सव्वे समवण्णा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ णेरइया णो सव्वे समवण्णा ?

गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पुव्वोववण्णगा य पच्छोववण्णगा य । तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते ण विसुद्धवण्णतरागा । तत्थ ण जे ते पच्छोववण्णगा ते णं अविसुद्धवण्णतरागा, से एएणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ णेरइया णो सव्वे समवण्णा ३ ।

[११२६ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक सभी समान वर्ण वाले होते है ?

[११२६ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते है कि नैरयिक सभी समान वर्ण वाले नही होते ?

[उ] गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पूर्वोपपन्नक और पश्चादुपपन्नक। उनमे से जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे अधिक विशुद्ध वर्ण वाले होते है और उनमे जो पश्चादुपपन्नक होते हैं, वे अविशुद्ध वर्ण वाले होते है। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक सभी समान वर्ण वाले नही होते। —तृतीय द्वार ॥३॥

११२७. एव जहेव वण्णेण भणिया तहेव लेस्सासु वि विसुद्धलेस्सतरागा अविसुद्धलेस्सतरागा य भाणियव्वा ४ ।

[११२७] जैसे वर्ण की अपेक्षा से नारको को विशुद्ध और अविशुद्ध कहा है, वैसे ही लेश्या की अपेक्षा भी नारको को विशुद्ध और अविशुद्ध कहना चाहिए । चतुर्थद्वार ॥४॥

११२८. णेरइया णं भंते ! सव्वे समवेदणा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ णेरइया णो सव्वे समवेयणा ?

गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, त जहा सण्णिभूया य असण्णिभूया य । तत्थ ण जे ते सण्णिभूया ते ण महावेदणतरागा । तत्थ ण जे ते असण्णिभूया ते णं अप्पवेदणतरागा, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ नेरइया नो सव्वे समवेयणा ५ ।

[११२८ प्र] भगवन् ! सभी नारक क्या समान वेदना वाले होते है ?

[११२८ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[प्र] भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से कहते है कि सभी नारक समवेदना वाले नही होते ?

[उ.] गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे है, वे इस प्रकार– सज्ञीभूत (जो पूर्वभव मे सज्ञी पचेन्द्रिय थे) और असज्ञीभूत (जो पूर्वभव मे असज्ञी थे) । उनमे जो सज्ञीभूत होते है, वे अपेक्षाकृत महान् वेदना वाले होते है और उनमे जो असज्ञीभूत होते है, वे अल्पतर वेदना वाले होते है । इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सभी नैरयिक समवेदना वाले नही होते ।

पचमद्वार ॥५॥

११२९. णेरइया ण भंते ! सव्वे समकिरिया ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ णेरइया णो सव्वे समकिरिया ?

गोयमा ! णेरइया तिविहा पण्णत्ता, त जहा– सम्मद्दिट्ठी मिच्छद्दिट्ठी सम्मामिच्छद्दिट्ठी । तत्थ ण जे ते सम्मद्दिट्ठी तेसि ण चत्तारि किरियाओ कज्जंति, त जहा आरंभिया १ परिग्गहिया २ माया-वत्तिया ३ अपच्चक्खाणकिरिया ४ । तत्थ ण जे ते मिच्छद्दिट्ठी जे य सम्मामिच्छद्दिट्ठी तेसि नियताओ पच किरियाओ कज्जति, त जहा आरभिया १ परिग्गहिया २ मायावत्तिया ३ अपच्चक्खाणकिरिया ४ मिच्छादंसणवत्तिया ५, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ णेरइया णो सव्वे समकिरिया ६ ।

[११२९ प्र] भगवन् ! सभी नारक क्या समान क्रिया वाले होते है ?

[११२९ उ] गोतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते है कि सभी नारक समान क्रिया वाले नही होते ?

[उ] गौतम ! नारक तीन प्रकार के कहे है—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि। उनमे से जो सम्यग्दृष्टि है, उनके चार क्रियाएँ होती है, वे इस प्रकार—१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी, ३ मायाप्रत्यया और ४ अप्रत्याख्यानक्रिया। जो मिथ्यादृष्टि हैं तथा जो सम्यग्मिथ्यादृष्टि है, उनके नियत (निश्चितरूप से) पाच क्रियाएँ होती है—१ आरम्भिकी, २ पारिग्रहिकी, ३ मायाप्रत्यया, ४ अप्रत्याख्यानक्रिया और ५ मिथ्यादर्शनप्रत्यया। हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि सभी नारक समान क्रिया वाले नही होते। —छठा द्वार ॥ ६ ॥

११३०. णेरइया णं भंते ! सव्वे समाउया ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ ?

गोयमा ! णेरइया चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा--अत्थेगइया समाउया समोववण्णगा १ अत्थेगइया समाउया विसमोववण्णगा २ अत्थेगइया विसमाउया समोववण्णगा ३ अत्थेगइया विसमाउया विसमोववण्णगा ४, से एएणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ णेरइया णो सव्वे समाउया णो सव्वे समोववण्णगा ७।

[११३० प्र] भगवन् ! क्या सभी नारक समान आयुष्य वाले है ?

[११३० उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि सभी नारक समान आयु वाले नही होते ?

[उ] गौतम ! नैरयिक चार प्रकार के कहे गए है, वे इस प्रकार--१ कई नारक समान आयु वाले और समान (एक साथ) उत्पत्ति वाले होते है, २ कई समान आयु वाले, किन्तु विषम उत्पत्ति (आगे-पीछे उत्पन्न होने) वाले होते है, ३ कई विषम (असमान) आयु वाले और एक साथ उत्पत्ति वाले होते है तथा ४ कई विषम आयु वाले और विषम ही उत्पत्ति वाले होते है। इस कारण से हे गौतम ! सभी नारक न तो समान आयु वाले होते है और न ही समान उत्पत्ति (एक साथ उत्पन्न होने) वाले होते है। —सप्तम द्वार ॥७॥

विवेचन नैरयिको में समाहारादि सप्त द्वारों की प्ररूपणा प्रस्तुत सात सूत्रो मे नैरयिको मे आहार आदि पूर्वोक्त सात द्वारो से सम्बन्धित समानता-असमानता की चर्चा की गई है।

महाशरीर-अल्पशरीर—जिन नारको का शरीर अपेक्षाकृत विशाल होता है, वे महाशरीर और जिनका शरीर अपेक्षाकृत छोटा होता है, वे अल्पशरीर कहलाते है। नारक जीव का शरीर छोटे से छोटा (जघन्य) अगुल के असख्यातवे भागप्रमाण होता है और बडे से बडा (उत्कृष्ट) शरीर पाच सौ धनुष का होता है। यह प्रमाण भवधारणीय शरीर की अपेक्षा से है, उत्तरवैक्रिय शरीर की अपेक्षा से जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट एक हजार धनुष-प्रमाण होता है।

शका-समाधान—नारको की आहारसम्बन्धी विषमता पहले न बतलाकर पहले शरीर-सम्बन्धी विषमता क्यो बतलाई गई है ? इसका कारण यह है कि शरीरो की विषमता बतला देने पर आहार, उच्छ्वास आदि की विषमता शीघ्र समझ मे आ जाती है। इस आशय से दूसरे स्थान मे प्रतिपाद्य शरीर-सम्बन्धी प्रश्न का समाधान पहले किया गया है।

महाशरीरादिविशिष्ट नारकों में विसदृशता क्यों ? - जो नारक महाशरीर होते हैं, वे अपने से अल्प शरीर वाले नारको की अपेक्षा बहुत पुद्गलो का आहार करते है, क्योकि उनका शरीर बड़ा होता है। लोक मे यह प्रसिद्ध है कि महान् शरीर वाले हाथी आदि अपने से छोटे शरीर वाले खरगोश आदि से अधिक आहार करते है। किन्तु यह कथन बाहुल्य की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि कोई-कोई तथाविध मनुष्य के समान बडे शरीर वाला होकर भी अल्पाहारी होता है और कोई-कोई छोटे शरीर वाला होकर भी अतिभोजी होता । यहाँ अल्पता और महत्ता भी सापेक्ष समझनी चाहिए।

नारक जीव सातावेदनीय के अनुभव के विपरीत असातावेदनीय का उदय होने से ज्यो-त्यो महाशरीर वाले, अत्यन्त दु खी एव तीव्र आहाराभिलाषा वाले होते है, त्यो-त्यो वे बहुत अधिक पुद्गलो का आहार करते है तथा बहुत अधिक पुद्गलो को परिणत करते है। परिणमन आहार किये हुए पुद्गलो के अनुसार होता है। यहाँ परिणाम के विषय मे प्रश्न न होने पर भी उसका प्रतिपादन कर दिया गया है, क्योकि वह आहार का कार्य है। इसी प्रकार महाशरीर वाले होने से वे बहुत अधिक पुद्गलो को उच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करते है और नि.श्वास के रूप मे छोडते है। जो बडे शरीर वाले (विशालकाय) होते है, वे अपनी जाति के लघुकायो को अपेक्षा बहुत उच्छ्वास-नि श्वास वाले होते है तथा दु खित भी अधिक होते है, इसलिए ऐसे नारक दु खित भी अधिक कहे गए हैं।

आहारादि की कालकृत विषमता—अपेक्षाकृत महाशरीर वाले अपनी अपेक्षा लघुशरीर वालो से शीघ्र और शीघ्रतर तथा पुन पुन आहार ग्रहण करते देखे जाते है। जब आहार बार-बार करते हैं तो उसका परिणमन भी बार-बार करते है तथा वे बार-बार उच्छ्वास ग्रहण करते और नि श्वास छोड़ते है। आशय यह है कि महाकाय नारक महाशरीर वाले होने से अत्यन्त दु खित होने के कारण निरन्तर उच्छ्वासादि क्रिया करते रहते है। जो नारक अपेक्षाकृत लघुकाय होते है, वे महाकाय नारको की अपेक्षा अल्पतर पुद्गलो का आहार करते हैं, अल्पतर पुद्गलो को ही परिणत करते है। तथा अल्पतर पुद्गलो को ही उच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करते है और नि श्वास के रूप मे छोडते है। वे कदाचित् आहार करते है, सदैव नही। तात्पर्य यह है कि महाकाय नारको के आहार का जितना व्यवधानकाल है, उसको अपेक्षा लघुकाय नारको के आहार का व्यवधानकाल (अन्तर) अधिक है। कदाचित् आहार करने के कारण वे (अल्पाहारी) उसका परिणणमन भी कदाचित् करते है, सदा नही। इसी प्रकार वे कदाचित् उच्छ्वास लेते हैं और कदाचित् ही नि.श्वास छोडते है। क्योकि लघुकाय नारक महाकाय नारको की अपेक्षा अल्प दु ख वाले होने से निरन्तर उच्छ्वास-नि श्वास क्रिया नही करते, किन्तु बीच मे व्यवधान डालकर करते है। अथवा अपर्याप्तिकाल मे अल्पशरीर वाले होने से लोमाहार को अपेक्षा से वे आहार नही करते तथा श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण न होने से उच्छ्वास नही लेते, अन्य काल (पर्याप्तिकाल) मे आहार और उच्छ्वास लेते हैं।[1]

पूर्वोत्पन्न और पश्चादुत्पन्न नारकों मे कर्म, वर्ण लेश्या का अन्तर—जो नारक पहले उत्पन्न हो चुके है, वे अल्पकर्म वाले होते है, क्योकि पूर्वोत्पन्न नारको को उत्पन्न हुए अपेक्षाकृत अधिक समय व्यतीत हो चुका है, वे नरकायु, नरकगति और असातावेदनीय आदि कर्मों की बहुत

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ३३२-३३३

निर्जरा कर चुके होते हैं, उनके ये कर्म थोडे ही शेष रहे होते हैं । इस कारण पूर्वोत्पन्न नारक अल्पकर्म वाले कहे गए हैं । किन्तु जो नारक बाद मे उत्पन्न हुए हैं, वे महाकर्म वाले होते हैं, क्योकि उनकी नरकायु, नरकगति तथा असातावेदनीय आदि कर्म थोडे ही निर्जीर्ण हुए है, बहुत-से कर्म अभी शेष है । इस कारण वे अपेक्षाकृत महाकर्म वाले है ।

यह कथन समान स्थिति वाले नारको की अपेक्षा से समझना चाहिए, अन्यथा रत्नप्रभापृथ्वी मे किसी उत्कृष्ट आयु वाले नारक की आयु का बहुत-सा भाग निर्जीर्ण हो चुका हो, वह सिर्फ एक पल्योपम ही शेष रह गया हो, दूसरी ओर उस समय कोई जघन्य दस हजार वर्षों की स्थिति वाला नारक पश्चात् उत्पन्न हुआ हो तो भी इस पश्चादुत्पन्न नारक की अपेक्षा उक्त पूर्वोत्पन्न नारक भी महान् कर्म वाला ही होता है ।

इसी प्रकार जिन्हे उत्पन्न हुए अपेक्षाकृत अधिक समय व्यतीत हो चुका है, वे विशुद्धतर वर्ण वाले होते है । नारको मे अप्रशस्त (अशुभ) वर्णनामकर्म के उत्कट अनुभाग का उदय होता है, किन्तु पूर्वोत्पन्न नारको के उस अशुभ अनुभाग का बहुत-सा भाग निर्जीर्ण हो चुकता है, स्वल्प भाग शेष रहता है । वर्णनामकर्म पुद्गलविपाकी प्रकृति है । अतएव पूर्वोत्पन्न नारक विशुद्धतर वर्ण वाले होते है, जब कि पश्चादुत्पन्न नारक अविशुद्धतर वर्ण वाले होते है, क्योकि भव के कारण होने वाले उनके अशुभ नामकर्म का अधिकाश अशुभ तीव्र अनुभाग निर्जीर्ण नही होता, सिर्फ थोडे-से भाग की ही निर्जरा हो पाती है । इस कारण बाद मे उत्पन्न नारक अविशुद्धतर वर्ण वाले होते हैं । यह कथन भी समान स्थिति वाले नारको की अपेक्षा से समझना चाहिए ।

इसी प्रकार पूर्वोत्पन्न नारक अप्रशस्त लेश्याद्रव्यो के बहुत-से भाग को निर्जीर्ण कर चुकते है, इस कारण वे विशुद्धतर लेश्या वाले होते है, जबकि पश्चादुत्पन्न नारक अप्रशस्त लेश्या-द्रव्यो के अल्पतम भाग की ही निर्जरा कर पाते हैं, उनके बहुत-से अप्रशस्त लेश्याद्रव्य शेष बने रहते है ।[1]

संज्ञीभूत और असंज्ञीभूत नारको की वेदना मे अन्तर – जो जीव पहले (अतीत मे) सज्ञी-पचेन्द्रिय थे और फिर नरक मे उत्पन्न हुए हैं, वे सज्ञीभूत नारक कहलाते है और जो उनसे विपरीत हो, वे असज्ञीभूत कहलाते है । जो नारक सज्ञीभूत होते हैं, वे अपेक्षाकृत महावेदना वाले होते है, क्योकि जो (भूतकाल मे) सज्ञी थे, उन्होने उत्कट अशुभ अध्यवसाय के कारण उत्कट अशुभ कर्मों का बन्ध किया है तथा वे महानारको मे उत्पन्न हुए है । इसके विपरीत जो नारक असज्ञीभूत है, वे अल्पतर वेदना वाले होते है । असज्ञी जोव नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगति मे से किसी भी गति का बन्ध कर सकते है । अतएव वे नरकायु का बन्ध करके नरक मे उत्पन्न होते हैं, किन्तु अति तीव्र अध्यवसाय न होने से रत्नप्रभापृथ्वी के अन्तर्गत अति तीव्रवेदना न हो ऐसे नारकावासो मे ही उत्पन्न होते है । अथवा सज्ञी का तात्पर्य यहाँ सम्यग्दृष्टि है । सज्ञीभूत अर्थात् सम्यग्दृष्टि नारक पूर्वकृत अशुभ कर्मों के लिए मानसिक दु ख-परिताप का अनुभव करने के कारण अधिक वेदना वाले होते हैं । असज्ञीभूत (मिथ्यादृष्टि) नारक को ऐसा परिताप नही होता, अतएव वह अल्पवेदना वाला होता है ।[2]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ३३३

२. वही, मलय वृत्ति पत्रांक ३३४

आरम्भिकी आदि क्रियाओं के लक्षण—**आरम्भिकी** जीव-हिंसाकारी प्रवृत्ति (व्यापार) आरम्भ कहलाती है। आरम्भ से होने वाली कर्मबंधकारणभूत क्रिया **आरम्भिकी** है। धर्मोपकरणों से भिन्न पदार्थों का ममत्ववश स्वीकार करना अथवा धर्मोपकरणों के प्रति मूर्च्छा होना परिग्रह है, उसके कारण होने वाली क्रिया **पारिग्रहिकी क्रिया** है। माया, उपलक्षण से क्रोधादि के निमित्त से होने वाली क्रिया **मायाप्रत्यया** है। **अप्रत्याख्यान क्रिया**—अप्रत्याख्यान पापों से अनिवृत्ति के कारण होने वाली क्रिया। **मिथ्यादर्शनप्रत्यया**—मिथ्यात्व के कारण होने वाली क्रिया। **शंका-समाधान**—यद्यपि मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार कर्मबन्ध के कारण बताए गए है, जबकि यहाँ आरम्भिकी आदि क्रियाएँ कर्मबन्ध की कारण बताई गई है, अतः दोनों में विरोध है, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यहाँ आरम्भ और परिग्रह शब्द से 'योग' को ग्रहण किया गया है क्योंकि योग आरम्भ-परिग्रहरूप होता है, अतएव इनमें कोई विरोध नहीं है।[1]

असुरकुमारादि भवनपतियों में समाहारादि सप्त प्ररूपणा

११३१. असुरकुमारा णं भंते ! सव्वे समाहारा ? स च्चेव पुच्छा।

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, जहा णेरइया (सु. ११२४)।

[११३१ प्र.] भगवन् ! सभी असुरकुमार क्या समान आहार वाले है ? इत्यादि पृच्छा (पूर्ववत्)।

[११३१ उ.] यह अर्थ समर्थ नहीं है। (शेष सब निरूपण) (सू. ११२४ के अनुसार) नैरयिकों (की आहारादि-प्ररूपणा) के समान (जानना चाहिए)।

११३२. असुरकुमारा णं भंते ! सव्वे समकम्मा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?

गोयमा ! असुरकुमारा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पुव्वोववण्णगा य पच्छोववण्णगा य। तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते णं महाकम्मतरागा। तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा ते णं अप्पकम्मतरागा, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ असुरकुमारा णो सव्वे समकम्मा।

[११३२ प्र.] भगवन् ! सभी असुरकुमार समान कर्म वाले हैं ?

[११३२ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से कहते है कि सभी असुरकुमार समान कर्म वाले नहीं है ?

[उ.] गौतम ! असुरकुमार दो प्रकार के कहे गये है, वे इस प्रकार—पूर्वोपपन्नक और पश्चादुपपन्नक। उनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे महाकर्म वाले है। उनमें जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे अल्पतरकर्म वाले है। इसी कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सभी असुरकुमार समान कर्म वाले नहीं है।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ३३५

११३३. [१] एवं वण्ण-लेस्साए पुच्छा।

तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते ण अविसुद्धवण्णतरागा। तत्थ ण जे ते पच्छोववण्णगा ते णं विसुद्धवण्णतरागा, से एएणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति असुरकुमारा सव्वे णो समवण्णा।

[११३३-१ प्र] इसी प्रकार वर्ण और लेश्या के लिए प्रश्न कहना चाहिए। (भगवन् ! असुरकुमार क्या सभी समान वर्ण और समान लेश्या वाले हैं ?)

[११३३-१ उ] गौतम ! (पूर्वोक्त) दो प्रकार के असुरकुमारो मे जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे अविशुद्धतर वर्ण वाले हैं तथा उनमे जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे विशुद्धतर वर्ण वाले है। इस कारण गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सभी असुरकुमार समान वर्ण वाले नही होते।

[२] एव लेस्साए वि।

[११३३-२] इसी प्रकार लेश्या के विषय मे (कहना चाहिए।)

११३४. वेदणाए जहा णेरइया (सु. ११२८)।

[११३४] (असुरकुमारो की) वेदना के विषय मे (सू ११२८ मे उक्त) नैरयिको (की वेदनाविषयक प्ररूपणा) के समान (कहना चाहिए।)

११३५. अवसेस जहा णेरइयाण (सु. ११२९-३०)।

[११३५] असुरकुमारो की क्रिया एव आयु के विषय मे शेष सब निरूपण (सू ११२९-११३० के उल्लिखित) नैरयिको (की क्रिया एव आयुविषयक निरूपण) के समान (समझना चाहिए।)

११३६. एव जाव थणियकुमारा।

[११३६] इसी प्रकार (असुरकुमारो के आहारादि विषयक निरूपण की तरह नागकुमारो से लेकर) स्तनितकुमारो तक (का निरूपण समझना चाहिए।)

विवेचन—असुरकुमारादि भवनपतियो की समाहारादि-प्ररूपणा—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू ११३१ से ११३६ तक) मे असुरकुमारादि दस प्रकार के भवनपतिदेवो की आहारादि सप्त द्वारो द्वारा प्ररूपणा की गई है।

असुरकुमारो आदि का महाशरीर-लघुशरीर—असुरकुमारो का अधिक से अधिक बडा शरीर सात हाथ का होता है। भवधारणीय शरीर की अपेक्षा से यह प्रमाण है। उनके लघुशरीर का जघन्यप्रमाण अगुल के असख्यातवे भाग का समझना चाहिए। उत्तरवैक्रिय की अपेक्षा उनका महाशरीर उत्कृष्ट एक लाख योजन और लघुशरीर जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण होता है। इस प्रकार जो असुरकुमार भवधारणीय शरीर की अपेक्षा जितने बडे शरीर वाले होते हैं, वे उतने ही अधिक पुद्गलो को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, और जितने लघुशरीर वाले हैं, वे उतने ही कम पुद्गलो को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं।

पूर्वोत्पन्न-पश्चादुत्पन्न असुरकुमारादि कर्म के विषय मे नारकों से विपरीत—नारको के विषय मे कहा गया था कि पूर्वोत्पन्न नारक अल्पकर्मा और पश्चादुत्पन्न नारक महाकर्मा होते है, किन्तु असुरकुमार जो पूर्वोत्पन्न है, वे महाकर्मा और जो पश्चादुत्पन्न है, वे अल्पकर्मा होते

हैं। इसका कारण यह है कि असुरकुमार अपने भव का त्याग करके या तो तिर्यञ्चयोनि मे उत्पन्न होते है, या मनुष्ययोनि मे। तिर्यञ्चयोनि मे उत्पन्न होने वाले कई एकेन्द्रियो मे—पृथ्वीकाय, अप्काय या वनस्पतिकाय मे उत्पन्न होते है और कई पचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे भी उत्पन्न होते है। जो मनुष्यो मे उत्पन्न होते है, वे कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं, अकर्मभूमिज और सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे नही। वहाँ छह महीना आयु शेष रहने पर परभव-सम्बन्धी आयु का बन्ध करते है। आयु के बन्ध के समय एकान्त तिर्यञ्चयोग्य अथवा एकान्त मनुष्ययोग्य प्रकृतियो का उपचय करते है। इस कारण पूर्वोत्पन्न असुरकुमार महाकर्म वाले होते है किन्तु जो बाद मे उत्पन्न हुए है, उन्होने अभी तक पर-भवसम्बन्धी आयुष्य नही बाधा है और न ही तिर्यञ्च या मनुष्य के योग्य प्रकृतियो का उपचय किया होता है, इस कारण वे अल्पतर कर्म वाले होते है। यह सूत्र भी पूर्ववत् समान स्थिति वाले, समान भववाले परिमित असुरकुमारो की अपेक्षा से समझना चाहिए।[1]

पूर्वोत्पन्न असुरकुमार अविशुद्ध वर्ण-लेश्यावाले, पश्चादुत्पन्न इसके विपरीत—असुरकुमारो को भव की अपेक्षा से प्रशस्त वर्णनामकर्म के शुभ तीव्र अनुभाग का उदय होता है। पूर्वोत्पन्न असुरकुमारो का शुभ अनुभाग बहुत-सा क्षीण हो चुकता है, इस कारण वे अविशुद्धतर वर्ण वाले होते है, किन्तु जो असुरकुमार बाद मे उत्पन्न हुए है, उनके वर्णनाम कर्म के शुभ अनुभाग का बहुत-सा भाग क्षीण नही होता, विद्यमान होता है, अतएव वे विशुद्धतर वर्ण वाले होते है।

लेश्या के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए। इस विषय मे युक्ति यह है कि जो असुरकुमार पहले उत्पन्न हुए है, उन्होने अपनी उत्पत्ति के समय से ही तीव्र अनुभाव वाले लेश्याद्रव्यो को भोग-भोग कर उनका बहुत भाग क्षीण कर दिया है। अब उनके मन्द अनुभाग वाले अल्प लेश्याद्रव्य ही शेष रहे है। इस कारण पूर्वोत्पन्न असुरकुमार अविशुद्धलेश्या वाले होते है और पश्चात् उत्पन्न होने वाले इनसे विपरीत होने के कारण विशुद्धतर लेश्या वाले होते है।[2]

पृथ्वीकायिको से तिर्यंचपंचेन्द्रियों तक मे समाहारादि सप्त प्ररूपणा

११३७. पुढविक्काइया आहार-कम्म-वण्ण-लेस्साहि जहा णेरइया (सु ११२४-२७)।

[११३७] जैसे (सू ११२४ से ११२७ तक मे) नैरयिको के (आहार आदि के) विषय मे कहा है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिको के (सम-विषम) आहार, कर्म, वर्ण और लेश्या के विषय मे कहना चाहिए।

११३८. पुढविक्काइया णं भते ! सव्वे समवेदणा ?

हता गोयमा ! सव्वे समवेयणा।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ ?

गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे असण्णी असण्णीभूयं अणियय वेदण वेदेंति, से तेणट्ठेण गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे समवेदणा।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३३६

२ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३३६-३३७

(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा ४ पृ ३८

[११३८ प्र.] भगवन् ! क्या सभी पृथ्वीकायिक समान वेदना वाले होते हैं ?

[११३८ उ.] हाँ गौतम ! सभी समान वेदना वाले होते हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते हैं ?

[उ.] गौतम ! सभी पृथ्वीकायिक असंज्ञी होते है। वे असंज्ञीभूत और अनियत वेदना वेदते (अनुभव करते) है। इस कारण हे गौतम ! सभी पृथ्वीकायिक समवेदना वाले है।

११३९. पुढविक्काइया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

हंता गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे समकिरिया।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे माइमिच्छद्दिट्ठी, तेसि णेयतियाओ पंच किरियाओ कज्जति, त जहा आरंभिया १ परिग्गहिया २ मायावत्तिया ३ अपच्चक्खाणकिरिया ४ मिच्छादंसणवत्तिया ५।

[११३९ प्र.] भगवन् ! सभी पृथ्वीकायिक समान क्रिया वाले होते है ?

[११३९ उ.] हाँ गौतम ! सभी पृथ्वीकायिक समक्रिया वाले होते है।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[उ.] गौतम ! सभी पृथ्वीकायिक मायी-मिथ्यादृष्टि होते है, उनके नियत (निश्चित) रूप से पाचो क्रियाएँ होती है। यथा (१) आरम्भिकी, (२) पारिग्रहिकी, (३) मायाप्रत्यया, (४) अप्रत्याख्यानक्रिया और (५) मिथ्यादर्शनप्रत्यया। (इसी कारण) गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सभी पृथ्वीकायिक समान क्रियाओ वाले होते है।

११४०. एव जाव चउरिंदिया।

[११४०] पृथ्वीकायिको के समान ही (अप्कायिको, तेजस्कायिको, वायुकायिको, वनस्पतिकायिको, द्वीन्द्रियो, त्रीन्द्रियो) यावत् चतुरिन्द्रियो की (समान वेदना और समान क्रिया कहनी चाहिए)।

११४१ पंचिदियतिरिक्खजोणिया जहा णेरइया (सु. ११२४-३०)। णवर किरियाहि सम्मद्दिट्ठी मिच्छद्दिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी। तत्थ ण जे ते सम्मद्दिट्ठी ते दुविहा पण्णत्ता, त जहा— असजया य सजयासजया य। तत्थ ण जे ते सजयासजया तेसि ण तिण्णि किरियाओ कज्जति, त जहा आरंभिया परिग्गहिया मायावत्तिया। तत्थ ण जे ते असंजया तेसि ण चत्तारि किरियाओ कज्जति, त जहा—आरंभिया १ परिग्गहिया २ मायावत्तिया ३ अपच्चक्खाणकिरिया ४। तत्थ ण जे ते मिच्छद्दिट्ठी जे य सम्मामिच्छद्दिट्ठी तेसिं णेयइयाओ पच किरियाओ कज्जति, तं जहा—आरंभिया १ परिग्गहिया २ मायावत्तिया ३ अपच्चक्खाणकिरिया ४ मिच्छादसणवत्तिया ५। सेस तं चेव।

[११४१] पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको का (आहारादि सप्तद्वार विषयक कथन) (सू ११२४ से ११३० तक मे उक्त) नैरयिक जीवो के (आहारादि विषयक कथन के) अनुसार समझना चाहिए।

विशेष यह कि क्रियाओ मे नारको से कुछ विशेषता है। पचेन्द्रियतिर्यञ्च तीन प्रकार के है, यथा—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि। उनमे जो सम्यग्दृष्टि है, वे दो प्रकार के हैं—असयत और सयतासयत। जो सयतासयत है, उनको तीन क्रियाएँ लगती है, वे इस प्रकार—आरम्भिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया। जो असयत होते है, उनको चार क्रियाएँ लगती है।) वे इस प्रकार १. आरम्भिकी, २ पारिग्रहिकी, ३ मायाप्रत्यया और ४ अप्रत्याख्यानक्रिया। (पूर्वोक्त) इन तीनो मे मे जो मिथ्यादृष्टि है और जो सम्यग्-मिथ्यादृष्टि है, उनको निश्चित रूप से पांच क्रियाएँ लगती है, वे इस प्रकार—१ आरम्भिकी, २ पारिग्रहिकी, ३ मायाप्रत्यया, ४ अप्रत्याख्यानक्रिया और ५ मिथ्यादर्शनप्रत्यया। शेष सब निरूपण उसी प्रकार (पूर्ववत् करना चाहिए।)

विवेचन—पृथ्वीकायिको से लेकर तिर्यञ्चपचेन्द्रियो तक की समाहारादि सप्तद्वार प्ररूपणा—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू ११३७ से ११४१ तक) मे पृथ्वोकायिकों से लेकर तिर्यंचपचेन्द्रियो तक आहारादि सप्तद्वारो की प्ररूपणा की गई है।

पृथ्वीकायिको के अल्पशरीर-महाशरीर—यद्यपि सभी पृथ्वीकायिको का शरीर अगुल के असख्यातवे भाग मात्र होता है, तथापि आगम मे बताया है कि[1] एक पृथ्वाकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, इत्यादि; तदनुसार वे अपेक्षाकृत महाशरीर और अल्पशरीर सिद्ध होते है। जो पृथ्वीकायिक महाशरीर होते है, वे महाशरीर होने के कारण लोमाहार से प्रभूत पुद्गलो का आहार करते है, उच्छ्वास लेते है तथा बार-बार आहार करते है और श्वासोच्छ्वास लेते हैं। जो अल्पशरीर होते है, वे लघुशरीरी होने से अल्प आहार और अल्प श्वासोच्छ्वास लेते है, आहार और उच्छ्वास भी कदाचित् लेते है, वह पर्याप्त-अपर्याप्त-अवस्था की अपेक्षा मे समझना चाहिए।

पृथ्वोकायिकादि समवेदना वाले क्यो?—सभी पृथ्वीकायिक असज्ञी अर्थात् मिथ्यादृष्टि अथवा अमनस्क होते है। वे असज्ञीभूत और अनियत वेदना का वेदन करते हैं। तात्पर्य यह है कि मत्त-मूर्च्छित आदि की तरह वेदना का अनुभव करते हुए भी वे नही समझ पाते कि यह मेरे पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों का परिणाम है, क्योकि वे असज्ञी और मिथ्यादृष्टि होते है।

मायी का अर्थ—यहा माया का अर्थ केवल मायाकषाय नही, किन्तु उपलक्षण से अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्टय है। अत मायी का अर्थ यहाँ अनन्तानुबन्धी कषायोदयवान् होने से मिथ्यादृष्टि है।[2]

मनुष्य मे समाहारादि सप्त द्वारों की प्ररूपणा

११४२ मणूसा णं भते! सव्वे समाहारा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेण?

गोयमा! मणूसा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—महासरीरा य अप्पसरीरा य। तत्थ ण जे ते

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३३९

(ख) 'पुढविकाइए पुढविकाइयस्स ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए।'

— प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्राक ३३९ मे उद्धृत

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३३९

महासरीरा ते ण बहुयराए पोग्गले आहारेंति जाव बहुतराए पोग्गले णीससंति, आहच्च आहारेंति० आहच्च णीससति। तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते ण अप्पतराए पोग्गले आहारेंति जाव अप्पतराए पोग्गले णोससंति, अभिक्खणं आहारेंति जाव अभिक्खणं नीससंति, एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ मणूसा सव्वे णो समाहारा। सेसं जहा णेरइयाण (सु. ११२५-३०)। णवर किरियाहिं मणूसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मद्दिट्ठी मिच्छद्दिट्ठी सम्मामिच्छद्दिट्ठी। तत्थ ण जे ते सम्मद्दिट्ठी ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा सजया असजया संजयासजया। तत्थ ण जे ते सजया ते दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सरागसंजया य वीयरागसजया य, तत्थ ण जे ते वीयरागसंजया ते णं अकिरिया। तत्थ णं जे ते सरागसंजया ते दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पमत्तसंजया य अपमत्तसंजया य, तत्थ णं जे ते अपमत्त-सजया तेसि एगा मायावत्तिया किरिया कज्जति, तत्थ ण जे ते पमत्तसजया तेसि दो किरियाओ कज्जंति, त जहा—आरभिया मायावत्तिया य। तत्थ ण जे ते संजयासजया तेसि तिण्णि किरियाओ कज्जंति, त जहा आरभिया १ परिग्गहिया २ मायावत्तिया ३। तत्थ णं जे ते असजया तेसि चत्तारि किरियाओ कज्जंति, त जहा आरभिया १ परिग्गहिया २ मायावत्तिया ३ अपच्चक्खाणकिरिया ४। तत्थ ण जे ते मिच्छद्दिट्ठी जे य सम्मामिच्छद्दिट्ठी तेसि णेयइयाओ पंच किरियाओ कज्जति, त जहा—आरभिया १ परिग्गहिया २ मायावत्तिया ३ अपच्चक्खाणकिरिया ४ मिच्छादसणवत्तिया ५। सेसं जहा णेरइयाण।

[११४२ प्र] भगवन्! मनुष्य क्या सभी समान आहार वाले होते है?

[११४२ उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नही है।

[प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि सब मनुष्य समान आहार वाले नही है?

[उ] गौतम! मनुष्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार महाशरीर वाले और अल्प-(छोटे-) शरीर वाले। उनमे जो महाशरीर वाले है, वे बहुत-से पुद्गलो का आहार करते है, यावत् बहुत-से पुद्गलो का नि श्वास लेते है तथा कदाचित् आहार करते है, यावत् कदाचित् नि श्वास लेते हैं। उनमे जो अल्पशरीर वाले है, वे अल्पतर पुद्गलो का आहार करते हैं, यावत् अल्पतर पुद्गलो का नि श्वास लेते है, बार-बार आहार लेते है, यावत् बार-बार नि श्वास लेते है। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि सभी मनुष्य समान आहार वाले नही है। शेष सब वर्णन (सू ११२५ से ११३० तक मे उक्त) नैरयिको (के कर्मादि छह द्वारो के निरूपण) के अनुसार (समझ लेना चाहिए।) किन्तु क्रियाओ की अपेक्षा से (नारको से किञ्चित्) विशेषता है। (वह इस प्रकार है) मनुष्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि। इनमे जो सम्यग्दृष्टि है, वे तीन प्रकार के कहे गए है, जैसे कि -सयत, असयत और सयतासयत। जो सयत हैं, वे दो प्रकार के कहे है सरागसयत और वीतरागसयत। इनमे जो वीतरागसयत है, वे अक्रिय (क्रियारहित) होते है। उनमे जो सरागसयत होते है, वे दो प्रकार के कहे गए है, यथा—प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत। इनमे जो अप्रमत्तसंयत होते है, उनमे एक मायाप्रत्यया क्रिया ही होती है। जो प्रमत्तसयत होते हैं, उनमे दो क्रियाएँ होती है, आरम्भिकी और मायाप्रत्यया। उनमे जो सयतासयत होते हैं, उनमे तीन क्रियाएँ पाई जाती हैं, यथा—१ आरम्भिकी, २. पारि-

ग्रहिकी और ३ मायाप्रत्यया । उनमे जो असयत है, उनमे चार क्रियाएँ पाई जाती है, यथा—१ आरम्भिकी, २ पारिग्रहिकी, ३ मायाप्रत्यया और ४. अप्रत्याख्यानक्रिया, किन्तु उनमे जो मिथ्यादृष्टि हैं, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि है, उनमे निश्चितरूप से पाचो क्रियाएँ होती है, यथा—१ आरम्भिकी, २ पारिग्रहिकी, ३ मायाप्रत्यया, ४ अप्रत्याख्यानक्रिया और ५ मिथ्यादर्शन-प्रत्यया । शेष (आयुष्य का) कथन (उसी प्रकार समझ लेना चाहिए,) जैसा नारको का (किया गया है ।)

विवेचन— **मनुष्यो मे समाहारादि सप्त द्वारो की प्ररूपणा** प्रस्तुत सूत्र (११४२) मे मनुष्य मे आहारादि सप्त द्वारो की प्ररूपणा की गई है ।

महाशरीर मनुष्यो मे आहार एव उच्छ्वास-निःश्वास-विषयक विशेषता—सामान्यतया महा-शरीर मनुष्य बहुतर पुद्गलो का आहार परिणमन तथा उच्छ्वासरूप मे ग्रहण और नि श्वासरूप मे त्याग करते है, किन्तु देवकुरु आदि यौगलिक महाशरीर मनुष्य कवलाहार के रूप मे कदाचित् ही आहार करते है । उनका[1] आहार अष्टमभक्त से होता है, अर्थात् वे बीच मे तीन-तीन दिन छोड कर आहार करते हे । वे कभी-कभी ही उच्छ्वास और नि श्वास लेते है, क्योकि वे शेष मनुष्यो की अपेक्षा अत्यन्त सुखी होते है, इस कारण उनका उच्छ्वास-निश्वास कादाचित्क (कभी-कभी) होता है ।

अल्पशरीर मनुष्यो के बार-बार आहार एव उच्छ्वास का कारण— अल्पशरीर वाले मनुष्य बार-बार अल्प आहार करते रहते है, क्योकि छोटे बच्चे अल्पशरीर वाले होते है, वे बार-बार थोडा-थोडा आहार करते देखे जाते है तथा अल्पशरीर वाले सम्मूच्छिम मनुष्यो मे सतत आहार सम्भव है, अल्पशरीर वालो मे उच्छ्वास-नि.श्वास भी बार-बार देखा जाता है, क्योकि उनमे प्राय दु ख की बहुलता होती है ।

पूर्वोत्पन्न मनुष्यो मे शुद्ध वर्णादि—जो मनुष्य पूर्वोत्पन्न होते है, उनमे तारुण्य के कारण शुद्ध वर्ण आदि होते है ।

सरागसयत एव वीतरागसयत का स्वरूप - जिनके कषायो का उपशम या क्षय नही हुआ है, किन्तु जो सयमी है, वे सरागसयमी कहलाते है, किन्तु जिनके कषायो का सर्वथा उपशम या क्षय हो चुका है, वे वीतरागसयमी कहलाते है । वीतरागसयमी मे वीतरागत्व के कारण आरम्भादि कोई क्रिया नही होती । सरागसयतो मे जो अप्रमत्त सयमी होते है, उनमे एकमात्र मायाप्रत्यया और उसमे भी केवल सज्वलनमायाप्रत्यया क्रिया होती है, क्योकि वे कदाचित् प्रवचन (धर्मसघ) की बदनामी को दूर करने एव शासन की रक्षा करने मे प्रवृत्त होते हैं । उनका कषाय सर्वथा क्षीण नही हुआ है । किन्तु जो प्रमत्तसयत होते है, वे प्रमादयोग के कारण आरम्भ मे प्रवृत्त होते हैं । इसलिए उनमे आरम्भिकी क्रिया सम्भव है तथा क्षीणकषाय न होने के कारण उनमे मायाप्रत्यया क्रिया भी समझ लेनी चाहिए । शेष सब वर्णन स्पष्ट है ।[2]

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिकों की आहारादि विषयक प्ररूपणा

११४३. वाणमतराण जहा असुरकुमाराणं (सु. ११३१-३५) ।

१ **'अट्ठमभत्तस्स आहारो'** इति वचनात् ।

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ३४०-३४१

[११४३] जैसे असुरकुमारो की (आहारादि की वक्तव्यता सू. ११३१ से ११३५ तक मे कही है,) उसी प्रकार वाणव्यन्तर देवो की (आहारादि सबधी वक्तव्यता कहनी चाहिए।)

११४४ एव जोइसिय-वेमाणियाण वि। णवरं ते वेदणाए दुविहा पण्णत्ता, त जहा - माइमिच्छद्दिट्ठीउववण्णगा य अमाइसम्मद्दिट्ठीउववण्णगा य। तत्थ णं जे ते माइमिच्छद्दिट्ठीउववण्णगा ते णं अप्पवेदणतरागा। तत्थ णं जे ते अमाइसम्मद्दिट्ठीउववण्णगा ते ण महावेदणतरागा, सेएणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ०। सेसं तहेव।

[११४४] इसी प्रकार ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के आहारादि के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि वेदना की अपेक्षा वे दो प्रकार के कहे गए है, वे इस प्रकार—मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक। उनमे जो मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक है, वे अल्पतर वेदना वाले है और जो अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक है, वे महावेदना वाले है। इसी कारण हे गौतम ! सब वैमानिक समान वेदना वाले नही है। शेष (आहार, वर्ण, कर्म आदि सबधी सब कथन) पूर्ववत् (असुरकुमारो और वाणव्यन्तरो के समान) समझ लेना चाहिए।

विवेचन वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवो की आहारादिविषयक प्ररूपणा— प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ११४३-११४४) मे वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की आहारादिविषयक वक्तव्यता असुरकुमारो के अतिदेशपूर्वक कही गई है।

वाणव्यन्तरो की समाहारादि वक्तव्यता—असुरकुमार दो प्रकार के होते है—सज्ञीभूत और असज्ञीभूत। जो सज्ञीभूत होते हैं, वे महावेदना वाले और जो असज्ञीभूत होते है, वे अल्पवेदना वाले, इत्यादि कथन किया गया है, उसी प्रकार वाणव्यन्तरो के विषय मे भी जानना चाहिए। व्याख्याप्रज्ञप्ति मे कहा है--'असज्ञी जीवो की उत्पत्ति देवगति मे हो तो जघन्य भवनवासियो मे और उत्कृष्ट वाणव्यन्तरो मे होती है।'[1] अत असुरकुमारो मे असज्ञी जीवो की उत्पत्ति होती है, इस प्रकार जो युक्ति असुरकुमारो के विषय मे कही है, वही यहाँ भी जान लेनी चाहिए।

असुरकुमारो से ज्योतिष्क, वैमानिको की वेदना मे अन्तर—जैसे असुरकुमारो मे कोई असज्ञीभूत और कोई सज्ञीभूत कहे है, वैसे ही ज्योतिष्को और वैमानिको मे उनके स्थान मे मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक कहना चाहिए, क्योकि ज्योतिष्कनिकाय और वैमानिकनिकाय मे असज्ञी जीव उत्पन्न नही होते। इसमे युक्ति यह है कि असज्ञियो की आयु की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवे भाग की होती है, जबकि ज्योतिष्को की जघन्यस्थिति भी पल्योपम के असख्येयभाग की होती है, और वैमानिको की एक पल्योपम की है। अतएव यह निश्चित है कि उनमे असज्ञियो का उत्पन्न होना सभव नही है।[2]

सलेश्य चौवीसदण्डकवर्ती जीवों की आहारादि सप्तद्वार-प्ररूपणा

११४५ सलेस्सा ण भंते ! णेरइया सव्वे समाहारा समसरीरा समुस्सासणिस्सासा ? सच्चेव पुच्छा।

---

१ **'असन्नीणं जहन्नेण भवणवासीसु, उक्कोसेण वाणमतरेसु।'** —व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक १, उद्देशक २

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३४१

एवं जहा ओहिओ गमओ (सु. ११२४-४४) भणिओ तहा सलेस्सगमओ वि णिरवसेसो भाणियव्वो जाव वेमाणिया।

[११४५ प्र] भगवन् ! सलेश्य (लेश्या वाले) सभी नारक समान आहार वाले, समान शरीर वाले और समान उच्छ्वास-नि श्वास वाले है ? (इसी प्रकार आगे के द्वारो के विषय मे भी) वही (पूर्ववत्) पृच्छा है, (इसका क्या समाधान ?)

[११४५ उ] (गौतम !) इस प्रकार जैसे सामान्य (समुच्चय नारको का—औघिक) गम (सू ११२४ से ११४४ तक मे) कहा है, उसी प्रकार सभी सलेश्य (नारको के सप्तद्वारो के विषय का) समस्त गम यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए।

विवेचन—सलेश्य चौवीसदण्डकवर्ती जीवो की आहारादि सप्तद्वार-प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (११४५) मे लेश्यावाले नारको से लेकर वैमानिको तक समाहारादि सात द्वारो के विषय मे प्ररूपणा की गई है।

कृष्णादिलेश्याविशिष्ट चौवीस दण्डकों में समाहारादि सप्तद्वार-प्ररूपणा

११४६. कण्हलेस्सा ण भंते ! णेरइया सव्वे समाहारा समसरीरा समुस्सासणिस्सासा पुच्छा ?

गोयमा ! जहा ओहिया (सु. ११२४-३०)। णवरं णेरइया वेदणाए माइमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा य अमाइसम्मद्दिट्ठिउववण्णगा य भाणियव्वा। सेस तहेव जहा ओहियाण।

[११४६ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाले सभी नैरयिक समान आहार वाले, समान शरीर वाले और समान उच्छ्वास-नि श्वास वाले होते हैं। इत्यादि प्रश्न है।

[११४६ उ] गौतम ! जैसे (सू ११२४ से ११३० तक मे) सामान्य (औघिक) नारको का आहारादिविषयक कथन किया गया है, उसी प्रकार कृष्णलेश्या वाले नारको का कथन भी समझ लेना चाहिए। विशेषता इतनी है कि वेदना की अपेक्षा नैरयिक मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक, (ये दो प्रकार के) कहने चाहिए। शेष (कर्म, वर्ण, लेश्या, क्रिया और आयुष्य आदि के विषय मे) समुच्चय नारको के विषय मे जैसा कहा है, उसी प्रकार (यहाँ भी समझ लेना चाहिए।)

११४७. असुरकुमारा जाव वाणमंतरा एते जहा ओहिया (सु ११३१-४३)। णवरं मणूसाण किरियाहि विसेसो, जाव तत्थ ण जे ते सम्मद्दिट्ठी ते तिविहा पण्णत्ता, त जहा—सजया असजया सजयासंजया य, जहा ओहियाण (सु. ११४२)।

[११४७] (कृष्णलेश्यायुक्त) असुरकुमारो से (लेकर नागकुमार आदि भवनपति, पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्चपचेन्द्रिय, मनुष्य और) यावत् वाणव्यन्तर के आहारादि सप्त द्वारो के विषय मे उसी प्रकार कहना चाहिए, जैसा (सू ११३१ से ११४३ तक मे) समुच्चय असुरकुमारादि के विषय मे कहा गया है। मनुष्यो मे (समुच्चय से) क्रियाओ की अपेक्षा कुछ विशेषता है। जिस प्रकार समुच्चय मनुष्यो का क्रियाविषयक कथन सूत्र ११४२ मे किया गया है, उसी प्रकार कृष्णलेश्यायुक्त मनुष्यो का कथन भी यावत् "उनमे से जो सम्यग्दृष्टि है, वे तीन प्रकार

के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—सयत, असयत और सयतासयत", (इत्यादि सब कथन पूर्ववत् करना चाहिए।)

११४८. जोइसिय-वेमाणिया आइल्लिगासु तिसु लेस्सासु ण पुच्छिज्जंति।

[११४८] ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के विषय मे प्रारम्भ की तीन लेश्याओ (कृष्ण, नील और कापोत लेश्या) को लेकर प्रश्न नही करना चाहिए।

११४९. एवं जहा किण्हलेस्सा विचारिया तहा णीललेस्सा विचारियव्वा।

[११४९] इसी प्रकार जैसे कृष्णलेश्या वालो (चौवीसदण्डकवर्ती जीवो) का विचार किया है, उसी प्रकार नीललेश्या वालो का भी विचार कर लेना चाहिए।

११५० काउलेस्सा णेरइएहिंतो आरब्भ जाव वाणमतरा। णवर काउलेस्सा णेरइया वेदणाए जहा ओहिया (सु. ११२८)।

[११५०] कापोतलेश्या वाले नैरयिको से प्रारम्भ करके (दस भवनपति, पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य एव) वाणव्यन्तरो तक का सप्तद्वारादिविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेषता यह है कि कापोतलेश्या वाले नैरयिको का वेदना के विषय मे प्रतिपादन (सू ११२८ मे उक्त) समुच्चय (औघिक नारको) के समान (जानना चाहिए।)

११५१. तेउलेस्साण भते! असुरकुमाराण ताओ चेव पुच्छाओ।

गोयमा! जहेव ओहिया तहेव (सु. ११३१-३५)। णवरं वेदणाए जहा जोतिसिया (सु ११४४)।

[११५१ प्र] भगवन्! तेजोलेश्या वाले असुरकुमारो के समान आहारादि सप्तद्वारविषयक प्रश्न उसी प्रकार है, इनका क्या समाधान है?

[११५१ उ.] गौतम! जैसे (लेश्यादिविशेषणरहित) समुच्चय असुरकुमारो का आहारादि-विषयक कथन (सू ११३१ से ११३५ तक मे) किया है, उसी प्रकार तेजोलेश्याविशिष्ट असुर-कुमारो की आहारादिसम्बन्धी वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए। विशेषता यह है कि वेदना के विषय मे जैसे (सू ११४४ मे) ज्योतिष्को की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहाँ भी कहनी चाहिए।

११५२ पुढवि-आउ-वणस्सइ-पचेंदियतिरिक्ख-मणूसा जहा ओहिया (११३७-३९, ११४१-४२) तहेव भाणियव्वा। णवर मणूसा किरियाहिं जे सजया ते पमत्ता य अपमत्ता य भाणियव्वा, सरागा वीयरागा णत्थि।

[११५२] (तेजोलेश्या वाले) पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो का कथन उसी प्रकार करना चाहिए, जिस प्रकार (सू ११३७ से ११३९ तक और ११४१-११४२) औघिक सूत्रो मे किया गया है। विशेषता यह है कि क्रियाओ की अपेक्षा से

तेजोलेश्या वाले मनुष्यो के विषय में कहना चाहिए कि जो सयत है, वे प्रमत्त और अप्रमत्त दो प्रकार के हैं तथा सरागसयत और वीतरागसयत, (ये दो भेद तेजोलेश्या वाले मनुष्यो मे) नही होते ।

११५३. वाणमंतरा तेउलेस्साए जहा असुरकुमारा (सु. ११५१) ।

[११५३] तेजोलेश्या की अपेक्षा से वाणव्यन्तरो का कथन (सू ११५१ मे उक्त) असुरकुमारो के समान समझना चाहिए ।

११५४. एवं जोतिसिय-वेमाणिया वि । सेस तं चेव ।

[११५४] इसी प्रकार तेजोलेश्याविशिष्ट ज्योतिष्क और वैमानिको के विषय मे भी पूर्ववत् कहना चाहिए । शेष आहारादि पदो के विषय मे पूर्वोक्त असुरकुमारा के समान ही समझना चाहिए ।

११५५. एव पम्हलेस्सा वि भाणियव्वा, णवरं जेसि अत्थि । सुक्कलेस्सा वि तहेव जेसि अत्थि । सव्व तहेव जहा ओहियाण गमओ । णवर पम्हलेस्स-सुक्कलेस्साओ पचेंदियतिरिक्खजोणिय-मणूस-वेमाणियाण चेव, ण सेसाण ति ।

।। पण्णवणाए लेस्सापए पढमो उद्देसओ समत्तो ।।

[११५५] इसी (तेजोलेश्या वालो की) तरह पद्मलेश्या वालो के लिये भी (आहारादि के विषय मे) कहना चाहिए । विशेष यह है कि जिन जीवो मे पद्मलेश्या होती है, उन्ही मे उसका कथन करना चाहिए । शुक्ललेश्या वालो का आहारादिविषयक कथन भी इसी प्रकार है, किन्तु उन्ही जीवो मे कहना चाहिए, जिनमे वह होती है तथा जिस प्रकार (विशेषणरहित) औघिको का गम (पाठ) कहा है, उसी प्रकार (पद्म-शुक्ललेश्याविशिष्ट जीवो का आहारादिविषयक) सब कथन करना चाहिए । इतना विशेष है कि पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या पचेन्द्रियतिर्यञ्चो, मनुष्यो और वैमानिको मे ही होती है, शेष जीवो मे नही ।

विवेचन—कृष्णादिलेश्याविशिष्ट चौवीस दण्डको मे समाहारादि सप्तद्वार-प्ररूपणा— प्रस्तुत दस सूत्रो (सू ११४६ से ११५५ तक) मे कृष्णादिलेश्याओ से युक्त नैरयिको से लेकर वैमानिको तक के समाहार आदि सप्तद्वारो के विषय मे प्ररूपणा की गई है ।

कृष्णलेश्याविशिष्टनैरयिको के नौ पदो के विषय मे जैसे विशेषण रहित सामान्य (औघिक) नारको का आहार, शरीर, उच्छ्वास-नि श्वास, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया और उपपात (अथवा आयुष्य), इन नौ द्वारो की अपेक्षा से कथन पहले किया गया है, वैसे ही कृष्णलेश्या-विशिष्ट नैरयिको के विषय मे कथन करना चाहिए । किन्तु सामान्य नारको से कृष्णलेश्याविशिष्ट नारको मे वेदना के विषय मे कुछ विशेषता है, वह इस प्रकार वेदना की अपेक्षा नैरयिक दो प्रकार के है—मायो-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक, किन्तु औघिक नारकसूत्र की तरह असज्ञीभूत और सज्ञीभूत नही कहना चाहिए, क्योकि सिद्धान्तानुसार असज्ञी जीव प्रथम पृथ्वी मे कृष्णलेश्या वाले नारक नही होते । पचम आदि जिस नरकपृथ्वी मे कृष्णलेश्या पाई जाती है, उसमे असज्ञी जीव उत्पन्न नही होते । अतएव कृष्णलेश्यावान् नारको मे सज्ञीभूत और असज्ञीभूत, ये भेद नही होते । इनमे मायी और मिथ्यादृष्टि नारक महावेदना वाले होते है, क्योकि वे (नारक)

अत्यन्त उत्कृष्ट अशुभ स्थिति का उपार्जन करते है । मायी मिथ्यादृष्टि नारको को उस अत्युत्कृष्ट अशुभ स्थिति मे महावेदना होती है, इसके विपरीत अन्य अमायी सम्यग्दृष्टि नारको को अपेक्षाकृत अल्प वेदना होती है । इसके अतिरिक्त शेष आहारादि पदो के विषय मे पूर्वोक्त समुच्चय नारको के समान ही कृष्णलेश्याविशिष्ट नारको का कथन करना चाहिए ।

कृष्णलेश्याविशिष्ट मनुष्यो की क्रियाविषयक प्ररूपणा—इसमे समुच्चय से कुछ विशेषता है । वस्तुत कृष्णलेश्याविशिष्ट मनुष्य सम्यग्दृष्टि आदि के भेद से तीन प्रकार के होते है। इनमे से सम्यग्दृष्टि मनुष्यो के तीन प्रकार है सयमी, असयमी और सयमासयमी । जैसे—औघिक (सामान्य) मनुष्यो के विषय मे इन तीनो की क्रियाओ का कथन किया गया है, वैसे ही कृष्णलेश्याविशिष्ट मनुष्यो के विषय मे भी कहना चाहिए । जैसे कि वीतरागसयत मनुष्यो मे कोई क्रिया नही होती । सरागसयत मनुष्यो मे दो क्रियाएँ होती है आरम्भिकी और मायाप्रत्यया । कृष्णलेश्या प्रमत्तसयतो मे होती है, अप्रमत्तसयतो मे नही । सभी प्रकार के आरम्भ प्रमादयोग मे होते है, अत प्रमत्तसयतो मे आरम्भिकी क्रिया होती है और क्षीणकषाय न होने से उनमे मायाप्रत्यया क्रिया भी होती है । किन्तु जो सयतासयत है, उनमे आरम्भिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया, ये तीन तथा असयत मनुष्य मे इन तीनो के उपरात चौथी अप्रत्याख्यानक्रिया भी पाई जाती है ।[1]

कापोतलेश्या वाले नारको का वेदनासूत्र—कापोतलेश्याविशिष्ट नारको का वेदनाविषयक कथन समुच्चय नारको के समान समझना चाहिए, यथा- कापोतलेश्याविशिष्ट नारक दो प्रकार के कहे है -सञ्ज्ञीभूत और असञ्ज्ञीभूत, इत्यादि प्रकार से समझना चाहिए । असञ्ज्ञी जीव भी प्रथम नरक-पृथ्वी मे उत्पन्न होता है, जहाँ कि कापोतलेश्या का सद्भाव है ।[2]

तेजोलेश्याविशिष्ट असुरकुमारादि की वक्तव्यता-सिद्धान्तानुसार नारक, तेजस्कायिक, वायुकायिक तथा विकलेन्द्रिय जीवो मे तेजोलेश्या नही होती, इसलिए तेजोलेश्या की अपेक्षा से सर्वप्रथम असुरकुमारो का कथन किया है । तेजोलेश्याविशिष्ट असुरकुमारो का वेदना के सिवाय शेष आहारादि षट्द्वारो के विषय मे कथन औघिक अर्थात्—समुच्चय असुरकुमारो के समान समझना चाहिए । इनके वेदनासूत्र के विषय मे ज्योतिष्क देवो के वेदनासूत्र के समान समझना चाहिए । अर्थात् - इसकी अपेक्षा से असुरकुमारो के सञ्ज्ञीभूत, असञ्ज्ञीभूत ये दो भेद न करके मायि-मिथ्यादृष्टि-उप-पन्नक और अमायि-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक, ये दो भेद कहने चाहिए, क्योकि असञ्ज्ञी जीवो की तेजोलेश्यावालो मे उत्पत्ति असभव है ।

तेजोलेश्याविशिष्ट मनुष्यो का क्रियासूत्र क्रियाओ की अपेक्षा से सयत मनुष्य दो प्रकार के कहने चाहिए—प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत । इन दोनो मे तेजोलेश्या सम्भव है । सरागसयत और वीतरागसयत ये भेद तेजोलेश्याविशिष्ट मनुष्यो मे नही करने चाहिए, क्योकि वीतरागसयतो मे तेजोलेश्या सम्भव नही है । वह सरागसयतो मे पाई जाती है ।

---

१ (क) '**असन्नी खलु पढम**' प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्राक ३४२ मे उद्धृत

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३४२

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३४३

तेजोलेश्यायुक्त वाणव्यन्तरों का कथन—इनका कथन असुरकुमारो के समान समझना चाहिए। ऐसी स्थिति मे तेजोलेश्याविशिष्ट वाणव्यन्तरो के सज्ञीभूत और असज्ञीभूत, यो दो भेद न करके मायि-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक, और अमायि-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक, ये दो भेद कहने चाहिए, क्योकि तेजोलेश्यावाले वाणव्यन्तरो मे[1] असज्ञीजीवो का उत्पाद नही होता।

पद्मलेश्या-शुक्ललेश्या-विशिष्ट जीवो के आहारादिसूत्र—इन दोनो लेश्याओ वाले जीवो के आहारादिसूत्र तेजोलेश्या के समान समझने चाहिए। विशेषत यह है कि जिन जीवो मे ये दो लेश्याएँ पाई जाती हो, उन्ही के विषय मे ये सूत्र कहने चाहिए, अन्य जीवो के विषय मे नही। ये दोनो लेश्याएँ पचेन्द्रियतिर्यचो, मनुष्यो और वैमानिक देवो मे ही पाई जाती है, शेष जीवो मे नही।[2]

॥ सत्तरहवाँ लेश्यापद : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ३४३

२ वही, मलय वृत्ति, पत्राक ३४३

सत्तरसमं लेस्सापयं : बीओ उद्देसओ

सत्तरहवाँ लेश्यापद : द्वितीय उद्देशक

लेश्या के भेदों का निरूपण

११५६. कति ण भंते ! लेस्साम्रो पण्णत्ताम्रो ?

गोयमा ! छल्लेस्साम्रो पण्णत्ताम्रो । त जहा—कण्हलेस्सा १ णीललेस्सा २ काउलेस्सा ३ तेउलेस्सा ४ पम्हलेस्सा ५ सुक्कलेस्सा ६ ।

[११५६ प्र] भगवन् ! लेश्याएँ कितनी कही गई है ?

[११५६ उ.] गौतम ! लेश्याएँ छह कही गई हैं। वे इस प्रकार—(१) कृष्णलेश्या, (२) नीललेश्या, (३) कापोतलेश्या, (४) तेजोलेश्या, (५) पद्मलेश्या ग्रौर (६) शुक्ललेश्या।

विवेचन—लेश्या के भेदो का निरूपण—प्रस्तुत सूत्रो मे लेश्या के कृष्ण ग्रादि छह भेदो का निरूपण किया गया है।

कृष्णलेश्या ग्रादि के शब्दार्थ—कृष्णद्रव्यरूप ग्रथवा कृष्णद्रव्य-जनित लेश्या कृष्णलेश्या कहलाती है। इसी प्रकार नीललेश्या ग्रादि का शब्दार्थ भी समझ लेना चाहिए।[1]

चौवीस दण्डकों में लेश्यासम्बन्धी प्ररूपणा

११५७. णेरइयाण भते ! कति लेस्साम्रो पण्णत्ताम्रो ?

गोयमा ! तिण्णि । त जहा—किण्हलेस्सा नीललेस्सा काउलेस्सा ।

[११५७ प्र] नैरयिको मे कितनी लेश्याएँ होती है ?

[११५७ उ] गौतम ! (उनमे) तीन लेश्याएँ होती है। वे इस प्रकार—(१) कृष्णलेश्या, (२) नीललेश्या ग्रौर (३) कापोतलेश्या।

११५८. तिरिक्खजोणियाण भते ! कति लेस्साम्रो पण्णत्ताम्रो ?

गोयमा ! छल्लेस्साम्रो । तं जहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

[११५८ प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक जीवो मे कितनी लेश्याएँ कही गई हैं ?

[११५८ उ] गौतम ! (उनमे) छह लेश्याएँ होती है, वे इस प्रकार—कृष्णलेश्या से लेकर शुक्ललेश्या तक।

११५९. एगिंदियाणं भंते ! कति लेस्साम्रो पण्णत्ताम्रो ?

गोयमा ! चत्तारि लेस्साम्रो । त जहा—कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा ।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३४४

[११५९ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय जीवो मे कितनी लेश्याएँ कही है ?

[११५९ उ.] गौतम ! (उनमे) चार लेश्याएँ होती है। वे इस प्रकार –कृष्णलेश्या से तेजोलेश्या तक।

११६०. पुढविक्काइयाणं भंते ! कति लेस्साओ ?

गोयमा ! एवं चेव ।

[११६० प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो मे कितनी लेश्याएँ होती है ?

[११६० उ] गौतम ! इनमे भी इसी प्रकार (चार लेश्याएँ समझनी चाहिए।)

११६१. आउ-वणस्सइकाइयाण वि एवं चेव ।

[११६१] इसी प्रकार अप्कायिको और वनस्पतिकायिको मे भी चार लेश्याएँ (जाननी चाहिए।)

११६२. तेउ-वाउ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण जहा णेरइयाण (सु. ११५७)।

[११६२] तेजस्कायिक, वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो मे (सू ११५७ मे उक्त) नैरयिको की तरह (तीन लेश्याएँ होती है।)

११६३ [१] पचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ?

गोयमा ! छल्लेस्साओ, कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

[११६३-१ प्र.] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो मे कितनी लेश्याएँ हाती है ?

[११६३-१ उ] गौतम ! (उनमे) छह लेश्याएँ होती है, यथा—कृष्णलेश्या से शुक्ललेश्या तक।

[२] सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ?

गोयमा ! जहा णेरइयाण (सु. ११५७)।

[११६३-२ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवो मे कितनी लेश्याएँ होती हैं ?

[११६३-२ उ.] गौतम ! नारको के समान (प्रारम्भ की तीन लेश्याएँ) समझनी चाहिए।

[३] गब्भवक्कंतियपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ?

गोयमा ! छल्लेसाओ, त जहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

[११६३-३ प्र.] भगवन् ! गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे कितनी लेश्याएँ होती है ?

[११६३-३ उ] गौतम ! (उनमे) छह लेश्याएँ होती हैं—कृष्णलेश्या से शुक्ललेश्या तक।

[४] तिरिक्खजोणिणीणं पुच्छा ?

गोयमा ! छल्लेसाओ एताओ चेव ।

[११६३-४ प्र] भगवन् ! गर्भज तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियो मे कितनी लेश्याएँ होती है ?

[११६३-४ उ] गौतम ! ये ही (कृष्ण आदि) छह लेश्याएँ होती हैं।

११६४. [१] मणुस्साण पुच्छा ?

गोयमा ! छल्लेसाओ एताओ चेव ।

[११६४-१ प्र] भगवन् ! मनुष्यो मे कितनी लेश्याएँ होती हैं ?

[११६४-१ उ] गौतम ! ये ही छह लेश्याएँ होती है।

[२] सम्मुच्छिममणुस्साण पुच्छा ?

गोयमा ! जहा णेरइयाणं (सु. ११५७) ।

[११६४-२ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे कितनी लेश्याएँ होती हैं ?

[११६४-२ उ] गौतम ! जैसे नारको मे प्रारम्भ की तीन लेश्याएँ कही है, वैसे ही सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे भी होती है।

[३] गब्भवक्कतियमणूसाणं पुच्छा ?

गोयमा ! छल्लेसाओ, त जहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेसा ।

[११६४-३ प्र] भगवन् ! गर्भज मनुष्यो मे कितनी लेश्याएँ होती है ?

[११६४-३ उ] गौतम ! (उनमे) छह लेश्याएँ होती है—कृष्णलेश्या से लेकर शुक्ललेश्या तक।

[४] मणुस्सीणं पुच्छा ?

गोयमा ! एवं चेव ।

[११६४-४ प्र] भगवन् ! गर्भज मानुषी (स्त्री) मे कितनी लेश्याएँ कही है ?

[११६४-४ उ] गौतम ! (जैसे गर्भज मनुष्यो मे छह लेश्याएँ होती है) इसी प्रकार (गर्भज स्त्रियो मे भी) छह लेश्याएँ समझनी चाहिए।

११६५. [१] देवाण पुच्छा ?

गोयमा ! छ एताओ चेव ।

[११६५-१ प्र] भगवन् ! देवो मे कितनी लेश्याएँ होती है ?

[११६५-१ उ] गौतम ! ये ही छह लेश्याएँ होती हैं।

[२] देवीण पुच्छा ?

गोयमा ! चत्तारि । तं जहा—कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा ।

[११६५-२ प्र] भगवन् ! देवियो मे कितनी लेश्याएँ होती है ?

[११६५-२ उ] गौतम ! (उनमे) चार लेश्याएँ होती है, वे इस प्रकार—कृष्णलेश्या से लेकर तेजोलेश्या तक।

११६६ [१] भवणवासीणं भंते ! देवाणं पुच्छा ?

गोयमा ! एवं चेव ।

[११६६-१ प्र] भगवन् ! भवनवासी देवो मे कितनी लेश्याएँ कही गई हैं ?

[११६६-१ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) इनमे चार लेश्याएँ (होती है ।)

[२] एव भवणवासिणीण वि ।

[११६६-२] इसी प्रकार भवनवासी देवियो मे भी चार लेश्याएँ समझनी चाहिए ।

११६७. [१] वाणमंतरदेवाणं पुच्छा ?

गोयमा ! एवं चेव ।

[११६७-१ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवो में कितनी लेश्याएँ कही है ?

[११६७-१ उ] गौतम ! इसी प्रकार चार लेश्याएँ (समझनी चाहिए ।)

[२] एवं वाणमंतरीण वि ।

[११६७-२] वाणव्यन्तर देवियो मे भी ये ही चार लेश्याएँ समझनी चाहिए ।

११६८. [१] जोइसियाणं पुच्छा ?

गोयमा ! एगा तेउलेस्सा ।

[११६८-१ प्र] ज्योतिष्क देवों के सम्बन्ध मे प्रश्न है ?

[११६८-१ उ] गौतम ! इनमें एकमात्र तेजोलेश्या होती है ।

[२] एवं जोइसिणीण वि ।

[११६८-२] इसी प्रकार ज्योतिष्क देवियो के विषय मे (जानना चाहिए ।)

११६९. [१] वेमाणियाण पुच्छा ?

गोयमा ! तिण्णि । तं जहा—तेउलेस्सा पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सा ।

[११६९-१ प्र] भगवन् ! वैमानिक देवो मे कितनी लेश्याएँ हैं ?

[११६९-१ उ] गौतम ! (उनमे) तीन लेश्याएँ है—१ तेजोलेश्या, २ पद्मलेश्या और ३. शुक्ललेश्या ।

[२] वेमाणिणीणं पुच्छा ?

गोयमा ! एगा तेउलेसा ।

[११६९-२ प्र.] वैमानिक देवियो की लेश्या सम्बन्धी पृच्छा है ?

[११६९-२ उ] गौतम ! उनमे एकमात्र तेजोलेश्या होती है ।

विवेचन चौवीस दण्डको में लेश्यासम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत तेरह सूत्रो मे नारक से

वैमानिक देवियो पर्यन्त समस्त ससारी जीवो मे से किसमे कितनी लेश्याएँ पाई जाती हैं ?, यह प्रतिपादन किया है ।

सम्बन्धित सग्रहणी गाथाये इस प्रकार हैं—

किण्हानीला काऊ तेऊलेसा य भवणवंतरिया ।
जोइस-सोहम्मीसाण तेऊलेसा मुणेयव्वा ॥ १ ॥
कप्पे सणंकुमारे माहिंदे चेव बंभलोए य ।
एएसु पम्हलेसा, तेण पर सुक्कलेसा उ ॥ २ ॥
पुढवी-ग्राऊ-वणस्सइ-बायर-पत्तेय लेस चत्तारि ।
गब्भय-तिरिय-नरेसु छल्लेसा, तिन्नि सेसाणं ॥ ३ ॥

सग्रहणीगाथार्थ—भवनवासियो और व्यन्तर देवो मे कृष्ण, नील, कापोत और तेजोलेश्या होती है । ज्योतिष्को तथा सौधर्म और ईशान देवो मे केवल तेजोलेश्या होती है । सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक मे पद्मलेश्या और उनसे आगे के कल्पो मे शुक्ललेश्या होती है । बादर पृथ्वीकाय, अप्काय और प्रत्येक वनस्पतिकाय मे प्रारम्भ की चार लेश्याएँ, गर्भज तिर्यञ्चो और मनुष्यो मे छह लेश्याएँ और शेष जीवो मे प्रथम की तीन लेश्याएँ होती है ।[1]

सलेश्य अलेश्य जीवों का अल्पबहुत्व

११७०. एतेसि ण भते ! **सलेस्साण जीवाणं कण्हलेस्साण जाव सुक्कलेस्साण अलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४[2] ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा, तेउलेस्सा सखेज्जगुणा, अलेस्सा अणंतगुणा, काउलेस्सा अणतगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, सलेस्सा विसेसाहिया ।

[११७० प्र] भगवन् ! इन सलेश्य, कृष्णलेश्या से लेकर शुक्ललेश्या तक के और अलेश्य जीवो मे कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[११७० उ] गौतम ! सबसे थोडे जीव शुक्ललेश्या वाले है, (उनसे) पद्मलेश्या वाले सख्यातगुणे है, (उनमे) तेजोलेश्या वाले सख्यातगुणे हैं, (उनसे) अलेश्य अनन्तगुणे है, उनसे कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणे है, उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं और सलेश्य उनमे भी विशेषाधिक है ।

विवेचन - सलेश्य-अलेश्य आदि जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र मे सलेश्य, कृष्णलेश्या से लेकर शुक्ललेश्या वाले जीवो और अलेश्य जीवो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

अल्पबहुत्व की समीक्षा—शुक्ललेश्या वाले सबसे कम इसलिए कहे गए है कि शुक्ललेश्या

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्राक ३४४

२ जहाँ भी 'अप्पा वा' के आगे '४' का अक है, वहाँ वह **'बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा'** इन शेष तीनो पदो सहित चार पदो का सूचक है ।

कतिपय पचेन्द्रियतिर्यंचो मे, मनुष्यो मे और लान्तक आदि कल्पो के देवो मे ही पाई जाती है। उनकी अपेक्षा संख्यातगुणे अधिक पद्मलेश्या वाले जीव कहे है, क्योकि वह पचेन्द्रियतिर्यचो मे, मनुष्यो मे तथा सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक नामक कल्पो मे पाई जाती है। उनसे सख्यातगुणे अधिक तेजोलेश्या वाले जीव इसलिए कहे गए हैं कि तेजोलेश्या बादर पृथ्वीकायिको, बादर अप्कायिको, प्रत्येक वनस्पतिकायिकों मे तथा पचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे, मनुष्यो मे, भवनपति, वाणव्यन्तर ज्योतिष्क, सौधर्म और ईशान देवो मे पाई जाती है। तेजोलेश्यी जीवो की अपेक्षा अलेश्य जीव अनन्तगुणे अधिक इसलिए कहे गए हैं, क्योकि सिद्ध जीव अनन्त है और वे अलेश्य हैं। अलेश्यो की अपेक्षा कापोतलेश्या वाले वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणित होने से कापोतलेश्या वाले जीव अलेश्यो से अनन्तगुणे अधिक हैं। क्लिष्ट और क्लिष्टतर अध्यवसाय वाले जीव अपेक्षाकृत अधिक होते है, इस कारण कापोतलेश्या वालो की अपेक्षा नीललेश्या वाले और नीललेश्या वालो की अपेक्षा कृष्णलेश्या वाले जीव विशेषाधिक होते हैं।[1]

विविधलेश्याविशिष्ट चौवीसदण्डकवर्ती जीवों का अल्पबहुत्व

११७१. एतेसि णं भंते! णेरइयाण कण्हलेस्साण नीललेस्साण काउलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४?

गोयमा! सव्वत्थोवा णेरइया कण्हलेसा, णीललेस्सा असखेज्जगुणा, काउलेस्सा असखेज्जगुणा।

[११७१ प्र] भगवन्! कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले नारको मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

[११७१ उ] गौतम! सबसे थोडे कृष्णलेश्या वाले नारक है, उनसे असख्यातगुणे नीललेश्या वाले हैं और उनसे भी असख्यातगुणे कापोतलेश्या वाले है।

११७२. एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणियाण कण्हलेस्साण जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४?

गोयमा! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया सुक्कलेसा, एव जहा ओहिया (सु. ११७०) णवर अलेस्सवज्जा।

[११७२ प्र] भगवन्! इन कृष्णलेश्या से लेकर शुक्ललेश्या वाले तिर्यचयोनिको मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

[११७२ प्र] गौतम! सबसे कम तिर्यञ्च शुक्ललेश्या वाले है इत्यादि जैसे पहले सूत्र ११७० मे औधिक (समुच्चय) का प्रतिपादन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि तिर्यञ्चो मे अलेश्य नही कहना चाहिए, (क्योकि उनमे अलेश्य होना सम्भव नही है)।

११७३. एतेसि णं भते! एगिंदियाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ३४५

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगिंदिया तेउलेस्सा, काउलेस्सा अणंतगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया ।

[११७३ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या से लेकर तेजोलेश्या तक के एकेन्द्रियो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[११७३ उ] गौतम ! सबसे कम तेजोलेश्या वाले एकेन्द्रिय हैं, उनसे अनन्तगुणे अधिक कापोतलेश्या वाले एकेन्द्रिय हैं, उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं और उनसे भी कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं ।

११७४ एतेसि णं भंते ! पुढविक्काइयाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! जहा ओहिया एगिंदिया (सु. ११७३) । णवरं काउलेस्सा असंखेज्जगुणा ।

[११७४ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या से लेकर तेजोलेश्या तक के पृथ्वीकायिको मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[११७४ उ] गौतम ! जिस प्रकार समुच्चय एकेन्द्रियो का (सू. ११७३ मे) कथन किया है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिको (के अल्पबहुत्व) का कथन करना चाहिए । विशेषता इतनी है कि कापोतलेश्या वाले पृथ्वीकायिक असख्यातगुणे है ।

११७५. एव आउक्काइयाण वि ।

[११७५] इसी प्रकार कृष्णादिलेश्या वाले अप्कायिको मे अल्पबहुत्व का निरूपण भी समझ लेना चाहिए ।

११७६ एतेसि णं भंते ! तेउक्काइयाणं कण्हलेस्साण णीललेस्साणं काउलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तेउक्काइया काउलेस्सा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया ।

[११७६ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले तेजस्कायिको मे कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[११७६ उ] गौतम ! सबसे कम कापोतलेश्या वाले तेजस्कायिक है, उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक है ।

११७७. एव वाउक्काइयाण वि ।

[११७७] इसी प्रकार (कृष्णादिलेश्याविशिष्ट) वायुकायिको का भी अल्पबहुत्व (समझ लेना चाहिए) ।

११७८. एतेसि णं भंते ! वणस्सइकाइयाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य० ?

जहा एगिंदियओहियाण (सु. ११७३) ।

[११७८ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या से लेकर तेजोलेश्या वाले वनस्पतिकायिको मे (कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं) ?

[११७८ उ] गौतम ! जैसे (सू ११७३ मे) समुच्चय (औघिक) एकेन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार वनस्पतिकायिको का अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए ।

११७९. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण जहा तेउक्काइयाण (सु ११७६) ।

[११७९] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व (सू ११७६ मे उक्त) तेजस्कायिको के समान है ।

११८०. [१] एतेसि ण भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! जहा ओहियाणं तिरिक्खजोणियाणं (सु ११७२) । णवर काउलेस्सा असखेज्जगुणा ।

[११८०-१ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या वालो से लेकर यावत् शुक्ललेश्या वाले पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत तुल्य, और विशेषाधिक है ?

[११८०-१ उ] गौतम ! जैसे (सू. ११७२ मे कृष्णादिलेश्याविशिष्ट) औघिक (समुच्चय) तिर्यञ्चो का अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार पचेन्द्रियतिर्यञ्चो का अल्पबहुत्व कहना चाहिए । विशेषता यह है कि कापोतलेश्या वाले पचेन्द्रियतिर्यञ्च असख्यातगुणे है ।

[२] सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण जहा तेउक्काइयाण । (सु. ११७६) ।

[११८०-२] (कृष्णादिलेश्यायुक्त) सम्मूर्च्छिम-पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको का अल्पबहुत्व (सू ११७६ मे उक्त) तेजस्कायिको के (अल्पबहुत्व के) समान (समझना चाहिए) ।

[३] गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण जहा ओहियाण तिरिक्खजोणियाण (सु. ११७२) । णवर काउलेस्सा सखेज्जगुणा ।

[११८०-३] (कृष्णादिलेश्याविशिष्ट) गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो का अल्पबहुत्व समुच्चय पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के (सू. ११७२ मे उक्त) अल्पबहुत्व के समान जान लेना चाहिए । विशेषता यह है कि कापोतलेश्या वाले (गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्च) सख्यातगुणे (कहने चाहिए) ।

[४] एव तिरिक्खजोणिणीयण वि ।

[११८०-४] (जैसे गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको का अल्पबहुत्व कहा है,) इसी प्रकार गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक स्त्रियो का भी (अल्पबहुत्व कहना चाहिए) ।

[५] एतेसि ण भंते ! सम्मुच्छिमपचेंदियतिरिक्खजोणियाणं गब्भवक्कतियपचेंदियतिरिक्खजोणियाण य कण्हलेस्साण जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा, तेउलेस्सा संखेज्जगुणा, काउलेस्सा संखेज्जगुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काउलेस्सा सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया ।

[११८०-५ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या वालो से लेकर शुक्ललेश्यायुक्त सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको और गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[११८०-५ उ] गौतम ! सबसे कम शुक्लेश्या वाले गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक है, उनसे पद्मलेश्यावाले सख्यातगुणे है, उनसे तेजोलेश्याविशिष्ट सख्यातगुणे है, उनसे नीललेश्याविशिष्ट (गर्भज-तिर्यञ्चपचेन्द्रिय) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्यायुक्त विशेषाधिक है, उनसे कापोतलेश्या वाले सम्मूर्च्छिम-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक असख्यातगुणे हैं, उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं और उनसे भी कृष्णलेश्या वाले सम्मूर्च्छिम-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक है ।

[६] **एतेसि णं भंते ! सम्मुच्छिमपचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेस्साण जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?**

गोयमा ! जहेव पंचमं (सु ११८० [५]) तहा इमं पि छट्ठं भाणियव्वं ।

[११८०-६ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाली से लेकर शुक्ललेश्या वाले सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको और तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियो में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[११८०-६ उ] गौतम ! जैसे (सू ११८०-५ मे) पचम (कृष्णादिलेश्यायुक्त तिर्यञ्चयोनिक सम्बन्धी) अल्पबहुत्व कहा है, वैसे ही यह छठा (सम्मूर्च्छिम-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियो का कृष्णलेश्यादिविषयक) अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

[७] **एतेसि ण भंते ! गब्भवक्कंतियपचेंदियतिरिक्खजोणियाण तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतियपचेंदियतिरिक्खजोणिया सुक्कलेस्सा सुक्कलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ सखेज्जगुणाओ, पम्हलेस्सा गब्भवक्कतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, पम्हलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ, संखेज्जगुणाओ, तेउलेस्सा० संखेज्जगुणा, तेउलेस्साओ० संखेज्ज गुणाओ, काउलेस्सा० संखेज्जगुणा, णीललेस्सा० विसेसाहिया, कण्हलेस्सा० विसेसाहिया, काउ-लेस्साओ० संखेज्जगुणाओ, णीललेस्साओ० विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ० विसेसाहियाओ ।

[११८०-७ प्र] भगवन् ! इन कृष्णालेश्या वालो से लेकर शुक्ललेश्या वाले गर्भज पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको और तिर्यञ्चस्त्रियो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[११८०-७ उ] गोतम ! सबसे कम शुक्ललेश्या वाले गर्भज-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक है, उनसे सख्यातगुणो शुक्ललेश्या वाली गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्चस्त्रिया है, उनसे पद्मलेश्या वाले गर्भज पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक सख्यातगुणे है, उनमे पद्मलेश्या वाली गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्चस्त्रियाँ सख्यातगुणी हैं, उनसे तेजोलेश्या वाले ० सख्यातगुणे हैं, उनसे तेजोलेश्या वाली तिर्यञ्चस्त्रिया सख्यातगुणी हैं, उनसे कापोतलेश्या वाले गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्च सख्यातगुणे है, उनमे नीललेश्या वाले (गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्चस्त्रिया) सख्यातगुणी है, उनसे नीललेश्या वाली (गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्चस्त्रिया) विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्णलेश्या वाली (गर्भज-पचेन्द्रियस्त्रिया) विशेषाधिक है।

[८] एतेसि णं भंते ! सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण गब्भवक्कंतियपचेंदियतिरिक्खजोणियाण तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेस्साण जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया सुक्कलेस्सा, सुक्कलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ, पम्हलेस्सा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, पम्हलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ, तेउलेस्सा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, तेउलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ, काउलेस्सा तिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, णीललेस्सा० विसेसाहिया, कण्हलेस्सा० विसेसाहिया, काउलेस्साओ० संखेज्जगुणाओ० णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ० विसेसाहियाओ, काउलेस्सा सम्मुच्छिमपचेंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, णीललेस्सा० विसेसाहिया, कण्हलेस्सा० विसेसाहिया।

[११८०-८ प्र] भगवन् ! कृष्णा लेश्या वाले से लेकर शुक्ललेश्या वाले इन सम्मूच्छिम-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको, गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको तथा तिर्यञ्चयोनिकस्त्रियो मे कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[११८०-८ उ.] गौतम ! सबसे थोडे शुक्ललेश्या वाले गर्भज (पचेन्द्रिय) तिर्यञ्चयोनिक है, उनसे शुक्ललेश्या वाली (गर्भज पचेन्द्रिय) तिर्यञ्चस्त्रिया सख्यातगुणी है, उनसे पद्मलेश्या वाले गर्भज पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक सख्यातगुणे है, उनसे पद्मलेश्या वाली (गर्भज-पचेन्द्रिय-) तिर्यञ्चस्त्रिया सख्यातगुणी है, उनसे तेजोलेश्या वाले गर्भज पचन्द्रियतिर्यञ्च सख्यातगुणे है, उनसे तेजोलेश्या वाली (गर्भज-पचेन्द्रिय-) तिर्यञ्चस्त्रिया सख्यातगुणी है, उनसे कापोतलेश्या वाले (गर्भज-पचेन्द्रिय-) तिर्यञ्चयोनिक सख्यातगुणे हैं, उनमे नीललेश्या वाले (तथारूप तिर्यञ्च) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाले (तथारूप-तिर्यञ्च) विशेषाधिक है, उनमे कापोतलेश्या वाली (तथारूप तिर्यञ्चस्त्रिया) सख्यातगुणी है, उनसे नीललेश्या वाली (तथारूप तिर्यञ्चस्त्रिया) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाली (तथारूप तिर्यञ्चस्त्रिया) विशेषाधिक है, (उनसे कापोतलेश्या वाले सम्मूच्छिम-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक असख्यातगुणे है, उनसे नीललेश्या वाले (सम्मूच्छिम पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाले सम्मूच्छिम-पचेन्द्रियतिर्यञ्च विशेषाधिक है।

[९] एतेसि णं भंते ! पचेंदियतिरिक्खजोणियाण तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया सुक्कलेसा, सुक्कलेस्साओ० संखेज्जगुणाओ, पम्हलेस्सा० संखेज्जगुणा, पम्हलेस्साओ० सखेज्जगुणाओ, तेउलेस्सा० सखेज्जगुणा, तेउलेस्साओ० संखेज्जगुणाओ, काउलेस्साओ० सखेज्जगुणाओ, णीललेस्साओ० विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ० विसेसाहियाओ, काउलेस्सा० असंखेज्जगुणा, णीललेस्सा० विसेसाहिया, कण्हलेस्सा० विसेसाहिया ।

[११८०-९ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या वाले से लेकर शुक्ललेश्या वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको और तिर्यञ्चस्त्रियो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत्व, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[११८०-९ उ] गौतम ! सबसे कम शुक्ललेश्या वाले पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक हैं, उनसे शुक्ललेश्या वाली पचेन्द्रियतिर्यतिर्यञ्च स्त्रिया सख्यातगुणी है, उनसे पद्मलेश्या वाले (पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) सख्यातगुणे है, उनमे पद्मलेश्या वाली (पचेन्द्रियतिर्यञ्च स्त्रिया) सख्यातगुणी हैं, उनसे तेजोलेश्या वाले (पचेन्द्रियतिर्यञ्च) सख्यातगुणे है, उनसे तेजोलेश्या वाली (पचेन्द्रियतिर्यञ्च स्त्रिया) सख्यातगुणी है, उनसे कापोतलेश्या वाली (पचेन्द्रियतिर्यञ्च स्त्रिया) सख्यातगुणी है, उनसे नीललेश्या वाली (पचेन्द्रियतिर्यञ्च स्त्रिया) विशेषाधिक है, उनमे कृष्णलेश्या वाली (पचेन्द्रियतिर्यञ्च स्त्रिया) विशेषाधिक है, उनसे कापोतलेश्या वाले (पचेन्द्रियतिर्यञ्च) असख्यात गुणे है, उनसे नीललेश्या वाले (पचेन्द्रियतिर्यञ्च) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाले (पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) विशेषाधिक है ।

[१०] एतेसि णं भते ! तिरिक्खजोणियाण तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेस्साण जाव सुक्क-लेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! जहेव णवम अप्पाबहुग तहा इम पि, नवर काउलेस्सा तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा । एव एते दस अप्पाबहुगा तिरिक्खजोणियाण ।

[११८०-१० प्र] भगवन् ! इन तिर्यञ्चयोनिको और तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियो मे से कृष्णलेश्या से लेकर शुक्ललेश्या वालो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[११८०-१० उ] गौतम ! जैसे नौवाँ कृष्णादिलेश्या वाले तिर्यञ्चयोनिकसम्बन्धी अल्प-बहुत्व कहा है, वैसे यह दसवाँ भी समझ लेना चाहिए । विशेषता यह है कि कापोतलेश्या वाले तिर्यञ्चयोनिक अनन्तगुणे होते है, कहना चाहिए ।

इस प्रकार ये (पूर्वोक्त) दस अल्पबहुत्व तिर्यञ्चो के कहे गए है ।

११८१ एव मणूसाण पि अप्पाबहुगा भाणियव्वा । णवर पच्छिमग अप्पाबहुग णत्थि ।

[११८१] इसी प्रकार (कृष्णादिलेश्याविशिष्ट) मनुष्यो का भी अल्पबहुत्व कहना चाहिए । परन्तु उनका अतिम अल्पबहुत्व नही है ।

११८२. [१] एतेसि ण भंते ! देवाण कण्हलेस्साण जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा देवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असखेज्जगुणा, काउलेस्सा असंखेज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, तेउलेस्सा सखेज्जगुणा ।

[११८२-१ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या वाले से लेकर शुक्ललेश्या वाले देवो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[११८२-१ उ] गौतम ! सबसे थोडे शुक्ललेश्या वाले देव हैं, उनसे पद्मलेश्या वाले देव असख्यातगुणे हैं, उनसे कपोतलेश्यी देव असख्यातगुणे हैं, उनसे नीललेश्या वाले देव विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाले देव विशेषाधिक है और उनसे भी तेजोलेश्या वाले देव सख्यातगुणे हैं।

[२] एतेसि ण भते ! देवीण कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवाओ देवीओ काउलेस्साओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्साओ संखेज्जगुणाओ।

[११८२-२ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या वाली यावत् तेजोलेश्या वाली देवियो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[११८२-२ उ] गौतम ! सबसे थोडी कपोतलेश्या वाली देविया हैं, उनसे नीललेश्या वाली (देविया) विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्णलेश्या वाली (देविया) विशेषाधिक है और उनसे भी तेजोलेश्या वाली (देविया) सख्यातगुणी है।

[३] एतेसि णं भंते ! देवाणं देवीण य कण्हलेस्साण जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा देवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असंखेज्जगुणा, काउलेस्सा असंखेज्जगुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काउलेस्साओ देवीओ सखेज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्सा देवा संखेज्जगुणा, तेउलेस्साओ देवीओ संखेज्जगुणाओ।

[११८२-३ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले देवो और देवियो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[११८२-३ उ.] गौतम ! सबसे थोडे शुक्ललेश्या वाले देव है, उनसे पद्मलेश्या वाले (देव) असंख्यातगुणे है, उनसे कापोतलेश्या वाले (देव) असख्यातगुणे हैं, उनसे नीललेश्या वाले (देव) विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्णलेश्या वाले (देव) विशेषाधिक है, उनसे कापोतलेश्या वाली देविया सख्यातगुणी हैं, उनसे नीललेश्या वाली (देविया) विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्णलेश्या वाली (देविया) विशेषाधिक हैं, उनसे तेजोलेश्या वाले देव सख्यातगुणे हैं, उनसे भी तेजोलेश्या वाली देवियाँ सख्यातगुणी है।

११८३. [१] एतेसि णं भंते ! भवणवासीणं देवाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा भवणवासी देवा तेउलेस्सा, काउलेस्सा असंखेज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया ।

[११८३-१ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या वाले, यावत् तेजोलेश्या वाले भवनवासी देवो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[११८३-१ उ] गौतम ! सबसे कम तेजोलेश्या वाले भवनवासी देव है, उनसे कापोत-लेश्या वाले (भवनवासी देव) असख्यातगुणे है, उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक है और उनसे भी कृष्णलेश्या वाले (भवनवासी देव) विशेषाधिक है ।

[२] एतेसि णं भंते ! भवणवासिणीणं देवीण कण्हलेस्साण जाव तेउलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! एव चेव ।

[११८३-२ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या वाली यावत् तेजोलेश्या वाली भवनवासी देवियो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[११८३-२ उ] गौतम ! (जैसे कृष्णलेश्या वाले से लेकर तेजोलेश्या पर्यन्त भवनवासी देवो का अल्पबहुत्व कहा है) इसी प्रकार उनकी देवियो का भी अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

[३] एतेसि ण भंते ! भवणवासीण देवाणं देवीण य कण्हलेस्साण जाव तेउलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा भवणवासी देवा तेउलेस्सा, भवणवासिणीओ तेउलेस्साओ संखेज्ज-गुणाओ, काउलेस्सा भवणवासी असखेज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काउलेस्साओ भवणवासिणीओ सखेज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसा-हियाओ ।

[११८३-३ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या, यावत् तेजोलेश्या वाले भवनवासी देवो और देवियो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ।

[११८३-३ उ] गौतम ! सबसे थोड़े तेजोलेश्या वाले भवनवासी देव हैं, उनसे तेजोलेश्या वाली भवनवासी देविया सख्यातगुणी है, उनसे कापोतलेश्या वाले भवनवासी देव असख्यातगुणे है, उनसे नीललेश्या वाले (भवनवासी देव) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्यी (भवनवासी देव) विशेषाधिक हैं, उनसे कापोतलेश्या वाली भवनवासी देविया सख्यातगुणी हैं, उनसे नीललेश्या वाली (भवनवासी देविया) विशेषाधिक हैं और उनसे भी कृष्णलेश्या वाली भवनवासी देविया विशेषाधिक है ।

११८४ एव वाणमंतराण वि तिण्णेव अप्पाबहुया जहेव भवणवासीणं तहेव भाणियव्वा (११८३ [१-३]) ।

[११८४] जिस प्रकार (सू. ११८३-१ से ३ तक मे) भवनवासी देव-देवियों का अल्पबहुत्व कहा है, इसी प्रकार वाणव्यन्तरो के तीनो ही (देवो, देवियो और देव-देवियो का सम्मिलित) प्रकारो का अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

११८५. एतेसि णं भंते ! जोइसियाणं देवाणं देवीण य तेउलेस्साणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जोइसियदेवा तेउलेस्सा, जोइसिणिदेवीओ तेउलेस्साओ संखेज्जगुणाओ।

[११८५ प्र.] भगवन् ! इन तेजोलेश्या वाले ज्योतिष्क देवो-देवियो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[११८५ उ.] गौतम ! सबसे थोडे तेजोलेश्या वाले ज्योतिष्क देव है, उनसे तेजोलेश्या वाली ज्योतिष्क देविया सख्यातगुणी है।

११८६. एतेसि णं भंते ! वेमाणियाण देवाणं तेउलेस्साणं पम्हलेस्साणं सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४।

गोयमा ! सव्वत्थोवा वेमाणिया सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असखेज्जगुणा, तेउलेस्सा असखेज्ज-गुणा।

[११८६ प्र.] भगवन् ! इन तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देवो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[११८६ उ] गौतम ! सबसे कम शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देव है, उनसे पद्मलेश्या वाले असख्यात गुणे है और उनसे भी तेजोलेश्या वाले (देव) असख्यातगुणे है।

११८७. एतेसि ण भते ! वेमाणियाण देवाण देवीण य तेउलेस्साण पम्हलेस्साणं सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा पम्हलेस्सा असखेज्जगुणा, तेउलेस्सा असखेज्जगुणा, तेउलेस्साओ वेमाणिणीओ देवीओ सखेज्जगुणाओ।

[११८७ प्र] भगवन् ! इन तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देवो और देवियो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[११८७ उ] गौतम ! सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देव है, उनसे पद्मलेश्या वाले (वैमानिक देव) असख्यातगुणे है, उनसे तेजोलेश्या वाले (वैमानिक देव) असख्यातगुणे है, (उनसे) तेजोलेश्या वाली वैमानिक देविया सख्यातगुणी हैं।

११८८. एतेसि णं भते ! भवणवासीण वाणमतराण जोइसियाण वेमाणियाण य देवाण कण्ह-लेस्साण जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असंखेज्जगुणा, तेउलेस्सा

असंखेज्जगुणा, तेउलेस्सा भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा, काउलेस्सा असंखेज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया; तेउलेस्सा वाणमंतरा देवा असंखेज्जगुणा, काउलेस्सा असंखेज्ज-गुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, किण्हलेस्सा विसेसाहिया; तेउलेस्सा जोइसियदेवा संखेज्जगुणा।

[११८८ प्र] भगवन्! इन कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले भवनवासी, वाण-व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

[११८८ उ] गौतम! सबसे थोडे शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देव है, उनसे पद्मलेश्या वाले (वैमानिकदेव) असख्यातगुणे है, उनसे तेजोलेश्या वाले (वैमानिक देव) असख्यातगुणे है, उनसे तेजोलेश्या वाले भवनवासी देव असख्यातगुणे है, उनसे कापोतलेश्या वाले (भवनवासी देव) असख्यातगुणे है, उनसे नीललेश्या वाले (भवनवासी देव) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाले (भवनवासी देव) विशेषाधिक है, उनसे तेजोलेश्या वाले वाणव्यन्तर देव असख्यातगुणे है, उनसे कापोतलेश्या वाले (वाणव्यन्तर देव) असख्यातगुणे है, उनसे नीललेश्या वाले (वाणव्यन्तर देव) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाले (वाणव्यन्तर देव) विशेषाधिक है, उनसे भी तेजोलेश्या वाले ज्योतिष्क देव सख्यातगुणे है।

११८९. **एतासि ण भंते! भवणवासिणीण वाणमंतरीण जोइसिणीणं वेमाणिणीण य कण्ह-लेस्साण जाव तेउलेस्साण य कतरे कतरेहितो अप्पा वा ४?**

गोयमा! सव्वत्थोवाओ देवीओ वेमाणिणीओ तेउलेस्साओ; भवणवासिणीओ तेउलेस्साओ असखेज्जगुणाओ, काउलेस्साओ असखेज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्साओ वाणमतरीओ देवीओ असखेज्जगुणाओ, काउलेस्साओ असखेज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्साओ जोइसिणीओ देवीओ सखेज्जगुणाओ।

[११८९ प्र] भगवन्! इन कृष्णलेश्या वाली ले लेकर तेजोलेश्या वाली भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एव वैमानिक देवियो मे से कौन (देविया), किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

[११८९ उ] गौतम! सबसे थोडी तेजोलेश्या वाली वैमानिक देविया है, उनसे तेजो-लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ असख्यातगुणी है, उनसे कापोतलेश्या वाली (भवनवासी देवियाँ) असख्यातगुणी है, उनसे नीललेश्या वाली (भवनवासी देवियाँ) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाली (भवनवासीदे वियाँ) विशेषाधिक है, उनसे तेजोलेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियाँ असख्यातगुणी अधिक है, उनसे कापोतलेश्या वाली (वाणव्यन्तर देवियाँ) असख्यातगुणी है, उनसे नीललेश्या वाली (वाणव्यन्तर देवियाँ) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाली (वाणन्यन्तर देवियाँ) विशेषा-धिक है। उनसे तेजोलेश्या वाली ज्योतिष्क देवियाँ सख्यातगुणी है।

११९० एतेसि ण भते! भवणवासीणं जाव वेमाणियाणं देवाण य देवीण कण्हलेस्साण जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहितो अप्पा वा ४?

गोयमा! सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असखेज्जगुणा, तेउलेस्सा असंखेज्जगुणा, तेउलेस्साओ वेमाणिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ, तेउलेस्सा भवणवासी देवा

असखेज्जगुणा, तेउलेस्साओ भवणवासिणीओ देवीओ सखेज्जगुणाओ, काउलेस्सा भवणवासी असखेज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काउलेस्साओ भवणवासिणीओ सखेज्जगुणाओ, णीललेसाओ विसेसाहियाओ, कण्हलेसाओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्सा वाणमंतरा असखेज्जगुणा, तेउलेस्साओ वाणमंतरीओ सखेज्जगुणाओ, काउलेस्सा वाणमंतरा असखेज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काउलेस्साओ वाणमंतरीओ सखेज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्सा जोइसिया संखेज्जगुणा, तेउलेस्साओ जोइसिणीओ सखेज्जगुणाओ ।

[११९० प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले से लेकर शुक्ललेश्या वाले तक के भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो और देवियो मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[११९० उ] गौतम ! सबसे थोडे शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देव है, उनसे पद्मलेश्या वाले (वैमानिक देव) असख्यातगुणे है, उनसे तेजोलेश्या वाले (वैमानिक देव) असख्यातगुणे है, उनसे तेजोलेश्या वाली वैमानिक देवियाँ सख्यातगुणी है, उनसे तेजोलेश्या वाले भवनवासी देव असख्यातगुणे है, उनसे तेजोलेश्या वाली भवनवासी देवियाँ सख्यातगुणी है, उनसे कापोतलेश्या वाले भवनवासी देव असख्यातगुणे है, उनसे नीललेश्या वाले (भवनवासी देव) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाले (भवनवासी देव) विशेषाधिक है, उनसे कापोतलेश्या वाली (भवनवासी देवियाँ) सख्यातगुणी है, उनसे नीललेश्या वाली (भवनवासी देवियाँ) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाली (भवनवासी देवियाँ) विशेषाधिक है, उनसे तेजोलेश्या वाले वाणव्यन्तर देव असख्यातगुणे है, उनसे तेजोलेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियाँ सख्यातगुणी है, उनसे कापोतलेश्या वाले वाणव्यन्तर देव असख्यातगुणे है, उनसे नीललेश्या वाले (वाणव्यन्तर देव) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाले (वाणव्यन्तर देव) विशेषाधिक हैं, उनसे कापोतलेश्या वाली (वाणव्यन्तर देवियाँ) सख्यातगुणी है, उनसे नीललेश्या वाली (वाणव्यन्तर देवियाँ) विशेषाधिक है, उनसे कृष्णलेश्या वाली (वाणव्यन्तर देवियाँ) विशेषाधिक है; उनसे तेजोलेश्या वाले ज्योतिष्क देव सख्यातगुणे हैं, उनसे तेजोलेश्या वाली ज्योतिष्क देवियाँ सख्यातगुणी है ।

विवेचन -विविध लेश्याविशिष्ट चौबीस दण्डकवर्ती जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत बीस सूत्रो (सू ११७१ से ११९० तक) मे कृष्णादिलेश्याविशिष्ट चौबीस दण्डको के विभिन्न लिगादियुक्त जीवो के विविध अपेक्षाओ से अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

कृष्ण-नील-कापोतलेश्यायुक्त नारको का अल्पबहुत्व—नारको मे केवल तीन ही लेश्याएँ पाई जाती है—कृष्ण, नील और कापोत । जैसा कि कहा है—प्रारम्भ की दो नरकपृथ्वियो मे कापोत, तीसरी नरकपृथ्वी मे मिश्र (कापोत और नील), चौथी मे नील, पाचवी मे मिश्र (नील और कृष्ण), छठी मे कृष्ण और सातवी पृथ्वी मे महाकृष्ण लेश्या होती है । यही कारण है कि नारको मे कृष्ण, नील और कापोत, इन तीन लेश्या वालो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

सबसे कम कृष्णलेश्या वाले नारक इस कारण बताए गए है कि कृष्णलेश्या पाचवी पृथ्वी के कतिपय नारको तथा छठी और सातवी पृथ्वी के नारको में ही पाई जाती है । कृष्णलेश्या वाले

नारक की अपेक्षा नीललेश्या वाले नारक असख्यातगुणे इसलिए होते हैं कि नीललेश्या कतिपय तृतीय पृथ्वी के, चौथी पृथ्वी के और कतिपय पचम पृथ्वी के नारको मे पाई जाती है और पूर्वोक्त नारको से असख्यातगुणे अधिक हैं। नीललेश्यी नारको की अपेक्षा कापोतलेश्या वाले नारक इसलिए असख्यातगुणे अधिक हैं कि कापोतलेश्या प्रथम एव द्वितीय पृथ्वी के तथा तृतीय पृथ्वी के कतिपय नरकावासो मे पाई जाती है और वे नारक पूर्वोक्त नारको से असख्यातगुणे अधिक हैं।[1]

तिर्यंचों के अल्पबहुत्व में समुच्चय से विशेषता - समुच्चय सलेश्य जीवो की अल्पबहुत्व की तरह तिर्यंचो के अल्पबहुत्व का निर्देश किया गया है, परन्तु समुच्चय से एक विशेषता यह है कि समुच्चय मे अलेश्य का भी अल्पबहुत्व कहा गया है, जिसे तिर्यचो मे नही कहना चाहिए, क्योंकि तिर्यञ्चो के अलेश्य होना सभव नही है।[2]

एकेन्द्रियो के अल्पबहुत्व की समीक्षा एकेन्द्रियो मे ४ लेश्याएँ ही पाई जाती हैं—कृष्ण, नील, कापोत और तेजस्। अत यहाँ इन्ही चारो लेश्याओ से विशिष्ट एकेन्द्रियो का ही अल्पबहुत्व प्रदर्शित किया गया है। सबसे कम एकेन्द्रिय तेजोलेश्या वाले इसलिए है कि तेजोलेश्या कतिपय बादर पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवो के अपर्याप्त अवस्था मे ही पाई जाती है। तेजोलेश्याविशिष्ट एकेन्द्रियो की अपेक्षा कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणे अधिक है, क्योंकि कापोतलेश्या अनन्त सूक्ष्म एव बादर निगोद जीवो मे पाई जाती है। कापोतलेश्या वालो से नील-लेश्या वाले और इनसे कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार विशेषाधिक कहे गए है। पृथ्वी-जल-वनस्पतिकायिको मे चार लेश्याएं होने के कारण इनका अल्पबहुत्व समुच्चय एकेन्द्रिय के समान है और तेजस्काय, वायुकाय मे कृष्ण, नील, कापोत तीन ही लेश्याएँ है। अत: तेजोलेश्या को छोडकर शेष तीन लेश्याओ वाले तेजस्कायिको एव वायुकायिको का अल्पबहुत्व बताया गया है। सबसे अल्प कापोतलेश्यी, उनमे विशेषाधिक क्रमश. नीललेश्यी और कृष्णलेश्यी है। यही अल्पबहुत्व विकलेन्द्रियो मे निर्दिष्ट है।[3]

कृष्णादिलेश्याविशिष्ट पंचेन्द्रियतिर्यञ्चो का दशविध अल्पबहुत्व—यो तो समुच्चय तिर्यञ्चो मे अल्पबहुत्व के समान ही है, किन्तु जैसे समुच्चय तिर्यञ्च कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणे बताए है, वैसे कापोतलेश्या वाले पचेन्द्रियतिर्यञ्च अनन्त नही हो सकते, किन्तु वे असख्यातगुणे है, क्योंकि सभी पचेन्द्रियतिर्यञ्च मिलकर भी असख्यात ही है।

सामान्य पचेन्द्रियतिर्यञ्च के इस सूत्र के साथ ही निम्नोक्त विशिष्ट पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के आठ और एक समुच्चय तिर्यंचो का, यो ९ सूत्र और है—यथा—(२) सम्मूर्च्छिम-पचेन्द्रियतिर्यच का, (३) गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यञ्च का, (४) गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यच स्त्रियो का, (५) गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यचो और सम्मूर्च्छिम-पचेन्द्रियतिर्यचो का सम्मिलित, (६) सम्मूर्च्छिम-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और तिर्यच-स्त्रियो का, (७) गर्भज-पचेन्द्रियतिर्यचो और तिर्यञ्चस्त्रियो का, (८) सम्मूर्च्छिम एव गर्भज

१. (क) 'काउय दोसु, तइयाए मीसिया, नीलिया चउत्थीए।
पंचमियाए मिस्सा, कण्हा तत्तो परमकण्हा ॥
(ख) प्रज्ञापना. मलय वृत्ति, पत्राक ३४६
२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३४७
३ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३४७

पचेन्द्रियतिर्यंचो और गर्भज-तिर्यञ्चस्त्रियो का, (९) पचेन्द्रियतिर्यंचो और तिर्यंचस्त्रियो का और (१०) तिर्यञ्चो और तिर्यचस्त्रियो का सम्मिलित अल्पबहुत्व ।[1]

एक बात विशेषत ध्यान देने योग्य है कि सभी लेश्याओ मे स्त्रियो की सख्या अधिक पाई जाती है। यो भी सभी तिर्यञ्च पुरुषो की अपेक्षा तिर्यञ्च स्त्रियो की सख्या तिगुनी और तीन अधिक होती है,[2] ऐसा सैद्धान्तिको का मन्तव्य है। यही कारण है कि सप्तम अल्पबहुत्व मे तिर्यञ्च स्त्रियाँ सख्यातगुणी अधिक बताई हैं। फिर आठवे के बाद नौवे अल्पबहुत्व मे भी पचेन्द्रियतिर्यञ्च स्त्रियाँ अधिक बताई गई हैं, तत्पश्चात् दसवे अल्पबहुत्व मे भी तिर्यञ्चस्त्रियो की सख्या अधिक प्रतिपादित हैं।[3]

मनुष्यो के अल्पबहुत्व में पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के अल्पबहुत्व से विशेषता- यो तो मनुष्यो के अल्पबहुत्व की प्राय सभी वक्तव्यता पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के अल्पबहुत्व के समान ही है, किन्तु मनुष्यो मे पिछला अर्थात् दसवा अल्पबहुत्व नही होता, क्योकि मनुष्य मे अनन्तसख्या सम्भव नही है। इस कारण '**कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणे है**' यह भाग मनुष्यो मे सम्भव नही है।[4]

चारो निकायो के देवो का अल्पबहुत्व (१) समुच्चय देवो का अल्पबहुत्व सबसे थोडे शुक्ललेश्या वाले देव इसलिए है कि शुक्ललेश्या लान्तक आदि ऊपर के देवलोको मे ही पाई जाती है। शुक्ललेश्यी देवो मे पद्मलेश्यी देव असख्यातगुणे अधिक है, क्योकि सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक कल्प मे पद्मलेश्या होती है और वहा के देव लान्तककल्प आदि के देवो की अपेक्षा असख्यातगुणे अधिक है। पद्मलेश्यी देवो से कापोतलेश्यी देव असख्यातगुणे अधिक है, क्योकि कापोतलेश्या भवन-वासी और वाणव्यन्तर देवो मे पाई जाती है, जो कि उनको अपेक्षा असख्यातगुणे है। उनसे नीललेश्यी देव विशेषाधिक इसलिए है कि बहुत-से भवनवासियो और वाणव्यन्तरो मे नीललेश्या पाई जाती है। नोललेश्यी देवो से कृष्णलेश्यी देव विशेषाधिक होते है, क्योकि अधिकाश भवनपति और वाणव्यन्तर देवो मे कृष्णलेश्या होनी है। इन सब की अपेक्षा से तेजोलेश्याविशिष्ट देव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि बहुत-से भवनवासियो मे, समस्त ज्योतिष्क देवो मे तथा सौधर्म-ऐशान देवो मे तेजोलेश्या का सद्भाव है।

(२) सलेश्य समुच्चय देवियो के अल्पबहुत्व की समीक्षा कापोतलेश्या वाली देवियाँ सबसे कम इसलिए है कि भवनवासी एव व्यन्तर देवियो मे ही कापोतलेश्या होती है, उनसे नीललेश्यायुक्त देवियाँ विशेषाधिक हैं क्योकि बहुत-सी भवनवासी और वाणव्यन्तर देवियो मे नीललेश्या पाई जाती है। इनकी अपेक्षा कृष्णलेश्या वाली देवियाँ विशेषाधिक है, क्योकि अधिकाश भवनपति, वाणव्यन्तर

---

१. **ओहिय पणिदि १ समुच्छिया २ य गब्भे ३ तिरिक्ख इत्थीओ ४।**
समुच्छिमगब्भतिरिया ५, मुच्छतिरिक्खी य ६, गब्भमि ७ ॥१॥
समुच्छिमगब्भइत्थी ८, पणिदितिरिगित्थीया ९ य ओहित्थी १०।
दस अप्पबहुगभेया तिरियाण होंति नायव्वा ॥२॥

—प्रज्ञापना. म वृत्ति, पत्रांक ३४९ मे उद्धृत

२ '**तिगुणातिरूवअहिया तिरियाण इत्थिया मुणेयव्वा।**'

३ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३४७

४ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३४९

देवियो मे कृष्णलेश्या का सद्भाव होता है। इनकी अपेक्षा भी तेजोलेश्या वाली देवियाँ सख्यातगुणी अधिक हैं, क्योकि तेजोलेश्या सभी ज्योतिष्क देवियो मे तथा सौधर्म-ऐशान देवियो मे पाई जाती है। एक बात विशेषत. ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि देवियाँ सौधर्म और ऐशानकल्पो तक ही उत्पन्न होती है, आगे नही। अतएव उनमे इन कल्पो के योग्य प्रारम्भ की चार लेश्याएँ ही सम्भव है। इसी कारण तेजोलेश्या तक ही इनका अल्पबहुत्व बतलाया है।

(३) **सलेश्य देवो की अपेक्षा देवियों की सख्या अधिक**- सैद्धान्तिक तथ्य यह है कि देवो की अपेक्षा देवियाँ बत्तीसगुनी और बत्तीस अधिक है। यही कारण है कि कापोत, नील, कृष्ण और तेजोलेश्या वाले देवो की अपेक्षा देवियाँ कही सख्यातगुणी अधिक है, कही विशेषाधिक हैं।

तेजोलेश्यी ज्योतिष्क देव-देवियो का अल्पबहुत्व—ज्योतिष्क देवो के सम्बन्ध मे यहाँ एक ही अल्पबहुत्वसूत्र का प्रतिपादन किया गया है, क्योकि ज्योतिष्कनिकाय मे एकमात्र तेजोलेश्या ही होती है, कोई अन्य लेश्या नही होती। इसी कारण ज्योतिष्क देवो और देवियो का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व-सूत्र निर्दिष्ट नही किया है।[1]

सलेश्य सामान्य जीवों और चौवीस दण्डकों में ऋद्धिक अल्पबहुत्व का विचार

११९१ एतेसि ण भते ! जीवाण कण्हलेस्साण जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा ?

गोयमा ! कण्हलेस्सेहिंतो णीललेस्सा महिड्ढिया, णीललेस्सेहिंतो काउलेस्सा महिड्ढिया, एव काउलेस्सेहिंतो तेउलेस्सा महिड्ढिया, तेउलेस्सेहिंतो पम्हलेस्सा महिड्ढिया, पम्हलेस्सेहिंतो सुक्कलेस्सा महिड्ढिया, सव्वप्पिड्ढिया जीवा किण्हलेस्सा, सव्वमहिड्ढिया जीवा सुक्कलेस्सा।

[११९१ प्र] भगवन ! इन कृष्णलेश्या वाले, यावत् शुक्ललेश्या वाले जीवो मे से कौन, किनसे अल्प ऋद्धिवाले अथवा महती ऋद्धि वाले होते हैं ?

[११९१ उ] गौतम ! कृष्णलेश्या वालो से नीललेश्या वाले महर्द्धिक हैं, नीललेश्या वालो से कापोतलेश्या वाले महर्द्धिक है, कापोतलेश्या वालो से तेजोलेश्या वाले महर्द्धिक है, तेजोलेश्या वालो से पद्मलेश्या वाले महर्द्धिक है और पद्मलेश्या वालो मे शुक्ललेश्या वाले महर्द्धिक हैं। कृष्णलेश्या वाले जीव सबमे अल्प ऋद्धि वाले है और शुक्ललेश्या वाले जीव सबसे महती ऋद्धि वाले है।

११९२. एतेसि ण भंते ! णेरइयाण कण्हलेस्साणं णीललेस्साणं काउलेस्साण य कतरे कतरे-हिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा ?

गोयमा ! कण्हलेस्सेहिंतो णीललेस्सा महिड्ढिया, णीललेस्सेहिंतो काउलेस्सा महिड्ढिया, सव्व-प्पिड्ढिया णेरइया कण्हलेस्सा, सव्वमहिड्ढिया णेरइया काउलेस्सा।

[११९२ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी और कापोतलेश्यी नारको मे कौन, कितनी अल्प ऋद्धि वाले अथवा महती ऋद्धि वाले है ?

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३४९-३५०
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ४, पृ १३१ से १३९ तक

[११९२ उ] गौतम ! कृष्णलेश्यी नारकों से नीललेश्यी नारक महर्द्धिक है, नीललेश्यी नारकों से कापोतलेश्यी नारक महर्द्धिक हैं। कृष्णलेश्या वाले नारक सबसे अल्प ऋद्धि वाले है और कापोतलेश्या वाले नारक सबसे महती ऋद्धि वाले हैं।

११९३. एतेसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा ?

गोयमा ! जहा जीवा।

[११९३ प्र] भगवन् ! इस कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले तिर्यञ्चयोनिको में से कौन, किनसे अल्पर्द्धिक अथवा महर्द्धिक हैं ?

[११९३ उ] गौतम ! जैसे समुच्चय जीवो की (कृष्णादिलेश्याओ की अपेक्षा से) अल्पर्द्धिकता-महर्द्धिकता कही है, उसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिको की (कृष्णादिलेश्याओ की अपेक्षा से अल्पर्द्धिकता और महर्द्धिकता) कहनी चाहिए।

११९४. एतेसि णं भंते ! एगिंदियतिरिक्खजोणियाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा ?

गोयमा ! कण्हलेस्सेहिंतो, एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो णीललेस्सा महिड्ढिया णीललेस्सेहिंतो काउलेस्सा महिड्ढिया, काउलेस्सेहिंतो तेउलेस्सा महिड्ढिया, सव्वप्पिड्ढिया एगिंदियतिरिक्खजोणिया कण्हलेस्सा, सव्वमहिड्ढिया तेउलेस्सा।

[११९४ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले, यावत् तेजोलेश्या वाले एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको मे से कौन, किससे अल्पर्द्धिक है, अथवा महर्द्धिक है ?

[११९४ उ] गौतम ! कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय तिर्यञ्चो की अपेक्षा नीललेश्या वाले एकेन्द्रिय महर्द्धिक है, नीललेश्या वाले (एकेन्द्रियो) से कापोतलेश्या वाले (एकेन्द्रिय) महर्द्धिक है, कापोतलेश्या वालो से तेजोलेश्या वाले (एकेन्द्रिय) महर्द्धिक है। सबसे अल्पऋद्धि वाले कृष्णलेश्या-विशिष्ट एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक है और सबसे महाऋद्धि वाले तेजोलेश्या वाले एकेन्द्रिय है।

११९५. एवं पुढविक्काइयाण वि।

[११९५] इसी प्रकार (सामान्य एकेन्द्रिय तिर्यञ्चो की अल्पर्द्धिकता और महर्द्धिकता की तरह कृष्णादिचतुर्लेश्याविशिष्ट) पृथ्वीकायिको की (अल्पर्द्धिकता-महर्द्धिकता के विषय मे समझ लेना चाहिए।)

११९६ एवं एतेणं अभिलावेणं जहेव लेस्साओ भावियाओ तहेव णेयव्वं जाव चउरिंदिया।

[११९६] इस प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवो तक जिनमे जितनी लेश्याएँ जिस क्रम से विचारी—कही गई हैं, उसी क्रम मे इस (पूर्वोक्त) आलापक के अनुसार उनकी अल्पर्द्धिकता-महर्द्धिकता समझ लेनी चाहिए।

११९७. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीण सम्मुच्छिमाणं गब्भवक्कंतियाण य सव्वेसिं भाणियव्वं जाव अप्पिड्ढिया वेमाणिया देवा तेउलेस्सा, सव्वमहिड्ढिया वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा।

[११९७] इसी प्रकार पचेन्द्रियतिर्यञ्चो, तिर्यञ्चस्त्रियो, सम्मूर्च्छिमो और गर्भजों—सभी की कृष्णलेश्या से लेकर शुक्ललेश्यापर्यन्त यावत् वैमानिक देवो मे जो तेजोलेश्या वाले है, वे सबसे अल्पर्द्धिक है और जो शुक्ललेश्या वाले है, वे सबसे महर्द्धिक है, (यहाँ तक अल्पर्द्धिकता-महर्द्धिकता का कथन करना चाहिए।)

११९८. केइ भणंति चउवीसदंडएणं इड्ढी भाणियव्वा।

॥ बीओ उद्देसओ समत्तो ॥

[११९८] कई आचार्यों का कहना है कि चौवीस दण्डको को लेकर ऋद्धि का कथन करना चाहिए।

विवेचन—सलेश्य सामान्यजीवो तथा चौवीस दण्डको मे अल्पर्द्धिकता-महर्द्धिकता-विचार—प्रस्तुत आठ सूत्रों (११९१ से ११९८ तक) मे कृष्णादिलेश्याविशिष्ट सामान्यजीवो और चौवीस दण्डकवर्ती जीवो की अल्पर्द्धिकता और महर्द्धिकता का विचार प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष—पूर्व-पूर्व की लेश्या वाले अल्पर्द्धिक है और क्रमश उत्तरोत्तर लेश्या वाले महर्द्धिक है। इसी प्रकार नारको, तिर्यञ्चो, मनुष्यो और देवो के विषय मे, जिनमे जितनी लेश्याओ की प्ररूपणा की गई, उनमे उनका विचार करके अनुक्रम से अल्पर्द्धिकता और महर्द्धिकता समझ लेनी चाहिए।

अप्कायिको से चतुरिन्द्रिय जीवो तक—इनमे जो कृष्णलेश्या वाले है, वे सबसे कम ऋद्धि वाले है और तेजोलेश्या वाले सबसे महाऋद्धि वाले है। इसी प्रकार सर्वत्र कह लेना चाहिए।[1]

॥ सत्तरहवां लेश्यापद : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३५२

सत्तरसमं लेस्सापयं : तइओ उद्देसओ

सत्तरहवाँ लेश्यापद : तृतीय उद्देशक

चौवीसदण्डकवर्ती जीवों में उत्पाद-उद्वर्त्तन-प्ररूपणा

११९९. [१] णेरइए णं भंते ! णेरइएसु उववज्जति ? अणेरइए णेरइएसु उववज्जति ?

गोयमा ! णेरइए णेरइएसु उववज्जइ, णो अणेरइए णेरइएसु उववज्जति ।

[११९९-१ प्र] भगवन् ! नारक नारको मे उत्पन्न होता है, अथवा अनारक नारको मे उत्पन्न होता है ?

[११९९-१ उ] गौतम ! नारक नारको मे उत्पन्न होता है, अनारक नारको मे उत्पन्न नही होता ।

[२] एवं जाव वेमाणियाण ।

[११९९-२] इसी प्रकार (नारको के समान ही असुरकुमार आदि भवनपतियो से लेकर) यावत् वेमानिको की उत्पत्तिसम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए ।

१२००. [१] णेरइए ण भंते ! णेरइएहिंतो उव्वट्टइ ? अणेरइए णेरइएहिंतो उव्वट्टति ?

गोयमा ! अणेरइए णेरइएहिंतो उव्वट्टति, णो णेरइए णेरइएहिंतो उव्वट्टति ।

[१२००-१ प्र] भगवन् ! नारक नारको (नरकभव) से उद्वर्त्तन करता (निकलता) है, अथवा अनारक नारको से उद्वर्त्तन करता है ?

[१२००-१ उ] गौतम ! अनारक (नारक से भिन्न) नारको (नारकभव) से उद्वर्त्तन करता (निकलता) है, (किन्तु) नारक नारको से उद्वृत्त नही होता ।

[२] एव जाव वेमाणिए। णवर जोतिसिय-वेमाणिएसु चयण ति अभिलाओ कायव्वो ।

[१२००-२] इसी प्रकार (नारको के समान ही) यावत् वैमानिको तक उदवर्त्तन-सम्बन्धी कथन करना चाहिए । विशेष यह है कि ज्योतिष्को और वैमानिको के विषय मे ('उद्वर्त्तन' के स्थान मे) 'च्यवन' शब्द का प्रयोग (अभिलाप) करना चाहिए ।

विवेचन—चौवीसदण्डकवर्ती जीवो मे उत्पाद-उद्वर्त्तन-प्ररूपणा- प्रस्तुत चार सूत्रो मे नैरयिको से लेकर वैमानिको तक के उत्पाद एव उद्वर्तन के सम्बन्ध मे ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से सैद्धान्तिक प्ररूपणा की गई है ।

प्रश्नोत्तर का आशय—प्रस्तुत दो सूत्रो मे दो प्रश्न है—१ प्रथम प्रश्न उत्पत्तिविषयक है । नैरयिक नैरयिको मे उत्पन्न होता है, अनैरयिक नही । इसका अर्थ यह है कि नारक ही नरकभव

मे उत्पन्न होता है, क्योकि नारकभवोपग्राहक आयु ही भव का कारण है। अतः जब नरकायु का उदय होता है, तभी जीव को नरकभव की प्राप्ति होती है तथा जब मनुष्यायु का उदय होता है, तब मनुष्यभव प्राप्त होता है। इसलिए ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से नारकायु आदि के वेदन के प्रथम समय मे ही नारक आदि सज्ञा का व्यवहार होने लगता है। २ दूसरा प्रश्न उद्वर्तन विषयक है। उसका अर्थ है—नारक से भिन्न (अनारक) नारकभव से (नारको से) उद्वर्तन करता है अर्थात् निकलता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब तक किसी जीव के नरकायु का उदय बना हुआ है, तब तक वह नारक कहलाता है और जब नरकायु का उदय नही रहता, तब वह अनारक (नारकभिन्न) कहलाने लगता है। अत जब तक नरकायु का उदय है, तब तक कोई जीव नरक से नही निकल सकता। इसी कारण कहा गया है—नारक नरक से उद्वृत्त नही होता, बल्कि वही जीव नरक से उद्वर्तन करता है, जो अनारक हो, (जिसके नरकायु का उदय न रह गया हो)। निष्कर्ष यह है कि आगामी भव की आयु का उदय होने पर जीव वर्त्तमान भव से उद्वृत्त होता है और जिस भव-सम्बन्धी आयु का उदय हो, उसी नाम से उसका व्यवहार होता है।

इसी प्रकार असुरकुमार आदि शेष २३ दण्डको के उत्पाद एव उद्वर्तन के विषय मे समझ लेना चाहिए।[1]

लेश्यायुक्त चौवीसदण्डकवर्ती जीवों की उत्पाद-उद्वर्तनप्ररूपणा

१२०१. [१] से णूणं भते ! कण्हलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जति ? कण्हलेस्से उव्वट्टति ? जल्लेस्से उववज्जति तल्लेसे उव्वट्टति ?

हता गोयमा ! कण्हलेसे णेरइए कण्हलेसेसु णेरइएसु उववज्जति, कण्हलेसे उव्वट्टति, जल्लेसे उववज्जति तल्लेसे उव्वट्टति ।

[१२०१-१ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाला नारक कृष्णलेश्या वाले नारको मे ही उत्पन्न होता है ? कृष्णलेश्या वाला ही (नारको मे से) उद्वृत्त होता है ? (अर्थात्—) जिस लेश्या वाला होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या वाला होकर उद्वर्त्तन करता है ?

[१२०१-१ उ] हाँ, गौतम ! कृष्णलेश्या वाला नारक कृष्णलेश्या वाले नारको मे उत्पन्न होता है, कृष्णलेश्या वाला होकर ही (वहाँ से) उद्वृत्त होता है। जिस लेश्या वाला होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या वाला होकर उद्वर्त्तन करता (निकलता) है।

[२] एव णीललेसे वि काउलेसे वि ।

[१२०१-२] इसी प्रकार नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले (नारक के उत्पाद और उद्वर्त्तन के सम्बन्ध मे) भी (समझ लेना चाहिए।)

१२०२ एव असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा वि । णवरं तेउलेस्सा अब्भइया ।

[१२०२] असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो तक भी इसी प्रकार से उत्पाद और उद्वर्त्तन का कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि इनके सम्बन्ध मे तेजोलेश्या का कथन (अभिलाप) अधिक करना चाहिए।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३५३

१२०३. [१] से णूण भंते ! कण्हलेसे पुढविक्काइए कण्हलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जति ? कण्हलेस्से उव्वट्टति ? जल्लेसे उववज्जति तल्लेसे उव्वट्टति ?

हंता गोयमा ! कण्हलेस्से पुढविक्काइए कण्हलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जति, सिए कण्हलेस्से उव्वट्टति, सिय नीललेसे उव्वट्टति, सिय काउलेसे उव्वट्टति, सिय जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टति ।

[१२०३-१ प्र.] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाला पृथ्वीकायिक कृष्णलेश्या वाले पृथ्वीकायिको में उत्पन्न होता है ? तथा क्या कृष्णलेश्या वाला हो कर (वहाँ से) उद्वर्त्तन करता है ? जिस लेश्या वाला हो कर उत्पन्न होता है, (क्या) उसी लेश्या वाला हो कर (वहाँ से) उद्वर्त्तन करता (मरता) है ?

[१२०३-१ उ] हाँ, गौतम ! कृष्णलेश्या वाला पृथ्वीकायिक कृष्णलेश्या वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है, (किन्तु) उद्वर्त्तन (मरण) कदाचित् कृष्णलेश्या वाला हो कर, कदाचित् नीललेश्या वाला हो कर और कदाचित् कापोतलेश्या वाला होकर करता है। (अर्थात्) जिस लेश्या वाला हो कर उत्पन्न होता है, कदाचित् उस लेश्या वाला हो कर उद्वर्त्तन करता है। और (कदाचित् अन्य लेश्यावाला होकर मरण करता है।)

[२] एवं णीललेस्सा काउलेस्सा वि ।

[१२०३-२] इसी प्रकार नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले (पृथ्वीकायिक के उत्पाद और उद्वर्त्तन के सम्बन्ध मे) भी (समझ लेना चाहिए।)

[३] से णूण भंते ! तेउलेस्से पुढविक्काइए तेउलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ ? पुच्छा ।

हता गोयमा ! तेउलेसे पुढविकाइए तेउलेसेसु पुढविक्काइएसु उववज्जति, सिय कण्हलेसे उव्वट्टइ, सिय णीललेसे उव्वट्टइ, सिय काउलेसे उव्वट्टति; तेउलेसे उववज्जति, णो चेव ण तेउलेस्से उव्वट्टति ।

[१२०३-३ प्र] भगवन् ! तेजोलेश्या वाला पृथ्वीकायिक क्या तेजोलेश्या वाले पृथ्वीकायिको मे ही उत्पन्न होता है ? तेजोलेश्या वाला हो कर ही उद्वर्त्तन करता है ?, (इत्यादि पूर्ववत्) पृच्छा ।

[१२०३-३ उ] हाँ, गौतम ! तेजोलेश्या वाला पृथ्वीकायिक तेजोलेश्या वाले पृथ्वीकायिको मे ही उत्पन्न होता है, (किन्तु) उद्वर्त्तन कदाचित् कृष्णलेश्या वाला हो कर, कदाचित् नीललेश्या वाला हो कर, कदाचित् कापोतलेश्या वाला होकर करता है, (वह) तेजोलेश्या से युक्त हो कर उत्पन्न होता है, (परन्तु) तेजोलेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन नही करता ।

[४] एवं आउक्काइय-वणस्सइकाइया वि ।

[१२०३-४] अप्कायिको और वनस्पतिकायिको की (उत्पाद-उद्वर्त्तनसम्बन्धी) वक्तव्यता भी इसी प्रकार (पृथ्वीकायिको के समान) समझनी चाहिए ।

[५] तेऊ वाऊ एव चेव । णवर एतेंसि तेउलेस्सा णत्थि ।

[१२०३-५] तेजस्कायिको और वायुकायिको की (उत्पाद-उद्वर्त्तनसम्बन्धी वक्तव्यता) इसी प्रकार है (किन्तु) विशेषता यह है कि इनमे तेजोलेश्या नही होती ।

१२०४. बिय-तिय-चउरिंदिया एवं चेव तिसु लेसासु ।

[१२०४] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो का (उत्पाद-उद्वर्त्तन सम्बन्धी कथन) भी इसी प्रकार तीनो (कृष्ण, नील एव कापोत) लेश्याओ मे जानना चाहिए ।

१२०५. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य जहा पुढविक्काइया आदिल्लियासु तिसु लेस्सासु भणिया (सु १२०३ [१-२]) तहा छसु वि लेसासु भाणियव्वा । णवरं छप्पि लेसाओ चारियव्वाओ ।

[१२०५] पचेन्द्रियतिर्यचयोनिको और मनुष्यो का (उत्पाद उद्वर्त्तन सम्बन्धी) कथन भी छहो लेश्याओ मे उसी प्रकार है, जिस प्रकार (सू १२०३—१-२ मे) पृथ्वीकायिको का (उत्पाद-उद्वर्त्तन-सम्बन्धी कथन) प्रारम्भ की तीन लश्याओ (के विषय) मे कहा है । विशेषता यही है कि (पूर्वोक्त तीन लेश्या के बदले यहाँ) छहो लेश्याओ का कथन (अभिलाप) कहना चाहिए ।

१२०६. वाणमतरा जहा असुरकुमारा (सु. १२०२ ।)

[१२०६] वाणव्यन्तर देवो की (उत्पाद-उद्वर्त्तन-सम्बन्धी वक्तव्यता सू १२०२ मे उक्त) असुरकुमारो (की वक्तव्यता) के समान (जाननी चाहिए ।)

१२०७ [१] से णूण भते ! **तेउलेस्से जोइसिए तेउलेसेसु जोईसिएसु उववज्जति ? जहेव असुरकुमारा ।**

[१२०७-१ प्र] भगवन् ! क्या तेजोलेश्या वाला ज्योतिष्क देव तेजोलेश्या वाले ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न होता है ? (क्या वह तेजोलेश्यायुक्त होकर ही च्यवन करता है ?)

[१२०७-१ उ] जैसा असुरकुमारो के विषय मे कहा गया हे, वंसा ही कथन ज्योतिष्को के विषय मे समझना चाहिए ।

[२] एव वेमाणिया वि । नवरं दोण्ह वि चयंतीति अभिलावो ।

[१२०७-२] इसी प्रकार वैमानिक देवो के उत्पाद और उद्वर्त्तन के विषय मे भी कहना चाहिए । विशेषता यह है कि दोनो प्रकार के (ज्योतिष्क और वैमानिक) देवो के लिए ('उद्वर्त्तन करते है,' इसके स्थान मे) 'च्यवन करते है' ऐसा अभिलाप (करना चाहिए ।)

विवेचन—लेश्यायुक्त चौवीसदण्डकवर्ती जीवो की उत्पाद-उद्वर्त्तन-प्ररूपणा—प्रस्तुत सात सूत्रो (१२०१ से १२०७ तक) मे लेश्या की अपेक्षा से चौवीसदण्डकवर्ती जीवो को उत्पाद और उद्वर्त्तन की प्ररूपणा की गई है ।

नारको और देवो मे उत्पाद और उद्वर्त्तन का नियम—जीव जिस लेश्यावाला होता है, वह उसी लेश्या वालो मे उत्पन्न होता है तथा उसी लेश्या वाला हाकर वहाँ से उद्वर्त्तन करता (मरता)

है। उदाहरणार्थ—कृष्णलेश्या वाला नारक कृष्णलेश्या वाले नारको मे उत्पन्न होता है और जब उद्वर्त्तन करता है, तब कृष्णलेश्या वाला होकर ही उद्वर्त्तन करता है, अन्य लेश्या से युक्त होकर नही। इसका कारण यह है कि पचेन्द्रिय तिर्यञ्च अथवा मनुष्य पचेन्द्रिय तिर्यञ्चायु अथवा मनुष्यायु का पूरी तरह से क्षय होने से अन्तर्मुहूर्त पहले उसी लेश्या से युक्त हो जाता है, जिस लेश्या वाले नारक मे उत्पन्न होने वाला होता है। तत्पश्चात् उसी अप्रतिपतित परिणाम से नरकायु का वेदन करता है। अतएव कहा है—कृष्णलेश्या वाला नारक कृष्णलेश्या वाले नारको मे ही उत्पन्न होता है, अन्य लेश्या वाले नारकों मे उत्पन्न नही होता। तत्पश्चात् वहाँ कृष्णलेश्या वाला ही बना रहता है, उसकी लेश्या बदलती नही है, क्योकि देवो और नारको की लेश्या भव का क्षय होने तक बदलती नही है। इसी प्रकार नीललेश्या वाला या कापोतलेश्या वाला नारक उसी लेश्यावाले नारको मे उत्पन्न होता है, अन्य लेश्या वालो मे नही और न अन्य लेश्या वाला नीललेश्या या कापोतलेश्या वालो मे उत्पन्न होता है। नारको की उद्वर्त्तना के सम्बन्ध मे भी यही नियम है कि नीललेश्या वालो मे उत्पन्न नारक नीललेश्यायुक्त होकर ही वहाँ से उद्वृत्त होता है, अन्य लेश्यायुक्त होकर नही।[1]

पृथ्वीकायिक आदि की उद्वर्तना के सम्बन्ध मे—पृथ्वीकायिक आदि तिर्यञ्चो और मनुष्यो की उद्वर्त्तना के विषय मे यह नियम एकान्तिक नही है कि जिस लेश्या वालो मे वह उत्पन्न हो, उसी लेश्या से युक्त होकर उद्वर्तन करे। वह कदाचित् कृष्णलेश्या वाला होकर उद्वर्तन करता है, कदाचित् नीललेश्या वाला होकर और कदाचित् कापोतलेश्या वाला होकर उद्वर्तन करता है तथा कदाचित् वह जिस लेश्या वालो मे उत्पन्न होता है, उसी लेश्या वाला होकर उद्वर्तन करता है। इसका कारण यह है कि तिर्यञ्चो और मनुष्यो का लेश्या-परिणाम अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थायी रहता है, उसके पश्चात् बदल जाता है।[2] अतएव जो पृथ्वीकायिकादि जिस लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, वह कदाचित् उसी लेश्या से युक्त होकर उद्वर्तन करता है, कदाचित् अन्य लेश्या से युक्त होकर भी उद्वर्तन करता है। तेजोलेश्या से युक्त पृथ्वीकायिक उत्पन्न तो होता है लेकिन तेजोलेश्या से युक्त होकर उद्वृत्त नही होता। इसका कारण यह है कि जब भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशान कल्पो के देव तेजोलेश्या से युक्त होकर अपने भव का त्याग करके पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते है, तब कुछ काल तक अपर्याप्त अवस्था मे उनमे तेजोलेश्या भी पायी जाती है, किन्तु उसके पश्चात् तेजोलेश्या नही रहती, क्योकि पृथ्वीकायिक जीव अपने भव-स्वभाव से ही तेजोलेश्या के योग्य द्रव्यो को ग्रहण करने मे असमर्थ होते है। इस अभिप्राय से कहा है कि तेजोलेश्या से युक्त होकर पृथ्वीकायिक उत्पन्न तो होता है, किन्तु तेजोलेश्या से युक्त होकर उद्वृत्त नही होता।[3]

पृथ्वीकायिकों की तरह अप्कायिकादि की चार वक्तव्यताएँ—जिस प्रकार पृथ्वीकायिको की कृष्ण, नील, कापोत एव तेजोलेश्या सम्बन्धी चार वक्तव्यताएँ कही हैं, उसी प्रकार अप्कायिको और वनस्पतिकायिको की भी चार वक्तव्यताएँ कहनी चाहिए, क्योकि अपर्याप्त अवस्था मे उनमे भी तेजोलेश्या पाई जाती है।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३५३

२ 'अतोमुहुत्तमि गए, सेसए आउ (चेव)।
लेसाहिं परिणयाहिं जीवा वच्चति परलोय ॥'

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३५४

तेजस्कायिकों, वायुकायिको तथा विकलेन्द्रियों में तीन वक्तव्यताएँ—तेजस्कायिको, वायुकायिको और विकलेन्द्रियो मे तेजोलेश्या नही होती, क्योकि उसका होना सभव नही है।[1]

सामूहिक लेश्या की अपेक्षा से चौवीसदण्डकों में उत्पाद-उद्वर्तननिरूपण

१२०८. **से णूणं भंते ! कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णीललेस्सेसु काउलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जति ? कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से उव्वट्टति जल्लेसे उववज्जति तल्लेसे उव्वट्टति ?**

हंता गोयमा ! कण्हलेस्स-णीललेस्स-काउलेस्सेसु उववज्जति, जल्लेसे उववज्जति तल्लेसे उव्वट्टति।

[१२०८ प्र.] भगवन् ! कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाला नैरयिक क्या क्रमश. कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ? क्या वह (क्रमश) कृष्णलेश्या वाला, नीललेश्या वाला तथा कापोतलेश्या वाला होकर ही (वहाँ से) उद्वर्त्तन करता है ? (अर्थात्—) (जो नारक) जिस लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, क्या वह उसी लेश्या से युक्त होकर मरण करता है ?

[१२०८ उ] हाँ, गौतम ! (वह क्रमश) कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले नारको मे उत्पन्न होता है और जो नारक जिस लेश्या वाला होकर उत्पन्न होता है, वह उसी लेश्या से युक्त होकर मरण करता है।

१२०९. **से णूण भंते ! कण्हलेस्से जाव तेउलेस्से असुरकुमारे कण्हलेस्सेसु जाव तेउलेस्सेसु असुरकुमारेसु उववज्जति ?**

एवं जहेव नेरइए (सु. १२०८) तहा असुरकुमारे वि जाव थणियकुमारे वि।

[१२०९ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाला, यावत् तेजोलेश्या वाला असुरकुमार (क्रमश.) कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होता है ? (और क्या वह कृष्णलेश्या वाला यावत् तेजोलेश्या वाला होकर ही असुरकुमारो से उद्वृत होता है ?)

[१२०९ उ] हाँ, गौतम ! जैसे (सू १२०८ मे नैरयिक के उत्पाद-उद्वर्त्तन के सम्बन्ध मे कहा, वैसे ही असुरकुमार के विषय मे भी, यावत् स्तनितकुमार के विषय मे भी कहना चाहिए।

१२१०. [१] **से णूणं भंते ! कण्हल्लेसे जाव तेउल्लेसे पुढविकाइए कण्हल्लेसेसु जाव तेउल्लेसेसु पुढविकाइएसु उववज्जति ? एव पुच्छा जहा असुरकुमाराण।**

हंता गोयमा ! कण्हलेस्से जाव तेउलेस्से पुढविकाइए कण्हलेस्सेसु जाव तेउलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जति, सिय कण्हलेस्से उवट्टति सिय णीललेस्से सिय काउलेस्से उव्वट्टति, सिय जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ, तेउलेस्से उववज्जइ, णो चेव ण तेउलेस्से उव्वट्टति।

[१२१०-१ प्र.] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाला यावत् तेजोलेश्या वाला पृथ्वीकायिक, क्या (क्रमशः) कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है ? (और क्या वह

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३५४

जिस लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या से युक्त होकर उद्वृत्त होता है ? इस प्रकार जैसी पृच्छा असुरकुमारो के विषय मे की गई है, वैसी ही यहाँ भी समझ लेनी चाहिए।

[१२१०-१ उ.] हाँ, गौतम ! कृष्णलेश्या वाला यावत् तेजोलेश्या वाला पृथ्वीकायिक (क्रमश.) कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है, (किन्तु कृष्ण-लेश्या मे उत्पन्न होने वाला वह पृथ्वीकायिक) कदाचित् कृष्णलेश्यायुक्त होकर उद्वर्त्तन करता है, कदाचित् नीललेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है तथा कदाचित् कापोतलेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है, कदाचित् जिस लेश्या वाला होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या वाला होकर उद्वर्त्तन करता है। (विशेष यह है कि वह) तेजोलेश्या से युक्त होकर उत्पन्न तो होता है, किन्तु तेजोलेश्या वाला होकर उद्वृत्त नही होता।

[२] एव आउक्काइय-वणप्फइकाइया वि भाणियव्वा।

[१२१०-२] अप्कायिको और वनस्पतिकायिको के (सामूहिकरूप से उत्पाद-उद्वर्त्तन के) विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

[३] से णूण भंते ! कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से तेउक्काइए कण्हलेसेसु णीललेसेसु काउलेसेसु तेउक्काइएसु उववज्जति ? कण्हलेसे णीललेसे काउलेसे उव्वट्टति ? जल्लेसे उववज्जति तल्लेसे उव्वट्टति ?

हता गोयमा ! कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से तेउक्काइए कण्हलेसेसु णीललेसेसु काउ-लेसेसु तेउक्काइएसु उववज्जति, सिय कण्हलेसे उव्वट्टति सिय णीललेसे सिय काउलेस्से उव्वट्टति, सिय जल्लेसे उववज्जति तल्लेसे उव्वट्टति।

[१२१०-३ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाला तेजस्कायिक, (क्रमश) कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले तेजस्कायिको मे ही उत्पन्न होता है ? तथा क्या वह (क्रमश) कृष्णलेश्या वाला, नीललेश्या वाला तथा कापोतलेश्या वाला होकर ही उद्वृत्त होता है ? (अर्थात् वह) जिस लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, क्या उसी लेश्या से युक्त होकर उद्वृत्त होता है ?

[१२१०-३ उ] हाँ, गौतम ! कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाला तेजस्कायिक, (क्रमश) कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले तेजस्कायिको मे उत्पन्न होता है, किन्तु कदाचित् कृष्णलेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है, कदाचित् नीललेश्या से युक्त होकर, कदाचित् कापोतलेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है। (अर्थात्) कदाचित् जिस लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है, (कदाचित् अन्य लेश्या से युक्त होकर भी उद्वर्त्तन करता है।)

[४] एव वाउक्काइया बेइंदिय-तेइंदिया-चउरिंदिया वि भाणियव्वा।

[१२१०-४] इसी प्रकार वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो के (उत्पाद उद्वर्त्तन के) सम्बन्ध मे कहना चाहिए।

१२११. से णूण भंते ! कण्हलेसे जाव सुक्कलेसे पंचेंदियतिरिक्खजोणिए कण्हलेसेसु जाव सुक्कलेसेसु पचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जति ? पुच्छा।

हंता गोयमा ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से पचेंदियतिरिक्खजोणिए कण्हलेस्सेसु जाव सुक्कलेस्सेसु पचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जति, सिय कण्हलेस्से उव्वट्टति जाव सिय सुक्कलेस्से उव्वट्टति, सिय जल्लेसे उववज्जति तल्लेसे उव्वट्टति ।

[१२११ प्र.] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाला यावत् शुक्ललेश्या वाला पंचेन्द्रियतिर्यञ्च-योनिक (क्रमशः) कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होता है ? और क्या उसी कृष्णादि लेश्या से युक्त होकर (मरण) करता है ? इत्यादि पृच्छा ।

[१२११ उ] हाँ गौतम ! कृष्णलेश्या वाला यावत् शुक्ललेश्या वाला पचेन्द्रियतिर्यञ्च-योनिक (क्रमश.) कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होता है, किन्तु उद्वर्त्तन (मरण) कदाचित् कृष्णलेश्या वाला होकर करता है, कदाचित् नीललेश्या वाला होकर करता है, यावत् कदाचित् शुक्ललेश्या से युक्त होकर करता है, (अर्थात्) कदाचित् जिस लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है, (कदाचित् अन्य लेश्या से युक्त होकर भी उद्वर्त्तन करता है ।)

१२१२. एवं मणूसे वि ।

[१२१२] मनुष्य भी इसी प्रकार (पचेन्द्रियतिर्यञ्च के समान छहो लेश्याओ मे से किसी भी लेश्या से युक्त होकर उसी लेश्या वाले मनुष्यो मे उत्पन्न होता है तथा इसका उद्वर्त्तन भी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च के समान समझना चाहिए ।)

१२१३. वाणमतरे जहा असुरकुमारे (सु. १२०९) ।

[१२१३] वाणव्यन्तर देव का (सामूहिक लेश्यायुक्त उत्पाद और उद्वर्तन सू १२०९ में उक्त) असुरकुमार की तरह समझना चाहिए ।

१२१४ जोइसिय-वेमाणिए वि एव चेव । नवरं जस्स जल्लेसा, दोण्ह वि चयणं ति भाणियव्व ।

[१२१४] ज्योतिष्क और वैमानिक देव का उत्पाद-उद्वर्त्तनसम्बन्धी कथन भी इसी प्रकार (असुरकुमारो के समान) ही समझना चाहिए । विशेष यह है कि जिसमे जितनी लेश्याएँ हो, उतनी लेश्याओ का कथन करना चाहिए तथा दोनो (ज्योतिष्को और वैमानिको) के लिए उद्वर्त्तन के स्थान में 'च्यवन' शब्द कहना चाहिए ।

विवेचन—चौवीसदण्डकवर्ती जीवों का लेश्या की अपेक्षा से सामूहिक उत्पाद-उद्वर्त्तन सम्बन्धी निरूपण - प्रस्तुत सात सूत्रो (सू १२०८ से १२१४ तक)मे चौवीसदण्डकवर्ती प्रत्येक दण्डकीय जीव की संभावित लेश्याओ को लेकर सामूहिकरूप से उत्पाद-उद्वर्तन की पुनः प्ररूपणा की गई है ।

इन सूत्रों के पुनरावर्तन का कारण—यद्यपि नारको से वैमानिको तक चौवीस दण्डको के क्रम से प्रत्येक दण्डक के जीव की एक-एक लेश्या को लेकर उत्पाद और उद्वर्त्तनसम्बन्धी प्ररूपणा पूर्वसूत्रो (१२०१ से १२०७ तक) मे की जा चुकी है, तथापि विभिन्न लेश्या वाले बहुत-से नारको के उस-उस गति मे उत्पन्न होने की स्थिति मे अन्यथा वस्तुस्थिति की संभावना की जा सकती है, क्योकि एक-

एक मे रहने वाले धर्म की अपेक्षा समुदाय का धर्म कही अन्य प्रकार का भी देखा जाता है। इसी आशका के निवारणार्थ जिनमें जितनी लेश्याएँ सम्भव हैं, उनकी उतनी सब लेश्याओ को एक साथ लेकर पूर्वोक्त विषय सामूहिकरूप से पुन· सूत्रबद्ध किया गया है।[1]

कृष्णादिलेश्या वाले नैरयिकों में अवधिज्ञान-दर्शन से जानने-देखने का तारतम्य

१२१५. [१] कण्हलेस्से ण भते ! णेरइए कण्हलेस्से णेरइय पणिहाए ओहिणा सव्वओ समता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे केवतिय खेत्त जाणइ ? केवतियं खेत्त पासइ ?

गोयमा ! णो बहुय खित्तं जाणइ णो बहुयं खेत्तं पासइ, णो दूरं खेत्त जाणइ णो दूर खेत्त पासति, इत्तरियमेव खेत्त जाणइ इत्तरियमेव खेत्तं पासइ ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ कण्हलेसे णं णेरइए त चेव जाव इत्तरियमेव खेत्त पासइ ?

गोयमा ! से जहाणामए केइ पुरिसे बहुसमरमणिज्जंसि भूमिभागसि ठिच्चा सव्वओ समता समभिलोएज्जा, तए ण से पुरिसे धरणितलगत पुरिस पणिहाए सव्वओ समता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे णो बहुय खेत्त जाव पासइ जाव इत्तरियमेव खेत्तं पासइ।

सेएणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ कण्हलेसे ण णेरइए जाव इत्तरियमेव खेत्त पासइ ।

[१२१५-१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कृष्णलेश्या वाले दूसरे नैरयिक की अपेक्षा अवधि (ज्ञान) के द्वारा सभी दिशाओ और विदिशाओ मे (सब ओर) समवलोकन करता हुआ कितने क्षेत्र को जानता है और (अवधिदर्शन से) कितने क्षेत्र को देखता है ?

[१२१५-१ उ] गौतम ! (एक कृष्णलेश्यी नारक दूसरे कृष्णालेश्यावान् नारक की अपेक्षा) न तो बहुत अधिक क्षेत्र को जानता है और न बहुत क्षेत्र को देखता है, (वह) न बहुत दूरवर्ती क्षेत्र को जानता हे और न बहुत दूरवर्ती क्षेत्र को देख पाता है, (वह) थोडे से अधिक क्षेत्र को जानता है और थोडे-से ही अधिक क्षेत्र को देख पाता है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि कृष्णलेश्या युक्त नारक न बहुत क्षेत्र को जानता है (इत्यादि) यावत् थोडे से ही क्षेत्र को देख पाता है ?

[उ] गौतम ! जैसे कोई पुरुष अत्यन्त सम एव रमणीय भू-भाग पर स्थित होकर चारो ओर (सभी दिशाओ और विदिशाओ मे) देखे, तो वह पुरुष भूतल पर स्थित (किसी दूसरे) पुरुष की अपेक्षा से सभी दिशाओ-विदिशाओ मे बार-बार देखता हुआ न तो बहुत अधिक क्षेत्र को जानता है और न बहुत अधिक क्षेत्र देख पाता है, यावत (वह) थोडे ही अधिक क्षेत्र को जानता और देख पाता है। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि कृष्णलेश्या वाला नारक यावत् थोडे ही क्षेत्र को देख पाता है।

[२] णीललेसे णं भंते ! णेरइए कण्हलेस णेरइय पणिहाय ओहिणा सव्वओ समता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे केवतिय खेत्त जाणइ ? केवतियं खेत्तं पासइ ?

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३५५

गोयमा ! बहुतराग खेत्तं जाणइ बहुतराग खेत्त पासइ, दूरतराग खेत्त जाणइ दूरतराग खेत्तं पासइ, वितिमिरतराग खेत्त जाणइ वितिमिरतरागं खेत्त पासइ, विसुद्धतरागं खेत्तं जाणइ विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ ।

से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चइ णीललेस्से ण णेरइए कण्हलेस्सं णेरइय पणिहाय जाव विसुद्धतराग खेत्तं पासइ ?

गोयमा ! से जहाणामए केइ पुरिसे बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ पव्वय दुरूहति, दुरूहित्ता सव्वओ समता समभिलोएज्जा, तए ण से पुरिसे धरणितलगय पुरिसं पणिहाय सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे बहुतराग खेत्तं जाणइ जाव विसुद्धतराग खेत्त पासइ ।

से एतेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ णीललेस्से णेरइए कण्हलेस्सं णेरइयं जाव विसुद्धतरागं खेत्त पासइ ।

[१२१५-२ प्र] भगवन् ! नीललेश्या वाला नारक, कृष्णलेश्या वाले नारक की अपेक्षा सभी दिशाओ और विदिशाओ मे अवधि (ज्ञान) के द्वारा देखता हुआ कितने क्षेत्र को जानता है और कितने क्षेत्र को (अवधिदर्शन से) देखता है ?

[१२१५-२ उ] गौतम ! (वह नीललेश्यी नारक कृष्णलेश्यी नारक की अपेक्षा) बहुतर क्षेत्र को जानता है और बहुतर क्षेत्र को देखता है, दूरतर क्षेत्र को जानता है और दूरतर क्षेत्र को देखता है, (वह) क्षेत्र को वितिमिरतर (भ्रान्तिरहित रूप से) जानता है तथा क्षेत्र को वितिमिरतर देखता है, (वह) क्षेत्र को विशुद्धतर (अत्यन्त स्फुट रूप मे) जानता है तथा क्षेत्र को विशुद्धतर (रूप से) देखता है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि नीललेश्या वाला नारक, कृष्णलेश्या वाले नारक की अपेक्षा यावत् क्षेत्र को विशुद्धतर जानता है तथा क्षेत्र को विशुद्धतर देखता है ?

[उ] गौतम ! जैसे कोई पुरुष अतीव सम, रमणीय भूमिभाग से पर्वत पर चढ कर सभी दिशाओ-विदिशाओ मे अवलोकन करे, तो वह पुरुष भूतल पर स्थित पुरुष की अपेक्षा, सब तरफ देखता-देखता हुआ बहुतर क्षेत्र को जानता-देखता है, यावत् क्षेत्र को विशुद्धतर जानता-देखता है । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि नीललेश्या वाला नारक, कृष्णलेश्या वाले नारक की अपेक्षा क्षेत्र को यावत् विशुद्धतर (रूप से) जानता-देखता है ।

[३] काउलेसे णं भंते ! णेरइए णीललेस्स णेरइय पणिहाय ओहिणा सव्वओ समता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे केवतिय खेत्त जाणइ ? केवतिय खेत्त पासइ ?

गोयमा ! बहुतरागं खेत्तं जाणइ बहुतरागं खेत्त पासइ जाव विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ ?

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ काउलेसे ण णेरइए जाव विसुद्धतराग खेत्त पासइ ?

गोयमा ! से जहाणामए केइ पुरिसे बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ पव्वतं दुरूहति, दुरूहित्ता रुक्ख दुरूहति, दुरूहित्ता दो वि पादे उच्चाविय सव्वओ समंता समभिलोएज्जा, तए ण से पुरिसे पव्वतगय धरणितलगय च पुरिसं पणिहाय सव्वओ समता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे बहुतरागं खेत्तं जाणइ बहुतरागं खेत्तं पासइ जाव वितिमिरतरागं (विसुद्धतराग) खेत्तं पासइ ।

सेएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ काउलेस्से णं णेरइए णीललेस्सं णेरइयं पणिहाय तं चेव जाव वितिमिरतराग (विसुद्धतरागं) खेत्तं पासइ ।

[१२१५-३ प्र] भगवन् ! कापोतलेश्या वाला नारक नीललेश्या वाले नारक की अपेक्षा अवधि (ज्ञान) से सभी दिशाओ-विदिशाओ मे (सब ओर) देखता-देखता कितने क्षेत्र को जानता है कितने (अधिक) क्षेत्र को देखता है ?

[१२१५-३ उ.] गौतम ! (वह कापोतलेश्यी नारक नीललेश्यी नारक की अपेक्षा) बहुतर क्षेत्र को जानता है, बहुतर क्षेत्र को देखता है, दूरतर क्षेत्र को जानता है, दूरतर क्षेत्र को देखता है तथा यावत् क्षेत्र को विशुद्धतर (रूप से) जानता-देखता है ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि कापोतलेश्यी नारक, यावत् विशुद्धतर क्षेत्र को जानता-देखता है ?

[उ] गौतम ! जैसे कोई पुरुष अत्यन्त सम एव रमणीय भूभाग से पर्वत पर चढ जाए, फिर पर्वत से वृक्ष पर चढ जाए, तदनन्तर वृक्ष पर दोनो पैरो को ऊँचा करके चारो दिशाओ-विदिशाओ मे (सब ओर) जाने-देखे तो वह बहुत क्षेत्र को जानता है, बहुतर क्षेत्र को देखता है यावत् उस क्षेत्र को निर्मलतर (विशुद्धतर रूप से) जानता-देखता है । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि कापोतलेश्या वाला नैरयिक नीललेश्या वाले नारक की अपेक्षा यावत् (अधिक) क्षेत्र को वितिमिरतर (निर्मलतर एव विशुद्धतर रूप से) जानता और देखता है ।

विवेचन—कृष्णादिलेश्या वाले नैरयिको में अवधिज्ञान-दर्शन से जानने-देखने का तारतम्य—प्रस्तुत सूत्र (१२१५-१, २, ३) मे कृष्णादिलेश्या विशिष्ट नारको के द्वारा अवधिज्ञान-दर्शन से जानने-देखने के तारतम्य का निरूपण किया गया है ।

कृष्णलेश्यी दो नारको मे अवधिज्ञान से जानने-देखने मे अधिक अन्तर नहीं—कृष्णलेश्यी एक नारक दूसरे कृष्णलेश्यी नारक से बहुत अधिक क्षेत्र को नही जानता-देखता, थोडे-से ही अधिक क्षेत्र को जानता-देखता है । इस कथन का तात्पर्य यह है कि एक कृष्णलेश्यी दूसरे कृष्णलेश्यी नारक से योग्यता मे विशुद्धि वाला होने पर भी बहुत अधिक दूरवर्ती क्षेत्र को अवधिज्ञान-दर्शन से नही जान-देख पाता, बल्कि थोडे ही अधिक क्षेत्र को जान-देख पाता है । यह कथन एक ही नरकपृथ्वी के नारको की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि सातवी नरक का कृष्णलेश्यी नारक जघन्य आधा गाऊ और उत्कृष्ट एक गाऊ जानता है, जबकि छठी नरक का कृष्णलेश्यावान् नारक जघन्य एक गाऊ और उत्कृष्ट डेढ गाऊ जानता है, पाचवी-छठी नरकपृथ्वी वाला कृष्णलेश्यी नारक जघन्य डेढ गाऊ और उत्कृष्ट किञ्चित् न्यून दो गाऊ जानता है । इस प्रकार विविध पृथ्वी के कृष्णलेश्यी नारको के जानने-देखने मे अन्तर होने से दोषापत्ति होगी, इसलिए एक ही नरकपृथ्वी के कृष्णलेश्यी नारको की अपेक्षा से यह कथन यथार्थ है । अधिक न देखने-जानने का कारण यह है कि जैसे दो व्यक्ति समतल भूमि पर खडे होकर इधर-उधर देखे तो उनमे से एक अपने नेत्रो की निर्मलता के कारण भले अधिक देखे किन्तु कुछ ही अधिक क्षेत्र को जान-देख सकता है, बहुत अधिक दूर तक नही । इसी प्रकार कोई कृष्णलेश्यी नारक अपनी योग्यतानुसार दूसरे नारक की अपेक्षा अतिविशुद्ध हो तो भी वह कुछ ही अधिक क्षेत्र को जान-देख पाता है, बहुत अधिक क्षेत्र को नही ।[1]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३५६

नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले का उत्तरोत्तर स्फुट ज्ञान-दर्शन—(१) जैसे कोई व्यक्ति समतल भूभाग से पर्वतारूढ़ होकर चारो ओर देखे तो वह भूतल पर खडे हुए पुरुष की अपेक्षा क्षेत्र को दूर तक, अधिक स्पष्ट, विशुद्धतर जानता-देखता है, वैसे ही नीललेश्या वाला नारक भूमितल-स्थानीय कृष्णलेश्या वाले नारक की अपेक्षा अपने अवधिज्ञान से क्षेत्र को अतीव दूर तक निर्मलतर, विशुद्धतर जानता-देखता है। (२) जैसे कोई व्यक्ति समतल भूमि से पर्वतारूढ होकर और फिर वहाँ वृक्ष पर चढ कर, दोनो पैर ऊँचे करके देखे तो वह नीचे भूतल पर स्थित और पर्वत पर स्थित पुरुषो की अपेक्षा अधिक दूरतर क्षेत्र को अतीव स्फुट एव विशुद्धतर देखता है, वैसे ही वृक्षस्थानीय कापोतलेश्या वाला, पर्वतस्थानीय नीललेश्यावान् एव भूमितलस्थानीय कृष्णलेश्यावान् की अपेक्षा अवधिज्ञान से बहुत दूर तक के क्षेत्र को विशुद्धतर जानता-देखता है।[1]

कृष्णादिलेश्यायुक्त जीवों में ज्ञान की प्ररूपणा

१२१६. [१] कण्हलेस्से णं भंते ! जीवे कतिसु णाणेसु होज्जा ?

गोयमा ! दोसु वा तिसु वा चउसु वा णाणेसु हुज्जा, दोसु होमाणे आभिणिबोहिय-सुयणाणेसु होज्जा, तिसु होमाणे आभिणिबोहिय-सुयणाण-ओहिणाणेसु होज्जा, अहवा तिसु होमाणे आभिणि-बोहिय-सुयणाण-मणपज्जवणाणेसु होज्जा, चउसु होमाणे आभिणिबोहियणाण-सुयणाण-ओहिणाण-मणपज्जवणाणेसु होज्जा।

[१२१६-१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाला जीव कितने ज्ञानो मे होता है ?

[१२१६-१ उ] गौतम ! (वह) दो, तीन अथवा चार ज्ञानो मे होता है। यदि दो (ज्ञानो) मे हो तो आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान मे होता है, तीन (ज्ञानो) मे हो तो आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञान मे होता है, अथवा तीन (ज्ञानो) मे हो तो आभिनिबोधिक श्रुतज्ञान और मन पर्यवज्ञान मे होना है और चार ज्ञानो मे हो तो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन·पर्यवज्ञान मे होता है।

[२] एवं जाव पम्हलेस्से।

[१२१६-२] इसी प्रकार (नील, कापोत और तेजोलेश्या) यावत् पद्मलेश्या वाले जीव मे पूर्वोक्त सूत्रानुसार ज्ञानो की प्ररूपणा समझ लेना चाहिए।

१२१७. सुक्कलेस्से णं भंते ! जीवे कइसु णाणेसु होज्जा ?

गोयमा ! दोसु वा तिसु वा चउसु वा एगम्मि वा होज्जा, दोसु होमाणे आभिणिबोहियणाण० एवं जहेव कण्हलेस्साणं (सु. १२२६ [१]) तहेव भाणियव्वं जाव चउहिं, एगम्मि होमाणे एगम्मि केवलणाणे होज्जा।

।। पण्णवणाए भगवतीए लेस्सापदे ततिओ उद्देसओ समत्तो ।।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३५६

[१२१७ प्र] भगवन् ! शुक्ललेश्या वाला जीव कितने ज्ञानो मे होता है ?

[१२१७ उ] गौतम ! शुक्ललेश्यी जीव दो, तीन, चार या एक ज्ञान मे होता है। यदि दो (ज्ञानो) मे हो तो आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान मे होता है, तीन या चार ज्ञानो मे हो तो (सू १२१६-१ मे) जैसा कृष्णलेश्या वालो का कथन किया था, उसी प्रकार यावत् चार ज्ञानो मे होता है, यहाँ तक कहना चाहिए। यदि एक ज्ञान मे हो तो एक केवलज्ञान मे होता है।

विवेचन – कृष्णादिलेश्यायुक्त जीवो मे ज्ञान-प्ररूपणा प्रस्तुत दो सूत्रो (१२१६-१२१७) मे कृष्णलेश्या से लेकर शुक्ललेश्या तक से युक्त जीव पाच ज्ञानो मे से कितने ज्ञानो वाला होता है ? इसका प्रतिपादन किया गया है।

अवधिज्ञानरहित मनःपर्यायज्ञान –किसी-किसी मे अवधिज्ञानरहित मन पर्यायज्ञान भी होता है, 'सिद्धप्राभृत' आदि ग्रन्थो मे इसका अनेकबार प्रतिपादन किया गया है तथा प्रत्येक ज्ञान की क्षयोपशमसामग्री विचित्र होती है। आमर्ष-औषधि आदि लब्धियो से युक्त किसी अप्रमत्त चारित्री को विशिष्ट विशुद्ध अध्यवसाय मे मन पर्यायज्ञानावरण के क्षयोपशम की सामग्री प्राप्त हो जाती है, किन्तु अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम की सामग्री प्राप्त नही होती। उसे अवधिज्ञान के बिना भी मन पर्यायज्ञान होता है।

कृष्णलेश्यावान् मे मनःपर्यायज्ञान कैसे ?—यहाँ शका हो सकती है कि मन पर्यायज्ञान तो अतिविशुद्ध परिणाम वाले व्यक्ति को होता है और कृष्णलेश्या सक्लेशमय परिणाम रूप होती है। ऐसी स्थिति मे कृष्णलेश्या वाले जीव मे मन पर्यायज्ञान कैसे हो सकता है ? इसका समाधान यह है कि प्रत्येक लेश्या के अध्यवसायस्थान असख्यात लोकाकाशप्रदेशो जितने हैं। उनमे से कोई-कोई मन्द अनुभाव वाले अध्यवसायस्थान होते है, जो प्रमत्तसयत मे पाए जाते है। यद्यपि मन पर्यायज्ञान अप्रमत्तसयत जीव को ही उत्पन्न होता है, परन्तु उत्पन्न होने के बाद वह प्रमत्तदशा मे भी रहता है। इस दृष्टि से कृष्णलेश्यावाला जीव भी मन पर्यायज्ञानी हो सकता है।[1]

शुक्ललेश्या वाले की विशेषता—शुक्ललेश्या वाला जीव केवलज्ञान मे भी हो सकता है। केवलज्ञान शुक्ललेश्या के ही होता है अन्य किसी मे नही।[2] यही अन्य लेश्या वालो से शुक्ललेश्या वाले की विशेषता है।

।। सत्तरहवां लेश्यापद : तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३५७

२. वही, मलय वृत्ति पत्रांक ३५८

सत्तरसमं लेस्सापयं : चउत्थो उद्देसओ

सत्तरहवाँ लेश्यापद : चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक के अधिकारों की गाथा

१२१८. परिणाम १ वण्ण २ रस ३ गंध ४ सुद्ध ५ अपसत्थ ६ संकिलिट्ठुण्हा ७-८।

गति ९ परिणाम १० पवेसावगाह ११-१२ वग्गण १३ ठाणाणमप्पबहुं १४-१५ ।। ।।२१०।।

[**१२१८. चतुर्थ उद्देशक की अधिकार गाथा का अर्थ**—] (१) परिणाम, (२) वर्ण, (३) रस, (४) गन्ध, (५) शुद्ध (-अशुद्ध), (६) (प्रशस्त-) अप्रशस्त, (७) सक्लिष्ट (-असक्लिष्ट), (८) उष्ण (-शीत), (९) गति, (१०) परिणाम, (११) प्रदेश (-प्ररूपणा), (१२) अवगाह, (१३) वर्गणा, (१४) स्थान (-प्ररूपणा) और (१५) अल्पबहुत्व, (ये पन्द्रह अधिकार चतुर्थ उद्देशक मे कहे जाएँगे) ।।२१०।।

लेश्या के छह प्रकार

१२१९ कति ण भते ! लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! छल्लेसाओ पण्णत्ताओ। त जहा कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

[१२१९ प्र] भगवन् ! लेश्याएँ कितनी है ?

[१२१९ उ] गौतम ! लेश्याएँ छह है, वे इस प्रकार—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या।

प्रथम परिणामाधिकार

१२२० से णूणं भते ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

हंता गोयमा ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमति।

से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चइ कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

गोयमा ! से जहाणामए खीरे दूसिं पप्प सुद्धे वा वत्थे रागं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति।

सेएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति।

[१२२० प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त हो कर उसी रूप मे, उसी के वर्णरूप मे, उसी के गन्धरूप में, उसी के रसरूप मे, उसी के स्पर्शरूप मे पुनः पुन. परिणत होती है ?

[१२२० उ] हां, गौतम ! कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर उसी रूप मे यावत् पुनः पुनः परिणत होती है ।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त करके उसी रूप मे यावत् बार-बार परिणत होती है ?

[उ.] गौतम ! जैसे छाछ आदि खटाई का जावण (दूष्य) पाकर दूध अथवा शुद्ध वस्त्र, रग (लाल, पीला आदि का सम्पर्क) पाकर उस रूप मे, उसी के वर्ण-रूप मे, उसी के गन्ध-रूप मे, उसी के रस-रूप मे, उसी के स्पर्श-रूप मे पुन. पुनः परिणत हो जाता है, इसी प्रकार हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि कृष्णलेश्या नीललेश्या को पा कर उसी के रूप मे यावत् पुन पुनः परिणत होती है ।

१२२१. एव एतेणं अभिलावेणं णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प, काउलेस्सा तेउलेस्सं पप्प, तेउलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प, पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सं पप्प जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति ।

[१२२१] इसी प्रकार (पूर्वोक्त) कथन (अभिलाप) के अनुसार नीललेश्या कापोतलेश्या को प्राप्त होकर, कापोतलेश्या तेजोलेश्या को प्राप्त होकर, तेजोलेश्या पद्मलेश्या को प्राप्त होकर और पद्मलेश्या शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप मे और यावत् (उसी के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के रूप मे) पुनः पुन· परिणत हो जाती है ।

१२२२. से णूणं भंते ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं काउलेस्सं तेउलेस्सं पम्हलेस्सं सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

हंता गोयमा ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति ।

से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति किण्हलेस्सा णीललेस्सं जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

गोयमा ! से जहाणामए वेरुलियमणी सिया किण्णसुत्तए वा णीलसुत्तए वा लोहियसुत्तए वा हालिद्दसुत्तए वा सुक्किल्लसुत्तए वा आइए समाणे तारूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति ।

सेएणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ किण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति ।

[१२२२ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या क्या नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उन्ही के स्वरूप मे (उनमे से किसी भी लेश्या के रूप मे), उन्ही के वर्णरूप मे, उन्ही के गन्धरूप मे, उन्ही के रसरूप मे, उन्ही के स्पर्शरूप मे पुन. पुन परिणत होती है ?

[१२२२ उ] हाँ, गौतम ! कृष्णलेश्या, नीललेश्या को यावत् शुक्ललेश्या को प्राप्त हो कर उन्ही के स्वरूप मे यावत् (उनमे से किसी भी लेश्या के वर्णादिरूप मे) पुन पुन परिणत होती है ।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते है कि कृष्णलेश्या, नीललेश्या को यावत् शुक्ल-लेश्या को प्राप्त होकर उन्ही के स्वरूप मे यावत् (उन्ही के वर्णादिरूप मे) पुन. पुन परिणत हो जाती है ?

[उ] गौतम ! जैसे कोई वैडूर्यमणि काले सूत्र मे या नीले सूत्र में, लाल सूत्र मे या पीले सूत्र मे अथवा श्वेत (शुक्ल) सूत्र मे पिरोने पर वह उसी के रूप मे यावत् (उसी के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के रूप मे) पुन. पुन· परिणत हो जाती है, इसी प्रकार हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि कृष्णलेश्या, नीललेश्या यावत् शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उन्ही के रूप मे यावत् उन्ही के वर्णादि-रूप मे पुन. पुन· परिणत हो जाती है ।

१२२३ से णूण भते ! णीललेस्सा किण्हलेस्स जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

हंता गोयमा ! एवं चेव ।

[१२२३ प्र] भगवन् ! क्या नीललेश्या, कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या को पाकर उन्ही के स्वरूप मे यावत् (उन्ही के वर्णादिरूप मे) बार-बार परिणत होती है ?

[१२२३ उ] हाँ गौतम ! ऐसा ही है, (जैसा कि ऊपर कहा गया है ।)

१२२४ एवं काउलेस्सा कण्हलेस्स णीललेस्सं तेउलेस्सं पम्हलेस्स सुक्कलेस्स, एवं तेउलेस्सा किण्हलेस णीललेसं काउलेसं पम्हलेसं सुक्कलेसं, एवं पम्हलेस्सा कण्हलेसं णीललेस काउलेस तेउलेस सुक्कलेस्सं ।

[१२२४] इसी प्रकार कापोतलेश्या, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर, इसी प्रकार तेजोलेश्या, कृष्णलेश्या, कापोतलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर, इसी प्रकार पद्मलेश्या, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या को प्राप्त होकर (उनके स्वरूप मे तथा उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के रूप मे परिणत हो जाती है ।)

१२२५. से णूणं भते ! सुक्कलेस्सा किण्ह० णील० काउ० तेउ० पम्हलेस्सं पप्प जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

हंता गोयमा ! एव चेव ।

[१२२५ प्र] भगवन् ! क्या शुक्ललेश्या, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या को प्राप्त होकर यावत् (उन्ही के स्वरूप मे तथा उन्ही के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के रूप मे) बार-बार परिणत होती है ?

[१२२५ उ] हाँ गौतम ! ऐसा ही है, (जैसा कि ऊपर कहा गया है ।)

विवेचन—प्रथम परिणामाधिकार—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू १२२० से १२२५) मे कृष्णादि लेश्याओ की विभिन्न वर्णादिरूप मे परिणत होने की प्ररूपणा की गई है ।

लेश्याओं के परिणाम की व्याख्या—परिणाम का अर्थ यहाँ परिवर्तन है । अर्थात्—एक लेश्या का दूसरी लेश्या के रूप मे तथा उसी के वर्णादि के रूप मे परिणत हो जाना लेश्यापरिणाम है ।

कृष्णलेश्या का नीललेश्या के रूप में परिणमन—प्रस्तुत मे कृष्णलेश्या अर्थात् कृष्णलेश्या के द्रव्य, नीललेश्या को अर्थात् —नीललेश्या के द्रव्यो को प्राप्त होकर, यानी परस्पर एक दूसरे के अवयवो के सस्पर्श को पाकर उसी के —नीललेश्या के रूप मे अर्थात् नीललेश्या के स्वभाव के रूप मे

बार-बार परिणत होती है । तात्पर्य यह है कि कृष्णलेश्या का स्वभाव नीललेश्या के स्वभाव के रूप में बदल जाता है । स्वभाव का किस प्रकार परिवर्तन होता है ? इसे विशद रूप मे बताते हैं— कृष्णलेश्या नीललेश्या के वर्ण के रूप मे, गन्ध के रूप मे, रस के रूप मे और स्पर्श के रूप मे परिणत—परिवर्तित हो जाती है । यह परिणमन अनेको वार होता है । इसका आशय यह है कि जब कोई कृष्णलेश्या के परिणमन वाला मनुष्य या तिर्यञ्च भवान्तर मे जाने वाला होता है और वह नीललेश्या के योग्य द्रव्यो को ग्रहण करता है, तब नीललेश्या के द्रव्यो के सम्पर्क से वे कृष्णलेश्या-योग्य द्रव्य तथारूप जीव-परिणामरूप सहकारी कारण को पाकर नीललेश्या के द्रव्य रूप के परिणत हो जाते है; क्योकि पुद्गलो के विविध प्रकार से परिणत—परिवर्तित होने का स्वभाव है । तत्पश्चात् वह जीव केवल नीललेश्या के योग्य द्रव्यो के सम्पर्क से नीललेश्या के परिणमन से युक्त होकर काल करके भवान्तर मे उत्पन्न होता है । यह सिद्धान्तवचन है कि[1] 'जीव जिस लेश्या के द्रव्यो को ग्रहण करके काल करता (मरता) है, उसी लेश्या वाला होकर उत्पन्न होता है', तथा वही तिर्यंच अथवा मनुष्य उसी भव मे विद्यमान रहता हुआ जब कृष्णलेश्या मे परिणत होकर नीललेश्या के रूप—स्वभाव मे परिणत होता है, तब भी कृष्णलेश्या के द्रव्य तत्काल ग्रहण किए हुए नीललेश्या के द्रव्यो के सम्पर्क से नीललेश्या के द्रव्यो के रूप मे परिणत (परिवर्तित) हो जाते है । इसी तथ्य को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते है जैसे छाछ आदि किसी खट्टी वस्तु के सयोग से दूध के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श मे परिवर्तन हो जाता है, वह तक्र (छाछ) आदि के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के रूप मे परिणत हो जाता है, इसी प्रकार शुक्ल वस्त्र लाल आदि किसी रग का सयोग पाकर उसी रूप मे पलट जाता है । इसी प्रकार कृष्णलेश्यायोग्य द्रव्यो का स्वरूप तथा उसके वर्ण-गन्धादि नीललेश्यायोग्य द्रव्यो के सम्पर्क से नीललेश्या के वर्णादिरूप मे परिवर्तित हो जाते है । यहाँ तिर्यंचो और मनुष्यो के लेश्याद्रव्यो का पूर्णरूप से तद्रूप मे परिणमन माना गया है । देवो और नारको के लेश्याद्रव्य भवपर्यन्त स्थायी रहते हैं ।[2]

पूर्व-पूर्व लेश्या का उत्तरोत्तर लेश्या के रूप में परिणमन—सूत्र १२२०-१२२१ मे यह बताया गया है कि पूर्व-पूर्व लेश्या उत्तर-उत्तर लेश्या को प्राप्त होकर उसी के वर्णादि रूप मे परिणत हो जाती है ।

किसी भी एक लेश्या का अन्य समस्त लेश्याओ के रूप के परिणमन—सू १२२२ से १२२५ तक यह बताया गया है कि कोई भी एक लेश्या क्रम से या व्युत्क्रम से किसी भी अन्य लेश्या के वर्ण-गन्धादिरूप मे परिणत हो सकती है । किन्तु यहाँ यह ध्यान रखना है कि कोई भी एक लेश्या परस्पर विरुद्ध होने से एक ही साथ अनेक लेश्याओ मे परिणत नही होती । एक लेश्या का अन्य सभी लेश्याओ मे से किसी एक लेश्या के रूप मे परिणमन कैसे हो जाता है ? इस सम्बन्ध मे दृष्टान्त यह है कि जैसे एक ही वैडूर्यमणि उन-उन उपाधिद्रव्यो के सम्पर्क से उस-उस रूप मे परिणत हो जाती है, इसी प्रकार एक लेश्याद्रव्य भी कृष्ण, नील आदि रूपो मे परिणत हो जाते है । इसी अश मे दृष्टान्त की समानता समझनी चाहिए, अन्य अनिष्ट अशो मे नही ।[3]

---

१ जल्लेसाइ दव्वाइ परियाइत्ता काल करेइ, तल्लेसे उववज्जइ । —प्रज्ञा. म. वृ, प ३५९

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३५९-३६०

३ वही, मलय वृत्ति, पत्राक ३५९-३६०

द्वितीय वर्णाधिकार

१२२६. कण्हलेस्सा णं भंते ! वण्णेण केरिसिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहाणामए जीमूए इ वा अंजणे इ वा खंजणे इ वा कज्जले इ वा गवले इ वा गवलवलए इ वा जंबूफलए इ वा अद्दारिट्ठए इ वा परपुट्ठे इ वा भमरे इ वा भमरावली इ वा गयकलभे इ वा किण्हकेसे इ वा आगासथिग्गले इ वा किण्हासोए इ वा किण्हकणवीरए इ वा किण्हबंधुजीवए इ वा।

भवेतारूवा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, किण्हलेस्सा ण एत्तो अणिट्ठतरिया चेव अकंततरिया चेव अप्पियतरिया चेव अमणुण्णतरिया चेव अमणामतरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता।

[१२२६ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वर्ण से कैसी है ?

[१२२६ उ] गौतम ! जैसे कोई जीमूत (वर्षारम्भकालिक मेघ) हो, अथवा (आँखों में आजने का सौवीरादि) अंजन (काला सुरमा अथवा अंजन नामक रत्न) हो, अथवा खंजन (गाडी की धुरी में लगा हुआ कीट-औघन, अथवा दीवट के लगा मैल (कालमल) हो, कज्जल (काजल) हो, गवल (भैंस का सींग) हो, अथवा गवलवृन्द (भैंस के सींगों का समूह) हो, अथवा जामुन का फल हो, या गीला अरीठा (या अरीठे का फूल) हो, या परपुष्ट (कोयल) हो, भ्रमर हो, या भ्रमरों की पंक्ति हो, अथवा हाथी का बच्चा हो या काले केश हो, अथवा आकाशथिग्गल (शरद्ऋतु के मेघों के बीच का आकाशखण्ड) हो, या काला अशोक हो, काला कनेर हो, अथवा काला बन्धुजीवक (विशिष्ट वृक्ष) हो, (इनके समान कृष्णलेश्या काले वर्ण की है।)

[प्र] (भगवन् !) क्या कृष्णलेश्या (वास्तव में) इसी रूप की होती है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नहीं है। कृष्णलेश्या इससे भी अनिष्टतर है, अधिक अकान्त (असुन्दर), अधिक अप्रिय, अधिक अमनोज्ञ और अधिक अमनाम (अत्यधिक अवाञ्छनीय) वर्ण वाली कही गई है।

१२२७. णीललेस्सा णं भंते ! केरिसिया वण्णेण पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहाणामए भिंगे इ वा भिंगपत्ते इ वा चासे इ वा चासपिच्छे इ वा सुए इ वा सुयपिच्छे इ वा सामा इ वा वणराई इ वा उच्चंतए इ वा पारेवयगीवा इ वा मोरगीवा इ वा हलधरवसणे इ वा अयसिकुसुमए इ वा बाणकुसुमए इ वा अंजणकेसियाकुसुमए इ वा णीलुप्पले इ वा णीलासोए इ वा णीलकणवीरए इ वा णीलबंधुजीवए इ वा।

भवेतारूवा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, एत्तो जाव अमणामतरिया चेव वण्णेण पण्णत्ता ?

[१२२७ प्र] भगवन् ! नीललेश्या वर्ण से कैसी है ?

[१२२७ उ.] गौतम ! जैसे कोई भृंग (पक्षी) हो, भृंगपत्र हो, अथवा पपीहा (चास पक्षी हो, या चासपक्षी की पांख हो, या शुक (तोता) हो, तोते की पांख हो, श्यामा (प्रियंगुलता)

हो, अथवा वनराजि हो, या दन्तराग (उच्चन्तक) हो, या कबूतर की ग्रीवा हो, अथवा मोर की ग्रीवा हो, या हलधर (बलदेव) का (नील) वस्त्र हो, या अलसी का फूल हो, अथवा वण (बाण) वृक्ष का फूल हो, या अजनकेसि का कुसुम हो, नीलकमल हो, अथवा नील अशोक हो, नीला कनेर हो, अथवा नीला बन्धुजीवक वृक्ष हो, (इनके समान नीललेश्या नीले वर्ण की है।)

[प्र] भगवन् ! क्या नीललेश्या (वस्तुत) इस रूप की होती है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (योग्य) नही है । नीललेश्या इससे भी अनिष्टतर, अधिक अकान्त, अधिक अप्रिय, अधिक अमनोज्ञ और अधिक अमनाम वर्ण से कही गई है ।

१२२८. काउलेस्सा ण भते ! केरिसिया वण्णेण पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहाणामए खयरसारे इ वा कयरसारे इ वा धमाससारे इ वा तबे इ वा तंब-करोडए इ वा तबच्छिवाडिया इ वा वाइंगणिकुसुमए इ वा कोइलच्छदकुसुमए इ वा ◁ जवासाकुसुमे इ वा कलकुसुमे इ वा ▷ ।

भवेतारूवा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, काउलेस्सा णं एत्तो अणिट्ठतरिया जाव अमणामतरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता ।

[१२२८ प्र] भगवन् ! कापोतलेश्या वर्ण से कैसी है ?

[१२२८ उ] गौतम ! जैसे कोई खदिर (खैर-कत्था) के वृक्ष का सार भाग(मध्यवर्ती भाग) हो, खैर कर सार हो, अथवा धमास वृक्ष का सार हो, ताम्बा हो, या ताम्बे का कटोरा हो, या ताम्बे की फली हो, या बैगन का फूल हो, कोकिलच्छद (तैलकण्टक) वृक्ष का फूल हो, अथवा जवासा का फूल हो, अथवा कलकुसुम हो, (इनके समान वर्ण वाली कापोतलेश्या है ।)

[प्र] भगवन् ! क्या कपोतलेश्या ठीक इसी रूप की है ?

[उ] यह अर्थ समर्थ नही है । कापोतलेश्या वर्ण से इससे भी अनिष्टतर यावत् अमनाम (अत्यन्त अवाञ्छनीय) कही है ।

१२२९. तेउलेस्सा ण भते ! केरिसिया वण्णेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहाणामए ससरुहिरे इ वा उरब्भरुहिरे इ वा वराहरुहिरे इ वा संबररुहिरे इ वा मणुस्सरुहिरे इ वा बालिंदगोवे इ वा बालदिवागरे इ वा संझब्भरागे इ वा गुंजद्धरागे इ वा जाइहिं-गुलए इ वा पवालंकुरे इ वा लक्खारसे इ वा लोहियक्खमणी इ वा किमिरागकबले इ वा गयतालुए इ वा चीणपिट्ठरासी इ वा पालियायकुसुमे इ वा जासुमणाकुसुमे इ वा किंसुयपुप्फरासी इ वा रत्तुप्पले इ वा रत्तासोगे इ वा रत्तकणवीरए इ वा रत्तबधुजीवए इ वा ?

भवेयारूवा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, तेउलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव वन्नेण पण्णत्ता ।

◁▷ इस चिन्ह के सूचित पाठ मलयगिरि वृत्ति मे नही है ।

[१२२९ प्र] भगवन् ! तेजोलेश्या वर्ण से कैसी है ?

[१२२९ उ] गौतम ! जैसे कोई खरगोश का रक्त हो, मेष (मेढे) का रुधिर हो, सूअर का रक्त हो, साभर का रुधिर हो, मनुष्य का रक्त हो, या इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक कीडा हो, अथवा बाल-इन्द्रगोप हो, या बाल-सूर्य (उगते समय का सूरज) हो, सन्ध्याकालीन लालिमा हो, गु जा (चिरमी) के आधे भाग की लालिमा हो, उत्तम (जातिमान्) हीगलू हो, प्रवाल (मू गे) का अकुर हो, लाक्षारस हो, लोहिताक्षमणि हो, किरमिची रग का कम्बल हो, हाथी का तालु (तलुआ) हो, चीन नामक रक्तद्रव्य के आटे की राशि हो, पारिजात का फूल हो, जपापुष्प हो, किंशुक (टेसू) के फूलो की राशि हो, लाल कमल हो, लाल अशोक हो, लाल कनेर हो, अथवा लालबन्धुजीवक हो, (ऐसे रक्त वर्ण की तेजोलेश्या होती है ।)

[प्र.] भगवन् ! क्या तेजोलेश्या इसी रूप की होती है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । तेजोलेश्या इन से भी इष्टतर, यावत् (अधिक कान्त, अधिक प्रिय, अधिक मनोज्ञ और) अधिक मनाम वर्ण वाली होती है ।

१२३०. पम्हलेस्सा ण भते ! केरिसिया वण्णेण पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहाणामए चंपे इ वा चपयछल्ली इ वा चंपयभेदे इ वा हलिद्दा इ वा हलिद्दगुलिया इ वा हलिद्दाभेए इ वा हरियाले इ वा हरियालगुलिया इ वा हरियालभेए इ वा चिउरे इ वा चिउररागे इ वा सुवण्णसिप्पी इ वा वरकणगणिहसे इ वा वरपुरिसवसणे इ वा अल्लइकुसुमे इ वा चपयकुसुमे इ वा कणियारकुसुमे इ वा कुहडियाकुसुमे इ वा सुवण्णजूहिया इ वा सुहिरण्णियाकुसुमे इ वा कोरेटमल्लदामे इ वा पीयासोगे इ वा पीयकणवीरए इ वा पीयबधुजीवए इ वा ।

भवेतारूवा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, पम्हलेस्सा ण एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव वण्णेण पण्णत्ता ।

[१२३० प्र] भगवन् ! पद्मलेश्या वर्ण से कैसी है ?

[१२३० उ] जैसे कोई चम्पा हो, चम्पक की छाल हो, चम्पक का टुकडा हो, हल्दी हो, हल्दी की गुटिका (गोली) हो, हरताल हो, हरताल की गुटिका (गोली) हो, हरताल का टुकडा हो, चिकुर नामक पीत वस्तु हो, चिकुर का रग हो, या स्वर्ण की शुक्ति हो, उत्तम स्वर्ण-निकष (कसौटी पर खीची हुई स्वर्णरेखा) हो, श्रेष्ठ पुरुष (वासुदेव) का पीताम्बर हो, अल्लकी का फूल हो, चम्पा का फूल हो, कनेर का फूल हो, कूष्माण्ड (कोले) की लता का पुष्प हो, स्वर्णयूथिका (जूही) का फूल हो, सुहिरण्यिका-कुसुम हो, कोरट के फूलो की माला हो, पीत अशोक हो, पीला कनेर हो, अथवा पीला बन्धुजीवक हो, (इनके समान पद्मलेश्या पीले वर्ण की कही गई है ।)

[प्र] भगवन् ! क्या पद्मलेश्या (वास्तव मे ही) ऐसे रूप वाली होती है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । पद्मलेश्या वर्ण में इनसे भी इष्टतर, यावत् अधिक मनाम (वाछनीय) होती है ।

१२३१. सुक्कलेस्सा णं भंते ! केरिसया वण्णेण पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहाणामए अंके इ वा सखे इ वा चदे इ वा कु दे इ वा दगे इ वा दगरए इ वा दही इ वा दहिघणे इ वा खीरे इ वा खीरपूरे इ वा सुक्कछिवाडिया इ वा पेहुणमिंजिया इ वा धंत-धोयरुप्पपट्टे इ वा सारइयबलाहए इ वा कुमुददले इ वा पोंडरियदले इ वा सालिपिट्ठरासी इ वा कुडगपुप्फरासी ति वा सिंदुवारवरमल्लदामे इ वा सेयासोए इ वा सेयकणवीरे इ वा सेयबंधुजीवए इ वा।

भवेतारूवा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, सुक्कलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव कंततरिया चेव पियतरिया चेव मणुण्णतरिया चेव मणामतरिया चेव वण्णेण पण्णत्ता ।

[१२३१ प्र] भगवन् ! शुक्ललेश्या वर्ण से कैसी है ?

[१२३१ उ.] गौतम ! जैसे कोई अकरत्न हो, शख हो, चन्द्रमा हो, कुन्द (पुष्प) हो, उदक (स्वच्छ जल) हो, जलकण हो, दही हो, जमा हुआ दही (दधिपिण्ड) हो, दूध हो, दूध का उफान हो, सूखी फली हो, मयूरपिच्छ की मिजी हो, तपा कर धोया हुआ चादी का पट्ट हो, शरद् ऋतु का बादल हो, कुमुद का पत्र हो, पुण्डरीक कमल का पत्र हो, चावलो (शालिधान्य) के आटे का पिण्ड (राशि) हो, कुटज के पुष्पो की राशि हो, सिन्धुवार के श्रेष्ठ फूलो की माला हो, श्वेत अशोक हो, श्वेत कनेर हो, अथवा श्वेत बन्धुजीवक हो, (इनके समान शुक्ललेश्या श्वेतवर्ण की कही है।)

[प्र] भगवन् ! क्या शुक्ललेश्या ठीक ऐसे ही रूप वाली है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। शुक्ललेश्या इनसे भी वर्ण मे इष्टतर यावत् अधिक मनाम होती है।

१२३२ एयाओ ण भते ! छल्लेस्साओ कतिसु वण्णेसु साहिज्जति ?

गोयमा ! पचसु वण्णेसु साहिज्जति । त जहा—कण्हलेसा कालएण वण्णेण साहिज्जति, णीललेस्सा णीलएण वण्णेण साहिज्जति, काउलेस्सा काललोहिएण वण्णेण साहिज्जति, तेउलेस्सा लोहिएणं वण्णेणं साहिज्जइ, पम्हलेस्सा हालिद्दएणं वण्णेणं साहिज्जइ, सुक्कलेस्सा सुक्किलएण वण्णेण साहिज्जइ ।

[१२३२ प्र.] भगवन् ! ये छहो लेश्याएँ कितने वर्णों द्वारा कही जाती है ?

[१२३२ उ] गौतम ! (ये) पाच वर्णों वाली हैं। वे इस प्रकार है - कृष्णलेश्या काले वर्ण द्वारा कही जाती है, नीललेश्या नीले वर्ण द्वारा कही जाती है, कापोतलेश्या काले और लाल वर्ण द्वारा कही जाती है, तेजोलेश्या लाल वर्ण द्वारा कही जाती है, पद्मलेश्या पीले वर्ण द्वारा कही जाती है और शुक्ललेश्या श्वेत (शुक्ल) वर्ण द्वारा कही जाती है।

विवेचन—द्वितीय : वर्णाधिकार—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू. १२२६ से १२३२ तक) मे पृथक्-पृथक् छहो लेश्याओ के वर्णों की विभिन्न वर्ण वाली वस्तुओ से उपमा देकर प्ररूपणा की गई है।

कृष्णलेश्या के लिए अनिष्टतर आदि पांच विशेषण क्यों ?—कृष्णलेश्या वर्षारम्भकालीन काले कजरारे मेघ आदि उल्लिखित काली वस्तुओ से भी अधिक अनिष्ट होती है, यह बताने के लिए कृष्णलेश्या के लिए अनिष्टतर विशेषण का प्रयोग किया गया है। किन्तु कस्तूरी जैसी कोई-कोई वस्तु अनिष्ट (काली) होने पर भी कान्त (कमनीय) होती है, परन्तु कृष्णलेश्या ऐसी भी नही है। यह बताने हेतु कृष्णलेश्या के लिए **अकान्ततर** (अत्यन्त अकमनीय) विशेषण का प्रयोग किया गया है। कोई वस्तु अनिष्ट और अकान्त होने पर भी किसी को प्रिय होती है, किन्तु कृष्णलेश्या प्रिय भी नही होती, यह बताने हेतु कृष्णलेश्या के लिए **अप्रियतर** (अत्यन्त अप्रिय) विशेषण प्रयोग किया गया है। इसी कारण कृष्णलेश्या **अमनोज्ञतर** (अत्यन्त अमनोज्ञ) होती है। वास्तव मे उसके स्वरूप का सम्यक् परिज्ञान होने पर मन उसे किंचित् भी उपादेय नही मानता। कडवी औषध जैसी कोई वस्तु अमनोज्ञतर होने पर भी मध्यमस्वरूप होती है किन्तु कृष्णलेश्या सर्वथा अमनोज्ञ है, यह अभिव्यक्त करने के लिए उसके लिए **'अमनामतर'** (सर्वथा अवाछनीय) विशेषण का प्रयोग किया गया है।[1]

इसी प्रकार नीललेश्या और कापोतलेश्या के लिए शास्त्रकार ने इन्ही पाच विशेषणो का प्रयोग किया है। जबकि अन्त की तीन लेश्याओ के लिए इनसे ठीक विपरीत **'इष्टतर'** आदि पाच विशेषणो का प्रयोग किया गया है।

'साहिज्जति' पद का अर्थ—कही जाती है, प्ररूपित की जाती है।[2]

तृतीय रसाधिकार

१२३३. कण्हलेस्सा ण भते ! केरिसिया आसाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहाणामए णिबे इ वा णिबसारे इ वा णिबछल्ली इ वा णिबफाणिए इ वा कुडए इ वा कुडगफले इ वा कुडगछल्ली इ वा कुडगफाणिए इ वा कडुगतुंबी इ वा कडुगतुम्बीफले इ वा खारतउसी इ वा खारतउसीफले इ वा देवदाली इ वा देवदालिपुप्फे इ वा मियवालुंकी इ वा मियवालुंकीफले इ वा घोसाडिए इ वा घोसाडइफले इ वा कण्हकदए इ वा वज्जकदए इ वा।

भवेतारूवा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, कण्हलेस्सा णं एत्तो अणिट्ठतरिया चेव जाव अमणामतरिया चेव अस्साएणं पण्णत्ता।

[१२३३ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या आस्वाद (रस) से कैसी कही है ?

[१२३३ उ] गौतम ! जैसे कोई नीम हो, नीम का सार हो, नीम की छाल हो, नीम का क्वाथ (काढा) हो, अथवा कुटज हो, या कुटज का फल हो, अथवा कुटज की छाल हो, या कुटज का क्वाथ (काढा) हो, अथवा कडवी तुम्बी हो, या कटुक तुम्बीफल (कडवा तुम्बा) हो, कडवी ककडी (त्रपुषी) हो, या कडवी ककडी का फल हो, अथवा देवदाली (रोहिणी) हो या देवदाली (रोहिणी) का पुष्प हो, या मृगवालुकी हो अथवा मृगवालुकी का फल हो, या कडवी घोषातिकी हो, अथवा कडवी घोषातिकी का फल हो, या कृष्णकन्द हो, अथवा वज्रकन्द हो, (इन वनस्पतियो के कटु रस के समान कृष्णलेश्या का रस (स्वाद) कहा गया है।)

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३६२

२. वही, मलय वृत्ति, पत्रांक ३६२

[प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या रस से इसी रूप की होती है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। कृष्णलेश्या स्वाद में इन (उपर्युक्त वस्तुओं के रस) से भी अनिष्टतर, अधिक अकान्त अधिक अप्रिय, अधिक अमनोज्ञ और अतिशय अमनाम है।

१२३४. णीललेस्सा पुच्छा।

गोयमा ! से जहाणामए भगी ति वा भंगीरए इ वा पाढा इ वा चविता इ वा चित्तामूलए इ वा पिप्पलीमूलए इ वा पिप्पली इ वा पिप्पलिचुण्णे इ वा मिरिए इ वा मिरियचुण्णे इ वा सिंगबेरे इ वा सिंगबेरचुण्णे इ वा।

भवेतारूवा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णीललेस्सा णं एत्तो जाव अमणामतरिया चेव अस्साएणं पण्णत्ता।

[१२३४ प्र] भगवन् ! नीललेश्या आस्वाद में कैसी है ?

[१२३४ उ] गौतम ! जैसे कोई भृंगी (एक प्रकार की मादक वनस्पति) हो, अथवा भृंगी (वनस्पति) का कण (रज) हो, या पाठा (नामक वनस्पति) हो, या चविता हो अथवा चित्रमूलक (वनस्पति) हो, या पिप्पलीमूल (पीपरामूल) हो, या पीपल हो, अथवा पीपल का चूर्ण हो, (मिर्च हो, या मिर्च का चूरा हो, शृंगबेर (अदरक) हो, या शृंगबेर (सूखी अदरक=सोंठ) का चूर्ण हो, (इन सबके रस के समान चरपरा (तिक्त) नीललेश्या का आस्वाद (रस) कहा गया है।)

[प्र] भगवन् ! क्या नीललेश्या रस से इसी रूप की होती है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। नीललेश्या रस (आस्वाद) में इससे भी अनिष्टतर, अधिक अकान्त, अधिक अप्रिय, अधिक अमनोज्ञ और अत्यधिक अमनाम (अवाञ्छनीय) कही गयी है।

१२३५. काउलेस्साए पुच्छा।

गोयमा ! से जहाणामए अंबाण वा अबाडगाण वा माउलुंगाण वा बिल्लाण वा कविट्ठाण वा भट्ठाण[1] वा फणसाण वा दालिमाण वा पारेवयाण वा अक्खोडाण वा पोराण वा बोराण वा तेंदुयाण वा अपक्काण अपरियागाण वण्णेण अणुववेयाण गंधेण अणुववेयाण फासेण अणुववेयाण।

भवेतारूवा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, जाव एत्तो अमणामतरिया चेव काउलेस्सा अस्साएणं पण्णत्ता।

[१२३५ प्र] भगवन् ! कापोतलेश्या आस्वाद में कैसी है ?

[१२३५ उ] गौतम ! जैसे कोई आम्रों का, आम्राटक के फलों का, बिजौरों का, बिल्वफलों (बेल के फलों) का, कवीठों का, भट्ठों का, पनसों (कटहलों) का, दाडिमों (अनारों) का,

१ पाठान्तर—'**भट्ठाण**' के बदले श्रीजीवविजयकृत स्तबक में '**भच्चाण**' पाठान्तर है, अर्थ किया गया है—भर्च वृक्ष के फल तथा श्री धनविमलगणिकृत स्तबक में '**भद्दाण**' पाठान्तर है, जिसका अर्थ किया गया है—अपक्व जैसी द्राक्षा। —स.

पारावत नामक फलो का, अखरोटो का, प्रौढ--बडे बेरो का, बेरो का तिन्दुको के फलो का, जो कि अपक्व हो, पूरे पके हुए न हो, वर्ण से रहित हो, गन्ध से रहित हो और स्पर्श से रहित हो; (इनके आस्वाद—रस के समान कापोतलेश्या का रस (स्वाद) कहा गया है।)

[प्र.] भगवन् ! क्या कापोतलेश्या रस से इसी प्रकार की होती है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। कापोतलेश्या स्वाद मे इनसे भी अनिष्टतर यावत् अत्यधिक अमनाम कही है।

१२३६. तेउलेस्सा णं पुच्छा ?

गोयमा ! से जहाणामए अबाण वा जाव तेंबुयाण वा पक्काण परियावण्णाण वण्णेणं उववेताणं पसत्थेणं जाव फासेणं जाव एत्तो मणामतरिया चेव तेउलेस्सा अस्साएण पण्णत्ता।

[१२३६ प्र] भगवन् ! तेजोलेश्या आस्वाद मे कैसी है ?

[१२३६ उ.] गौतम ! जैसे किन्ही आम्रो के यावत् (आम्राटको से लेकर) तिन्दुको तक के फल जो कि परिपक्व हो, पूर्ण परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो, परिपक्व अवस्था के प्रशस्त वर्ण से, गन्ध से और स्पर्श से युक्त हो, (इनका जैसा स्वाद होता है, वैसा ही तेजोलेश्या का है।)

[प्र] भगवन् ! क्या तेजोलेश्या इस आस्वाद की होती है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। तेजोलेश्या स्वाद मे इनसे भी इष्टतर यावत् अधिक मनाम होती है।

१२३७ पम्हलेस्साए पुच्छा ?

गोयमा ! से जहाणामए चदप्पभा इ वा मणिसिलागा इ वा वरसीधू इ वा वरवारुणी ति वा पत्तासवे इ वा पुप्फासवे इ वा फलासवे इ वा चोयासवे इ वा आसवे इ वा मधू इ वा मेरए इ वा कविसाणए इ वा खज्जूरसारए इ वा मुद्दियासारए इ वा सपक्कखोयरसे इ वा अट्ठपिट्ठणिट्ठिया इ वा जबूफलकालिया इ वा वरपसण्णा इ वा आसला मासला पेसला ईसी ओट्ठावलबिणी ईसिं वोच्छेयकडुई ईसी तबच्छिकरणी उक्कोसमयपत्ता वण्णेणं उववेया जाव फासेण आसायणिज्जा वीसायणिज्जा पीणणिज्जा विहणिज्जा दीवणिज्जा दप्पणिज्जा मयणिज्जा सव्विदिय-गायपल्हायणिज्जा।

भवेतारूवा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, पम्हलेस्सा ण एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव अस्साएणं पण्णत्ता ?

[१२३७ प्र] भगवन् ! पद्मलेश्या का आस्वाद कैसा है ?

[१२३७ उ] गौतम ! जैसे कोई चन्द्रप्रभा नामक मदिरा, मणिशलाका मद्य, श्रेष्ठ सीधु नामक मद्य हो, उत्तम वारुणी (मदिरा) हो, (धातकी के) पत्तो से बनाया हुआ आसव हो, पुष्पो का आसव हो, फलो का आसव हो, चोय नाम के सुगन्धित द्रव्य से बना आसव हो, अथवा सामान्य आसव हो, मधु (मद्य) हो, मैरेयक या कापिशायन नामक मद्य हो, खजूर का सार हो, द्राक्षा (का) सार हो, सुपक्व इक्षुरस हो, अथवा (शास्त्रोक्त) अष्टविध पिष्टो द्वारा तैयार की हुए वस्तु हो, या

जामुन के फल की तरह काली (स्वादिष्ट वस्तु) हो, या उत्तम प्रसन्ना नाम की मदिरा हो, (जो) अत्यन्त स्वादिष्ट हो, प्रचुर रस से युक्त हो, रमणीय हो, (अतएव आस्वादयुक्त होने से) झटपट ओठों से लगा ली जाए (अर्थात् जो मुखमाधुर्यकारिणी हो तथा) जो पीने के पश्चात् (इलायची, लौंग आदि द्रव्यो के मिश्रण के कारण) कुछ तीखी-सी हो, जो आखो को ताम्रवर्ण की बना दे तथा उत्कृष्ट मादक (मदप्रापक) हो, जो प्रशस्त वर्ण, गन्ध और स्पर्श से युक्त हो, जो आस्वादन करने योग्य हो, विशेष रूप से आस्वादन करने योग्य हो, जो प्रीणनीय (तृप्तिकारक) हो, बृहणीय बृद्धिकारक हो, उद्दीपन करने वाली, दर्पजनक, मदजनक तथा सभी इन्द्रियो और शरीर (गात्र) को आह्लाद-जनक हो, इनके रस के समान पद्मलेश्या का रस (आस्वाद) होता है ?

[प्र] भगवन् ! क्या पद्मलेश्या के रस का स्वरूप ऐसा ही होता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। पद्मलेश्या तो स्वाद (रस) मे इससे भी इष्टतर यावत् अत्यधिक मनाम कही है।

१२३८. सुक्कलेस्सा णं भंते ! केरिसिया अस्साएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहाणामए गुले इ वा खडे इ वा सक्करा इ वा मच्छडिया इ वा पप्पडमोदए इ वा भिसकवे इ वा पुप्फुत्तरा इ वा पउमुत्तरा इ वा आयसिया इ वा सिद्धत्थिया इ वा आगासफालि-ओवमा इ वा अणोवमाइ वा ?

भवेतारूवा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, सुक्कलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव कततरिया चेव पियतरिया चेव मणामतरिया चेव अस्साएणं पण्णत्ता।

[१२३८ प्र] भगवन् ! शुक्ललेश्या स्वाद मे कैसी है ?

[१२३८ उ] गौतम ! जैसे कोई गुड हो, खाड हो, या शक्कर हो, या मिश्री हो, (अथवा मत्स्यण्डी (खाड से बनी शक्कर) हो, पर्पटमोदक (एक प्रकार का मोदक अथवा मिश्री का पापड और लड्डू) हो, भिस (बिस) कन्द हो, पुष्पोत्तर नामक मिष्ठान्न हो, पद्मोत्तरा नाम की मिठाई हो, आदर्शिका (सन्देश ?) नामक मिठाई हो, या सिद्धार्थिका नाम की मिठाई हो, आकाशस्फटिकोपमा नामक मिठाई हो, अथवा अनुपमा नामक मिष्ठान्न हो, (इनके स्वाद के समान शुक्ललेश्या का स्वाद (रस) है।)

[प्र] भगवन् ! क्या शुक्ललेश्या स्वाद मे ऐसी होती है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। शुक्ललेश्या आस्वाद मे इनसे भी इष्टतर, अधिक कान्त (कमनीय), अधिक प्रिय एव अत्यधिक मनोज्ञ—मनाम कही गई है।

विवेचन—तृतीय रसाधिकार—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू १२३३ से १२३८ तक) मे छहो लेश्याओ के रसो का पृथक्-पृथक् विविध वस्तुओ के रसो की उपमा देकर निरूपण किया गया है।[1]

---

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्रांक ३६५-३६६

चतुर्थ गन्धाधिकार से नवम गति-अधिकार तक का निरूपण

१२३९. कति णं भंते ! लेस्साओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! तओ लेस्साओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ। त जहा–किण्हलेस्सा णीललेस्सा काउलेस्सा।

[१२३९ प्र] भगवन् ! दुर्गन्ध वाली कितनी लेश्याएँ कही हैं ?

[१२३९ उ] गौतम ! तीन लेश्याएँ दुर्गन्ध वाली कही है, वे इस प्रकार—कृष्णलेश्या नीललेश्या और कापोतलेश्या।

१२४०. कति ण भंते ! लेस्साओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! तओ लेस्साओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—तेउलेस्सा पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सा।

[१२४० प्र] भगवन् ! कितनी लेश्याएँ सुगन्ध वाली कही हैं ?

[१२४० उ] गौतम ! तीन लेश्याएँ सुगन्ध वाली कही हैं, वे इस प्रकार—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या।

१२४१. एवं तओ अविसुद्धाओ तओ विसुद्धाओ, तओ अप्पसत्थाओ तओ पसत्थाओ, तओ संकिलिट्ठाओ तओ असंकिलिट्ठाओ, तओ सीयलुक्खाओ तओ निद्धुण्हाओ, तओ दुग्गइगामिणीओ तओ सुगइगामिणीओ।

[१२४१] इसी प्रकार (पूर्ववत् क्रमश.) तीन (लेश्याएँ) अविशुद्ध और तीन विशुद्ध है, तीन अप्रशस्त है और तीन प्रशस्त है, तीन सक्लिष्ट है और तीन असक्लिष्ट है, तीन शीत और रूक्ष (स्पर्श वाली) है, और तीन उष्ण और स्निग्ध (स्पर्श वाली) है, (तथैव) तीन दुर्गतिगामिनी (दुर्गति मे ले जाने वाली) है और तीन सुगतिगामिनी (सुगति मे ले जाने वाली) है।

विवेचन - चौथे गन्धाधिकार से नौवें गति-अधिकार तक की प्ररूपणा प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू १२३९ से १२४१ तक) मे तीन-तीन दुर्गन्धयुक्त-सुगन्धयुक्त लेश्याओ का, अविशुद्ध-विशुद्ध का, अप्रशस्त-प्रशस्त का, सक्लिष्ट-असक्लिष्ट का, शीत-रूक्ष, उष्ण-स्निग्ध स्पर्शयुक्त का, दुर्गतिगामिनी-सुगतिगामिनी का निरूपण किया गया है।

४—गन्धद्वार—प्रारम्भ की तीन लेश्याएँ मृतमहिष आदि के कलेवरा से भी अनन्तगुणी दुर्गन्ध वाली है तथा अन्त की तीन लेश्याएँ पीसे जाते हुए सुगन्धित वास एव सुगन्धित पुष्पो से भी अनन्तगुणी उत्कृष्ट सुगन्ध वाली होती है।[1]

---

१ तुलना—जह गोमडस्स गधो नागमडस्स व जहा अहिमडस्स।
एत्तो उ अणंतगुणो लेस्साण अपसत्थाणं ॥ १ ॥
जहा सुरभिकुसुमगधो गधवासाण पिस्समाणाण।
एत्तो उ अणतगुणो पसत्थलेस्साण तिण्ह पि ॥ २ ॥ —उत्तराध्ययन

५. अविशुद्ध-विशुद्ध द्वार—प्रारम्भ की तीन लेश्याएँ अप्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाली होने से अविशुद्ध और अन्त की तीन लेश्याएँ प्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाली होने से विशुद्ध होती है।

६. अप्रशस्त-प्रशस्तद्वार—आदि की तीन लेश्याएँ अप्रशस्त होती है, क्योकि वे अप्रशस्त द्रव्य-रूप होने के कारण अप्रशस्त अध्यवसाय की तथा अन्त की तीन लेश्याएँ प्रशस्त होती है, क्योकि वे प्रशस्त द्रव्यरूप होने से प्रशस्त अध्यवसाय की निमित्त होती है।

७. संक्लिष्टाऽसंक्लिष्ट द्वार—प्रथम की तीन लेश्याएँ सक्लिष्ट होती है, क्योकि वे सक्लेश-मय आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान के योग्य अध्यवसाय को उत्पन्न करती तथा अन्तिम तीन लेश्याएँ असंक्लिष्ट हैं, क्योकि वे धर्मध्यान के योग्य अध्यवसाय को उत्पन्न करती है।

८. स्पर्श-प्ररूपणाधिकार—प्रारम्भ की तीन लेश्याएँ शीत और रूक्ष स्पर्श वाली हैं, इनके शीत और रूक्ष स्पर्श चित्त मे अस्वस्थता उत्पन्न करने के निमित्त हैं, जबकि अन्त की तीन लेश्याएँ उष्ण और स्निग्ध स्पर्श वाली है। इनके उष्ण और स्निग्ध स्पर्श चित्त मे सन्तोष उत्पन्न करने के निमित्त होते है। यद्यपि लेश्याद्रव्यो के कर्कश आदि स्पर्श आगे कहे गए है, परन्तु यहाँ उन्ही स्पर्शो का कथन किया गया है, जो चित्त मे अस्वस्थता-स्वस्थता पैदा करने मे निमित्त बनते है।

९. दुर्गति-सुगति द्वार—प्रारम्भ की तीन लेश्याएँ सक्लिष्ट अध्यवसाय की कारण होने से दुर्गति मे ले जाने वाली है, जबकि अन्तिम तीन प्रशस्त अध्यवसाय की कारण होने से सुगति मे ले जाने वाली है।[1]

दशम परिणामाधिकार

१२४२ कण्हलेस्सा ण भते ! कतिविध परिणाम परिणमति ?

गोयमा ! तिविह वा नवविह वा सत्तावीसतिविह वा एक्कासीतिविह वा बेतेयालसतविहं वा बहुं वा बहुविह वा परिणाम परिणमति। एव जाव सुक्कलेस्सा।

[१२४२ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या कितने प्रकार के परिणाम मे परिणत होती है ?

[१२४२ उ] गौतम ! कृष्णलेश्या तीन प्रकार के, नौ प्रकार के, सत्ताईस प्रकार के, इक्यासी प्रकार के या दो सौ तेतालीस प्रकार के अथवा बहुत-से या बहुत प्रकार के परिणाम मे परिणत होती है। कृष्णलेश्या के परिणामो के कथन की तरह नीललेश्या से लेकर शुक्ललेश्या तक के परिणामो का भी कथन करना चाहिए।

विवेचन - दसवां परिणामाधिकार—प्रस्तुत सूत्र मे कृष्णादि छहो लेश्याओ के विभिन्न प्रकार के परिणामो से परिणत होने की प्ररूपणा की गई है।

परिणामो के प्रकार— (१) **तीन**—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट परिणाम। (२) **नौ**—इन तीनो मे से प्रत्येक के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेद करने से नौ प्रकार का परिणाम होता है। (३) **सत्ताईस**—इन्ही नौ मे प्रत्येक के पुन तीन-तीन भेद करने पर २७ भेद हो जाते है। (४) **इक्यासी**—इन्ही २७ भेदो के फिर वे ही जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट भेद करने पर इक्यासी प्रकार हो जाते

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३६७

है। (५) दो सौ तेतालीस भेद—उनके पुन: तीन-तीन भेद करने पर २४३ भेद होते हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर भेद-प्रभेद किये जाएँ तो बहुत और बहुत प्रकार के परिणमन कृष्णलेश्या के होते हैं। ऐसे ही परिणामों के प्रकार शुक्ललेश्या तक समझ लेने चाहिए।[1]

ग्यारहवें प्रदेशाधिकार से चौदहवें स्थानाधिकार तक की प्ररूपणा

१२४३. कण्हलेस्सा णं भंते ! कतिपदेसिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंतपदेसिणा पण्णत्ता। एवं जाव सुक्कलेस्सा।

[१२४३ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या कितने प्रदेश वाली कही है ?

[१२४३ उ] गौतम ! (कृष्णलेश्या) अनन्तप्रदेशो वाली है (क्योंकि कृष्णलेश्यायोग्य परमाणु अनन्तानन्त संख्या वाले है)। इसी प्रकार (नीललेश्या से) यावत् शुक्ललेश्या तक (प्रदेशो का कथन करना चाहिए।)

१२४४. कण्हलेस्सा ण भंते ! कइपएसोगाढा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जपएसोगाढा पण्णत्ता। एवं जाव सुक्कलेस्सा।

[१२४४ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या आकाश के कितने प्रदेशो मे अवगाढ़ है ?

[१२४४ उ] गौतम ! (कृष्णलेश्या) असंख्यात आकाश प्रदेशो मे अवगाढ है। इसी प्रकार शुक्ललेश्या तक असंख्यात प्रदेशावगाढ समझनी चाहिए।

१२४५ कण्हलेस्साए णं भंते ! केवतियाओ वग्गणाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अणंताओ वग्गणाओ पण्णत्ताओ। एव जाव सुक्कलेस्साए।

[१२४५ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या की कितनी वर्गणाएँ कही गई है ?

[१२४५ उ] गौतम ! (उनकी) अनन्त वर्गणाएँ कही गई है। इसी प्रकार यावत् शुक्ल-लेश्या तक की (वर्गणाओ का कथन करना चाहिए।)

१२४६. केवतिया ण भंते ! कण्हलेस्साठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा कण्हलेस्साठाणा पण्णत्ता। एव जाव सुक्कलेस्साए।

[१२४६ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या के स्थान (तर-तमरूप भेद) कितने कहे गये है ?

[१२४६ उ] गौतम ! कृष्णलेश्या के असंख्यात स्थान कहे गए है। इसी प्रकार शुक्ललेश्या तक (के स्थानो की प्ररूपणा करनी चाहिए।)

विवेचन—ग्यारहवें प्रदेशाधिकार से चौदहवें स्थानाधिकार तक की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रो में प्रदेश, प्रदेशावगाढ, वर्गणा और स्थान की प्ररूपणा की गई है।

कृष्णादि लेश्याएँ अनन्तप्रादेशिकी—कृष्णादि छहो लेश्याओ मे से प्रत्येक के योग्य परमाणु अनन्त-अनन्त होने से उन्हे अनन्तप्रादेशिकी कहा है।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३६८

कृष्णादि लेश्याएँ असंख्यात प्रदेशावगाढ - यहाँ प्रदेश का अर्थ आकाश प्रदेश है, क्योंकि अवगाहन आकाश के प्रदेशों में ही होता है। यद्यपि एक-एक लेश्या की वर्गणाएँ अनन्त-अनन्त हैं, तथापि उन सबका अवगाहन असख्यात आकाश प्रदेशो मे ही हो जाता है, क्योंकि सम्पूर्ण लोकाकाश के असख्यात ही प्रदेश हैं।

कृष्णादिलेश्याएँ अनन्त वर्गणायुक्त औदारिक शरीर आदि के योग्य परमाणुओ के समूह के समान कृष्णलेश्या के योग्य परमाणुओ के समूह को कृष्णलेश्या की वर्गणा कहा गया है। ये वर्गणाएँ वर्णादि के भेद से अनन्त होती है।[१]

कृष्णादि लेश्याओं के असंख्यात स्थान—लेश्यास्थान कहते है—प्रकर्ष-अपकर्षकृत अर्थात् अविशुद्धि और विशुद्धि की तरतमता मे होने वाले भेदो को। जब भावरूप कृष्णादि लेश्याओ का चिन्तन किया जाता है, तब एक-एक लेश्या के प्रकर्ष-अपकर्ष कृत स्वरूपभेदरूप स्थान, काल की अपेक्षा से असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालो के समयो के बराबर है। क्षेत्र की अपेक्षा से—असख्यात लोकाकाश प्रदेशो के बराबर स्थान अर्थात्— विकल्प हैं। कहा भी है—असख्यात उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो के जितने समय होते है, अथवा असख्यात लोको के जितने प्रदेश हो, उतने ही लेश्याओ के स्थान (विकल्प) है। किन्तु विशेषता यह है कि कृष्णादि तीन अशुभ भावलेश्याओ के स्थान सक्लेशरूप होते हैं और तेजोलेश्यादि तीन शुभ भावलेश्याओं के स्थान विशुद्ध होते है।

इन भावलेश्याओ के कारणभूत द्रव्यसमूह भी स्थान कहलाते है। यहाँ उन्ही को ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि इस उद्देशक मे कृष्णादिलेश्याद्रव्यो का ही प्ररूपण किया गया है। वे स्थान प्रत्येक लेश्या के असख्यात होते है। तथाविध एक ही परिणाम के कारणभूत अनन्त द्रव्य भी एक ही प्रकार के अध्यवसाय के हेतु होने से स्थूल रूप से एक ही कहलाते है। उनमे से प्रत्येक के दो भेद है - जघन्य और उत्कृष्ट। जो जघन्य लेश्यास्थानरूप परिणाम के कारण हो, वे जघन्य और उत्कृष्ट लेश्यास्थानरूप परिणाम के कारण हो, वे उत्कृष्ट कहलाते है। जो जघन्य स्थानो के समीपवर्ती मध्यम स्थान है, उनका समावेश जघन्य मे और जो उत्कृष्टस्थानो के निकटवर्ती है, उनका अन्तर्भाव उत्कृष्ट मे हो जाता है। ये एक-एक स्थान, अपने एक ही मूल स्थान के अन्तर्गत होते हुए भी परिणाम-गुण-भेद के तारतम्य से असख्यात है। आत्मा मे जघन्य एक गुण अधिक, दो गुण अधिक लेश्याद्रव्यरूप उपाधि के कारण असख्य लेश्या-परिणामविशेष होते है। व्यवहारदृष्टि से वे सभी अल्पगुण वाले होने से जघन्य कहलाते है। उनके कारणभूत द्रव्यो के स्थान भी जघन्य कहलाते हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थान भी असख्यात समझ लेने चाहिए।[२]

पन्द्रहवाँ : अल्पबहुत्वाधिकार

१२४७. एतेसि णं भंते ! कण्हलेस्साठाणाणं जाव सुक्कलेस्साठाणाण य जहण्णगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए, जहण्णगा णीललेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहण्णगा कण्हलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहण्णगा तेउलेस्स-

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३६८

२ वही, मलय वृत्ति, पत्रांक ३६९

ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहण्णगा पम्हलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहण्णगा सुक्कलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा। पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्साठाणा पएसट्ठयाए, जहण्णगा णीललेस्सठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहण्णगा कण्हलेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहण्णगा तेउलेस्सठाणा पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहण्णगा पम्हलेस्सठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहण्णगा सुक्कलेस्साठाणा पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, दव्वट्ठपदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए, जहण्णगा णीललेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं कण्हलेस्सट्ठाणा तेउलेस्सट्ठाणा पम्हलेस्सट्ठाणा, जहण्णगा सुक्कलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहण्णएहिंतो सुक्कलेस्सट्ठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा पदेसट्ठयाए अणंतगुणा, जहण्णगा णीललेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं जाव सुक्कलेस्सट्ठाणा।

[१२४७ प्र] भगवन्! इन कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या के जघन्य स्थानो मे से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से और द्रव्य तथा प्रदेशो की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

[१२४७ उ] गौतम! द्रव्य की अपेक्षा से, सबसे थोडे जघन्य कापोतलेश्यास्थान हैं, उनसे नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, उनसे कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, उनसे तेजोलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, उनसे पद्मलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं, उनसे शुक्ललेश्या के जघन्यस्थान द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे है।

प्रदेशो की अपेक्षा से—सबसे थोडे कापोतलेश्या के जघन्य स्थान है, उनसे नीललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, उनसे कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, (उनसे) तेजोलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, उनसे पद्मलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, उनसे शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है।

द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से सबसे कम कापोतलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से है, उनसे नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं, उनसे जघन्य कृष्णलेश्यास्थान, तेजोलेश्यास्थान, पद्मलेश्या तथा इसी प्रकार शुक्ललेश्यास्थान द्रव्य की अपेक्षा से (क्रमश) असख्यातगुणे है। द्रव्य की अपेक्षा से शुक्ललेश्या के जघन्य स्थानो से, कापोतश्लेया के जघन्य स्थान प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणे है, उनसे नीललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, इसी प्रकार कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या एवं शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशो की अपेक्षा से उत्तरोत्तर असख्यातगुणे है।

१२४८. एतेसि ण भंते! कण्हलेस्सट्ठाणाण जाव सुक्कलेस्सट्ठाणाण य उक्कोसगाण दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४?

गोयमा! सव्वत्थोवा उक्कोसगा काउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए, उक्कोसगा णीललेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं जहेव जहण्णगा तहेव उक्कोसगा वि, णवरं उक्कोस त्ति अभिलावो।

[१२४८ प्र.] भगवन् ! कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट स्थानो (से लेकर) यावत् शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट स्थानों मे द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[१२४८ उ.] गौतम ! सबसे थोडे कापोतलेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा से है। (उनसे) नीललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे है। इसी प्रकार जघन्यस्थानो के अल्पबहुत्व की तरह उत्कृष्ट स्थानो का भी अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि 'जघन्य' शब्द के स्थान मे (यहाँ) 'उत्कृष्ट' शब्द कहना चाहिए।

१२४९. एतेसि णं भंते ! कण्हलेस्सट्ठाणाणं जाव सुक्कलेस्सट्ठाणाण य जहण्णुक्कोसगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए, जहण्णया णीललेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा, एवं कण्हलेस्सट्ठाणा तेउलेस्सट्ठाणा पम्हलेस्सट्ठाणा, जहण्णगा सुक्कलेसट्ठाणा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा। जहण्णएहिंतो सुक्कलेस्सट्ठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए उक्कोसा काउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा, उक्कोसा नीललेसट्ठाणा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा, एवं कण्हलेसट्ठाणा तेउलेसट्ठाणा पम्हलेसट्ठाणा, उक्कोसा सुक्कलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा। पदेसट्ठयाए— सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए, जहण्णगा णीललेसट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं जहेव दव्वट्ठयाए तहेव पएसट्ठयाए वि भाणियव्वं, णवर पएसट्ठयाए त्ति अभिलावविसेसो। दव्वट्ठपएसट्ठयाए- सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए, जहण्णगा णीललेसट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं कण्हलेसट्ठाणा तेउलेसट्ठाणा पम्हलेसट्ठाणा, जहण्णया सुक्कलेसट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा। जहण्णएहिंतो सुक्कलेसट्ठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए उक्कोसा काउलेसट्ठाणा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा, उक्कोसा णीललेसट्ठाणाए दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा, एव कण्हलेसट्ठाणा तेउलेसट्ठाणा पम्हलेसट्ठाणा, उक्कोसगा सुक्कलेसट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा। उक्कोसएहिंतो सुक्कलेसट्ठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए जहण्णगा काउलेसट्ठाणा पदेसट्ठयाए अणतगुणा, जहण्णगा णीललेसट्ठाणा पएसट्ठयाए असखेज्जगुणा, एवं कण्हलेसट्ठाणा तेउलेसट्ठाणा पम्हलेसट्ठाणा, जहण्णगा सुक्कलेसट्ठाणा असखेज्जगुणा, जहण्णएहिंतो सुक्कलेसट्ठाणेहिंतो पदेसट्ठयाए उक्कोसा काउलेसट्ठाणा पदेसट्ठयाए असखेज्जगुणा, उक्कोसया णीललेसट्ठाणा पदेसट्ठयाए असखेज्जगुणा, एवं कण्हलेसट्ठाणा तेउलेसट्ठाणा पम्हलेसट्ठाणा, उक्कोसया सुक्कलेसट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

॥ पण्णवणाए भगवतीए लेस्सापदे चउत्थो उद्देसओ समत्तो ॥

[१२४९ प्र.] भगवन् ! इस कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या के जघन्य और उत्कृष्ट स्थानो मे द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशो (उभय) की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[१२४९ उ.] गौतम ! सबसे थोडे द्रव्य की अपेक्षा से कापोतलेश्या के जघन्य स्थान है, उनसे नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं, इसी प्रकार कृष्णलेश्या

तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से (उत्तरोत्तर) असख्यातगुणे हैं। द्रव्य की अपेक्षा से जघन्य शुक्ललेश्यास्थानो से उत्कृष्ट कापोतलेश्यास्थान असख्यातगुणे हैं, उनसे नीललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा मे असख्यातगुणे हैं, इसी प्रकार कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट स्थान (उत्तरोत्तर) द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं।

प्रदेशो की अपेक्षा से सबसे कम कापोतलेश्या के जघन्य स्थान हैं, उनसे नीललेश्या के जघन्य स्थान, प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, इसी प्रकार जैसे द्रव्य की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का कथन किया गया है, वैसे ही प्रदेशो की अपेक्षा से भी अल्पबहुत्व कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहाँ 'प्रदेशो की अपेक्षा से' ऐसा कथन करना चाहिए। द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से सबसे थोड़े कापोतलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से हैं, उनसे नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य को अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं, इसी प्रकार कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से (उत्तरोत्तर) असख्यातगुणे है। द्रव्य की अपेक्षा से जघन्य शुक्ललेश्या स्थानो से उत्कृष्ट कापोतलेश्या स्थान असख्यातगुणे हैं, उनसे नीललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, इसी प्रकार कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या एव शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा से (उत्तरोत्तर) असख्यातगुणे हैं। द्रव्य की अपेक्षा से उत्कृष्ट शुक्ललेश्यास्थानो से जघन्य कापोतलेश्यास्थान प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, उनसे जघन्य नीललेश्या प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, इसी प्रकार कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या एव शुक्ललेश्या के जघन्यस्थान प्रदेशो की अपेक्षा से (उत्तरोत्तर) असख्यातगुणे है। प्रदेश की अपेक्षा से जघन्य शुक्ललेश्यास्थानो से, उत्कृष्ट कापोतलेश्यास्थान प्रदेशो से असख्यातगुणे है, उनसे उत्कृष्ट नीललेश्यास्थान प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं, इसी प्रकार कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या एव शुक्ललेश्या के उत्कृष्टस्थान प्रदेशो की अपेक्षा से (उत्तरोत्तर) असख्यातगुणे है।

विवेचन—पन्द्रहवां अल्पबहुत्वाधिकार—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे छहो लेश्याओ के जघन्य और उत्कृष्ट स्थानो का द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से और द्रव्य-प्रदेशो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है।

निष्कर्ष जगन्य और उत्कृष्ट स्थानो मे द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से तथा द्रव्य एव प्रदेशो की अपेक्षा से सबसे कम कापोतलेश्या के स्थान है, उससे नील, कृष्ण, तेजो, पद्म एव शुक्ललेश्या के स्थान उत्तरोत्तर प्राय असख्यातगुणे है, क्वचित् प्रदेशो की अपेक्षा शुक्ललेश्यास्थानो से कापोतलेश्यास्थान अनन्तगुणे कहे गए हैं।[1]

॥ सत्तरहवाँ लेश्यापद : चतुर्थपद उद्देशक समाप्त ॥

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३७०

सत्तरसमं लेस्सापयं : पंचमो उद्देसओ

सत्तरहवाँ लेश्यापद : पंचम उद्देशक

लेश्याओं के छह प्रकार

१२५०. कति णं भंते लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! छल्लेसाओ पण्णत्ताओ । त जहा— कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

[१२५० प्र] भगवन् ! लेश्याएँ कितनी है ?

[१२५० उ] गौतम ! लेश्याएँ छह हैं—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या ।

लेश्याओ के परिणामभाव की प्ररूपणा

१२५१ से णूण भते ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

एत्तो आढत्तं जहा चउत्थुद्देसए तहा भाणियव्व जाव वेरुलियमणिदिट्ठंतो त्ति ।

[१२५१ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर उसी के स्वरूप मे, उसी के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के रूप मे पुन पुन परिणत हो जाती है ?

[१२५१ उ] यहाँ से प्रारम्भ करके यावत् वैडूर्यमणि के दृष्टान्त तक जैसे चतुर्थ उद्देशक मे कहा है, वैसे ही कहना चाहिए ।

१२५२ से णूणं भते ! कण्हलेस्सा णीललेस्स पप्प णो तारूवत्ताए णो तावण्णत्ताए णो तागधत्ताए णो तारसत्ताए णो ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

हता गोयमा ! कण्हलेस्सा णीललेस्स पप्प णो तारूवत्ताए णो तावण्णत्ताए णो तागंधत्ताए णो तारसत्ताए णो ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति ।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! आगारभावमाताए वा से सिया पलिभागभावमाताए वा से सिया कण्हलेस्सा णं सा, णो खलु सा णीललेस्सा, तत्थ गता उस्सक्कति से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति कण्हलेस्सा णीललेस्स पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

[१२५२ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर नीललेश्या के स्वभाव-रूप मे तथा उसी के वर्णरूप मे, गन्धरूप मे, रसरूप मे एव स्पर्शरूप मे बार-बार परिणत नही होती है ?

[१२५२ उ] हाँ, गौतम ! कृष्णलेश्या को प्राप्त होकर न तो उनके स्वभावरूप मे, न

उसेके वर्णरूप मे, न इसके गन्धरूप मे, न उसके रसरूप मे और न उसके स्पर्शरूप में बार-बार परिणत होती है।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर, न तो उसके स्वरूप मे यावत् (न उसके वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शरूप मे) बार-बार परिणत होती है ?

[उ.] गौतम ! वह (कृष्णलेश्या) आकार भावमात्र से हो, अथवा प्रतिभाग भावमात्र (प्रतिविम्बमात्र) से (नीललेश्या) होती है। (वास्तव मे) यह कृष्णलेश्या ही (रहती) है, वह नीललेश्या नही हो जाती। वह (कृष्णलेश्या) वहाँ रही हुई उत्कर्ष को प्राप्त होती है, इसी हेतु से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर न तो उसके स्वरूप मे, यावत् (न ही उसके वर्ण-गंध-रस स्पर्शरूप मे) बारबार परिणत होती है।

१२५३. से णूणं भंते ! णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

हंता गोयमा ! णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

गोयमा ! आगारभावमाताए वा से सिया पलिभागभावमाताए वा सिया णीललेस्सा णं सा, णो खलु सा काउलेस्सा, तत्थ गता उस्सक्कति वा ओसक्कति वा, सेएणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति।

[१२५३ प्र.] भगवन् ! क्या नीललेश्या, कापोतलेश्या को प्राप्त होकर न तो उसके स्वरूप मे यावत् (न ही उसके वर्ण-गंध-रस-स्पर्शरूप मे) बारबार परिणत होती है ?

[१२५३ उ.] हाँ, गौतम ! नीललेश्या कापोतलेश्या को प्राप्त होकर न उसके स्वरूप मे यावत् (न ही उसके वर्ण-गंध-रस-स्पर्शरूप मे) बारबार परिणत होती है।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते है कि नीललेश्या, कापोतलेश्या को प्राप्त होकर न उसके स्वरूप मे, यावत् पुन पुन परिणत होती है ?

[उ.] गौतम ! वह (नीललेश्या) आकारभावमात्र से ही, अथवा प्रतिविम्बमात्र से (कापोतलेश्या) होती है, (वास्तव मे) वह नीललेश्या ही (रहती) है; वास्तव मे वह कापोतलेश्या नही हो जाती। वहाँ रही हुई (वह नीललेश्या) घटती-बढ़ती रहती है। इसी कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि नीललेश्या कापोतलेश्या को प्राप्त होकर न तो तद्रूप मे यावत् (न ही उसके वर्ण-गंध-रस-स्पर्शरूप मे) बारबार परिणत होती है।

१२५४. एवं काउलेस्सा तेउलेस्सं पप्प, तेउलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प, पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सं पप्प।

[१२५४] इसी प्रकार कापोतलेश्या तेजोलेश्या को प्राप्त होकर, तेजोलेश्या पद्मलेश्या को प्राप्त होकर और पद्मलेश्या शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर (उसी के स्वरूप मे, अर्थात्—वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शरूप में परिणत नही होती, ऐसा पूर्वयुक्तिपूर्वक समझना चाहिए।)

१२५५. से णूणं भंते ! सुक्कलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव परिणमति ?

हंता गोयमा ! सुक्कलेस्सा तं चेव ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सुक्कलेस्सा जाव णो परिणमति ?

गोयमा ! आगारभावमाताए वा जाव सुक्कलेस्सा णं सा, णो खलु सा पम्हलेस्सा, तत्थ गता ओसक्कति, सेएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव णो परिणमति ।

॥ लेस्सापदे पंचमो उद्देसओ समत्तो ॥

[१२५५ प्र.] भगवन् ! क्या शुक्ललेश्या, पद्मलेश्या को प्राप्त होकर उसके स्वरूप मे यावत् (उसके वर्ण-गंध-रस-स्पर्शरूप मे पुन पुन) परिणत नही होती ?

[१२१५ उ] हाँ गौतम ! शुक्ललेश्या पद्मलेश्या को पा कर उसके स्वरूप मे परिणत नही होती, इत्यादि सब वही (पूर्ववत् कहना चाहिए ।)

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि शुक्ललेश्या (पद्मलेश्या को प्राप्त होकर) यावत् (उसके स्वरूप मे तथा उसके वर्ण-गन्ध-रस स्पर्शरूप मे) परिणत नही होती ?

[उ] गौतम ! आकारभावमात्र से अथवा प्रतिबिम्बमात्र से यावत् (वह शुक्ललेश्या पद्मलेश्या-सी प्रतीत होती है), वह (वास्तव मे) शुक्ललेश्या ही है, निश्चय ही वह पद्मलेश्या नही होती । शुक्ललेश्या वहाँ (स्व-स्वरूप मे) रहती हुई अपकर्ष (हीनभाव) को प्राप्त होती है। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि यावत् (शुक्ललेश्या पद्मलेश्या को प्राप्त होकर उसके स्वरूप मे) परिणत नही होती ।

विवेचन—लेश्याओ के परिणामभाव की प्ररूपणा—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू १२५१ से १२५५ तक) मे एक लेश्या का दूसरी लेश्या को प्राप्त कर उसके स्वरूप मे परिणत होने का निषेध किया गया है ।

पूर्वापर विरोधी कथन कैसे और क्या समाधान ?—यहाँ आशका होती है कि पूर्व सूत्रो (सू १२२० से १२२५ चतुर्थ उद्देशक, परिणामाधिकार) मे कृष्णादि लेश्याओ को, नीलादि लेश्याओ के स्वरूप मे तथा उनके वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शरूप मे परिणत होने का विधान किया गया है, परन्तु यहाँ उसके तद्रूप-परिणमन का निषेध किया गया है । ये दोनो कथन पूर्वापर विरोधी है । इसका क्या समाधान ? वृत्तिकार इसका समाधान करते हुए कहते है कि पहले परिणमन का जो विधान किया गया है, वह तिर्यंचो और मनुष्यो की अपेक्षा से है और इन सूत्रो मे परिणमन का निषेध किया गया है, वह देवो और नारको की अपेक्षा से है । इस प्रकार दोनो कथन विभिन्न अपेक्षाओ से होने के कारण पूर्वापरविरोधी नही हैं। देव और नारक अपने पूर्वभवगत अन्तिम अन्तर्मुहूर्त से लेकर आगामी भव के प्रथम अन्तर्मुहूर्त तक उसी लेश्या मे अवस्थित होते है । अर्थात् उनकी जो लेश्या पूर्वभव के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में थी, वही वर्तमान देवभव या नारकभव मे भी कायम रहती है और आगामी भव के प्रथम अन्तर्मुहूर्त मे भी रहती है । इस कारण देवो और नारको के कृष्णलेश्यादि के द्रव्यो का परस्पर सम्पर्क होने पर भी वे एक-दूसरे को अपने स्वरूप मे परिणत नही करते ।

लेश्याओं का परस्पर सम्पर्क होने पर भी एक दूसरे के रूप में परिणत क्यों नहीं ? इस प्रश्न का समाधान मूल मे किया गया है कि कृष्णलेश्या आकार भाव मात्र से हो अथवा प्रतिबिम्बमात्र से ही नीललेश्या होती है, वास्तव मे वह नीललेश्या नही बन जाती। आकारभाव का अर्थ है—छायामात्र या सिर्फ झलक। आशय यह है कि कृष्णलेश्या के द्रव्यो पर नीललेश्या के द्रव्यो की छाया पडती है, इस कारण वह नीललेश्या-सी प्रतीत होती है। अथवा जैसे दर्पण आदि पर प्रतिबिम्ब पड़ने पर दर्पणादि उस वस्तु-से प्रतीत होने लगते है। उसी प्रकार कृष्णलेश्या के साथ नीललेश्या का सन्निधान (निकटता) होने पर कृष्णलेश्या पर नीललेश्या के द्रव्यो का प्रतिबिम्ब पडता है, तब कृष्णलेश्याद्रव्य नीललेश्याद्रव्यो के रूप मे प्रतिबिम्बित हो जाते है, किन्तु उनमे परिणम्य-परिणामकभाव घटित नही होता। जैसे दर्पण अपने आप मे दर्पण हो रहता है, उसमे प्रतिबिम्बित होने वाली वस्तु नही बन जाता। इसी प्रकार कृष्णलेश्या पर नीललेश्या का प्रतिबिम्ब पडने पर वह नीललेश्या-सी प्रतीत होती है, किन्तु वास्तव मे वह नीललेश्या मे परिणत नही होती, वह कृष्णलेश्या ही बनी रहती है। यो प्रतिबिम्ब या छाया के अभिप्राय से मूल मे कहा परिणमन उसमे नही होता। इसी अभिप्राय से मूल मे कहा गया है वह वस्तुत कृष्णलेश्या ही है, नीललेश्या नही, क्योकि उसने अपने स्वरूप का परित्याग नही किया है। जैसे दर्पण आदि जपाकुसुम आदि औपाधिक द्रव्यो के सन्निधान से उनके प्रतिबिम्बमात्र को धारण करत हुए दर्पण आदि हो बने रहते है तथा जपाकुसुमादि भी दर्पण नही बन जाते। इसी प्रकार कृष्णलेश्या नीललश्या नही बन जाती, अपितु कृष्णलेश्या से नीललेश्या विशुद्ध होने के कारण कृष्णलश्या अपने स्वरूप मे स्थित रहती हुई नीललेश्या के आकारभावमात्र या प्रतिबिम्बमात्र को धारण करती हुई किञ्चित् विशुद्ध हो जाती है। इसी अभिप्राय से यहाँ कहा गया है—**'तत्थ गता ओस्सक्कति'**—उस रूप मे रहती हुई कृष्णलेश्या (नोललेश्या के सन्निधान से) उत्कर्ष को प्राप्त होती है। किन्तु शुक्ललेश्या से पद्मलेश्या हीनपरिणाम वाली होने से पद्मलेश्या के सन्निधान से उसके आकारभाव या प्रतिबिम्बमात्र को धारण करके कुछ अविशुद्ध हो जाती है-- अपकर्ष को प्राप्त हो जाती है।[1]

अन्य लेश्याओं के सम्बन्ध में अतिदेश यद्यपि मूलपाठ मे अन्य लेश्याओ सम्बन्धी वक्तव्यता नही दी है, तथापि मूल टीकाकार ने उनके सम्बन्ध मे व्याख्या की है। इसलिए शुक्ललेश्या के साथ जिस प्रकार पद्मलेश्या की वक्तव्यता है उसी प्रकार पद्मलेश्या के साथ तेजोलेश्या, कापोतलेश्या, नीललेश्या और कृष्णलेश्या सम्बन्धी वक्तव्यता तेजोलेश्या क साथ कापोत, नील और कृष्णलेश्या-विषयक वक्तव्यता, कापोतलेश्या के साथ नोल और कृष्णलेश्या-विषयक वक्तव्यता तथा नीललेश्या को लेकर कृष्णलेश्या सम्बन्धी वक्तव्यता घटित कर लेनी चाहिए।[2]

॥ सत्तरहवाँ लेश्यापद : पंचम उद्देशक समाप्त ॥

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३७१-३७२

२ वही मलय वृत्ति, पत्रांक ३७२

सत्तरसमं लेस्सापयं : छट्ठो उद्देसओ

सत्तरहवाँ लेश्यापद : छठा उद्देशक

लेश्या के छह प्रकार

१२५६. कति ण भंते ! लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! छल्लेसाओ पण्णत्ताओ । तं जहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

[१२५६ प्र] भगवन् ! लेश्याएँ कितनी हैं ?

[१२५६ उ] गौतम ! छह लेश्याएँ कही गई है—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या ।

मनुष्यों में लेश्याओं की प्ररूपणा

१२५७. [१] मणूसाणं भंते ! कति लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! छल्लेसाओ पण्णत्ताओ । तं जहा कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

[१२५७-१ प्र] भगवन् ! मनुष्यो मे कितनी लेश्याएँ होती है ?

[१२५७-१ उ] गौतम ! छह लेश्याएँ होती है, वे इस प्रकार—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या ।

[२] मणूसीण पुच्छा ।

गोयमा ! छल्लेसाओ पण्णत्ताओ । त जहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

[१२५७-२ प्र] भगवन् ! मनुष्यस्त्रियो मे कितनी लेश्याएँ होती है ?

[१२५७-२ उ] गौतम ! (उनमे भी) छह लेश्याएँ हैं - कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या ।

[३] कम्मभूमयमणूसाणं भते ! कति लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! छ । त जहा कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

[१२५७-३ प्र.] भगवन् ! कर्मभूमिक मनुष्यो मे कितनी लेश्याएँ है ?

[१२५७-३ उ] गौतम ! (उनमे) छह (लेश्याएँ होती हैं।) वे इस प्रकार—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या ।

[४] एवं कम्मभूमयमणूसीण वि ।

[१२५७-४] इसी प्रकार कर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियो की भी लेश्याविषयक प्ररूपणा करनी चाहिए ।

[५] भरहेरवयमणूसाणं भंते ! कति लेस्साओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! छ । तं जहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

[१२५७-५ प्र.] भगवन् ! भरतक्षेत्र और ऐरवतक्षेत्र के मनुष्यो मे कितनी लेश्याएँ पाई जाती है ?

[१२५७-५ उ.] गौतम ! (उनमे भी) छह (लेश्याएँ होती है) यथा—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या ।

[६] एव मणुस्सीण वि ।

[१२५७-६] इसी प्रकार (इन क्षेत्रो की) मनुष्यस्त्रियो मे भी (छह लेश्याओ की प्ररूपणा करनी चाहिए ।)

[७] पुव्वविदेह-अवरविदेहकम्मभूमयमणूसाणं भते ! कति लेस्साओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! छ लेस्साओ । तं जहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

[१२५७-७ प्र.] भगवन् ! पूर्वविदेह और अपरविदेह के कर्मभूमिज मनुष्यो मे कितनी लेश्याएँ होती हैं ?

[१२५७-७ उ.] गौतम ! (इन दोनो क्षेत्रो के मनुष्यो मे) छह लेश्याएँ कही गई हैं—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या ।

[८] एवं मणूसीण वि ।

[१२५७-८] इसी प्रकार (इन दोनो क्षेत्रो की) मनुष्यस्त्रियो मे भी (छह लेश्याएँ समझनी चाहिए ।)

[९] अकम्मभूयमणूसाणं पुच्छा ?
गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ । तं जहा—कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा ।

[१२५७-९ प्र.] भगवन् ! अकर्मभूमिज मनुष्यो मे कितनी लेश्याएँ कही गई हैं ?

[१२५७-९ उ.] गौतम ! (उनमे) चार लेश्याएँ कही गई हैं । वे इस प्रकार हैं—कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या ।

[१०] एवं अकम्मभूमयमणूसीण वि ।

[१२५७-१०] इसी प्रकार अकर्मभूमिज मनुष्यस्त्रियो मे भी (चार लेश्याएँ कहनी चाहिए ।)

[११] एवं अंतरदीवयमणूसाणं मणूसीण वि ।

[१२५७-११] इसी प्रकार अन्तरद्वीपज मनुष्यो मे और मनुष्यस्त्रियो मे भी (चार लेश्याएँ समझनी चाहिए ।)

[१२] हेमवय-एरण्णवयअकम्मभूमयमणूसाणं मणूसीण य कति लेस्साओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! चत्तारि । तं जहा—कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा ।

[१२५७-१२ प्र] भगवन् ! हैमवत और ऐरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्यो और मनुष्यस्त्रियो मे कितनी लेश्याएँ होती है ?

[१२५७-१२ उ] गौतम ! (इन दोनो क्षेत्रो के पुरुषो और स्त्रियो मे) चार लेश्याएँ होती है । वे इस प्रकार– कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या ।

[१३] हरिवास-रम्मयअकम्मभूमयमणुस्साण मणूसीण य पुच्छा ?
गोयमा ! चत्तारि । त जहा - कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा ।

[१२५७-१३ प्र] भगवन् ! हरिवर्ष और रम्यक्वष के अकर्मभूमिज मनुष्यो और मनुष्य-स्त्रियो मे कितनी लेश्याएँ होती है ?

[१२५७-१३ उ] गौतम ! (इन दोनो क्षेत्रो के अकर्मभूमिज पुरुषो और स्त्रियो मे) चार लेश्याएँ होती है । वे इस प्रकार – कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या ।

[१४] देवकुरूत्तरकुरुअकम्मभूमयमणुस्साण एव चेव ।

[१२५७-१४] देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के अकर्मभूमिज मनुष्यो मे भी इसी प्रकार (चार लेश्याएँ जाननी चाहिए ।)

[१५] एतेसिं चेव मणूसीणं एव चेव ।

[१२५७-१५] इन (पूर्वोक्त दोनो क्षेत्रो) की मनुष्यस्त्रियो मे भी इसी प्रकार (चार लेश्याएँ समझनी चाहिए ।)

[१६] धायइस पुरिमद्धे एव चेव, पच्छिममद्धे वि । एव पुक्खरद्धे वि भाणियव्व ।[1]

[१२५७ १६] धातकीषण्ड के पूर्वार्द्ध मे तथा पश्चिमार्द्ध मे भी मनुष्यो और मनुष्यस्त्रियो मे इसी प्रकार (चार लेश्याएँ) कहनी चाहिए । इसी प्रकार पुष्करार्द्ध द्वीप मे भी कहना चाहिए ।

विवेचन भिन्न भिन्न क्षेत्रीय मनुष्यो मे लेश्याओ की प्ररूपणा प्रस्तुत सूत्र (१२५७।१६ तक) मे सामान्य मनुष्यो से लेकर सभी क्षेत्रो के सभी प्रकार के कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज मनुष्यो तथा वहाँ की स्त्रियो में लेश्याओ की प्ररूपणा की गई है ।

निष्कर्ष प्रत्येक क्षेत्र के कर्मभूमिज मनुष्यो और स्त्रियो मे छह लेश्याएँ और अकर्मभूमिक मनुष्यो और स्त्रियो मे चार लेश्याएँ पाई जाती है ।[2] अकर्मभूमिक नर-नारियो मे पद्म और शुक्ललेश्या नही होती ।

---

१ ग्रन्थाग्रम् ५५००

२ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ ३०१-३०२

लेश्या को लेकर गर्भोत्पत्ति सम्बन्धी प्ररूपणा

१२५८. [१] कण्हलेस्से ण भंते ! मणूसे कण्हलेस्स गब्भं जणेज्जा ?

हंता गोयमा ! जणेज्जा ।

[१२५८-१ प्र.] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाला मनुष्य कृष्णलेश्यावान् गर्भ को उत्पन्न करता है ?

[१२५८-१ उ] हाँ, गौतम ! वह उत्पन्न करता है ।

[२] कण्हल्लेसे णं भंते मणूसे णीललेस्स गब्भं जणेज्जा ?

हंता गोयमा ! जणेज्जा ।

[१२५८-२ प्र.] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाला मनुष्य नीललेश्यावान् गर्भ को उत्पन्न करता है ?

[१२५८-२ उ] हाँ, गौतम ! वह उत्पन्न करता है ।

[३] एवं काउलेस्स तेउलेस्स पम्हलेस्सं सुक्कलेस्स छप्पिमालावगा भाणियव्वा ।

[१२५८-३] इसी प्रकार (कृष्णलेश्या वाले पुरुष से) कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले गर्भ की उत्पत्ति के विषय मे आलापक कहने चाहिए ।

[४] एवं णीललेसेणं काउलेसेण तेउलेसेण वि पम्हलेसेण वि सुक्कलेसेण वि, एवं एते छत्तीस आलावगा ।

[१२५८-४] इसी प्रकार (कृष्णवाले पुरुष की तरह) नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले, तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले प्रत्येक मनुष्य से इस प्रकार पूर्वोक्त छहो लेश्या वाले गर्भ की उत्पत्तिसम्बन्धी छह-छह आलापक होने से सब छत्तीस आलापक हुए ।

[५] कण्हलेस्सा ण भंते ! इत्थिया कण्हलेस्स गब्भं जणेज्जा ?

हंता गोयमा ! जणेज्जा । एवं एते वि छत्तीसं आलावगा ।

[१२५८-५ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाली स्त्री कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करती है ?

[१२५८-५ उ] हाँ, गौतम ! उत्पन्न करती है । इसी प्रकार (पूर्ववत्) ये भी छत्तीस आलापक कहने चाहिए ।

[६] कण्हलेस्से णं भंते ! मणूसे कण्हलेसाए इत्थियाए कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा ?

हंता गोयमा ! जणेज्जा । एव एते छत्तीसं आलावगा ।

[१२५८-६ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाला मनुष्य क्या कृष्णलेश्या वाली स्त्री से कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है ?

[१२५८-६ उ] हाँ, गौतम ! वह उत्पन्न करता है। इस प्रकार (पूर्ववत्) ये भी छत्तीस आलापक हुए।

[७] कम्मभूमयकण्हलेस्से णं भंते ! मणूस्से कण्हलेस्साए इत्थियाए कण्हलेस्सं गब्भ जणेज्जा ?

हता गोयमा ! जणेज्जा एवं एते वि छत्तीसं आलावगा।

[१२५८-७ प्र] भगवन् ! कर्मभूमिक कृष्णलेश्या वाला मनुष्य कृष्णलेश्या वाली स्त्री से कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है ?

[१२५८-७ उ] हाँ, गौतम ! वह उत्पन्न करता है। इस प्रकार (पूर्वोक्तानुसार) ये भी छत्तीस आलापक हुए।

[८] अकम्मभूमयकण्हलेसे णं भते ! मणूसे अकम्मभूमयकण्हलेस्साए इत्थियाए अकम्मभूमयकण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा ?

हता गोयमा ! जणेज्जा, णवर चउसु लेसासु सोलस आलावगा। एव अंतरदीवगा वि।

॥ छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥

॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तरसमं लेस्सापय समत्त ॥

[१२५८-८ प्र] भगवन् ! अकर्मभूमिक कृष्णलेश्या वाला मनुष्य अकर्मभूमिक कृष्णलेश्या वाली स्त्री से अकर्मभूमिक कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है ?

[१२५८-८ उ] हाँ, गौतम ! वह उत्पन्न करता है। विशेषता यह है कि (इनमे पाई जाने वाली) चार लेश्याओ से (सम्बन्धित) कुल १६ आलापक होते है। इसी प्रकार अन्तरद्वीपज (कृष्ण-लेश्यादि वाले मनुष्य से) भी अन्तरद्वीपज कृष्णलेश्यादि वाली स्त्री से अन्तरद्वीपज कृष्णलेश्यादि वाले गर्भ की उत्पत्ति-सम्बन्धी सोलह आलापक होते है।

विवेचन - लेश्या को लेकर गर्भोत्पत्तिसम्बन्धी प्ररूपणा —प्रस्तुत सूत्र (१२५८-८ तक) मे कृष्णादि छहो लेश्याओ वालो मे से प्रत्येक लेश्यावाले पुरुष से, प्रत्येक लेश्यावाली स्त्री से प्रत्येक लेश्यावाले गर्भ की उत्पत्ति का कथन किया गया है।

अपने से भिन्न लेश्यावाले गर्भ को कैसे उत्पन्न करता है ? —अपने से भिन्न लेश्यावाले गर्भ को उत्पन्न करने का कारण यह है कि उत्पन्न होने वाला जीव पूर्वजन्म मे लेश्या को ग्रहण करके उत्पन्न होता है। वे लेश्याद्रव्य किसी जीव के कोई और किसी के कोई अन्य होते है। इस कारण जनक या जननी या दोनो भले ही कृष्णलेश्या मे परिणत हो, जन्य जीव की लेश्या उससे भिन्न भी हो सकती है। इसी प्रकार अन्य लेश्याओ के विषय मे भी समझ लेना चाहिए।[1]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३७३

आलापक—इस कारण कृष्णलेश्या वाला मनुष्य अपनी लेश्या वाले गर्भ के अतिरिक्त अन्य पाचो लेश्याओ वाले गर्भ को उत्पन्न करता है। इस दृष्टि से कृष्णलेश्या से षट्लेश्यात्मक गर्भ के उत्पन्न होने से एतत्सम्बन्धी छह आलापक हुए तथा शेष नीलादि लेश्याओ के भी ६-६ आलापक होने से ३६ विकल्प हो गए। इसी तरह कृष्णादि छहो लेश्या वाली स्त्रियो मे से प्रत्येक लेश्या वाली स्त्री से प्रत्येक लेश्या वाले गर्भ की उत्पत्ति सम्बन्धी ३६ आलापक होते हैं। कृष्णादिलेश्या वाले पुरुष द्वारा कृष्णादिलेश्या वाली स्त्री से कृष्णादिलेश्या वाले गर्भ की उत्पत्ति सम्बन्धी भी ३६ आलापक है। फिर अकर्मभूमिक, अन्तरद्वीपज कृष्णादिलेश्या वाले पुरुष द्वारा तथा अकर्मभूमिक एव अन्तरद्वीपज कृष्णादि-लेश्या वाली स्त्री से इसी प्रकार की लेश्या वाले गर्भ का उत्पत्ति सम्बन्धी क्रमश· १६-१६ आलापक होते हैं।[1]

॥ सत्तरहवाँ लेश्यापद : छठा उद्देशक समाप्त ॥

॥ प्रज्ञापनासूत्र : सत्तरहवाँ लेश्यापद सम्पूर्ण ॥

---

१. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा. १, पृ. ३०२-३०३

अट्ठारसमं कायट्ठिइपयं

अठारहवाँ कायस्थितिपद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र का यह अठारहवाँ 'कायस्थितिपद' पद है।

- 'काय' का अर्थ यहाँ 'पर्याय' है। सामान्य रूप अथवा विशेषरूप पर्याय (काय) मे किसी जीव के लगातार - निरन्तर रहने को कायस्थिति कहते है। इस कायस्थितिपद मे चिन्तन प्रस्तुत किया गया है कि चौवीसदण्डकवर्ती जीव और अजीव अपनी-अपनी पर्याय मे लगातार कितने काल तक रहते हैं।

- चतुर्थ 'स्थितिपद' और इस 'कायस्थितिपद' मे यह अन्तर है कि स्थितिपद मे तो चौवीस-दण्डकवर्ती जीवो की भवस्थिति, अर्थात्--एक भव की अपेक्षा से आयुष्य का विचार है, जबकि इस पद मे यह विचार किया गया है कि एक जीव मर कर वारवार उसी भव मे जन्म लेता रहे तो, ऐसे सब भवो की परम्परा की कालमर्यादा अथवा उन सभी भवो के आयुष्य का कुल जोड कितना होगा ?[1]

- प्रस्तुत पद मे जीव, गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, सयत, उपयोग, आहार, भाषक, परीत, पर्याप्त, सूक्ष्म, सज्ञी, भवसिद्धिक, अस्तिकाय और चरम, इन २२ द्वारो के माध्यम से चौवीसदण्डकवर्ती समस्त जीवो की उस-उस काय मे रहने की कालावधि का विचार किया गया है।

- **प्रथम जीवद्वार**—जीव का अस्तित्व सर्वकाल मे है। इससे जीव का अविनाशित्व सिद्ध होता है। **द्वितीय गतिद्वार** मे चारो गतियो के जीवो के स्त्री-पुरुष रूप पर्याय की कालावस्थिति का विचार है। **तृतीय इन्द्रियद्वार** मे सेन्द्रिय निरिन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के जीवो की स्व-स्वपर्याय मे कालावस्थिति का विचार है। **चतुर्थ कायद्वार** मे तैजस-कार्मण काय या षट्काय वाले जीवो के स्व-स्वपर्याय मे निरन्तर रहने की कालावधि बताई है। **पंचम योगद्वार** मे मनोयोगी और वचनयोगी का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक का बताया है। काययोगी की कायस्थिति उत्कृष्ट वनस्पति की बताई है। **छठे वेदद्वार** मे सवेदक, अवेदक, स्त्री-पुरुष-नपुसकवेदी की कायस्थिति बताई है। **सप्तम कषायद्वार** मे सकषाय, अकषाय और

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा २ प्रस्तावना, पृ १०७ से ११० तक
(ख) जैनागम साहित्य मनन और मीमासा, पृ. २४७-२४८
(ग) प्रज्ञापना. मलय वृत्ति, पत्राक ३७४

क्रोधादिकषाययुक्त जीवो की कायस्थिति का विचार है। **सप्तम लेश्याद्वार** मे विविध लेश्या वाले जीवो को स्वपर्याय मे रहने को कालस्थिति बताई है। **अष्टम सम्यक्त्वद्वार** मे सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि वाले जीवो की पर्यायस्थिति का विचार है। इसके पश्चात् क्रमश: **ज्ञान, दर्शन, सयत, उपयोग आहार** का काल बताया है। इसके पश्चात् **भाषक, परीत, पर्याप्त, सूक्ष्म, सज्ञो, भवसिद्धिक एव चरम** आदि द्वारो के माध्यम से तद्विशिष्ट जीव स्व-स्वपर्याय मे निरन्तर कितने काल रहते हैं? इसका चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। **इक्कीसवें अस्तिकाय द्वार** मे धर्मास्तिकाय आदि अजीवो की कायस्थिति का विचार किया गया है।[1]

- जन्म-मरण की परम्परा से मुक्ति चाहने वाले मुमुक्षु जीवो के लिए कायस्थिति का यह चिन्तन अतीव उपयोगी है।

---

१ पण्णवणासुत्त (मू पा.) भा. १, पृ ३०४ से ३१७ तक

अट्ठारसमं कायट्ठिइपयं

अठारहवाँ कायस्थितिपद

कायस्थितिपद के अन्तर्गत बाईस द्वार

१२५९. जीव १ गतिंदिय २-३ काए ४ जोगे ५ वेदे ६ कसाय ७ लेस्सा ८ य ।
सम्मत्त ९ णाण १० दंसण ११ संजय १२ उवओग १३ आहारे १४ ॥२११॥

भासग १५ परित्त १६ पज्जत्त १७ सुहुम १८ सण्णी १९ भवऽत्थि २०-२१ चरिमे २२ य ।
एतेसिं तु पदाणं कायठिई होति णायव्वा ॥२१२॥

[१२५९.] **अधिकारसंग्रहणीगाथाओं का अर्थ**] (१) जीव, (२) गति, (३) इन्द्रिय, (४) काय, (५) योग, (६) वेद, (७) कषाय, (८) लेश्या, (९) सम्यक्त्व, (१०) ज्ञान, (११) दर्शन, (१२) संयत, (१३) उपयोग, (१४) आहार, (१५) भाषक, (१६) परीत, (१७) पर्याप्त, (१८) सूक्ष्म, (१९) संज्ञी, (२०) भव (सिद्धिक), (२१) अस्ति (काय) और (२२) चरम, इन पदों की कायस्थिति जाननी चाहिए ॥२११-२१२॥

विवेचन—कायस्थितिपद के अन्तर्गत बाईस द्वार प्रस्तुत सूत्र में जीवादि बाईस पदों को लेकर कायस्थिति का वर्णन किया जाएगा, इसका दो गाथाओं द्वारा निर्देश किया गया है।

कायस्थिति की परिभाषा—कायपद का अर्थ है—जीव-पर्याय। यहाँ कायपद से पर्याय का ग्रहण किया गया है। पर्याय के दो प्रकार हैं—सामान्यरूप और विशेषरूप। जीव का विशेषणरहित जीवत्वरूप सामान्यपर्याय है तथा नारकत्वादिरूप विशेषपर्याय है। इस प्रकार के पर्यायरूप काय की स्थिति—अवस्थान कायस्थिति है। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार सामान्यरूप अथवा विशेषरूप पर्याय से किसी जीव का अविच्छिन्नरूप से (निरन्तर) होना कायस्थिति है।[1]

प्रथम-द्वितीय : जीवद्वार-गतिद्वार

१२६० जीवे णं भंते ! जीवे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सव्वद्धं । दारं १ ॥

[१२६० प्र] भगवन् ! जीव कितने काल तक जीव (जीवपर्याय में) रहता है ?

[१२६० उ] गौतम ! (वह) सदा काल रहता है। प्रथम द्वार ॥१॥

१२६१ णेरइए णं भंते ! नेरइए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

[१२६१ प्र] भगवन् ! नारक नारकत्वरूप (नारकपर्याय) में कितने काल तक रहता है ?

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३७४

[१२६१ उ] गौतम ! (नारक) जघन्य दस हजार वर्ष तक, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम तक (नारकपर्याय से युक्त रहता है ।)

१२६२. [१] तिरिक्खजोणिए णं भंते ! तिरिक्खजोणिए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण अणंतं कालं, अणंताओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालतो, खेत्तओ अणंता लोगा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जतिभागो ।

[१२६२-१ प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक कितने काल तक तिर्यग्योनिकत्व रूप मे रहता है ?

[१२६२-१ उ] गौतम ! (तिर्यञ्च) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक तिर्यञ्चरूप मे रहता है। कालत अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल तक, क्षेत्रत. अनन्त लोक, असख्यात पुद्गलपरावर्त्तनो तक (तिर्यञ्च तिर्यञ्च, ही बना रहता है।) वे पुद्गलपरावर्त्तन आवलिका के असखयातवे भाग (जितने समझने चाहिए ।)

[२] तिरिक्खजोणिणी णं भंते ! तिरिक्खजोणिणीत्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं ।

[१२६२-२ प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चनी कितने काल तक तिर्यञ्चनी रूप मे रहती है ?

[१२६२-२ उ] गौतम ! (वह) जघन्यत· अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्टत. पृथक्त्वकोटि पूर्व अधिक तीन पल्योपम तक (तिर्यञ्चनी रहती है ।)

१२६३ [१] एवं मणूसे वि ।

[१२६३-१] मनुष्य की कायस्थिति के विषय मे भी (इसी प्रकार समझना चाहिए ।)

[२] मणूसी वि एवं चेव ।

[१२६३-२] इसी प्रकार मानुषी (नारी) की कायस्थिति के विषय मे (समझना चाहिए ।)

१२६४. [१] देवे णं भंते ! देवे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहेव णेरइए (सु. १२६१) ।

[१२६४-१ प्र.] भगवन् ! देव कितने काल तक देव बना रहता है ?

[१२६४-१ उ] गौतम ! जैसा (सू. १२६१ मे) नारक के विषय मे कहा, वैसा ही देव (की कायस्थिति) के विषय मे (कहना चाहिए ।)

[२] देवी ण भंते ! देवीति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं ।

[१२६४-२ प्र.] भगवन् ! देवी, देवी के पर्याय मे कितने काल तक रहती है ?

[१२६४-२ उ.] गौतम ! जघन्यत. दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्टत पचपन पल्योपम तक (देवीरूप मे कायम रहती है ।)

१२६५. सिद्धे णं भंते ! सिद्धे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए।

[१२६५ प्र] भगवन् ! सिद्ध जीव कितने काल तक सिद्धपर्याय से युक्त रहता है ?

[१२६५ उ] गौतम ! सिद्धजीव सादि-अनन्त होता है। (अर्थात्—सिद्धपर्याय सादि है, किन्तु अन्तरहित है।)

१२६६. [१] णेरइय-अपज्जत्तए णं भंते ! णेरइय-अपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[१२६६-१ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त नारक जीव अपर्याप्तक नारकपर्याय मे कितने काल तक रहता है ?

[१२६६-१ उ.] गौतम ! अपर्याप्तक नारक जीव अपर्याप्तक नारकपर्याय मे जघन्य अन्तमुहूर्त तक और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

[२] एवं जाव देवी अपज्जत्तिया।

[१२६६-२] इसी प्रकार (तिर्यञ्चयोनिक-तिर्यञ्चनी, मनुष्य-मानुषी, देव और) यावत् देवी की अपर्याप्त अवस्था अन्तर्मुहूर्त तक ही रहती है।

१२६७. णेरइयपज्जत्तए णं भंते ! णेरइयपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहणेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[१२६७ प्र] भगवन् ! पर्याप्त नारक कितने काल तक पर्याप्त नारकपर्याय मे रहता है ?

[१२६७ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहुर्त कम तेतीस सागरोपम तक (पर्याप्त नारकरूप मे बना रहता है।)

१२६८ [१] तिरिक्खजोणियपज्जत्तए णं भंते ! तिरिक्खजोणियपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[१२६८-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त तिर्यञ्चयोनिक कितने काल तक पर्याप्त तिर्यञ्चरूप मे रहता है ?

[१२६८-१ उ.] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम तक (पर्याप्त तिर्यञ्चरूप मे रहता है।)

[२] एव तिरिक्खजोणिणिपज्जत्तिया वि।

[१२६८-२] इसी प्रकार पर्याप्त तिर्यञ्चनी (तिर्यञ्च स्त्री) की कायस्थिति के विषय मे भी (समझना चाहिए।)

१२६९. मणूसे मणूसी वि एवं चेव ।

[१२६९] (पर्याप्त) मनुष्य (नर) और मानुषी (मनुष्यस्त्री) की कायस्थिति के विषय मे भी इसी प्रकार (समझना चाहिए।)

१२७० [१] देवपज्जत्तए जहा णेरइयपज्जत्तए (सु. १२६७) ।

[१२७०-१] पर्याप्त देव (की कायस्थिति) के विषय मे (सू १२६७ मे अंकित) पर्याप्त नैरयिक (की कायस्थिति) के समान (समझना चाहिए।)

[२] देविपज्जत्तिया णं भंते ! देविपज्जत्तिय त्ति कालओ केवचिरं होई ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं । दारं २ ॥

[१२७०-२ प्र] भगवन् ! पर्याप्त देवी, पर्याप्त देवी के रूप मे कितने काल तक रहती है ?

[१२७०-२ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पचपन पल्योपम तक पर्याप्त देवी-पर्याय मे रहती है। द्वितीय द्वार ॥२॥

विवेचन—प्रथम-द्वितीय जीवद्वार-गतिद्वार प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू १२६० से १२७०) मे जीवसामान्य की तथा नारकादि चार गति वाले विशिष्ट जीवो की कायस्थिति का निरूपण किया गया है।

जीव मे सदैव निरन्तर जीवनपर्याय क्यो और कैसे ? जीव सदा काल जीवनपर्याय से युक्त रहता है, क्योकि जीव वही कहलाता है, जो जीवनपर्याय से विशिष्ट हो। जीवन का अर्थ है—प्राण धारण करना। प्राण दो प्रकार के होते हैं द्रव्यप्राण और भावप्राण। द्रव्यप्राण दस है—पाच इन्द्रियाँ, तीन बल, उच्छ्वास-नि श्वास और आयु। भावप्राण—ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुख, ये ४ है। ससारी जीवो मे आयु कर्म का अनुभवरूप प्राणधारण सदैव रहता है। ससारियो की ऐसी कोई भी अवस्था नही है, जिसमे आयुकर्म का अनुभव न हो। सिद्ध जीव द्रव्यप्राणो से रहित होने पर भी ज्ञानादिरूप भावप्राणो के सद्भाव से सदैव जीवित रहता है। इस कारण ससारी अवस्था मे और मुक्तावस्था मे भी सर्वत्र जीवनपर्याय है, अतएव जीव मे जीवनपर्याय सर्वकालभावी है।

गति की अपेक्षा जीवो की कायस्थिति—नारक की कायस्थिति—जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम तक नारक नारकपर्याय से युक्त रहता है। यही नारक की कायस्थिति है। क्योकि नारकभव का स्वभाव ही ऐसा है कि एक बार नरक से निकला हुआ जीव अगले ही भव मे फिर नरक मे उत्पन्न नही होता। इस कारण उनकी जो भवस्थिति का परिमाण है, वही उनकी कायस्थिति का परिमाण है।

तिर्यञ्च नर की कायस्थिति—इसकी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक को कायस्थिति इसलिए है कि जब कोई देव, मनुष्य या नारक तिर्यंचयोनिक नर के रूप मे उत्पन्न होता है और वहाँ अन्तर्मुहूर्त-पर्यन्त रह कर फिर देव, मनुष्य या नारक भव मे जन्म ले लेता है, उस अवस्था मे जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। यद्यपि तिर्यञ्च की एकभवसम्बन्धी

स्थिति तो अधिक से अधिक तीन पल्योपम की है, उससे अधिक नही, तथापि जो तिर्यञ्च तिर्यञ्च-भव को त्याग कर लगातार तिर्यञ्चभव मे ही उत्पन्न होते रहते है, बीच मे किसी अन्य भव मे उत्पन्न नही होते, वे अनन्तकाल तक तिर्यञ्च ही बने रहते है। उस अनन्तकाल का परिमाण यहाँ क्षेत्र और काल की दृष्टि से बताया गया है—काल की अपेक्षा से अनन्त उत्सर्पिणियाँ और अवसर्पिणियाँ व्यतीत हो जाती हैं, फिर भी तिर्यञ्चयोनिक तिर्यञ्चयोनिक ही बना रहता है। उस अनन्तकाल का यह परिमाण असख्यात पुद्गलपरावर्तन समझना चाहिए। आवलिका के असख्यातवे भाग मे जितने समय होते हैं, उतने असख्यात पुद्गलपरावर्त्त समझने चाहिए। तिर्यग्योनिक की यह कायस्थिति वनस्पतिकायिक की अपेक्षा से है, उससे भिन्न तिर्यञ्चो की अपेक्षा से नही, क्योकि वनस्पतिकायिक के सिवाय अन्य तिर्यचो की कायस्थिति इतनी नही होती।

तिर्यंचयोनिक स्त्री की कायस्थिति—इसकी कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक की और उत्कृष्ट पृथक्त्व करोड पूर्व अधिक तीन पल्योपम तक की है, क्योकि सज्ञीपचेन्द्रिय तिर्यंचो और मनुष्यो की कायस्थिति अधिक से अधिक आठ भवो की है। असख्यात वर्ष की आयु वाले जीव मृत्यु के पश्चात् अवश्य देवलोक मे उत्पन्न होते है, तिर्यचयोनि मे नही, अतएव सात भव करोड पूर्व की आयु वाले समझना चाहिए और आठवाँ अन्तिम भव देवकुरु आदि मे। इस तरह पृथक्त्व करोड पूर्व अधिक तीन पल्योपम समझना चाहिए।

देव देवियो की कायस्थिति—देवो और देवियो की कायस्थिति भवस्थिति के अनुसार ही समझनी चाहिए। देवियो की उत्कृष्ट कायस्थिति पचपन पल्योपम की है यह ऐशान देवियो की अपेक्षा से कही गयी है, अन्य देवियो की अपेक्षा से नही।

सिद्धजीव की कायस्थिति सादि-अनन्त सिद्ध जीव सादि-अनन्त होता है। सिद्धपर्याय की आदि है, अन्त नही। सिद्धपर्याय अक्षय है। क्योकि रागादि दोष ही जन्ममरण के कारण है, जो सिद्ध-जीव मे नही होते, वे रागद्वेष के कारणभूत कर्मों का सर्वथा क्षय कर चुकते है।

अपर्याप्त नारक आदि की कायस्थिति—नारक आदि जीवो की जो समग्र स्थिति है, उसमे से अपर्याप्त अवस्था का एक अन्तर्मुहूर्त कम कर देने से पर्याप्त अवस्था की भवस्थिति होती है। पर्याप्त अवस्था की जो भवस्थिति है, वही पर्याप्त नारक की कायस्थिति भी है।[1]

तृतीय इन्द्रियद्वार

१२७१. सइंदिए ण भंते ! सइंदिए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते। त जहा—अणाईए वा अपज्जवसिए १ अणाईए वा सपज्जवसिए २।

[१२७१ प्र] भगवन् ! सेन्द्रिय (इन्द्रिय सहित) जीव सेन्द्रिय रूप मे कितने काल तक रहता है।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३७५ से ३७७ तक

[१२७१ उ.] गौतम ! सेन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे गये है—१ अनादि-अनन्त और २. अनादि-सान्त।

१२७२ एगिंदिए णं भंते ! एगिंदिए त्ति कालम्रो केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणंत काल वणस्सइकालो।

[१२७२ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियरूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१२७२ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल-वनस्पतिकाल-पर्यन्त (एकेन्द्रिय रूप मे रहता है।)

१२७३. बेइंदिए णं भंते ! बेइंदिए त्ति कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमहुत्त, उक्कोसेणं संखेज्ज काल।

[१२७३ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव द्वीन्द्रियरूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१२७३ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यातकाल तक (द्वीन्द्रिय-रूप मे रहता है।)

१२७४ एव तेइंदिय-चउरिंदिए वि।

[१२७४] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय रूप मे अव-स्थिति के विषय मे (समझना चाहिए।)

१२७५ पचेंदिए णं भंते ! पचेंदिए त्ति कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्तं, उक्कोसेण सागरोवमसहस्स सातिरेग।

[१२७५ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१२७५ उ] गौतम ! (वह) जघन्यत अन्तमुहूर्त तक और उत्कृष्टत सहस्रसागरोपम से कुछ अधिक (काल तक पचेन्द्रिय रूप मे रहता है।)

१२७६. अणिंदिए ण० पुच्छा।

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए।

[१२७६ प्र] भगवन् ! अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव कितने काल तक अनिन्द्रिय बना रहता है ?

[१२७६ उ] गौतम ! (अनिन्द्रिय) सादि-अनन्त (काल तक अनिन्द्रियरूप मे रहता है।)

१२७७. सइंदियअपज्जत्तए ण भते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त।

[१२७७ प्र] भगवन् ! सेन्द्रिय-अपर्याप्तक कितने काल तक सेन्द्रिय-अपर्याप्तरूप मे रहता है ?

[१२७७ उ] गौतम ! (वह) जघन्यत भी और उत्कृष्टत भी अन्तर्मुहूर्त तक (सेन्द्रिय-अपर्याप्तरूप मे रहता है।)

१२७८. एवं जाव पंचेंदियअपज्जत्तए ।

[१२७८] इसी प्रकार (एकेन्द्रिय-अपर्याप्तक से लेकर) यावत् पचेन्द्रिय-अपर्याप्तक तक (अपर्याप्तरूप मे अवस्थिति) के विषय मे (समझना चाहिए ।)

१२७९. सइंदियपज्जत्तए ण भंते ! सइंदियपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सागरोवमसतपुहत्त सातिरेग ।

[१२७९ प्र] भगवन् ! सेन्द्रिय-पर्याप्तक, सेन्द्रिय-पर्याप्तरूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१२७९ उ] गौतम ! (वह) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त तक तथा उत्कृष्टत शतपृथक्त्व-सागरोपम से कुछ तक (सेन्द्रिय-पर्याप्त जीव सेन्द्रिय-पर्याप्त बना रहता है ।)

१२८०. एगिंदियपज्जत्तए ण भते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्जाइ वाससहस्साइ ।

[१२८० प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-पर्याप्तक कितने काल तक एकेन्द्रिय-पर्याप्तरूप मे बना रहता है ?

[१२८० उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्षों तक (वह एकेन्द्रिय-पर्याप्तक रूप मे बना रहता है ।)

१२८१. बेइंदियपज्जत्तए ण भते ! बेइंदियपज्जत्तए त्ति ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्जाइ वासाइ ।

[१२८१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक, द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१२८१ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सख्यात वर्षों तक (द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक रूप मे रहता है ।)

१२८२ तेइंदियपज्जत्तए ण भंते ! तेइंदियपज्जत्तए त्ति ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्जाइ राइंदियाइ ।

[१२८२ प्र] भगवन् ! त्रीन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय-पर्याप्तकरूप मे कितने काल तक बना रहता है ?

[१२८२ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सख्यात रात्रि-दिन तक (त्रीन्द्रिय-पर्याप्तकरूप मे रहता है ।)

१२८३ चउरिंदियपज्जत्तए ण भते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्जा मासा ।

[१२८३ प्र] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तकरूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१२८३ उ.] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सख्यात मास तक (चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तकरूप मे बना रहता है ।)

१२८४. पचेंदियपज्जत्तए ण भते ! पचेंदियपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सागरोवमसयपुहत्त । दार ३ ॥

[१२८४ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय-पर्याप्तक, पचेन्द्रिय-पर्याप्तकरूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१२८४ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सौ पृथक्त्व सागरोपमो तक (पचेन्द्रियपर्याप्त-पर्याय मे रहता है ।) तृतीयद्वार ॥३॥

विवेचन--तृतीय इन्द्रियद्वार—प्रस्तुत १४ सूत्रो (सू. १२७१ से १२८४ तक) मे सेन्द्रिय, निरिन्द्रिय तथा पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवो की उस पर्याय मे अवस्थिति के विषय मे निरूपण किया गया है ।

सेन्द्रिय-निरिन्द्रिय—इन्द्रिययुक्त जीव को सेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय-भावेन्द्रिय रहित जीव (सिद्ध) को निरिन्द्रिय कहते है ।

सेन्द्रिय जीव की सेन्द्रियपर्याय मे अवस्थिति—सेन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे गए हैं -अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त । जो सेन्द्रिय है, वह नियमत. ससारी होता है और ससार अनादि है । जो सिद्ध हो जाएगा, वह अनादि-सान्त है । क्योकि मुक्ति-अवस्था मे सेन्द्रियत्व पर्याय का अभाव हो जाएगा । जो कदापि सिद्ध नही होगा, वह अनादि-अनन्त है । क्योकि उसके सेन्द्रियत्वपर्याय का भी अन्त नही होगा ।

अनिन्द्रिय-पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण से रहित है । सेन्द्रिय जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनो प्रकार के है । जो अपर्याप्तक है, वे लब्धि और करण की अपेक्षा से समझने चाहिये । दोनो प्रकार से उनकी पर्याय जघन्यत और उत्कृष्टत. अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है तथा पर्याप्त यहाँ लब्धि की अपेक्षा से समझना चाहिए । वह विग्रहगति मे भी सभव है, भले ही वह करण से अपर्याप्त हो । अत-एव वह उत्कृष्टत सौ सागरोपम पृथक्त्व अर्थात् दो सो से नौ सौ सागरोपम से कुछ अधिक काल मे सिद्ध हो जाता है । अन्यथा करणपर्याप्त का काल तो अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम प्रमाण ही है । अत पूर्वोक्त कथन सुसगत नही होगा । इसलिए यहाँ और आगे भी लब्धि की अपेक्षा से ही पर्याप्तत्व समझना चाहिए ।[1]

वनस्पतिकाल का प्रमाण -कालत अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी काल, क्षेत्रत: अनन्तलोक, असख्यात पुद्गलपरावर्त्त और वे पुद्गलपरावर्त्त आवलिका के असख्यातवे भाग समझना चाहिए । अर्थात् आवलिका के असख्यातवे भाग मे जितने समय होते है, उतने पुद्गलपरावर्त्त यहाँ समझना चाहिए ।

सख्यातकाल का तात्पर्य द्वीन्द्रिय की अवस्थिति सख्यातकाल की बताई है, उसका अर्थ सख्यात वर्ष, यानी सख्यात हजार वर्ष का काल ।

पचेन्द्रिय का काल - कुछ अधिक हजार सागरोपम तक पचेन्द्रिय जीव लगातार पचेन्द्रिय बना रहता है । यह काल नारक, तिर्यच, मनुष्य तथा देवगति इन चारो मे भ्रमण करने से होता है ।[2]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३७७-३७८

२. वही, मलय वृत्ति, पत्राक ३७७

एकेन्द्रिय पर्याप्तजीव की लगातार अवस्थिति– एकेन्द्रिय पर्याप्त उत्कृष्ट हजार वर्ष तक एकेन्द्रिय पर्याप्त रूप से बना रहता है। इसका कारण यह है पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट भवस्थिति २२ हजार वर्ष की, अप्कायिक की ७ हजार वर्ष की, वायुकायिक की ३ हजार वर्ष की और वनस्पतिकायिक की १० हजार वर्ष की भवस्थिति है। ये सब मिलकर सख्यात हजार वर्ष होते है।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त की कायस्थिति—द्वीन्द्रिय पर्याय जीव उत्कृष्ट सख्यात वर्षों तक द्वीन्द्रिय पर्याप्त बना रहता है। द्वीन्द्रिय जीव की अवस्थिति का काल उत्कृष्ट बारह वर्ष का है, मगर सभी भवो मे उत्कृष्ट स्थिति तो हो नही सकती। अतएव लगातार कतिपय पर्याप्त भवो को मिलाने पर भी सख्यात वर्ष ही हो सकते है, सैकडो या हजारो वर्ष नही।

त्रीन्द्रिय पर्याप्त की कायस्थिति उत्कृष्ट सख्यात रात्रि-दिन तक त्रीन्द्रिय पर्याप्त इसी रूप मे रहता है। त्रीन्द्रिय जीव की भवस्थिति उत्कृष्ट ४९ दिन की होती है। अतएव वह लगातार कतिपय भव करे तो भी सब मिलकर वे सख्यात रात्रि-दिन ही होते है।

चतुरिन्द्रिय पर्याप्त की कायस्थिति—उत्कृष्ट सख्यात मास तक वह चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकपर्याय मे युक्त रहता है, क्योकि चतुरिन्द्रिय की उत्कृष्ट भवस्थिति ६ महीने की है। अतएव वह लगातार कतिपय भव करे तो भी सख्यात मास ही होते है।[1]

चतुर्थ कायद्वार

१२८५. सकाइए ण भते ! सकाइए त्ति कालग्रो केवचिर होइ ?

गोयमा ! सकाइए दुविहे पण्णत्ते। त जहा—अणादीए वा अपज्जवसिए १ अणादीए वा सपज्जवसिए २।

[१२८५ प्र] भगवन् ! सकायिक जीव सकायिकरूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१२८५ उ] गौतम ! सकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार –(१) अनादि-अनन्त और (२) अनादि सान्त।

१२८६. पुढविक्काइए णं० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण असखेज्ज काल, असखेज्जाओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असखेज्जा लोगा।

[१२८६ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल तक लगातार पृथ्वीकायिक पर्याययुक्त रहता है ?

[१२८६ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असख्यात काल तक, (अर्थात्) काल की अपेक्षा—असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो तक (पृथ्वीकायिक पर्याय वाला बना रहता है।) क्षेत्र से—असख्यात लोक तक।

१२८७. एव आउ-तेउ-वाउक्काइया वि।

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३७८

[१२८७] इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक भी (जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असख्यात काल तक अपने-अपने पर्यायो से युक्त रहते है।)

१२८८. वणस्सइकाइया ण ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं अणत काल, अणताओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणता लोगा, असखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते ण पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असखेज्जइभागे ।

[१२८८ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव कितने काल तक लगातार वनस्पतिकायिक पर्याय मे रहते है ?

[१२८८ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक, उत्कृष्ट अनन्तकाल तक (वे) वनस्पतिकायिक पर्याययुक्त बने रहते है। (वह अनन्तकाल) कालत —अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी परिमित एव क्षेत्रत. अनन्त लोक प्रमाण या असख्यात पुद्गलपरावर्त्त समझना चाहिए। वे पुद्गलपरावर्त्त आवलिका के असख्यातवे भाग-प्रमाण है।

१२८९ तसकाइए ण भते ! तसकाइए त्ति ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण दो सागरोवमसहस्साइ सखेज्जवासमब्भइयाइ ।

[१२८९ प्र] भगवन् ! त्रसकायिक जीव त्रसकायिकरूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१२८९ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक और उत्कृष्ट सख्यातवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम तक (त्रसकायिकरूप मे लगातार बना रहता है।)

१२९० अकाइए ण भते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! अकाइए सादीए अपज्जवसिए ।

[१२९० प्र] भगवन् ! अकायिक कितने काल तक अकायिकरूप मे बना रहता है ?

[१२९० उ] गौतम ! अकायिक सादि-अनन्त होता है।

१२९१. सकाइयअपज्जत्तए ण ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[१२९१ प्र] भगवन् ! सकायिक अपर्याप्तक कितने काल तक सकायिक अपर्याप्तक रूप मे लगातार रहता है ?

[१२९१ उ] गौतम ! (वह) जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक (सकायिक अपर्याप्तक रूप मे लगातार रहता है।)

१२९२ एव जाव तसकाइयअपज्जत्तए ।

[१२९२] इसी प्रकार (अप्कायिक अपर्याप्तक से लेकर) त्रसकायिक अपर्याप्तक तक समझना चाहिए।

१२९३. सकाइयपज्जत्तए णं ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्तं, उक्कोसेण सागरोवमसयपुहत्त सातिरेग ?

[१२९३ प्र] भगवन् ! सकायिक पर्याप्तक के विषय मे (भी पूर्ववत्) पृच्छा है, (उसका क्या समाधान है ?)

[१२९३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक सौ सागरोपम-पृथक्त्व तक (वह सकायिक पर्याप्तकरूप मे) रहता है।

१२९४ पुढविक्काइयपज्जत्तए ण ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्तं, उक्कोसेण सखेज्जाइ वाससहस्साइं ।

[१२९४ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव के विषय मे (भी पूर्ववत्) पृच्छा है,

[१२९४ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्षों तक (पृथ्वीकायिक पर्याप्तकरूप मे बना रहता है।)

१२९५. एवं आऊ वि ।

[१२९५] इसी प्रकार अप्कायिक पर्याप्तक के विषय मे भी समझना चाहिए।

१२९६ तेउक्काइयपज्जत्तए णं ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्तं, उक्कोसेण सखेज्जाइं राइदियाइ ।

[१२९६ प्र] भगवन् ! तेजस्कायिक पर्याप्तक कितने काल तक (लगातार) तेजस्कायिक पर्याप्तक बना रहता है ?

[१२९६ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यात रात्रि-दिन तक (वह) तेजस्कायिक-पर्याप्तकरूप मे बना रहता है।

१२९७. वाउक्काइयपज्जत्तए ण ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्जाइ वाससहस्साइं ।

[१२९७ प्र] भगवन् ! वायुकायिक पर्याप्तक के विषय मे भी (इसी प्रकार की) पृच्छा है।

[१२९७ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्षों तक (वह वायुकायिक पर्याप्तपर्याय मे रहता है।)

१२९८. वणस्सइकाइयपज्जत्तए ण ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं सखेज्जाइ वाससहस्साइ ।

[१२९८ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक पर्याप्तक के विषय मे भी (पूर्ववत्) प्रश्न है।

[१२९८ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्षों तक (वनस्पतिकायिक पर्याप्तक पर्याय मे बना रहता है।)

१२९९. तसकाइयपज्जत्तए णं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहत्तं ।

[१२९९ प्र] भगवन् ! त्रसकायिक-पर्याप्तक कितने काल तक त्रसकायिकपर्याय में बना रहता है ?

[१२९९ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक शतसागरोपम-पृथक्त्व तक (वह पर्याप्त त्रसकायिक रूप मे रहता है ।)

१३००. सुहुमे ण भंते ! सुहुमे त्ति कालओ केवचिर होति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण असखेज्ज काल असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असखेज्जा लोगा ।

[१३०० प्र] भगवन् ! सूक्ष्म जीव कितने काल तक सूक्ष्म रूप मे रहता है ?

[१३०० उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असख्यातकाल तक, (अर्थात्) कालत असख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणियो तक और क्षेत्रत असख्यातलोक तक (सूक्ष्म जीव सूक्ष्मपर्याय मे बना रहता है ।)

१३०१. सुहुमपुढविक्काइए सुहुमआउक्काइए सुहुमतेउक्काइए सुहुमवाउक्काइए सुहुमवणस्सइकाइए सुहुमणिगोदे वि जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेणं असखेज्जं कालं, असखेज्जाओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असखेज्जा लोगा ।

[१३०१] इसी प्रकार सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एव सूक्ष्म निगोद भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक और उत्कृष्ट असख्यातकाल तक—(अर्थात्—) कालत.—असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो तक एव क्षेत्रत असख्यात लोक तक (ये स्व-स्वपर्याय मे बने रहते है ।)

१३०२. सुहुमे णं भते ! अपज्जत्तए त्ति ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं ।

[१३०२ प्र] भगवन् ! सूक्ष्म अपर्याप्तक, सूक्ष्म अपर्याप्तक रूप मे कितने काल तक लगातार रहता है ?

[१३०२ उ] गौतम ! (वह) जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है ।

१३०३. पुढविक्काइय-आउक्काइए-तेउक्काइए-वाउक्काइय-वणस्सइकाइयाण य एवं चेव ।

[१३०३] (सूक्ष्म) पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक (अपर्याप्तक की कायस्थिति के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।)

१३०४. पज्जत्तयाण वि एवं चेव ।

[१३०४] (इन पूर्वोक्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकादि के) पर्याप्तको (के विषय मे भी) ऐसा ही (समझना चाहिए ।)

१३०५. बादरे णं भंते ! बादरे त्ति कालश्रो केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण श्रसखेज्ज काल, श्रसखेज्जाश्रो उसप्पिणि-श्रोसप्पिणीश्रो कालश्रो, खेत्तश्रो अगुलस्स श्रसखेज्जतिभागं ।

[१३०५ प्र] भगवन् ! बादर जीव, बादर जीव के रूप मे (लगातार) कितने काल तक रहता है ?

[१३०५ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्यात काल तक (अर्थात्) कालत असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी तक, क्षेत्रत. अगुल के असख्यातवे भाग-प्रमाण (बादर जीव के रूप मे लगातार रहता है ।)

१३०६ बादरपुढविक्काइए ण भते ! बादरपुढविक्काइए त्ति पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीश्रो ।

[१३०६ प्र] भगवन् ! बादर पृथ्वीकायिक बादर पृथ्वीकायिक रूप मे कितने काल तक (लगातार) रहता है ?

[१३०६ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्तर कोडाकोडी सागरोपम तक (बादर पृथ्वीकायिक रूप मे लगातार रहता है ।)

१३०७. एव बादरश्राउक्काइए वि जाव बादरवाउक्काइए वि ।

[१३०७] इसी प्रकार बादर अप्कायिक एव बादर वायुकायिक (के विषय मे भी समझना चाहिए ।)

१३०८. बादरवणस्सइकाइए ण भंते ! बादरवणस्सइकाइए त्ति पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं श्रसखेज्ज काल जाव खेत्तश्रो अगुलस्स श्रसखेज्जतिभाग ।

[१३०८ प्र] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक बादर वनस्पतिकायिक के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३०८ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्यात काल तक, (अर्थात्—) कालत —असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो तक, क्षेत्रत अगुल के असख्यातवे भाग-प्रमाण (बादर वनस्पतिकायिक के रूप मे रहता है ।)

१३०९ पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइए णं भते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीश्रो ।

[१३०९ प्र] भगवन् ! प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक (उक्त स्वपर्याय मे कितने काल तक लगातार रहता है ?

[१३०९ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सत्तर कोटाकोटी सागरोपम तक (वह प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिकरूप मे बना रहता है ।)

१३१० णिगोए णं भंते ! णिगोए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणत काल, अणंताओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अड्ढाइज्जा पोग्गलपरियट्टा ।

[१३१० प्र] भगवन् ! निगोद, निगोद के रूप मे कितने काल तक (लगातार) रहता है ?

[१३१० उ] गौतम ! जघन्य अन्तमुहूर्त तक, उत्कृष्ट अनन्तकाल तक, कालत अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो तक, क्षेत्रत. ढाई पुद्गलपरिवर्त्त तक (वह निगोदपर्याय मे बना रहता है ।)

१३११. बादरनिगोदे ण भते ! बादर० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ ।

[१३११ प्र] भगवन् ! बादर निगोद, बादर निगोद के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३११ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सत्तर कोटाकोटी सागरोपम तक बादर निगोद के रूप मे बना रहता है ।

१३१२. बादरतसकाइए णं भते ! बादरतसकाइए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भइयाइं ।

[१३१२ प्र] भगवन् ! बादर त्रसकायिक बादर त्रसकायिक के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३१२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यातवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम तक (वह त्रसकायिक-पर्याय वाला बना रहता है ।)

१३१३. एतेसिं चेव अपज्जत्तगा सव्वे वि जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[१३१३] इन (पूर्वोक्त) सभी (बादर जीवो) के अपर्याप्तक जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त काल तक अपने-अपने पूर्व पर्यायो मे बने रहते है ।

१३१४ बादरपज्जत्तए णं भते ! बादरपज्जत्त० पुच्छा ?

गोयमा ! जहणेणं अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण सागरोवमसतपुहुत्त सातिरेग ।

[१३१४ प्र] भगवन् ! बादर पर्याप्तक, बादर पर्याप्तक के रूप मे कितने काल तक बना रहता है ?

[१३१४ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक शतसागरोपमपृथक्त्व तक (बादर पर्याप्तक के रूप मे रहता है ।)

१३१५ बादरपुढविक्काइयपज्जत्तए ण भते ! बादर० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्जाइं वाससहस्साइं ।

[१३१५ प्र] भगवन् ! बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक कितने काल तक बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक रूप मे रहता है ?

[१३१५ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक (वह बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तकरूप के रहता है।)

१३१६. एवं आउक्काइए वि।

[१३१६] इसी प्रकार (बादर) अप्कायिक (के विषय में) भी (समझना चाहिए।)

१३१७. तेउक्काइयपज्जत्तए णं भंते! तेउक्काइयपज्जत्तए० पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं राइंदियाइं।

[१३१७ प्र.] भगवन्! तेजस्कायिक पर्याप्तक (बादर) तेजस्कायिक पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है?

[१३१७ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात रात्रि-दिन तक (वह तेजस्कायिक पर्याप्तक के रूप में रहता है।)

१३१८. वाउक्काइए वणस्सइकाइए पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइए य पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससहस्साइं।

[१३१८ प्र.] भगवन्! वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक (पर्याप्तक) कितने काल तक अपने-अपने पर्याय में रहते हैं?

[१३१८ उ.] गौतम! ये जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक अपने-अपने पर्याय में रहते हैं।)

१३१९. णिगोयपज्जत्तए बादरणिगोयपज्जत्तए य पुच्छा?

गोयमा! दोण्णि वि जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[१३१९ प्र.] भगवन्! निगोदपर्याप्तक और बादर निगोदपर्याप्तक कितने काल तक निगोदपर्याप्तक और बादर निगोदपर्याप्तक के रूप में रहते हैं?

[१३१९ उ.] गौतम! ये दोनों जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक (स्व-स्वपर्याय में बने रहते हैं।)

१३२०. बादरतसकाइयपज्जत्तए णं भंते! बादरतसकाइयपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसतपुहुत्तं सातिरेगं। दारं ४॥

[१३२० प्र.] भगवन्! बादर त्रसकायिकपर्याप्तक बादर त्रसकायिकपर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है?

[१३२० उ.] गौतम! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक शतसागरोपम-पृथक्त्व पर्यन्त बादर त्रसकायिकपर्याप्तक के रूप में बना रहता है। चतुर्थ द्वार॥४॥

विवेचन – चतुर्थ कायद्वार—प्रस्तुत छत्तीस सूत्रो (सू १२८५ से १३२० तक) मे षट्काय के विभिन्न पर्यायो की अपेक्षा से कायस्थिति (उस रूप मे लगातार कालावधि) की प्ररूपणा की गई है ।

सकायिक की व्याख्या – जो कायसहित हो, वह सकायिक कहलाता है । यद्यपि काय के पाच भेद है—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण, तथापि यहा तैजस और कार्मण काय ही समझना चाहिए, क्योकि ये दोनो ससार-पर्यन्त रहते है, अन्यथा विग्रहगति मे वर्तमान एव शरीर-पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव के तैजस और कार्मण के सिवाय अन्य शरीर नही होते । ऐसी स्थिति मे वह जीव अकायिक हो जाएगा और मूलसूत्रोक्त ससारी और ससारपारगामी, ये दो भेद नही बनेंगे । मूल मे सकायिक के दो भेद बताए है— अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित । जो संसारपारगामी नही होगा, वह अभव्य अनादि-अनन्त-सकायिक है, क्योकि उसके काय का व्यवच्छेद कदापि सम्भव नही । जो मोक्षगामी है, वह अनादि-सान्त है, क्योकि वह मुक्ति अवस्था मे सर्वात्मना सर्वशरीरो से रहित हो जाता है । यो षट्काय की दृष्टि से भी पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक तथा त्रसकायिक, ये छह भेद हैं ।[1]

असख्यातकाल की व्याख्या— कालत असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल जानना चाहिए । क्षेत्रत असख्यात लोक समझने चाहिए । अभिप्राय यह है कि लोकाकाश के असख्यात प्रदेश हैं । ऐसे-ऐसे (कल्पित) असख्यात लोकाकाशो के समस्त प्रदेशो मे से एक-एक समय मे एक-एक प्रदेश के क्रम मे अपहरण किया जाए तो जितनी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी उस अपहरण से व्यतीत हो उतनी ही उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी यहाँ समझना चाहिए । साराश यह है कि अधिक से अधिक इतने काल तक सूक्ष्म जीव निरन्तर सूक्ष्म पर्याय मे बना रहता है । यह प्ररूपणा साव्यवहारिक जीवराशि की अपेक्षा से समझनी चाहिए । अव्यवहारराशि के अन्तर्गत सूक्ष्मनिगोदिया जीव की अनादिता होने से उससे असख्यातकाल का कथन सुसगत नही हो सकता ।[2]

क्षेत्र की अपेक्षा से अंगुल के असख्यातवें भाग की व्याख्या इसका अभिप्राय यह है कि अगुल के असख्यातवे भाग मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उनका एक-एक समय मे एक-एक के हिसाब से अपहरण करने पर जितनी उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी व्यतीत हो, उतनी उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी यहा जानना चाहिए । प्रश्न होता है अगुल के असख्यातवे भाग जितने स्वल्प क्षेत्र के परमाणुओ का अपहरण करने मे असख्यात उत्सर्पिणी एव अवसर्पिणी काल किस प्रकार व्यतीत हो सकता है ? इसका समाधान यह है कि क्षेत्र, काल की अपेक्षा बहुत सूक्ष्म होने से ऐसा हो सकता है । कहा भी है– काल सूक्ष्म होता है, किन्तु क्षेत्र उससे भी अधिक सूक्ष्म होता है । यह कथन बादर वनस्पतिकाय की अपेक्षा से है, क्योकि बादर वनस्पतिकाय के अतिरिक्त अन्य किसी बादर की इतने काल की स्थिति सम्भव नही है ।[3]

पंचम योगद्वार

१३२१. सजोगी ण भंते ! सजोगि त्ति कालओ केवच्चिर होई ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३७९

२ (क) वही, मलय. वृत्ति, पत्राक ३८२ (ख) प्रज्ञापना प्रमयबोधिनी भा ४, पृ ३७४

३. (क) वही, मलय. वृत्ति, पत्राक ३८२ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी. भा ४, पृ. ३७७

[१३१५ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्षों तक (वह बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तकरूप के रहता है।)

१३१६. एवं आउक्काइए वि।

[१३१६] इसी प्रकार (बादर) अप्कायिक (के विषय मे) भी (समझना चाहिए।)

१३१७. तेउक्काइयपज्जत्तए ण भते ! तेउक्काइयपज्जत्तए० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं सखेज्जाइ राइंदियाइं।

[१३१७ प्र] भगवन् ! तेजस्कायिक पर्याप्तक (बादर) तेजस्कायिक पर्याप्तक के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३१७ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यात रात्रि-दिन तक (वह तेजस्कायिक पर्याप्तक के रूप मे रहता है।)

१३१८. वाउक्काइए वणस्सइकाइए पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइए य पुच्छा ?

गोयम ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण संखेज्जाइ वाससहस्साइ।

[१३१८ प्र] भगवन् ! वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक (पर्याप्तक) कितने काल तक अपने-अपने पर्याय मे रहते है ?

[१३१८ उ] गौतम ! ये जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्षों तक अपने-अपने पर्याय मे रहते है।)

१३१९. णिगोयपज्जत्तए बादरणिगोयपज्जत्तए य पुच्छा ?

गोयमा ! दोण्णि वि जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त।

[१३१९ प्र] भगवन् ! निगोदपर्याप्तक और बादर निगोदपर्याप्तक कितने काल तक निगोदपर्याप्तक और बादर निगोदपर्याप्तक के रूप मे रहते हैं ?

[१३१९ उ] गौतम ! ये दोनो जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक (स्व-स्वपर्याय मे बने रहते है।)

१३२०. बादरतसकाइयपज्जत्तए ण भंते ! बादरतसकाइयपज्जत्तए त्ति कालम्रो केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सागरोवमसतपुहुत्त सातिरेगं। दार ४॥

[१३२० प्र] भगवन् ! बादर त्रसकायिकपर्याप्तक बादर त्रसकायिकपर्याप्तक के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३२० उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक शतसागरोपम-पृथक्त्व पर्यन्त बादर त्रसकायिकपर्याप्तक के रूप मे बना रहता है। चतुर्थ द्वार ॥४॥

विवेचन – चतुर्थ कायद्वार – प्रस्तुत छत्तीस सूत्रो (सू. १२८५ से १३२० तक) मे षट्काय के विभिन्न पर्यायो की अपेक्षा से कायस्थिति (उस रूप मे लगातार कालावधि) की प्ररूपणा की गई है।

सकायिक की व्याख्या – जो कायसहित हो, वह सकायिक कहलाता है। यद्यपि काय के पाच भेद हैं—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण, तथापि यहा तैजस और कार्मण काय ही समझना चाहिए, क्योकि ये दोनो ससार-पर्यन्त रहते है, अन्यथा विग्रहगति मे वर्तमान एव शरीर-पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव के तैजस और कार्मण के सिवाय अन्य शरीर नही होते। ऐसी स्थिति मे वह जीव अकायिक हो जाएगा और मूलसूत्रोक्त ससारी और ससारपारगामी, ये दो भेद नही बनेंगे। मूल मे सकायिक के दो भेद बताए है— अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। जो संसारपारगामी नही होगा, वह अभव्य अनादि-अनन्त-सकायिक है, क्योकि उसके काय का व्यवच्छेद कदापि सम्भव नही। जो मोक्षगामी है, वह अनादि-सान्त है, क्योकि वह मुक्ति अवस्था मे सर्वात्मना सर्वशरीरो से रहित हो जाता है। यो षट्काय की दृष्टि से भी पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक तथा त्रसकायिक, ये छह भेद हैं।[1]

असख्यातकाल की व्याख्या— कालत असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल जानना चाहिए। क्षेत्रत असख्यात लोक समझने चाहिए। अभिप्राय यह है कि लोकाकाश के असख्यात प्रदेश हैं। ऐसे-ऐसे (कल्पित) असख्यात लोकाकाशो के समस्त प्रदेशो मे से एक-एक समय मे एक-एक प्रदेश के क्रम से अपहरण किया जाए तो जितनी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी उस अपहरण से व्यतीत हो उतनी ही उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी यहाँ समझना चाहिए। साराश यह है कि अधिक से अधिक इतने काल तक सूक्ष्म जीव निरन्तर सूक्ष्म पर्याय मे बना रहता है। यह प्ररूपणा सांव्यवहारिक जीवराशि की अपेक्षा से समझनी चाहिए। अव्यवहारराशि के अन्तर्गत सूक्ष्मनिगोदिया जीव को अनादिता होने से उसमें असख्यातकाल का कथन सुसगत नही हो सकता।[2]

क्षेत्र की अपेक्षा से अगुल के असख्यातवें भाग की व्याख्या इसका अभिप्राय यह है कि अगुल के असख्यातवे भाग मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उनका एक-एक समय मे एक-एक के हिसाब से अपहरण करने पर जितनी उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी व्यतीत हो, उतनी उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी यहा जानना चाहिए। प्रश्न होता है अगुल के असख्यातवे भाग जितने स्वल्प क्षेत्र के परमाणुओ का अपहरण करने मे असख्यात उत्सर्पिणी एव अवसर्पिणी काल किस प्रकार व्यतीत हो सकता है? इसका समाधान यह है कि क्षेत्र, काल की अपेक्षा बहुत सूक्ष्म होने से ऐसा हो सकता है। कहा भी है—काल सूक्ष्म होता है, किन्तु क्षेत्र उससे भी अधिक सूक्ष्म होता है। यह कथन बादर वनस्पतिकाय की अपेक्षा से है, क्योकि बादर वनस्पतिकाय के अतिरिक्त अन्य किसी बादर की इतने काल की स्थिति सम्भव नही है।[3]

पंचम योगद्वार

१३२१. सजोगी ण भंते ! सजोगि त्ति कालओ केवच्चिर होई ?

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३७९

२ (क) वही, मलय. वृत्ति, पत्राक ३८२ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी भा. ४, पृ ३७४

३. (क) वही, मलय. वृत्ति, पत्राक ३८२ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी. भा ४, पृ. ३७७

गोयमा ! सजोगी दुविहे पण्णत्ते । तं जहा--अणादीए वा अपज्जवसिए १ अणादीए वा सपज्जवसिए २ ।

[१३२१ प्र] भगवन् ! सयोगी जीव कितने काल तक सयोगीपर्याय मे रहता है ?

[१३२१ उ] गौतम ! सयोगी जीव दो प्रकार के कहे है । वे इस प्रकार—१ अनादि-अपर्यवसित और २ अनादि-सपर्यवसित ।

१३२२ मणजोगी ण भंते ! मणजोगि त्ति कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण अंतोमुहुत्त ।

[१३२२ प्र] भगवन् ! मनोयोगी कितने काल तक मनोयोगी अवस्था मे रहता है ?

[१३२२ उ] गौतम ! (वह) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक मनोयोगी अवस्था मे रहता है ।

१३२३ एव वयजोगी वि ।

[१३२३] इसी प्रकार वचनयोगी (का वचनयोगी रूप मे रहने का काल समझना चाहिए ।)

१३२३. कायजोगी णं भंते ! कायजोगि त्ति० ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण वणस्सइकालो ।

[१३२४ प्र] भगवन् ! काययोगी, काययोगी के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३२४ उ] गौतम ! जघन्य-अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक (वह काययोगीपर्याय मे रहता है ।)

१३२५. अजोगी ण भते ! अजोगीति कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए । दार ५ ।।

[१३२५ प्र] भगवन् ! अयोगी, अयोगीपर्याय मे कितने काल तक रहता है ?

[१३२५ उ] गौतम ! (वह) सादि-अपर्यवसित (अनन्त) है । पचमद्वार ।। ५ ।।

विवेचन—पचम योगद्वार-- प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू १३२१ से १३२५ तक) मे सयोगी, मनो-वचन-काययोगी और अयोगी की स्व-स्वपर्याय मे रहने की कालस्थिति सम्बन्धी प्ररूपणा की गयी है ।

योग और सयोगी-अयोगी मन, वचन और काय का व्यापार योग कहलाता है । वह योग जिसमे विद्यमान हो, वह सयोगी कहलाता है । जैनसिद्धान्त की दृष्टि से सयोगी-अवस्था तेरहवे गुणस्थानपर्यन्त रहती है । उसके पश्चात् चौदहवे गुणस्थान मे जीव अयोगी हो जाता है । सिद्ध-अवस्था भी अयोगी अवस्था है, जिसकी आदि तो है, पर अन्त नही है, क्योकि सिद्धावस्था प्राप्त होने के बाद योगो से सर्वथा छुटकारा हो जाता है ।

सयोगी जीव के दो भेद—अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त । जीव भविष्य में कभी मोक्ष प्राप्त नही करेगा, सदैव कम से कम एक योग से युक्त बना रहेगा, ऐसा अभव्य जीव अनादि-अनन्त

सयोगी है। जो जीव भविष्य मे कभी मोक्ष प्राप्त करेगा, वह अनादि-सान्त सयोगी है। वह भव्य जीव है।

मनोयोगी की मनोयोगिपर्याय में कालस्थिति—मनोयोगी जीव जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक लगातार मनोयोगीपर्याय से युक्त रहता है। जब कोई जीव औदारिककाय-योग के द्वारा प्रथम समय मे मनोयोग्य पुद्गलो को ग्रहण करके, दूसरे समय मे उन्हे मन के रूप मे परिणत करके त्यागता है और तृतीय समय मे उपरत हो (रुक) जाता है, या मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तब वह एक समय तक मनोयोगी रहता है। उत्कृष्टत अन्तर्मुहूर्त तक मनोयोगी रहना है। जब जीव निरन्तर मनोयोग्य पुद्गलो का ग्रहण और त्याग करता है, तब वह अन्तर्मुहूर्त तक ही ऐसा करता है। उसके पश्चात् अवश्य ही जीव उससे स्वभावत उपरत हो जाता है। तत्पश्चात् वह दोबारा मनोयोग्य पुद्गलो का ग्रहण एव निसर्ग करता है, किन्तु काल की सूक्ष्मता के कारण कदाचित् उसे बीच के व्यवधान का सवेदन नही होता। तात्पर्य यह है कि मनोयोग्य पुद्गलो के ग्रहण और त्याग का यह सिलसिला अन्तर्मुहूर्त तक लगातार चालू रहता है। उसके बाद अवश्य ही उसमे व्यवधान पड जाता है, क्योकि जीव का स्वभाव ही ऐसा है। इसलिए यहाँ मनोयोग का अधिक से अधिक काल अन्तर्मुहूर्त कहा गया है।[1]

वचनयोगी की कालस्थिति वचनयोगी की भी कालस्थिति मनोयोगी के समान है। वह भी जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। जीव प्रथम समय मे काययोग के द्वारा भाषायोग्य द्रव्यो को ग्रहण करता है, द्वितीय समय मे उन्ही को भाषारूप मे परिणत करके त्यागता है और तृतीय समय मे वह उपरत हो जाता है, या मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार वाग्योगी को एक समय लगता है। इसका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि अन्तर्मुहूर्त तक वह भाषायोग्य पुद्गलो का ग्रहण-निसर्ग करता हुआ अवश्य उपरत हो जाता है। जीव का स्वभाव ही ऐसा है।

काययोगी की कालस्थिति काययोगी जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक लगातार काययोगी बना रहता है। द्वीन्द्रियादि जीवो मे वचनयोग भी पाया जाता है। जब वचनयोग या मनोयोग भी होता है, उस समय काययोग की प्रधानता नही होती। अत वह सादि-सान्त होने से जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक काययोग मे रहता है। उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक काययोग रहता है। वनस्पतिकाल का परिमाण पहले बताया जा चुका है। वनस्पतिकायिक जीवो मे केवल काययोग ही पाया जाता है, वचनयोग और मनोयोग नही होता। इस कारण अन्य योग का अभाव होने से उनमे तब तक निरन्तर काययोग ही रहता है, जब तक उन्हे त्रसपर्याय प्राप्त न हो जाए।[2]

छठा वेदद्वार

१३२६. सवेदए णं भंते ! सवेदए त्ति०?

गोयमा ! सवेदए तिविहे पण्णत्ते । तं जहा - अणादीए वा अपज्जवसिए १ अणादीए वा सपज्जवसिए २ सादीए वा सपज्जवसिए ३ । तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेणं

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३८२

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३८२-३८३

अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणतं कालं, अणताओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं ।

[१३२६ प्र] भगवन् ! सवेद जीव कितने काल तक सवेदरूप मे रहता है ?

[१३२६ उ] गौतम ! सवेद जीव तीन प्रकार के कहे गए है । यथा—(१) अनादि-अनन्त, (२) अनादि-सान्त और (३) सादि-सान्त । उनमे से जो सादि-सान्त है, वह जघन्यत· अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्टतः अनन्तकाल तक (निरन्तर सवेदकपर्याय से युक्त रहता है ।) (अर्थात्—उत्कष्टत) काल से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो तक तथा क्षेत्र की अपेक्षा से देशोन अपार्द्ध-पुद्गलपरावर्त्त तक (जीव सवेद रहता है ।)

१३२७. इत्थिवेदे णं भते ! इत्थिवेदे त्ति कालओ केवचिरं होति ?

गोयमा ! एगेणं आदेसेणं जहण्णेण एक्क समय उक्कोसेण दसुत्तर पलिओवमसत पुव्वकोडि-पुहुत्तमब्भहियं १ एगेण आदेसेण जहण्णेण एगं समय उक्कोसेण अट्ठारस पलिओवमाइ पुव्वकोडिपुहुत्त-मब्भइयाइं २ एगेण आदेसेण जहण्णेण एग समयं उक्कोसेण चोद्दस पलिओवमाइ पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भ-इयाइं ३ एगेण आदेसेणं जहण्णेणं एग समयं उक्कोसेणं पलिओवमसय पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भइय ४ एगेण आदेसेणं जहण्णेणं एग समय उक्कोसेण पलिओवमपुहुत्त पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भइय ५ ।

[१३२७ प्र] भगवन् ! स्त्रीवेदक जीव स्त्रीवेदकरूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३२७ उ] गौतम ! १-एक अपेक्षा (आदेश) से (वह) जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक सौ दस पल्योपम तक, २-एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक अठारह पल्योपम तक ३-एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक चोदह पल्यापम तक, ४-एक अपेक्षा मे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक सौ पल्योपम तक, ५-एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक पल्योपमपृथक्त्व तक स्त्रीवेदी स्त्रीवेदीपर्याय मे लगातार रहता है ।

१३२८. पुरिसवेदे ण भते ! पुरिसवेदे त्ति० ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं सागरोवमसतपुहुत्त सातिरेग ।

[१३२८ प्र] भगवन् ! पुरुषवेदक जीव पुरुषवेदकरूप मे (लगातार) कितने काल तक रहता है ?

[१३२८ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपमशत-पृथक्त्व तक (वह पुरुषवेदकरूप मे रहता है ।)

१३२९. नपुसगवेदे णं भते ! णपुसगवेदे त्ति० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण वणस्सइकालो ।

[१३२९ प्र.] भगवन् ! नपुसकवेदक (लगातार) कितने काल तक नपुसकवेदकपर्याय-युक्त बना रहता है ?

[१३२९ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वनस्पतिकालपर्यन्त वह लगातार नपुंसकवेदकरूप मे रहता है।

१३३०. अवेदए णं भंते ! अवेदए त्ति० पुच्छा ?

गोयमा ! अवेदए दुविहे पण्णत्ते । त जहा -सादीए वा अपज्जवसिए १ सादीए वा सपज्जवसिए २ । तत्थ ण जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेण एक्क समय उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं । दार ६ ।।

[१३३० प्र] भगवन् ! अवेदक, अवेदकरूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३३० उ] गौतम ! अवेदक दो प्रकार के कहे गए है, वह इस प्रकार—(१) सादि-अनन्त और (२) सादि-सान्त । उनमे से जो सादि-सान्त है, वह जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक (निरन्तर अवेदकरूप मे रहता है।) छठा द्वार ।।५।।

विवेचन—छठा वेदद्वार--प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू १३२६ से १३३० तक) मे सवेदक, अवेदक और स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदी की कायस्थिति का निरूपण किया गया है।

त्रिविध सवेदक--(१) **अनादि-अपर्यवसित** जो जीव कभी उपशमश्रेणी अथवा क्षपकश्रेणी को प्राप्त नही करेगा, वह अनादि-अपर्यवसित (अनन्त) कहलाता है, उसके वेद के उदय का कदापि विच्छेद नही होगा । (२) **अनादि-सपर्यवसित**—जिसकी आदि न हो, पर अन्त हो । जो जीव कभी न कभी उपशमश्रेणी अथवा क्षपकश्रेणी को प्राप्त करेगा, किन्तु जिसने अभी तक कभी प्राप्त नही की है, वह अनादि-सपर्यवसित सवेदक है । ऐसे जीव के उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी प्राप्त कर लेने पर वेद का उदय हट जाता है । (३) **सादि-सपर्यवसित**—जो जीव उपशमश्रेणी को प्राप्त हो कर वेदातीत दशा प्राप्त कर चुकता है, किन्तु उपशमश्रेणी मे गिर कर पुनः सवेद-अवस्था प्राप्त कर लेता है, वह सादि-सपर्यवसित सवेदक कहलाता है।[1]

सादि-सपर्यवसित सवेदक की कालस्थिति—ऐसे सवेदक का कालमान जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल (मूलपाठोक्त कालिकपरिमाण) तक सवेदकपर्याय से युक्त निरन्तर बना रहता है । तात्पर्य यह है कि जब कोई जीव उपशमश्रेणी पर आरूढ हो कर तीनो वेदो का उपशम करके अवेदी बन जाता है, किन्तु उपशमश्रेणी से पतित हो कर फिर सवेदक अवस्था को प्राप्त करके पुन झटपट उपशमश्रेणी को, अथवा कार्मग्रन्थिको के मतानुसार क्षपकश्रेणी को प्राप्त करता है और फिर तीनो वेदो का अन्तर्मुहूर्त मे हो उपशम या क्षय कर देता है, तब वह जीव अन्तर्मुहूर्त तक ही सवेद-अवस्था में रहता है । उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गलपरावर्त तक जीव सवेद रहता है। क्योकि उपशमश्रेणी से पतित हो कर वह जीव इतने काल तक ही ससार मे परिभ्रमण करता है। इसलिए सादि-सान्त सवेदक जीव का पूर्वोक्त उत्कृष्ट कालमान सिद्ध हो जाता है।[2]

स्त्रीवेदी की पांच अपेक्षाओ से कालस्थिति का स्पष्टीकरण—स्त्रीवेदी का जघन्य कालमान एक समय का है, वह इस प्रकार है—कोई स्त्री उपशमश्रेणी मे तीनो वेदो का उपशम करके अवेदक-

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३८३

२. वही, मलय वृत्ति पत्रांक ३८४

पर्याय प्राप्त करके, तत्पश्चात् नीचे गिर कर एक समय तक स्त्रीवेद का अनुभव करे, पुन दूसरे समय मे काल करके देवो मे उत्पन्न हो जाए। वहाँ वह जीव पुरुषवेदी होता है, स्त्रीवेदी नही। इस प्रकार स्त्रीवेदी का जघन्यकाल एक समय मात्र सिद्ध हो जाता है।

(१) **प्रथम आदेशानुसार**—उत्कृष्टत पृथक्त्वकोटिपूर्व अधिक एक सौ दस पल्योपम **कालमान का स्पष्टीकरण** इस प्रकार है—कोई जीव करोड पूर्व की आयुवाली स्त्रियो मे या तिर्यंचनियो मे पाच-छह भव करके ईशानकल्प मे पचपन पल्योपम की आयु की उत्कृष्टस्थिति वाली अपरिगृहीता देवियो मे देवीरूप मे उत्पन्न हो और आयु का क्षय होने पर वहाँ से च्यव कर पुन कोटिपूर्व की आयु वाली स्त्रियो मे अथवा तिर्यचनियो मे स्त्रीरूप मे उत्पन्न हो, उसके पश्चात् पुन दूसरी बार ईशानकल्प मे पचपन पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति वाली परिगृहीता देवियो मे देवीरूप मे उत्पन्न हो उसके पश्चात् तो उसे अवश्य ही दूसरे वेद की प्राप्ति होती है। इन प्रकार उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक सौ दस पल्योपम तक निरन्तर स्त्रीवेदी का स्त्रीवेदपर्याय से युक्त होना सिद्ध होता है।

(२) **द्वितीय आदेशानुसार पूर्वकोटिपृथक्त्व-अधिक अठारह पल्योपम का स्पष्टीकरण**—कोई जीव पूर्ववत् करोडपूर्व की आयु वाली नारियो या तिर्यचनियो मे पाच-छह भवो का अनुभव करके पूर्वोक्त प्रकार से दो बार ईशानदेवलोक मे उत्कृष्ट स्थिति वाली देवियो मे उत्पन्न हो वह भी परिगृहीता देवियो मे उत्पन्न हो, अपरिगृहीता देवियो मे नही। ऐसी स्थिति मे स्त्रीवेदी की उत्कृष्ट कालस्थिति लगातार पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक अठारह पल्योपम की सिद्ध होती है।

(३) **तृतीय आदेशानुसार उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व-अधिक चौदह पल्योपम कालमान का स्पष्टीकरण**—कोई जीव सौधर्मदेवलोक मे सात पल्योपम की उत्कृष्ट आयु वाली परिगृहीता देवियो मे दो बार उत्पन्न होता है। इस प्रकार दो बार देवीभवो के चौदह पल्योपम और नारियो या तिर्यंचनियो के भवो के कोटिपूर्वपृथक्त्व अधिक स्त्रीवेदी का अस्तित्व होने से स्त्रीवेदी की निरन्तर कालावस्थिति कोटिपूर्वपृथक्त्व अधिक चौदह पल्योपम तक सिद्ध होती है।

(४) **चतुर्थ आदेशानुसार—पूर्वकोटिपृथक्त्व- अधिक पल्योपम कालमान का स्पष्टीकरण** कोई जीव सौधर्म देवलोक मे ५० पल्योपम की उत्कृष्ट आयु वाली अपरिगृहीता देवियो मे पूर्वोक्त प्रकार से दो बार देवीरूप मे उत्पन्न हो, तो स्त्रीवेदी की उत्कृष्ट कालावस्थिति लगातार पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक सौ पल्योपम की सिद्ध हो जाती है।

(५) **पचम आदेशानुसार उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक पल्योपमपृथक्त्व कालमान का स्पष्टीकरण**—नाना भवो मे भ्रमण करते हुए कोई भी जीव अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक से अधिक पल्योपमपृथक्त्व तक ही लगातार स्त्रीवेदी रह सकता है, इससे अधिक नही, क्योकि पूर्वकोटि की आयु वाली नारियो मे या तिर्यञ्चनियो मे सात भवो का अनुभव करके आठवे भव मे देवकुरु आदि क्षेत्रो मे तीन पल्योपम की स्थिति वाली स्त्रियो मे स्त्रीरूप मे उत्पन्न हो, तत्पश्चात् काल करके सौधर्मदेवलोक मे जघन्य स्थिति वाली देवियो मे देवीरूप से उत्पन्न हो तो तदनन्तर अवश्य ही वह जीव दूसरे वेद को प्राप्त हो जाता है। इस दृष्टि से स्त्रीवेदी की उत्कृष्ट स्थिति लगातार पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक पल्योपमपृथक्त्व सिद्ध हो जाती है।[1]

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३८४-३८५

अवेदक जीव की स्थिति— अवेदक जीव दो प्रकार के है-- सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। जो जीव क्षपकश्रेणी को प्राप्त करके अवेदी हो जाता है, वह **सादि-अपर्यवसित** अवेदी कहलाता है, क्योकि ऐसा जीव फिर कभी सवेदी नही हो सकता। जो जीव उपशमश्रेणी को प्राप्त करके अवेदक होता है, वह **सादि-सपर्यवसित** कहलाता है, क्योकि उसकी **अवेद-अवस्था** की आदि भी है और गिर कर नौवे गुणस्थान मे आने पर अन्त भी हो जाता है। इनमे से जो सादि-सपर्यवसित अवेदक है, वह जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक निरन्तर अवेदक रहता है, क्योकि जो जीव एक समय तक अवेदक रह कर दूसरे ही समय मे मर कर देवगति मे जन्म लेता है, वह पुरुषवेद का उदय होने से सवेदक हो जाता है। इस कारण यहाँ अवेदक का कालमान जघन्य एक समय कहा है। उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहने का कारण यह है कि अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् श्रेणी से पतित होने पर उसके वेद का उदय हो जाता है।

नपुसकवेदी की उत्कृष्ट कालावस्थिति— नपुसकवेदी की उत्कृष्ट कालावस्थिति वनस्पति-काल तक अर्थात् अनन्तकाल तक की बताई है, उसका कारण यह है कि वनस्पति के जीव नपुसक-वेदी होते हैं और उनका काल अनन्त है।[1]

सातवाँ कषायद्वार

१३३१. सकसाई ण भते ! सकसाईति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सकसाई तिविहे पण्णत्ते। त जहा-- अणादीए वा अपज्जवसिए १ अणादीए वा सपज्जवसिए २ सादीए वा सपज्जवसिए ३ जाव (सु. १३२६) अवड्ढं पोग्गलपरियट्ट देसूण।

[१३३१ प्र] भगवन् ! सकषायी जीव कितने काल तक सकषायीरूप मे रहता है ?

[१३३१ उ] गौतम ! सकषायी जीव तीन प्रकार के कहे है, वे इस प्रकार (१) अनादि-अपर्यवसित, (२) अनादि-सपर्यवसित और (३) सादि-सपर्यवसित। इनमे से जो सादि-सपर्यवसित है, उसका कथन सू १३२६ मे उक्त सादि-सपर्यवसित सवेदक के कथनानुसार यावत् क्षेत्रत देशोन अपार्द्ध पुद्गलपरावर्त तक (करना चाहिए।)

१३३२. कोहकसाई ण भते ! कोहकसाई त्ति० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त। एव जाव मायकसाई।

[१३३२ प्र] भगवन् ! क्रोधकषायी क्रोधकषायीपर्याय से युक्त कितने काल तक रहता है ?

[१३३२ उ] गौतम ! (वह) जघन्यत भी और उत्कृष्टत भी अन्तर्मुहूर्त तक (क्रोध-कषायी रूप मे रहता है।) इसी प्रकार यावत् (मानकषायी और) मायाकषायी (की कालावस्थिति कहनी चाहिए।)

१३३३. लोभकसाई ण भते ! लोभ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्क समयं, उक्कोसेण अंतोमुहुत्त।

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३८५
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भाग ४, पृष्ठ ३९९-४००

[१३३३ प्र.] भगवन् ! लोभकषायी, लोभकषायी के रूप मे कितने काल तक (लगातार) रहता है ?

[१३३३ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक (लोभकषायी निरन्तर लोभकषायीपर्याय से युक्त रहता है।)

१३३४. अकसाई णं भंते ! अकसाई त्ति कालश्रो केवचिरं होइ ?

गोयमा ! अकसाई दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—सादीए वा अपज्जवसिए १ सादीए वा सपज्जवसिए २। तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेण एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। दारं ७॥

[१३३४ प्र.] भगवन् ! अकषायी, अकषायी के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३३४ उ.] गौतम ! अकषायी दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार -(१) सादि-अपर्यवसित और (२) सादि-सपर्यवसित। इनमे से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक (अकषायीरूप मे रहता है।)   सप्तम द्वार ॥ ७ ॥

विवेचन—सप्तम कषायद्वार प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १३३१ से १३३३ तक) मे सकषायी, अकषायी तथा क्रोधादिकषायी के स्व-स्वपर्याय मे निरन्तर अवस्थित रहने का कालमान बताया गया है।

त्रिविध सकषायी की व्याख्या -जो जीव कषायसहित होता है, वह सकषायी कहलाता है। कषाय जीव का एक विकारी परिणाम है। सकषायी जीव तीन प्रकार के होते है (१) **अनादि-अनन्त**--जो जीव उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी को कदापि प्राप्त नही करेगा, वह **अनादि-अनन्त सकषायी** है, क्योकि उसके कषाय का कभी विच्छेद नही हो सकता। (२) **अनादि-सान्त**--जो जीव कभी उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी को प्राप्त करेगा, वह **अनादि-सान्त सकषायी** है, क्योकि उपशम-श्रेणी अथवा क्षपकश्रेणी प्राप्त करने पर ग्यारहवे गुणस्थान मे या बारहवे गुणस्थान मे उसके कषायोदय का विच्छेद हो जाता है। (३) **सादि-सान्त**--जो जीव उपशमश्रेणी प्राप्त करके और अकषायी होकर पुन उपशमश्रेणी से प्रतिपतित होकर सकषायी हो जाता है, वह **सादि-सान्त सकषायी** कहलाता है। क्योकि उसके कषायोदय की आदि भी है और भविष्य मे पुन कषायोदय का अन्त भी हो जाएगा।

इनमे जो सादि-सान्त सकषायी है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक निरन्तर सकषायी रहता है। इस विषय मे अनन्तकाल का[1] काल और क्षेत्र की दृष्टि से परिमाण और तद्विषयक युक्ति सवेदी की तरह समझनी चाहिए।

क्रोध-मान-मायाकषायी की कालावस्थिति क्रोध, मान और माया कषाय से युक्त जीव निरन्तर क्रोधादि कषायी के रूप मे अन्तर्मुहूर्त तक ही रहते हैं, क्योकि क्रोधादि किसी एक कषाय का उदय (विशिष्ट उपयोग) कम मे कम और अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक ही रह सकता है। जीव का स्वभाव ही ऐसा है कि क्रोधादि कषाय का उदय अन्तर्मुहूर्त के अधिक नही रहता।

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३८६

(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भाग ४, पृ ४०४

लोभकषायी जीव की कालावस्थिति—जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक लोभकषायी, लोभकषायी के रूप मे निरन्तर रहता है। जब कोई उपशमक जीव उपशमश्रेणी का अन्त होने पर (ग्यारहवे गुणस्थान मे) उपशान्तराग होने के बाद उपशमश्रेणी से गिरता है और लोभ के अश के वेदन के प्रथम समय मे ही मृत्यु को प्राप्त होकर देवलोक मे उत्पन्न होता है तथा क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी होता है, उस समय एक समय तक लोभकषायी पाया जाता है।

प्रश्न किया जा सकता है कि जो युक्ति लोभकषाय के सम्बन्ध मे दी गई है, उसी युक्ति के अनुसार क्रोधादि का भी जघन्य एक समय तक रहना क्यो नही बतलाया गया ? इसका समाधान यह है कि यद्यपि उपशमश्रेणी से गिरता हुआ जीव क्रोधकषाय के वेदन के प्रथम समय मे, मान के वेदन के प्रथम समय मे अथवा माया के वेदन के प्रथम समय मे मृत्यु पाकर देवलोक मे उत्पन्न होता है, तथापि स्वभावशात् जिस कषाय के उदय के साथ जीव ने काल किया है, वही कषाय आगामी भव मे भी अन्तर्मुहूर्त तक रहती है। इसी से अधिकृत सूत्र के प्रामाण्य से ज्ञात होता है कि क्रोध, मान और माया कषाय अनेक समय तक रहती हैं।[1]

अकषायी की कालावस्थिति—अकषायी-विषयक सूत्र अवेदक-सूत्र की युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिए। क्षपकश्रेणी प्राप्त अकषायी सादि-अनन्त होता है, क्योकि क्षपकश्रेणी से उसका प्रतिपात नही होता। किन्तु जो उपशमश्रेणी-आरूढ होकर अकषायी होता है, वह सादि-सान्त होता है। अत जघन्य एक समय तक अकषायपर्याय से युक्त रहना है। एक समय अकषायी होकर दूसरे समय मे वह मर कर तत्काल (उसी समय मे) देवलोक मे उत्पन्न होता है और कषाय के उदय से सकषायी हो जाता है। इस कारण अकषायित्व का जघन्यकाल एक समय का है। उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक वह अकषायी रहता है, तत्पश्चात् उपशमश्रेणी से अवश्य ही पतित होकर सकषायी हो जाता है।[2]

आठवाँ लेश्याद्वार

१३३५. सलेस्से ण भंते ! सेलेसे त्ति ० पुच्छा

गोयमा ! सलेसे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा अणादीए वा अपज्जवसिए १ अणादीए वा सपज्जवसिए २।

[१३३५ प्र] भगवन् ! सलेश्यजीव सलेश्य-अवस्था मे कितने काल तक रहता है ?

[१३३५ उ] गौतम ! सलेश्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार -(१) अनादि-अपर्यवसित और (२) अनादि-सपर्यवसित।

१३३६ कण्हलेसे णं भंते ! कण्हलेसे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं।

[१३३६ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाला जीव कितने काल तक कृष्णलेश्या वाला रहता है ?

[१३३६ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक (लगातार कृष्णलेश्या वाला रहता है)।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३८६

२. प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भाग ४, पृ. ४०८

१३३७. णीललेसे णं भंते ! णीललेसे त्ति० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं पलिओवमासंखेज्जइभागब्भहियाइं ।

[१३३७ प्र] भगवन् ! नीललेश्या वाला जीव कितने काल तक नीललेश्या वाला रहता है ?

[१३३७ उ] गौतम ! (वह) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत पल्योपम के असंख्यातवे भाग अधिक दस सागरोपम तक (लगातार नीललेश्या वाला रहता है) ।

१३३८. काउलेस्से णं० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं पलिओवमासंखेज्जइभागब्भहियाइं ।

[१३३८ प्र] भगवन् ! कापोतलेश्यावान् जीव कितने काल तक कापोतलेश्या वाला रहता है ?

[१३३८ उ.] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग अधिक तीन सागरोपम तक (कापोतलेश्या वाला लगातार रहता है) ।

१३३९. तेउलेस्सेण ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण दो सागरोवमाइं पलिओवमासंखेज्जइभागब्भहियाइं ।

[१३३९ प्र] भगवन् ! तेजोलेश्यावान् जीव कितने काल तक तेजोलेश्या वाला रहता है ?

[१३३९ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग अधिक दो सागरोपम तक (तेजोलेश्यायुक्त रहता है) ।

१३४०. पम्हलेस्से ण० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तब्भहियाइं ।

[१३४० प्र] भगवन् ! पद्मलेश्यावान् जीव कितने काल तक पद्मलेश्या वाला रहता है ।

[१३४० उ.] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम तक (पद्मलेश्या से युक्त रहता है) ।

१३४१ सुक्कलेस्से ण भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तब्भहियाइं ।

[१३४१ प्र] भगवन ! शुक्ललेश्यावान् जीव कितने काल तक शुक्ललेश्या वाला रहता है ?

[१३४१ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक (शुक्ललेश्या वाला रहता है) ।

१३४२. अलेस्से णं० पुच्छा ?

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए । दारं ८ ॥

[१३४२ प्र] भगवन् ! अलेश्यी जीव कितने काल तक अलेश्यीरूप में रहता है ?

[१३४२ उ] गौतम ! (अलेश्य-अवस्था) सादि-अपर्यवसित है । अष्टम द्वार ॥ ८ ॥

विवेचन अष्टम लेश्याद्वार- -प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. १३३५ से १३४२ तक) में सलेश्य, अलेश्य तथा कृष्णादि षट्लेश्या वाले जीवों का स्व-स्व-पर्याय में रहने का कालमान प्ररूपित किया गया है ।

द्विविध सलेश्य जीवों की कालावस्थिति जो लेश्या से युक्त हो, वे सलेश्य कहलाते हैं । वे दो प्रकार के हैं (१) **अनादि-अपर्यवसित** जो कदापि संसार का अन्त नहीं कर सकते, (२) **अनादि-सपर्यवसित**- जो संसारपारगामी हों ।

लेश्याओं का जघन्य एवं उत्कृष्ट काल --तिर्यञ्चों और मनुष्यों के लेश्याद्रव्य अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं, उसके बाद अवश्य ही बदल जाते हैं । किन्तु देवों और नारकों के लेश्याद्रव्य पूर्वभव सम्बन्धी अन्तिम अन्तर्मुहूर्त से प्रारम्भ होकर परभव के प्रथम अन्तर्मुहूर्त तक स्थायी रहते हैं । इसलिए लेश्याओं का जघन्यकाल (अन्तर्मुहूर्त) सर्वत्र मनुष्यों और तिर्यञ्चों की अपेक्षा से तथा उत्कृष्ट काल देवों और नारकों की अपेक्षा से जानना चाहिए ।[1] यहां **उत्कृष्ट लेश्याकाल** विभिन्न प्रकार का है । वह इस प्रकार है

कृष्णलेश्यी का उत्कृष्टकाल कृष्णलेश्या का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम का कहा है, वह सातवीं नरकभूमि की अपेक्षा से जानना चाहिए । क्योंकि सप्तम नरकपृथ्वी के नारक कृष्णलेश्या वाले होते हैं और उनकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की होती है तथा पूर्वभव और उत्तरभव सम्बन्धी दो अन्तर्मुहूर्त हैं, वे दोनों मिलकर भी अन्तर्मुहूर्त ही होते हैं, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के भी असंख्य भेद हैं ।

नीललेश्यी का उत्कृष्टकाल—पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम का है । यह उत्कृष्ट कालमान पांचवीं नरकपृथ्वी की अपेक्षा से समझना चाहिए । क्योंकि पांचवें नरक के प्रथम पाथडे (प्रस्तट) में नीललेश्या होती है । उक्त पाथडे में उपर्युक्त स्थिति होती है । पूर्वभव और उत्तर-भव सम्बन्धी दोनों अन्तर्मुहूर्त पल्योपम के असंख्यातवें भाग में ही सम्मिलित हो जाते हैं । अतएव उनकी पृथक् विवक्षा नहीं की गई है ।

कापोतलेश्यी का उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम कहा गया है । वह तीसरी नरकपृथ्वी की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योंकि तीसरी नरकपृथ्वी के प्रथम पाथडे में इतनी स्थिति है और उसमें कापोतलेश्या भी होती है ।

तेजोलेश्यी जीव का उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम कहा गया है । यह ईशान देवलोक की अपेक्षा से समझना चाहिए । क्योंकि ईशान देवलोक के देवों में तेजोलेश्या होती है और उनकी उत्कृष्ट स्थिति भी यही है ।

पद्मलेश्यी जीव का उत्कृष्टकाल--अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम का कहा गया है । वह

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३८६

ब्रह्मलोक कल्प की अपेक्षा से समझना चाहिए। ब्रह्मलोक के देव पद्मलेश्या वाले होते हैं और उनकी उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है। पूर्वभव और उत्तरभव सम्बन्धी दोनो अन्तर्मुहूर्त एक ही अन्तर्मुहूर्त मे समाविष्ट हो जाते है, इसी कारण यहाँ अन्तर्मुहूर्त अधिक कहा गया है।

शुक्ललेश्यावान् का उत्कृष्टकाल—अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम कहा गया है। यह कथन अनुत्तरविमानवासी देवो की अपेक्षा से समझना चाहिए। क्योकि उनमे शुक्ललेश्या होती है और उनकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है। अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वोक्त युक्ति से समझ लेना चाहिए।[1]

अलेश्य जीवो की कालावस्थिति—अलेश्य जीव अयोगीकेवली और सिद्ध होते है, वे सदाकाल लेश्यातीत रहते है। इसलिए अलेश्य अवस्था को सादि-अनन्त कहा गया है।[2]

नौवाँ सम्यक्त्वद्वार

१३४३ सम्मद्दिट्ठी ण भंते ! सम्मद्दिट्ठि० केवचिर होइ ?

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठी दुविहे पण्णत्ते। त जहा सादीए वा अपज्जवसिए १ सादीए वा सपज्जवसिए २। तत्थ ण जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइ सातिरेगाइ।

[१३४३ प्र] भगवन् ! सम्यग्दृष्टि कितने काल तक सम्यग्दृष्टिरूप मे रहता है ?

[१३४३ उ] गौतम ! सम्यग्दृष्टि दो प्रकार के कहे गए है, वे इस प्रकार—(१) सादि-अपर्यवसित और (२) सादि-सपर्यवसित। इनमे से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक (सादि-सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि रूप मे रहता है।)

१३४४. मिच्छद्दिट्ठी णं भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! मिच्छद्दिट्ठी तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—अणादीए वा अपज्जवसिए १ अणाईए वा सपज्जवसिए २ सादीए वा सपज्जवसिए ३। तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणंत काल, अणंताओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण।

[१३४४ प्र] भगवन् ! मिथ्यादृष्टि कितने काल तक मिथ्यादृष्टिरूप मे रहता है ?

[१३४४ उ] गौतम ! मिथ्यादृष्टि तीन प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार- (१) अनादि-अपर्यवसित, (२) अनादि-सपर्यवसित और (३) सादि-सपर्यवसित। इनमे से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक, (अर्थात्) काल की अपेक्षा से अनन्त

१ (क) 'पचमियाए मिस्सा।'
(ख) 'तईयाए मीसिया।'
(ग) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३८७

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३८७

उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो तक और क्षेत्र की अपेक्षा से देशोन अपार्द्ध पुद्गल-परावर्त्त तक (मिथ्या दृष्टिपर्याय से युक्त रहता है।)

१३४५. सम्मामिच्छद्दिट्ठी णं० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं । दारं ९॥

[१३४५ प्र.] भगवन् ! सम्यग्मिथ्यादृष्टि कितने काल तक सम्यग्मिथ्यादृष्टि बना रहता है ?

[१३४५ उ.] गौतम ! (वह) जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक सम्यग्दृष्टि-पर्याय मे रहता है।

विवेचन—नौवाँ सम्यक्त्वद्वार- प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू. १३४३ से १३४५ तक) मे सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि इन तीनो के स्व-स्वपर्याय की कालस्थिति का निरूपण किया गया है।

सम्यग्दृष्टि की व्याख्या—जिसकी दृष्टि सम्यक्, यथार्थ या अविपरीत हो अथवा जिनप्रणीत वस्तुतत्त्व पर जिसकी श्रद्धा, प्रतीति एव रुचि सम्यक् हो, उसे सम्यग्दृष्टि कहते है।

सम्यग्दृष्टि दो प्रकार के होते है—**सादि-अनन्त** -जिसे क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है, वह सादि अनन्त सम्यग्दृष्टि है क्योकि एक बार उत्पन्न होने पर क्षायिक सम्यक्त्व का विनाश नही होता। क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यक्त्व की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि **सादि-सान्त** होता है, क्योकि ये दोनो सम्यक्त्व अनन्त नही, सान्त हैं। औपशमिक सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्त तक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व छियासठ सागरोपम तक रहता है। इसी अपेक्षा से कहा गया है कि सादि-सान्त सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक सम्यग्दृष्टिपर्याययुक्त रहता है, उसके पश्चात् उसे मिथ्यात्व की प्राप्ति हो जाती है। यह कथन औपशमिक सम्यक्त्व की दृष्टि से है। उत्कृष्ट किंचित् अधिक ६६ सागरोपम तक सम्यग्दृष्टि बना रहता है। यह कथन क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की अपेक्षा से है। यदि कोई जीव दो बार विजयादि विमानो मे सम्यक्त्व के साथ उत्पन्न हो अथवा तीन बार अच्युतकल्प मे उत्पन्न हो तो छियाठस सागरोपम व्यतीत हो जाते हैं और जो किञ्चित् अधिक काल कहा है, वह बीच के मनुष्यभवो का समझना चाहिए।[1]

त्रिविधमिथ्यादृष्टि (१) **अनादि-अनन्त**- जो अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि है और अनन्त-काल तक बना रहेगा, वह अभव्यजीव, (२) **अनादि-सान्त**--जो अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि तो है, किन्तु भविष्य मे जिसे सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी, (३) **सादि-सान्त-मिथ्यादृष्टि**—जो सम्यक्त्व को प्राप्त करने के पश्चात् पुन मिथ्यादृष्टि हो गया है और भविष्य मे पुनः सम्यक्त्व प्राप्त करेगा।

इन तीनो मे से जो सादि-सान्त मिथ्यादृष्टि है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक मिथ्यादृष्टि रहता है। अन्तर्मुहूर्त तक मिथ्यादृष्टि रहने के पश्चात् उसे पुन सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है। उत्कृष्ट

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३८७-३८८

(ख) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा ४, पृ ४२०-४२१

(ग) " दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्निऽच्चुए अहव ताइं।
अइरेगं नरभवियं · · ॥"

अनन्तकाल तक वह मिथ्यादृष्टि बना रहता है और अनन्तकाल व्यतीत होने के पश्चात् उसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

अनन्तकाल—कालत अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणिया समझनी चाहिए तथा क्षेत्रत. देशोन अपार्द्ध (क्षेत्र) पुद्गलपरावर्तन सर्वत्र समझना चाहिए।[1]

सम्यग्मिथ्यादृष्टि की कालावस्थिति— मिश्रदृष्टि अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् नही रहती। अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् मिश्रदृष्टि वाला जीव या तो सम्यदृष्टि हो जाता है, या मिश्रदृष्टि हो जाता है, इसलिए सम्यग्मिथ्यादृष्टि का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त का ही समझना चाहिए।[2]

दसवाँ ज्ञानद्वार

१३४६. णाणी णं भंते ! णाणीति कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! णाणी दुविहे पण्णत्ते। त जहा सादीए वा अपज्जवसिए १ सादीए वा सपज्जवसिए २। तत्थ ण जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइ साइरेगाइ।

[१३४६ प्र] भगवन् ! ज्ञानी जीव कितने काल तक ज्ञानीपर्याय मे निरन्तर रहता है ?

[१३४६ उ] गौतम ! ज्ञानी दो प्रकार के कहे गए है, वे इस प्रकार—(१) सादि-अपर्यवसित और (२) सादि-सपर्यवसित। इनमे से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक (लगातार ज्ञानीरूप मे बना रहता है।)

१३४७ आभिणिबोहियणाणी णं भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! एवं चेव।

[१३४७ प्र] भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञानी आभिनिबोधिकज्ञानी के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३४७ उ] गौतम ! (सामान्य ज्ञानी के विषय मे जैसा कहा है) इसी प्रकार (इसके विषय मे समझ लेना चाहिए।)

१३४८ एवं सुयणाणी वि।

[१३४८] इसी प्रकार श्रुतज्ञानी (का भी कालमान समझ लेना चाहिए।)

१३४९. ओहिणाणी वि एव चेव। णवर जहणेण एक्कं समय।

[१३४९] अवधिज्ञानी का कालमान भी इसी प्रकार है, विशेषता यह है कि वह जघन्य एक समय तक ही (अवधिज्ञानी के रूप मे रहता है।)

१३५० मणपज्जवणाणी ण भंते ! मणपज्जवणाणीति कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडि।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ३८८

२ वही मलय वृत्ति, पत्राक ३८८-३८९

[१३५० प्र.] भगवन् ! मन:पर्यवज्ञानी कितने काल तक (निरन्तर) मन पर्यवज्ञानी के रूप मे रहता है ?

[१३५० उ] गौतम ! (वह) जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि (करोड-पूर्व) तक (सतत मन.पर्यवज्ञानीपर्याय मे रहता है ।)

१३५१. केवलणाणी ण० पुच्छा ?

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए ।

[१३५१ प्र] भगवन् ! केवलज्ञानी, केवलज्ञानी के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३५१ उ] गौतम ! (केवलज्ञानी-पर्याय) सादि-अपर्यवसित होती है ।

१३५२ अण्णाणी-मइअण्णाणी-सुयअण्णाणी णं० पुच्छा ?

गोयमा ! अण्णाणी मतिअण्णाणी सुयअण्णाणी तिविहे पण्णत्ते । तं जहा अणादीए वा अपज्जवसिए १ अणादीए वा सपज्जवसिए २ सादीए वा सपज्जवसिए ३ । तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणतं काल, अणताओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूण ।

[१३५२ प्र] भगवन् ! अज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी कितने काल तक (निरन्तर स्व-पर्याय मे रहते है ?)

[१३५२ उ.] गौतम ! अज्ञानी, मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी तीन-तीन प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार (१) अनादि-अपर्यवसित, (२) अनादि-सपर्यवसित और (३) सादि-सपर्यवसित । उनमे से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक (अर्थात्) काल की अपेक्षा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो तक एव क्षेत्र की अपेक्षा से देशोन अपार्द्ध पुद्गलपरावर्त्त तक (निरन्तर स्व-स्वपर्याय मे रहते हैं ।)

१३५३. विभगणाणी णं भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्क समयं, उक्कोसेणं तेत्तीस सागरोवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं । दारं १० ॥

[१३५३ प्र] भगवन् ! विभगज्ञानी कितने काल तक विभगज्ञानी के रूप मे रहता है ?

[१३५३ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक, उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम तक (वह विभगज्ञानी-पर्याय मे लगातार बना रहता है ।) दसवाँ द्वार ।।१०।।

विवेचन—दसवाँ ज्ञानद्वार—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू १३४६ से १३५३ तक) मे सामान्य ज्ञानी आभिनिबोधिक आदि ज्ञानी, अज्ञानी, मत्यादि अज्ञानी, स्व-स्वपर्याय मे कितने काल तक रहते है ? इसका चिन्तन प्रस्तुत किया गया है ।

ज्ञानी-अज्ञानी की परिभाषा—जिसमे सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यग्ज्ञान हो, वह ज्ञानी कहलाता है, जिसमे सम्यग्ज्ञान न हो, वह अज्ञानी कहलाता है ।

द्विविध ज्ञानी—(१) **सादि-अपर्यवसित**—जिस जीव को सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् सदैव बना रहे, वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि ज्ञानी या केवलज्ञानी सादि-अपर्यवसित ज्ञानी है। (२) **सादि-सपर्यवसित**—जिसका सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन का अभाव होने पर नष्ट होने वाला है, वह सादि-सपर्यवसित ज्ञानी है। केवलज्ञान के सिवाय अन्य ज्ञानो की अपेक्षा ऐसा ज्ञानी सादि-सपर्यवसित कहलाता है, क्योकि वे ज्ञान नियतकालभावी है, अनन्त नही हैं। इन दोनो में से सादि-सान्त ज्ञानी-अवस्था जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक रहती है, उसके पश्चात् मिथ्यात्व के उदय से ज्ञानपरिणाम का विनाश हो जाता है। उत्कृष्टकाल जो ६६ सागरोपम से कुछ अधिक कहा गया है, उसका स्पष्टीकरण सम्यग्दृष्टि के समान ही समझ लेना चाहिए, क्योकि सम्यग्दृष्टि ही ज्ञानी होता है।[1]

अवधिज्ञानी का अवस्थानकाल—अवधिज्ञानी का जघन्य अवस्थानकाल एक समय का है, अन्तर्मुहूर्त का नही, क्योकि विभगज्ञानी कोई तिर्यंचपचेन्द्रिय, मनुष्य अथवा देव जब सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तो सम्यक्त्व की प्राप्ति होते ही उसका विभगज्ञान अवधिज्ञान के रूप मे परिणत हो जाता है। किन्तु देव के च्यवन के कारण और अन्य जीव की मृत्यु होने पर या अन्य कारणो से अनन्तर समय मे ही जब वह अवधिज्ञान नष्ट हो जाता है, तब उसका अवस्थान एक समय तक रहता है। इसकी उत्कृष्ट अवस्थिति ६६ सागरोपम की है। वह इस प्रकार से है—अप्रतिपाती-अवधिज्ञान प्राप्त जीव दो बार विजय आदि विमानो मे जाता है, अथवा तीन बार अच्युतदेवलोक मे उत्पन्न होता है, तब उसकी स्थिति छियासठ सागरोपम की होती है।

मन:पर्यवज्ञानी का अवस्थानकाल - मन पर्यवज्ञानी मन पर्यवज्ञानी-अवस्था मे जघन्य एक समय तक रहता है। जब अप्रमत्त-अवस्था मे वर्तमान किसी सयत को मन पर्यवज्ञान उत्पन्न होता है और अप्रमत्तसयत-अवस्था मे ही उसकी मृत्यु हो जाती है, तब वह मन पर्यवज्ञानी एक समय तक ही मन पर्यवज्ञानी के रूप मे रहता है। उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि तक अवस्थिति का कारण यह है कि इससे अधिक सयम रहता ही नही है और सयम के अभाव मे मन पर्यवज्ञान भी रह नही सकता।[2]

त्रिविध अज्ञानी, मत्यज्ञानी तथा श्रुताज्ञानी अनादि-अनन्त—जिसने कभी सम्यग्ज्ञान प्राप्त नही किया है और जो भविष्य मे भी ज्ञान प्राप्त नही करेगा, वह अनादि-अनन्त अज्ञानी है। (२) **अनादि-सान्त** –जिसने कभी ज्ञान प्राप्त नही किया है, किन्तु कभी प्राप्त करेगा, वह अनादि-सान्त अज्ञानी है। (३) **सादि-सान्त** जो जीव सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके पुन मिथ्यात्वोदय से अज्ञानी हो गया हो, किन्तु भविष्य में पुन ज्ञान प्राप्त करेगा, वह सादि-सान्त अज्ञानी है। सादि-सान्त अज्ञानी लगातार जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक अज्ञानी-पर्याय मे युक्त रहता है, तत्पश्चात् सम्यक्त्व प्राप्त करके ज्ञानी बन जाता है, उसकी अज्ञानी-पर्याय नष्ट हो जाती है। उत्कृष्ट अनन्तकाल तक वह अज्ञानी रहता है, इसका कारण पहले कहा चुका है। इतने काल (अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल) के अनन्तर उस जीव को अवश्य ही सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है और उसका अज्ञानपरिणाम दूर हो जाता है।[3]

विभगज्ञानी का अवस्थानकाल—वह जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३८९

२. वही, मलय वृत्ति, पत्राक ३८९

३. वही, मलय वृत्ति, पत्राक ३८९-३९०

तेतीस सागरोपम तक विभंगज्ञानी बना रहता है। जब कोई पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य अथवा देव सम्यग्दृष्टि होकर अवधिज्ञानी होता है और फिर मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है, तब मिथ्यात्व की प्राप्ति के समय मिथ्यात्व के प्रभाव से उसका अवधिज्ञान विभंगज्ञान के रूप में परिणत हो जाता है। इस प्रकार मिथ्यात्वप्राप्ति के अनन्तर समय में ही जब उस विभंगज्ञानी देव, मनुष्य या पंचेन्द्रिय-तिर्यंच की मृत्यु हो जाती है, तब विभंगज्ञान का अवस्थान एक समय तक ही रहता है। जब कोई मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रियतिर्यंच या मनुष्य करोड पूर्व की आयु के कतिपय वर्ष व्यतीत हो जाने पर विभंगज्ञान प्राप्त करता है और उक्त विभंगज्ञान के साथ ही सप्तम नरकभूमि में तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में उत्पन्न होता है, उस समय विभंगज्ञानी का अवस्थानकाल देशोन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम का होता है। तदनन्तर वह जीव या तो सम्यक्त्व को प्राप्त करके अवधि-ज्ञानी बन जाता है, अथवा उसका विभंगज्ञान नष्ट ही हो जाता है।[1]

ग्यारहवाँ दर्शनद्वार

१३५४ चक्खुदंसणी णं भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसहस्सं सातिरेगं।

[१३५४ प्र] भगवन् ! चक्षुर्दर्शनी कितने काल तक चक्षुर्दर्शनीपर्याय में रहता है ?

[१३५४ उ] गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार सागरोपम तक (चक्षुर्दर्शनीपर्याय में रहता है)।

१३५५ अचक्खुदंसणी णं भंते ! अचक्खुदंसणी त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! अचक्खुदंसणी दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—अणादीए वा अपज्जवसिए १ अणादीए वा सपज्जवसिए २।

[१३५५ प्र] भगवन् ! अचक्षुर्दर्शनी, अचक्षुर्दर्शनीरूप में कितने काल तक रहता है ?

[१३५५ उ] गौतम ! अचक्षुर्दर्शनी दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—१ अनादि-अपर्यवसित और २ अनादि-सपर्यवसित।

१३५६. ओहिदंसणी णं० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दो छावट्ठीओ सागरोवमाणं सातिरेगाओ।

[१३५६ प्र] भगवन् ! अवधिदर्शनी, अवधिदर्शनीरूप में कितने काल तक रहता है ?

[१३५६ उ.] गौतम ! (वह) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो छियासठ सागरोपम तक (अवधिदर्शनीपर्याय में रहता है)।

१३५७. केवलदंसणी णं० पुच्छा ?

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए। दारं ११ ॥

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३९०

[१३५७ प्र.] भगवन् ! केवलदर्शनी कितनी काल तक केवलदर्शनीरूप मे रहता है ?

[१३५७ उ] गौतम ! केवलदर्शनी सादि-अपर्यवसित होता है। ग्यारहवाँ द्वार ॥११॥

बारहवाँ संयतद्वार

१३५८. संजए ण भंते ! सजए त्ति० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडिं ।

[१३५८ प्र] भगवन् ! सयत कितने काल तक सयतरूप मे रहता है ?

[१३५८ उ] गौतम ! (वह) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट देशोन करोड पूर्व तक सयतरूप मे रहता है।

१३५९. असजए ण भंते ! असंजए त्ति० पुच्छा ?

गोयमा ! असंजए तिविहे पण्णत्ते । त जहा अणादीए वा अपज्जवसिए १ अणादीए वा सपज्जवसिए २ सादीए वा सपज्जवसिए ३ । तत्थ ण जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणत काल, अणताओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालतो, खेत्तओ अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण ।

[१३५९ प्र] भगवन् ! असयत कितने काल तक असयतरूप मे रहता है ?

[१३५९ उ] गौतम ! असयत तीन प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—१ अनादि-अपर्यवसित, २ अनादि-सपर्यवसित और ३ सादि-सपर्यवसित। उनमे से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक, (अर्थात्) काल की अपेक्षा--अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो तक तथा क्षेत्र की अपेक्षा देशोन अपार्द्ध पुद्गलपरावर्त्त तक (वह असयत पर्याय मे रहता है)।

१३६० सजयासंजए जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण देसूणं पुव्वकोडिं ।

[१३६०] सयतासयत जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक (सयता-सयतरूप मे रहता है)।

१३६१. णोसजए णोअसजए णोसजयासजए ण० पुच्छा ?

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए । दार १२ ॥

[१३६१ प्र] भगवन् ! नोसयत, नोअसयत, नोसयतासयत कितने काल तक नोसयत, नोअसयत, नोसयतासयतरूप मे बना रहता है ?

[१३६१ उ.] गौतम ! वह सादि-अपर्यवसित है। बारहवाँ द्वार ॥१२॥

तेरहवाँ उपयोगद्वार

१३६२. सागारोवउत्ते ण भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं ।

[१३६२ प्र.] भगवन् ! साकारोपयोगयुक्त जीव निरन्तर कितने काल तक साकारोपयोग-युक्तरूप मे बना रहता है ?

[१३६२ उ.] गौतम ! (वह) जघन्यत: और उत्कृष्टत: भी अन्तर्मुहूर्त तक साकारोपयोग से युक्त बना रहता है ।

१३६३. अणागारोवउत्ते वि एवं चेव । दारं १३ ॥

[१३६३] अनाकारोपयोगयुक्त जीव भी इसी प्रकार जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक (अनाकारोपयोगयुक्तरूप मे बना रहता है) । तेरहवाँ द्वार ॥१३॥

विवेचन - ग्यारहवाँ, बारहवाँ और तेरहवाँ दर्शन, संयत और उपयोग द्वार प्रस्तुत दस सूत्रो (सू १३५४ से १३६३ तक) मे चक्षुर्दर्शनी आदि चतुष्टय, सयत, असयत, सयतासयत और नोसयत, नोअसयत, नोसयतासयत तथा साकारोपयोगयुक्त एव अनाकारोपयोगयुक्त जीव का स्व-स्वपर्याय मे अवस्थानकालमान प्रतिपादित किया गया है ।

चक्षुर्दर्शनी का अवस्थान काल—चक्षुर्दर्शनी जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार सागरोपम तक निरन्तर चक्षुर्दर्शनी बना रहता है । जब कोई त्रीन्द्रिय जीव चतुरिन्द्रियादि मे उत्पन्न होकर उस पर्याय मे अन्तर्मुहूर्त तक स्थित रह कर पुन त्रीन्द्रिय आदि मे उत्पन्न हो जाता है, तब चक्षुर्दर्शनी अन्तर्मुहूर्त चक्षुर्दर्शनीपर्याय से युक्त होता है । उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार सागरोपम जो कहा है, वह चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रियतिर्यञ्च एव नारक आदि भवो मे भ्रमण करने के कारण समझना चाहिए ।

द्विविध अचक्षुर्दर्शनी १ अनादि-अनन्त—जो जीव कभी सिद्धि प्राप्त नही करेगा । २ **अनादि-सान्त**—जो कदाचित् सिद्धि प्राप्त करेगा ।

अवधिदर्शनी का अवस्थानकालमान—जघन्य एक समय और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो छियासठ सागरोपम है । वह इस प्रकार– बारहवाँ देवलोक २२ सागरोपम की स्थिति वाला है । उसमे कोई भी जीव यदि विभगज्ञान लेकर जाए तथा लौटते समय अवधिज्ञान लेकर लौटे तो इस प्रकार बाईस सागरोपम काल विभगज्ञान का और बाईस सागरोपम काल अवधिज्ञान का हुआ । पूर्वोक्त प्रकार से ही यदि तीन बार विभगज्ञान लेकर जाए तथा अवधिज्ञान लेकर आए तो ६६ सागरोपम काल विभगज्ञान का और ६६ सागरोपम काल अवधिज्ञान का हुआ । बीच के मनुष्यभवो का काल कुछ अधिक जानना चाहिए । इस प्रकार कुल कुछ अधिक दो छियासठ सागरोपम काल होता है ।[1] ध्यान मे रहे कि विभगज्ञानी का दर्शन भी अवधिदर्शन ही कहलाता है, विभगदर्शन नही ।[2]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३९०

२ सुत्ते विभगस्स वि परूविय ओहिदसण बहुसो ।
कीस पुणो पडिसिद्ध कम्मपगडीपगरणमि ॥ १ ॥
विभगे वि दरिसण सामण्ण-विसेसविसयओ सुत्ते ।
त चऽविसिट्ठमणागारमेत्त तोऽवहि विभगाण ॥ २ ॥
कम्मपगडीमय पुण सागारेयरविसेसभावे वि ।
न विभगनाणदसण विसेसणमणिच्छियत्तणओ ॥ ३ ॥

(प्रज्ञा म वृ पत्र ३९१) – विशेषणवती (जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण)

त्रिविध असंयत—१. **अनादि-अपर्यवसित**—जिसने कभी सयम पाया नही और कभी पाएगा भी नही, २. **अनादि-सपर्यवसित**—जिसने कभी सयम पाया नही, भविष्य मे पाएगा, ३. **सादि-सपर्यवसित**—जो जीव सयम प्राप्त करके उससे भ्रष्ट हो गया है, किन्तु पुन सयम प्राप्त करेगा। सादि-सान्त असयत जघन्य अन्तर्मु हूर्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक असयतपर्याय से युक्त रहता है। अनन्तकाल (अपार्ध पुद्गलपरावर्त) व्यतीत होने के पश्चात् उसे सयम की प्राप्ति अवश्य ही होती है।[1]

संयतासंयत एव संयत का अवस्थानकाल—देशविरति की प्रतिपत्ति का उपयोग जघन्य अन्तर्मु हूर्त का होता है। अतएव यहाँ जघन्यकाल अन्तमुर्हूर्त प्रमाण कहा है। देशविरति मे दो करण तीन योग आदि अनेक भग होते हैं। अत उसे अगीकार करने में अन्तर्मुहूर्त लग ही जाता है। सर्वविरति मे सर्वसावद्य के त्याग के रूप मे प्रतिज्ञा अगीकार करने का उपयोग एक समय मे भी हो सकता है, इसी कारण सयत का जघन्य काल एक समय कहा गया है।

नोसयत-नोअसंयत-नोसयतासयत—जो सयत भी नही, असयत भी नही और सयतासयत भी नही, ऐसा जीव सिद्ध ही होता है और सिद्धपर्याय सादि-अनन्त है।[2]

साकारोपयोग तथा अनाकारोपयोग युक्त का अवस्थानकाल—जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मु हूर्त का होता है। छद्मस्थ जीवो का उपयोग, चाहे वह साकारोपयोग हो अथवा अनाकारोपयोग, अन्तर्मु हूर्त का ही होता है। केवलियो का एकसामयिक उपयोग यहाँ विवक्षित नही है।

चौदहवाँ आहारद्वार

१३६४. आहारए णं भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! आहारए दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—छउमत्थआहारए य केवलिआहारए य।

[१३६४ प्र] भगवन् ! आहारक जीव (लगातार) कितने काल तक आहारकरूप मे रहता है ?

[१३६४ उ] गौतम ! आहारक जीव दो प्रकार के कहे है, यथा—छद्मस्थ-आहारक और केवली-आहारक।

१३६५. छउमत्थाहारए णं भंते ! छउमत्थाहारए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं दुसमऊणं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

[१३६५ प्र] भगवन् ! छद्मस्थ-आहारक कितने काल तक छद्मस्थ-आहारक के रूप मे रहता है ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३९२

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३९२

[१३६५ उ.] गौतम ! जघन्य दो समय कम क्षुद्रभव ग्रहण जितने काल और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक (लगातार छद्मस्थ-आहारकरूप मे रहता है)। (अर्थात्—) कालत: असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो तक तथा क्षेत्रत: अगुल के असख्यातवे भागप्रमाण (समझना चाहिए)।

१३६६. केवलिआहारए णं भंते ! केवलिआहारए त्ति कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्तं उक्कोसेण देसूण पुव्वकोडिं ।

[१३६६ प्र.] भगवन् ! केवली-आहारक कितने काल तक केवली-आहारक के रूप मे रहता है ?

[१३६६ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन कोटिपूर्व तक (केवली-आहारक निरन्तर केवली-आहारकरूप मे रहता है)।

१३६७ अणाहारए णं भते ! अणाहारए त्ति ० पुच्छा ?

गोयमा ! अणाहारए दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—छउमत्थअणाहारए य १ केवलिअणाहारए य २ ।

[१३६७ प्र] भगवन् ! अनाहारकजीव, अनाहारकरूप मे निरन्तर कितने काल तक रहता है ?

[१३६७ उ] गौतम ! अनाहारक दो प्रकार के होते हैं, यथा - (१) छद्मस्थ-अनाहारक और (२) केवली-अनाहारक ।

१३६८. छउमत्थअणाहारए णं भते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण दो समया ।

[१३६८ प्र] भगवन् ! छद्मस्थ-अनाहारक, छद्मस्थ-अनाहारक के रूप मे निरन्तर कितने काल तक रहता है ?

[१३६८ उ] गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय तक (छद्मस्थ-अनाहारक-रूप मे रहता है ।)

१३६९ केवलिअणाहारए ण भंते ! केवलिअणाहारए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! केवलिअणाहारए दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—सिद्धकेवलिअणाहारए य १ भवत्थ-केवलिअणाहारए य २ ।

[१३६९ प्र] भगवन् ! केवली-अनाहारक, केवली-अनाहारक के रूप मे निरन्तर कितने काल तक रहता है ?

[१३६९ उ] गौतम ! केवली-अनाहारक दो प्रकार के है, १. सिद्धकेवली-अनाहारक और २ भवस्थकेवली-अनाहारक ।

१३७०. सिद्धकेवलिप्रणाहारए णं ० पुच्छा ?

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए ।

[१३७० प्र] भगवन् ! सिद्धकेवली-अनाहारक कितने काल तक सिद्धकेवली-अनाहारक के रूप मे रहता है ?

[१३७० उ] गौतम ! (वह) सादि-अपर्यवसित है ।

१३७१ भवत्थकेवलिप्रणाहारए ण भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! भवत्थकेवलिप्रणाहारए दुविहे पण्णत्ते । त जहा– सजोगिभवत्थकेवलिप्रणाहारए य १ प्रजोगिभवत्थकेवलिप्रणाहारए य २ ।

[१३७१ प्र] भगवन् ! भवस्थकेवली-अनाहारक कितने काल तक (निरन्तर) भवस्थ-केवली-अनाहारकरूप मे रहता है ?

[१३७१ उ] गौतम ! भवस्थकेवली-अनाहारक दो प्रकार के है—१ सयोगि-भवस्थकेवली-अनाहारक और २ अयोगि-भवस्थकेवली-अनाहारक ।

१३७२ सजोगिभवत्थकेवलिप्रणाहारए णं भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! प्रजहण्णमणुक्कोसेण तिण्णि समया ।

[१३७२ प्र] भगवन् ! सयोगि-भवस्थकेवली-अनाहारक कितने काल तक सयोगि-भवस्थ-केवली-अनाहारक के रूप मे रहता है ?

[१३७२ उ] गौतम ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट तीन समय तक (सयोगिभवस्थकेवली-अनाहारक-रूप मे रहता है ।)

१३७३ प्रजोगिभवत्थकेवलिप्रणाहारए ण ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त । दार १४ ॥

[१३७३ प्र] भगवन् ! अयोगि-भवस्थकेवली-अनाहारक कितने काल तक अयोगि-भवस्थ-केवली-अनाहारकरूप मे रहता है ?

[१३७३ उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक (अयोगिभवस्थकेवली-अनाहारकरूप मे रहता है ।)   —चौदहवा द्वार ॥१४॥

विवेचन चौदहवाँ आहारकद्वार प्रस्तुत दस सूत्रो (सू १३६४ से १३७३ तक) मे विविध आहारक और अनाहारक के अवस्थानकालमान की प्ररूपणा की गई है ।

छद्मस्थ आहारक का कालमान– जघन्य दो समय कम क्षुद्रभव ग्रहणकाल और उत्कृष्ट असख्यातकाल तक वह निरन्तर छद्मस्थ-आहारक-रूप मे रहता है । क्षुद्रभव या क्षुल्लक भवग्रहण दो सौ छप्पन आवलिका रूप जानना चाहिए । **जघन्यकालमान का स्पष्टीकरण**– यद्यपि विग्रहगति चार और पाच समय की भी होती है, तथापि बहुलता से वह दो या तीन समय की होती है, चार

या पाच समय को नही, वह विग्रहगति यहाँ विवक्षित नही है। अत. जब तीन समय की विग्रहगति होती है, तब जीव प्रारम्भ के दो समयो तक अनाहारक रहता है। अतएव आहारकत्व की प्ररूपणा मे उन दो समयो से न्यून क्षुद्रभवग्रहण का कथन किया गया है। उत्कृष्ट असख्यातकाल तक आहारक रहता है, तत्पश्चात् नियम से विग्रहगति होती है और विग्रहगति मे अनाहारक-पर्याय हो जाती है। इसी कारण यहाँ अनन्तकाल नही कहा है।[1]

छद्मस्थ-अनाहारक का कालमान—जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट दो समय तक छद्मस्थ-अनाहारक जीव छद्मस्थ-अनाहारकपर्याय मे रहता है। यहाँ तीन समय वाली विग्रहगति की अपेक्षा से उत्कृष्ट दो समय का कथन किया गया है। चार और पाच समय वाली विग्रहगति यहाँ विवक्षित नही है।[2]

सयोगि-भवस्थकेवली-अनाहारक का अवस्थानकालमान—(वह अजघन्य-अनुत्कृष्ट तीन समय तय अनाहरकपर्याय मे रहता है। यह विधान केवलीसमुद्घात की अपेक्षा से है। आठ समय के केवलीसमुद्घात मे तीसरे चौथे और पाचवे समय मे केवली अनाहारकदशा मे रहते है। इसमे जघन्य-उत्कृष्ट का विकल्प नही है।[3]

पन्द्रहवाँ भाषकद्वार

१३७४ भासए णं० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्क समयं, उक्कोसेण अतोमुहुत्त ।

[१३७४ प्र] भगवन् ! भाषक जीव कितने काल तक भाषकरूप मे रहता है ?

[१३७४ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक (भाषकरूप मे रहता है।)

१३७५. अभासए ण ?

गोयमा ! अभासए तिविहे पण्णत्ते । त जहा—अणाईए वा अपज्जवसिए १ अणाईए वा

---

१ (क) उज्जुया एगबका, दुहतो बका गति विणिदिट्ठा।
जुज्जइ ति-चउवकावि नाम चउपच समयाओ ॥ १ ॥

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३९३

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति. पत्राक ३९३

३ दण्डे प्रथमे समये कपाटमथ चोत्तरे तथा समये।
मन्थानमथ तृतीय लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥ १ ॥
सहरति पचमे त्वन्तराणि मन्थानमथ तथा षष्ठे।
सप्तमके तु कपाट सहरति तोऽष्टमे दण्डम् ॥ २ ॥
औदारिकप्रयोक्ता प्रथमाष्टमसमयोरसाविष्ट ।
मिश्रौदारिकयोक्ता सप्तम-षष्ठ-द्वितीयेषु ॥ ३ ॥
कार्मणशरीरयोगी चतुर्थके पचमे तृतीये च ॥
समयत्रयेऽपि तस्मिन् भवत्यनाहारको नियमात् ॥ ४ ॥ —प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३९३

सपज्जवसिए २ सादीए वा सपज्जवसिए ३ । तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणप्फइकालो । दारं १५ ।।

[१३७५ प्र.] भगवन् ! अभाषक जीव अभाषकरूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१३७५ उ.] गौतम ! अभाषक तीन प्रकार के कहे गये है—(१) अनादि-अपर्यवसित, (२) अनादि-सपर्यवसित और (३) सादि-सपर्यवसित । उनमे से जो सादि-सपर्यवसित है, वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट वनस्पतिकालपर्यन्त (अभाषकरूप मे रहते है) ।

—पन्द्रहवाँ द्वार ।। १५ ।।

विवेचन पन्द्रहवाँ भाषकद्वार—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू १३७४-१३७५) मे भाषक और अभाषक जीव के स्वपर्याय मे अवस्थान का कालमान प्रतिपादित किया गया है ।

भाषक का कालमान—यहाँ भाषक का अवस्थानकाल निरन्तर जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक जो बताया गया है वह, वचनयोगी की अपेक्षा से समझना चाहिए ।[1]

अभाषक का कालमान—सादि-सान्त भाषक (जो भाषक होकर फिर अभाषक हो गया है, वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक अभाषक पर्याय से युक्त रहता है, फिर कुछ काल रुक कर भाषक बन जाता है और फिर अभाषक हो जाता है । अथवा द्वीन्द्रिय आदि भाषक जीव एकेन्द्रियादि अभाषको मे उत्पन्न होकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त तक जीवित रह कर फिर द्वीन्द्रियादि भाषकरूप मे उत्पन्न होता है । उस समय जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक अभाषक रहता है । उत्कृष्ट वनस्पतिकाल अर्थात्—पूर्वोक्त अनन्तकाल तक लगातार अभाषक बना रहता है ।[2]

सोलहवाँ परीतद्वार

१३७६. परित्ते णं भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! परित्ते दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—कायपरित्ते य १ संसारपरित्ते य २ ।

[१३७६ प्र.] भगवन् ! परीत जीव कितने काल तक निरन्तर परीतपर्याय मे रहता है ?

[१३७६ उ.] गौतम ! परीत दो प्रकार के हैं । यथा—(१) कायपरीत और (२) ससारपरीत ।

१३७७. कायपरित्ते णं० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुढविकालो असंखेज्जाओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ ।

[१३७७ प्र.] भगवन् ! कायपरीत कितने काल तक कायपरीतपर्याय मे रहता है ?

[१३७७ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट पृथ्वीकाल तक, (अर्थात्—) असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो तक (कायपरीतपर्याय मे निरन्तर बना रहता है) ।

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३९४

२ वही मलय वृत्ति, पत्राक ३९४

१३७८. संसारपरित्ते णं० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण अणंतं काल जाव अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण ।

[१३७८ प्र] भगवन् ! ससारपरीत जीव कितने काल तक ससारपरीतपर्याय मे रहता है ?

[१३७८ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक, यावत् देशोन अपार्द्ध पुद्गल-परावर्त्त (ससारपरीतपर्याय मे रहता है) ।

१३७९. अपरित्ते णं० पुच्छा ?

गोयमा ! अपरित्ते दुविहे पण्णत्ते । त जहा कायअपरित्ते य १ ससारअपरित्ते य २ ।

[१३७९ प्र] भगवन् ! अपरीत जीव कितने काल तक अपरीतपर्याय मे रहता है ?

[१३७९ उ] गौतम ! अपरीत दो प्रकार के है, वह इस प्रकार –(१) काय-अपरीत और (२) ससार-अपरीत ।

१३८०. कायअपरित्ते ण० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण वणस्सइकालो ।

[१३८० प्र] भगवन् ! काय-अपरीत निरन्तर कितने काल तक काय-अपरीत-पर्याय से युक्त रहता है ।

[१३८० उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक (काय-अपरीत-पर्याय से युक्त रहता है) ।

१३८१. ससारअपरित्ते ण० पुच्छा ?

गोयमा ! ससारअपरित्ते दुविहे पण्णत्ते । त जहा अणादीए वा अपज्जवसिए १ अणादीए वा सपज्जवसिए २ ।

[१३८१ प्र] भगवन् ! ससार-अपरीत कितने काल तक ससार-अपरीत-पर्याय मे रहता है ?

[१३८१ उ] गौतम ! ससार-अपरीत दो प्रकार के हैं । यथा - (१) अनादि-अपर्यवसित और (२) अनादि-सपर्यवसित ।

१३८२. णोपरित्ते-णोअपरित्ते णं० पुच्छा ?

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए । दार १६ ॥

[१३८२ प्र] भगवन् ! नोपरीत-नोअपरीत कितने काल तक (लगातार) नोपरीत-नोअपरीत-पर्याय मे रहता है ?

[१३८२ उ] गौतम ! (वह) सादि-अपर्यवसित है । सोलहवाँ द्वार ॥१६॥

विवेचन—सोलहवाँ परीतद्वार—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू १३७६ से १३८२) मे द्विविध परीत व द्विविध अपरीत और नोपरीत-नोअपरीत जीवो के स्व-स्वपर्याय मे अवस्थानकाल की प्ररूपणा की गई है ।

कायपरीत का स्वपर्याय में निरन्तर अवस्थानकाल प्रत्येकशरीरी जीव कायपरीत कहलाता है। वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट पृथ्वीकाल—अर्थात्—असख्यातकाल तक कायपरीत बना रहता है। यदि कोई जीव निगोद से निकल कर प्रत्येक-शरीररूप मे उत्पन्न होता है, उस समय वह अन्तर्मुहूर्त तक जीवित रह कर फिर निगोद मे उत्पन्न हो जाता है। उस समय वह अन्तर्मुहूर्त तक ही कायपरीत रहता है। अतएव यहाँ कायपरीत का जघन्य अवस्थानकाल अन्तर्मुहूर्त का कहा है। उत्कृष्टरूप से कायपरीत असख्यातकाल तक कायपरीत-पर्याय मे निरन्तर रहता है। यहाँ असख्यात-काल पृथ्वीकाय की कालस्थिति के जितना समझना चाहिए। असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी जितना पृथ्वीकाल यहाँ असख्यातकाल विवक्षित है। क्षेत्रत.—असख्यात लोकप्रमाण है।

संसारपरीत का लक्षण—जिसने सम्यक्त्व प्राप्त करके अपने भवभ्रमण को परिमित कर लिया हो, वह ससारपरीत कहलाता है। उत्कृष्टत अनन्तकाल व्यतीत होने पर ससारपरीत जीव अवश्य ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

काय-अपरीत और ससार-अपरीत अनन्तकायिक जीव काय-अपरीत कहलाता है तथा ससार-अपरीत वह है, जिसने सम्यक्त्व प्राप्त करके ससार को परिमित नही किया है। काय-अपरीत जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल (अनन्तकाल) तक निरन्तर काय-अपरीतपर्याय-युक्त रहता है। जब कोई जीव प्रत्येक शरीर से उद्वर्तन करके निगोद मे उत्पन्न होता है और वहाँ अन्त-र्मुहूर्त तक ठहर कर पुन प्रत्येकशरीरी-पर्याय मे उत्पन्न हो जाता है, उस समय जघन्य काल अन्त-र्मुहूर्त होता है। उत्कृष्ट वनस्पतिकाल जितना अनन्तकाल समझना चाहिए। उसके बाद अवश्य ही उद्वर्तना हो जाती है।

द्विविध ससारापरीत—(१) **अनादि-सान्त** जिसके ससार का अन्त कभी न कभी हो जाएगा, वह अनादि-सान्त ससारापरीत कहलाता है। तथा (२) **अनादि-अनन्त**—जिसके ससार का कदापि विच्छेद नही होगा, वह अनादि-अनन्त ससार-अपरीत कहलाता है।

नोपरीत-नोअपरीत—ऐसा जीव सिद्ध होता है। यह पर्याय सादि-अनन्त है।[1]

सत्तरहवाँ पर्याप्तद्वार

१३८३. पज्जत्तए णं० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण सागरोवमसयपुहत्त सातिरेग।

[१३८३ प्र] भगवन्! पर्याप्त जीव कितने काल तक निरन्तर पर्याप्त-अवस्था मे रहता है?

[१३८३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक शतसागरोपम-पृथक्त्व तक (निरन्तर पर्याप्त-अवस्था मे रहता है)।

१३८४. अपज्जत्तए णं० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[१३८४ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त जीव, अपर्याप्त-अवस्था मे निरन्तर कितने काल तक रहता है?

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३९४

[१३८४ उ] गौतम ! (वह) जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक (अपर्याप्त-अवस्था मे रहता है)।

१३८५. णोपज्जत्तए-णोअपज्जत्तए णं० पुच्छा ?

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए । दारं १७ ।।

[१३८५ प्र.] भगवन् ! नोपर्याप्त-नोअपर्याप्त जीव कितने काल तक नोपर्याप्त-नोअपर्याप्त-अवस्था मे रहता है ?

[१३८५ उ] गौतम ! (वह) सादि-अपर्यवसित है। सत्तरहवाँ द्वार ।।१७।।

विवेचन—सत्तरहवाँ पर्याप्तद्वार—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू १३८३ से १३८५ तक) मे पर्याप्त, अपर्याप्त और नोपर्याप्त-नोअपर्याप्त जीवो के स्व-स्वपर्याय मे निरन्तर अवस्थान का काल प्रतिपादित किया गया है।

तीनो के कालमान का विश्लेषण (१) **पर्याप्त जीव** जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपमशतपृथक्त्व तक लगातार पर्याप्त-पर्याय मे रहता है, क्योकि पर्याप्तलब्धि इतने समय तक ही रह सकती है। (२) **अपर्याप्त जीव** जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक लगातार अपर्याप्त रहता है, इसके पश्चात् अवश्य ही पर्याप्त हो जाता है। (३) **नोपर्याप्त-नोअपर्याप्त जीव** सिद्ध ही होता है और सिद्धत्व पर्याय सादि-अनन्त है।[1]

अठारहवाँ सूक्ष्मद्वार

१३८६. सुहुमे ण भंते ! सुहुमे त्ति० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण पुढविकालो ।

[१३८६ प्र] भगवन् ! सूक्ष्म जीव कितने काल तक सूक्ष्म-पर्यायवाला लगातार रहता है ?

[१३८६ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट पृथ्वीकाल तक (वह सूक्ष्म-पर्याय मे रहता है)।

१३८७. बादरे ण० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं असखेज्ज काल जाव (सु. १३६५) खेत्तओ अगुलस्स असखेज्जइभागं ।

[१३८७ प्र] भगवन् ! बादर जीव कितने काल तक (लगातार) बादर-पर्याय मे रहता है ?

[१३८७ उ.] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असख्यातकाल (सू १३६५ मे उक्त कालत असख्यात उत्सर्पिणी—अवसर्पिणीकाल) यावत् क्षेत्रत अगुल के असख्यातवे भाग-प्रमाण रहता है।

१३८८. णोसुहुमणोबादरे ण भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए । दारं १८ ।।

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३९५

[१३८८ प्र] भगवन् ! नोसूक्ष्म-नोबादर कितने काल तक पूर्वोक्त पर्याय से युक्त रहता है ?

[१३८८ उ] गौतम ! यह पर्याय सादि-अपर्यवसित है । अठारहवाँ द्वार ।।१८।।

विवेचन—अठारहवाँ सूक्ष्मद्वार—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू १३८६ से १३८८ तक) मे सूक्ष्म, बादर, नोसूक्ष्म-नोबादर के जघन्य और उत्कृष्ट अवस्थानकाल का निरूपण किया गया है ।

सूक्ष्म जीव का अवस्थानकाल—सूक्ष्म-जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असख्यातकाल तक सूक्ष्मपर्याययुक्त रहता है । वह असख्यातकाल पृथ्वीकायिक जीव की कायस्थिति के काल जितना समझना चाहिए ।

नोसूक्ष्म-नोबादर जीव—सिद्ध हैं और सिद्धपर्याय सदाकाल रहती है ।[1]

उन्नीसवाँ संज्ञीद्वार

१३८९ सण्णी णं भते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण सागरोवमसयपुहत्तं सातिरेग ।

[१३८९ प्र] भगवन् ! सज्ञी जीव कितने काल तक सज्ञीपर्याय मे लगातार रहता है ?

[१३८९ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक शतसागरोपमपृथक्त्वकाल तक (निरन्तर सज्ञीपर्याय मे रहता है) ।

१३९०. असण्णी ण भंते ! ० पुच्छा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

[१३९० प्र] भगवन् ! असज्ञी जीव असज्ञी पर्याय मे कितने काल तक रहता है ?

[१३९० उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक (असज्ञी जीव-असज्ञीपर्याय मे निरन्तर रहता है) ।

१३९१. णोसण्णीणोअसण्णी णं पुच्छा ?

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए । दार १९ ।।

[१३९१ प्र] भगवन् ! नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीव कितने काल तक नोसज्ञी-नोअसज्ञी रहता है ?

[१३९१ उ] गौतम ! (वह) सादि-अपर्यवसित है । उन्नीसवाँ द्वार ।।१९।।

विवेचन उन्नीसवाँ संज्ञीद्वार—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू १३८९ से १३९१ तक) मे सज्ञी, असज्ञी और नोसज्ञी नोअसज्ञी जीवो के स्व-स्वपर्याय मे निरन्तर अवस्थान का कालमान बताया गया है ।

सज्ञी पर्याय की कालावस्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अर्थात् जब कोई जीव असज्ञीपर्याय से निकलकर सज्ञीपर्याय मे उत्पन्न होता है और उस पर्याय मे अन्तर्मुहूर्त तक जीवित रह कर पुन. असज्ञी-पर्याय मे उत्पन्न हो जाता है, तब वह अन्तर्मुहूर्त तक ही सज्ञी-अवस्था मे रहता है और उत्कृष्ट कुछ अधिक शतसागरोपमपृथक्त्व काल तक सज्ञीजीव निरतर सज्ञी रहता है ।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३९५

असंज्ञीपर्याय की कालावस्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक असज्ञीजीव निरन्तर असज्ञीपर्याययुक्त रहता है। जब कोई जीव सज्ञियो मे से निकल कर असज्ञीपर्याय में जन्म लेता है, वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर पुन सज्ञीपर्याय मे उत्पन्न हो जाता है। उस समय यह अन्तर्मुहूर्त तक ही असज्ञीपर्याय से युक्त रहता है।

नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी का अवस्थानकाल - नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीव केवली है और केवली का काल सादि-अपर्यवसित है।[1]

बीसवाँ भवसिद्धिद्वार

१३९२. भवसिद्धिए णं भंते ! ० पुच्छा।

गोयमा ! अणादीए सपज्जवसिए।

[१३९२ भगवन् ! भवसिद्धिक (भव्य) जीव निरन्तर कितने काल तक भवसिद्धिक-पर्याययुक्त रहता है ?

[१३९२ उ] गौतम ! (वह) अनादि-सपर्यवसित है।

१३९३ अभवसिद्धिए ण भंते ० पुच्छा।

गोयमा ! अणादीए अपज्जवसिए।

[१३९३ प्र] भगवन् ! अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव लगातार कितने काल तक अभवसिद्धिक-पर्याय से युक्त रहता है ?

[१३९३ उ] गौतम ! (वह) अनादि-अपर्यवसित है।

१३९४. णोभवसिद्धियणोअभवसिद्धिए ण ० पुच्छा।

गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए। दारं २०॥

[१३९४ प्र] भगवन् ! नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव कितने काल तक लगातार नोभवसिद्धिक-नोअवसिद्धिक-अवस्था मे रहता है ?

[१३९४ उ] गौतम ! (वह) सादि-अपर्यवसित है। —बीसवाँ द्वार ॥२०॥

विवेचन—बीसवाँ भवसिद्धिकद्वार—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू. १३९२ से १३९४ तक) मे भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवो के अवस्थान का कालमान प्ररूपित किया गया है।

भवसिद्धिक का कालमान भवसिद्धिक (भव्य) अनादि-सपर्यवसित (सान्त) है। भव्यत्व भाव पारिणामिय है, इसलिए वह अनादि है, किन्तु मुक्ति प्राप्त होने पर उसका सद्भाव नही रहता, इसलिए सपर्यवसित है।

अभवसिद्धिक का कालमान—यह भी पारिणामिक भाव होने से अनादि है और उसका (अभव्यत्व का) कभी अन्त नही होता। इसलिए अनन्त है।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३९५

नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक का कालमान ऐसा जीव सिद्ध ही होता है, इसलिए-अपर्यवसित होता है।[1]

इक्कीसवाँ अस्तिकायद्वार

१३९५ धम्मत्थिकाए णं० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वद्धं।

[१३९५ प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय कितने काल तक लगातार धर्मास्तिकायरूप में रहता है?

[१३९५ उ] गौतम ! वह सर्वकाल रहता है।

१३९६ एव जाव अद्धासमए। दार २१ ॥

[१३९६] इसी प्रकार यावत् (अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और) अद्धासमय (कालद्रव्य) के अवस्थानकाल के लिये भी समझना चाहिए।

—इक्कीसवाँ द्वार ॥ २१ ॥

विवेचन—इक्कीसवाँ अस्तिकायद्वार प्रस्तुत दो सूत्रों (१३९५-१३९६) के धर्मास्तिकायादि ६ द्रव्यों के स्व-स्वरूप मे अवस्थानकाल की चर्चा की गई है।

धर्मास्तिकायादि षट् द्रव्यो का अवस्थानकाल धर्मास्तिकाय आदि छहो द्रव्य अनादि-अनन्त है। ये सदैव अपने स्वरूप मे अवस्थित रहते है।[2]

बाईसवाँ चरमद्वार

१३९७ चरिमे ण० पुच्छा।

गोयमा ! अणादीए सपज्जवसिए।

[१३९७ प्र] भगवन् चरमजीव कितने काल तक चरमपर्याय वाला रहता है?

[१३९७ उ] गौतम ! (वह) अनादि-सपर्यवसित होता है।

१३९८. अचरिमे ण० पुच्छा।

गोयमा ! अचरिमे दुविहे पण्णत्ते त जहा—अणादीए वा अपज्जवसिए १ सादीए वा अपज्जवसिए २। दार २२ ॥

॥ पण्णवणाए भगवतीए अट्ठारसम कायट्ठिइपय समत्त ॥

[१३९८ प्र] भगवन् ! अचरमजीव कितने काल तक अचरमपर्याय-युक्त रहता है?

[१३९८ उ.] गौतम अचरम दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) अनादि-अपर्यवसित और (२) सादि-अपर्यवसित।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३९५

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३९५

विवेचन—बाईसवाँ चरम-अचरम द्वार—प्रस्तुत दो सूत्रों (१३९७-१३९८) में चरमजीव के स्व-स्वपर्याय में निरन्तर अवस्थान का कालमान प्ररूपित किया गया है।

चरम-अचरम की परिभाषा—जिसका भव चरम अर्थात् अन्तिम होगा, वह 'चरम' कहलाता है। चरम का सरल अर्थ है—भव्यजीव। जो चरम से भिन्न हो, वह **'अचरम'** है। अभव्य जीव अचरम कहलाता है, क्योंकि उसका कदापि चरम भव नहीं होगा। वह सदाकाल जन्ममरण करता ही रहेगा। एक दृष्टि से सिद्ध जीव भी अचरम है, क्योंकि उनमें भी चरमत्व नहीं होता। इसी कारण अचरम के दो प्रकार बताये गए हैं - (१) अनादि-अनन्त और (२) सादि-अनन्त। इनमें से अनादि-अनन्त (अपर्यवसित) जीव अभव्य है और सादि-अपर्यवसित जीव सिद्ध है।[1]

।। प्रज्ञापनासूत्र : अठारहवाँ कायस्थितिपद समाप्त ।।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३९५

एगूणवीसइमं सम्मत्तपयं

उन्नीसवाँ सम्यक्त्वपद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र का यह उन्नीसवाँ 'सम्यक्त्वपद' है।
- मोक्षमार्ग और ससारमार्ग, ये दो मार्ग है, जीव की उन्नति और अवनति के लिए। जब जीव सम्यग्दृष्टि हो जाता है तो वह मोक्षमार्ग को सम्यक् आराधना करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जब तक वह मिथ्यादृष्टि रहता है, तब तक उसकी प्रवृत्ति ससारमार्ग की ओर ही होती है। उसका व्रताचरण, तपश्चर्या, नियम, त्याग-प्रत्याख्यान आदि जितनी भी धार्मिक क्रियाएँ होती हैं वे अशुद्ध होती है, उसका पराक्रम अशुद्ध होता है, उसमे ससारवृद्धि ही होती है। कर्मक्षय करके मोक्ष उपलब्धि वह नही कर सकता। इसी आशय से शास्त्रकार प्रस्तुत पद मे तीनो दृष्टियो की चर्चा करते हैं।[1]
- जिनेन्द्र-प्रज्ञप्त जीवादि समग्र तत्त्वो के विषय मे जिसकी दृष्टि अविपरीत-सम्यक् हो, वह **सम्यग्दृष्टि**, जिन-प्रज्ञप्त तत्त्वो के विषय मे जिसे जरा-सी भी विप्रतिपत्ति (अन्यथाभाव या अश्रद्धा) हो, वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है तथा जिसे उस विषय मे सम्यक श्रद्धा भी न हो, और विप्रतिपत्ति भी न हो, वह **सम्यग्मिथ्यादृष्टि** है। जैसे चावल आदि के विषय मे अनजान मनुष्य को उनमे रुचि या अरुचि, दोनो मे से एक भी नही होती, वैसे ही सम्यग्मिथ्या-दृष्टि को जिन-प्रज्ञप्त तत्त्वो (पदार्थों) के विषय मे रुचि भी नही होती, अरुचि भी नही होती।[2]
- इस पद मे जीवसामान्य, सिद्धजीव और चौवीसदण्डकवर्ती जीवो मे सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि की विचारणा की गई है।
- इसमे बताया गया है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि केवल पचेन्द्रिय ही होते है। एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि ही होते है। सिद्ध जीव एकान्त सम्यग्दृष्टि होते है। द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते। षट्खण्डागम मे सज्ञी और असज्ञी, ऐसे दो भेदो मे पचेन्द्रिय को विभक्त करके असज्ञीपचेन्द्रिय को मिथ्यादृष्टि ही कहा है। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक होते है।
- षट्खण्डागम मे बताया गया है कि जीव किन-किन कारणो से सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तथा अन्तिम समय मे सम्यक्त्वी की मन:स्थिति कैसी होती है? □□

---

१. (क) नादसणिस्स नाण० —उत्तरा अ गा (ख) असुद्ध तेसिं परक्कत, अफला होइ सव्वसो। —सूत्र कृ

२ प्रज्ञापना मलय वृत्ति पत्राक ३८८

३. (क) पण्णवणासुत्त भा १, पृ ३१८ (ख) पण्णवणासुत्त भा २, प्रस्तावना पृ १०१
(ग) षट्खण्डागम पु १, पृ २५८, २६१, पुस्तक ६, पृ. ४१८-४३७

एगूणवीसइमं सम्मत्तपयं

उन्नीसवाँ सम्यक्त्वपद

समुच्चय जीवों के विषय में दृष्टि की प्ररूपणा

१३९९. जीवा णं भंते ! किं सम्मद्दिट्ठी मिच्छद्दिट्ठी सम्मामिच्छद्दिट्ठी ?

गोयमा ! जीवा सम्मद्दिट्ठी वि मिच्छद्दिट्ठी वि सम्मामिच्छद्दिट्ठी वि ।

[१३९९ प्र] भगवन् ! जीव सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि है अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं ?

[१३९९ उ] गौतम ! जीव सम्यग्दृष्टि भी है, मिथ्यादृष्टि भी है और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी हैं।

विवेचन—समुच्चय जीवो के विषय मे दृष्टि की प्ररूपणा प्रस्तुत सूत्र मे बताया है कि समुच्चय जीवो मे सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ये तीनो ही दृष्टियाँ पाई जाती है।

चौवीस दण्डकवर्ती जीवों और सिद्धों में सम्यक्त्वप्ररूपणा

१४००. एवं णेरइया वि ।

[१४००] इसी प्रकार नैरयिक जीवो मे भी तीनो दृष्टियाँ होती है।

१४०१. असुरकुमारा वि एव चेव जाव थणियकुमारा ।

[१४०१] असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो तक (के भवनवासी देव) भी इसी प्रकार (सम्यग्दृष्टि भी, मिथ्यादृष्टि भी और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी होते है)।

१४०२. पुढविक्काइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! पुढविक्काइया णो सम्मद्दिट्ठी, मिच्छद्दिट्ठी, णो सम्मामिच्छद्दिट्ठी । एव जाव वणस्सइकाइया ।

[१४०२ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं, मिथ्यादृष्टि होते है या सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते है ? यह प्रश्न है।

[१४०२ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव सम्यग्दृष्टि नही होते, वे मिथ्यादृष्टि होते है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते। इसी प्रकार यावत् (अप्कायिको, तेजस्कायिको, वायुकायिको एव) वनस्पतिकायिको के सम्यक्त्व की प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए।

१४०३ बेइंदियाण पुच्छा ।

गोयमा ! बेइंदिया सम्मद्दिट्ठी वि, मिच्छद्दिट्ठी वि, णो सम्मामिच्छद्दिट्ठी । एवं जाव चउरेंदिया ।

[१४०३ प्र] भगवन्! द्वीन्द्रिय जीव सम्यग्दृष्टि होते है, मिथ्यादृष्टि होते हैं, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं ?

[१४०३ उ] गौतम! द्वीन्द्रिय जीव सम्यग्दृष्टि भी होते है, मिथ्यादृष्टि भी होते हैं किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते। इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवो तक (प्ररूपणा करना चाहिए)।

१४०४. पंचेंदियतिरिक्खजोणिय मणुस्सा वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया य सम्मद्दिट्ठी वि, मिच्छद्दिट्ठी वि, सम्मामिच्छद्दिट्ठी वि।

[१४०४] पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव सम्यग्दृष्टि भी होते है, मिथ्यादृष्टि भी होते है और मिश्र (सम्यग्मिथ्या) दृष्टि भी होते है।

१४०५. सिद्धाणं पुच्छा।

गोयमा! सिद्धा ण सम्मद्दिट्ठी, णो मिच्छद्दिट्ठी णो सम्मामिच्छद्दिट्ठी।

॥ पण्णवणाए भगवतीए एगूणवीसइम सम्मत्तपय समत्त ॥

[१४०५ प्र] भगवन्! सिद्ध (मुक्त) जोव सम्यग्दृष्टि होते है, मिथ्यादृष्टि होते है या सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते है ?

[१४०५ उ] गौतम! सिद्ध जीव सम्यग्दृष्टि ही होते है, वे न तो मिथ्यादृष्टि होते है और न सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते है।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवो और सिद्धो मे सम्यक्त्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत छह सूत्रो मे नैरयिको से लेकर वैमानिक देवो तक तथा सिद्धजीव सम्यग्दृष्टि होते है, मिथ्यादृष्टि होते है या मिश्र-दृष्टि ? इसका विचार किया गया है।

निष्कर्ष—समुच्चय जीव, नैरयिक, भवनवासी देव, तिर्यञ्चपचेन्द्रिय, मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे तीनो ही दृष्टियाँ पाई जाती है। विकलेन्द्रिय सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते, सिद्धजीव सम्यग्दृष्टि ही होते है। पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि ही होते है।

एक ही जीव मे एक साथ तीनो दृष्टियाँ नहीं होतीं—जिन जीवो मे तीनो दृष्टियाँ बताई है, वे एक जीव मे एक साथ एक समय मे नही होती, परस्पर विरोधी होने के कारण एक जीव मे, एक समय मे एक ही दृष्टि हो सकती है। अभिप्राय यह है कि जैसे कोई जीव सम्यग्दृष्टि होता है, कोई मिथ्यादृष्टि और कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि होता है, उसी प्रकार कोई नारक, देव, मनुष्य या पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टि होता है, तो कोई मिथ्यादृष्टि होता है, तथैव कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि होता है। एक समय मे एक जीव मे एक ही दृष्टि होती है, तीनो दृष्टियाँ नही।[1]

॥ प्रज्ञापनासूत्र : उन्नीसवाँ सम्यक्त्वपद समाप्त ॥

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३९३

वीसइमं : अंतकिरियापयं

वीसवाँ : अन्तक्रियापद

प्राथमिक

- यह प्रज्ञापनासूत्र का वीसवाँ अन्तक्रियापद है ।

- इस पद मे विविध पहलुओ से अन्तक्रिया और उससे होने वाली विशिष्ट उपलब्धियो के विषय मे गूढ विचारणा की गई है ।

- भारत का प्रत्येक आस्तिक धर्म और दर्शन या मत-पथ पुनर्जन्म एव मोक्ष मानता है और अगला जन्म अच्छा मिले या जन्म-मरण से सर्वथा छुटकारा मिले, इसके लिए विविध साधनाएँ, तप, सयम, त्याग, प्रत्याख्यान, व्रत, नियम आदि का निर्देश करता है । प्राणी का जन्म लेना जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक उसके जीवन का अन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है । अन्तक्रियापद मे इसी का विचार किया गया है, ताकि प्रत्येक मुमुक्षु साधक यह जान सके कि किसकी अन्तक्रिया अच्छी और बुरी होती है और क्यो ?

- अन्तक्रिया का अर्थ है—भव (जन्म) का अन्त करने वाली क्रिया । इस क्रिया से दो परिणाम आते हैं—या तो नया भव (जन्म) मिलता है, अथवा मनुष्यभव का सर्वथा अन्त करके जन्म-मरण से सर्वथा मुक्त हो जाता है । अत अन्तक्रिया शब्द यहाँ दोनो अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है[1]—(१) मोक्ष, (२) इस भव के शरीरादि से छुटकारा मरण ।

- इस अन्तक्रिया का विचार प्रस्तुत पद मे चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे दस द्वारो द्वारा किया गया है—(१) अन्तक्रियाद्वार, (२) अनन्तद्वार, (३) एकसमयद्वार, (४) उद्वृत्तद्वार, (५) तीर्थंकर-द्वार, (६) चक्रीद्वार, (७) बलदेवद्वार, (८) वासुदेवद्वार, (९) माण्डलिकद्वार और (१०) रत्नद्वार । प्रस्तुतपद के उपसहार मे बतलाया गया है, कौन-सा आराधक या विराधक मर कर कौन-कौन से देवो मे उत्पन्न होता है ? अन्त मे अन्तक्रिया से सम्बन्धित असज्ञी (अकामनिर्जरा-युक्त जीव) के आयुष्यबन्ध की और उसके अल्पबहुत्व की चर्चा है ।

- **प्रथम अन्तक्रियाद्वार** - मे यह विचारणा की गई है कि कौन जीव अन्तक्रिया (मोक्षप्राप्ति) कर लेता है, कौन नही ? एकमात्र मनुष्य ही इस प्रकार की अन्तक्रिया का अधिकारी है । जीव के नारक आदि अनेक पर्याय होते है । अत नारकपर्याय मे रहा हुआ जीव मनुष्यभव मे जाकर

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्र ३९७

तथाविधयोग्यता प्राप्त करके अन्तक्रिया (मोक्षप्राप्ति) कर सकता है, इसलिए कहा जाता है कि कोई नारक मुक्त हो सकता है, कोई नही।[१]

- **द्वितीय अनन्तरद्वार**—मे यह विचारणा की गई है कि नारकादि जीव अनन्तरागत अन्तक्रिया करते हैं या परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं ? अर्थात्– कोई जीव नारकादि भव मे से मर कर व्यवधान विना ही मनुष्यभव में आकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है, अथवा [२]नारकादि भव के पश्चात् एक या अनेक भव करके फिर मनुष्यभव मे आकर मुक्ति प्राप्त करता है ? इसका उत्तर यह है कि प्रारम्भ के चार नरको मे से आने वाला नारक अनन्तरागत और परम्परागत दोनो प्रकार से अन्तक्रिया कर सकता है। परन्तु बाद के तीन नारको मे से आने वाला नारक परम्परा से ही अन्तक्रिया कर पाता है, अर्थात्- नरक के बाद एक या अनेक भव करके फिर मनुष्यभव मे आकर तथाविध साधना करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। भवनपति एव पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय मे से आने वाले जीव दोनो प्रकार से अन्तक्रिया कर सकते हैं। तेजस्कायिक, वायुकायिक एव विकलेन्द्रिय जीव परम्परागत ही अन्तक्रिया कर सकते हैं।

- **तृतीय एकसमयद्वार**--मे अनन्तरागत अन्तक्रिया कर सकने वाले नारकादि एक समय मे जघन्य और उत्कृष्ट कितनी सख्या मे अन्तक्रिया करते है ? इसकी प्ररूपणा की गई है।

- **चतुर्थ उद्वृत्तद्वार**—मे यह बताया गया है कि नैरयिक आदि चौवीस दण्डकवर्त्ती जीव मर कर सीधा (विना व्यवधान के) चौवीस दण्डको मे से कहाँ उत्पन्न हो सकता है ? यद्यपि यहाँ उद्वृत्त शब्द समस्त गतियो मे होने वाले मरण के लिए प्रयुक्त है, परन्तु षट्खण्डागम मे उसके बदले उद्वृत्त, कालगत और च्युत शब्दो का प्रयोग किया गया है।[३] सामान्यतया जैनागमो मे वैमानिक तथा ज्योतिष्क देवो के अन्यत्र जाने के लिए च्युत, मनुष्यो के लिए कालगत और नारक, भवनवासी और वाणव्यन्तर के लिए उद्वृत्त शब्द-प्रयोग दिखाई देता है।

  इसके साथ ही इस द्वार मे मर कर उस-उस स्थान मे जाने के बाद जीव क्रमश धर्मश्रवण, बोध, श्रद्धा, मतिश्रुतज्ञान, व्रतग्रहण, अवधिज्ञान, अनगारत्व, मन.पर्यायज्ञान, केवलज्ञान और अन्तक्रिया (सिद्धि), इन मे से क्या-क्या प्राप्त हो सकते हैं ? इसकी चर्चा है।

- **पंचम तीर्थंकरद्वार**—मे यह निर्देश किया है कि नारकादि मर कर सीधे मनुष्यभव मे आकर तीर्थंकर पद प्राप्त कर सकता है, या नही ? साथ ही यह भी बताया गया है कि अगर तीर्थंकर-पद नही प्राप्त कर सकता है तो विकास क्रम मे--अन्तक्रिया, विरति, विरताविरति, सम्यक्त्व, मोक्ष, धर्मश्रवण, मन पर्यायज्ञान, इनमे से क्या प्राप्त कर सकता है ?

- **छठे से दसवें द्वार तक**—मे क्रमश. चक्रवर्तीपद, बलदेवपद, वासुदेवपद, माण्डलिकपद एव

---

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्र ३९७

२ वही, पत्र ३९७

३ षट्खण्डागम पुस्तक ६, पृ ४७७

चक्रवर्ती के १४ रत्नो में से कोई भी एक रत्न, नारकी आदि सीधे कौन प्राप्त कर सकता है ? यह बताया गया है ।[1]

☐ अन्त मे असयम भव्यद्रव्यदेव, सयम-अविराधक, सयम-विराधक, सयमासयम-अविराधक, सयमासयम-विराधक, असज्ञो (अकामनिर्जरायुक्त) तापस, कान्दर्पिक, चरक-परिव्राजक, किल्विषिक, तैरश्चिक, आजीवक, आभियोगिक, स्वलिगी एव दर्शनभ्रष्ट, इनमे से किसकी किन देवो मे उत्पत्ति होती है, यह बताया गया है।[2]

१ पण्णवण्णासुत्त भा १, पृ ३२७
२ पण्णवण्णासुत्त भा २, पृ. १६५-१६६

वीसइमं : अंतकिरियापयं

वीसवाँ : अन्तक्रियापद

अर्थाधिकार

१४०६. णेरइय अंतकिरिया १ अणंतरं २ एगसमय ३ उव्वट्टा ४ ।

तित्थगर ५ चक्कि ६ बल ७ वासुदेव ८ मंडलिय ९ रयणा य १० ।। २१३ ।। दारगाहा ।।

द्वारगाथार्थ अन्तक्रियासम्बन्धी १० द्वार (१) नैरयिको की अन्तक्रिया, (२) अनन्त-रागत जीव-अन्तक्रिया, ((३) एक समय मे अन्तक्रिया, (४) उद्वृत्त जीवो की उत्पत्ति, (५) तीर्थंकर द्वार, (६) चक्रवर्तीद्वार, (७) बलदेवद्वार, (८) वासुदेवद्वार, (९) माण्डलिकद्वार और (१०) (चक्रवर्ती के सेनापति आदि) रत्नद्वार ।

यह द्वार-गाथा है ।।२१३।।

विवेचन—बीसवे पद मे अन्तक्रिया आदि से सम्बन्धित दस द्वारो का निरूपण किया गया है । वे इस प्रकार है--

(१) **अन्तक्रियाद्वार** इसमे नारक आदि चौवीस दण्डको की अन्तक्रिया-सम्बन्धी प्ररूपणा है ।

(२) **अनन्तरद्वार**—इसमे अनन्तरागत एव परम्परागत जीव की अन्तक्रिया से सम्बन्धित निरूपण है ।

(३) **एकसमयद्वार**--इसमे एक समय के जीवो की अन्तक्रिया मे सम्बन्धित प्रश्नोत्तर है ।

(४) **उद्वृत्तद्वार** इसमे नैरयिको से उद्वृत्त होकर नैरयिक आदि मे उत्पन्न होने तथा पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो के धर्मश्रवण, केवलज्ञानादि तथा शील, व्रत, गुणव्रत प्रत्याख्यान एव पौषधोपवास आदि के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर हैं ।

(५) **तीर्थंकरद्वार** –नैरयिको से लेकर सर्वार्थसिद्ध देवो से उद्वृत जीवो को तीर्थंकरत्व प्राप्त होने के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर है ।

(६) **चक्रिद्वार**—इसमे चौवीस दण्डको से उद्वृत जीवो को चक्रवर्तित्व प्राप्त होने के सम्बन्ध मे चर्चा है ।

(७) **बलदेवद्वार**—इसमे बलदेवत्वप्राप्ति सम्बन्धी चर्चा है ।

(८) **वासुदेवद्वार** इसमे वासुदेवत्वप्राप्ति सम्बन्धी चर्चा है ।

(९) **माण्डलिकद्वार**—इसमे माण्डलिकत्वप्राप्ति सम्बन्धी चर्चा है ।

(१०) **रत्नद्वार**– इसमे सेनापतिरत्न आदि चक्रवर्ती के रत्नो की प्राप्ति से सम्बन्धित निरूपण है।[1]

अन्तक्रिया : दो अर्थों मे – प्रस्तुत पद मे अन्तक्रिया शब्द दो अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है (१) कर्मों या भव के अन्त (क्षय) करने की क्रिया और (२) अन्त अर्थात् – अवसान (मरण) की क्रिया। वैसे तो जैनागमो मे अन्तक्रिया समस्त कर्मों (या भव) के अन्त करने के अर्थ मे रूढ है, तथापि भव का अन्त करने की क्रिया से दो परिणाम आते है—या तो मोक्ष प्राप्त होता है, या मरण होता है—उस भव के शरीर से छुटकारा मिलता है। इसलिए यहाँ अन्तक्रिया शब्द इन दोनो (मोक्ष और मरण) अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है। प्रस्तुत पद मे इसी अन्तक्रिया का विचार चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे दस द्वारो के माध्यम से किया गया है।

इन दस द्वारो के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रथम के तीन द्वारो मे अन्तक्रिया – अर्थात् मोक्ष की चर्चा है और बाद के द्वारो का सम्बन्ध भी अन्तक्रिया के साथ है, किन्तु वहाँ अन्तक्रिया का अर्थ मृत्यु करे तभी सगति बैठ सकती है। इसके अतिरिक्त इन द्वारो मे अन्तक्रिया का अर्थ –मोक्ष भी घटित हो सकता है, क्योकि उन द्वारो मे उन-उन योनियो मे उद्वर्त्तना आदि करने वालो को मोक्ष सभव है या नही ? ऐसा प्रश्न भी प्रस्तुत किया गया है।[2]

प्रथम : अन्तक्रियाद्वार

१४०७ [१] जीवे ण भते ! अंतकिरिय करेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए करेज्जा, अत्थेगइए णो करेज्जा ?

[१४०७-१ प्र.] भगवन् ! क्या जीव अन्तक्रिया करता है।

[उ] हाँ गौतम ! कोई जीव (अन्तक्रिया) करता है (और) कोई जीव नही करता है।

[२] एव णेरइए जाव वेमाणिए।

[१४०७-२] इसी प्रकार नैरयिक से लेकर वैमानिक तक की अन्तक्रिया के सम्बन्ध मे समझ लेना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र के प्रथम अश मे समुच्चय जीवो की अन्तक्रिया के सम्बन्ध मे चर्चा की गई है, जबकि द्वितीय अश मे नैरयिक से वैमानिक तक चौवीस दण्डकवर्ती जीवो की अन्तक्रिया के विषय मे चर्चा है।

अन्तक्रिया-प्राप्ति-अप्राप्ति का रहस्य जो जीव तथाविध भव्यत्व के परिपाकवश मनुष्यत्व आदि समग्र सामग्री प्राप्त कर के उस सामग्री के बल से प्रकट होने वाले अतिप्रबल वीर्य के उल्लास से क्षपकश्रेणी पर आरूढ होकर केवलज्ञान प्राप्त करके केवल घातिकर्मों का ही नही, अघातिकर्मों

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३९६-३९७

२ (क) अन्तक्रियामिति –अन्त -अवसान, तच्च प्रस्तावादिह कर्मणामवसातव्यम्, तस्य क्रिया—करणमन्त-क्रिया—कर्मान्तकरण मोक्ष इति भावार्थ । —प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्र ३९७

(ख) पण्णवणासुत्त (परिशिष्ट-प्रस्तावनात्मक) भा. २, पृ ११२

का भी क्षय कर देता है, वही अन्तक्रिया करता है, अर्थात् समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करता है। इससे विपरीत प्रकार का जीव अन्तक्रिया (मोक्ष) प्राप्त नही कर पाता। इसी रहस्य के अनुसार समस्त जीवो की अन्तक्रिया की प्राप्ति-अप्राप्ति समझ लेनी चाहिए। [1]

१४०८. [१] णेरइए णं भंते ! णेरइएसु अंतकिरियं करेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

[१४०८-१ प्र.] भगवन् ! क्या नारक, नारको (नरकगति) मे रहता हुआ अन्तक्रिया करता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है।

[२] णेरइए ण भते ! असुरकुमारेसु अतकिरिय करेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

[१४०८-२ प्र] भगवन् ! क्या नारक, असुरकुमारो मे अन्तक्रिया करता है ?

[उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[३] एव जाव वेमाणिएसु। णवर मणूसेसु अतकिरिय करेज्ज त्ति पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइए करेज्जा, अत्थेगइए णो करेज्जा।

[१४०८-३] इसी प्रकार नारक की वैमानिको तक मे (अन्तक्रिया की असमर्थता समझ लेनी चाहिए)। [प्र] विशेष प्रश्न (यह है कि) नारक क्या मनुष्यो मे (आकर) अन्तक्रिया करता है ?

[उ] गौतम ! कोई नारक (अन्तक्रिया) करता है और कोई नही करता।

१४०९ एवं असुरकुमारे जाव वेमाणिए। एवमेते चउवीसं चउवीसदंडगा ५७६ भवति। दारं १ ॥

[१४०९] इसी प्रकार असुरकुमार से लेकर वैमानिक तक के विषय मे भी समझ लेना चाहिए। इसी तरह चौवीस दण्डको (मे से प्रत्येक) का चौवीस दण्डको मे (अन्तक्रिया का निरूपण करना चाहिए।) (वे सब मिला कर २४ × २४ =) ५७६ (प्रश्नोत्तर) हो जाते हैं।

-- प्रथम द्वार ॥१॥

विवेचन - नारक की नारकादि मे अन्तक्रिया की असमर्थता का कारण —नारक जीव नारक पर्याय मे रहते हुए अन्तक्रिया इसलिए नही कर सकते कि समस्त कर्मों का क्षय (मोक्ष) तभी होता है, जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये तीनो मिलकर प्रकर्ष को प्राप्त हो। नैरयिक-पर्याय से सम्यग्दर्शन का प्रकर्ष कदाचित् क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीव मे हो भी जाए, किन्तु सम्यग्ज्ञान के प्रकर्ष की योग्यता और सम्यक्चारित्र के परिणाम नारकपर्याय मे उत्पन्न हो नही सकते, क्योकि नारक भव का ऐसा ही स्वभाव है।

---

१ प्रज्ञापना. मलय वृत्ति, पत्र ३९७

इसी प्रकार नारकजीव, असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो मे, पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रियो मे, विकलेन्द्रियो मे, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एव वैमानिक देवो मे रहता हुआ अन्तक्रिया नही कर सकता। इसका भी कारण वही भवस्वभाव है।[1]

मनुष्यों मे नारकादि के जीवो की अन्तक्रिया—मनुष्य पर्याय से आया हुआ कोई नारक, जिसे मनुष्यत्व आदि की परिपूर्ण सामग्री प्राप्त हो गई हो, वह पूर्वोक्त प्रकार से क्रमश समस्त कर्म क्षय करके अन्तक्रिया करता है और कोई नारक, जिसे परिपूर्ण सामग्री प्राप्त नही होती, वह अन्तक्रिया नही कर पाता।

इसी प्रकार मनुष्यो मे आया हुआ कोई-कोई असुरकुमार आदि (असुरकुमार से लेकर वैमानिक देव तक) का जीव, जिसे परिपूर्ण सामग्री प्राप्त हो जाती है, वह अन्तक्रिया कर लेता है और जिसे परिपूर्ण सामग्री नही मिलती, वह अन्तक्रिया नही कर पाता।[2]

प्रत्येक दण्डकवर्ती जीव की चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे अन्तक्रिया नारक आदि प्रत्येक दण्डक का जीव, नारक आदि चौवीस दण्डको मे से प्रत्येक दण्डक मे रहते हुए अन्तक्रिया कर सकता है या नही? इस प्रकार के कुल २४ × २४ = ५७६ प्रश्नोत्तर विकल्प हो जाते है।[3]

द्वितीय : अनन्तरद्वार

१४१० [१] **णेरइया ण भते ! किं अणंतरागता अंतकिरिय करेंति परपरागया अतकिरिय करेंति ?**

गोयमा ! अणतरागया वि अंतकिरिय करेति, परपरागता वि अंतकिरियं करेंति।

[१४१०-१ प्र] भगवन्! नारक (जीव) क्या अनन्तरागत अन्तक्रिया करते है, अथवा पराम्परागत अन्तक्रिया करते है?

[उ] गौतम! (वे) अनन्तरागत भी अन्तक्रिया करते है और परम्परागत भी अन्तक्रिया करते है।

[२] **एव रयणप्पभापुढविणेरइया वि जाव पंकप्पभापुढविणेरइया।**

[१४१०-२ प्र] इसी प्रकार रत्नप्रभा नरकभूमि के नारको से लेकर पकप्रभा नरकभूमि के नारको तक की अन्तक्रिया के विषय मे समझ लेना चाहिए।

[३] **धूमप्पभापुढविणेरइया ण भते ! पुच्छा।**

गोयमा ! णो अणंतरागया अतकिरिय करेंति, परंपरागया अतकिरियं करेंति। एव जाव अहेसत्तमापुढविणेरइया।

[१४१०-३ प्र] (अब) प्रश्न है—क्या धूमप्रभापृथ्वी के अनन्तरागत नारक अन्तक्रिया करते हैं या परम्परागत अन्तक्रिया करते है?

---

१ प्रज्ञापन मलय वृत्ति, पत्र ३९७

२ वही, पत्र ३९७

३ वही, पत्र ३९७

[उ] हे गौतम! (वे) अनन्तरागत अन्तक्रिया नही करते, (किन्तु) परम्परागत अन्तक्रिया करते है। इसी प्रकार अध.सप्तमपृथ्वी (तमस्तमाभूमि तक) के नैरयिको (की अन्तक्रिया के विषय मे जान लेना चाहिए)।

१४११. असुरकुमारा जाव थणियकुमारा पुढवि-आउ-वणस्सइकाइया य अणंतरागया वि अंतकिरियं करेंति, परंपरागया वि अंतकिरियं करेंति।

[१४११] असुरकुमार से (लेकर) स्तनितकुमार (तक के भवनपति देव) तथा पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक (एकेन्द्रिय जीव) अनन्तरागत भी अन्तक्रिया करते हैं और परम्परागत भी अन्तक्रिया करते है।

१४१२. तेउ-वाउ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया णो अणंतरागया अंतकिरियं पकरेंति, परंपरागया अंतकिरियं पकरेंति।

[१४१२] तेजस्कायिक, वायुकायिक (एव) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय (और) चतुरिन्द्रिय (विकलेन्द्रिय त्रस जीव) अनन्तरागत अन्तक्रिया नही करते, किन्तु परम्परागत अन्तक्रिया करते है।

१४१३ सेसा अणंतरागया वि अंतकिरियं पकरेंति, परंपरागया वि अंतकिरियं पकरेंति। दारं २॥

[१४१३] शेष (सभी जीव) अनन्तरागत भी अन्तक्रिया करते है और परम्परागत भी अन्तक्रिया करते है। —द्वितीय द्वार ॥२॥

विवेचन—अन्तक्रिया : अनन्तरागत या परम्परागत ? – अन्तक्रिया (मुक्ति) केवल मनुष्यभव म ही हो सकती हे, इसलिए द्वितीय द्वार मे नारक से लेकर वैमानिक तक के सभी जीवो के विषय मे प्रश्न है कि वे नारक आदि के जीव जो अन्तक्रिया करते है, वे नारकादिभव मे से मर कर व्यवधानरहित सीधे मनुष्यभव मे आकर (अनन्तरागत) अन्तक्रिया (मोक्षप्राप्ति) करते है, या नारकादिभव के बाद एक या अनेक भव करके फिर मनुष्यभव मे आकर (परम्परागत) अन्तक्रिया करते है ? यह इन सभी प्रश्नो का आशय है।[1]

जीवो की अनन्तरागत और परम्परागत अन्तक्रिया का निर्णय- समुच्चयरूप से नारक जीव दोनो प्रकार से अन्तक्रिया करते है। अर्थात् नरक से सीधे मनुष्यभव मे आ कर भी अन्तक्रिया करते है और नरक से निकल कर तिर्यञ्च आदि के भव करके फिर मनुष्यभव मे आ कर भी अन्तक्रिया करते है। किन्तु विशेषरूप से रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा और पकप्रभा, इन चारो नरकभूमियो के नारक अनन्तरागत अन्तक्रिया करते है और परम्परागत भी। किन्तु शेष तीन (धूमप्रभा, तम प्रभा और तमस्तम प्रभा) नरकभूमियो के नारक केवल परम्परागत अन्तक्रिया करते है। इसका कारण पूर्वोक्त ही समझना चाहिए।

असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक १० प्रकार के भवनपति देव तथा पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक, ये तीन प्रकार के एकेन्द्रिय जीव अनन्तरागत और परम्परागत दोनो

---

१ (क) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्र ३९७ (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी भा ४ पृ ४९२

प्रकार से अन्तक्रिया करते है। तेजस्कायिक, वायुकायिक जीव मर कर मनुष्य होते ही नही, इस कारण और तीन विकलेन्द्रिय जीव भवस्वभाव के कारण पम्परागत अन्तक्रिया ही करते हैं। ये जीव सीधे मनुष्यभव मे आकर अन्तक्रिया नही कर सकते, ये अपने-अपने भव से निकल कर तिर्यञ्चादिभव करके फिर मनुष्यभव मे आ कर अन्तक्रिया कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त पचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको मे से जिनकी योग्यता होती है, वे अनन्तरागत अन्तक्रिया करते है और जिनकी योग्यता नही होती, व परम्परागत अन्तक्रिया करते है। इस सम्बन्ध मे पूर्वोक्त युक्ति ही समझनी चाहिए।[1]

तृतीय : एकसमयद्वार

१४१४. [१] अणतरागया ण भते ! णेरइया एगसमएण केवतिया अतकिरिय पकरेंति ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण दस।

[१४१४-१ प्र] भगवन् ! अनन्तरागत कितने नारक एक समय मे अन्तक्रिया करते है ?

[उ.] गौतम ! (वे एक समय मे) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट दस (अन्तक्रिया करते है।)

[२] रयणप्पभापुढविणेरइया वि एवं चेव जाव वालुयप्पभापुढविणेरइया।

[१४१४-२] (अनन्तरागत) रत्नप्रभापृथ्वी के नारक भी इसी प्रकार (अन्तक्रिया करते है) यावत् वालुकाप्रभापृथ्वी के नारक भी (इसी प्रकार अन्तक्रिया करते हैं।)

[३] अणंतरागता ण भते ! पकप्पभापुढविणेरइया एगसमएण केवतिया अंतकिरिय पकरेंति ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण चत्तारि।

[१४१४-३ प्र.] भगवन् ! अनन्तरागत पकप्रभापृथ्वी के कितने नारक एक समय मे अन्तक्रिया करते है ?

[उ] गौतम ! (वे एक समय मे) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार (अन्तक्रिया करते है।)

१४१५. [१] अणंतरागया ण भंते ! असुरकुमारा एगसमएणं केवइया अतकिरिय पकरेंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण दस।

[१४१५-१ प्र] भगवन् ! अनन्तरागत कितने असुरकुमार एक समय मे अन्तक्रिया करते है ?

[उ] गौतम ! (वे एक समय मे) जघन्य एक, दो या तीन (और) उत्कृष्ट दस (अन्तक्रिया करते है।)

[२] अणतरागयाओ णं भते ! असुरकुमारीओ एगसमएण केवतियाओ अतकिरिय पकरेंति ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्का वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं पच।

---

१. (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्र ३९७ (ख) पण्णवणासुत्त (परिशिष्ट) भा. २, पृ. ११२

[१४१५-२ प्र.] भगवन् ! अनन्तरागता कितनी असुरकुमारियाँ एक समय मे अन्तक्रिया करती हैं ?

[उ] गौतम ! (वे एक समय मे) जघन्य एक, दो या तीन (और) उत्कृष्ट पाच (अन्तक्रिया करती हैं।)

[३] एव जहा असुरकुमारा सदेवीया तहा जाव थणियकुमारा ।

[१४१५-३] इसी प्रकार जैसे अनन्तरागत असुरकुमारो तथा उनकी देवियो की (सख्या एक समय में अन्तक्रिया करने को बताई है,) उतनी ही स्तनितकुमारो (तथा उनकी देवियो) तक की सख्या (अन्तक्रिया के सम्बन्ध मे समझ लेना चाहिए।)

१४१६. [१] अणतरागया ण भते ! पुढविक्काइया एगसमएण केवतिया अंतकिरियं पकरेंति ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि ।

[१४१६-१ प्र] भगवन ! कितने अनन्तरागत पृथ्वीकायिक एक समय मे अन्तक्रिया करते हैं ?

[उ] गौतम ! (वे एक समय मे) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार (अन्तक्रिया करते हैं।)

[२] एवं आउक्काइया वि चत्तारि । वणस्सइकाइया छ । पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दस । तिरिक्खजोणिणीओ दस । मणूसा दस । मणूसीओ वीसं । वाणमंतरा दस । वाणमंतरीओ पच । जोइसिया दस । जोइसिणीओ वीसं । वेमाणिया अट्ठसतं । वेमाणिणीओ वीसं । दारं ३ ।।

[१४१६-२] इसी प्रकार (अप्कायिक आदि जघन्य तो एक समय मे एक दो या तीन और उत्कृष्टन) अप्कायिक भी चार (अन्तक्रिया करते हैं,) वनस्पतिकायिक छह, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च दस, (पचेन्द्रिय) तिर्यञ्च स्त्रियाँ दस, मनुष्य दस, मनुष्यनियाँ बीस, वाणव्यन्तर देव दस, वाणव्यन्तर देवियाँ पाच, ज्योतिष्क देव दस, ज्योतिष्क देवियाँ बीस, वैमानिक देव एक सौ आठ, वैमानिक देवियाँ वोस (अन्तक्रिया करती हैं।) --तृतीय द्वार ।। ३ ।।

विवेचन -प्रस्तुत द्वार मे केवल अनन्तरागत अन्तक्रिया कर सकने वाले जीवो के सम्बन्ध मे प्रश्न है कि वे एक समय मे कितनी सख्या मे अन्तक्रिया कर सकते है ?

अनन्तरागत अन्तक्रिया कर सकने वाले जीवो की सख्या-सूचक तालिका इस प्रकार है—

अनन्तरागत जीव	जघन्य सख्या	उत्कृष्ट सख्या
नारक (समुच्चय)	१, २, ३	१०
प्रथम, द्वितीय, तृतीय नारक	१, २, ३	१०
चतुर्थ पृथ्वी के नारक	१, २, ३	४
समस्त भवनपति देव	१, २, ३	१०

अनन्तरागत जीव	जघन्य संख्या	उत्कृष्ट संख्या
समस्त भवनपति देवियाँ	१, २, ३	५
पृथ्वीकाय, अप्काय	१, २, ३	४
वनस्पतिकायिक	१, २, ३	६
पचेन्द्रिय तिर्यञ्च	१, २, ३	१०
पचेन्द्रिय तिर्यञ्ची (स्त्री)	१, २, ३	१०
मनुष्य (नर)	१, २, ३	१०
मनुष्य (नारी)	१, २, ३	२०
वाणव्यन्तर देव	१, २, ३	१०
वाणव्यन्तर देवियाँ	१, २, ३	५
ज्योतिष्क देव	१, २, ३	१०
ज्योतिष्क देवियाँ	१, २, ३	२०
वैमानिक देव	१, २, ३	१०८
वैमानिक देवियाँ	१, २, ३	२०[1]

अनन्तरागत जीव : पूर्वभव-पर्याय की अपेक्षा से—यद्यपि नारक आदि जीव नरक आदि से निकल कर सीधे मनुष्यभव मे आ जाने के बाद नारक आदि नही रहते, वे सब मनुष्य हो जाते है, फिर भी उन्हे शास्त्रकार ने जो अनन्तरागत आदि कहा है, वह कथन पूर्वभव-पर्याय की अपेक्षा से समझना चाहिए। वस्तुत अनन्तरागत नारक आदि से तात्पर्य उन जीवो से है, जो पूर्वभव मे नारक आदि थे और वहाँ से निकल कर सीधे मनुष्यभव मे आ कर मनुष्य बने हैं।[2]

चतुर्थ : उद्वृत्तद्वार

१४१७. णेरइए णं भंते ! णेरइएहिंतो अणंतर उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४१७ प्र] भगवन् ! नारक जीव, नारको मे से उद्वर्त्तन (निकल) कर क्या (सीधा) नारको मे उत्पन्न होता है ?

[उ.] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है।

१४१८. णेरइए णं भंते ! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता असुरकुमारेसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४१८ प्र.] भगवन् ! नारक जीव नारको मे से निकल कर क्या (सीधा) असुरकुमारो मे उत्पन्न हो सकता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

१४१९. एव निरंतरं जाव चउरिंदिएसु पुच्छा ।

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

१ पण्णवणासुत्त (परिशिष्ट) भा. २, पृ. ११३

२ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३९८ (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी भा ४, पृ ४९८

[१४१९ प्र] इसी तरह (नैरयिक नैरयिको मे से निकल कर) निरन्तर (व्यवधानरहित-सीधा) (नागकुमारो से ले कर) चतुरिन्द्रिय जीवो तक मे (उत्पन्न हो सकता है?) ऐसी पृच्छा करनी चाहिए।

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही।

१४२०. [१] णेरइए ण भते ! णेरइएहिंतो अणतरं उव्वट्टित्ता पचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

[१४२०-१ प्र] भगवन् ! नारक जीव नारको मे से उद्‌वर्त्तन कर अन्तर (व्यवधान) रहित (सोधा) पचेन्द्रियतिर्यञ्च मे उत्पन्न हो सकता है ?

[उ] गौतम ! (इनमे से) कोई उत्पन्न हो सकता है (और) कोई उत्पन्न नही हो सकता।

[२] जे ण भते ! णेरइएहिंतो अणतरं उव्वट्टित्ता पचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जेज्जा से ण केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा अत्थेगइए णो लभेज्जा।

[१४२०-२ प्र] भगवन् ! जो नारक नारको मे से निकल कर सीधा तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होता है, क्या वह केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण प्राप्त कर सकता है ?

[उ] गौतम ! (उनमे से) कोई धर्मश्रवण को प्राप्त कर सकता है और कोई नही कर सकता।

[३] जे ण भते ! केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए से ण केवल बोहिं बुज्झेज्जा।

गोयमा ! अत्थेगइए बुज्झेज्जा, अत्थेगइए णो बुज्झेज्जा।

[१४२०-३ प्र] भगवन् ! जो (पचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे उत्पन्न जीव) केवलि-प्ररूपित धर्मश्रवण प्राप्त कर सकता है, क्या वह केवल (शुद्ध) बोधि को समझ सकता है ?

[उ] गौतम ! (इनमे से) कोई (केवलबोधि) को समझ पाता है (और) कोई नही समझ पाता।

[४] जे ण भते ! केवलं बोहिं बुज्झेज्जा से णं सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा ?

गोयमा ! सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा।

[१४२०-४ प्र] भगवन् ! जो (नैरयिको से तिर्यञ्चपचेन्द्रिय मे अनन्तरागत जीव) केवल-बोधि को समझ पाता है, क्या वह (उस पर) श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है (तथा) रुचि करता है ?

[उ] (हाँ) गौतम ! (वह) श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है (तथा) रुचि करता है।

[५] जे णं भंते ! सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा से णं आभिणिबोहियणाण-सुयणाणाइ उप्पाडेज्जा ?

हंता ! गोयमा ! उप्पाडेज्जा।

[१४२०-५ प्र] भगवन् ! जो (उस पर) श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करता है (क्या) वह आभिनिबोधिकज्ञान (और) श्रुतज्ञान उपार्जित (प्राप्त) कर लेता है ?

[उ] हाँ गौतम ! वह (इन ज्ञानो को) प्राप्त कर सकता है ।

[६] जे णं भते ! आभिणिबोहियणाण-सुयणाणाइ उप्पाडेज्जा से ण संचाएज्जा सील वा वय वा गुणं वा वेरमणं वा पच्चक्खाण वा पोसहोववास वा पडिवज्जित्तए ?

गोयमा ! अत्थेगइए संचाएज्जा, अत्थेगइए णो सचाएज्जा ।

[१४२०-६ प्र] भगवन् ! जो (अनन्तरागत तिर्यञ्चपचेन्द्रिय) आभिनिबोधिकज्ञान एव श्रुतज्ञान को प्राप्त कर लेता है, (क्या) वह शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान अथवा पौषधोपवास अगीकार करने मे समर्थ होता है ?

[उ] गौतम ! (कोई तिर्यञ्चपचेन्द्रिय) (शील यावत् पौषधोपवास को अगीकार) कर सकता है और कोई नही कर सकता है ।

[७] जे ण भते ! सचाएज्जा सील वा जाव पोसहोववास वा पडिवज्जित्तए से ण ओहिणाण उप्पाडेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए णो उप्पाडेज्जा ।

[१४२०-७ प्र.] भगवन् ! जो (तिर्यञ्चपचेन्द्रिय) शील यावत् पौषधोपवास अगीकार कर सकता है (क्या) वह अवधिज्ञान का उपार्जित (प्राप्त) कर सकता है ?

[उ] गौतम ! (उनमे से) कोई (अवधिज्ञान) प्राप्त कर सकता है (और) कोई प्राप्त नही कर सकता है ।

[८] जे ण भते ओहिणाण उप्पाडेज्जा से ण सचाएज्जा मु डे भवित्ता आगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४२०-८ प्र] भगवन् ! जो (तिर्यञ्चपचेन्द्रिय) अवधिज्ञान उपार्जित कर लेता है, (क्या) वह मुण्डित हो कर अगारत्व से अनगारत्व (अनगारधर्म) मे प्रव्रजित होने मे समर्थ है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

१४२१. [१] णेरइए ण भते ! णेरइएहिंतो अणतर उव्वट्टित्ता मणूसेसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा ।

[१४२१-१ प्र.] भगवन् ! नारक जीव, नारको मे से उद्वर्त्तन (निकल) कर क्या सीधा मनुष्यो मे उत्पन्न हो जाता है ?

[उ] गौतम ! (उनमे से) कोई (मनुष्यो मे) उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नही होता है ।

[२] जे णं भंते ! उववज्जेज्जा से ण केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! जहा पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु (सु १४२० [२-७]) जाव जे ण भंते ! ओहिणाणं उप्पाडेज्जा से णं संचाएज्जा मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?

गोयमा ! अत्थेगइए संचाएज्जा, अत्थेगइए णो संचाएज्जा ।

[१४२१-२ प्र] भगवन् ! जो (नारको मे से अनन्तरागत जीव मनुष्यो मे) उत्पन्न होता है, (क्या) वह केवलि-प्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त कर लेता है ?

[उ] गौतम ! जैसे पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको मे (आकर उत्पन्न जीव) के विषय मे धर्मश्रवण से (लेकर) अवधिज्ञान प्राप्त कर लेता है, तक कहा है, वैसे ही यहाँ कहना चाहिए। (विशेष प्रश्न यह है—) भगवन् ! जो (मनुष्य) अवधिज्ञान प्राप्त कर लेता है, (क्या) वह मुण्डित होकर अगारत्व से अनगारधर्म मे प्रव्रजित हो सकता है ?

[उ] गौतम ! (उनमे से) कोई प्रव्रजित हो सकता है और कोई प्रव्रजित नही हो सकता है।

[३] जे ण भते ! संचाएज्जा मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए से ण मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए णो उप्पाडेज्जा ।

[१४२१-३ प्र] भगवन् ! जो (मनुष्य) मुण्डित होकर अगारित्व से अनगारधर्म मे प्रव्रजित होने मे समर्थ है, (क्या) वह मन पर्यवज्ञान को उपार्जित कर सकता है ?

[उ] गौतम ! (उनमे से) कोई (मन पर्यवज्ञान को) उपार्जित कर सकता है (और) कोई उपार्जित नही कर सकता है।

[४] जे ण भते ! मणपज्जवणाण उप्पाडेज्जा से ण केवलणाण उप्पाडेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए णो उप्पाडेज्जा ।

[१४२१-४ प्र] भगवन् ! जो (मनुष्य) मन पर्यवज्ञान को उपार्जित कर लेता है, (क्या) वह केवलज्ञान को उपार्जित कर सकता है ?

[उ] गौतम ! (उनमे से) कोई केवलज्ञान को उपार्जित कर सकता है (और) कोई उपार्जित नही कर सकता है।

[५] जे ण भते ! केवलणाण उप्पाडेज्जा से णं सिज्झेज्जा बुज्झेज्जा मुच्चेज्जा सव्वदुक्खाणं अतं करेज्जा ?

गोयमा ! सिज्झेज्जा जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेज्जा ।

[१४२१-५ प्र.] भगवन् ! जो (मनुष्य) केवलज्ञान को उपार्जित कर लेता है, (क्या) वह सिद्ध हो सकता है, बुद्ध हो सकता है, मुक्त हो सकता है, यावत् सब दु खो का अन्त कर सकता है ?

[उ.] (हाँ) गौतम ! वह (अवश्य ही) सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाता है, यावत् समस्त दु खो का अन्त कर देता है।

१४२२. णेरइए णं भंते ! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४२२ प्र] भगवन् ! नारक जीव, नारको मे से निकल कर (क्या सीधा) वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिको मे उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है ।

विवेचन--नारको में से नारकादि मे उत्पत्ति, धर्मश्रवणादि-विषयक चर्चा—प्रस्तुत द्वार के प्रथम ६ सूत्रो (सू १४१७ से १४२२ तक) मे नारको मे से मर सीधे नारको, भवनपतियो, विकलेन्द्रियो, तिर्यञ्चपचेन्द्रियो, मनुष्यो, वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्को और वैमानिको मे उत्पत्ति की चर्चा है । फिर तिर्यञ्चपचेन्द्रियो और मनुष्यो मे उत्पन्न होने वाले जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण, शुद्ध बोधि, श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, मति-श्रुतज्ञान, शील-व्रत-गुण-विरमण-प्रत्याख्यान-पौषधोपवासग्रहण, अवधि-मन पर्यव-केवल ज्ञान एव सिद्धि (मुक्ति), इनमे से क्या-क्या प्राप्त कर सकते हैं ? इसकी चर्चा की गई है ।[1]

उद्वर्त्तन: विशेषार्थ मे—प्रस्तुत शास्त्र मे 'उद्वृत्त' शब्द समस्त गतियो मे होने वाले 'मरण' के लिए प्रयुक्त किया गया है, जबकि 'षट्खण्डागम' मे मरण के लिए तीन शब्द प्रयुक्त किये गए हैं—नरक, भवनवासी, वाणव्यन्तर एव ज्योतिष्क गति मे से मर कर जाने वालो के लिए 'उद्वृत्त', तिर्यञ्च और मनुष्यगति मे से मर कर जाने वालो के लिए 'कालगत' और वैमानिक देवो मे से मर कर जाने वालो के लिए 'च्युत' शब्द ।[2]

नारको का उद्वर्त्तन तिर्यञ्चपचेन्द्रियों और मनुष्यों मे—इस पाठ से स्पष्ट है कि नारकजीव नारको मे से निकल कर सीधा नारको, भवनपतियो और विकलेन्द्रियो मे उत्पन्न नही हो सकता है, उसका कारण पूर्वोक्त ही है । वह नारको मे से निकल कर सीधा तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीवो और मनुष्यो मे उत्पन्न हो सकता है । तिर्यञ्चपचेन्द्रिय और मनुष्य मे उत्पन्न होने वाले भूतपूर्व नारको मे से कोई-कोई केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण, केवलबोधि, श्रद्धा-प्रतीति-रुचि, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, शील-व्रत-गुण-विरमण-प्रत्याख्यान-पौषधोपवास-ग्रहण, अवधिज्ञान तक प्राप्त कर सकते है, किन्तु मनुष्यो मे उत्पन्न होने वाले भूतपूर्व नारको मे से कोई-कोई इससे आगे बढकर अनगारत्व, मन पर्याय-ज्ञान, केवलज्ञान और सिद्धत्व को प्राप्त कर सकते है ।[3]

विशिष्ट शब्दो के अर्थ—केवलिपन्नत्त धम्म—केवली द्वारा प्ररूपित—उपदिष्ट श्रुत-चारित्र-रूप धर्म को । **लभेज्ज सवणयाए**—श्रवण प्राप्त करता है । **केवलं बोहिं : दो अर्थ**—(१) केवल—विशुद्ध बोधि—धर्मप्राप्ति (धर्मदेशना), (२) केवली द्वारा साक्षात् या परम्परा से उपदिष्ट (कैवलिक) बोधि ।

---

१ पण्णवणासुत्त (परिशिष्ट) भा. २, पृ. ११३

२. (क) वही, पृ. ११३ (ख) षट्खण्डागम भा ६, पृ. ४७७ मे विशेषार्थ

३. प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनीटीका, भा. ४, पृ. ५०९

प्रश्न का आशय—केवलिप्रज्ञप्तधर्म का श्रोता क्या उपर्युक्त कैवलिक बोधि को यथोक्तरूप से जानता-समझता है ?[१]

शील आदि शब्दों के विशिष्ट अर्थ—शील - ब्रह्मचर्य, व्रत—विविध द्रव्यादिविषयक नियम, गुण, भावना आदि, अथवा उत्तरगुण, **विरमण**—अतीत स्थूल प्राणातिपात आदि से विरति, **प्रत्याख्यान**—अनागतकालीन स्थूल प्राणातिपात आदि का त्याग, पोषधोपवास--पोषध—धर्म का पोषण करने वाले अष्टमी आदि पर्वों मे उपवास पोषधोपवास ।[२]

अवधिज्ञान किनको ?--तिर्यञ्चपचेन्द्रियो और मनुष्यो को भवप्रत्यय अवधिज्ञान नही होता, गुणप्रत्यय होता है । शीलव्रत आदि विषयक गुणो के धारको मे जिनके उत्कृष्ट परिणाम होते है, उनको अवधिज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम हो जाता है और उन्हे (तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीवो और मनुष्यो को, अवधिज्ञान प्राप्त होता है, सभी को नही ।

मन पर्यायज्ञान किनको ?—मन पर्यायज्ञान अनगार को ही प्राप्त होता है, वह भी उसी सयमी को होता है, जो समस्त प्रमादो से रहित हो, विविध ऋद्धियो से सम्पन्न हो । इसलिए तिर्यञ्चो को अनगारत्व भी प्राप्त नही होता, तब मन पर्यायज्ञान और केवलज्ञान कहाँ से प्राप्त होगा ! मनुष्यो मे भी उसी को मन पर्यायज्ञान प्राप्त होता है, जो अनगार हो, अप्रमत्त तथा निर्मल चारित्री एव ऋद्धिमान् हो ।[३]

मु डे भवित्ता : भावार्थ—मुण्ड दो प्रकार का होता है—द्रव्यमुण्ड और भावमुण्ड । केशादि कटाने से द्रव्यमुण्ड होता है, सर्वसग-परित्याग से भावमुण्ड का ग्रहण किया गया है । अर्थात्—भाव से मुण्डित होकर ।[४]

सिज्झेज्जा बुज्झेज्जा मुच्चेज्जा प्रासगिक विशेषार्थ—**सिज्झेज्जा** सर्व कार्य सिद्ध कर लेता है, कृतकृत्य हो जाता है, **बुज्झेज्जा**—समस्त लोकालोक के स्वरूप को जानता-देखता है, **मुच्चेज्जा**—भवोपग्राही कर्मों से भी मुक्त हो जाता है ।

असुरकुमारादि की उत्पत्ति की प्ररूपणा

१४२३. असुरकुमारे ण भते ! असुरकुमारेहितो अणतर उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४२३ प्र] भगवन् ! असुरकुमार, असुरकुमारो मे से निकल कर (सीधा) नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है ।

---

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्र ३९९

२ वही, पत्र ३९९

३ वही पत्र ४००

४ मुण्डो द्विधा—द्रव्यतो भावतश्च । द्रव्यत केशाद्यपनयनेन, भावत सर्वसगपरित्यागेन । तत्रेह द्रव्यमुण्डत्वा-सभवात् भावमुण्ड परिगृह्यते । वही, पत्र ४००

१४२४. असुरकुमारे णं भंते ! असुरकुमारेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता असुरकुमारेसु उववज्जिज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । एवं जाव थणियकुमारेसु ।

[१४२४ प्र] भगवन् ! असुरकुमार, असुरकुमारो में से निकल (उद्वर्त्तन) कर (सीधा) असुरकुमारो में उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो मे भी (असुरकुमार, असुरकुमारो मे से उद्वर्त्तन करके सीधे) उत्पन्न नही होते, यह समझ लेना चाहिए ।

१४२५. [१] असुरकुमारे ण भंते ! असुरकुमारेहिंतो अणंतर उव्वट्टित्ता पुढविक्काइएसु उववज्जेज्जा ?

हंता ! गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ।

[१४२५-१ प्र] भगवन् ! (क्या) असुरकुमार, असुरकुमारो मे से निकल कर सीधा पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! (उसमे से) कोई (पृथ्वीकायिक मे) उत्पन्न होता है (और) कोई उत्पन्न नही होता ।

[२] जे णं भते ! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४२५-२ प्र] भगवन् ! जो (असुरकुमार पृथ्वीकायिको मे) उत्पन्न होता है, (क्या) वह केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त कर सकता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[३] एवं आउ-वणस्सईसु वि ।

[१४२५-३ प्र] इसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवो के (उत्पन्न होने तथा धर्मश्रवण के) विषय मे समझ लेना चाहिए ।

१४२६ [१] असुरकुमारे ण भते ! असुरकुमारेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तेउ-वाउ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । अवसेसेसु पंचसु पंचेंदियतिरिक्खजोणियादिसु असुरकुमारे जहा णेरइए (सु. १४२०-२२) ।

[१४२६-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार, असुरकुमारो मे से निकल कर (क्या) सीधा (अनन्तर) तेजस्कायिक, वायुकायिक (तथा) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । अवशिष्ट पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक आदि (मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक) इन पाचों में असुरकुमार की उत्पत्ति आदि की वक्तव्यता [सू १४२०-२२ में उक्त] नैरयिक (की उत्पत्ति आदि की वक्तव्यता के अनुसार समझनी चाहिए ।)

[२] एवं जाव थणियकुमारे ।

[१४२६-२] इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिये ।

१४२७. [१] पुढविकाइए णं भंते ! पुढविक्काइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४२७-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिको में से उद्वर्त्तन कर (क्या) सीधा नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[२] एवं असुरकुमारेसु वि जाव थणियकुमारेसु वि ।

[१४२७-२] इस प्रकार (की वक्तव्यता) असुरकुमारो से स्तनितकुमारो तक (की उत्पत्ति के विषय मे समझ लेना चाहिए ।)

१४२८ [१] पुढविक्काइए णं भते ! पुढविक्काइएहिंतो अणंतर उव्वट्टित्ता पुढविक्काइएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा ।

[१४२८-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिको मे से निकल कर (क्या) सीधा पृथ्वीकायिको में उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! (उनमे से) कोई (पृथ्वीकायिको मे) उत्पन्न होता है (और) कोई उत्पन्न नही होता ।

[२] जे णं भते ! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्त धम्मं लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४२८-२ प्र] भगवन् ! (उनमे से) जो (पृथ्वीकायिको मे) उत्पन्न होता है, (क्या) वह केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त कर सकता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[३] एवं आउक्काइयादिसु णिरंतरं भाणियव्वं जाव चउरिंदिएसु ।

[१४२८-३] इसी प्रकार की वक्तव्यता अप्कायिक आदि (अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय) से लेकर चतुरिन्द्रिय जीवो तक मे निरन्तर (उत्पत्ति के विषय मे) कहना चाहिए ।

[४] पंचेंदियतिरिक्खजोणिय-मणूसेसु जहा णेरइए (सु. १४२०-२१) ।

[१४२८-४] (पृथ्वीकायिक की पृथ्वीकायिको मे से निकल कर सीधे) पचेन्द्रियतिर्यञ्च-

योनिकों और मनुष्यो मे (उत्पत्ति के विषय मे) [सू १४२०-२१ मे उक्त] नैरयिक (की वक्तव्यता) के समान (कहना चाहिए।)

[५] वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु पडिसेहो ।

[१४२८-५] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको मे (पृथ्वीकायिक की उत्पत्ति का) निषेध (समझना चाहिए।)

१४२९. एव जहा पुढविक्काइओ भणिओ तहेव आउक्काइओ वि वणस्सइकाइओ वि भाणियव्वो ।

[१४२९] जैसे पृथ्वीकायिक (की चौवीस दण्डको मे उत्पत्ति के विषय मे) कहा गया है, उसी प्रकार अप्कायिक एव वनस्पतिकायिक के विषय मे भी कहना चाहिए।

१४३०. [१] तेउक्काइए ण भंते ! तेउक्काइएहिंतो अणतर उव्वट्टित्ता णेयइएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४३०-१ प्र] भगवन् ! तेजस्कायिक जीव, तेजस्कायिको मे से उद्वृत्त होकर क्या सीधा नारको मे उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[२] एवं असुरकुमारेसु वि जाव थणियकुमारेसु वि ।

[१४३०-२] इसी प्रकार (तेजस्कायिक जीव की) असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो तक मे भी उत्पत्ति का निषेध समझना चाहिए।

१४३१ [१] पुढविक्काइय-आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइ-बेइंदिय-तेइंदिए-चउरिंदिएसु अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा ।

[१४३१-१] पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एव वनस्पतिकायिको मे तथा द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियो मे कोई (तेजस्कायिक) उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नही होता है।

[२] जे णं भंते ! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४३१-२ प्र] भगवन् ! जो तेजस्कायिक (इनमे) उत्पन्न होता है, (क्या) वह केवलि-प्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त कर सकता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

१४३२. [१] तेउक्काइए ण भंते ! तेउक्काइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पंचेंदियतिरिक्ख-जोणिएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा ।

[१४३२-१ प्र.] भगवन् ! तेजस्कायिक जीव, तेजस्कायिको मे से निकल कर क्या सीधा पचेन्द्रियतिर्यग्योनिको मे उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नही होता है ।

[२] जे ण भते ! उववजेज्जा से णं केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा ।

[१४३२-२ प्र.] भगवन् ! जो (तेजस्कायिक, पचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे) उत्पन्न होता है, (क्या) वह केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त कर सकता है ?

[उ] गौतम ! (उनमे से) कोई (धर्मश्रवण) प्राप्त करता है (और) कोई प्राप्त नही करता है ।

[३] जे ण भते ! केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए से ण केवल बोहि बुज्झेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४३२-३ प्र] भगवन् ! जो (तेजस्कायिक) केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त करता है, (क्या) वह केवल (केवलिप्रज्ञप्त) बोधि (धर्म) को समझ पाता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

१४३३. मणूस-वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिएसु पुच्छा ।

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४३३ प्र] भगवन् ! (अब प्रश्न है कि तेजस्कायिक जीव, इन्ही मे से निकल कर सीधा) मनुष्य तथा वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिको मे (उत्पन्न होता है ?)

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

१४३४. एव जहेव तेउक्काइए णिरंतरं एव वाउक्काइए वि ।

[१४३४] इसी प्रकार जैसे तेजस्कायिक जीव की अनन्तर उत्पत्ति आदि के विषय मे कहा है, उसी प्रकार वायुकायिक के विषय मे भी समझ लेना चाहिए ।

१४३५. बेइंदिए णं भंते ! बेइंदिएहिंतो अणतर उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहा पुढविक्काइए (सु. १४२७-२८) । णवर मणूसेसु जाव मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा ।

[१४३५ प्र] भगवन् ! (क्या) द्वीन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीवो मे से निकल कर सीधा नारको मे उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! जैसे पृथ्वीकायिक जीवो के विषय मे [१४२७-२८ मे] कहा है, वैसा ही द्वीन्द्रिय जीवो के विषय मे भी समझना चाहिए । (पृथ्वीकायिको मे) विशेष (अन्तर) यह है कि

(पृथ्वीकायिक जीवो के समान द्वीन्द्रिय जीव मनुष्यो मे उत्पन्न होकर अन्तक्रिया नही कर सकते; किन्तु) वे मन.पर्यायज्ञान तक प्राप्त कर सकते हैं।

१४३६. [१] एव तेइदिय-चउरिंदिया वि जाव मणपज्जवनाणं उप्पाडेज्जा ।

[१४३६-१] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव भी यावत् मन·पर्यायज्ञान प्राप्त कर सकते है।

[२] जे ण भते ! मणपज्जवनाण उप्पाडेज्जा से ण केवलणाणं उप्पाडेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४३६-२ प्र] जो (विकलेन्द्रिय मनुष्यो मे उत्पन्न हो कर) मन पर्यायज्ञान प्राप्त करता है, (क्या) वह केवलज्ञान प्राप्त कर सकना है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

१४३७. [१] पचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भते ! पंचिदियतिरिक्खजोणिएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेजा ?

गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा ।

[१४३७-१ प्र] भगवन् ! (क्या) पचेन्द्रियतिर्यञ्च पचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे से उद्वृत्त होकर सीधा नारको मे उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! (उनमे से) कोई (पचेन्द्रियतिर्यञ्च जीव) उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नही होता है।

[२] जे ण भते ! उववज्जेज्जा से ण केवलिपण्णत्तं धम्म लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा ।

[१४३७-२ प्र] भगवन् ! जो (पचेन्द्रियतिर्यञ्च नारको मे) उत्पन्न हाता है, क्या वह केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त करता है ?

[उ] गौतम ! (उनमे से) कोई प्राप्त करता है और कोई प्राप्त नही करता है।

[३] जे ण केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए से ण केवल बोहि बुज्झेज्जा ।

गोयमा ! अत्थेगइए बुज्झज्जा, अत्थेगइए नो बुज्झेज्जा ।

[१४३७-३ प्र] भगवन् ! जो केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त करता है, (क्या) वह केवल-बोधि (केवलिप्रज्ञप्त धर्म) को समझ पाता है ?

[उ] गौतम ! (उनमे से) कोई केवलबोधि (का अर्थ) समझता है (और) कोई नही समझता है।

[४] जे ण भते ! केवल बोहि बुज्झेज्जा से णं सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा ?

हंता गोयमा ! जाव[१] रोएज्जा ।

१. यहाँ 'जाव' शब्द 'सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा' का सूचक है।

[१४३७-४ प्र.] भगवन् ! जो केवलबोधि (का अर्थ) समझता है, (क्या) वह (उस पर) श्रद्धा करता है ? प्रतीति करता है ? (और) रुचि करता है ?

[उ] हाँ गौतम ! (वह) श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करता है।

[५] जे णं भंते ! सद्दहेज्जा ३[2] से ण आभिणिबोहियणाण-सुयणाण-ओहिणाणाणि उप्पाडेज्जा ?

हंता गोयमा ! उप्पाडेज्जा।

[१४३७-५ प्र] भगवन् ! जो श्रद्धा-प्रतीति-रुचि करता है, (क्या) वह आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान उपार्जित (प्राप्त) कर सकता है ?

[उ] हाँ, गौतम ! (वह आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधि ज्ञान) प्राप्त कर सकता है।

[६] जे ण भंते ! आभिणिबोहियणाण-सुयणाण-ओहिणाणाइं उप्पाडेज्जा से ण संचाएज्जा सील वा जाव[3] पडिवज्जित्तए ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

[१४३७-६ प्र] भगवन् ! जो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान प्राप्त करता है, (क्या) वह शील (आदि) से लेकर पोषधोपवास तक अंगीकार कर सकता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

१४३८. एवं असुरकुमारेसु वि जाव थणियकुमारेसु।

[१४३८] इसी प्रकार (पंचेन्द्रियतिर्यञ्च की, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे से उद्वृत्त हो कर सीधा) असुरकुमारो मे यावत् स्तनितकुमारो मे उत्पत्ति के विषय में (पंचेन्द्रियतिर्यञ्च से निरन्तर उद्वृत्त होकर उत्पन्न हुए नारक की वक्तव्यता के समान समझना चाहिए।)

१४३९. एगिदिय-विगलिंदिएसु जहा पुढविक्काइए (सु. १४२८ [१-३])।

[१४३९] एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवो मे (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको की) उत्पत्ति की वक्तव्यता (सू १४२८-[१-३] मे उक्त) पृथ्वीकायिक जीवो की उत्पत्ति के समान समझ लेनी चाहिए।

१४४०. पंचिदियतिरिक्खजोणिएसु मणूसेसु य जहा णेरइए (सु. १४२०-२१)।

[१४४०] पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो और मनुष्यो मे (सू १४२०-२१ मे) जैसे नैरयिक के (उत्पाद की प्ररूपणा की गई) वैसे ही पंचेन्द्रियतिर्यञ्च की प्ररूपणा करनी चाहिए।

१४४१. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु जहा णेरइएसु उववज्जेज्जत्ति पुच्छा भणिया (सु. १४३७)।

[१४४१] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे पंचेन्द्रियतिर्यञ्च के उत्पन्न होने

---

२ '३' का अंक पत्तिएज्जा—प्रतीति और रोएज्जा—रुचि करता है शब्द का द्योतक है।

३ यहाँ 'जाव' शब्द (१४२०-६ मे उक्त) 'सील वा, वय वा, गुण वा, वेरमण वा, पच्चक्खाण वा पोसहोववास वा' का सूचक है।

(आदि) को पृच्छा का कथन उसी प्रकार किया गया है, जैसे (सू १४३७ मे) नैरयिको मे उत्पन्न होने का (कथन किया गया) है।

१४४२. एवं मणूसे वि।

[१४४२] इसी प्रकार (अर्थात्—पचेन्द्रियतिर्यञ्च के समान ही) मनुष्य का (उत्पाद) भी चौवीस दण्डको में यथायोग्य कहना चाहिए।)

१४४३. वाणमतर-जोतिसिय-वेमाणिए जहा असुरकुमारे (सु १४२३-२६)। दारं ४।

[१४४३] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक के उत्पाद का कथन (चौवीस दण्डको मे (सू १४२३-२६ मे) असुरकुमार (के उत्पाद) के समान है।

विवेचन—असुरकुमार से लेकर वैमानिक तक चौवीस दण्डको मे उत्पत्ति आदि सम्बन्धी चर्चा—प्रस्तुत २१ सूत्रो (१४२३ से १४४३ तक) मे असुरकुमार स लेकर अवशिष्ट नौ प्रकार के भवनपति देव, पृथ्वीकायादि पच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्चपचेन्द्रिय, मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एव वैमानिक देवो की नारक से वैमानिक तक मे अनन्तर उद्वृत्त होकर उत्पन्न होने की चर्चा की गई है।[1]

उद्वृत्तद्वार का सार इस प्रकार है[2]

जीव	मर कर सीधा कहाँ उत्पन्न हो सकता है?	मर कर नये जन्म मे धर्मश्रवणादि की सभावना
नारक	पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च या मनुष्य मे	देशविरति के शीलादि और अवधिज्ञान एव मोक्ष (मनुष्यभव मे)
दस भवनपति	पृथ्वो, अप्, वनस्पति मे	
	तिर्यञ्चपचेन्द्रिय या मनुष्य मे	नारको के समान
पृथ्वी, अप्, वनस्पति	पृथ्वी, अप्, तेज और वायु मे तथा विकलेन्द्रियो मे	
	मनुष्यो मे तथा पचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे	नारको के समान
तेज. वायु	पृथ्वोकायिको से लेकर चतुरिन्द्रियो तक मे	
	पचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे	धर्मश्रवण
द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय	पृथ्वीकायिको से लेकर पचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे	पृथ्वीकायिक के समान
	कई मनुष्यो मे	मन पर्यवज्ञान
पचेन्द्रियतिर्यञ्च	भवनपतियो मे	अवधिज्ञान
	एकेन्द्रिय से लेकर यावत् चतुरिन्द्रियो मे	पृथ्वीकायिक के समान

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ३२२ से ३२४ तक

२ पण्णवणासुत्त (परिशिष्ट-प्रस्तावना सहित) भा २, पृ ११४

	पचेन्द्रियतिर्यञ्चो मे या मनुष्यो के	नारक के समान
	वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एव वैमानिको मे	नारक के समान
मनुष्य	उपर्युक्त जीवो मे	नारक के समान
वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एव वैमानिक	भवनपति देवो के समान उत्पत्ति	नारक के समान

तिर्यञ्चपंचेन्द्रियो और मनुष्यो की उपलब्धि मे अन्तर--यो तो तिर्यञ्चपचेन्द्रियो के समान प्राय मनुष्य से सम्बन्धित सारी वक्तव्यता है, किन्तु मनुष्यो की सर्वभावो की सभावना होने से उनको मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान उपलब्ध हो सकता है, अनगारत्व भी प्राप्त हो सकता है।[1]

सिज्झेज्जा आदि पदो का अर्थ पहले लिखा जा चुका है।

नैरयिकों की सीधी उत्पत्ति नहीं नैरयिको के भवस्वभाव के कारण वे नैरयिको मे से मर कर सीधे नैरयिको मे, भवनपति, वाणव्यन्तर ज्योतिष्क एव वैमानिक देवो मे उत्पन्न नही होते क्योकि नैरयिको का नैरयिकभव या देवभव का आयुष्यबन्ध होना असम्भव है।[2]

पृथ्वीकायिको की उत्पत्ति आदि—पृथ्वीकायिक जीव नारको और देवो मे सीधे उत्पन्न नही होते, क्योकि उनमे विशिष्ट मनोद्रव्य सम्भव नही होता, इस कारण तीव्र सक्लेश एव विशुद्ध अध्यवसाय नही हो सकता। मनुष्यो मे उत्पन्न होने पर ये अन्तक्रिया भी कर सकते है।[3]

भवनपति देवो की उत्पत्ति आदि असुरकुमारादि १० प्रकार के भवनपति देव पृथ्वी-वायु-वनस्पति मे उत्पन्न होते है। उधर ईशान (द्वितीय) देवलोक तक उनकी उत्पत्ति होती है। इन देवो मे उत्पन्न होने पर वे केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण नही कर सकते। शेष सब बाते नैरयिको के समान समझ लेनी चाहिए।[4]

तेजस्कायिक, वायुकायिक का मनुष्यो मे उत्पत्तिनिषेध ये दोनो सीधे मनुष्यो मे उत्पन्न नही हो सकते, क्योकि इनके परिणाम क्लिष्ट होने से इनके मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और मनुष्यायु का बन्ध होना असम्भव होता है। ये तिर्यञ्चपचेन्द्रियो मे उत्पन्न होकर श्रवणेन्द्रिय प्राप्त होने से केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त कर सकते है, किन्तु सक्लिष्ट परिणाम होने से केवलिकीबोधि (धर्म) का बोध[5] प्राप्त नही कर सकते।

विकलेन्द्रियो की उत्पत्ति-प्ररूपणा—द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीव, पृथ्वीकायिको के समान देवो और नारको को छोड कर शेष समस्त स्थानो मे उत्पन्न हो सकते हैं। ये तथाविध भवस्वभाव के कारण अन्तक्रिया नही कर पाते, किन्तु मनुष्यो मे उत्पन्न होने पर अनगार बन कर मन पर्यवज्ञान तक भी प्राप्त कर सकते है।[6]

---

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्र ४००

२ वही, पत्र ४००

३ वही, पत्र ४०१

४ वही, पत्र ४००

५ वही, पत्र ४०१

६ वही, पत्र ४०२

पंचम : तीर्थंकरद्वार

१४४४. रयणप्पभापुढविणेरइए ण भंते ! रयणप्पभापुढविणेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा ?

गोयमा ! जस्स णं रयणप्पभापुढविणेरइयस्स तित्थगरणाम-गोयाइं कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं निधत्ताइं कडाइं पट्ठवियाइं णिविट्ठाइं अभिनिविट्ठाइं अभिसमण्णागयाइं उदिण्णाइं णो उवसंताइं भवंति से णं रयणप्पभापुढविणेरइए रयणप्पभापुढविणेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा, जस्स णं रयणप्पभापुढविणेरइयस्स तित्थगरणाम-गोयाइं णो बद्धाइं जाव णो उदिण्णाइं उवसंताइं भवंति से णं रयणप्पभापुढविणेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं णो लभेज्जा ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ अत्थेगइए लभेज्जा अत्थेगइए णो लभेज्जा ।

[१४४४ प्र] भगवन् ! (क्या) रत्नप्रभापृथ्वी का नारक रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से निकल कर सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त करता है ?

[उ] गौतम ! उनमें से कोई तीर्थंकरत्व प्राप्त करता है और कोई प्राप्त नहीं कर पाता है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि (रत्नप्रभापृथ्वी का नारक) सीधा (मनुष्य भव में उत्पन्न होकर) कोई तीर्थंकरत्व प्राप्त कर लेता है और कोई प्राप्त नहीं कर पाता है ?

[उ] गौतम ! जिस रत्नप्रभापृथ्वी के नारक ने (पहले कभी) तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म बद्ध किया है, स्पृष्ट किया है, निधत्त किया है, प्रस्थापित, निविष्ट और अभिनिविष्ट किया है, अभि-समन्वागत (सम्मुख आगत) है, उदीर्ण (उदय में आया) है, उपशान्त नहीं हुआ है, वह रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से उद्वृत्त होकर सीधा (मनुष्यभव में उत्पन्न होकर) तीर्थंकरत्व प्राप्त कर लेता है, किन्तु जिस रत्नप्रभापृथ्वी के नारक के तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म बद्ध नहीं होता यावत् उदीर्ण नहीं होता, उपशान्त होता है, वह रत्नप्रभापृथ्वी का नारक रत्नप्रभापृथ्वी से निकल कर सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त नहीं कर सकता है।

इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि कोई नैरयिक तीर्थंकरत्व प्राप्त करता है और कोई प्राप्त नहीं कर पाता है।

१४४५. एवं जाव वालुयप्पभापुढविणेरइएहिंतो तित्थगरत्तं लभेज्जा ।

[१४४५] इसी प्रकार यावत् वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से (निकल कर कोई नारक मनुष्यभव प्राप्त करके) सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त कर लेता है और (कोई नारक नहीं प्राप्त करता है।)

१४४६. पंकप्पभापुढविणेरइए ण भंते ! पंकप्पभापुढविणेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा ।

[१४४६ प्र] भगवन् ! पकप्रभापृथ्वी का नारक पकप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे से निकल कर क्या सीधा तीर्थकरत्व प्राप्त कर लेता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, किन्तु वह अन्तक्रिया कर सकता है ।

१४४७. धूमप्पभापुढविणेरइए ण ० पुच्छा ।

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, विरतिं पुण लभेज्जा ।

[१४४७ प्र] धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक के सम्बन्ध मे प्रश्न है (कि क्या वह धूमप्रभापृथ्वी के नारको मे से निकल कर सीधा तीर्थकरत्व प्राप्त कर सकता है ?)

[उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । किन्तु वह विरति प्राप्त कर सकता है ।

१४४८ तमापुढविणेरइए ण ० पुच्छा ।

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, विरयाविरइ पुण लभेज्जा ।

[१४४८ प्र] (इसी प्रकार का) प्रश्न तम पृथ्वी के नारक के सम्बन्ध मे है ।

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, किन्तु वह (तम पृथ्वी का नारक) विरताविरति को प्राप्त कर सकता है ।

१४४९ अहेसत्तमाए ० पुच्छा ।

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, सम्मत्त पुण लभेज्जा ।

[१४४९ प्र] (अब) अध सप्तमपृथ्वी के (नैरयिक के विषय मे) पृच्छा है (कि क्या वह तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है ?)

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, किन्तु वह सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है ।

१४५० असुरकुमारे णं ० पुच्छा ।

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, अतकिरिय पुण करेज्जा ।

[१४५० प्र] इसी प्रकार की पृच्छा असुरकुमार के विषय मे है (कि क्या वह असुरकुमारो मे से निकल कर सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है ?)

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, किन्तु वह अन्तक्रिया (मोक्षप्राप्ति) कर सकता है ।

१४५१ एव निरतर जाव आउक्काइए ।

[१४५१] इसी प्रकार (असुरकुमार की भाँति) लगातार अप्कायिक तक (अपने-अपने भव से उद्वर्त्तन कर सीधे तीर्थकरत्व प्राप्त नही कर सकते, किन्तु अन्तक्रिया कर सकते है ।)

१४५२. तेउक्काइए णं भंते ! तेउक्काइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता उववज्जेज्जा (त्ता) तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए ।

[१४५२ प्र] भगवन्! तेजस्कायिक जीव तेजस्कायिको मे से उद्‌वृत्त होकर बिना अन्तर के (मनुष्य भव मे) उत्पन्न हो कर क्या तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है?

[उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नही है, (किन्तु वह) केवलिप्ररूपित धर्म का श्रवण प्राप्त कर सकता है।

१४५३. एव वाउक्काइए वि।

[१४५३] इसी प्रकार वायुकायिक के विषय मे भी समझ लेना चाहिए।

१४५४. वणस्सइकाइए ण ० पुच्छा।

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, अतकिरिय पुण करेज्जा।

[१४५४ प्र] वनस्पतिकायिक जीव के विषय मे पृच्छा है (कि क्या वह वनस्पतिकायिको मे से निकल कर तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है?)

[उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नही है, किन्तु वह अन्तक्रिया कर सकता है।

१४५५ बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिए णं ० पुच्छा।

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, मणपज्जवणाणं पुण उप्पाडेज्जा।

[१४५५ प्र] द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय के विषय मे भी यही प्रश्न है (कि क्या ये अपने-अपने भवो मे से उद्‌वृत्त हो कर सीधे तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकते है?)

[उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नही है, (किन्तु ये) मन पर्यवज्ञान का उपार्जन कर सकते हैं।

१४५६ पचेंदियतिरिक्खजोणिय-मणूस-वाणमतर-जोइसिए णं ० पुच्छा।

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, अतकिरियं पुण करेज्जा।

[१४५६ प्र] अब पृच्छा है (कि क्या) पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य, वाणव्यन्तर एव ज्योतिष्कदेव अपने-अपने भवो मे उद्‌वर्त्तन करके सीधे तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकते हैं?

[उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नही है, किन्तु ये अन्तक्रिया (मोक्ष प्राप्त) कर सकते हैं।

१४५७. सोहम्मगदेवे णं भंते! अणंतरं चयं चइत्ता तित्थगरत्त लभेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा, एवं जहा रयणप्पभापुढविणेरइए (सु १४४४)।

[१४५७ प्र] भगवन्! सौधर्मकल्प का देव, अपने भव से च्यवन करके सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है?

[उ] गौतम! (उनमे से) कोई (सौधर्मकल्पक देव तीर्थंकरत्व) प्राप्त करता है और कोई प्राप्त नही करता, इत्यादि (सभी) बाते रत्नप्रभापृथ्वी के नारक के (विषय मे सू. १४४४ मे उक्त कथन के) समान जाननी चाहिए।

१४५८. एवं जाव सव्वट्ठसिद्धगदेवे । दारं ५ ।।

[१४५८] इसी प्रकार (ईशानकल्प के देव से लेकर) सर्वार्थसिद्ध विमान के देव तक (सभी वैमानिक देवो के लिये समझना चाहिए ।) —पचम द्वार ।। ५ ।।

विवेचन—तीर्थंकरपद-प्राप्ति की विचारणा—प्रस्तुत पचम द्वार मे नारक आदि मर कर अन्तर के बिना सीधे मनुष्य मे जन्म लेकर तीर्थंकरपद प्राप्त कर सकते हैं या नही ? इसकी विचारणा की गई है । साथ ही यह भी बताया गया है कि यदि वह जोव तीर्थंकरपद प्राप्त नही कर सकता, तो विकासक्रम मे क्या प्राप्त कर सकता है ?[१]

सार—इस समस्त पद का निष्कर्ष यह है कि केवल नारको और वैमानिक देवो मे से मर कर सीधा मनुष्य होने वाला जीव ही तीर्थंकरपद प्राप्त कर सकता है, अन्य नही ।[२]

'बद्धाइ' आदि पदो के विशेषार्थ—**'बद्धाइ'**—सूइयो के ढेर को सूत के धागे से बाधने की तरह आत्मा के साथ (तीर्थकर नाम-गोत्र आदि) कर्मों का साधारण सयोग होना 'बद्ध' है । **'पुट्ठाइ'**—जैसे उन सूइयो के ढेर को अग्नि से तपा कर एक बार घन से कूट दिया जाता है, तब उनमे परस्पर जो सघनता उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार आत्मप्रदेशो और कर्मों मे परस्पर सघनता उत्पन्न होना **'स्पृष्ट'** होना है । **'निधत्ताइ'**—उद्वर्त्तनाकरण और अपवर्त्तनाकरण के सिवाय शेष करण जिसमे लागू न हो सकें, इस पकार से कर्मों को व्यवस्थापित करना **'निधत्त'** कहलाता है । **'कडाइ'**—अर्थात कृत । कृत का अभिप्राय है कर्मों को निकाचित कर लेना अर्थात् समस्त करणो के लागू होने के योग्य न हो, इस प्रकार से कर्मों को व्यवस्थापित करना । **'पट्ठवियाइ'** मनुष्यगति, पचेन्द्रिय-जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय एव यश कीर्त्ति नामकर्म के उदय के साथ व्यवस्थापित होना प्रस्थापित है । **'निविट्ठाइ'**—बद्ध कर्मों का तीव्र अनुभाव जनक के रूप मे स्थित होना निविष्ट का अर्थ है । **'अभिनिविट्ठाइ'** वही कर्म जब विशिष्ट, विशिष्टतर, विलक्षण अध्यवसायभाव के कारण अति तीव्र अनुभावजनक के रूप मे व्यवस्थित होता है, तब अभिनिविष्ट कहलाता है । **'अभिसमन्नागयाइ'**—कर्म का उदय के अभिमुख होना 'अभिसमन्वागत' कहलाता है । **'उदिण्णाइ'** कर्मों का उदय मे आना, उदयप्राप्त होना उदीर्ण कहलाता है । अर्थात्—कर्म जब अपना फल देने लगता है, तब उदयप्राप्त या उदीर्ण कहलाता है । **'नो उवसताइ'**—कर्म का उपशान्त न होना । उपशान्त न होने के यहाँ दो अर्थ है (१) कर्मबन्ध का सर्वथा अभाव को प्राप्त न होना, (२) अथवा कर्मबन्ध (बद्ध) हो चकने पर भी निकाचित या उदयादि अवस्था के उद्रेक से रहित न होना ।

ये सभी शब्द कर्मसिद्धान्त के पारिभाषिक शब्द हैं ।[3]

आशय प्रस्तुत प्रसग मे इनसे आशय यही है कि रत्नप्रभादि तीन नरकपृथ्वी के जिस नारक ने पूर्वकाल मे तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध किया है और बाधा हुआ वह कर्म उदय मे आया है,

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ३२५-३२६

२ पण्णावणासुत्त (प्रस्तावना आदि) भा २, पृ. ११४

३ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्र ४०२-४०३

वही नारक तीर्थंकरपद प्राप्त करता है। जिसने पूर्वकाल मे तीर्थंकर नामकर्म का बध ही नही किया, अथवा बध करने पर भी जिसके उसका उदय नही हुआ, वह तीर्थंकरपद प्राप्त नही करता।[1]

अन्तिम चार नरकपृथ्वियो के नारकों की उपलब्धि पक, धूप, तम और तमस्तम पृथ्वी के नारक अपने-अपने भव से निकल कर तीर्थंकरपद प्राप्त नही कर सकते, वे क्रमश अन्तक्रिया, सर्वविरति, देशविरति चारित्र तथा सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकते हैं।

असुरकुमारादि से वनस्पतिकायिक तक—के जीवन अपने-अपने भवो से उद्वर्त्तन करके सीधे तीर्थंकरपद प्राप्त नही कर सकते, किन्तु अन्तक्रिया (मोक्षप्राप्ति) कर सकते है। वसुदेवचरित मे नागकुमारो मे से उद्वृत्त हो कर सीधे ऐरवत क्षेत्र मे इसी अवसर्पिणीकाल मे चौबीसवे तीर्थंकर होने का कथन है। इस विषय मे क्या रहस्य है, यह केवली ही जानते है।[2]

नीचे इस द्वार की तालिका दी जाती है, जिससे जीव का विकासक्रम जाना जा सके।

मनुष्य का अनन्तर पूर्वभव	मनुष्यो मे सम्भवित उपलब्धि
रत्नप्रभा से वालुकाप्रभा तक के नारक	तीर्थंकरपद
पकप्रभा के नारक	मोक्ष
धूमप्रभा के नारक	सर्वविरति
तम प्रभा के नारक	देशविरति
तमस्तम प्रभा के नारक	सम्यक्त्व
समस्त भवनपति देव	मोक्ष
पृथ्वीकायिक-अप्कायिक जीव	मोक्ष
तेजस्कायिक-वायुकायिक जीव (मनुष्यभव नही)	तिर्यञ्चभव मे धर्मश्रवण
वनस्पतिकायिक जीव	मोक्ष
द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीव	मन:पर्यायज्ञान
पचेन्द्रियतिर्यञ्च	मोक्ष
मनुष्य	मोक्ष
वाणव्यन्तर देव	मोक्ष
ज्योतिष्क देव	मोक्ष
समस्त वैमानिक देव	तीर्थंकरपद[3]

छठा चक्रिद्वार

१४५९ रयणप्पभापुढविणेरइए ण भते! अणतर उव्वट्टित्ता चक्कवट्टित्त लभेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा ४, पृ. ५५५

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्र ४०३

३. पण्णवणासुत्तं (प्रस्तावना आदि) भा २ पृ. ११५

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?

गोयमा ! जहा रयणप्पभापुढविणेरइयस्स तित्थगरत्ते (सु. १४४४)।

[१४५९ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक (अपने भव से) उद्वर्त्तन करके क्या चक्रवर्तीपद प्राप्त कर सकता है ?

[उ] गौतम ! (इनमे से) कोई (नारक) चक्रवर्तीपद प्राप्त करता है, कोई प्राप्त नही करता है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि कोई (रत्नप्रभापृथ्वी का नारक) चक्रवर्तित्व प्राप्त कर सकता है और कोई प्राप्त नही करता है ?

[उ] गौतम ! जैसे (सू १४४४ मे) रत्नप्रभापृथ्वी के नारक को तीर्थंकरत्व (प्राप्त होने, न होने के कारणो का कथन किया है, उसी प्रकार उसके चक्रपर्तीपद प्राप्त होने, न होने का कथन समझना चाहिए।)

१४६०. सक्करप्पभापुढविणेरइए अणंतरं उव्वट्टित्ता चक्कवट्टित्त लभेज्जा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

[१४६० प्र] (भगवन्) ! शर्कराप्रभापृथ्वी का नारक (अपने भव से) उद्वर्त्तन करके सीधा चक्रवर्तीपद पा सकता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है ।

१४६१ एवं जाव अहेसत्तमापुढविणेरइए।

[१४६१] इसी प्रकार (वालुकाप्रभापृथ्वी के नारक से ले कर) अध सप्तमपृथ्वी के नारक तक (के विषय मे समझ लेना चाहिए।)

१४६२ तिरिय-मणुएहिंतो पुच्छा।

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

[१४६२ प्र] (तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्यो के विषय मे) पृच्छा है (कि ये) तिर्यञ्चयोनिका और मनुष्यो से (निकल कर सीधे क्या चक्रवर्ती पद प्राप्त कर सकते है ?)

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

१४६३. भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएहिंतो पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए नो लभेज्जा। दार ६॥

[१४६३ प्र] (इसी प्रकार) भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव के सम्बन्ध मे प्रश्न है कि (क्या वे अपने-अपने भवो से च्यवन कर सीधे चक्रवर्तीपद पा सकते है ?)

[उ.] गौतम ! (इनमे स) कोई चक्रवर्तीपद प्राप्त कर सकता है (और) कोई प्राप्त नही कर सकता है। - छठा द्वार ॥६॥

विवेचन—चक्रवर्तीपद-प्राप्ति की विचारणा– प्रस्तुत सप्तम द्वार मे चक्रवर्तीपद किसको प्राप्त होता है, किसको नही ? इस विषय मे विचारणा की गई है।

निष्कर्ष—चक्रवर्तीपद के योग्य जीव प्रथम नरक के नारक और चारों प्रकार के देवों में से अनन्तर मनुष्यभव में जन्म लेने वाले हैं। शेष जीव (द्वितीय से सप्तम नरक तक तथा तिर्यञ्चों एवं मनुष्यों में से उत्पन्न होने वाले) नहीं। तीर्थंकरत्व-प्राप्ति की योग्यता के विषय में जो कारण प्रस्तुत किये गये थे, वे ही कारण चक्रवर्तित्वप्राप्ति की योग्यता के हैं।[1]

सप्तम : बलदेवत्वद्वार

१४६४. एवं बलदेवत्तं पि। णवरं सक्करप्पभापुढविणेरइए वि लभेज्जा। दारं ७॥

[१४६४] इसी प्रकार बलदेवत्व के विषय में भी समझ लेना चाहिए। विशेष यह है कि शर्कराप्रभापृथ्वी का नारक भी बलदेवत्व प्राप्त कर सकता है। —सप्तम द्वार ॥७॥

विवेचन बलदेवत्व-प्राप्ति की विचारणा—चक्रवर्तिपद-प्राप्ति के समान बलदेवपद-प्राप्ति का कथन समझना चाहिए। अर्थात् रत्नप्रभापृथ्वी के नारक तथा चारों प्रकार के देव अपने-अपने भवों से उद्वर्त्तन करके सीधे कोई (अमुक योग्यता से सम्पन्न) बलदेवपद प्राप्त कर सकते हैं, कोई (अमुक योग्यता से रहित) नहीं। किन्तु यहाँ विशेषता यह है कि शर्कराप्रभापृथ्वी का नारक भी अनन्तर उद्वर्त्तन करके बलदेवपद प्राप्त कर सकता है।[2]

अष्टम : वासुदेवत्वद्वार

१४६५. एवं वासुदेवत्तं दोहिंतो पुढवीहिंतो वेमाणिएहिंतो य अणुत्तरोववातियवज्जेहिंतो, सेसेसु णो इणट्ठे समट्ठे। दारं ८॥

[१४६५] इसी प्रकार दो पृथ्वियों (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा पृथ्वी) से, तथा अनुत्तरौपपातिक देवों को छोड़कर शेष वैमानिकों से वासुदेवत्व प्राप्त हो सकता है, शेष जीवों में यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् ऐसी योग्यता नहीं होती।

विवेचन वासुदेवपदप्राप्ति की विचारणा—प्रस्तुत द्वार में वासुदेवत्वप्राप्ति के सम्बन्ध में विचारणा की गई है। वासुदेवपद केवल रत्नप्रभा एवं शर्कराप्रभा पृथ्वी के नारकों से तथा पांच अनुत्तरविमान के देवों को छोड़कर शेष वैमानिक देवों से अनन्तर उद्वर्त्तन करके मनुष्यभव में उत्पन्न होने वाले जीवों को प्राप्त हो सकता है, शेष भवों से आए हुए जीव वासुदेव नहीं हो सकते हैं।[3]

नवम : माण्डलिकत्वद्वार

१४६६ मंडलियत्तं अहेसत्तमा-तेउ-वाउवज्जेहिंतो। दारं ९॥

[१४६६] माण्डलिकपद, अधःसप्तमपृथ्वी के नारकों तथा तेजस्कायिक, वायुकायिक भवों को छोड़कर (शेष सभी भवों से अनन्तर उद्वर्त्तन करके मनुष्यभव में आए हुए जीव प्राप्त कर सकते हैं।) —नवम द्वार ॥९॥

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४०३ (ख) पण्णवणासुत्तं (प्रस्तावनादि) भा २, पृ ११५

२ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा. ४, पृ. ५६७-५६८

३ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भाग ४, पृष्ठ ५६८

विवेचन माण्डलिकपदप्राप्ति का निषेध- केवल सप्तम नरक तथा तेजस्काय एव वायुकाय मे से निकलकर जन्म लेने वाले मनुष्य माण्डलिकपद प्राप्त नही कर सकते हैं ।[1]

दशम : रत्नद्वार

१४६७. सेणावइरयणत्त गाहावइरयणत्त वड्ढइरयणत्त पुरोहियरयणत्त इत्थिरयणत्तं च एवं चेव, णवर अणुत्तरोववाइयवज्जेहितो ।

[१४६७] सेनापतिरत्नपद, गाथापतिरत्नपद, वर्धकीरत्नपद, पुरोहितरत्नपद और स्त्रीरत्न-पद की प्राप्ति के सम्बन्ध मे इसी प्रकार (अर्थात्--माण्डलिकत्वप्राप्ति के कथन के समान समझना चाहिए ।) विशेषता यह है कि अनुत्तरौपपातिक देवो को छोड कर (सेनापतिरत्न आदि हो सकते हैं ।)

१४६८. आसरयणत्तं हत्थिरयणत्त च रयणप्पभाओ णिरतर जाव सहस्सारो अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा ।

[१४६८] अश्वरत्न एव हस्तिरत्नपद रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर निरन्तर (लगातार) सहस्रार देवलोक के देव तक का कोई (जोव) प्राप्त कर सकता है, कोई प्राप्त नही कर सकता है ।

१४६९. चक्करयणत्त छत्तरयणत्त चम्मरयणत्त दंडरयणत्त असिरयणत्तं मणिरयणत्त कागिणिरयणत्त एतेसि ण असुरकुमारेहितो आरद्ध निरतरं जाव ईसाणेहितो उववाओ, सेसेहितो णो इणट्ठे समट्ठे । दार १० ।।

[१४६९] चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिरत्न, मणिरत्न एव काकिणीरत्न पर्याय मे उत्पत्ति, असुरकुमारो से लेकर निरन्तर (लगातार) यावत् ईशानकल्प के देवो से हो सकती है, शेष भवो से (आए हुए जीवो मे) यह योग्यता नही है । —दशम द्वार ।।१०।।

विवेचन -चक्रवर्ती के विविधरत्नपद की प्राप्ति की विचारणा प्रस्तुत रत्नद्वार मे चक्रवर्ती के १४ रत्नो मे से कौन-सा रत्नपन किन-किन को प्राप्त हो सकता है ? इस सम्बन्ध के विचारणा की गई है ।

रत्नद्वार का सार यह है कि चक्रवर्ती के १४ रत्नो मे से सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकी-रत्न, पुरोहितरत्न और स्त्रीरत्न पद के लिए माण्डलिकत्व के समान सप्तम नरक, तेजस्काय, वायुकाय और अनुत्तर विमान मे से बिना व्यवधान के आने वाले अयोग्य है । अश्वरत्न और हस्तिरत्न पद के लिए प्रथम नरक से लेकर लगातार सहस्रारकल्प तक के देव योग्य है तथा चक्ररत्न, चर्मरत्न, छत्ररत्न, दण्डरत्न, असिरत्न, मणिरत्न और काकिणीरत्न के लिए असुरकुमार से लेकर ईशानकल्प से[2] आने वाले योग्य है ।

---

१ पण्णवणासुत्त (प्रस्तावनादि) भा· २, पृ ११५

२ पण्णवणासुत्त (प्रस्तावनादि) भा ४, पृ. ५६९

भव्य-द्रव्यदेव-उपपात-प्ररूपणा

१४७०. अह भंते ! असंजयभवियदव्वदेवाणं अविराहियसंजमाणं विराहियसंजमाणं अविराहियसंजमासंजमाणं विराहियसंजमासंजमाणं असण्णीणं तावसाणं कंदप्पियाणं चरग-परिव्वायगाणं किब्बिसियाणं तिरिच्छियाणं आजीवियाणं आभिओगियाणं सलिंगीणं दंसणवावण्णगाणं देवलोगेसु उववज्जमाणाणं कस्स कहिं उववाओ पण्णत्तो ?

गोयमा ! अस्संजयभवियदव्वदेवाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं उवरिमगेवेज्जगेसु, अविराहियसंजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे उक्कोसेणं सव्वट्ठसिद्धे, विराहियसंजमाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे, अविराहियसंजमासंजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे, विराहियसंजमासंजमाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं जोइसिएसु, असण्णीणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं वाणमंतरेसु, तावसाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं जोइसिएसु, कंदप्पियाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे, चरग-परिव्वायगाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं बंभलोए कप्पे, किब्बिसियाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे उक्कोसेणं लंतए कप्पे, तेरिच्छियाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं सहस्सारे कप्पे, आजीवियाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे, एवं आभिओगाण वि, सलिंगीणं दंसणवावण्णगाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं उवरिमगेवेज्जएसु ।

[१४७० प्र.] भगवन् ! असंयत भव्य-द्रव्यदेव (अर्थात् जो असंयमी आगे जाकर देव होने वाले हैं) जिन्होंने संयम की विराधना नहीं की है, जिन्होंने संयम की विराधना की है, जिन्होंने संयमासंयम की विराधना नहीं की है, (तथा) जिन्होंने संयमासंयम की विराधना की है, जो असंज्ञी हैं, तापस हैं, कान्दर्पिक हैं, चरक-परिव्राजक हैं, किल्विषिक हैं, तिर्यञ्च गाय आदि पाल कर आजीविका करने वाले हैं अथवा आजीविकमतानुयायी हैं, जो अभियोगिक (विद्या, मंत्र, तंत्र आदि अभियोग करते) हैं, जो स्वलिंगी (समान वेष वाले) साधु हैं तथा जो सम्यग्दर्शन का वमन करने वाले (सम्यग्दर्शनव्यापन्न) हैं, ये जो देवलोकों में उत्पन्न हों तो (इनमें से) किसका कहाँ उपपात कहा गया है ?

[उ.] असंयत भव्य-द्रव्यदेवों का उपपाद जघन्य भवनवासी देवों में और उत्कृष्ट उपरिम ग्रैवेयक देवों में हो सकता है। जिन्होंने संयम की विराधना नहीं की है, उनका उपपाद जघन्य सौधर्मकल्प में और उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध में हो सकता है। जिन्होंने संयम की विराधना की है, उनका उपपात जघन्य भवनपतियों में, और उत्कृष्ट सौधर्मकल्प में होता है। जिन्होंने संयमासंयम की विराधना नहीं की है, उनका उपपात जघन्य सौधर्मकल्प में और उत्कृष्ट अच्युतकल्प में होता है। जिन्होंने संयमासंयम की विराधना की है, उनका उपपाद जघन्य भवनपतियों में और उत्कृष्ट ज्योतिष्क-देवों में होता है। असंज्ञी साधकों का उपपात जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट वाणव्यन्तरदेवों में होता है। तापसों का उपपाद जघन्य भवनवासीदेवों में और उत्कृष्ट ज्योतिष्कदेवों में, कान्दर्पिकों का उपपात जघन्य भवनपतियों में, उत्कृष्ट सौधर्मकल्प में, चरक-परिव्राजकों का उपपात जघन्य भवनपतियों में और उत्कृष्ट ब्रह्मलोककल्प में तथा किल्विषिकों का उपपात जघन्य सौधर्मकल्प में और उत्कृष्ट

लान्तककल्प में होता है। तैरश्चिकों का उपपात जघन्य भवनवासियो मे और उत्कृष्ट सहस्रारकल्प मे, आजीविको का उपपात जघन्य भवनपतियो मे और उत्कृष्ट अच्युतकल्प मे होता है, इसी प्रकार आभियोगिक साधको का उपपात भी जान लेना चाहिए। स्वलिंग (समान वेष वाले) साधुओ का तथा दर्शन-व्यापन्न व्यक्तियो का उपपात जघन्य भवनवासीदेवो मे और उत्कृष्ट उपरिम-ग्रैवेयकदेवो मे होता है।

विवेचन मर कर देवलोकों मे उत्पन्न होने वालो की चर्चा - प्रस्तुत सूत्र (१४७०) मे भविष्य मे देवगति मे जाने वाले विविध साधको के विषय मे चर्चा की गई है कि वे मरकर कहाँ, किन देवो मे उत्पन्न हो सकते है ? वस्तुत इस चर्चा-विचारणा का परम्परा से अन्तक्रिया से सम्बन्ध है।

विशिष्ट पारिभाषिक शब्दो के विशेषार्थ—असंयत भव्यद्रव्यदेव : दो अर्थ (१) चारित्र के परिणामो से शून्य (भव्य देवत्वयोग्य अथवा मिथ्यादृष्टि अभव्य या भव्य श्रमणगुणधारक अखिल समाचारी के अनुष्ठान से युक्त द्रव्यलिगधारी (मलयगिरि के मत से) तथा (२) अन्य आचार्यो के मतानुसार—देवो मे उत्पन्न होने योग्य असयतसम्यग्दृष्टि जीव। **अविराधितसयम**—प्रव्रज्याकाल से लेकर जिनके चारित्रपरिणाम अखण्डित रहे है, किन्तु सज्वलन कषाय के सामर्थ्य से अथवा प्रमत्तगुणस्थानकवश स्वल्प मायादि दोष की सम्भावना होने पर जिन्होने सर्वथा आचार का उपघात नही किया है, वे अविराधितसयम हैं। **विराधितसयम**—जिन्होने सयम को सर्वात्मना खण्डित विराधित कर दिया है, प्रायश्चित्त लेकर भी पुन खण्डित सयम को साधा (जोडा) नही है वे विराधितसयम है। **अविराधितसयमासयम**—वे श्रावक, जिन्होने देशविरतिसयम को स्वीकार करने के समय से देशविरति के परिणामो को अखण्डित रखा है। **विराधितसयमासंयम** वे श्रावक, जिन्होने देशविरतिसयम को सर्वथा खण्डित कर दिया और सयमासयम के खण्डन का प्रायश्चित्त लेकर पुनर्नवीकरण नही किया है, वे। **असंज्ञी** -मनोलब्धि से रहित अकामनिर्जरा करने वाले साधक। **तापस**—बालतपस्वी, जो सूखे या वृक्ष से झडे हुए पत्तो आदि का उपभोग करते है। **कान्दर्पिक**—व्यवहार से चारित्रपालन करने वाले, किन्तु जो कन्दर्प एव कुत्सित चेष्टा करते है, हँसी-मजाक करते है, लोगो को अपनी वाणी और चेष्टा से हँसाते है। हाथ की सफाई, जादू आदि बाह्य चमत्कार बताकर लोगो को विस्मय मे डाल देते है। **चरक-परिव्राजक**—कपिलमतानुयायी त्रिदण्डी, जो धाटी के साथ भिक्षाचर्या करते है अथवा चरक कच्छोटक आदि साधक एव परिव्राजक। **किल्विषिक**—व्यवहार से चारित्रवान् किन्तु जो ज्ञान, (दर्शन, चारित्र) केवली, धर्माचार्य एव सर्वसाधुओ का अवर्णवाद करने का पाप करते है, अथवा इनके साथ माया (कपट) करते है। दूसरे के गुणो और अपने दोषो को जो छिपाते है, जो पर-छिद्रान्वेषी है, चोर की तरह सर्वत्र शकाशील, गूढाचारी, असत्यभाषी, क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा (तुनुकमिजाजी) एव निह्नव है, वे किल्विषिक कहलाते है। **तैरश्चिक**—जो साधक गाय आदि पशुओ का पालन करके जीते है, या देशविरत है। **आजीविक** - जो अविवेकपूर्वक लाभ, पूजा, सम्मान, प्रसिद्धि, आदि के लिए चारित्र का पालन करते हुए आजीविका करते हैं, अथवा आजीविकमत (गोशालकमत) के अनुयायी पाखण्डि-विशेष। **आभियोगिक** - जो साधक अपने गौरव के लिए चूर्णयोग, विद्या, मत्र, तत्र आदि से दूसरो का वशीकरण, सम्मोहन, आकर्षण आदि (अभियोग) करते हैं। वे केवल व्यवहार से चारित्रपालन करते है, किन्तु मत्रादिप्रयोग करते है। **स्वलिगी-दर्शनव्यापन्न** जो साधु रजोहरण आदि साधुवेष से स्वलिगी

हो, किन्तु सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हो, ऐसे निह्नव।[1]

इनमे से कोई दव हो तो किस देवलोक तक जाता है ? इसके लिए तालिका देखिये —

क्रम	साधक का प्रकार	देवलोक मे कहाँ से कहाँ तक जाता है ?
१	असयत भव्यद्रव्यदेव	भवनवासी से नौ ग्रैवेयक देवों तक
२	सयम का अविराधक	सौधर्मकल्प से सर्वार्थसिद्धविमान तक
३	सयम का विराधक	भवनपति देवो से लेकर सौधर्मकल्प तक
४	सयमासयम (देशविरति) का अविराधक	सौधर्मकल्प से अच्युतकल्प तक
५.	सयमासयम का विराधक	भवनवासी से ज्योतिष्क देवो तक
६	अकामनिर्जराशील असज्ञी	भवनवासी से वाणव्यन्तर देवो तक
७	तापस	भवनवासी से ज्योतिष्क देवो तक
८	कान्दर्पिक	भवनवासी से सौधर्मकल्प तक
९	चरक-परिव्राजक	भवनवासी देवो से ब्रह्मलाक तक
१०	किल्विषिक	सौधर्मकल्प से लान्तक तक
११	तैरश्चिक (अथवा देशविरति तिर्यञ्च)	भवनवासी से सहस्रारकल्प तक
१२	आजीविक या आजीवक	भवनवासी से अच्युतकल्प तक
१३	आभियोगिक	भवनवासी से अच्युतकल्प तक
१४	स्वलिगी, किन्तु दर्शनभ्रष्ट (निह्नव)	भवनवासी से ग्रैवेयक देव तक[2]

फलितार्थ—इस समग्रचर्चा के आधार से निम्नोक्त मन्तव्य फलित होता है

(१) आन्तरिक योग्यता के विना भी बाह्य आचरण शुद्ध हो, तो जीव ग्रैवेयक देवलोक तक जाता है। (२) इसमे अन्ततोगत्वा जैनलिग धारण करने वाले का भी महत्त्व है, यह न १ और न १४ के साधक के लिए दिए गए निर्णय से फलित होता है। (३) आन्तरिक योग्यतापूर्वक सयम का यथार्थ पालन करे तो सर्वोच्च सर्वार्थसिद्ध देवलोक तक मे जाता है।[3]

असंज्ञी-आयुष्यप्ररूपण

१४७१ कतिविहे ण भंते ! असण्णिआउए पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे असण्णिआउए पण्णत्ते । तं जहा—णेरइयअसण्णिआउए जाव देवअसण्णि-आउए ।

[१४७१ प्र] भगवन् ! असज्ञी-आयुष्य कितने प्रकार का कहा गया है ?

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्र ४०४ से ४०६ तक
(ख) बृहत्कल्पभाष्य १२९४-१३०१, १३०२-१३०७, तथा १३०८ से १३१४ गा
(ग) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा. ४, पृ ५७४ से ५७७ तक

२. पण्णवणासुत्त (प्रस्तावनादि) भा. २, पृ ११५-११६

३. वही भा २, पृ. ११६

[१४७१ उ] गौतम ! असज्ञि-आयुष्य चार प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—नैरयिक-असज्ञि-आयुष्य से लेकर देव-असज्ञि-आयुष्य तक ।

१४७२. असण्णी णं भंते ! जीवे किं णेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं पकरेइ ?

गोयमा ! णेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं पकरेइ, णेरइयाउयं पकरेमाणे जहण्णेण दस वाससहस्साइं उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जइभाग पकरेइ, तिरिक्खजोणियाउयं पकरेमाणे जहण्णेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभाग पकरेइ, एवं मणुयाउयं पि, देवाउयं जहा णेरइयाउयं ।

[१४७२ प्र] भगवन् ! क्या असंज्ञी (जीव) नैरयिक की आयु का उपार्जन करता है अथवा यावत् देवायु का उपार्जन करता है ?

[उ] गौतम ! वह नैरयिक-आयु का भी उपार्जन करता है, यावत् देवायु का भी उपार्जन करता है । नारकायु का उपार्जन करता हुआ असंज्ञी जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की आयु का उपार्जन (बन्ध) कर लेता है । तिर्यञ्चयोनिक-आयुष्य का उपार्जन (बन्ध) करता हुआ वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त का और उत्कृष्टतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग का उपार्जन करता है । इसी प्रकार मनुष्यायु एवं देवायु का उपार्जन (बन्ध) भी नारकायु के समान कहना चाहिए ।

१४७३. एयस्स णं भंते ! णेरइयअसण्णिआउयस्स जाव देवअसण्णिआउयस्स य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे देवअसण्णिआउए, मणुयअसण्णिआउए असंखेज्जगुणे, तिरिक्खजोणिय-असण्णिआउए असंखेज्जगुणे, नेरइयअसन्निआउए असंखिज्जगुणे ।

।। पण्णवणाए भगवतीए वीसइमं अंतकिरियापयं समत्तं ।।

[१४७३ प्र] भगवन् ! इस नैरयिक-असंज्ञी आयु यावत् देव-असंज्ञी-आयु में से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[उ] हे गौतम ! सबसे अल्प देव-असंज्ञी-आयु है, (उससे) मनुष्य-असंज्ञी-आयु असंख्यातगुणी (अधिक) है, (उससे) तिर्यञ्चयोनिक असंज्ञी-आयु असंख्यातगुणी (अधिक) है, (और उससे भी) नैरयिक-असंज्ञी-आयु असंख्यातगुणी (अधिक) है ।

विवेचन - असंज्ञी की आयु : प्रकार, स्थिति और अल्पबहुत्व प्रस्तुत तीन सूत्रों (१४७१ से १४७३) में असंज्ञी-अवस्था में नरकादि आयु का जो बन्ध होता है, उसकी तथा उसके बांधने वाले के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है ।

असंज्ञि-आयु का विवक्षित अर्थ—असंज्ञी होते हुए जीव परभव के योग्य जिस आयु का बन्ध करता है, वह असंज्ञी-आयु कहलाती है । नैरयिक के योग्य असंज्ञी की आयु नैरयिक-असंज्ञी-आयु कहलाती है । इसी प्रकार तिर्यग्योनिक-असंज्ञी-आयु, मनुष्य-असंज्ञी-आयु तथा देवासंज्ञी-आयु भी समझ

लेनी चाहिए। यद्यपि असंज्ञी-अवस्था मे भोगी जाने वाली आयु भी असंज्ञी-आयु कहलाती है, किन्तु यहाँ उसकी विवेक्षा नही है।[1]

चारों प्रकार की असंज्ञी-आयु की स्थिति -(१) जघन्य नरकायु का बन्ध १० हजार वर्ष का कहा है, वह प्रथम नरक के प्रथम प्रस्तट (पाथडे) की अपेक्षा से समझना चाहिए तथा उत्कृष्ट नरकायुबन्ध पल्योपम के असख्यातवे भाग को उपार्जित करता है, यह कथन रत्नप्रभापृथ्वी के चौथे प्रतर के मध्यम स्थिति वाले नारक की अपेक्षा से समझना चाहिए। क्योकि रत्नप्रभापृथ्वी के प्रथम प्रस्तट मे जघन्य १० हजार वर्ष की स्थिति है, जबकि उत्कृष्ट स्थिति ९० हजार वर्ष की है। दूसरे प्रस्तट मे जघन्य १० लाख वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति ९० लाख वर्ष की है। इसी के तृतीय प्रस्तट मे जघन्य स्थिति ९० लाख वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति एक कोटि पूर्व की है। चतुर्थ प्रस्तट मे जघन्य एक कोटिपूर्व की है और उत्कृष्ट स्थिति सागरोपम के दशवे भाग की है। अत· यहाँ पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति मध्यम है।

तिर्यञ्चयोनिक असंज्ञी-आयु उत्कृष्टत पल्योपम के असख्यातवे भाग की कही है, वह युगलिया तिर्यञ्च की अपेक्षा से समझना चाहिए। इसी प्रकार असंज्ञी-मनुष्यायु भी जो उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की कही है, वह भी युगलिक नरो की अपेक्षा से समझना चाहिए।[2]

असंज्ञी-आयुष्यो का अल्पबहुत्व - भी इन चारो के ह्रस्व और दीर्घ की अपेक्षा से समझना चाहिए।[3]

॥ प्रज्ञापना भगवती का बीसवाँ अन्तक्रियापद समाप्त ॥

---

१ प्रज्ञापना. मलय वृत्ति, पत्र ४०७

२. वही, मलय. वृत्ति, पत्र ४०७

३ वही, मलय. वृत्ति, पत्र ४०७

एगवीसइमं : ओगाहणसंठाणपयं

इक्कीसवाँ : अवगाहना-संस्थान-पद

प्राथमिक

- यह प्रज्ञापनासूत्र का इक्कीसवाँ अवगाहना-सस्थान-पद है ।

- इस पद मे शरीर के सम्बन्ध मे विविध पहलुओ से विचारणा की गई है ।

- **पूर्वपदो से इस पद मे अन्तर**—बारहवे 'शरीरपद' मे तथा सोलहवे 'प्रयोगपद' मे भी शरीर-सम्बन्धी चर्चा की गई है, परन्तु शरीरपद मे नारकादि चौवीस दण्डको मे पाच शरीरो मे से कौन-कौन सा-शरीर किसके होता है ? तथा बद्ध और मुक्त शरीरो की द्रव्य, क्षेत्र और काल की अपेक्षा से कितनी सख्या है ? इत्यादि विचारणा की गई है और सोलहवे प्रयोगपद मे मन, वचन और काय के आधार से आत्मा के द्वारा होने वाले व्यापार एव गतियो का वर्णन है। प्रस्तुत अवगाहना-सस्थान-पद मे शरीर के प्रकार, आकार, प्रमाण, पुद्गलचयोपचय, एक साथ एक जीव मे पाये जाने वाले शरीरो की सख्या, शरीरगत द्रव्य एव प्रदेशो का अल्पबहुत्व एव अवगाहना के अल्पबहुत्व की सात द्वारो मे विस्तृत चर्चा की गई है ।[1]

- शरीर आत्मा का सबसे निकटवर्ती और धर्मसाधना मे सहायक है। आत्मविकास, जप, तप, ध्यान, सेवा आदि सब स्वस्थ एव सशक्त शरीर से ही हो सकते हैं। इनमे आहारकशरीर इतना चमत्कारी, हलका और दिव्य, भव्य एव स्फटिक-सा उज्ज्वल होता है कि किसी प्रकार की शका उपस्थित होने पर चतुर्दशपूर्वधारी मुनि उक्त शरीर को तीर्थंकर के पास भेजता है। वह उसके माध्यम से समाधान पा लेता है। उसके पश्चात् शीघ्र ही वह शरीर पुन औदारिक शरीर मे समा जाता है ।[2]

- प्रस्तुत पद मे सात द्वार है -(१) विधिद्वार, (२) सस्थानद्वार, (३) प्रमाणद्वार, (४) पुद्गल-चयनद्वार, (५) शरीरसयोगद्वार, (६) द्रव्य-प्रदेशाल्प-बहुत्वद्वार और (७) शरीरावगाहनाल्प-बहुत्वद्वार ।

- **प्रथम विधिद्वार** मे शरीर के मुख्य ५ भेद तथा एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के शरीर के प्रभेदो का वर्णन है। शरीर के मुख्य ५ प्रकार हैं—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण। उपनिषदो मे आत्मा के ५ कोषो की चर्चा है। उनमे से सिर्फ अन्नमयकोष के साथ औदारिक

---

१ पण्णवणासुत्त भा २, पृ ८८ तथा १०१-१०२

२ वही, पृ ८९

शरीर की तुलना हो सकती है। साख्य आदि दर्शनो मे अव्यक्त, सूक्ष्म या लिग शरीर बताया गया है, जिसकी तुलना जैनसम्मत कार्मणशरीर से हो सकती है।[1]

- सर्वप्रथम औदारिक शरीर के भेद, सस्थान और प्रमाण, इन तीन द्वारो को क्रमशः एक साथ लिया गया है। औदारिक शरीर के भेदो की गणना मे एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय—मनुष्य तक के जितने जीव-भेद-प्रभेद हैं, उतने ही भेद औदारिक शरीर के गिनाए हैं। औदारिक शरीर का सस्थान -आकृति का भी इतने ही जीवभेदो के क्रम से विचार किया गया है। पृथ्वीकाय का मसूर की दाल जैसा, अप्काय का स्थिर जलबिन्दु जैसा, तेजस्काय का सुइयो के ढेर-सा, वायुकाय का पताका जैसा और वनस्पतिकाय का नाना प्रकार का आकार है। द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय एव सम्मूच्छिमपचेन्द्रिय का हुडकसस्थान है। सम्मूच्छिम के सिवाय बाकी के औदारिक शरीरी जीवो के छहो प्रकार के सस्थान होते है। औदारिकादि शरीर के प्रमाणो अर्थात्—ऊँचाई का विचार भी एकेन्द्रियादि जीवो की अपेक्षा से किया गया है।
- वैक्रिय शरीर का भी जीवो के भेदो के अनुसार[2] विचार किया गया है। उनमे बादर-पर्याप्त वायु और पचेन्द्रियतिर्यचो मे सख्यात वर्षायुष्क पर्याप्त गर्भजो को उक्त शरीर होता है और पर्याप्त मनुष्यो मे से कर्मभूमि के मनुष्य के ही होता है। सभी देवो एव नारको के वैक्रिय शरीर होता है, यह बता कर उसकी आकृति का वर्णन किया है। भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय, इन दोनो को लक्ष्य मे रखा गया है।
- आहारक शरीर एक ही प्रकार का है। वह कर्मभूमि के ऋद्धिसम्पन्न प्रमत्तसयत मनुष्य को ही होता है। उसका सस्थान समचतुरस्र होता है। उत्कृष्ट ऊँचाई पूर्ण हाथ जितनी होती है।[3]
- तेजस और कार्मण शरीर एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के सभी जीवो के होना है। इसलिए जीव के भेदो जितने हो उसके भेद होते है। तैजस और कार्मण शरीर की अवगाहना का विचार मारणान्तिक-समुद्घात को लक्ष्य मे रख कर किया गया हे। मृत्यु के समय जीव को मर कर जहाँ जाना होता है, वहाँ तक को अवगाहना यहाँ कही गई है।
- शरीर के निर्माण के लिए पुद्गलो का चय-उपचय एव अपचय कितनी दिशाओ से होता है—इसका उल्लेख भी चौथे द्वार मे किया गया है।
- पाँचवे द्वार मे—एक जोव मे एक साथ कितने शरीर रह सकते है? उसका उल्लेख है।
- छठे द्वार म शरीरगत द्रव्यो और प्रदेशो के अल्प-बहुत्व की चर्चा की गई है।
- सातवे द्वार मे अवगाहना का अल्पबहुत्व जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट की अपेक्षा से प्रतिपादित है। मूलपाठ मे ही उक्त सभी विषय स्पष्ट है।[4]

---

१. (क) भगवती १७।१ सू ५९२ (ख) तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली (वेलवलकर)
(ग) साख्यकारिका (वेलवलकर और रानडे)

२. पण्णवणासुत्त भा. २, पृ. ११७

३. वही, भा. २, पृ ११८

४. वही, भा २, पृ. ११९

एगवीसइमं : ओगाहणसंठाणपयं

इक्कीसवाँ : अवगाहना-संस्थान-पद

अर्थाधिकार-प्ररूपणा

१४७४. विहि १ संठाण २ पमाण ३ पोग्गलचिणणा ४ सरीरसजोगो ५ ।

दव्व-पएसप्पबहु ६ सरीरओगाहणप्पबहु ७ ।।२१४ ।।

[१४७४ गाथार्थ] (इस इक्कीसवे पद मे ७ द्वार है—) (१) विधि, (२) सस्थान, (३) प्रमाण, (४) पुद्गलचयन, (५) शरीरसयोग, (६) द्रव्य-प्रदेशो का अल्पबहुत्व, एव (७) शरीरावगाहना-अल्पबहुत्व ।

विवेचन—शरीरसम्बन्धी सात द्वार प्रस्तुत पदो मे शरीर से सन्बन्धित सात द्वारो का वर्णन है, जिनके नाम मूलगाथा मे दिये गए है ।

सात द्वारो मे विशेष निरूपण (१) **विधिद्वार**—इसमे शरीर के प्रकार और उनके भेद-प्रभेदो का वर्णन है, (२) **सस्थानद्वार** पचविध शरीरो के सस्थानो-आकारो का निरूपण है (३) **प्रमाणद्वार** औदारिक आदि शरीरो की लम्बाई-चौडाई (अवगाहना) के प्रमाण का वणन है, (४)**पुद्गलचयनद्वार**—औदारिक आदि शरीर के पुद्गलो का चय-उपचय कितनी दिशाओ से होता है ? इसका निरूपण है, (५) **शरीरसंयोगद्वार**—किस शरीर के साथ किस शरीर का सयोग अवश्यम्भावी है, किसके साथ वैकल्पिक है ? इसका वर्णन है, (६) **द्रव्यप्रदेशाल्पबहुत्वद्वार** द्रव्यो और प्रदेशो की अपेक्षा से शरीरो के अल्पबहुत्व का वर्णन है और (७) **शरीरावगाहनाऽल्पबहुत्वद्वार** पाचो शरीरो की अवगाहना के अल्पबहुत्व का निरूपण है ।[1]

१-२-३. विधि-संस्थान-प्रमाणद्वार

१४७५ कति ण भते ! सरीरया पण्णत्ता ?

गोयमा ! पच सरीरया पण्णत्ता । त जहा - ओरालिए १ वेउव्विए २ आहारए ३ तेयए ४ कम्मए ५ ।

[१४७५ प्र] भगवन् ! कितने शरीर कहे गए हैं ?

[उ] गौतम ! पाच शरीर कहे गए हैं । वे इस प्रकार—(१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस और (५) कार्मण ।

विवेचन -शरीर के मुख्य पांच प्रकार—प्रस्तुत सूत्र मे शरीर के मुख्य ५ प्रकारो का निरूपण है । प्रतिक्षण शीर्ण-क्षीण होते हैं, इसलिए ये शरीर कहलाते है ।

---

१ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ४, पृ ५८७

पांचों शरीरों के लक्षण - (१) **औदारिकशरीर** – जो उदार अर्थात् प्रधान हो, उसे औदारिक शरीर कहते है। औदारिक शरीर की प्रधानता तीर्थंकर, गणधर आदि के औदारिक शरीर होने की अपेक्षा से है। अथवा उदार का अर्थ विशाल यानी बृहत्परिमाण वाला है। क्योंकि औदारिक शरीर एक हजार योजन से भी अधिक लम्बा हो सकता है, इसलिए अन्य शरीरो की अपेक्षा यह विशाल परिमाण वाला है। औदारिक शरीर की यह विशालता भवधारणीय शरीर की अपेक्षा से समझनी चाहिए, अन्यथा उत्तरवैक्रिय शरीर तो एक लाख योजन का भी हो सकता है।[1]

(२) **वैक्रियशरीर** – जिस शरीर के द्वारा विविध, विशिष्ट या विलक्षण क्रियाएँ हो, वह वैक्रिय-शरीर कहलाता है। जो शरीर एक होता हुआ, अनेक बन जाता है, अनेक होता हुआ, एक हो जाता है, छोटे से बडा और बडे से छोटा, खेचर से भूचर और भूचर से खेचर हो जाता है तथा दृश्य होता हुआ अदृश्य और अदृश्य होता हुआ दृश्य बन जाता है, इत्यादि विलक्षण लक्षण वाला शरीर वैक्रिय है। वह दो प्रकार का होता है—औपपातिक (जन्मजात) और लब्धि-प्रत्यय। औपपातिक वैक्रिय-शरीर उपपात-जन्म वाले देवो और नारको का होता है और लब्धि-प्रत्यय वैक्रियशरीर लब्धि-निमित्तक होता है, जो तिर्यञ्चो और मनुष्यो मे किसी-किसी में पाया जाता है।[2]

(३) **आहारकशरीर** - चतुर्दशपूर्वधारी मुनि तीर्थंकरो का अतिशय देखने आदि के प्रयोजन-वश विशिष्ट आहारकलब्धि से जिस शरीर का निर्माण करते है, वह आहारकशरीर कहलाता है। "श्रुतकेवली द्वारा प्राणिदया, तीर्थंकरादि की ऋद्धि के दर्शन, सूक्ष्मपदार्थावगाहन के हेतु से तथा किसी सशय के निवारणार्थ जिनेन्द्र भगवान् के चरणो मे जाने का कार्य होने पर अपनी विशिष्ट लब्धि से शरीर निर्मित किये जाने के कारण इसको आहारकशरीर कहा गया है।" यह शरीर वैक्रियशरीर की अपेक्षा अत्यन्त शुभ और स्वच्छ स्फटिक शिला के सदृश शुभ पुद्गलसमूह से रचित होता है।[3]

(४) **तैजसशरीर**—तैजसपुद्गलो से जो शरीर बनता है, वह तैजसशरीर कहलाता है। यह शरीर उष्मारूप और भुक्त आहार के परिणमन (पाचन) का कारण होता है। तैजसशरीर के निमित्त से ही विशिष्ट तपोजनित लब्धि वाले पुरुश के शरीर से तेजोलेश्या का निर्गम होता है। यह तैजसशरीर सभी ससारी जीवो को होता है, शरीर की उष्मा (उष्णता) से इसकी प्रतीति होती है, जो आहार को पचा कर उसे रसादिरूप मे परिणत करता है, अथवा तेजोलब्धि के निमित्त से होता है। इसी कारण इसे तैजसशरीर समझना चाहिए।[4]

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक ४०९

२. वही पत्र ४०९

३ (क) प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्र ४०९

(ख) "कज्जमि समुप्पण्णे सुयकेवलिणा विसिट्ठलद्धीए।
ज एत्थ आहरिज्जइ, भणित आहारग त तु ॥१॥
पाणिदयरिद्धि-दसणसुहुमपयत्थावगहणहेउ वा।
ससयवोच्छेयत्थ गमण जिणपायमूलमि ॥२॥

४ (क) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्र ४०९

(ख) "सव्वस्स उम्हसिद्ध रसाइ आहारपाकजणग च।
तेयगलद्धिनिमित्त च तेयग होइ नायव्व ॥"

(५) **कार्मणशरीर**—जो शरीर कर्मज (कर्म से उत्पन्न) हो, अथवा जो कर्म का विकार हो, वह कार्मणशरीर है। आशय यह है, कि कर्म परमाणु ही आत्मप्रदेशो के साथ दूध-पानी की भाति एकमेक हो कर परस्पर मिलकर शरीर के रूप मे परिणत हो जाते है, तब वे कार्मण (कर्मज) शरीर कहलाते हैं। कहा भी है—कार्मणशरीर कर्मों का विकार (कार्य) है, वह अष्टविध विचित्र कर्मों से निष्पन्न होता है। इस शरीर को समस्त शरीरो का कारण समझना चाहिए। अत औदारिक आदि समस्त शरीरो का बीजरूप (कारणरूप) कार्मणशरीर ही है। जब तक भवप्रपञ्च रूपी अकुर के बीजभूत कार्मणशरीर का उच्छेद नही हो जाता, तब तक शेष शरीरो का प्रादुर्भाव रुक नही सकता। यह कर्मज शरीर ही जीव को (मरने के बाद) दूसरी गति मे सक्रमण कराने मे कारण है। तैजससहित कार्मणशरीर के युक्त हो कर जीव जब मर कर अन्य गति मे जाता है अथवा दूसरी गति से मनुष्यगति मे आता है, तब उन पुद्गलो की अतिसूक्ष्मता के कारण जीव चर्मचक्षुओ से नही दिखाई देता। अन्यतीर्थिको ने भी कहा है—"यह भवदेह बीच मे (जन्म और मरण के मध्यकाल मे) भी रहता है, किन्तु अतिसूक्ष्म होने के कारण शरीर से निकलता अथवा प्रवेश करता हुआ दिखाई नही देता।" तैजस और कार्मणशरीर के बदले अन्य धर्मों मे सूक्ष्म और कारण शरीर माना गया है।[1]

औदारिकशरीर में विधिद्वार

१४७६ ओरालियसरीरे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते। त जहा— एगिदियओरालियसरीरे जाव पचेंदियओरालियसरीरे।

[१४७६ प्र] भगवन् ! औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार - एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर यावत् पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर।

१४७७. एगिदियओरालियसरीरे णं भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते। त जहा—पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरे जाव वणस्सइकाइयएगिंदियओरालियसरीरे।

[१४७७ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! वह (एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर) पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर यावत् वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर।

---

१ (क) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक ४१०

(ख) "कम्मविगारो कम्मणट्ठविहविचित्तकम्मनिप्फन्न।
सव्वेसि सरीराण कारणभूत मुणेयव्व॥"

(ग) "अन्तरा भवदेहोऽपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते।
निष्क्रामन् प्रविशन् वापि, नाभावोऽनीक्षणादपि॥"

१४७८. [१] पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—सुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरे य बादरपुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरे य ।

[१४७८-१ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ.] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है, यथा—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर और बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर ।

[२] सुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—पज्जत्तगसुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरे य अपज्जत्तगसुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरे य ।

[१४७८-२ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा है ?

[उ.] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार पर्याप्त-सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर और अपर्याप्तक-सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर ।

[३] बादरपुढविक्काइया वि चेव ।

[१४७८-३] इसी प्रकार बादर-पृथ्वीकायिक-(एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर के भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो भेद समझ लेने चाहिए ।)

१४७९. एवं जाव वणस्सइकाइयएगिंदियओरालिय त्ति ।

[१४७९] इसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर (तक के भी सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो-दो प्रकार समझ लेने चाहिए ।)

१४८०. बेइंदियओरालियसरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—पज्जत्तबेइंदियओरालियसरीरे य अपज्जत्तबेइंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८० प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ.] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—पर्याप्तद्वीन्द्रिय-औदारिकशरीर और अपर्याप्तद्वीन्द्रिय-औदारिकशरीर ।

१४८१. एवं तेइंदिय-चउरिंदिया वि ।

[१४८१] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय (औदारिक शरीर के भी पर्याप्त और अपर्याप्तक, ये दो-दो प्रकार जान लेने चाहिए ।)

१४८२. पंचेंदियओरालियसरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । त जहा—तिरिक्खपंचेंदियओरालियसरीरे य मणुस्सपचेंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८२ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—तिर्यञ्च-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर और मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर ।

१४८३. तिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते । त जहा—जलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे य १ थलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे य २ खहयरतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे य ३।

[१४८३ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) तीन प्रकार का कहा गया है, यथा - (१) जलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर (२) स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर और (३) खेचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर ।

१४८४. [१] **जलयरतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?**

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । त जहा—सम्मुच्छिमजलयरतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे य गब्भवक्कतियजलयरतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८४-१ प्र] भगवन् ! जलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है। यथा- सम्मूर्च्छिम-जलचर-तिर्यञ्च-योनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर और गर्भज (गर्भव्युत्क्रान्तिक)-जलचर-तिर्यञ्चपचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर ।

[२] **सम्मुच्छिमजलयरतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे णं भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?**

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—पज्जत्तगसम्मुच्छिमतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे य अपज्जत्तगसम्मुच्छिमतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८४-२ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम-जलचर-तिर्यंचयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-तिर्यञ्चयोनिक-पञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीर और अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर ।

[३] एवं गब्भवक्कंतिए वि ।

[१४८४-३] इसी प्रकार गर्भज (जलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर) के भी (पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो भेद समझ लेने चाहिए)।

१४८५. [१] थलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—चउप्पयथलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे य परिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८५-१ प्र] भगवन् ! स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है, यथा—चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर और परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर।

[२] चउप्पयथलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । त जहा—सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे य गब्भवक्कतियचउप्पयथलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८५-२ प्र] भगवन् ! चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार - सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर और गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर।

[३] सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे णं भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । त जहा—पज्जत्तसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे य अपज्जत्तसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८५-३ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है, जैसे—पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर और अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर।

[४] एव गब्भवक्कतिए वि ।

[१४८५-४] इसी प्रकार गर्भज (—चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर) के भी (पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो प्रकार समझ लेने चाहिए।)

[५] परिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते ! तं जहा- उरपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे य भुयपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८५-५ प्र.] भगवन् ! परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—उर परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर और भुजपरिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर ।

[६] उरपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—सम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे य गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८५-६ प्र.] भगवन् ! उर परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है, जैसे—सम्मूर्च्छिम-उर परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर और गर्भज-उर परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर ।

[७] सम्मुच्छिमे दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—अपज्जत्तसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे य पज्जत्तसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८५-७] सम्मूर्च्छिम (-उर परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर) दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर.परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्च योनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर और पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर.परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर ।

[८] एव गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पचउक्कओ भेदो ।

[१४८५-८] इसी प्रकार गर्भज-उर परिसर्प-(स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर) के भी (पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो प्रकार मिला कर सम्मूर्च्छिम और गर्भज दोनों के कुल) चार भेद समझ लेने चाहिए ।

[९] एव भुयपरिसप्पा वि सम्मुच्छिम-गब्भवक्कंतिय-पज्जत्त-अपज्जत्ता ।

[१४८५-९] इसी प्रकार भुजपरिसर्प-(स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर) के भी सम्मूर्च्छिम एव गर्भज (तथा दोनो के) पर्याप्तक और अपर्याप्तक (ये चार भेद समझने चाहिए) ।

१४८६. [१] खहयरा दुविहा पण्णत्ता । तं जहा सम्मुच्छिमा या गब्भवक्कंतिया य ।

[१४८६-१] खेचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर भी दो प्रकार का कहा गया है, यथा—सम्मूर्च्छिम और गर्भज ।

[२] सम्मुच्छिमा दुविहा पण्णत्ता । तं जहा – पज्जत्ता य अपज्जत्ता य ।

[१४८६-२] सम्मूर्च्छिम-(खेचर-ति०-प०-औदारिकशरीर) दो प्रकार का कहा गया है, यथा--पर्याप्त और अपर्याप्त ।

[३] गब्भवक्कतिया वि पज्जत्ता य अपज्जत्ता य ।

[१४८६-३] गर्भज-(खेचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर) भी पर्याप्त और अपर्याप्त (के भेद से दो प्रकार का कहा गया है) ।

१४८७ **[१] मणूसपचेंदियओरालियसरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?**

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । त जहा—सम्मुच्छिममणूसपचेंदियओरालियसरीरे य गब्भवक्कतियमणूसपंचेंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८७-१ प्र] भगवन् ! मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ? (वह) दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर और गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर ।

[२] गब्भवक्कतियमणूसपचेंदियओरालियसरीरे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । त जहा—पज्जत्तगगब्भवक्कतियमणूसपंचेंदियओरालियसरीरे य अपज्जत्तगगब्भवक्कतियमणूसपंचेंदियओरालियसरीरे य ।

[१४८७-२ प्र] भगवन् ! गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है, यथा—पर्याप्तक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर और अपर्याप्तक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर ।

विवेचन—औदारिकशरीर के भेद-प्रभेद—प्रस्तुत १२ सूत्रो (१४७६ से १४८७ तक) मे विधिद्वार के सन्दर्भ मे औदारिकशरीर के भेद-प्रभेदो का निरूपण किया गया है ।

औदारिकशरीरधारी जीव—नारको और देवो को छोड कर एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तिर्यचो और मनुष्यो के जितने भी जीव है और उन जीवो के जितने भी भेद-प्रभेद है, उतनो ही औदारिक-शरीर के भेद-प्रभेदो की सख्या है ।[1]

औदारिकशरीर के भेदो की गणना—पाच प्रकार के एकेन्द्रियो के औदारिक शरीरो के प्रत्येक के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त, ये चार-चार भेद होने से कुल २० भेद हुए । तीन विकलेन्द्रियो

१ पण्णवणासुत्त (प्रस्तावनादि) भा. २, पृ ११७

के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से ६ भेद हुए। तत्पश्चात् औदारिकशरीरी पचेन्द्रिय के मुख्य दो भेद—तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय और मनुष्यपचेन्द्रिय। तिर्यञ्चपचेन्द्रिय-औदारिकशरीर के मुख्य तीन भेद—जलचर, स्थलचर और खेचर सम्बन्धी। फिर जलचर शरीर के दो भेद—सम्मूर्च्छिम एवं गर्भज। सम्मूर्च्छिम और गर्भज दोनो के पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो-दो भेद। स्थलचर शरीर के मुख्य दो भेद—चतुष्पद और परिसर्प। चतुष्पद स्थलचर शरीर के दो भेद—सम्मूर्च्छिम और गर्भज, फिर इन दोनो के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये दो-दो प्रकार। परिसर्प स्थलचर शरीर के मुख्य दो भेद—उर:परिसर्प और भुजपरिसर्प। उर.परिसर्प और भुजपरिसर्प, इन दोनो के शरीर के सम्मूर्च्छिम और गर्भज तथा उनके पर्याप्तक और अपर्याप्तक प्रभेद होते हैं। खेचर शरीर के भी सम्मूर्च्छिम, गर्भज तथा उनके पर्याप्त, अपर्याप्तक भेद। मनुष्य शरीर के मुख्य दो भेद—सम्मूर्च्छिम और गर्भज। फिर गर्भज मनुष्य शरीर के दो भेद—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इस प्रकार औदारिक शरीर के कुल ५० भेद-प्रभेदो की गणना कर लेनी चाहिए।[1]

औदारिकशरीर में संस्थानद्वार

१४८८. ओरालियसरीरे ण भंते ! किसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[१४८८ प्र] भगवन् ! औदारिकशरीर का सस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) नाना सस्थान वाला कहा गया है।

१४८९ एगिंदियओरालियसरीरे णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[१४८९ प्र.] भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर किस सस्थान (आकार) का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) नाना सस्थान वाला कहा गया है।

१४९०. [१] पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरे ण भते ! किसठाणसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! मसूरचंदसठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[१४९०-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर किस प्रकार के सस्थान वाला कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) मसूर-चन्द्र (मसूर की दाल) जैसे सस्थान वाला कहा गया है।

[२] एवं सुहुमपुढविक्काइयाण वि ।

[१४९०-२] इसी प्रकार सूक्ष्मपृथ्वीकायिको का (औदारिकशरीर-सस्थान) भी (मसूर की दाल के समान है।)

[३] बायराण वि एवं चेव ।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्र ४१०

[१४९०-३] बादरपृथ्वीकायिको का (औदारिकशरीर-संस्थान) भी इसी के समान (समझना चाहिए।)

[४] पज्जत्तापज्जत्ताण वि एवं चेव।

[१४९०-४] पर्याप्तक और अपर्याप्तक (पृथ्वीकायिको का औदारिकशरीर-सस्थान भी इसी प्रकार का (जानना चाहिए।)

१४९१. [१] आउक्काइयएगिंदियओरालियसरीरे ण भंते! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते? गोयमा! थिबुगबिंदुसंठाणसठिए पण्णत्ते।

[१४९१-१ प्र] भगवन्! अप्कायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरोर का सस्थान कैसा कहा गया है?

[उ] गौतम! (अप्कायिको के शरीर का सस्थान) स्तिबुकबिन्दु (स्थिरजलबिन्दु) जैसा कहा गया है।

[२] एव सुहुम-बायर-पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

[१४९१-२] इसी प्रकार का सस्थान अप्कायिको के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तको के शरीर का समझना चाहिए।

१४९२. [१] तेउक्काइएगिंदियओरालियसरीरे णं भंते! किंसठाणसंठिए पण्णत्ते? गोयमा! सूईकलावसठाणसंठिए पण्णत्ते।

[१४९२-१ प्र] भगवन्! तेजस्कायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर का सस्थान किस प्रकार का कहा गया है।

[उ] गौतम! तेजस्कायिको के शरीर का सस्थान सूइयो के ढेर (सूचीकलाप) के जैसा कहा गया है।

[२] एव सुहुम-बायर-पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

[१४९२-२] इसी प्रकार (का सस्थान तेजस्कायिको के) सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्तो के शरीरो का (समझना चाहिए।)

१४९३ [१] वाउक्काइयाणं पडागासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

[१४९३-१] वायुकायिक जीवो (के औदारिकशरीर) का सस्थान पताका के समान है।

[२] एवं सुहुम-बायर-पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

[१४९३-२] इसी प्रकार का सस्थान (वायुकायिको के) सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तको के शरीरों का भी समझना चाहिए।

१४९४. [१] वणस्सइकाइयाणं णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

[१४९४-१] वनस्पतिकायिको के शरीर का संस्थान नाना प्रकार का कहा गया है।

[२] एवं सुहुम-बायर-पज्जत्तापज्जत्ताण वि ।

[१४९४-२] इसी प्रकार (वनस्पतिकायिको के) सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तको के शरीरो का सस्थान भी (नाना प्रकार का है ।)

१४९५. [१] बेइंदियओरालियसरीरे ण भते ! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! हुंडसठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[१४९५-१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय-औदारिकशरीर का सस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) हुडकसस्थान वाला कहा गया है ।

[२] एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि ।

[१४९५-२] इसी प्रकार पर्याप्तक और अपर्याप्तक (द्वीन्द्रिय-औदारिकशरीरो का सस्थान भी हुडक कहा गया है ।)

१४९६. एव तेइंदिय-चउरिंदियाण वि ।

[१४९६] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय (के पर्याप्तक, अपर्याप्तक शरीरो) का सस्थान भी (हुण्डक समझना चाहिए ।)

१४९७ [१] तिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे ण भंते ! किंसंठाणसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहसंठाणसंठिए पण्णत्ते । त जहा समचउरससंठाणसठिए जाव[1] हुंडसठाणसठिए वि । एव पज्जत्ताऽपज्जत्ताण वि ३ ।

[१४९६-१ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर किस सस्थान वाला कहा गया है ?

[उ.] गौतम ! (वह) छहो प्रकार के सस्थान वाला कहा गया है, यथा—समचतुरस्र-सस्थान से लेकर हुडकसंस्थान पर्यन्त । इसी प्रकार पर्याप्तक, अपर्याप्तक (तिर्यञ्च-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर के सस्थान) के विषय में भी (समझ लेना चाहिए ।)

[२] सम्मुच्छिमतिरिक्खजोणियपंचेंदियओरालियसरीरे णं भंते ! किंसंठाणसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! हुंडसठाणसठिए पण्णत्ते । एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि ३ ।

[१४९७-२ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर किस सस्थान वाला कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) हुडक सस्थान वाला कहा गया है । इसी प्रकार पर्याप्तक, अपर्याप्तक (सम्मूर्च्छिम-तिर्यञ्चपचेन्द्रिय-औदारिकशरीर) का (सस्थान) भी (हुण्डक ही समझना चाहिए ।)

१ 'जाव' शब्द '**णग्गोहपरिमंडलसठाणसंठिए, साइस०, वामणसं०, खुज्जसंठाणसंठिए, हुंडसठाणसठिए,** शब्दो का सूचक है ।

[३] गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे णं भंते ! किसंठाणसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहसंठाणसंठिए पण्णत्ते । तं जहा—समचउरंसे जाव हुंडसंठाणसंठिए । एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि ३ । एवमेते तिरिक्खजोणियाणं ओहियाणं णव आलावगा ।

[१४९७-३ प्र.] भगवन् ! गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर किस संस्थान वाला कहा गया है ?

[उ.] गौतम ! (वह) छहों प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है, यथा—समचतुरस्रसंस्थान से लेकर हुंडकसंस्थान तक । इस प्रकार पर्याप्तक, अपर्याप्तक (गर्भज-तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीरों) के भी (ये छह संस्थान समझने चाहिए ।)

इस प्रकार औघिक (सामान्य) तिर्यञ्चयोनिकों (तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीरों के संस्थानों) के ये (पूर्वोक्त) नौ आलापक समझने चाहिए ।

१४९८. [१] जलयरतिरिक्खजोणियपचेंदियओरालियसरीरे णं भंते ! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहसंठाणसंठिए पण्णत्ते । तं जहा समचउरंसे जाव हुंडे ।

[१४९८-१ प्र.] भगवन् ! जलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर किस संस्थान वाला कहा गया है ?

[उ.] गौतम ! (वह) छहों प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है, जैसे समचतुरस्र यावत् हुण्डक संस्थान ।

[२] एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि ।

[१४९८-२] इसी प्रकार पर्याप्त, अपर्याप्तक (जलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीरों) के भी संस्थान (छहों प्रकार के) समझने चाहिए ।

[३] सम्मुच्छिमजलयरा हुंडसंठाणसंठिया । एतेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्तगा वि एवं चेव ।

[१४९८-३] सम्मूर्च्छिम-जलचरों (तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय) के औदारिकशरीर हुण्डकसंस्थान वाले हैं । उनके पर्याप्तक, अपर्याप्तकों के (औदारिकशरीर) भी इसी प्रकार (हुण्डकसंस्थान) के होते हैं ।

[४] गब्भवक्कंतियजलयरा छव्विहसंठाणसंठिया । एवं पज्जत्तापज्जत्तगा वि ।

[१४९८-४] गर्भज-जलचर (तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों के औदारिकशरीर) छहों प्रकार के संस्थान वाले हैं । इसी प्रकार पर्याप्तक, अपर्याप्तक (गर्भज-जलचर-तिर्यञ्च-पंचेन्द्रियों के औदारिकशरीर) भी (छहों संस्थान वाले समझने चाहिए ।)

१४९९. [१] एवं थलयराण वि णव सुत्ताणि ।

[१४९९-१] इसी प्रकार स्थलचर—(तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-संस्थानों) के नौ सूत्र (भी पूर्वोक्त प्रकार से समझ लेने चाहिए ।)

[२] एवं चउप्पयथलयराण वि उरपरिसप्पथलयराण वि भुयपरिसप्पथलयराण वि ।

[१४९९-२] इसी प्रकार चतुष्पद-स्थलचरो, उर परिसर्प-स्थलचरो एव भुजपरिसर्प-स्थलचरो के औदारिकशरीर सस्थानो के (नौ-नौ सूत्र) भी (पूर्वोक्त प्रकार से समझ लेने चाहिए ।)

१५००. एव खहयराण वि णव सुत्ताणि । णवरं सव्वत्थ सम्मुच्छिमा हुडसंठाणसठिया भाणियव्वा, इयरे छसु वि ।

[१५००] इसी प्रकार खेचरो के (औदारिकशरीरसस्थानो के) भी नौ सूत्र (पूर्वोक्त प्रकार से समझने चाहिए ।) विशेषता यह है कि सम्मूर्च्छिम (तिर्यञ्चपचेन्द्रियो के औदारिकशरीर) सर्वत्र हुण्डकसस्थान वाले कहने चाहिए । शेष सामान्य, गर्भज आदि के शरीर तो छहो सस्थानो वाले होते है ।

१५०१ [१] मणूसपंचेंदियओरालियसरीरे णं भते ! किंसठाणसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहसंठाणसठिए पण्णत्ते । त जहा— समचउरसे जाव हुडे ।

[१५०१-१ प्र] भगवन् ! मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर किस सस्थान वाला कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) छहो प्रकार के सस्थान वाला कहा गया है, जैसे –समचतुरस्र यावत् हुण्डकसस्थान वाला ।

[२] पज्जत्तापज्जत्ताण वि एवं चेव ।

[१५०१-२] पर्याप्तक और अपर्याप्तक (मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर) भी इसी प्रकार छहो सस्थान वाले होते हैं ।)

[३] गब्भवक्कतियाण वि एव चेव । पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण वि एव चेव ।

[१५०१-३] गर्भज (मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर) भी इसी प्रकार (छहो सस्थान (वाले होते हैं ।) पर्याप्तक अपर्याप्तक (गर्भज मनुष्यो) के (औदारिकशरीर भी छह सस्थान वाले समझने चाहिए ।)

[४] सम्मुच्छिमाण पुच्छा ।

गोयमा ! हुंडसठाणसठिया पण्णत्ता ।

[१५०१-४ प्र] सम्मूर्च्छिम मनुष्यो (चाहे पर्याप्तक हो, या अपर्याप्तक) के (औदारिकशरीर किस सस्थान वाले होते है ?

[उ.] गौतम ! (सम्मूर्च्छिम मनुष्यो के औदारिकशरीर) हुण्डकसस्थान वाले होते है ।

विवेचन सर्वविध औदारिकशरीरों की सस्थानसम्बन्धी प्ररूपणा--प्रस्तुत १४ सूत्रो (सू १४८८ से १५०१) मे एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय-मनुष्य तक के विविध औदारिकशरीरो के सस्थानो

को प्ररूपणा की गई है । सस्थानो की प्ररूपणा का क्रम औदारिकशरीर के भेदो के क्रम के अनुसार रखा गया है ।[1]

औदारिकशरीरो की संस्थान-सम्बन्धी तालिका--इस प्रकार है--

क्रम	औदारिकशरीर का प्रकार	संस्थान
१	पृथ्वीकायिक सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त औदारिकशरीर	मसूर की दाल के समान
२	अप्कायिक सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त औदाररिकशरीर	स्थिर जलबिन्दु के समान
३	तेजस्कायिक सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त औदारिकशरीर	सूइयो के ढेर के समान
४	वायुकायिक सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त औदारिकशरीर	पताका के आकार के समान
५	वनस्पतिकायिक सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त औदारिकशरीर	नाना प्रकार के सस्थान वाला
६	द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त औदारिकशरीर	हुडकसस्थान वाले
७	तिर्यञ्चपचेन्द्रिय औदारिकशरीर	छहो प्रकार के सस्थान वाला
८	सम्मूर्च्छिम ति प औदारिकशरीर पर्याप्त-अपर्याप्त	हुडकसस्थान वाला
९	गर्भज ति प. औदारिकशरीर पर्याप्त-अपर्याप्त	षड्विध सस्थान वाला
१०	जलचर ति प औदारिकशरीर पर्याप्त-अपर्याप्त, गर्भज	षड्विध सस्थान वाला
११	सम्मूर्च्छिम जलचर ति. प. औदारिकशरीर पर्याप्त-अपर्याप्त	हुडकसस्थान
	सम्मूर्च्छिम स्थलचर,खेचर ति प औदारिकशरीर पर्याप्त-अपर्याप्त	हुडकसस्थान
१२	स्थलचर चतुष्पद, उर:परिसर्प, भुजपरिसर्प ति प पर्याप्त-अपर्याप्त	छहो प्रकार के सस्थान
१३	खेचर ति प पर्याप्त-अपर्याप्त औदारिकशरीर	छहो प्रकार के सस्थान
१४	मनुष्य पचेन्द्रिय, गर्भज, पर्याप्त-अपर्याप्त औदारिकशरीर	छहो प्रकार के सस्थान
१५	सम्मूर्च्छिम मनुष्य प औदारिकशरीर, पर्याप्त-अपर्याप्त	हुडकसस्थान[2]

मसूरचद आदि शब्दो के विशेषार्थ मसूरचदसठाण- मसूर एक प्रकार का धान्य होता है, जिसकी दाल बनती है। मसूर का चन्द्र अर्थात् चन्द्राकार अर्धदल (दाल) मसूरचन्द्र; उसके समान आकार । **थिबुगबिन्दुसठाण**---स्तिबुकबिन्दु - पानी के बुदबुद जैसा होता है, जो बूंद वायु आदि के द्वारा इधर-उधर बिखरे या फैले नही, जमा हुआ हो, वह स्तिबुकबिन्दु कहलाता है, उसके जैसा आकार । **नाना सठाणसंठिया**-- देश, जाति और काल आदि के भेद से उनके आकार मे भिन्नता होने से विविध प्रकार के आकार वाले ।[3]

संस्थान : प्रकार और स्वरूप -शरीर की आकृति या रचना-विशेष को सस्थान कहते है। उसके ६ प्रकार है (१) समचतुरस्र, (२) न्यग्रोध-परिमण्डल, (३) सादि (स्वाति), (४) वामन, (५) कुब्जक और (६) हुण्डकसस्थान । छहो का स्वरूप इस प्रकार है--(१) **समचतुरस्र**--जिस शरीर के चारो ओर के चारो अस्र--कोण या विभाग सामुद्रिकशास्त्र मे कथित लक्षणो के अनुसार सम

१ पण्णवणासुत्त (प्रस्तावना परिशिष्टादि) भा २, पृ ११७

२ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ३३१ से ३३३ तक

३ प्रज्ञापना मलयवृत्ति. पत्र ४११

हो, वह समचतुरस्रसंस्थान है, (२) **न्यग्रोध-परिमण्डल**—न्यग्रोध का अर्थ है—वट या बड। जैसे वटवृक्ष का ऊपरी भाग विस्तीर्ण या पूर्णप्रमाणोपेत होता है और नीचे का भाग हीन या संक्षिप्त होता है, वैसे ही जिस शरीर के नाभि के ऊपर का भाग पूर्णप्रमाणोपेत हो, किन्तु नीचे का भाग (निचले अवयव) हीन या संक्षिप्त हो, वह न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान है। (३) **सादिसंस्थान**—सादि शब्द में जो 'आदि' शब्द है, वह नाभि के नीचे के भाग का वाचक है। नाभि के अधस्तन-भागरूप आदि सहित, जो संस्थान हो, वह 'सादि' कहलाता है। आशय यह है कि जो संस्थान नाभि के नीचे प्रमाणोपेत हो, किन्तु जिसमें नाभि के ऊपरी भाग हीन हो, वह सादिसंस्थान है। कई आचार्य इसे **साचीसंस्थान** कहते हैं। साची कहते हैं—शाल्मली (सेमर) वृक्ष को। शाल्मली वृक्ष का स्कन्ध (नीचे का भाग) अतिपुष्ट होता है, किन्तु ऊपर का भाग तदनुरूप विशाल या पुष्ट नहीं होता, उसी तरह जिस शरीर का अधोभाग परिपुष्ट व परिपूर्ण हो और ऊपर का भाग हीन हो, वह साचीसंस्थान है। (४) **कुब्जकसंस्थान**—जिस शरीर के सिर, गर्दन, हाथ-पैर आदि अवयव आकार में प्रमाणोपेत हों, किन्तु वक्षस्थल, उदर आदि टेढेमेढे बेडौल या कुबडे हों, वह कुब्जकसंस्थान है। (५) **वामनसंस्थान**—जिस शरीर के छाती, पेट आदि अवयव प्रमाणोपेत हों, किन्तु हाथ-पैर आदि अवयव हीन हों, जो शरीर बौना हो, वह वामनसंस्थान है। (६) **हुण्डकसंस्थान**—जिस शरीर के सभी अंगोपांग बेडौल हों, प्रमाण और लक्षण से हीन हों, वह हुण्डकसंस्थान कहलाता है।[1]

औघिक तिर्यंचयोनिकों के नौ आलापक—ये नौ आलापक इस प्रकार हैं—समुच्चय पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का एक, इनके पर्याप्तकों का एक और अपर्याप्तकों का एक, यों तीन आलापक, सम्मूर्च्छिम-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक का एक, इनके पर्याप्तक-अपर्याप्तकों के दो, यों कुल तीन आलापक तथा गर्भज-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक का एक, उनके पर्याप्तक अपर्याप्तक का एक-एक, यों कुल तीन आलापक। ये सब मिलाकर ९ आलापक हुए।[2]

स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों के औदारिकशरीर-सम्बन्धी नौ सूत्र—समुच्चय स्थलचरों का, उनके पर्याप्तकों का, अपर्याप्तकों का, सम्मूर्च्छिम स्थलचरों का, उनके पर्याप्तकों का, अपर्याप्तकों का तथा गर्भज स्थलचरों का, उनके पर्याप्तकों का एवं अपर्याप्तकों का एक-एक सूत्र होने से कुल नौ सूत्र होते हैं।[3]

औदारिकशरीर में प्रमाणद्वार

१५०२. ओरालियसरीरस्स णं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सातिरेगं जोयणसहस्सं।

[१५०२ प्र.] भगवन् ! औदारिकशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

[उ.] गौतम ! (औदारिकशरीरावगाहना) जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग की (और) उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन की है।

---

१ प्रज्ञापना, मलयवृत्ति, पत्र ४१२

२ (क) वही, मलयवृत्ति, पत्र ४१२ (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनीटीका भा. ४, पृ. ६३२

३ (क) वही, मलयवृत्ति, पत्र ४१२ (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनीटीका भा. ४, पृ. ६३३

१५०३. एगिंदियओरालियस्स वि एव चेव जहा ओहियस्स (सु. १५०२)।

[१५०३] एकेन्द्रिय के औदारिकशरीर की अवगाहना भी जैसी (सू १५०२ मे) औघिक (सामान्य औदारिकशरीर) की (कही है उसी प्रकार समझनी चाहिए।)

१५०४ [१] पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरस्स ण भंते ! केमहालिया पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असखेज्जइभागं।

[१५०४-१ प्र] भगवन ! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर की अवगाहना कितनी है ?

[उ.] गौतम ! (उसकी अवगाहना) जघन्य और उत्कृष्ट अगुल के असख्यातवे भाग की है।

[२] एव अपज्जत्तयाण वि पज्जत्तयाण वि।

[१५०४-२] इसी प्रकार अपर्याप्तक एव पर्याप्तक, (पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीरो) की भी (अवगाहना इतनी ही समझनी चाहिए।)

[३] एव सुहुमाण वि पज्जत्तापज्जत्ताण।

[१५०४-३] इसी प्रकार सूक्ष्म पर्याप्तक एव अपर्याप्तक-(पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीरो) को (अवगाहना) भी समझनी चाहिए।

[४] बादराण पज्जत्तापज्जत्ताण वि एव। एसो णवओ भेदो।

[१५०४-४] बादर पर्याप्तक एव अपर्याप्तक (पृ० ए० औदारिकशरीरो) की (अवगाहना की वक्तव्यता) भी इसी प्रकार (समझनी चाहिए।) (इस प्रकार पृथ्वीकायिको के शरीरावगाहना-सम्बन्धी) ये नौ भेद (आलापक) हुए।

१५०५. जहा पुढविक्काइयाण तहा आउक्काइयाण वि तेउक्काइयाण वि वाउक्काइयाण वि।

[१५०५] जिस प्रकार पृथ्वीकायिको के (औदारिकशरीरावगाहना-सम्बन्धी ९ आलापक—भेद हुए,) उसी प्रकार अप्कायिक, तजस्कायिक और वायुकायिक जीवो के भी (औदारिकशरीरा-वगाहना-सम्बन्धी) आलापक कहने चाहिए।

१५०६ [१] वणस्सइकाइयओरालियसरीरस्स ण भते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभाग, उक्कोसेण सातिरेग जोयणसहस्स।

[१५०६-१ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिको के औदारिकशरीर की अवगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! (उसकी अवगाहना) जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन की है।

[२] अपज्जत्तगाणं जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं ।

[१५०६-२] (वनस्पतिकायिक) अपर्याप्तको (के औदारिकशरीर) की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना भी अगुल के असख्यातवे भाग की है ।

[३] पज्जत्तगाण जहण्णेणं अगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सातिरेगं जोयणसहस्सं ।

[१५०६-३] (वनस्पतिकायिक) पर्याप्तको (के औदारिकशरीर) की (अवगाहना) जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग (और) उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन की है ।

[४] बादराणं जहण्णेणं अगुलस्स असंखेज्जइभाग, उक्कोसेण सातिरेग जोयणसहस्स । पज्जत्ताण वि एव चेव । अपज्जत्ताण जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अगुलस्स असखेज्जइभाग ।

[१५०६-४] बादर (वनस्पतिकायिको के औदारिकशरीर) की (अवगाहना) जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग (और) उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन की है। (इनके) पर्याप्तको की (औदारिकशरीरावगाहना) भी इसी प्रकार की (समझनी चाहिए ।) (इनके) अपर्याप्तको की (औदारिकशरीरावगाहना) जघन्य और उत्कृष्ट (दोनो प्रकार से) अगुल के असख्यातवे भाग की (समझनी चाहिए ।)

[५] सुहुमाणं पज्जत्तापज्जत्ताण य तिण्ह वि जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अगुलस्स असंखेज्जइभाग ।

[१५०६-५] (वनस्पतिकायिको के) सूक्ष्म, पर्याप्तक और अपर्याप्तक, इन तीनो की (औदारिकशरीरावगाहना) जघन्य और उत्कृष्ट (दोनो रूप से) अगुल के असख्यातवे भाग की है ।

१५०७. [१] बेइंदियओरालियसरीरस्स ण भते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अगुलस्स असखेज्जइभाग, उक्कोसेण बारस जोयणाइ ।

[१५०७-१] भगवन् ! द्वीन्द्रियो के औदारिकशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

[उ] गौतम ! (इनकी शरीरावगाहना) जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट बारह योजन की है ।

[२] एव सव्वत्थ वि अपज्जत्तयाणं अगुलस्स असंखेज्जइभाग जहण्णेण वि उक्कोसेण वि ।

[१५०७-२] इसी प्रकार सर्वत्र (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियो मे) अपर्याप्त जीवो की औदारिकशरीरावगाहना भी जघन्य और उत्कृष्ट (दोनो प्रकार से) अगुल के असख्यातवे भाग की कहनी चाहिए ।

[३] पज्जत्तयाण जहेव ओरालियस्स ओहियस्स (सु. १५०७-१) ।

[१५०७-३] पर्याप्त द्वीन्द्रियो के औदारिकशरीर की अवगाहना भी उसी प्रकार है, जिस प्रकार [१५०७-१ सू मे] (द्वीन्द्रियो के) औधिक (औदारिकशरीर) की (कही है ।) अर्थात् जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट बारह योजन की होती है ।)

१५०८. एव तेइंदियाणं तिण्णि गाउयाइं । चउरिंदियाणं चत्तारि गाउयाइं ।

[१५०८] इसी प्रकार (औघिक और पर्याप्तक) त्रीन्द्रियो (के औदारिक शरीर) की (उत्कृष्ट अवगाहना) तीन गव्यूति (गाऊ) की है तथा (औघिक और पर्याप्तक) चतुरिन्द्रियो (के औदारिक-शरीर) की (उत्कृष्ट अवगाहना) चार गव्यूति (गाउ) की है ।

१५०९ पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण उक्कोसेण जोयणसहस्सं ३, एव सम्मुच्छिमाण ३, गब्भवक्कंतियाण वि ३ । एव चेव णवओ भेदो भाणियव्वो ।

[१५०९] पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के (१) औघिक औदारिकशरीर की, उनके (२) पर्याप्तको के औदारिकशरीर को तथा उनके (३) अपर्याप्तको के औदारिकशरीर (की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है ।) तथा सम्मूर्च्छिम (पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के औघिक और पर्याप्तक) औदारिकशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना इसी प्रकार (एक हजार योजन) की (समझनी चाहिए किन्तु सम्मूर्च्छिम अपर्याप्तक-तिर्यञ्च-पचेन्द्रिय के औदारिकशरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अगुल के असख्यातवे भाग की होती है ।) गर्भज-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो तथा उनके पर्याप्तको के औदारिकशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना भी इसी प्रकार समझनी चाहिए, किन्तु इनके अपर्याप्तको की पूर्ववत् अवगाहना होती है । इस प्रकार पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो की औदारिकशरीरावगाहना सम्बन्धी कुल ९ भेद (आलापक) होते है ।

१५१०. एव जलयराण वि जोयणसहस्स, णवओ भेदो ।

[१५१०] इसी प्रकार औघिक और पर्याप्तक जलचरो के औदारिकशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की (प० ति० की औ०-शरीरावगाहना के समान) होती है । (अपर्याप्त जलचरो की औ०-शरीरावगाहना जघन्य और उत्कृष्ट पूर्ववत् जाननी चाहिए ।) इसी प्रकार पूर्ववत् इसकी औदारिकशरीरावगाहना के ९ भेद (विकल्प) होते है ।

१५११. [१] थलयराण वि णवओ भेदो उक्कोसेण छग्गाउयाइ, पज्जत्ताण वि एवं चेव ३ । सम्मुच्छिमाण पज्जत्ताण य उक्कोसेण गाउयपुहत्त । गब्भवक्कंतियाणं उक्कोसेण छग्गाउयाइं पज्जत्ताण य २ । ओहियचउप्पयपज्जत्तय-गब्भवक्कंतियपज्जत्तयाण य उक्कोसेणं छग्गाउयाइ । सम्मुच्छिमाण पज्जत्ताण य गाउयपुहत्त उक्कोसेण ।

[१५११-१] स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो की औदारिकशरीरावगाहना-सम्बन्धी पूर्ववत् ९ विकल्प होते है । (समुच्चय) स्थलचर प० ति० की औदारिकशरीरावगाहना उत्कृष्टत· छह गव्यूति की होती है । सम्मूर्च्छिम स्थलचर-प० तिर्यञ्चो के एव उनके पर्याप्तको के औदारिकशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना गव्यूति-पृथक्त्व (दो गाऊ से नौ गाऊ तक) की होती है । उनके अपर्याप्तको की जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की होती है । गर्भज-तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो के औदारिकशरीर की अवगाहना उत्कृष्ट छह गव्यूति की और (उनके) पर्याप्तको (के औदारिकशरीर) की (उत्कृष्ट अवगाहना) भी (इतनी ही होती है ।) औघिक चतुष्पदो के, इनके पर्याप्तको के तथा गर्भज-चतुष्पदो के तथा इनके पर्याप्तको के औदारिकशरीर की अवगाहना उत्कृष्टत छह गव्यूति की होती है । (इनके अपर्याप्तको की अवगाहना पूर्ववत् होती है ।) सम्मूर्च्छिम-

चतुष्पद (स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो) के तथा (उनके) पर्याप्तको (के औदारिकशरीर) की (अवगाहना) उत्कृष्ट रूप से गव्यूतिपृथक्त्व की (होती है ।)

[२] एव उरपरिसप्पाण वि ओहिय-गब्भवक्कंतियपज्जत्तयाण जोयणसहस्सं । सम्मुच्छिमाणं जोयणपुहत्तं ।

[१५११-२] इसी प्रकार उर परिसर्प-(स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यचो के) औधिक, गर्भज तथा (उनके) पर्याप्तको (के औदारिकशरीर) की (उत्कृष्ट अवगाहना) एक हजार योजन की होती है । सम्मूर्च्छिम-(उर परिसर्प स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के तथा) उनके पर्याप्तको (के औदारिकशरीर) की (उत्कृष्ट अवगाहना) योजनपृथक्त्व की (होती है ।) इनके अपर्याप्तको की पूर्ववत् होती है ।

[३] भुयपरिसप्पाण ओहियगब्भवक्कतियाण य उक्कोसेणं गाउयपुहत्त । सम्मुच्छिमाण धणुपुहत्त ।

[१५११-३] भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के औधिक, गर्भज तथा उनके पर्याप्तको के औदारिकशरीर की अवगाहना उत्कृष्टत गव्यूति-पृथक्त्व की होती है । सम्मूर्च्छिम-(भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के तथा उनके पर्याप्तको के औदारिकशरीर) की उत्कृष्ट अवगाहना धनुषपृथक्त्व की होती है । (इनके अपर्याप्तको के औदारिकशरीर की अवगाहना पूर्ववत् समझे ।)

१५१२ खहयराणं ओहिय-गब्भवक्कतियाण सम्मुच्छिमाण य तिण्ह वि उक्कोसेण धणुपुहत्तं । इमाओ सगहणिगाहाओ –

जोयणसहस्स छग्गाउयाइ तत्तो य जोयणसहस्स ।
गाउयपुहत्त भुयए धणूपुहत्त च पक्खीसु ॥२१५॥
जोयणसहस्स गाउयपुहत्त तत्तो य जोयणपुहत्त ।
दोण्ह तु धणुपुहत्त सम्मच्छिमे होंति उच्चत्त ॥२१६॥

[१५१२] खेचर-(पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के) औधिको, गर्भजो एव सम्मूर्च्छिमो, इन तीनो के औदारिकशरीरो की उत्कृष्ट अवगाहना धनुषपृथक्त्व की होती है ।

[गाथार्थ]- -(गर्भज जलचरो की उत्कृष्ट अवगाहना) एक हजार योजन की, चतुष्पद-स्थलचरो की उत्कृष्ट अवगाहना छह गव्यूति की, तत्पश्चात् उर परिसर्प-स्थलचरो की अवगाहना एक हजार योजन की (होती है ।) भुजपरिसर्प-स्थलचरो की गव्यूतिपृथक्त्व की और खेचर पक्षियो की धनुषपृथक्त्व की औदारिकशरीरावगाहना होती है ॥२१५॥

सम्मूर्च्छिम (स्थलचरो) की औदारिकशरीरावगाहना उत्कृष्टत एक हजार योजन की, चतुष्पद-स्थलचरो की अवगाहना गव्यूतिपृथक्त्व की, उर.परिसर्पो की योजनपृथक्त्व की, भुजपरिसर्पो की तथा (औधिक और पर्याप्तक) इन दोनो एव सम्मूर्च्छिम खेचर पक्षियो की धनुषपृथक्त्व की उत्कृष्ट औदारिकशरीरावगाहना (ऊँचाई) समझनी चाहिए ॥२१६॥

१५१३. [१] मणुस्सोरालियसरीरस्स ण भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असखेज्जइभागं, उक्कोसेण तिण्णि गाउयाइ ।

[१५१३-१ प्र.] भगवन् ! मनुष्यो के औदारिकशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

[उ] गौतम ! (वह) जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट तीन गव्यूति की होती है।

[२] अपज्जत्ताणं जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अगुलस्स असंखेज्जइभागं ।

[१५१३-२] अपर्याप्तक (मनुष्यो के औदारिकशरीर) की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अगुल के असख्यातवे भाग की (होती है ।)

[३] सम्मुच्छिमाण जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असखेज्जइभागं ।

[१५१३-३] सम्मूर्च्छिम (मनुष्यो के औदारिकशरीर) की जघन्यत और उत्कृष्टत: (अवगाहना) अगुल के असख्यातवे भाग की (होती है ।)

[४] गब्भवक्कतियाण पज्जत्ताण य जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं ।

[१५१३-४] गर्भज मनुष्यो के तथा इनके पर्याप्तको के औदारिकशरीर की अवगाहना जघन्यत अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्टत तीन गव्यूति की होती है।

विवेचन सर्वविध औदारिक शरीरो की अवगाहना-सम्बन्धी प्ररूपणा– प्रस्तुत १२ सूत्रो (सू १५०२ से १५१३ तक) मे एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय-मनुष्यो तक के सभी प्रकार के औदारिक-शरीरो की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना की प्ररूपणा की गई है ।[1]

इसे सुगमता से समझने के लिए तालिका दी जा रही है--

क्रम	औदारिकशरीरधारी जीवों के नाम	जघन्य अवगाहना	उत्कृष्ट अवगाहना
१	समुच्चय औदारिकशरीर की	अगुल का असख्यातवां भाग	कुछ अधिक एक हजार योजन
२	एकेन्द्रिय के औदारिकशरीर की	,,	,, ,,
३	पृथ्वीकायिको, पर्याप्तक-अपर्याप्तको के औदारिकशरीर की	,,	अंगुल का असख्यातवां भाग
	पृथ्वीकायिको के सूक्ष्म, बादर के औदारिक-शरीर की	,,	,, ,,
४.	अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिको के औदारिकशरीर की	,,	,, ,,
५	वनस्पतिकायिको के औदारिकशरीर की	,,	कुछ अधिक एक हजार योजन
	वनस्पति अपर्याप्तको के औदारिकशरीर की	,,	अगुल का असख्यातवां भाग
	वनस्पति पर्याप्तको के औदारिकशरीर की	,,	कुछ अधिक एक हजार योजन

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ३३३ से ३३५ तक

	वनस्पति बादर, पर्याप्तको के औ श. की	अगुल का	कुछ अधिक एक हजार योजन		
	वनस्पति बादर अपर्याप्तको के औ श की	असख्यातवां भाग	अगुल का असख्यातवां भाग		
	वनस्पति सूक्ष्म, पर्याप्तक, अपर्याप्तको के औदारिकशरीर की	,,	,,	,,	
६.	द्वीन्द्रियो के औदारिकशरीर की	,,	बारह योजन		
	द्वीन्द्रियो के पर्याप्तको के औ शरीर की	,,	,,	,,	
	द्वीन्द्रियो के अपर्याप्तको के औ शरीर की	,,	अगुल का असखयातवां भाग		
७	त्रीन्द्रियो के अपर्याप्तकों के औ शरीर की	,,	,,	,,	
	त्रीन्द्रियो के औधिक एव पर्याप्तको के औ शरीर की	,,	तीन गव्यूति (६ कोस)		
८	चतुरिन्द्रियो के औधिक एव पर्याप्तको के औदारिकशरीर की	,,	चार गव्यूति (८ कोस)		
९	पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के औदारिकशरीर की	,,	एक हजार योजन		
	३ औधिक पर्याप्त अपर्याप्त के औ श की	,,	अपर्याप्त का अगुल का अ भाग		
	३ सम्मूर्च्छिम पर्याप्त अपर्याप्त के औ श की	,,	एक हजार योजन, अप की अ अ भा		
	३ गर्भज पर्याप्त अपर्याप्त के औ श. की	,,	,,	,,	
१०	जलचर प ति के औदारिकशरीर की	,,	छह गव्यूति		
	जलचर ३ औधिक पर्याप्तक अपर्याप्तक के औदारिकशरीर की	,,	छह गव्यूति अपर्याप्तक की पूर्ववत्		
	जलचर ३, सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक अपर्याप्तक के औदारिकशरीर की	,,	गव्यूतिपृथकत्व, अपर्याप्तक की पूर्ववत		
	जलचर ३ गर्भज पर्याप्तक अपर्याप्तक के औदारिकशरीर की	,,	छह गव्यूति	,	,,
११	स्थलचर प ति के औधिक के औ श की	,,	,,	,,	,,
	स्थलचर चतुष्पद प ति के, पर्याप्तक, गर्भज, पर्याप्तक के औदारिकशरीर की	,,	,,	,,	,,
	स्थलचर चतुष्पद सम्मूर्च्छिम प. ति के, पर्याप्त के औदारिकशरीर की	,,	गव्यूति पृथक्त्व	,,	,,
	स्थलचर उर परिसर्प प ति के औधिक, गर्भज, पर्याप्तक के औदारिकशरीर की	,,	योजनपृथक्त्व	,,	,,
	भुजपरिसर्प प ति. के औधिक, गर्भज, सम्मूर्च्छिम के औदारिकशरीर की	,,	धनुष्यपृथक्त्व	,,	,,
१२	खेचर प ति के औधिक, गर्भज, सम्मूर्च्छिम के औदारिकशरीर की	,,	,, ,,	,,	,,
१३	मनुष्यो के औधिक, पर्याप्तक के औ श की	,,	तीन गव्यूति	,,	,
	मनुष्यो के अपर्याप्तको व सम्मूर्च्छिमो के औदारिकशरीर की	,,	अगुल का असखयातवां भाग		

मनुष्यो के गर्भजो तथा पर्याप्तको के औदारिकशरीर की	अगुल का असख्यातवां भाग	तीन गव्यूति[1]

समुच्चय औदारिकशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना—कुछ अधिक एक हजार योजन की कही गई है, वह समुद्र गोतीर्थ आदि मे पद्मनाल आदि की अपेक्षा से समझना चाहिए। यहाँ के सिवाय अन्यत्र इतनी अवगाहना वाला औदारिकशरीर सम्भव नही है।[2]

नौ-नौ सूत्रो का समूह पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियो के प्रत्येक के नौ-नौ सूत्र इस प्रकार हैं (१-३) औघिकसूत्र, औघिक अपर्याप्तसूत्र, औघिक पर्याप्तसूत्र; (४-६) सूक्ष्मसूत्र, सूक्ष्म-अपर्याप्तकसूत्र और सूक्ष्म-पर्याप्तकसूत्र, तथा (७-९) बादरसूत्र, बादर-अपर्याप्तकसूत्र और बादर-पर्याप्तकसूत्र, ये तीनो के त्रिक मिला कर पृथ्वीकायिक से वनस्पतिकायिको तक के ९-९ सूत्र हुए। इसी तरह द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियो के औघिकसूत्र, पर्याप्तसूत्र और अपर्याप्तसूत्र; यो तीन-तीन सूत्र होते हैं। जलचरो के औघिक, उसके पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये तीन सूत्र, गर्भज, उसके पर्याप्तक और पर्याप्तक ये तीन सूत्र, इस प्रकार तीनो त्रिक मिला कर जलचरो के ९ सूत्र होते है। इसी प्रकार स्थलचर चतुष्पद, उर परिसर्प, भुजपरिसर्प, खेचर-पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो के प्रत्येक के औघिकत्रिक, गर्भजत्रिक एव सम्मूर्च्छिमत्रिक के हिसाब से ९-९ सूत्र होते हैं।[3]

मनुष्यो के औदारिकशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना--तीन गव्यूति (६ कोस) की कही गई है, वह देवकुरु आदि के मनुष्यो की अपेक्षा से इतनी उत्कृष्ट अवगाहना समझनी चाहिए।[4]

वैक्रियशरीर मे विधिद्वार

१५१४. वेउव्वियसरीरे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते। त जहा एगिदियवेउव्वियसरीरे य पचेंदियवेउव्वियसरीरे य।

[१५१४ प्र.] भगवन् ! वैक्रियशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार--एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर और पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर।

१५१५. [१] जदि एगिदियवेउव्वियसरीरे किं वाउक्काइयएगिदियवेउव्वियसरीरे अवाउक्काइयएगिदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरे, णो अवाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरे।

[१५१५-१ प्र] (भगवन् !) यदि एकेन्द्रिय जीवो के वैक्रियशरीर होता है, तो क्या वायुकायिक-एकेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है या अवायुकायिक-एकेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ.] गौतम ! वायुकायिक एकेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, अवायुकायिक-एकेन्द्रिय के वैक्रियशरीर नही होता है।

[२] जदि वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरे किं सुहुमवाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरे बादरवाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरे ?

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भाग-१, पृ ३३३ से ३३५ तक
२. प्रज्ञापना, मलयवृत्ति, पत्र ४१३
३ प्रज्ञापना, मलयवृत्ति, पत्र ४१३-४१४
४ वही, मलयवृत्ति, पत्र ४१४

गोयमा ! णो सुहुमवाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरे, बायरवाउक्काइयएगिंदियवेउव्विय-सरीरे।

[१५१५-२ प्र.] (भगवन् !) यदि वायुकायिक-एकेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, तो क्या सूक्ष्म-वायुकायिक-एकेन्द्रिय के होता है, अथवा बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रिय के होता है ?

[उ.] गौतम ! सूक्ष्म-वायुकायिक-एकेन्द्रिय के वैक्रियशरीर नही होता, (किन्तु) बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रिय के वैक्रियशरीर होता है।

[३] जदि बादरवाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरे किं पज्जत्तबायरवाउक्काइयएगिंदिय-वेउव्वियसरीरे अपज्जत्तबायरवाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! पज्जत्तबादरवाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरे णो अपज्जत्तबादरवाउक्काइयएगिं-दियवेउव्वियसरीरे।

[१५१५-३ प्र.] (भगवन् !) यदि बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रिय के वैक्रियशरीर होता है तो क्या पर्याप्त-बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रिय के वैक्रियशरीर होता है, अथवा अपर्याप्त-बादर-वायु-कायिक-एकेन्द्रिय के होता है ?

[उ.] गौतम ! पर्याप्त-बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, अपर्याप्त-बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रियो के वैक्रियशरीर नही होता है।

१५१६. जदि पंचेंदियवेउव्वियसरीरे किं णेरइयपंचेंदियवेउव्वियसरीरे जाव किं देवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! णेरइयपंचेंदियवेउव्वियसरीरे वि जाव देवपंचेंदियवेउव्वियसरीरे वि।

[१५१६-१ प्र.] (भगवन् !) यदि पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या नारक-पचेन्द्रिय के वैक्रियशरीर होता है, अथवा यावत् देव-पचेन्द्रिय के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ.] गौतम ! नारक-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है और यावत् देव-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है।

१५१७. [१] जदि णेरइयपंचेंदियवेउव्वियसरीरे किं रयणप्पभापुढविणेरइयपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे जाव किं अहेसत्तमापुढविणेरइयपंचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! रयणप्पभापुढविणेरइयपंचेंदियवेउव्वियसरीरे वि जाव अहेसत्तमापुढविणेरइय-पंचेंदियवेउव्वियसरीरे वि।

[१५१७-१ प्र.] (भगवन !) यदि नारक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या रत्नप्रभा-पृथ्वी के नारक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है अथवा यावत् अध.सप्तमपृथ्वी के नारक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ.] गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी के नारक-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है और यावत् अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिक-पचेन्द्रिया के भी वैक्रियशरीर होता है।

[२] जदि रयणप्पभापुढविणेरइयपचेंदियवेउव्वियसरीरे किं पज्जत्तगरयणप्पभापुढविणेरइय-पंचेंदियवेउव्वियसरीरे अपज्जत्तगरयणप्पभापुढविणेरइयपचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! पज्जत्तगरयणप्पभापुढविणेरइयपंचेंदियवेउव्वियसरीरे वि अपज्जत्तगरयणप्पभा-पुढविणेरइयपचेंदियवेउव्वियसरीरे वि ।

[१५१७-२ प्र] (भगवन् !) यदि रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्तक नैरयिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है अथवा रत्नप्रभापृथ्वी के अपर्याप्तक नैरयिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ] गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी-के पर्याप्तक नैरयिक-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है और रत्नप्रभापृथ्वी के अपर्याप्तक-नैरयिक-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है ।

[३] एव जाव अहेसत्तमाए दुगतो भेदो भाणियव्वो ।

[१५१७-३] इसी प्रकार शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक-पचेन्द्रियो से लेकर अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिक-पचेन्द्रियो के पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनो भेदो मे वैक्रियशरीर होने का कथन करना चाहिए ।

१५१८. [१] जदि तिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे किं सम्मुच्छिमतिरिक्खजोणिय-पंचेंदियवेउव्वियसरीरे गब्भवक्कतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! णो सम्मुच्छिमतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे, गब्भवक्कंतियतिरिक्ख-जोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे ।

[१५१८-१ प्र] (भगवन् !) यदि तिर्यञ्चयोनिक-पञ्चेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या सम्मूर्च्छिम-तिर्यञ्चयोनिक-पञ्चेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है अथवा गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ.] गौतम ! सम्मूर्च्छिम-तिर्यञ्चयोनिक-पञ्चेन्द्रियो के वैक्रियशरीर नही होता, (किन्तु) गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ।

[२] जदि गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे किं सखेज्जवासाउयगब्भ-वक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे असखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदिय-वेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! सखेज्जवासाउयगब्भवक्कतियतिरिक्खजोणियपचेदियवेउव्वियसरीरे, णो असखेज्ज-वासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे ।

[१५१८-२ प्र] (भगवन् !) यदि गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या सख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है अथवा असख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ] गौतम ! सख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रिय-शरीर होता है, (किन्तु) असख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रिय-शरीर नही होता है ।

[३] जदि संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे किं पज्जत्तग-संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे अपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयगब्भ-वक्कंतियतिरिक्खजोणियपंचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे, णो अपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपंचेंदियवेउव्वियसरीरे ।

[१५१८-३ प्र] (भगवन् !) यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, तो क्या पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है अथवा अपर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ] गौतम ! पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, किन्तु अपर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्च-पञ्चेन्द्रियो के वैक्रियशरीर नही होता है ।

[४] जदि संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे किं जलयरसंखे-ज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपंचेंदियवेउव्वियसरीरे थलयरसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंति-यतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे खहयरसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदिय-वेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! जलयरसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे वि, थलयरसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे वि, खहयरसंखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे वि ।

[१५१८-४ प्र] (भगवन् !) यदि संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या जलचर-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रिय-शरीर होता है, स्थलचर-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है अथवा खेचर-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ] गौतम ! जलचर-संख्यातवर्षायुष्क गर्भज-तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है, स्थलचर-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है तथा खेचर-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है ।

[५] जदि जलयरसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे किं पज्जत्तगजलयरसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे अपज्जत्तगजलयर-संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! पज्जत्तगजलयरसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे णो अपज्जत्तगजलयरसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे ।

[१५१८-५ प्र] (भगवन् !) यदि जलचर-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या पर्याप्तक-जलचर-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, अथवा अपर्याप्तक-जलचर-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ] गौतम ! पर्याप्तक-जलचर-सख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, (किन्तु) अपर्याप्तक-जलचर-सख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर नही होता है।

[६] जदि थलयरसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कतियतिरिक्खजोणियपचेंदिय जाव सरीरे किं चउप्पय जाव सरीरे परिसप्प जाव सरीरे ?

गोयमा ! चउप्पय जाव सरीरे वि परिसप्प जाव सरीरे वि ।

[१५१८-६ प्र] (भगवन् !) यदि स्थलचर-सख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ? तो क्या पर्याप्तक-स्थलचर या अपर्याप्तक-स्थलचर तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो के होता है ? अथवा चतुष्पद-स्थलचर तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो के होता है या फिर उर-परिसर्प-पर्याप्तक अथवा भुजपरिसर्प-पर्याप्तक-स्थलचर यावत् तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है ?

[उ] गौतम ! (पर्याप्तक) चतुष्पद-(स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो) के भी (वैक्रिय) शरीर (होता है,) यावत् परिसर्प (उर परिसर्प एव भुजपरिसर्प तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो) के भी (वैक्रिय) शरीर (होता है।)

[७] एव सव्वेसि णेयं जाव खहयराण पज्जत्ताण, णो अपज्जत्ताण ।

[१५१८-७] इसी प्रकार खेचर-सख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर जान लेना चाहिए, (विशेष यह है कि) खेचर-पर्याप्तको के वैक्रियशरीर होता है, अपर्याप्तको के नही होता है।

१५१९. [१] जदि मणूसपचेंदियवेउव्वियसरीरे किं सम्मुच्छिममणूसपचेंदियवेउव्वियसरीरे गब्भवक्कतियमणूसपचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! णो सम्मुच्छिममणूसपचेदियवेउव्वियसरीरे, गब्भवक्कतियमणूसपचेंदियवेउव्विय-सरीरे ।

[१५१९-१ प्र] (भगवन् !) यदि मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, अथवा गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ] गौतम ! सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर नही होता, (किन्तु) गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है।

[२] जदि गब्भवक्कतियमणूसपचदियवेउव्वियसरीरे कि कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसपंचें-दियवेउव्वियसरीरे अकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसपंचेंदियवेउव्वियसरीरे अंतरदीवयगब्भवक्कतिय-मणूसपचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! कम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसपंचेंदियवेउव्वियसरीरे, णो अकम्मभूमगगब्भवक्कं-तियमणूसपचेंदियवेउव्वियसरीरे नो अतरदीवयगब्भवक्कतियमणूसपचेंदियवेउव्वियसरीरे य ।

[१५१९-२ प्र.] (भगवन् !) यदि गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, अकर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, अथवा अन्तरद्वीपज-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ] गौतम ! कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, (किन्तु) न तो अकर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है और न ही अन्तरद्वीपज-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ।

[३] जदि कम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसपचेंवियवेउव्वियसरीरे किं संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसपचेंदियवेउव्वियसरीरे असंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसपंचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसपंचेंदियवेउव्वियसरीरे, णो असखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसपंचेंदियवेउव्वियसरीरे ।

[१५१९-३ प्र] (भगवन् !) यदि कर्मभूमिक-गर्भज मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या सख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, अथवा असख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ] गौतम ! सख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, किन्तु असख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर नही होता है ।

[४] जदि संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसपंचेंदियवेउव्वियसरीरे किं पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसपंचेंदियवेउव्वियसरीरे अपज्जत्तगसखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसपचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! पज्जत्तगसखेज्जवासाउयकम्मभूमत्तगब्भवक्कंतियमणूसपचेंदियवेउव्वियसरीरे, णो अपज्जत्तगसखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसपचेंदियवेउव्वियसरीरे ।

[१५१९-४ प्र] (भगवन् !) यदि सख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या पर्याप्तक-सख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, (अथवा) अपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ.] गौतम ! पर्याप्तक-सख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, (किन्तु) अपर्याप्तक-सख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य-पंचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर नही होता है ।

१५२०. [१] जबि देवपंचेंवियवेउव्वियसरीरे किं भवणवासिदेवपंचेंदियवेउव्वियसरीरे जाव वेमाणियदेवपंचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! भवणवासिदेवपंचेंदियवेउव्वियसरीरे वि जाव वेमाणियदेवपंचेंदियवेउव्वियसरीरे वि ।

[१५२०-१ प्र] (भगवन् !) यदि देव-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, तो क्या भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, (अथवा) यावत् वैमानिक-देव-पचेन्द्रियो के (भी) वैक्रियशरीर होता है ?

[उ.] गौतम ! भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है और यावत् वैमानिक-देव-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है ।

[२] जदि भवणवासिदेवपचेंदियवेउव्वियसरीरे किं असुरकुमारभवणवासिदेवपंचेंदियवेउव्वियसरीरे जाव थणियकुमारभवणवासिदेवपंचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! असुरकुमार० जाव थणियकुमारभवणवासिदेवपंचेंदियवेउव्वियसरीरे वि ।

[१५२०-२ प्र] (भगवन् !) यदि भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है तो क्या असुरकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, (अथवा) यावत् स्तनितकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के (भी) वैक्रियशरीर होता है ?

[उ] गौतम ! असुरकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है (और) यावत् स्तनितकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है ।

[३] जदि असुरकुमारभवणवासिदेवपचेंदियवेउव्वियसरीरे किं पज्जत्तगअसुरकुमारभवणवासिदेवपचेंदियवेउव्वियसरीरे अपज्जत्तगअसुरकुमारभवणवासिदेवपचेंदियवेउव्वियसरीरे ?

गोयमा ! पज्जत्तगअसुरकुमारभवणवासिदेवपचेंदियवेउव्वियसरीरे वि अपज्जत्तगअसुरकुमारभवणवासिदेवपचेंदियवेउव्वियसरीरे वि । एव जाव थणियकुमारे वि ण दुगओ भेदो ।

[१५२०-३ प्र] (भगवन् !) यदि असुरकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, तो क्या पर्याप्तक-असुरकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है, (अथवा) अपर्याप्तक-असुरकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर होता है ?

[उ] गौतम ! पर्याप्तक-असुरकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है और अपर्याप्तक-असुरकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के भी वैक्रियशरीर होता है ।

इसी प्रकार स्तनिनकुमार-(भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो तक) के दोनो (पर्याप्तक-अपर्याप्तक) भेदो के (वैक्रियशरीर जानना चाहिए ।)

[४] एवं वाणमंतराणं अट्ठविहाण, जोइसियाणं पंचविहाणं ।

[१५२०-४] इसी तरह आठ प्रकार के वाणव्यन्तर-देवो के (तथा) पाच प्रकार के ज्योतिष्क-देवो के (वैक्रियशरीर होता है ।)

[५] वेमाणिया दुविहा—कप्पोवगा कप्पातीता य । कप्पोवगा बारसविहा, तेसिं पि एवं चेव दुगतो भेदो । कप्पातीता दुविहा—गेवेज्जगा य अणुत्तरा य । गेवेज्जगा णवविहा, अणुत्तरोववाइया पंचविहा, एतेसिं पज्जत्तापज्जत्ताभिलावेणं दुगतो भेदो ।

[१५२०-५] वैमानिक-देव दो प्रकार के होते हैं—कल्पोपपन्न और कल्पातीत । कल्पोपपन्न

बारह प्रकार के हैं। उनके भी (पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये) दो-दो भेद होते हैं। उन सभी के वैक्रियशरीर होता है।) कल्पातीत वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं—ग्रैवेयकवासी और अनुत्तरौपपातिक। ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के होते हैं, और अनुत्तरौपपातिक पाच प्रकार के। इन सबके पर्याप्तक और अपर्याप्तक के अभिलाप से दो-दो भेद (कहने चाहिए)। इन सबके वैक्रियशरीर होता है।)

विवेचन — वैक्रियशरीर के भेद-प्रभेद—प्रस्तुत सात सूत्रो (१५१४ से १५२० तक) मे वैक्रियशरीर के विधिद्वार के सन्दर्भ मे उसके एकेन्द्रियगत और पचेन्द्रियगत भेद-प्रभेदो का निरूपण किया गया है।

फलितार्थ—वैक्रियशरीर के सभी भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा का फलितार्थ यह है कि **एकेन्द्रियो मे** केवल पर्याप्तक-बादर-वायुकायिक जीवो के वैक्रियशरीर होता है।

पचेन्द्रियो में—पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे—सख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-पर्याप्तको के वैक्रियशरीर होता है; जबकि **मनुष्यो मे**—पचेन्द्रिय-गर्भज-कर्मभूमिक-सख्यातवर्षायुष्क-पर्याप्तक-मनुष्यो के वैक्रियशरीर होता है। **देवों मे**—सभी प्रकार के पर्याप्तक-अपर्याप्तक-भवनपतियो, वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्को और वैमानिको के वैक्रियशरीर होता है। **नारकों मे**—सातो ही नरकपृथ्वियो के पर्याप्तक-अपर्याप्तक नारको के वैक्रियशरीर होता है।[1]

निष्कर्ष यह है, वायुकायिको मे, पर्याप्तक-अपर्याप्तक-सूक्ष्म और अपर्याप्तक-बादर-वायुकायिको मे वैक्रियलब्धि नही होती। पचेन्द्रियो मे जलचर, स्थलचर चतुष्पद, उर परिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो को तथा मनुष्यो मे गर्भज, पर्याप्तक, सख्येयवर्षायुष्क-मनुष्यो को छोड कर शेष मनुष्यो मे वैक्रियलब्धि सम्भव नही है।[2]

वाणमंतराणं अट्ठविहाणं—वाणव्यन्तरदेव ८ प्रकार के है—(१) यक्ष, (२) राक्षस, (३) किन्नर, (४) किम्पुरुष, (५) भूत, (६) पिशाच, (७) गन्धर्व और (८) महोरग।

जोइसियाणं पचविहाणं—ज्योतिष्कदेव ५ प्रकार के है (१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र और (५) तारा।

गेवेज्जगा णवविहा—ग्रैवेयकदेव नौ प्रकार के हैं—(१ से ३ उपरितनत्रिक के ४ से ६ मध्यमत्रिक के और ७ से ९ अधस्तनत्रिक के।

अणुत्तरोववाइया पचविहा—अनुत्तरौपपातिक देव ५ प्रकार के है—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध विमानवासी।

कप्पोवगा बारसविहा—कल्पोपपन्न वैमानिक देव बारह प्रकार के है सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोको के।[3]

---

१ पण्णवणासुत्त (प्रस्तावनादि) भा २, पृ ११८

२ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४१६

३ (क) प्रज्ञापना-प्रमेयबोधिनीटीका, भा. ४, पृ.३८९-३९०

(ख) तत्त्वार्थसूत्र अ ४, सू ११, १२, १३, २०

वैक्रियशरीर में संस्थान-द्वार

१५२१. वेउव्वियसरीरे णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[१५२१ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीर किस सस्थान वाला कहा गया है ?

[उ.] गौतम ! (वह) नाना सस्थान वाला कहा गया है ।

१५२२. वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरे ण भते ! किंसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! पडागासंठाणसठिए पण्णत्ते ।

[१५२२ प्र] भगवन् ! वायुकायिक-एकेन्द्रियो का वैक्रियशरीर किस प्रकार के सस्थान वाला कहा गया है ?

[उ] गौतम (वह) पताका के आकार का कहा गया है ।

१५२३. [१] णेरइयपचेंदियवेउव्वियसरीरे णं भंते ! किंसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णेरइयपंचेंदियवेउव्वियसरीरे दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—भवधारणिज्जे य उत्तर-वेउव्विए य । तत्थ ण जे से भवधारणिज्जे से हुडसठाणसठिए पण्णत्ते । तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से वि हुंडसठाणसठिए पण्णत्ते ।

[१५२३-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक-पचेन्द्रियो का वैक्रियशरीर किस सस्थान का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! नैयिरक-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । उनमे से जो भवधारणीय-वैक्रियशरीर है, उसका सस्थान हुडक है तथा जो उत्तरवैक्रियशरीर है, वह भी हुडकसस्थान वाला होता है ।

[२] रयणप्पभापुढविणेरइयपचेंदियवेउव्वियसरीरे णं भते ! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! रयणप्पभापुढविणेरइयाण दुविहे सरीरे पण्णत्ते । तं जहा— भवधारणिज्जे य उत्तर-वेउव्विए य । तत्थ ण जे से भवधारणिज्जे मे वि हुडे, जे वि उत्तरवेउव्विए से वि हुडे । एव जाव अहेसत्तमापुढविणेरइयवेउव्वियसरीरे ।

[१५२३-२ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नारक-पचेन्द्रियो का वैक्रियशरीर किस सस्थान का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक-पचेन्द्रियो का (वैक्रिय) शरीर दो प्रकार का कहा गया है --भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । उनमे से जो भवधारणीय-वैक्रियशरीर है, वह हुडकसस्थान वाला है और उत्तरवैक्रिय भी हुडक-सस्थान वाला होता है । इसी प्रकार (शर्कराप्रभापृथ्वी से लेकर) अध.सप्तमपृथ्वी के नारको (तक के ये दोनो प्रकार के वैक्रियशरीर हुडकसस्थान वाले होते हैं ।)

१५२४. [१] तिरिक्खजोणियपचेंदियवेउव्वियसरीरे ण भते ! किंसंठाणसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[१५२४-१ प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो का वैक्रियशरीर किस सस्थान का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) अनेक सस्थानो वाला कहा गया है ।

[२] एव जलयर-थलयर-खहयराण वि । थलयराण चउप्पय-परिसप्पाण वि । परिसप्पाण उरपरिसप्प-भुयपरिसप्पाण वि ।

[१५२४-२] इसी प्रकार (समुच्चय तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो की तरह) जलचर, स्थलचर और खेचरो (के वैक्रियशरीरो) का सस्थान भी (नाना प्रकार का कहा गया है ।) तथा स्थलचरो मे चतुष्पद और परिसर्पों का और परिसर्पों मे उर परिसर्प और भुजपरिसर्पों के (वैक्रियशरीर) का (सस्थान भी नाना प्रकार का समझना चाहिए ।)

१५२५. एवं मणूसपंचेंदियवेउव्वियसरीरे वि ।

[१५२५] इसी (तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो की) तरह मनुष्य-पचेन्द्रियो का (वैक्रियशरीर) भी (नाना सस्थानो वाला कहा गया है ।)

१५२६. [१] असुरकुमारभवणवासिदेवपचेंदियवेउव्वियसरीरे ण भते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! असुरकुमाराण देवाण दुविहे सरीरे पण्णत्ते । त जहा—भवधारणिज्जे य उत्तरवेउव्विए य । तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से णं समचउरससठाणसठिए पण्णत्ते । तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से णं णाणासठाणसठिए पण्णत्ते ।

[१५२६-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो का वैक्रियशरीर किस सस्थान का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! असुरकुमार देवो का (वैक्रिय) शरीर दो प्रकार का कहा गया है – भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । उनमे से जो भवधारणीयशरीर है, वह समचतुरस्र-सस्थान वाला होता है, तथा जो उत्तरवैक्रियशरीर है, वह अनेक प्रकार के सस्थान वाला होता है ।

[२] एवं जाव थणियकुमारदेवपचेंदियवेउव्वियसरीरे ।

[१५२६-२] इसो प्रकार (असुरकुमार देवो की भाति) नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार पर्यन्त के भी वैक्रियशरीरो का सस्थान समझ लेना चाहिए ।

[३] एव वाणमतराण वि । णवरं ओहिया वाणमतरा पुच्छिज्जति ।

[१५२६-३] इसी प्रकार वाणव्यन्तरदेवो के वैक्रियशरीर का सस्थान भी असुरकुमारादि की भाति भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय की अपेक्षा से क्रमश: समचतुरस्र तथा नाना सस्थान वाला कहना चाहिए । विशेषता यह है कि यहाँ प्रश्न (इनके भेद-प्रभेदो के विषय मे न कर) औघिक-(समुच्चय) वाणव्यन्तरदेवो (के वैक्रियशरीर के सस्थान के सम्बन्ध मे करना चाहिए ।)

[४] एवं जोइसियाण वि ओहियाणं ।

[१५२६-४] इसी प्रकार (वाणव्यन्तरो की तरह) औघिक (समुच्चय) ज्योतिष्कदेवो के वैक्रियशरीर (भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय) के सस्थान के सम्बन्ध मे समझना चाहिए ।

[५] एवं सोहम्म जाव अच्चुयदेवसरीरे ।

[१५२६-५] इसी प्रकार सौधर्म से लेकर अच्युत कल्प के (कल्पोपपन्न वैमानिकों के भवधारणीय और उत्तर वैक्रियशरीर के सस्थानो का कथन करना चाहिए।)

[६] गेवेज्जगकप्पातीयवेमाणियदेवपंचेंदियवेउव्वियसरीरे णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! गेवेज्जगदेवाणं एगे भवधारणिज्जे सरीरए, से णं समचउरंससंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[१५२६-६ प्र] भगवन् ! ग्रैवेयककल्पातीत-वैमानिकदेव-पचेन्द्रियो का वैक्रियशरीर किस सस्थान का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! ग्रैवेयकदेवो के एकमात्र भवधारणीय-(वैक्रिय) शरीर ही होता है और वह समचतुरस्रसस्थान वाला होता है।

[७] एवं अणुत्तरोववातियाण वि ।

[१५२६-७] इसी प्रकार पाच अनुत्तरोपपातिक-वैमानिकदेवो के भी (भवधारणीय वैक्रियशरीर ही होता है और वह समचतुरस्रसस्थान वाला होता है।)

विवेचन—वैक्रियशरीरो के सस्थान का निरूपण—प्रस्तुत ६ सूत्रो (सू १५२१ से १५२६ तक) मे समस्त प्रकार के वैक्रियशरीरधारी जीवो को लक्ष्य मे लेकर तदनुसार उनके सस्थानो का निरूपण किया गया है।[1]

वैक्रियशरीर के प्रकार एव तत्सम्बन्धी सस्थान-विचार—समुच्चय वैक्रियशरीर, वायुकायिक वैक्रियशरीर तथा समस्त तिर्यञ्च-पञ्चेन्द्रियो और मनुष्यो के वैक्रियशरीर के सिवाय समस्त नारको और समस्त देवो के वैक्रियशरीर के सस्थान की चर्चा करते समय भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय शरीरो को लक्ष्य मे लेकर उनके सस्थानो का विचार किया गया है। भवधारणीयवैक्रिय-शरीर वह है, जो जन्म से ही प्राप्त होता है और उत्तरवैक्रियशरीर स्वेच्छानुसार नाना आकृति का निर्मित किया जाता है।[2]

नैरयिको के अत्यन्त क्लिष्टकर्मोदयवश, भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय, दोनो शरीर हुण्डकसस्थान वाले ही होते है। उनका भवधारणीयशरीर भवस्वभाव से ही, ऐसे पक्षी के समान बीभत्स हुण्डकसस्थान वाला होता है, जिसके सारे पख तथा गर्दन आदि के रोम उखाड दिये गए हो। यद्यपि नारको को नाना शुभ-आकृति बनाने के लिए उत्तरवैक्रियशरीर मिलता है, तथापि अत्यन्त अशुभतर नामकर्म के उदय से उसका भी आकार हुण्डकसस्थान जैसा होता है। अतएव वे शुभ आकार बनाने का विचार करते है, किन्तु अत्यन्त अशुभनामकर्मोदयवश हो जाता है—अत्यन्त अशुभतर। तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो और मनुष्यो को जन्म से वैक्रियशरीर नही मिलता, तपस्या आदि जनित लब्धि के प्रभाव से मिलता है। वह नानासस्थानो वाला होता है। दस प्रकार के भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पोपपन्नवैमानिक देवो का भवधारणीयशरीर भवस्वभाव से तथाविध शुभनामकर्मोदयवश समचतुरस्रसस्थान वाला होता है। इच्छानुसार प्रवृत्ति करने के

---

१ पण्णवणासुत्त (परिशिष्ट-प्रस्तावनादि) भा २, पृ. ११८

२ वही भा २, पृ ११८

कारण इनका उत्तरवैक्रियशरीर नाना सस्थान वाला होता है। उसका कोई एक नियत आकार नही होता। नौ ग्रैवेयक के देवो तथा पाच अनुत्तर विमानवासी देवो को उत्तरवैक्रियशरीर का कोई प्रयोजन न होने से वे उत्तरवैक्रियशरीर का निर्माण ही नही करते, क्योकि उनमे परिचारणा या गमनागमन आदि नही होते। अत उन कल्पातीत वैमानिक देवो मे केवल भवधारणीयशरीर ही पाया जाता है और उसका सस्थान समचतुरस्र ही होता है।[1]

वैक्रियशरीर में प्रमाणद्वार

१५२७ वेउव्वियसरीरस्स ण भते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अगुलस्स असखेज्जइभाग, उक्कोसेणं सातिरेग जोयणसयसहस्स ।

[१५२७ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीर की अवगाहना कितनी है ?

[उ.] गौतम ! (वह) जघन्यत अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्टत कुछ अधिक (सातिरेक) एक लाख योजन की कही गई है।

१५२८. वाउक्काइयएगिदियवेउव्वियसरीरस्स ण भते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अगुलस्स असखेज्जइभाग, उक्कोसेण वि अगुलस्स असखेज्जइभाग ।

[१५२८ प्र] भगवन् ! वायुकायिक-एकेन्द्रियो के वैक्रियशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

[उ] गौतम ! (वह) जघन्य भी अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट भी अगुल के असख्यातवे भाग की (कही गई है।)

१५२९. [१] णेरइयपचेंदियवेउव्वियसरीरस्स ण भते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । त जहा— भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य ।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेण अगुलस्स असखेज्जइभाग, उक्कोसेण पचधणुसयाइं । तत्थ ण जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेण अगुलस्स सखेज्जइभाग, उक्कोसेणं धणुसहस्स ।

[१५२९-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार की कही गई है, यथा--भवधारणीया और उत्तरवैक्रिया अवगाहना। उनमे से जो उनकी भवधारणीया-अवगाहना है, वह जघन्यत अगुल के असख्यातवें भाग की है और उत्कृष्टत पाँचसौ धनुष की है तथा उत्तरवैक्रिया-अवगाहना जघन्यत अगुल के सख्यातवे भाग की और उत्कृष्टत एक हजार धनुष की है।

[२] रयणप्पभापुढविणेरइयाण भते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । त जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य ।

---

१. (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४१६-४१७

(ख) प्रज्ञापना, प्रमेयबोधिनीटीका भा ४, पृ. ६९७, ७०३

तत्थ ण जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त धणूइं तिण्णि रयणीओ छच्च अंगुलाइं। तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभाग, उक्कोसेणं पण्णरस धणूइ अड्ढाइज्जाओ रयणीओ।

[१५२९-२ प्र] भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वी के नारको की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

[उ] गौतम! (वह अवगाहना) दो प्रकार की कही गई है, यथा--भवधारणीया और उत्तरवैक्रिया। उनमे से भवधारणीया-शरीरावगाहना जघन्यत अगुल के असख्यातवे भाग है और उत्कृष्टत: सात धनुष, तीन रत्नि (मु ड हाथ) और छह अगुल की है। उनकी उत्तरवैक्रिया-अवगाहना जघन्यत अगुल के सख्यातवे भाग और उत्कृष्टत: पन्द्रह धनुष, ढाई रत्नि (मु ड हाथ) की है।

[३] सक्करप्पभाए पुच्छा।

गोयमा! जाव तत्थ ण जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ। तत्थ ण जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेण अगुलस्स सखेज्जइभाग, उक्कोसेण एक्कतीस धणूइं एक्का य रयणी।

[१५२९-३ प्र] इसी प्रकार की पृच्छा शर्कराप्रभा के नारको की शरीरावगाहना के विषय मे करनी चाहिए।

[उ] गौतम! यावत् (दो प्रकार की अवगाहना कही है, उनमे से) भवधारणीया (अवगाहना) जघन्यत अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्टत पन्द्रह धनुष, ढाई रत्नि की है (तथा) उत्तरवैक्रिया (अवगाहना) जघन्यत अगुल के सख्यातवे भाग है, (और) उत्कृष्ट इकतीस धनुष एक रत्नि की है।

[४] वालुयप्पभाए भवधारणिज्जा एक्कतीस धणूइ एक्का य रयणी, उत्तरवेउव्विया बावट्ठि धणूइ दोण्णि य रयणीओ।

[१५२९-४ प्र.] बालुकाप्रभा (पृथ्वी के नारको) की भवधारणीया (अवगाहना) इकतीस धनुष एक रत्नि की है (और) उत्तरवैक्रिया (अवगाहना) बासठ धनुष, दो हाथ की है।

[५] पंकप्पभाए भवधारणिज्जा बावट्ठि धणूइ दोण्णि य रयणीओ, उत्तरवेउव्विया पणुवीसं धणुसयं।

[१५२९-५] पकप्रभा-(पृथ्वी के नारको) की भवधारणीया (अवगाहना) बासठ धनुष दो हाथ की है (और) उत्तरवैक्रिया (अवगाहना) एक सौ पच्चीस धनुष की है।

[६] धूमप्पभाए भवधारणिज्जा पणुवीसं धणुसय, उत्तरवेउव्विया अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं।

[१५२९-६] धूमप्रभा-(पृथ्वी के नारको) की भवधारणीया (अवगाहना) एक सौ पच्चीस धनुष की है (और) उत्तरवैक्रिया (अवगाहना) अढाई सौ धनुष की है।

[७] तमाए भवधारणिज्जा अड्ढाइज्जाइ धणुसयाइं, उत्तरवेउव्विया पंच धणुसयाइं।

[१५२९-७] तम· (प्रभापृथ्वी के नारको) की भवधारणीया (अवगाहना) अढाई सौ धनुष की है, (और) उत्तरवैक्रिया (अवगाहना) पाच सौ धनुष की है।

[८] अहेसत्तमाए भवधारणिज्जा पंच धणुसयाइं, उत्तरवेउव्विया धणुसहस्सं। एवं उक्कोसेण।

[१५२९-८] अध:सप्तम-(पृथ्वी के नारकों) की भवधारणीया (अवगाहना) पाच सौ धनुष की (और) उत्तरवैक्रिया (अवगाहना) एक हजार धनुष की है। यह (समस्त नरकपृथ्वियों के नारकों के भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय शरीर की) उत्कृष्ट (अवगाहना कही गई) है।

[९] जहण्णेणं भवधारणिज्जा अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उत्तरवेउव्विया अंगुलस्स संखेज्जइ-भागं।

[१५२९-९] (इन सबकी) जघन्यत भवधारणीया (अवगाहना) अगुल के असख्यातवे भाग है (और) उत्तरवैक्रिया (अवगाहना) अगुल के सख्यातवे भाग है।

१५३० तिरिक्खजोणियपंचेंदियवेउव्वियसरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसयपुहत्तं।

[१५३० प्र] भगवन्! तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

[उ] गौतम! जघन्यत अगुल के सख्यातवे भाग (और) उत्कृष्टत शतयोजनपृथक्त्व की होती है।

१५३१. मणूसपचेंदियवेउव्वियसरीरस्स ण भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण अगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सातिरेग जोयणसयसहस्स।

[१५३१ प्र] भगवन्! मनुष्य-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर की अवगाहना कितनी है?

[उ.] गौतम! (वह) जघन्यत अगुल के सख्यातवे भाग (और) उत्कृष्टत कुछ अधिक एक लाख योजन की है।

१५३२. [१] असुरकुमारभवणवासिदेवपंचेंदियवेउव्वियसरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! असुरकुमाराणं देवाण दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता। तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य।

तत्थ ण जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त रयणीओ। तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अगुलस्स असखेज्जइभाग, उक्कोसेण जोयणसय-सहस्सं।

[१५३२-१ प्र] भगवन्! असुरकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रियो के वैक्रियशरीर की अवगाहना कितनी कही है?

[उ] गौतम! असुरकुमारदेवो की दो प्रकार की शरीरावगाहना कही गई है, यथा—भवधारणीया और उत्तरवैक्रिया। उनमे से भवधारणीया—(शरीरावगाहना जघन्यतः अगुल के

असंख्यातवें भाग (प्रमाण) है (और) उत्कृष्टतः सात हाथ की है। (उनकी) उत्तरवैक्रिया-अवगाहना जघन्यतः अंगुल के संख्यातवें भाग-(प्रमाण) है (और) उत्कृष्टतः एक लाख योजन की है।

[२] एवं जाव थणियकुमाराणं।

[१५३२-२] इसी प्रकार (असुरकुमारों की शरीरावगाहना के समान)—(नागकुमार देवों से लेकर) स्तनितकुमार देवों (तक) की (भवधारणीया और उत्तरवैक्रिया शरीरावगाहना जघन्यतः और उत्कृष्टतः) समझ लेनी चाहिए।

[३] एवं ओहियाणं वाणमंतराणं।

[१५३२-३] इसी प्रकार (पूर्ववत्) औघिक (समुच्चय) वाणव्यन्तरदेवों की (उभयरूपा जघन्य, उत्कृष्ट शरीरावगाहना समझ लेनी चाहिए।)

[४] एवं जोइसियाण वि।

[१५३२-४] इसी तरह ज्योतिष्कदेवों की (उभयरूपा जघन्य, उत्कृष्ट शरीरावगाहना) भी (जान लेनी चाहिए।)

[५] सोहम्मीसाणगदेवाणं एवं चेव उत्तरवेउव्विया जाव अच्चुओ कप्पो। णवरं सणंकुमारे भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं छ रयणीओ, एवं माहिंदे वि, बंभलोय-लंतगेसु पंच रयणीओ, महासुक्क-सहस्सारेसु चत्तारि रयणीओ, आणय-पाणय-आरण-अच्चुएसु तिण्णि रयणीओ।

[१५३२-५] सौधर्म और ईशान कल्प के देवों को यावत् अच्युतकल्प के देवों तक की भवधारणीया-शरीरावगाहना भी इन्हीं के समान समझनी चाहिए, उत्तरवैक्रिया-शरीरावगाहना भी पूर्ववत् समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि सनत्कुमारकल्प के देवों की भवधारणीया-शरीरा-वगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग— (प्रमाण) है और उत्कृष्ट छह हाथ की है, इतनी ही माहेन्द्रकल्प के देवों की शरीरावगाहना होती है। ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प के देवों की शरीरा-वगाहना पांच हाथ की (तथा) महाशुक्र और सहस्रार कल्प के देवों की शरीरावगाहना चार हाथ की, (एवं) आनत, प्राणत, आरण और अच्युतकल्प के देवों की शरीरावगाहना तीन हाथ की होती है।

[६] गेवेज्जगकप्पातीतवेमाणियदेवपंचेंदियवेउव्वियसरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरो-गाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! गेवेज्जगदेवाणं एगा भवधारणिज्जा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं दो रयणीओ।

[१५३२-६ प्र.] भंते! ग्रैवेयक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रियों के वैक्रियशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

[उ.] गौतम! ग्रैवेयकदेवों की एक मात्र भवधारणीया शरीरावगाहना होती है। वह जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग-(प्रमाण) और उत्कृष्टतः दो हाथ की है।

[७] एवं अणुत्तरोववाइयदेवाण वि । णवरं एक्का रयणी ।

[१५३२-७] इसी प्रकार अनुत्तरौपपातिकदेवों की भी (भवधारणीया-शरीरावगाहना जघन्यत इतनी ही समझनी चाहिए) विशेष यह है कि (इनकी) उत्कृष्ट (शरीरावगाहना) एक हाथ की होती है ।

विवेचन—वैक्रियशरीरी जीवों की शरीरावगाहना—प्रस्तुत छह सूत्रों (सू १५२१ से १५२६ तक) में वैक्रियशरीर के प्रमाणद्वार के प्रसग मे वैक्रियशरीरी जीवो के भवधारणीय और उत्तर-वैक्रियशरीरो को लक्ष्य मे रख कर उनकी जघन्य, उत्कृष्ट शरीरावगाहना की प्ररूपणा की गई है ।

विविध वैक्रियशरीरी जीवो की शरीरावगाहना को सुगमता से समझने के लिए तालिका दी जा रही है—

क्रम	वैक्रियशरीर के प्रकार	भवधारणीया-शरीरावगाहना ज उ	उत्तरवैक्रिया-शरीरावगाहना ज. उ.
१	औधिक वैक्रियशरीर	जघन्य - अगुल के असख्यातवे भाग,	उत्कृष्ट कुछ अधिक एक लाख योजन
२	वायुकायिक ए वै. शरीर	जघन्य—अगुल के असख्यातवे भाग,	उत्कृष्ट--अगुल के असख्यातवे भाग ।
३	समुच्चय नारको के वै शरीर	भव जघन्य—अगुल के असंख्यातवे भाग,उ ५०० धनु	ज अगुल के सख्यातवे भाग उ १००० योजन ।
४	रत्नप्रभा के ना के वै शरीर	भव जघन्य—अगुल के असख्यातवे भाग,उ ७ ध ३ हाथ ६ अ	ज —अगुल के सख्यातवे भाग, उ १५ धनु २॥हाथ ।
५	शर्कराप्रभा के ना. के वै शरीर	जघन्य—अगुल के असख्यातवे भाग, उ १५ ध २॥ हाथ	ज —अगुल के सख्यातवे भाग उ ३१ धनु १ हाथ
६	वालुकाप्रभा के ना के वै शरीर	जघन्य -अगुल के असख्यातवे भाग, उ. ३१ धनु १ हाथ	ज —अगुल के सख्यातवे भाग उ ६२ धनु २ हाथ
७	पकप्रभा के ना के वै शरीर	ज - अगुल के असख्यातवें भाग, उ ६२ धनु २ हाथ	ज - अगुल के सख्यातवे भाग उ १२५ धनुष
८	धूमप्रभा के ना के वै शरीर	ज अगुल के असख्यातवे भाग, उ १२५ धनुष	ज अगुल के सख्यातवे भाग उ. २५० धनुष
९	तम प्रभा के ना के वै शरीर	ज—अगुल के असख्यातवे भाग, उ २५० धनुष	ज —अगुल के सख्यातवे भाग उ ५०० धनुष
१०	अध सप्तम के ना के वै.-शरीर	ज —अगुल के असख्यातवे भाग उ ५०० धनुष	ज.—अगुल के सख्यातवे भाग उ. १००० धनुष
११	तिर्यञ्च प के वैक्रिय-शरीर	जघन्य—अगुल के सख्यातवे भागप्रमाण	उत्कृष्ट योजनशत पृथक्त्व की
१२	मनुष्य प के वैक्रिय-शरीर	जघन्य—अगुल के सख्यातवे भागप्रमाण	उ कुछ अधिक एक लाख योजन की

१३.	समस्त भवनपति देवो के वै. शरीर	ज.—अगुल के असख्यातवे भाग, उ ७ हाथ की	ज. अगुल के असख्यातवे भाग उ १ लाख योजन
१४	समस्त वाणव्यन्तरो के वै शरीर	,, ,, ,, ,,	ज —अगुल के सख्यातवे भाग उ १ लाख योजन
१५	समस्त ज्योतिष्को के वै शरीर	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,,
१६	सौधर्म से अच्युतकल्प तक के देवो के वै श	ज.—अगुल के असख्यातवे भाग, उ ७ हाथ की	,, ,, ,, ,, ,,
	सनत्कुमार देवो के वै श	ज.—अगुल के असख्यातवे भाग, उ ६ हाथ की	,, ,, ,, ,, ,,
	माहेन्द्रकल्प के देवो के वै श	ज —अगुल के असख्यातवे भाग, उ ६ हाथ की	,, ,, ,, ,, ,,
	ब्रह्मलोक लान्तक दे के वै श	ज -अगुल के असख्यातवे भाग, उ ५ हाथ की	,, ,, ,, ,, ,,
	महाशुक्र सहस्रार दे के वै. श	ज —अगुल के असख्यातवे भाग, उ ४ हाथ की	,, ,, ,, ,, ,,
	आनत-प्राणत-आरण अच्युत कल्प के दे के वै श	ज अगुल के असख्यातवे भाग, उ ३ हाथ की	,, ,, ,, , ,,
१७	नवग्रैवेयको क वै श	ज अगुल के असख्यातवे भाग, उ २ हाथ की	
१८	पच अनुत्तरौपपातिक दे के वै शरीर	ज —अगुल के असख्यातवे भाग, उ १ हाथ की	

नारको की अवगाहना के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण —**रत्नप्रभापृथ्वी के नारकों की**—जो भवधारणीय-शरीरावगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की कही है, वह उत्पत्ति के प्रथम-समय मे होती है तथा जो उत्कृष्ट अवगाहना ७ धनुष ३ हाथ अगुल ६ की बताई है, वह पर्याप्त-अवस्था की अपेक्षा से तेरहवे प्रस्तट (पाथडे) मे जाननी चाहिए। इससे पूर्व के प्रस्तटो मे क्रमश थोडी-थोडी अवगाहना उत्तरोत्तर बढती जाती है। वह इस प्रकार—रत्नप्रभापृथ्वी के प्रथम प्रस्तट मे उत्कृष्ट अवगाहना तीन हाथ की, दूसरे प्रस्तट मे १ धनुष १ हाथ ८॥ अगुल की, तीसरे प्रस्तट मे १ धनुष ३ हाथ १७ अगुल की, चौथे प्रस्तट मे २ धनुष २ हाथ १॥ अगुल की, पाँचवे प्रस्तट मे ३ धनुष १० अगुल की, छठे प्रस्तट मे ३ धनुष २ हाथ १॥ अगुल की, सातवे प्रस्तट मे ४ धनुष १ हाथ ३ अगुल की, आठवे प्रस्तट मे ४ धनुष ३ हाथ १॥ अगुल की, नौवे प्रस्तट मे ५ धनुष १ हाथ २० अगुल की, दसवे प्रस्तट मे ६ धनुष ४॥ अगुल की, ग्यारहवे प्रस्तट मे ६ धनुष २ हाथ १३ अगुल की, बारहवे प्रस्तट मे ७ धनुष २१॥ अगुल की और १३वे प्रस्तट मे पूर्वोक्त अवगाहना होती है।

---

१. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १ पृ. २४०-३४१

शर्कराप्रभापृथ्वी के नारको को जो भवधारणीय उत्कृष्ट शरीरावगाहना १५ धनुष २।। हाथ की बताई है, वह ग्यारहवे प्रस्तट की अपेक्षा से समझनी चाहिए। क्रमशः अन्य प्रस्तटो की अवगाहना इस प्रकार है—प्रथम प्रस्तट मे ७ धनुष ३ हाथ ६ अगुल की, दूसरे प्रस्तट मे ८ धनुष २ हाथ ९ अगुल की, तीसरे प्रस्तट मे ९ धनुष १ हाथ १८ अगुल की, चौथे मे १० धनुष १५ अगुल की, पाचवे प्रस्तट मे १० धनुष ३ हाथ १८ अगुल की, छठे प्रस्तट मे ११ धनुष २ हाथ २१ अगुल की, सातवे मे १२ धनुष २ हाथ की, आठवे प्रस्तट मे १३ धनुष १ हाथ ३ अगुल की, नौवे प्रस्तट मे १४ धनुष ६ अगुल की, दसवे प्रस्तट मे १४ धनुष ३ हाथ और ९ अगुल की तथा ग्यारहवे प्रस्तट मे पूर्वोक्त शरीरावगाहना समझनी चाहिए।

बालुकाप्रभापृथ्वी के नारको की जो भवधारणीय उत्कृष्ट शरीरवगाहना ३१ धनुष १ हाथ बताई है, वह नौवे प्रस्तट की अपेक्षा से समझनी चाहिए। अन्य प्रस्तटो मे अवगाहना इस प्रकार है—प्रथम प्रस्तट मे १५ धनुष २ हाथ १२ अगुल की, दूसरे प्रस्तट मे १७ धनुष २ हाथ ७।। अगुल की, तीसरे प्रस्तट मे १९ धनुष २ हाथ ३ अगुल की, चौथे प्रस्तट मे २१ धनुष १ हाथ २२।। अंगुल की, पाचवे प्रस्तट मे २३ धनुष १ हाथ १८ अगुल की, छठे प्रस्तट मे २५ धनुष १ हाथ २३।। अगुल की, सातवे प्रस्तट मे २७ धनुष १ हाथ ९ अगुल की, आठवे प्रस्तट मे २९ धनुष १ हाथ ४।। अगुल की और नौवे प्रस्तट मे पूर्वोक्त शरीरावगाहना समझनी चाहिए।

पकप्रभापृथ्वी मे उत्कृष्ट भवधारणीय शरीरावगाहना ६२ धनुष २ हाथ की बताई गई है, वह सातवे प्रस्तट मे जाननी चाहिए। अन्य प्रस्तटो मे अवगाहना इस प्रकार है प्रथम प्रस्तट मे ३१ धनुष १ हाथ की, दूसरे प्रस्तट मे छत्तीस धनुष १ हाथ २० अगुल की, तीसरे प्रस्तट मे ४१ धनुष २ हाथ १६ अगुल की चौथे प्रस्तट मे ४६ धनुष ३ हाथ १२ अगुल की, पाचवे प्रस्तट मे ५२ धनुष ८ अगुल की, छठे प्रस्तट मे ५७ धनुष १ हाथ ४ अगुल की और सातवे प्रस्तट मे पूर्वोक्त अवगाहना होती है।

धूमप्रभापृथ्वी मे उत्कृष्ट भवधारणीय शरीरावगाहना १२५ धनुष को बताई है, वह पचम प्रस्तट की अपेक्षा से समझनी चाहिए। इसक प्रथम प्रस्तट मे ६२ धनुष २ हाथ की, दूसरे मे ७८ धनुष १ बितस्ति (बीता), तीसरे मे ९३ धनुष ३ हाथ, चौथे प्रस्तट (पाथडे) मे १०९ धनुष १ हाथ और १ बितस्ति और पाचवे प्रस्तट मे पूर्वोक्त अवगाहना समझनी चाहिए।

तमःप्रभापृथ्वी के नारको की उत्कृष्ट भवधारणीय अवगाहना २५० धनुष की है, वह तृतीय पाथडे की अपेक्षा से है। अन्य पाथडो का परिमाण इस प्रकार है—प्रथम पाथडे मे १२५ धनुष की, दूसरे पाथडे मे १८७।। धनुष की और तीसरे पाथडे की अवगाहना पूर्वोक्त परिमाण वाली है।

तमस्तमापृथ्वी के नारको की उत्कृष्ट भवधारणीय शरीरावगाहना ५०० धनुष की कही गई है।

रत्नप्रभापृथ्वी की उत्तरवैक्रिय-शरीरावगाहना उत्कृष्टत १५ धनुष २।। हाथ की होती है, यह अवगाहना १३वे पाथडे मे पाई जाती है। अन्य पाथडो मे पूर्वोक्त भवधारणीय शरीरावगाहना के परिमाण से दुगुनी समझनी चाहिए।

शर्कराप्रभापृथ्वी की उत्तरवैक्रिय-शरीरावगाहना उत्कृष्ट ३१ धनुष १ हाथ की होती है,

जो ११वें पाथड़े मे पाई जाती है। अन्य पाथड़ो मे अपने-अपने भवधारणीय-शरीर की अवगाहना से उत्तरवैक्रियशरीर की अवगाहना दुगुनी-दुगुनी होती है।

बालुकाप्रभा की उत्तरवैक्रिय-शरीरावगाहना उत्कृष्ट ६२ धनुष २ हाथ की होती है, जो उसके नौवे पाथडे की अपेक्षा से है। अन्य पाथडो मे अपने-अपने भवधारणीय-अवगाहना-प्रमाण से दुगुनी-दुगुनी अवगाहना होती है।

पकप्रभा की उत्कृष्ट उत्तरवैक्रिय-शरीरावगाहना १२५ धनुष की है, जो उसके सातवे पाथडे मे पाई जाती है। अन्य पाथडो मे अपनी-अपनी भवधारणाय-शरीरावगाहना से दुगुनी-दुगुनी अवगाहना समझ लेनी चाहिए।

धूमप्रभापृथ्वी की उत्कृष्ट उत्तरवैक्रिय-शरीरावगाहना २५० धनुष की है, जो उसके पाचवे पाथडे की अपेक्षा से है। बाकी के पाथडो की उत्तरवैक्रियावगाहना, अपनी-अपनी भवधारणीय-अवगाहना से दुगनी-दुगुनो है।

तमःप्रभापृथ्वी की उत्कृष्ट उत्तरवैक्रिय-शरीरावगाहना ५०० धनुष की है, जो उसके तीसरे पाथडे की अपेक्षा से है। प्रथम और द्वितीय प्रस्तट की उत्तरवैक्रियावगाहना अपनी-अपनी भवधारणीय शरीरावगाहना से दुगुनी-दुगुनी होती है।

सातवीं पृथ्वी के नारकों की उत्कृष्ट उत्तरवैक्रिय-शरीरावगाहना १००० धनुष की होती है।[1]

स्थिति के अनुसार वैमानिक-देवो की भवधारणीय उत्कृष्ट अवगाहना—सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प मे जिन देवों की स्थिति दो सागरोपम की है, उनकी भवधारणीय-अवगाहना पूरे सात हाथ की होती है, जिनकी स्थिति ३ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ६ हाथ तथा एक हाथ के ४/११ भाग की है। जिनकी स्थिति ४ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ६ हाथ और एक हाथ के ३/११ भाग की है, जिनकी स्थिति ५ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ६ हाथ और एक हाथ के २/११ भाग की है, जिनकी स्थिति ६ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ६ हाथ और १/११ भाग की है। जिनकी स्थिति पूरे ७ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना पूरे ६ हाथ की है।

ब्रह्मलोक और लान्तककल्प जिन देवो की स्थिति ब्रह्मलोक कल्प मे ७ सागरोपम की है, उनकी भवधारणीय उत्कृष्ट अवगाहना पूरे ६ हाथ की है, जिनकी स्थिति ८ सागरोपम की है, उनकी भवधारणीय शरीरावगाहना ५ हाथ एव ६/११ हाथ की होती है, जिनकी स्थिति नौ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ५ हाथ और ५/११ हाथ की होती है। जिनकी स्थिति १० सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ५ हाथ और ४/११ हाथ की होती है। लान्तककल्प मे जिनकी स्थिति १० सागरोपम की है, उनकी उत्कृष्ट अवगाहना ५ हाथ और ४/११ हाथ की होती है, जिनकी स्थिति ११ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ५ हाथ और ३/११ हाथ की होती है। जिनकी स्थिति १३ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ५ हाथ और १/११ हाथ की होती है तथा जिनकी स्थिति १४ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना पूरे ५ हाथ की होती है।

---

१. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४१८ से ४२० तक

महाशुक्र और सहस्रार मे जिन देवो की स्थिति महाशुक्रकल्प मे १४ सागरोपम की है, उनकी उत्कृष्ट भवधारणीय-शरीरावगाहना पूरे ५ हाथ की होती है, जिनकी स्थिति १५ सागरोपम की है, उनकी उ भ. शरीरावगाहना ४ हाथ और ३/११ हाथ की होती है, जिनकी स्थिति १६ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ४ हाथ और २/११ हाथ की होती है, जिनकी स्थिति १७ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ४ हाथ और १/११ हाथ की होती है। सहस्रारकल्प मे भी १७ सागरोपम वाले देवो की उत्कृष्ट भ. अवगाहना इतनी ही होती है। जिनकी स्थिति पूरे १८ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना पूरे ४ हाथ की होती है।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प के देवों की अवगाहना—आनतकल्प मे जिनकी स्थिति पूरे १८ सागरोपम की है, उनकी भ उ शरीरावगाहना पूरे ४ हाथ की होती है, जिनकी स्थिति १९ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ३ हाथ और ३/११ हाथ की होती है। प्राणतकल्प मे जिनकी स्थिति २० सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ३ हाथ और २/११ हाथ की होती है। आरणकल्प मे जिन देवो की स्थिति २० सागरोपम की है उनकी अवगाहना ३ हाथ और २/११ भाग की होती है, जिनकी स्थिति २१ सागरोपम की है, उनकी ३ हाथ और १/११ हाथ की होती है। अच्युतकल्प मे जिनकी स्थिति २१ सागरोपम की है, उनकी भी भ शरीरावगाहना ३ हाथ १/११ हाथ की होती है, जिन देवो की अच्युतकल्प मे २२ सागरोपम की स्थिति है, उनकी उत्कृष्ट शरीरावगाहना ३ हाथ की होती है। प्रथम ग्रैवेयक मे जिनकी स्थिति २३ सागरोपम की है, उनकी अवगाहना ३ हाथ की होती है। द्वितीय ग्रैवेयक मे जिनकी स्थिति २३ सागरोपम की है, उनकी उ अवगाहना २ हाथ और ८/११ हाथ की होती है। द्वितीय ग्रैवेयक मे जिनकी स्थिति २४ सागरोपम की है, उनकी उ अवगाहना २ हाथ ७/११ हाथ की होती है। तृतीय ग्रैवेयक मे जिनकी स्थिति २४ सागरोपम की है, उनकी उत्कृष्ट शरीरावगाहना २ हाथ और ७/११ हाथ की होती है। तृतीय ग्रैवेयक मे २५ सागरोपम की स्थिति वाले देवो की उ शरीरावगाहना २ हाथ ६/११ हाथ की होती है। चौथे ग्रैवेयक मे जिन देवो की स्थिति २५ सागरोपम की है, उनकी भी भ शरीरावगाहना पूर्ववत् होती है। चौथे ग्रैवेयक मे २६ सागरोपम की स्थिति वाले देवो की भ शरीरावगाहना २ हाथ व ५/११ हाथ की होती है। पाचवे ग्रैवेयक मे जिन देवो की स्थिति २६ सागरोपम की है, उनकी भी उ शरीरावगाहना पूर्ववत् ही है। पाचवे ग्रैवेयक मे जिन देवो की स्थिति २७ सागरोपम की है, उनकी उ भ. शरीरावगाहना २ हाथ और २/११ हाथ की होती है। छठे ग्रैवेयक मे जिन देवो की स्थिति २७ सागरोपम की होती है, उ भव शरीरावगाहना भी पूर्ववत् होती है। छठे ग्रैवेयक मे जिन देवो की स्थिति २८ सागरोपम की है, उनकी उ भव शरीरावगाहना २ हाथ और ३/११ हाथ की होती है। सातवे ग्रैवेयक मे जिन देवो की स्थिति २८ सागरोपम की है, उनकी भी शरीरावगाहना पूर्ववत् होती है। सातवे ग्रैवेयक मे भी जिनकी स्थिति २९ सागरोपम होती है, उनकी उ शरीरावगाहना २ हाथ और २/११ हाथ की होती है। आठवे ग्रैवेयक मे भी जिनकी स्थिति २९ सागरोपम की है, उनकी भ उ शरीरावगाहना पूर्ववत् होती है। आठवे ग्रैवेयक मे जिनकी स्थिति ३० सागरोपम की है, उनकी भ उ. शरीरावगाहना २ हाथ व १/११ हाथ की होती है। नौवें ग्रैवेयक मे जिन देवो की स्थिति ३० सागरोपम की होती है, उनकी भ उ शरीरावगाहना भी पूर्ववत् होती है। नौवे ग्रैवेयक में जिन देवो की स्थिति ३१ सागरोपम की है, उनकी भवधारणीय शरीरावगाहना पूरे २ हाथ की होती है।

विजयादि चार अनुत्तर विमानवासी—जिन देवो की स्थिति ३१ सागरोपम की है, उनकी भ उ. अवगाहना २ हाथ की होती है । विजयादि चार अनुत्तरविमानवासी जिन देवो की मध्यम स्थिति ३१ सागरोपम की होती है उनकी भ उ अवगाहना १ हाथ और १/११ हाथ की होती है तथा सर्वार्थसिद्ध विमान मे देवो की स्थिति ३३ सागरोपम की होती है, उनकी अवगाहना १ हाथ की होती है ।[1]

१५३३ [१] **आहारगसरीरे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?**

गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते ।

[१५३३-१ प्र] भते ! आहारकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! वह एक ही प्रकार का कहा गया है ।

[२] **जदि एगागारे पण्णत्ते किं मणूसआहारगसरीरे अमणूसआहारगसरीरे ?**

गोयमा ! मणूसआहारगसरीरे, णो अमणूसआहारगसरीरे ।

[१५३३-२ प्र] (भगवन् !) यदि आहारकशरीर एक ही प्रकार का कहा गया है तो वह आहारकशरीर मनुष्य के होता है अथवा अमनुष्य के होता है ?

[उ.] गौतम ! मनुष्य के आहारकशरीर होता है, किन्तु मनुष्येतर के आहारकशरीर नही होता है ।

[३] **जदि मणूसआहारगसरीरे किं सम्मुच्छिममणूसआहारगसरीरे गब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे ?**

गोयमा ! णो सम्मुच्छिममणूसआहारगसरीरे गब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे ।

[१५३३-३ प्र] (भगवन !) यदि मनुष्यो के आहारकशरीर होता है तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के होता है, या गर्भज-मनुष्य के होता है ?

[उ] गौतम ! सम्मूर्च्छिम-मनुष्य के आहारकशरीर नही होता, (अपितु) गर्भज-मनुष्य के आहारकशरीर होता है ।

[४] **जदि गब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे किं कम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे अतरदीवगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे ?**

गोयमा ! कम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे, णो अकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे, णो अतरदीवगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे ।

[१५३३-४ प्र] (भगवन् !) यदि गर्भज-मनुष्य के आहारकशरीर होता है तो क्या कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य के आहारकशरीर होता है, अकर्म-भूमिक-गर्भज-मनुष्य के होता है, अथवा अन्तरद्वीपक मनुष्य के होता है ?

[१५३३-४ उ] गौतम ! कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य के आहारकशरीर होता है, किन्तु न तो अकर्म-भूमिक-गर्भज-मनुष्य के होता है और न अन्तरद्वीपक-गर्भज-मनुष्य के होता है ।

---

१. प्रज्ञापना, मलय-वृत्ति, पत्र ४२१ से ४२३ तक

[५] जदि कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे किं संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे असंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे, णो असंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे ।

[१५३३-५ प्र] (भगवन् !) यदि कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य के आहारकशरीर होता है, तो क्या संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य के होता है या असंख्यात-वर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य के होता है ?

[उ] गौतम ! संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य के आहारकशरीर होता है, किन्तु असंख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य के नहीं होता है।

[६] जदि संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे किं पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे अपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे ?

गोयमा ! पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे, णो अपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे ।

[१५३३-६ प्र] (भगवन् !) यदि संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यों के आहारक शरीर होता है, (तो) क्या पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य के होता है (अथवा) अपर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य के होता है ?

[उ] गौतम ! पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यों के आहारकशरीर होता है किन्तु अपर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यों के नहीं होता है।

[७] जदि पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे किं सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे मिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे सम्मामिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे ?

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे, णो मिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे, णो सम्मामिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे ।

[१५३३-७] (भगवन् !) यदि पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यों के आहारकशरीर होता है तो क्या सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यों के आहारकशरीर होता है, मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यों के होता है, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज मनुष्य के होता है ?

[उ] गौतम ! सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यों के आहारक-

शरीर होता है, (किन्तु) न तो मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के होता है और न ही सम्यग्मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के होता है।

[८] जदि सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे किं संजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे असंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे संजयासंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे ?

गोयमा ! संजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे, णो असंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे णो संजयासंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे।

[१५३३-८ प्र] (भगवन् !) यदि सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के आहारकशरीर होता है तो क्या सयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के होता है, या असयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्य के होता है, अथवा सयतासयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के होता है ?

[उ.] गौतम ! सयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के आहारकशरीर होता है, (किन्तु) न (तो) असयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के होता है और न ही सयतासयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज मनुष्यो के होता है।

[९] जदि संजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे किं पमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे अपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे ?

गोयमा ! पमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे, णो अपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसआहारगसरीरे।

[१५३३-९ प्र] (भगवन् !) यदि सयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के आहारकशरीर होता है तो क्या प्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के होता है, अथवा अप्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के होता है ?

[उ.] गौतम ! प्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के आहारकशरीर होता है, अप्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के नही होता है।

[१०] जदि पमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसआहारगसरीरे किं इड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूस-

आहारगसरीरे अणिड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूस-आहारगसरीरे ?

गोयमा ! इड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूस-आहारगसरीरे, णो अणिड्ढिपत्तपमत्तसजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतिय-मणूसआहारगसरीरे।

[१५३३-१० प्र] (भगवन् !) यदि प्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्म-भूमिक-गर्भज-मनुष्यो के आहारकशरीर होता है तो क्या ऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के होता है, अथवा अनृद्धिप्राप्त-प्रमत्तसयत-सम्यग्यदृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के होता है ?

[उ] गौतम ! ऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तिक-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भज-मनुष्यो के आहारशरीर होता है (किन्तु) अनृद्धिप्राप्त— प्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यात-वर्षायुष्क-गर्भज-मनुष्य के नही होता है।

विवेचन—आहारकशरीर का अधिकारी प्रस्तुत सूत्र (सू. १५३३) के दस भागो मे एकविध आहारकशरीर किसको प्राप्त होता है, किसको नही ? इसकी चर्चा की गई है।

निष्कर्ष—आहारकशरीर एक ही प्रकार का होता है और वह कर्मभूमि के गर्भज-सम्यग्दृष्टि-ऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसयमी-मनुष्य को होता है।[1]

सजत आदि शब्दों के विशेषार्थ प्रमत्त जो प्रमाद करते हैं, मोहनीयादि कर्मोदयवश तथा सज्वलनकषाय-निद्रादि मे से किसी भी प्रमाद के योग से सयमप्रवृत्तियो (योगो) मे कष्ट पाते है। वे प्राय गच्छवासी (स्थविरकल्पी) होते है, क्योकि वे कही-कही उपयोगशून्य होते है।

अप्रमत्त—इनसे विपरीत जो प्रमादरहित हो, वे प्राय जिनकल्पी, परिहारविशुद्धिक, यथालन्दकल्पिक एव प्रतिमाप्रतिपन्न साधु होते हैं। वे सदा उपयोगयुक्त रहते है।[2]

एक स्पष्टीकरण—जैनसिद्धान्तानुसार जिनकल्पी आदि लब्धि-उपजीवी नही होते। क्योकि उनका वैसा ही कल्प है। जो गच्छवासी आहारकशरीर का निर्माण करते हैं, वे उस समय लब्ध्युप-जीवी एव उत्सुकता के कारण प्रमत्त होते है। आहारकशरीर को छोडने मे भी वे प्रमत्त होते हैं। औदारिकशरीर मे आत्मप्रदेशो का सर्वात्मना (चारो ओर से) उपसहरण करने से व्याकुलता आती है। आहारकशरीर मे वह अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं। अत यद्यपि उसके बीच के काल मे थोडी देर के लिए जरा-सा विशुद्धिभाव आ जाता है। कर्मग्रन्थकार इस स्थिति को अप्रमत्तता कहते है, किन्तु वास्तव मे देखा जाए तो लब्ध्युपजीविता के कारण वे प्रमत्त हैं।[3]

इड्ढिपत्त—ऋद्धिप्राप्त—आमर्षौषधि इत्यादि ऋद्धियाँ—लब्धियाँ जिन्हे प्राप्त हो।[4]

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) ३४२-३४३

२ प्रज्ञापना, मलय. वृत्ति, पत्र ४२४-४२५

३ वही, पत्र ४२४-४२५ ४. वही, पत्र ४२४-४२५

आहारकशरीर में संस्थानद्वार

१५३४. आहारगसरीरे णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! समचउरससंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[१५३४ प्र] भगवन् ! आहारकशरीर किस संस्थान (आकार) का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) समचतुरस्रसंस्थान वाला कहा गया है।

विवेचन—आहारकशरीर का आकार—आहारकशरीर एक ही प्रकार का होता है और उसका संस्थान एक ही प्रकार का—'समचतुरस्र' कहा गया है।

आहारकशरीर में प्रमाणद्वार

१५३५ आहारगसरीरस्स ण भते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण देसूणा रयणी, उक्कोसेणं पडिपुण्णा रयणी ।

[१५३५ प्र] भगवन् ! आहारकशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

[उ गौतम ! (उसकी अवगाहना) जघन्य देशोन (कुछ कम) एक हाथ की, उत्कृष्ट पूर्ण एक हाथ को होती है।

विवेचन—आहारकशरीर की अवगाहना प्रस्तुत सूत्र मे आहारकशरीर की ऊँचाई का प्रमाण (अवगाहना) बताया गया है।

आहारकशरीर का प्रमाण—उसकी कम से कम अवगाहना, कुछ कम एक रत्नि प्रमाण (एक हाथ) बतायी गयी है। प्रारम्भ समय मे उसकी इतनी ही अवगाहना होती है, उसका कारण तथाविध प्रयत्न है। आहारकशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना पूर्ण रत्नि प्रमाण बताई गई है।[1]

तैजसशरीर में विधिद्वार

१५३६. तेयगसरीरे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते । तं जहा—एगिंदियतेयगसरीरे जाव पंचेंदियतेयगसरीरे ।

[१५३६ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार एकेन्द्रियतैजसशरीर यावत् पचेन्द्रियतैजसशरीर ।

१५३७ एगिंदियतेयगसरीरे णं भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते । त जहा—पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइयएगिंदियतेयगसरीरे ।

[१५३७ प्र.] भगवन् ! एकेन्द्रियतैजसशरीर कितने प्रकार का कहा गया है।

[उ.] गौतम ! (वह) पाच प्रकार का कहा गया है, यथा—पृथ्वीकायिक-तैजसशरीर यावत् वनस्पतिकायिक-तैजसशरीर ।

१. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४२५-४२६

१५३८ एव जहा ओरालियसरीरस्स भेदो भणियो (सु १४७७-८१) तहा तेयगस्स वि जाव चउरिंदियाणं ।

[१५३८ प्र] इस प्रकार जैसे औदारिकशरीर के भेद (सूत्र १४७७ से १४८१ तक मे) कहे हैं, उसी प्रकार तैजसशरीर के भी (भेद) चतुरिन्द्रिय तक के (कहने चाहिए ।)

१५३९. [१] पचेंदियतेयगसरीरे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते । त जहा— णेरइयतेयगसरीरे जाव देवतेयगसरीरे ।

[१५३९-१ प्र] भगवन् ! पचेद्रियतैजसशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) चार प्रकार का कहा गया है, यथा—नैरयिकतैजसशरीर यावत् देवतैजसशरीर ।

[२] णेरइयाण दुगतो भेदो भाणियव्वो जहा वेउव्वियसरीरे (सु. १५१७-२) ।

[१५३९-२] जैसे नारको के वैक्रियशरीर के (सू १५१७-२) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यहाँ नारको के तैजसशरीर के भी भेद (कहने चाहिए ।)

[३] पचेंदियतिरिक्खजोणियाण मणूसाण य जहा ओरालियसरीरे भेदो भणिओ (सु. १४८२-८७) तहा भाणियव्वो ।

[१५३९-३] जैसे (सू १४८२ से १४८७ तक मे) पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो के औदारिकशरीर के भेदो का कथन किया है, उसी प्रकार (यहाँ भी पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो के तैजसशरीर के भेदो का) कथन करना चाहिए ।

[४] देवाण जहा वेउव्वियसरीरे भेओ भणिओ (सु १५२०) तहा (तेयगस्स वि) भाणियव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धदेवे त्ति ।

[१५३९-४] जैसे (चारो प्रकार के) देवो के (सू १५२० मे) वैक्रियशरीर के भेद कहे गए है, वैसे ही (यहाँ भी) यावत् सर्वार्थसिद्ध देवो (तक) के (तैजसशरीर के भेदो) का कथन करना चाहिए ।

विवेचन—तैजसशरीर के भेद-प्रभेदो का निरूपण—प्रस्तुत ४ सूत्रो (१५३६ से १५३९ तक मे समस्त ससारी जीवो के तैजसशरीर के भेद-प्रभेदो का निरूपण किया गया है ।

फलितार्थ—तैजसशरीर एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के समस्त जीवो के अवश्यमेव होता है । इसलिए जीवो के जितने भेद है, उतने ही तैजसशरीर के भेद है । यथा एक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियगत औदारिक शरीर तक के जितने भेद कहे गए हैं, उतने ही भेद इनके तैजसशरीर के कहने चाहिए । पचेन्द्रिय तैजसशरीर के नारक आदि चार भेद बताए है । उनमे से नारको के वैक्रियशरीर के पर्याप्तक-अपर्याप्तक ये दो भेद कहे गए है, वैसे ही इनके तैजसशरीर के भी दो भेद कहने चाहिए । तिर्यञ्चपचेन्द्रियो और मनुष्यो के औदारिकशरीर के जितने भेद कहे है, उतने ही उनके तैजसशरीर के भेद कहने चाहिए । चारो प्रकार के देवो के (सर्वार्थसिद्ध तक के) वैक्रियशरीर के जितने भेद कहे

हैं, उतने ही इनके तैजसशरीरगत भेद कहने चाहिए ।[1]

तैजसशरीर में संस्थानद्वार

१५४० तेयगसरीरे णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[१५४० प्र] भगवन् ! तैजसशरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) नाना संस्थान वाला कहा गया है ।

१५४१. एगिंदियतेयगसरीरे णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[१५४१ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रियतैजसशरीर किस संस्थान का होता है ?

[उ] गौतम ! (वह) नाना प्रकार के संस्थान वाला होता है ।

१५४२. पुढविक्काइयएगिंदियतेयगसरीरे णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! मसूरचंदसंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

[१५४२ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रियतैजसशरीर किस संस्थान वाला कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) मसूरचन्द्र (मसूर की दाल) के आकार का कहा गया है ।

१५४३. एवं ओरालियसंठाणाणुसारेण भाणियव्वं (सु. १४९०-९६) जाव चउरिंदियाण त्ति ।

[१५४३] इसी प्रकार (अन्य एकेन्द्रियों से लेकर) यावत् चतुरिन्द्रियों के तैजसशरीर-संस्थान का कथन (सू. १४९० से १४९६ तक में उक्त) इनके औदारिकशरीर-संस्थानों के अनुसार करना चाहिए ।

१५४४. [१] णेरइयाणं भंते ! तेयगसरीरे किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! जहा वेउव्वियसरीरे (सु. १५२३) ।

[१५४४-१ प्र] भगवन् ! नैरयिकों का तैजसशरीर किस संस्थान का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! जैसे (सू. १५२३ में) (इनके) वैक्रियशरीर (के संस्थान) का (कथन किया है) (उसी प्रकार इनके तैजसशरीर के संस्थान का कथन करना चाहिए ।)

[२] पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं मणूसाण य जहा एतेसिं चेव ओरालिय त्ति (सु. १५२४-२५) ।

[१५४४-२] पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों के तैजसशरीर के संस्थान का कथन उसी प्रकार करना चाहिए, जिस प्रकार (सू. १५२४-१५२५ में) इनके औदारिकशरीरगत संस्थानों का कथन किया गया है ।

---

१ (क) पण्णवणासुत्त (प्रस्तावनादि) भा. २, पृ. ११८

(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४२७

[३] देवाणं भंते ! तेयगसरीरे किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! जहा वेउव्वियस्स (सु. १५२६) जाव अणुत्तरोववाइय त्ति ।

[१५४४-३ प्र] भगवन् ! देवो के तैजसशरीर का सस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! जैसे (सू १५२६ मे असुरकुमार से लेकर) यावत् अनुत्तरौपपातिक देवो के वैक्रियशरीर के सस्थान का कथन किया है, उसी प्रकार इनके तैजसशरीर के सस्थान का कथन करना चाहिए ।

विवेचन – एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के तैजसशरीर का सस्थान – एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के तैजसशरीरो के सस्थान की चर्चा प्रस्तुत ५ सूत्रो (१५४० से १५४४ तक) मे की गई है ।

तैजसशरीर का सस्थान औदारिक-वैक्रियशरीरानुसारी क्यो ? – तैजसशरीर जीव के प्रदेशो के अनुसार होता है । अतएव जिस भव मे जिस जीव के औदारिक अथवा वैक्रिय शरीर के अनुसार आत्मप्रदेशो का जैसा आकार होता है, वैसा ही उन जीवो के तैजसशरीर का आकार होता है ।[1]

तैजसशरीर में प्रमाणद्वार

१५४५ जीवस्स ण भंते ! मारणंतियसमुग्घाएण समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ-बाहल्लेण, आयामेण जहण्णेण अगुलस्स असखेज्जइभागो, उक्कोसेण लोगताओ लोगतो ।

[१५४५ प्र] भगवन् ! मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत (समुद्घात किये हुए) जीव के तैजसशरीर की अवगाहना कितनी होती है ?

[उ.] गौतम ! विष्कम्भ, अर्थात्—उदर आदि के विस्तार और बाहल्य, अर्थात्- छाती और पृष्ठ की मोटाई के अनुसार शरीरप्रमाणमात्र ही अवगाहना होती है । लम्बाई की अपेक्षा तैजसशरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की होती है और उत्कृष्ट अवगाहना लोकान्त से लोकान्त तक होती है ।

१५४६. एगिंदियस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएण समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! एव चेव, जाव पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइकाइयस्स ।

[१५४६ प्र] भगवन् ! मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत एकेन्द्रिय के तैजसशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

[उ] गौतम ! इसी प्रकार (समुच्चय जीव के समान मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत एकेन्द्रिय के तैजसशरीर की अवगाहना भी) विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीरप्रमाण और

---

१ प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्र ४२७

लम्बाई की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना) पृथ्वी-अप्-तेजो-वायु-वनस्पतिकायिक तक पूर्ववत् समझनी चाहिए।

१५४७ [१] बेइंदियस्स ण भंते ! मारणंतियसमुग्घाएण समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खभ-बाहल्लेण, आयामेण जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभाग, उक्कोसेण तिरियलोगाओ लोगतो ।

[१५४७-१ प्र] भगवन् ! मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत द्वीन्द्रिय के तैजसशरीर की अवगाहना कितनी बडी कही गई है ?

[उ] गौतम ! विष्कम्भ अर्थात् उदर आदि विस्तार एव बाहल्य, अर्थात्—वक्षस्थल एव पृष्ठ (पीठ) की मोटाई की अपेक्षा से शरीरप्रमाणमात्र होनी है। तथा लम्बाई की अपेक्षा से जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट तियक् (मध्य) लोक से (ऊर्ध्वलोकान्त या अधो-) लोकान्त तक अवगाहना समझनी चाहिए।

[२] एवं जाव चउरिंदियस्स ।

[१५४७-२] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय तक के (जीवो के तैजसशरीर की अवगाहना समझ लेना चाहिए।)

१५४८. णेरइयस्स ण भंते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ-बाहल्लेण, आयामेण जहण्णेण सातिरेग जोयणसहस्स, उक्कोसेण अहे जाव अहेसत्तमा पुढवी, तिरिय जाव सयभुरमणे समुद्दे, उड्ढ जाव पडगवणे पुक्खरिणीओ ।

[१५४८ प्र] भगवन् ! मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत नारक के तैजसशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

[उ] गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीरप्रमाणमात्र तथा आयाम (लम्बाई) की अपेक्षा से जघन्य सातिरेक (कुछ अधिक) एक हजार योजन की और उत्कृष्ट नीचे की ओर अध.सप्तमनरकपृथ्वी तक, तिरछी यावत् स्वयम्भूरमणसमुद्र तक और ऊपर पण्डकवन मे स्थित पुष्करिणी तक (की अवगाहना होती है।)

१५४९. पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स ण भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहा बेइंदियसरीरस्स (सु. १५४७ [१]) ।

[१५४९ प्र] भगवन् ! मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च के तैजसशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

[उ] गौतम ! जैसे (सू १५४७-१ मे) द्वीन्द्रिय (के तैजसशरीर) की अवगाहना कही है, उसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक की अवगाहना समझनी चाहिए ।)

१५५०. मणूसस्स ण भंते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! समयखेत्ताओ लोगतो ।

[१५५० प्र] भगवन् ! मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत मनुष्य के तेजसशरीर की अवगाहना कितनी बडी कही गई है ?

[उ] गौतम ! (मनुष्य के तैजसशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना) समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र) से लोकान्त (ऊर्ध्वलोक या अधोलोक के अन्त) तक (की होती है ।)

१५५१ [१] असुरकुमारस्स णं भते ! मारणंतियसमुग्घाएण समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खभ-बाहल्लेण, आयामेण जहण्णेणं अगुलस्स असखेज्जइभाग उक्कोसेण अहे जाव तच्चाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमते, तिरिय जाव सयभुरमणसमुद्दस्स बाहिरिल्ले वेइयते, उड्ढ जाव इसीपब्भारा पुढवी ।

[१५५१-१ प्र] भगवन् ! मारणान्तिकसमुदघात से समवहत असुरकुमार के तेजसशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

[उ] गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीरप्रमाणमात्र (शरीर के बराबर) तथा आयाम की अपेक्षा से जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट नीचे की ओर तीसरी (नरक) पृथ्वी के अधस्तनचरमान्त तक, तिरछी स्वयम्भूरमणसमुद्र की बाहरी वेदिका तक एव ऊपर ईषत्प्राग्भारपृथ्वी तक (असुरकुमार के तैजसशरीर की अवगाहना होती है ।)

[२] एव जाव थणियकुमारतेयगसरीरस्स ।

[१५५१-२] इसी प्रकार (असुरकुमार के तैजसशरीर की अवगाहना के समान) नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक की (तैजसशरीरीय अवगाहना समझ लेनी चाहिए ।)

[३] वाणमतर-जोइसिया सोहम्मीसाणगा य एवं चेव ।

[१५५१-४] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एव सौधर्म ईशान (कल्प के देवो की तैजसशरीरीय अवगाहना भी इसी प्रकार (असुरकुमार के समान) समझनी चाहिए ।

[४] सणकुमारदेवस्स ण भते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खभ-बाहल्लेण, आयामेण जहण्णेणं अगुलस्स असखेज्जइभाग, उक्कोसेण अहे जाव महापातालाणं दोच्चे तिभागे, तिरिय जाव सयंभुरमणसमुद्दे, उड्ढ जाव अच्चुओ कप्पो ।

[१५५१-४ प्र.] भगवन् ! मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत सनत्कुमार-देव तैजसशरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

[उ.] गौतम ! विष्कम्भ एवं बाहल्य की अपेक्षा से शरीर-प्रमाणमात्र (होती है) और आयाम की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की तथा उत्कृष्ट नीचे महापाताल (कलश) के द्वितीय त्रिभाग तक की, तिरछी स्वयम्भूरणसमुद्र तक की और ऊपर अच्युतकल्प तक की (इसकी तैजसशरीरावगाहना होती है।)

[५] एवं जाव सहस्सारदेवस्स ।

[१५५१-५] इसी प्रकार (सनत्कुमारदेव की तैजसशरीरीय अवगाहना के समान) (माहेन्द्र-कल्प से लेकर) सहस्रारकल्प के देवों तक की (तैजसशरीरावगाहना समझ लेना चाहिए।)

[६] आणयदेवस्स ण भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ-बाहल्लेणं; आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव अहेलोइयगामा, तिरियं जाव मणूसखेत्ते, उड्ढं जाव अच्चुओ कप्पो ।

[१५५१-६ प्र.] भगवन् ! मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत आनत (कल्प के) देव के तैजस-शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

[उ.] गौतम ! (इसकी तैजसशरीरावगाहना) विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीर के प्रमाण के बराबर होती है और आयाम की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट—नीचे की ओर अधोलौकिकग्राम तक की, तिरछी मनुष्यक्षेत्र तक की और ऊपर अच्युतकल्प तक की (होती है।)

[७] एवं जाव आरणदेवस्स ।

[१५५१-७] इसी प्रकार (आनतदेव की तैजसशरीरावगाहना के समान) प्राणत और आरण तक की (तैजसशरीरावगाहना समझ लेनी चाहिए।)

[८] अच्चुयदेवस्स वि एवं चेव । णवरं उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं ।

[१५५१-८] अच्युतदेव की (तैजसशरीरावगाहना) भी इन्हीं के समान होती है। विशेष इतना है कि ऊपर (उत्कृष्ट तैजसशरीरावगाहना) अपने-अपने विमानों तक की होती है।

[९] गेवेज्जगदेवस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ-बाहल्लेणं; आयामेणं जहण्णेणं विज्जाहरसेढीओ, उक्कोसेणं जाव अहेलोइयगामा, तिरियं जाव मणूसखेत्ते, उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं ।

[१५५१-९ प्र.] भगवन् ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत ग्रैवेयकदेव के तैजसशरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

[उ.] गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीरप्रमाणमात्र होती है तथा

आयाम की अपेक्षा से जघन्य विद्याधरश्रेणियो तक की और उत्कृष्ट नीचे की ओर अधोलौकिकग्राम तक की, तिरछी मनुष्यक्षेत्र तक की और ऊपर अपने विमानो तक की (होती है ।)

[१०] **अणुत्तरोववाइयस्स वि एवं चेव ।**

[१५५१-१०] अनुत्तरौपपातिकदेव की तैजसशरीरावगाहना भी इसी प्रकार (ग्रैवेयकदेव की तैजसशरीरावगाहना के समान) समझनी चाहिए ।

विवेचन—सभी जीवों की तैजसशरीरावगाहना—प्रस्तुत ७ सूत्रो (सू १५४५ से १५५१ तक) मे विभिन्न सासारिक जीवो के तैजसशरीर की अवगाहना जब वह मारणान्तिकसमुद्घात किया हुआ हो, उस समय की अपेक्षा से प्रतिपादित की गई है ।

मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत जीव की तैजसशरीरावगाहना की तालिका इस प्रकार है—

तैजसशरीरी जीव के नाम	विष्कम्भ-बाहल्य की अपेक्षा से	आयाम की अपेक्षा से जघन्य-उत्कृष्ट
१ समुच्चय जीवो की तै श अ	शरीरप्रमाणमात्र	ज —अगुल के असख्यातवे भाग की, उ लोकान्त से लोकान्त तक
२ एकेन्द्रियो की तै श अ	,,	,, ,, ,, ,,
३ विकलेन्द्रिय की तै श अ	,,	,, उ —तिर्यक्लोकान्त तक
४ नारकों की ,, ,, ,,	,,	ज —सातिरेक सहस्रयोजन की उ —अध सप्तमनरक तक, तिर्यक्-स्वयभूरमण समुद्र तक और ऊपर पडकवन की पुष्करिणी तक की
५ तिर्यञ्चपचेन्द्रियो की	,,	ज —अगुल के अस, भाग, उ तिर्यक्लोकान्त तक
६ मनुष्यो की तै श अ	,,	ज ,, ,, उ —मनुष्यक्षेत्र तक
७ भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म, ईशान देव	,, ,,	ज ,, ,, उ नीचे तीसरी नरक के अधस्तनचरमान्त तक, तिरछी स्वयभूरमण तक, ऊपर ईषत्प्राग्भारा पृथिवी तक
८ सनत्कुमार से सहस्रार देव तक	,,	ज.—अगुल के अस भाग, उ —नीचे अधोलौकिकग्राम तक, तिरछी स्वयम्भूरमण तक, ऊपर अच्युतकल्प तक
९ आनत-प्राणत-आरण देव की	,,	ज —अगुल के अस भाग, उ नीचे अधोलौकिकग्राम तक, तिरछी मनुष्यक्षेत्र तक, ऊपर अच्युतकल्प तक
१० अच्युतदेव की	,,	,, ऊपर स्वकीयविमान तक
११ ग्रैवेयक एव अनुत्तर विमान देव की	,,	ज —विद्याधरश्रेणी तक, उत्कृष्ट नीचे अधोलौकिकग्राम तक, तिरछी मनुष्यक्षेत्र तक, ऊपर स्वविमान तक ।[१]

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ३४५-३४६

लोगंताओ लोगंतो—लोकान्त से लोकान्त तक, अर्थात्—अधोलोक के चरमान्त से ऊर्ध्वलोक के चरमान्त तक, अथवा ऊर्ध्वलोक के चरमान्त से अधोलोक के चरमान्त तक। यह तैजसशरीरीय उत्कृष्ट अवगाहना सूक्ष्म या बादर एकेन्द्रिय के तैजसशरीर की अपेक्षा से समझना चाहिए। क्योंकि सूक्ष्म और बादर एकेन्द्रिय ही यथायोग्य समस्त लोक मे रहते हैं। अन्य जीव नही। इसलिए एकेन्द्रिय के सिवाय अन्य किसी जीव की इतनी अवगाहना नही हो सकती। प्रस्तुत मे तैजसशरीरीय अवगाहना मृत्यु के समय जीव को मरकर जिस गति या योनि मे जाना होता है, वहाँ तक की लक्ष्य मे रख कर बताई गई है। अतएव जब कोई एकेन्द्रिय जीव (सूक्ष्म या बादर) मृत्यु के समय अधोलोक के अन्तिम छोर मे स्थित हो और ऊर्ध्वलोक के अन्तिम छोर मे उत्पन्न होने वाला हो, अथवा वह मरणसमय मे ऊर्ध्वलोक के अन्तिम छोर मे स्थित हो और अधोलोक के अन्तिम छोर मे उत्पन्न होने वाला हो और जब वह मारणान्तिक समुद्घात करता है, तब उसकी उत्कृष्ट अवगाहना लोकान्त से लोकान्त तक होती है।

तिरियलोगाओलोगंतो—तिर्यक्लोक से लोकान्त तक अर्थात्—तिर्यग्लोक से अधोलोकान्त तक अथवा ऊर्ध्वलोकान्त तक। आशय यह है कि जब तिर्यग्लोक मे स्थित कोई द्वीन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोकान्त या अधोलोकान्त मे एकेन्द्रिय के रूप मे उत्पन्न होने वाला हो और मारणान्तिकसमुद्घात करे, उस समय तैजसशरीर की पूर्वोक्त अवगाहना होती है।

उड्ढ जाव पंडगवणे पुक्खरिणीओ—ऊपर—उ अवगाहना पण्डकवन मे स्थित पुष्करिणी तक की होती है। इसका आशय यह है कि सातवी नरकपृथ्वी से लेकर तिरछी स्वयम्भूरमणसमुद्र-पर्यन्त और ऊपर पण्डकवन पुष्करिणी तक की अवगाहना तभी पाई जाती है जब सातवी नरक का नारक स्वयम्भूरमणसमुद्र के पर्यन्त-भाग मे मत्स्यरूप मे या पण्डकवन की पुष्करणियो मे उत्पन्न होता है। तब उस सप्तमपृथ्वी के नारक की तैजसशरीरीय अवगाहना इतनी होती है।

जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं—द्वीन्द्रिय के तैजसशरीर की अवगाहना आयाम की अपेक्षा से जघन्यत· अगुल के असख्यातवे भाग की बताई गई है। इतनी अवगाहना द्वीन्द्रिय की तभी होती है, जब अगुल के असख्यातवे भाग वाला अपर्याप्त औदारिकशरीरी द्वीन्द्रिय अपने निकटवर्ती प्रदेश मे एकेन्द्रिय रूप मे उत्पन्न होता है अथवा जिस शरीर मे स्थित होकर मरणान्तिकसमुद्घात करता है, उस शरीर से मरणान्तिकसमुद्घातवश बाहर निकले हुए तैजसशरीर के आयाम-विष्कम्भ एव विस्तार की अपेक्षा से अवगाहना का विचार किया जाता है, उस शरीरसहित का नही, अन्यथा भवनपति आदि का जो जघन्यत. आयाम अगुल का असख्यातवे भाग का कहा गया है उससे विरोध आएगा। क्योकि भवनपति आदि का शरीर सात आदि हस्तप्रमाण है। अत. यही उचित तथ्य है कि महाकाय द्वीन्द्रिय जीव भी जब अपने निकटवर्ती प्रदेश मे एकेन्द्रिय रूप मे उत्पन्न होता है, तब भी अगुल के असख्यातवे भागप्रमाण उसकी तैजसशरीरावगाहना होगी, ऐसा समझना चाहिए।

सातिरेगं जोयणसहस्सं—नारक के तैजसशरीर की अवगाहना आयाम की दृष्टि से जघन्य सातिरेक सहस्रयोजन की कही गई है। वह इस प्रकार समझनी चाहिए -वलयामुख आदि चार पातालकलश लाख योजन के अवगाह वाले है। उनकी ठीकरी एक हजार योजन मोटी है। उन पातालकलशो के नीचे का त्रिभाग वायु से परिपूर्ण है, ऊपर का त्रिभाग जल से परिपूर्ण है तथा मध्य का त्रिभाग वायु तथा जल के अनुसरण और नि·स्सरण का मार्ग है। जब कोई सीमन्तक आदि

नरकेन्द्रको में विद्यमान पातालकलश का निकटवर्ती नारक अपनी आयु का क्षय होने से मर कर पातालकलश की एक हजार योजन मोटी दीवार का भेदन करके पातालकलश के भीतर दूसरे या तीसरे त्रिभाग मे मत्स्यरूप मे उत्पन्न होता है, तब मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत उस नारक की जघन्य तैजसशरीरावगाहना एक हजार योजन से कुछ अधिक होती है।

समयखेत्ताओ लोगंतो—मनुष्य के तैजसशरीर की अवगाहना उत्कृष्टत. समयक्षेत्र से लोकान्त तक की कही है, अर्थात्—मनुष्य की तैजसशरीरावगाहना मनुष्यक्षेत्र से अधोलोक के चरमान्त तक या ऊर्ध्वलोक के चरमान्त तक समझनी चाहिए, क्योकि मनुष्य का भी एकेन्द्रिय मे उत्पन्न होना सम्भव है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य का जन्म या सहरण समयक्षेत्र से अन्यत्र सम्भव नही है। अत इससे अधिक उसको तैजसशरीरावगाहना नही हो सकती। इसे समयक्षेत्र इसलिए कहते हैं कि यह ढाईद्वीपप्रमाणक्षेत्र ही ऐसा है, जहाँ सूर्य आदि के सचार के कारण समय (काल) का व्यक्त व्यवहार होने से समयप्रधान क्षेत्र है।[1]

वाणव्यन्तर से सौधर्म ईशान तक के देवों की तैजसशरीरावगाहना—लम्बाई की अपेक्षा से जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट नीचे तृतीय नरकपृथ्वी के अधस्तनचरमान्त तक की, तिरछी, स्वयम्भूरमणसमुद्र के बाह्य वेदिकान्त तक की और ऊपर ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक की कही गई है। इसका तात्पर्य यह है कि असुरकुमार आदि सभी भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क तथा सौधर्म-ईशानदेव एकेन्द्रियो मे भी उत्पन्न होते हैं। जब वे च्यवन के समय अपने केयूर आदि आभूषणो मे, कुण्डल आदि मे या पद्मराग आदि मणियो मे लुब्ध— मूर्च्छित होकर, उसी के अध्यवसाय मे मग्न होकर अपने शरीर के उन्ही निकटवर्ती आभूषणो मे पृथ्वीकायिक के रूप मे उत्पन्न होते है, तब उन देवो के तैजसशरीर को अवगाहना अगुल के असख्यातव भाग की होती है।

जब कोई भवनपति आदि देव प्रयोजनवश तृतीय नरकपृथ्वी के अधस्तन (नीचले) चरमान्त (अन्तिम छोर) प्रदेश मे जाता है और आयु का क्षय होने से वही मर जाता है, तब तिरछे स्वयम्भूरमणसमुद्र के बाह्य वेदिकान्त मे अथवा ईषत्प्राग्भारापृथ्वी के पर्यन्तभाग मे पृथ्वीकायिक रूप मे उत्पन्न होता है। उस समय उसकी तैजसशरीरावगाहना नीचे तृतीय नरकपृथ्वी के चरमान्त तक, मध्य मे स्वयम्भूरमण के बाह्य वेदिकान्त तक और ऊपर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी के पर्यन्त भाग तक की होती है।[2]

सनत्कुमारादि देवो की तैजसशरीरावगाहना सनत्कुमार आदि देव अपने भवस्वभाववश एकेन्द्रियो मे या विकलेन्द्रियो मे उत्पन्न नही होते। वे पचेन्द्रियतिर्यञ्चो अथवा मनुष्यो मे ही उत्पन्न होते हैं। अतएव मन्दरपर्वत की पुष्करिणी आदि में जलावगाहन करते समय आयु का क्षय होने पर उसी स्थान मे निकटवर्ती प्रदेश मे मत्स्यरूप मे उत्पन्न हो जाते है, तब उनके तैजसशरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातव भाग की होती है। यदि कोई सनत्कुमारादि देव दूसरे देव के निश्राय से अच्युतकल्प मे चला जाए और वही उसकी आयु का क्षय हो जाए तो वह काल करके तिरछे—स्वयम्भूरमणसमुद्र के पर्यन्तभाग मे अथवा नीचे पातालकलश के दूसरे त्रिभाग मे,

---

१. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४२७ से ४२९ तक

२ वही, पत्र ४२९

मत्स्य आदि के रूप मे जन्म ले लेता है, तब उसकी ऊपर, नीचे और तिरछे, पूर्वोक्त तैजसशरीरावगाहना होती है, ऐसा समझना चाहिए।[1]

अच्युतदेवों की ऊर्ध्व तैजसशरीरावगाहना - अच्युतदेव ऊपर मे अच्युतविमान तक ही रहता है। इसलिए उसकी तैजसशरीरावगाहना की प्ररूपणा करते समय ऊपर मे अच्युतकल्प तक नही कहना चाहिए। यह देव अच्युतकल्प मे रहता अवश्य है, किन्तु कदाचित् अपने विमान की ऊँचाई तक जाता है और वही आयुष्यक्षय हो जाता है तो च्यव कर अच्युतविमान के पर्यन्त में उत्पन्न होता है। तब उसकी इतनी तैजसशरीरावगाहना होती है।[2]

कार्मणशरीर में विधि-संस्थान-प्रमाणद्वार

१५५२. कम्मगसरीरे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—एगिंदियकम्मगसरीरे जाव पंचेंदिय०। एवं जहेव तेयगसरीरस्स भेदो सठाणं ओगाहणा य भणिया (सु. १५३६–५१) तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव अणुत्तरोववाइय त्ति।

[१५५२-प्र] भगवन् ! कार्मणशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (वह) पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—एकेन्द्रियकार्मण-शरीर यावत् पचेन्द्रिय कार्मण-शरीर। इस प्रकार जैसे तैजस-शरीर के भेद, सस्थान और अवगाहना का निरूपण (सू १५३६ से १५५१ तक मे) किया गया है, उसी प्रकार से सम्पूर्ण कथन (एकेन्द्रिय-कार्मणशरीर से लेकर) अनुत्तरौपपातिक (देवपचेन्द्रिय कार्मणशरीर) तक करना चाहिए।

विवेचन कार्मणशरीर : तैजसशरीर का सहचर— जहाँ तैजसशरीर होगा, वहाँ कार्मणशरीर अवश्य होगा और जहाँ कार्मणशरीर होगा, वहाँ तैजसशरीर अवश्य होगा। दोनो का अविनाभावी सम्बन्ध है। तैजस-कार्मण दोनो की अवगाहना का विचार विशेषत. मारणान्तिकसमुद्घात को लक्ष्य मे लेकर किया गया है। कार्मणशरीर भी तैजसशरीर की तरह जीवप्रदेशो के अनुसार सस्थानवाला है। इसलिए जैसे तैजसशरीर के प्रकार, सस्थान और अवगाहना के विषय मे कहा गया है, वैसे ही कार्मणशरीर के प्रकार, सस्थान एव अवगाहना के विषय मे कथन का निर्देश किया गया है।[3]

पुद्गल-चयन-द्वार

१५५३. ओरालियसरीरस्स णं भंते ! कतिदिसिं पोग्गला चिज्जंति ?

गोयमा ! णिव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघातं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पचदिसिं।

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्राक ४३०

२. वही, पत्र ४३०

३. (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र १३०

(ख) पण्णवणासुत्त (प्रस्तावनादि) भा. २, पृ. ११८

[१५५३ प्र.] भगवन् ! औदारिकशरीर के लिए कितनी दिशाओं से (आकर) पुद्गलों का चय होता है ?

[उ.] गौतम ! निर्व्याघात की अपेक्षा से छह दिशाओं से, व्याघात की अपेक्षा से कदाचित् तीन दिशाओं से, कदाचित् चार दिशाओं से और कदाचित् पांच दिशाओं से (पुद्गलों का चय होता है।)

१५५४ वेउव्वियसरीरस्स णं भंते ! कतिदिसिं पोग्गला चिज्जंति ?

गोयमा ! णियमा छद्दिसिं।

[१५५४ प्र.] भगवन् ! वैक्रियशरीर के लिए कितनी दिशाओं से पुद्गलों का चय होता है ?

[उ.] गौतम ! नियम से छह दिशाओं से (पुद्गलों का चय होता है।)

१५५५ एवं आहारगसरीरस्स वि।

[१५५५] इसी प्रकार (वैक्रियशरीर के समान) आहारकशरीर के पुद्गलों का चय भी नियम से छह दिशाओं से होता है।

१५५६ तेया-कम्मगाणं जहा ओरालियसरीरस्स (सु. १५५३)।

[१५५६] तैजस और कार्मण (शरीर के पुद्गलों का चय) [सू. १५५३ में उक्त] औदारिक-शरीर के (पुद्गलों के चय के) समान (समझना चाहिये।)

१५५७. ओरालियसरीरस्स णं भंते ! कतिदिसिं पोग्गला उवचिज्जंति ?

गोयमा ! एवं चेव, जाव कम्मगसरीरस्स।

[१५५७ प्र.] भगवन् ! औदारिकशरीर के पुद्गलों का उपचय कितनी दिशाओं से होता है ?

[उ.] गौतम ! (जैसे चय के विषय में कहा है,) इसी प्रकार (उपचय के विषय में भी औदारिकशरीर से लेकर) कार्मणशरीर (तक कहना चाहिए।)

१५५८. एवं उवचिज्जंति (?) अवचिज्जंति।

[१५५८] (औदारिक आदि पांचों शरीरों के पुद्गलों का जिस प्रकार) उपचय होता है, उसी प्रकार (उनका) अपचय भी होता है।

विवेचन— पांचों शरीरों के पुद्गलों के चय, उपचय-अपचय-सम्बन्धी विचारणा—प्रस्तुत चतुर्थ द्वार में ६ सूत्रों (१५५३ से १५५८ तक) में औदारिक आदि पांचों शरीरों के पुद्गलों के चय, उपचय एवं अपचय से सम्बन्धित विचारणा की गई है।

चय, उपचय और अपचय की परिभाषा—चय का अर्थ है—पुद्गलों का संचित होना—समुदित या एकत्रित होना। उपचय का अर्थ है—प्रभूतरूप से चय होना, बढ़ना, वृद्धिगत होना। अपचय का अर्थ है—पुद्गलों का ह्रास होना, घट जाना या हट जाना।

औदारिक, तैजस और कार्मण शरीरो के निर्माण, वृद्धि और ह्रास के लिए पुद्गलो का स्वय चय और उपचय किसी प्रकार का व्याघात (रुकावट या बाधा) न हो तो छहो दिशाओ (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधोदिशा) से आकर होता है और पुद्गल स्वय अपचित होते हैं। आशय यह है कि त्रसनाडी के अन्दर या बाहर स्थित औदारिक, तैजस एव कार्मण शरीर के धारक जीव जब एक भी दिशा अलोक, से व्याहत (रुकी हुई) नही होती तब नियम से छहो दिशाओ से पुद्गलो का आगमन या निर्गमन होता है। वैक्रियशरीर और आहारकशरीर त्रसनाडी मे ही सम्भव होते है, अन्यत्र नही। वहाँ किसी प्रकार का अलोक का व्याघात नही होता, इस कारण उनके लिए पुद्गलो का चय-उपचय नियम से छहो दिशाओ से होता है।[1]

किन्तु औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर के पुद्गलो के आगमन मे व्याघात हो, अर्थात् अलोक आ जाने से प्रतिस्खलन या रुकावट हो तो कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाच दिशाओ से उनके पुद्गलो का चय, उपचय होता है। तात्पर्य यह है कि यदि एक दिशा मे अलोक आ जाए तो पाच दिशाओ से, दो दिशाओं मे अलोक आ जाए तो चार दिशाओ से और यदि तीन दिशाओ मे अलोक आ जाए तो तीन दिशाओ से पुद्गलो का चय-उपचय होता है। उदाहरणार्थ- कोई औदारिकशरीरधारी सूक्ष्मजीव हो और वह लोक के सर्वोच्च (सर्वोर्ध्व) प्रतर मे आग्नेयकोणरूप लोकान्त मे स्थित हो, जिसके ऊपर (लोकाकाश न हो, पूर्व तथा दक्षिण दिशा मे भी लोक न हो, वह जीव अधोदिशा, पश्चिम और उत्तर दिशा, इन तीन दिशाओ से ही पुद्गलो का चय, उपचय करेगा क्योकि शेष तीन दिशाए अलोक से व्याप्त होती हैं। जब वही औदारिकशरीरी सूक्ष्म जीव पश्चिमदिशा मे रहा हुआ हो, तब उसके लिए पूर्वदिशा अधिक हो जाती है, इस कारण चार दिशाओ से पुद्गलो का आगमन होगा। जब वह जीव अधोदिशा मे द्वितीय आदि किसी प्रतर मे रहा हुआ हो और पश्चिमदिशा का अवलम्बन लेकर स्थित हो, तब वहाँ ऊर्ध्वदिशा भी अधिक लब्ध हो तो केवल दक्षिणदिशा ही अलोक से व्याहत (रुकी हुई) होती है, इस कारण पाचो दिशाओ से वहा पुद्गलो का आगमन (चय) होता है।

तैजस-कार्मणशरीर तो समस्त ससारी जीवो के होते है, इसलिए औदारिकशरीर की तरह उनका भी चय-उपचय समझना चाहिए।

जिस प्रकार चय का कथन किया है, उसी प्रकार उपचय और अपचय का कथन करना चाहिए।[2]

शरीरसंयोगद्वार

१५५९ जस्स णं भंते ! ओरालियसरीर तस्स ण वेउव्वियसरीर ? जस्स वेउव्वियसरीर तस्स ओरालियसरीर ?

गोयमा ! जस्स ओरालियसरीरं तस्स वेउव्वियसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि, जस्स वेउव्विय-सरीरं तस्स ओरालियसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि।

---

१ (क) प्रज्ञापना, मलयवृत्ति, पत्र ४३२
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ४, पृ ८०९

२ (क) प्रज्ञापना, मलयवृत्ति, पत्र ४३२
(ख) पण्णवणासुत्त, (प्रस्तावनादि) भा २, पृ ११८
(ग) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ४, पृ ८०५-८०६

[१५५९ प्र.] भगवन् ! जिस जीव के औदारिकशरीर होता है, क्या उसके वैक्रियशरीर (भी) होता है ? (और) जिसके वैक्रियशरीर होता है, क्या उसके औदारिकशरीर (भी) होता है ?

[उ.] गौतम ! जिसके औदारिकशरीर होता है, उसके वैक्रियशरीर कदाचित् होता है, कदाचित् नही होता है (और) जिसके वैक्रियशरीर होता है, उसके औदारिकशरीर कदाचित् होता है, (तथा) कदाचित् नही होता है ।

१५६०. जस्स ण भंते ! ओरालियसरीरं तस्स आहारगसरीरं ? जस्स आहारगसरीरं तस्स ओरालियसरीरं ?

गोयमा ! जस्स ओरालियसरीर तस्स आहारगसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि, जस्स पुण आहारगसरीरं तस्स ओरालियसरीर णियमा अत्थि ।

[१५६० प्र.] भगवन् ! जिसके औदारिकशरीर होता है, क्या उसके आहारकशरीर होता है ? तथा जिसके आहारकशरीर होता है उसके क्या औदारिकशरीर होता है ?

[उ.] गौतम ! जिसके औदारिकशरीर होता है, उसके आहारकशरीर कदाचित् होता है, कदाचित् नही भी होता है । किन्तु जिस जीव के आहारकशरीर होता है, उसके नियम से औदारिक-शरीर होता है ।

१५६१. जस्स णं भंते ! ओरालियसरीर तस्स तेयगसरीरं ? जस्स तेयगसरीरं तस्स ओरालिय-सरीर ?

गोयमा ! जस्स ओरालियसरीर तस्स तेयगसरीर णियमा अत्थि, जस्स पुण तेयगसरीर तस्स ओरालियसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि ।

[१५६१ प्र.] भगवन् ! जिसके औदारिकशरीर होता है, क्या उसके तैजसशरीर होता है ? तथा जिसके तैजसशरीर होता है, क्या उसके औदारिकशरीर होता है ?

[उ.] गौतम ! जिसके औदारिकशरीर होता है, उसके नियम से तैजसशरीर होता है, और जिसके तैजसशरीर होता है, उसके औदारिकशरीर कदाचित् होता है, कदाचित् नही (भी) होता है ।

१५६२. एवं कम्मगसरीर वि ।

[१५६२] (औदारिकशरीर के साथ तैजसशरीर के सयोग के समान, औदारिकशरीर के साथ) कार्मणशरीर का सयोग भी समझ लेना चाहिए ।

१५६३. [१] जस्स ण भंते ! वेउव्वियसरीर तस्स आहारगसरीर ? तस्स आहारगसरीरं तस्स ओरालियसरीरं ?

गोयमा ! जस्स वेउव्वियसरीर तस्साहारगसरीरं णत्थि, जस्स वि य आहारगसरीर तस्स वि वेउव्वियसरीरं णत्थि ।

[१५६३-१ प्र.] भगवन् ! जिसके वैक्रियशरीर होता है, क्या उसके आहारकशरीर होता है ? तथा जिसके आहारकशरीर होता है, उसके क्या वैक्रियशरीर भी होता है ?

[उ] गौतम ! जिस जीव के वैक्रियशरीर होता है, उसके आहारकशरीर नही होता, तथा जिसके आहारकशरीर होता है, उसके वैक्रिय शरीर नहीं होता है ।

[२] तेया-कम्माइं जहा ओरालिएण सम (सु. १५६१-६२) तहेव आहारगसरीरेण वि समं तेया-कम्माइं चारेयव्वाणि ।

[१५६३-२] जैसे (सू १५६१-१५६२ मे) औदारिक साथ तैजस एव कार्मण (शरीर के सयोग) का कथन किया है, उसी प्रकार आहारकशरीर के साथ भी तैजस-कार्मणशरीर (के सयोग) का कथन करना चाहिए ।

१५६४ जस्स ण भते ! तेयगसरीरं तस्स कम्मगसरीर ? जस्स कम्मगसरीर तस्स तेयग-सरीरं ?

गोयमा ! जस्स तेयगसरीरं तस्स कम्मगसरीर नियमा अत्थि, जस्स वि कम्मगसरीरं तस्स वि तेयगसरीरं णियमा अत्थि ।

[१५६४ प्र] भगवन् ! जिसके तैजसशरीर होता है, क्या उसके कार्मणशरीर होता है ? (तथा) जिसके कार्मणशरीर होता है, क्या उसके तैजसशरीर भी होता है ?

[उ] गौतम ! जिसके तैजसशरीर होता है, उसके कार्मणशरीर अवश्य ही (नियम से) होता है और जिसके कार्मणशरीर होता है, उसके तैजसशरीर अवश्य होता है ।

विवेचन—शरीरों के परस्पर सयोग की विचारणा—सयोगद्वार के प्रस्तुत ६ सूत्रो (१५५९ से) १५६४ तक) मे एक जीव मे औदारिक आदि पाच शरीरो मे से कितने शरीर एक साथ सभव हैं ? इसका विचार किया गया है ।

फलितार्थ—इन सब सूत्रो का फलितार्थ इस प्रकार है—

१ औदारिक के साथ - वैक्रिय आहारक, तैजस, कार्मण सभव है ।

२ वैक्रिय के साथ--औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर सभव है ।

३ आहारक के साथ औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर सभव है ।

४ तैजस के साथ—औदारिक, वैक्रिय, आहारक कार्मण शरीर सभव है ।

५ कार्मण के साथ--औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस शरीर सभव हैं ।[1]

स्पष्टीकरण—(१) जिसके औदारिकशरीर होता है, उसके वैक्रियशरीर विकल्प से होता है । क्योकि वैक्रियलब्धिसम्पन्न कोई औदारिकशरीरी जीव यदि वैक्रियशरीर बनाता है, तो उसके वैक्रियशरीर होता है । जो जीव वैक्रियलब्धिसम्पन्न नही है, अथवा वैक्रियलब्धियुक्त होकर भी वैक्रियशरीर नही बनाता, उसके वैक्रियशरीर नही होता । देव और नारक वैक्रियशरीरधारी होते हैं, उनके औदारिकशरीर नही होता, किन्तु जो तिर्यञ्च या मनुष्य वैक्रियशरीर वाले होते हैं, उनके औदारिकशरीर होता है । (२) जिनके औदारिकशरीर होता है, उनके आहारकशरीर होता भी है, नही भी होता है । जो चतुर्दशपूर्वधारी आहारकलब्धिसम्पन्न मुनि हैं, उसके आहारकशरीर

१. पण्णवणासुत्त (प्रस्तावनादि) भा २, पृ ११८

होता है, शेष औदारिकशरीरधारी मनुष्यो को नही होता। इसी प्रकार जिसके आहारकशरीर होता है उसके औदारिकशरीर अवश्य होता है, क्योकि औदारिकशरीर के बिना आहारकलब्धि नही होती। वैक्रियशरीर के साथ आहारकशरीर या आहारकशरीर के साथ वैक्रियशरीर कदापि सभव नही है। (३) जिसके औदारिक होता है, उसके तैजस-कार्मणशरीरो का होना अवश्यम्भावी है, किन्तु जिसके तैजस-कार्मणशरीर होते हैं उसके औदारिकशरीर होता भी है, नही भी होता है, क्योकि देवो और नारको के तैजस-कार्मणशरीर होते हुए भी औदारिकशरीर नही होता। इसी प्रकार जिस जीव के वैक्रियशरीर होता है, उसके तैजस-कार्मणशरीर अवश्य होते हैं, किन्तु जिस जीव के तैजस-कार्मणशरीर होते हैं उसके वैक्रिय शरीर होता भी है, नही भी होता, क्योकि देव-नारको के तैजस कार्मणशरीर होते है और वैक्रियशरीर भी प्रत्येक देव का होता है किन्तु तिर्यञ्चो और मनुष्यो के वैक्रियशरीर जन्म से नही होना, मगर तैजस-कार्मणशरीर तो अवश्य होते हैं। (४) तैजसशरीर जिसके होता है उसके औदारिक होता भी है, नही भी होता, क्योकि मनुष्य-तिर्यञ्च के औदारिकशरीर होता है, तैजसशरीर भी, जबकि वैक्रियशरीरी देवो नारको क तैजसशरीर तो होता ही है, किन्तु औदारिक नही होना। इसी प्रकार जिसके औदारिकशरीर होता है, उसके तैजस-कार्मणशरीर अवश्यम्भावी होते हैं, क्योकि तैजस-कार्मणशरीर के बिना औदारिकशरीर असम्भव है। इसी प्रकार तैजस और कार्मण दोनो परस्पर अविनाभावी है। जिसके तैजसशरीर होगा, उसके कार्मणशरीर अवश्य होगा। जिसके कार्मणशरीर होगा, उसके तैजस अवश्य होगा।[1]

द्रव्य-प्रदेश-अल्पबहुत्वद्वार

१५६५ एतेसि ण भते ! ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेया-कम्मगसरीराण दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा आहारगसरीरा दव्वट्ठयाए, वेउव्वियसरीरा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा, ओरालियसरीरा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा, तेया-कम्मगसरीरा दो वि तुल्ला दव्वट्ठयाए अणतगुणा, पएसट्ठयाए-सव्वत्थोवा आहारगसरीरा पएसट्ठयाए, वेउव्वियसरीरा पवेसट्ठयाए असखेज्जगुणा, ओरालियसरीरा पदेसट्ठयाए असखेज्जगुणा, तेयगसरीरा पदेसट्ठयाए अणतगुणा, कम्मगसरीरा पदेसट्ठयाए अणंतगुणा, दव्वट्ठपदेसट्ठयाए-सव्वत्थोवा आहारगसरीरा दव्वट्ठयाए, वेउव्वियसरीरा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा, ओरालियसरीरा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा, ओरालियसरीरेहिंतो दव्वट्ठयाए आहारगसरीरा पएसट्ठयाए अणंतगुणा, वेउव्वियसरीरा पवेसट्ठयाए असखेज्जगुणा, ओरालियसरीरा पदेसट्ठयाए असखेज्जगुणा, तेया-कम्मगसरीरा दो वि तुल्ला दव्वट्ठयाए अणतगुणा, तेयगसरीरा पवेसट्ठयाए अणंतगुणा, कम्मगसरीरा पदेसट्ठयाए अणंतगुणा।

[१५६५ प्र.] भगवन् ! औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण, इन पाच शरीरो मे से, द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से, कौन, किससे अल्प, बहुत तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

---

१. (क) प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्र ४३२
(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनीटीका भा. ४, पृ ८१२-८१३

[उ] गौतम ! **द्रव्य की अपेक्षा से**—सबसे अल्प आहारकशरीर है। (उनसे) वैक्रियशरीर, द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणा है। (उनसे) औदारिकशरीर द्रव्य की अपेक्षा से, असख्यातगुणा हैं। तैजस और कार्मण शरीर दोनो तुल्य (बराबर) हैं, (किन्तु औदारिकशरीर से) द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणा है।

प्रदेशों की अपेक्षा से—सबसे कम प्रदेशो की अपेक्षा से आहारकशरीर हैं। (उनसे) प्रदेशो की अपेक्षा से वैक्रियशरीर असख्यातगुणा है। (उनसे) प्रदेशो की अपेक्षा से औदारिकशरीर असख्यातगुणा हैं। (उनसे) तैजसशरीर प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणा हैं। (उनसे) कार्मणशरीर प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणा हैं।

द्रव्य एव प्रदेशो की अपेक्षा से—द्रव्य की अपेक्षा से, आहारकशरीर सबसे अल्प हैं—(उनसे) वैक्रियशरीर द्रव्यो की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं। (उनसे) औदारिकशरीर, द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं। औदारिकशरीरो से द्रव्य की दृष्टि से आहारकशरीर प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणा है। (उनसे) वैक्रियशरीर प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणा है (उनसे) औदारिकशरीर प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणा हैं। तैजस और कार्मण, दोनो शरीर द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य (बराबर-बराबर) है। तथा द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणे है। (उनसे) तैजसशरीर प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणा हैं। (उनसे) कार्मणशरीर प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणा हैं।

विवेचन—शरीरो की अल्पबहुत्वविचारणा : द्रव्य, प्रदेश तथा द्रव्य और प्रदेश की दृष्टि से प्रस्तुत सूत्र (१५६५) मे पूर्वोक्त पाचो शरीरो के अल्पबहुत्व की विचारणा की गई है।

स्पष्टीकरण—द्रव्यापेक्षया अर्थात् शरीरमात्र द्रव्य की सख्या की दृष्टि से सबसे अल्प आहारकशरीर इसलिए है कि आहारकशरीर उत्कृष्ट सख्यात हो तो भी सहस्रपृथक्त्व (दो हजार से नौ हजार तक) ही होते है। समस्त आहारकशरीरो की अपेक्षा वैक्रियशरीर द्रव्यदृष्टि से असख्यातगुणा अधिक होते है, क्योकि सभी नारको, सभी देवो, कतिपय तिर्यञ्चपचेन्द्रियो, कतिपय मनुष्यो एव बादर वायुकायिको के वैक्रियशरीर होते है। समस्त वैक्रियशरीरो की अपेक्षा औदारिकशरीर द्रव्यदृष्टि से (शरीरो की सख्या की दृष्टि से) असख्यातगुणा अधिक होते हैं, क्योकि औदारिकशरीर समस्त पच स्थावरो, तीन विकलेन्द्रियो, पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो और मनुष्यो के होते हैं और फिर पृथ्वी-अप्-तेज-वायु-वनस्पतिकायिको में से प्रत्येक असख्यात लोकाकाश-प्रमाण है। तैजस और कार्मण दोनो शरीर सख्या मे समान है, फिर भी वे औदारिकशरीरो की अपेक्षा से अनन्तगुणे है, क्योकि औदारिकशरीरधारियो के उपरान्त वैक्रियशरीरधारियो के भी तैजस-कार्मणशरीर होते है तथा सूक्ष्म एव बादर निगोद जीव अनान्तानन्त है, उनके औदारिकशरीर एक होता है किन्तु तैजस-कार्मण-शरीर पृथक्-पृथक् होते है।[1]

प्रदेशो (शरीर के प्रदेशो—परमाणुओ) की दृष्टि से विचार किया जाए तो सबसे कम आहारकशरीर है, क्योकि सहस्रपृथक्त्व सख्या वाले आहारकशरीरो के प्रदेश अन्य सभी शरीरो के प्रदेशो की अपेक्षा कम ही होते है। यद्यपि वैक्रियवर्गणाओ की अपेक्षा आहारकवर्गणा परमाणुओ

१ (क) प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्र ४३३-४३४

(ख) प्रज्ञापना, प्रमेयबोधिनी टीका भा ४, पृ ८२२-८२३

की अपेक्षा से अनन्तगुणी होती है, तथापि आहारकशरीरो से वैक्रियशरीरो के प्रदेश असख्यातगुणा इसलिए कहे गए हैं कि एक तो आहारकशरीर केवल एक हाथ का ही होता है, जबकि बहुत वर्गणाओ से निर्मित वैक्रियशरीर उत्कृष्टत. एक लाख योजन से भी अधिक प्रमाण का हो सकता है। दूसरे, आहारकशरीर सख्या मे भी कम, सिर्फ सहस्रपृथक्त्व होते है, जबकि वैक्रियशरीर असंख्यात-श्रेणीगत आकाशप्रदेशो के बराबर होते हैं। इस कारण आहारकशरीरो की अपेक्षा वैक्रियशरीर प्रदेशो की दृष्टि से असख्यातगुणे कहे गए है। उनसे औदारिकशरीर प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यात-गुणे इसलिए कहे गए है कि वे असख्यात लोकाकाशो के प्रदेशो के बराबर पाए जाते है, इस कारण उनके प्रदेश अति प्रचुर होते है।

उनसे तैजसशरीर प्रदेशो की दृष्टि से अनन्तगुणा अधिक होते हैं, क्योकि वे द्रव्यदृष्टि से औदारिकशरीरो से अनन्तगुणा है। तैजसशरीरो की अपेक्षा कार्मणशरीर प्रदेशो की दृष्टि से अनन्तगुणा है, क्योकि कार्मणवर्गणाएँ तैजसवर्गणाओ की अपेक्षा परमाणुओ की दृष्टि से अनन्तगुणी होती है।[1]

द्रव्य और प्रदेश- दोनो की दृष्टि से विचार करने पर भी द्रव्यापेक्षया सबसे कम आहारक-शरीर है, वैक्रियशरीर द्रव्यापेक्षया असख्यातगुणा अधिक है, उनसे भी औदारिकशरीर द्रव्यत असख्यातगुणे है, यहाँ भी वही पूर्वोक्त युक्ति है। द्रव्यत औदारिकशरीरो की अपेक्षा प्रदेशत· आहारकशरीर अनन्तगुणे है, क्योकि औदारिकशरीर सब मिल कर भी असख्यात लोकाकाश प्रदेशो के बराबर है, जबकि प्रत्येक आहारकशरीरयोग्य वर्गणा मे अभव्यो से अनन्तगुणा परमाणु होते हैं। उनकी अपेक्षा भी वैक्रियशरीर प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है। उनसे भी औदारिकशरीर प्रदेशत असख्यातगुणे हैं, इस विषय मे युक्ति पूर्ववत् है। उनसे भी तैजसकार्मणशरीर द्रव्यापेक्षया अनन्तगुणे है, क्योकि वे अतिप्रचुर अनन्त सख्या से युक्त है। उनसे भी तैजसशरीर प्रदेशत अनन्त-गुणे अधिक है, क्योकि अनन्त-परमाण्वात्मक अनन्तवर्गणाओ से प्रत्येक तैजसशरीर निष्पन्न होता है। उनसे भी कार्मणशरीर प्रदेशत अनन्तगुणे हैं। इस विषय मे युक्ति पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए।[2]

शरीरावगाहना-अल्पबहुत्व-द्वार

१५६६. एतेसि ण भंते ! ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेया-कम्मगसरीराण जहण्णियाए ओगाहणाए उक्कोसियाए ओगाहणाए जहण्णुक्कोसियाए ओगाहणाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा ओरालियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा, तेया-कम्मगाणं दोण्ह वि तुल्ला जहण्णिया ओगाहणा विसेसाहिया, वेउव्वियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा असखेज्जगुणा, आहारगसरीरस्स जहण्णया ओगाहणा असंखेज्जगुणा, उक्कोसियाए ओगाहणाए—सव्वत्थोवा आहारग-सरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा, ओरालियसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा संखेज्जगुणा, वेउव्विय-सरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा असखेज्जगुणा, तेया-कम्मगाण दोण्ह वि तुल्ला उक्कोसिया ओगाहणा असखेज्जगुणा, जहण्णुक्कोसियाए ओगाहणाए—सव्वत्थोवा ओरालियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा,

---

१. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४३४

२. वही, पत्र ४३४

तेया-कम्मगाण दोण्ह वि तुल्ला जहण्णिया ओगाहणा विसेसाहिय, वेउव्वियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा, आहारगसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा, आहारगसरीरस्स जहण्णियाहितो ओगाहणाहितो तस्स चेव उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया, ओरालियसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा संखेज्जगुणा, वेउव्वियसरीरस्स णं उक्कोसिया ओगाहणा संखेज्जगुणा, तेया-कम्मगाणं दोण्ह वि तुल्ला उक्कोसिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ।

॥ पण्णवणाए भगवतीए एगवीसइम ओगाहणसठाणपय समत्तं ॥

[१५६६ प्र] भगवन् ! औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण, इन पांच शरीरो मे से, जघन्य-अवगाहना, उत्कृष्ट-अवगाहना एव जघन्योत्कृष्ट-अवगाहना को दृष्टि से, कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[उ] गौतम ! सबसे कम औदारिकशरीर की जघन्य अवगाहना है। तैजस और कार्मण, दोनो शरीरो की अवगाहना परस्पर तुल्य है, (किन्तु औदारिकशरीर की) जघन्य अवगाहना से विशेषाधिक है। (उससे) वैक्रियशरीर की जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है। (उससे) आहारकशरीर की जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है।

उत्कृष्ट अवगाहना की दृष्टि से—सबसे कम आहारकशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना होती है। (उससे) औदारिकशरीर को उत्कृष्ट अवगाहना सख्यातगुणी है। उसको अपेक्षा वैक्रियशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना असख्यातगुणी है। तैजस और कार्मण, दोनो की उत्कृष्ट अवगाहना परस्पर तुल्य है, (किन्तु वैक्रियशरीर को) उत्कृष्ट अवगाहना से असख्यातगुणी है।

जघन्योत्कृष्ट अवगाहना की दृष्टि से—सबसे कम औदारिकशरीर की जघन्य अवगाहना है। तैजस और कार्मण, दोनो शरीरो की जघन्य अवगाहना एक समान है, किन्तु औदारिकशरीर की जघन्य अवगाहना की अपेक्षा विशेषाधिक है। (उससे) वैक्रियशरीर की जघन्य अवगाहना असख्यात गुणी है। (उससे) आहारकशरीर की जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है। आहारकशरीर की जघन्य अवगाहना से उसी की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है। (उससे) औदारिकशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना सख्यातगुणी है। (उससे) वैक्रियशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना सख्यातगुणी है। तैजस और कार्मण दोनो शरीरो की उत्कृष्ट अवगाहना समान है, परन्तु वह वैक्रियशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना से असख्यातगुणी है।

विवेचन पांचो शरीरो की अवगाहनाओं का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (१५६६) में सप्तम द्वार के सन्दर्भ मे पाचो शरीरो की जघन्य-उत्कृष्ट अवगाहनाओ के अल्पबहुत्व की विचारणा की गई है।

अवगाहनाओ के अल्पबहुत्व का आशय—औदारिकशरीर की जघन्य अवगाहना सबसे कम है क्योकि वह अगुल के असख्यातवे भागमात्रप्रमाण होती है। तैजस और कार्मण की जघन्यावगाहना परस्पर तुल्य होते हुए भी औदारिक की जघन्यावगाहना से विशेषाधिक इसलिए है कि मारणान्तिकसमुद्-

घात से समवहत जीव जब पूर्वशरीर से बाहर निकले हुए तैजसशरीर की अवगाहना की आयाम (ऊँचाई), बाहल्य (मोटाई) और विस्तार (चौडाई) से विचारणा की जाती है, ऐसी स्थिति मे जिस प्रदेश मे वे जीव उत्पन्न होगे वह प्रदेश औदारिकशरीर की अवगाहना से प्रमित अगुल के असख्यातवें भागप्रमाण, व्याप्त होता है और अतीव अल्प बीच का प्रदेश भी व्याप्त होता है। इसलिए औदारिक की जघन्य अवगाहना से तैजस-कार्मणशरीर की जघन्य अवगाहना विशेषाधिक हुई। आहारकशरीर की जघन्य अवगाहना देशोन हस्तप्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना भी एक हाथ की है। उससे औदारिकशरीर की उत्कृष्टावगाहना सख्यातगुणी है, क्योकि वह सातिरेक सहस्रयोजन प्रमाण है। वैक्रियशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना सातिरेक लक्षयोजन होने से वह इससे सख्यातगुणी अधिक है। तैजस-कार्मणशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना समान होने पर भी वैक्रियशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना से असख्यातगुणी अधिक है, क्योकि वह १४ रज्जूप्रमाण है। शेष स्पष्ट है।[1]

।। प्रज्ञापना भगवती का इक्कीसवाँ अवगाहना-संस्थान-पद सम्पूर्ण ।।

---

१. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४३४-४३५

बावीसइमं : किरियापयं

बाईसवाँ क्रियापद

प्राथमिक

- यह प्रज्ञापनासूत्र का बाईसवाँ क्रियापद है। इसमे विविध दृष्टियो से क्रियाओ के सम्बन्ध मे गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है।
- क्रिया सम्बन्धी विचार भारत के प्राचीन दार्शनिको मे होता आया है। क्रियाविचारकों में ऐसे भी लोग थे, जो क्रिया से पृथक् किसी कर्मरूप आवरण को मानते ही नही थे।[1] उनके ज्ञान को विभंगज्ञान कहा गया है।
- भारतवर्ष मे प्राचीनकाल मे 'कर्म' अर्थात् - वासना या सस्कार को माना जाता था, जिसके कारण पुनर्जन्म होता है। आत्मा के जन्म-जन्मान्तर की अथवा ससारचक्र-परिवर्तन की कल्पना के साथ कर्म को विचारणा अनिवार्य थी। किन्तु प्राचीन उपनिषदो मे यह विचारणा क्वचित् ही पाई जाती है, जब कि जैन और बौद्ध साहित्य मे, विशेषत. जैन-आगमो मे 'कर्म' की विचारणा विस्तृत रूप से पाई जाती है।
- प्रस्तुत प्रज्ञापनासूत्र का क्रियाविचार क्रिया के सम्बन्ध मे अनेक पहलुओ से हुई विचारणा का सग्रह है। यहाँ क्रियाविचार का क्रम इस प्रकार है--
- सर्वप्रथम क्रिया के कायिकी आदि पाच भेद और प्रभेद, सिर्फ हिंसा-अहिसा के विचार को लक्ष्य मे रख कर बताए गए हैं।[2]
- उसके पश्चात् क्रिया को कर्मबन्ध का कारण परिलक्षित करके जीवो की सक्रियता-अक्रियता के सम्बन्ध मे प्रश्न किया गया है। अक्रिय अर्थात् क्रियाओ से सर्वथा रहित को ही कर्मो से सर्वथा मुक्त सिद्ध और सर्वश्रेष्ठ माना गया है।[3]
- उसके बाद अठारह पापस्थानो मे होने वाली क्रियाओ (प्रकारान्तर से कर्मों) तथा उनके विषयो का निरूपण किया गया है। इसीलिए प्राणातिपात आदि के अध्यवसाय से सात या आठ कर्मों के बन्ध का उल्लेख किया गया है।
- फिर जीव के ज्ञानावरणीयादि कर्मबन्ध करते समय कितनी क्रियाएँ होती हैं? इसका विचार प्रस्तुत किया गया है। यहाँ १८ पापस्थान की क्रियाओ को ध्यान मे न लेकर सिर्फ पूर्वोक्त ५

---

१ देखिये स्थानांगसूत्र ५४२

२ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ३५०

३ वही, पृ. ३५०

क्रियाएँ ही ध्यान मे रखी है। परन्तु वृत्तिकार ने स्पष्टीकरण किया है कि इन प्रश्नो का आशय यह है कि जीव जब प्राणातिपात द्वारा कर्म बाँधता हो, तब उस प्राणातिपात की समाप्ति कितनी क्रियाओ से होता है। वृत्तिकार ने यह भी स्पष्ट किया है कि कायिकी आदि क्रम से तीन, चार या पाच क्रियाएँ समझनी चाहिए।[1]

- तत्पश्चात् एक जीव, एक या अनेक जीवो की अपेक्षा से तथा अनेक जीव, एक या अनेक जीवो की अपेक्षा से कायिकी आदि क्रियाओ मे से कितनी क्रियाओ वाला होता है ? दूसरे जीव की अपेक्षा से कायिकी आदि क्रियाएँ कैसे लग जाती है, इसका स्पष्टीकरण वृत्तिकार यो करते हैं कि केवल वर्तमान जन्म मे होने वाली कायिकी आदि क्रियाएँ यहाँ अभिप्रेत नही है, किन्तु अतीत जन्म के शरीरादि से अन्य जीवो द्वारा होने वाली क्रिया भी यहाँ विवक्षित है, क्योकि जिस जीव ने भूतकालीन काया आदि की विरति नही स्वीकारी, अथवा शरीरादि का प्रत्याख्यान (व्युत्सर्ग या ममत्वत्याग) नही किया, उस शरीरादि से जो कुछ निर्माण होगा या उसके द्वारा अन्य जीव जो कुछ क्रिया करेगे, उसके लिए वह जिम्मेवार होगा, क्योकि उसने शरीरादि का ममत्व त्याग नही किया।[2]

- इसके बाद चौबीसदण्डकवर्ती जीवो मे पाचो क्रियाओ की प्राप्ति बताई है।

- इसके पश्चात २४ दण्डको मे कायिकी आदि पाचो क्रियाओ के सहभाव की चर्चा की गई है। साथ ही कायिकी आदि पाचो क्रियाओ को आयोजिका (ससारचक्र मे जोडने वाली) के रूप मे बताकर इनके सहभाव की चर्चा की गई है।[3]

- इसके पश्चात् एक जीव मे एक जीव की अपेक्षा से पाचो क्रियाओ मे से स्पृष्ट-अस्पृष्ट रहने की चर्चा की गई है।[4]

- इसके अनन्तर क्रियाओ के प्रकारान्तर से आरम्भिकी आदि ५ भेद बताकर किस जीव मे कौन-सी क्रिया पाई जाती है ? इसका उल्लेख किया है। इसके पश्चात् चौवीसदण्डको मे इन्ही क्रियाओ की प्ररूपणा की गई है। फिर जीवो मे इन्ही पाच क्रियाओ के सहभाव की चर्चा भी गई है। अन्त मे समय, देश-प्रदेश को लेकर भी इनके सहभाव की चर्चा की गई है।[5]

- इसके पश्चात् प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शनशल्य तक १८ पापस्थानो से कौन-सा जीव विरत हो सकता है ? तथा प्राणातिपातादि से विरमण किस विषय मे होता है ? इत्यादि विचारणा की गई है।[6]

---

१ पण्णवणासुत्त मूलपाठटिप्पण, पृ ३५१-३५२
२. वही, पृ ३५३-३५४
३ वही, पृ ३५५-३५६
४ वही, पृ ३५६-३५७
५ वही, पृ. ३५७, ३५८, ३५९
६ वही, पृ. ३५९

- इसके बाद यह विचारणा एकवचन और बहुवचन के रूप मे की गई है कि प्राणातिपात आदि १८ पापस्थानो से विरत जीव कितनी-कितनी कर्मप्रकृतियो का बध कर सकता है ? इसमे बध के अनेक भग (विकल्प) बताए हैं ।[1]

- तत्पश्चात् यह चर्चा प्रस्तुत की गई है कि प्राणातिपात आदि पापस्थानो से विरत सामान्य जीव मे या चौवीसदण्डक के किस जीव मे ५ क्रियाओ मे से कौन-कौन-सी क्रियाएँ होती है ?

- अन्त मे, आरम्भिकी आदि पाँचो क्रियाओ के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है । इस अल्पबहुत्व का आधार यह है कि कौन-सी क्रिया कम अथवा अधिक प्राणियो के है ? मिथ्यादृष्टि के तो प्रथम मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया होती है जबकि अप्रत्याख्यानक्रिया अविरत सम्यग्दृष्टि एव मिथ्यादृष्टि दोनो के होती है । इसी दृष्टि से आगे की क्रियाएँ उत्तरोत्तर अधिक बताई गई है ।[2]

- इस समस्त क्रियाविवरण से इतना स्पष्ट है कि कायिकी आदि पाच, १८ पापस्थानो से निष्पन्न क्रियाएँ तथा आरम्भिकी आदि पाच क्रियाएं प्रत्येक जीव के आत्मविकास मे अवरोधरूप हैं, इनका त्याग आत्मा को मुक्त एव स्वतन्त्र करने के लिए आवश्यक है । भगवतीसूत्र मे स्पष्ट बताया गया है, श्रमण को भी जब तक प्रमाद और योग है, तब तक क्रिया लगती है । जहाँ तक क्रिया है, वहाँ तक मुक्ति नही है ।[3]

- परन्तु इस समग्र क्रियाविवरण मे ईर्यापथिक और साम्परायिक ये जो क्रिया के दो भेद बाद मे प्रचलित हुए है, उन्हे स्थान नही मिला । यह क्रियाविचार की प्राचीनता सूचित करता है ।

- इसके अतिरिक्त स्थानागसूत्र मे सूचित २५ क्रियाएँ अथवा सूत्रकृताग मे वर्णित १३ क्रियास्थानो का प्रज्ञापना के क्रियापद मे उक्त प्राणातिपात आदि १८ पापस्थानजन्य क्रियाओ मे समावेश हो जाता है । कुछ का समावेश कायिकी आदि ५ मे तथा आरम्भिकी आदि ५ मे हो जाता है ।[4]

---

१. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), पृ. ३६०
२. वही, पृ ३६१-३६२
३. भगवती० ३।३, सू १५१, १५२ १५३
४ (क) स्थानांग, स्थान ५, सू ४१९ (ख) सूत्रकृताग २।२

बावीसइमं : किरियापयं

बाईसवाँ क्रियापद

क्रिया-भेद-प्रभेदप्ररूपणा

१५६७. कति णं भंते ! किरियाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ । तं जहा—काइया १ आहिगरणिया २ पाओसिया ३ पारियावणिया ४ पाणाइवातकिरिया ५ ।

[१५६७ प्र] भगवन् ! क्रियाएँ कितनी कही गई हैं ?

[उ] गौतम ! क्रियाएँ पाच कही गई हैं, यथा—(१) कायिकी, (२) आधिकरणिकी, (३) प्राद्वेषिकी, (४) पारितापनिकी और (५) प्राणातिपातक्रिया ।

१५६८. काइया णं भंते ! किरिया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—अणुवरयकाइया य दुप्पउत्तकाइया य ।

[१५६८ प्र] भगवन् ! कायिकीक्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार की कही गई है । यथा—अनुपरतकायिकी और दुष्प्रयुक्त-कायिकी ।

१५६९. आहिगरणिया णं भंते ! किरिया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सजोयणाहिकरणिया य निव्वत्तणाहिकरणिया य ।

[१५६९ प्र] भगवन् ! आधिकरणिकीक्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

[उ] गौतम ! (वह) दो प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—सयोजनाधिकरणिकी और निर्वर्त्तनाधिकरणिकी ।

१५७०. पाओसिया ण भते ! किरिया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—जेण अप्पणो वा परस्स वा तदुभयस्स वा असुभ मण पहारेति । से त्त पाओसिया किरिया ।

[१५७० प्र] भगवन् ! प्राद्वेषिकीक्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

[उ] गौतम (वह) तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—जिसमे स्व का, पर का अथवा स्व-पर दोनो का मन अशुभ कर दिया जाता है वह (त्रिविध) प्राद्वेषिकी क्रिया है ।

१५७१. पारियावणिया णं भंते ! किरिया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—जेणं अप्पणो वा परस्स वा तदुभयस्स वा असायं वेदणं उदीरेति । से त्तं पारियावणिया किरिया ।

[१५७१ प्र.] भगवन् ! पारितापनिकीक्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

[उ.] गौतम ! (वह) तीन प्रकार की कही गई है, जैसे—जिस प्रकार से स्व के लिए, पर के लिए या स्व-पर दोनो के लिए असाता (दु खरूप) वेदना उत्पन्न की जाती है, वह है—(त्रिविध) पारितापनिकी क्रिया ।

१५७२ पाणातिवातकिरिया णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—जेणं अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा जीवियाओ ववरोवेइ । से त्तं पाणाइवायकिरिया ।

[१५७२ प्र] भगवन् ! प्राणातिपातक्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

[उ] गौतम ! (वह) तीन प्रकार की कही गई है, यथा—(ऐसी क्रिया) जिससे स्वय को दूसरे को, अथवा स्व-पर दोनो को जीवन से रहित कर दिया जाता है, वह (त्रिविध) प्राणातिपातक्रिया है ।

विवेचन—हिंसा की दृष्टि से क्रियाओ के भेद-प्रभेद—प्रस्तुत ६ सूत्रो (१५६७ से १५७२ तक) मे क्रियाओ के मूल ५ भेद और उनके उत्तरभेदो का निरूपण हिंसा-अहिंसा की दृष्टि से किया गया है ।

क्रियाओं का विशेषार्थ—क्रिया : दो अर्थ—(१) करना, (२) कर्मबन्ध की कारणभूत चेष्टा । **कायिकी**—काया से निष्पन्न होने वाली । **आधिकरणिकी**—जिससे आत्मा नरकादि दुर्गतियो मे अधिकृत—स्थापित की जाए, वह अधिकरण—एक प्रकार का दूषित अनुष्ठानविशेष । अथवा तलवार, चक्र आदि बाह्य हिंसक उपकरण । अधिकरण से निष्पन्न होने वाली क्रिया आधिकरणिकी । **प्राद्वेषिकी**—प्रद्वेष - यानी मत्सर, कर्मबन्ध का कारण जीव का अकुशल परिणाम-विशेष । प्रद्वेष से होने वाली प्राद्वेषिकी । **पारितापनिकी** परितापना अर्थात् पीड़ा देना । परितापना से या परितापना में होने वाली क्रिया । **प्राणातिपातिकी**—इन्द्रियादि १० प्राणो मे से किसी प्राण का अतिपात—विनाश, प्राणातिपात । प्राणातिपात-विषयक क्रिया । **अनुपरतकायिकी**—देशत. या सर्वत. सावद्ययोगो से जो विरत हो वह उपरत । जो उपरत—विरत न हो, वह अनुपरत । अर्थात् काया से प्राणातिपातादि से देशतः या सर्वत विरत-निवृत्त न होना अनुपरतकायिकी । यह क्रिया अविरत को लगती है । **दुष्प्रयुक्तकायिकी**—काया आदि का दुष्ट प्रयोग करना । यह क्रिया, प्रमत्तसयत को लगती है, क्योकि प्रमत्त होने पर काया का दुष्प्रयोग सम्भव है । **संयोजनाधिकरणिकी**—पूर्व निष्पादित हल, मूसल, शस्त्र, विष आदि हिंसा के कारणभूत उपकरणा का सयोग मिलाना सयोजना है । वही ससार की कारणभूत होने से सयोजनाधिकरणिकी है । यह क्रिया पूर्व निर्मित हलादि हिंसोपकरणों के सयोग मिलाने वाले को लगती है । **निर्वर्त्तनाधिकरणिकी**—खड्ग, भाला आदि हिंसक शस्त्रों का मूल से निर्माण करना निर्वर्त्तना है । यह ससार को वृद्धिरूप होने से निर्वर्त्तनाधिकरणिकी कहलाती है ।

प्राणातिपातक्रिया– किसी प्रकार से आत्महत्या करना, अथवा प्रद्वेषादिवश दूसरो को या दोनो को प्राण से रहित करना, यह त्रिविध प्राणातिपातक्रिया है ।[1]

पारितापनिकी क्रिया : शंका-समाधान– जो तप या अन्य अनुष्ठान अशक्य हो, जिस तप के करने से मन मे दुर्ध्यान पैदा होता हो, इन्द्रियो की हानि हो, मन-वचन-काया के योग उत्पथ पर चले या एकदम क्षीण हो जाएँ, वह तपश्चरण या कायकष्ट पारितापनिकी क्रिया मे है। परन्तु जिससे दुर्ध्यान न हो, जिसका परिणाम आत्महितकर हो, कर्मक्षय करने की उमग हो, उन्नत भावना हो, वहाँ पारितापनिकीक्रिया नही होती ।[2]

जीवों के सक्रियत्व अक्रियत्व की प्ररूपणा

१५७३. जीवा णं भंते ! किं सकिरिया अकिरिया ?

गोयमा ! जीवा सकिरिया वि अकिरिया वि ।

से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति जीवा सकिरिया वि अकिरिया वि ?

गोयमा ! जीवा दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—संसारसमावण्णगा य असंसारसमावण्णगा य । तत्थ ण जे ते असंसारसमावण्णगा ते ण सिद्धा, सिद्धा ण अकिरिया । तत्थ ण जे ते ससारसमावण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सेलेसिपडिवण्णगा य असेलेसिपडिवण्णगा य ।

तत्थ ण जे ते सेलेसिपडिवण्णगा ते ण अकिरिया ।

तत्थ ण जे ते असेलेसिपडिवण्णगा ते ण सकिरिया । से एतेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति जीवा सकिरिया वि अकिरिया वि ।

[१५७३ प्र] भगवन् ! जीव सक्रिय होते है, अथवा अक्रिय (क्रियारहित) होते हैं ?

[उ] गौतम ! जीव सक्रिय (क्रिया-युक्त) भी होते है और अक्रिय (क्रियारहित) भी होते है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जीव सक्रिय भी होते है और अक्रिय भी होते है ?

[उ] गौतम ! जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—संसारसमापन्नक और असंसारसमापन्नक । उनमें से जो असंसारसमापन्नक है, वे सिद्ध जीव हैं । सिद्ध (मुक्त) अक्रिय (क्रियारहित) होते हैं और उनमे से जो ससारसमापन्नक है, वे भी दो प्रकार के है – शैलेशीप्रतिपन्नक और अशैलेशी-प्रतिपन्नक । उनमे से जो शैलेशी-प्रतिपन्नक होते हैं, वे अक्रिय हैं और जो अशैलेशी-प्रतिपन्नक होते है, वे सक्रिय होते हैं । हे गौतम ! इसी कारण ऐसा कहा जाता है कि जीव सक्रिय भी है और अक्रिय भी है ।

१. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४३६,

२. वही, पत्र ४३६

विवेचन जीवों की सक्रियता-अक्रियता का निर्धारण—प्रस्तुत सूत्र (१५७३) मे जीवो को सक्रिय और अक्रिय दोनो प्रकार का बताकर उनका विश्लेषणपूर्वक निर्धारण किया गया है।

पारिभाषिक शब्दों के अर्थ- सक्रिय—पूर्वोक्त क्रियाओ से युक्त, या क्रियाओ मे रत। अक्रिय—समस्त क्रियाओ से रहित ।

संसारसमापन्नक—चतुर्गति भ्रमणरूप ससार को प्राप्त युक्त । **असंसारसमापन्नक**—उससे विपरीत- मुक्त। **सिद्धों की अक्रियता** -सिद्ध देह एव मनोवृत्ति आदि से रहित होने से पूर्वोक्त क्रिया से रहित है, इसलिए वे अक्रिय है । **शैलेशीप्रतिपन्नक** -अयोगी-अवस्था को प्राप्त । शैलेशीप्रतिपन्नको के सूक्ष्म-बादर काय, वचन और मन के योगो का निरोध हो जाता है, इस कारण वे अक्रिय है । **अशैलेशीप्रतिपन्नक** शैलेशी-अवस्था से रहित समस्त ससारी प्राणीगण, जिनके मन, वचन, काया के योगो का निरोध नही हुआ है। वे सक्रिय है।[1]

जीवो की प्राणातिपातादिक्रिया तथा विषय की प्ररूपणा

१५७४ अत्थि ण भते ! जीवाण पाणाइवाएण किरिया कज्जति ?

हता गोयमा ! अत्थि ।

कम्हि ण भते ! जीवाण पाणाइवाएण किरिया कज्जति ?

गोयमा ! छसु जीवणिकाएसु ।

[१५७४ प्र] भगवन् ! क्या जीवो को प्राणातिपात (के अध्यवसाय) से प्राणातिपात-क्रिया लगती है ?

[उ] हाँ, गौतम ! (प्राणातिपातक्रिया सलग्न) होती है।

[प्र] भगवन् ! किस (विषय) मे जीवो को प्राणातिपात (के अध्यवसाय) से प्राणातिपात-क्रिया लगती है ?

[उ] गौतम ! छह जीवनिकायो (के विषय) (में लगती है।)

१५७५. [१] अत्थि ण भंते ! णेरइयाण पाणाइवाएणं किरिया कज्जति ?

गोयमा ! एव चेव ।

[१५७५-१ प्र] भगवन् ! क्या नारको को प्राणातिपात (के अध्यवसाय) से प्राणातिपात-क्रिया लगती है ?

[उ.] (हाँ) गौतम ! ऐसा (पूर्ववत्) ही है।

[२] एवं जाव निरंतरं वेमाणियाणं ।

[१५७५-२] इसी प्रकार (नारको के आलाप के समान) (नारको से लेकर) निरन्तर वैमानिको तक का (आलाप कहना चाहिए।)

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४३७

१५७६ [१] अत्थि णं भंते ! जीवाण मुसावाएण किरिया कज्जति ?

हंता ! अत्थि ।

कम्हि णं भंते ! जीवाणं मुसावाएणं किरिया कज्जति ?

गोयमा ! सव्वदव्वेसु ।

[१५७६-१] भगवन् ! क्या जीवो को मृषावाद (के अध्यवसाय) से (मृषावाद-) क्रिया लगती है ?

[उ] हाँ, गौतम ! मृषावादक्रिया सलग्न होती है।

[प्र] भगवन् ! किस विषय मे मृषावाद के अध्यवसाय से मृषावाद-क्रिया लगती है ?

[उ] गौतम ! सर्वद्रव्यो के (विषय) मे (मृषा० क्रिया लगती है ।)

[२] एव णिरतरं णेरइयाण जाव वेमाणियाण ।

[१५७६-२] इसी प्रकार (पूर्वोक्त कथन के समान) नैरयिको से लेकर लगातार वैमानिको (तक) का (कथन करना चाहिए ।)

१५७७ [१] अत्थि णं भंते ! जीवाण अदिण्णादाणेण किरिया कज्जति ? हंता अत्थि ।

कम्हि णं भंते ! जीवाण अदिण्णादाणेण किरिया कज्जति ?

गोयमा ! गहण-धारणिज्जेसु दव्वेसु ।

[१५७७-१ प्र] भगवन् ! क्या जीवो को अदत्तादान (के अध्यवसाय) से अदत्तादान-(क्रिया) लगती है ?

[उ] हाँ, गौतम ! (अदत्तादान-क्रिया सलग्न) होती है ।

[प्र.] भगवन् ! किस (विषय) मे जीवो को अदत्तादान (के अध्यवसाय) से (अदत्तादान-) क्रिया लगती है ?

[उ] गौतम ! ग्रहण और धारण करने योग्य द्रव्यो (के विषय) में (यह क्रिया होती है ।)

[२] एव णेरइयाणं णिरंतर जाव वेमाणियाणं ।

[१५७७-२] इसी प्रकार (समुच्चय जीवो के आलापक के समान) नैरयिको से लेकर वैमानिको तक की (अदत्तादानक्रिया का कथन करना चाहिए ।)

१५७८. [१] अत्थि ण भंते ! जीवाण मेहुणेणं किरिया कज्जति ?

हंता ! अत्थि ।

कम्हि णं भंते ! जीवाणं मेहुणेणं किरिया कज्जति ?

गोयमा ! रूवेसु वा रूवसहगतेसु वा दव्वेसु ।

[१५७८-१ प्र.] भगवन् ! क्या जीवो को मैथुन (के अध्यवसाय) से (मैथुन-) क्रिया लगती है ?

[उ] हाँ, (गौतम!) (मैथुनक्रिया सलग्न) होती है।

[प्र.] भगवन्! किस (विषय) मे जीवो के मैथुन (के अध्यवसाय) से (मैथुन-) क्रिया लगती है?

[उ.] गौतम! रूपो अथवा रूपसहगत (स्त्री आदि) द्रव्यो (के विषय) मे (यह क्रिया लगती है।)

[२] एवं णेरइयाणं णिरंतरं जाव वेमाणियाण।

[१५७८-२] इसी प्रकार (समुच्चय जीवो के मैथुनक्रियाविषयक आलापको के समान) नैरयिकों से लेकर निरन्तर (लगातार) वैमानिको तक (मैथुनक्रिया के आलापक कहने चाहिए।)

१५७९ [१] अत्थि ण भंते! जीवाणं परिग्गहेण किरिया कज्जइ?

हंता! अत्थि।

कम्हि णं भंते! जीवाण परिग्गहेणं किरिया कज्जति?

गोयमा! सव्वदव्वेसु।

[१५७९-१ प्र] भगवन्! क्या जीवो के परिग्रह (के अध्यवसाय) से (परिग्रह-) क्रिया लगती है?

[उ] हाँ, गौतम! (परिग्रहक्रिया लगती) है।

[प्र] भगवन्! किस (विषय) मे जीवो के परिग्रह (के अध्यवसाय) से (परिग्रह-) क्रिया लगती है?

[उ] गौतम! समस्त द्रव्यो (के विषय) मे (यह क्रिया लगती है।)

[२] एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

[१५७९-२] इसी तरह (समुच्चय जीवो के परिग्रह-क्रियाविषयक आलापको के समान) नैरयिको से लेकर वैमानिको तक (परिग्रह-क्रिया-विषयक आलापक कहने चाहिए।)

१५८०. एवं कोहेणं माणेण मायाए लोभेणं पेज्जेणं दोसेणं कलहेणं अब्भक्खाणेणं पेसुण्णेण परपरिवाएणं अरतिरतीए मायामोसेण मिच्छादंसणसल्लेण सव्वेसु जीव-णेरइयभेदेसु भाणियव्वं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं ति। एवं अट्ठारस एते दंडगा १८।

[१५८०] इसी प्रकार क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, राग (प्रेय) से, द्वेष से, कलह से, अभ्याख्यान से, पैशुन्य से, परपरिवाद से, अरति-रति से, मायामृषा से एव मिथ्यादर्शनशल्य (के अध्यवसाय) से (लगने वाली क्रोधादि क्रियाओ के विषय मे पूर्ववत्) समस्त (समुच्चय) जीवो तथा नारको के भेदो से (ले कर) लगातार वैमानिको तक के (क्रोधादिक्रियाविषयक आलापक) कहने चाहिए। इस प्रकार ये (अठारह पापस्थानो के अध्यवसाय मे लगने वाली क्रियाओ के) अठारह दण्डक (आलापक) हुए।

विवेचन—अठारह पापस्थानों से जीवो को लगने वाली क्रियाओं की प्ररूपणा—प्रस्तुत सात

सूत्रो (१५७४ से १५८० तक) मे प्राणातिपात से ले कर मिथ्यादर्शनशल्य तक के अध्यवसाय से समुच्चय जीवो तथा चौबीस दण्डकवर्ती जीवो को लगने वाली इन क्रियाओ तथा इन क्रियाओ के पृथक् पृथक् विषयो को प्ररूपणा की गई है।

प्राणातिपातक्रिया : कारण और विषय सूत्र १५७४ गत प्रश्न का आशय यह है जीवो के, प्राणातिपात से, अर्थात् प्राणातिपात के अध्यवसाय मे प्राणातिपात क्रिया की जाती है, अर्थात्--होती है। इसका फलितार्थ यह है कि प्राणातिपात (हिंसा) की परिणति (अध्यवसाय—परिणाम) के काल मे ही प्राणातिपात क्रिया हो जाती है, यह कथन ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से किया गया है। प्रत्येक क्रिया अध्यवसाय के अनुसार ही होती है। क्योकि पुण्य और पाप कर्म का उपादान-अनुपादान अध्यवसाय पर ही निर्भर है, इसीलिए भगवान् ने भी इन सब प्रश्नो का उत्तर ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से दिया है कि प्राणातिपात के अध्यवसाय मे प्राणातिपातक्रिया होती है। इसी प्रकार का आगमवचन है—**"परिणामिय पमाण निच्छयमवलबमाणाण"** इसी वचन के आधार पर आवश्यकसूत्र मे भी कहा गया है—**'आया चेव अहिंसा, आया हिंसत्ति निच्छओ एस'** (आत्मा ही अहिंसा है, आत्मा ही हिंसा है, इस प्रकार का यह निश्चयनय का कथन है।) निष्कर्ष यह है कि प्राणातिपातक्रिया प्राणातिपात के अध्यवसाय से होती है। इसी प्रकार शेष १७ पापस्थानको के अध्यवसाय मे मृषावादादि क्रियाएँ होती हैं, यह समझ लेना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र के अन्तर्गत दूसरा प्रश्न है—वह प्राणातिपातक्रिया किस विषय मे होती है? अर्थात्—प्राणातिपातक्रिया का कारणभूत अध्यवसाय किसके विषय मे होता है? उत्तर मे प्राणातिपातक्रिया के कारणभूत अध्यवसाय का विषय षट्जीवनिकाय बताया गया है। क्योकि मारने का अध्यवसाय जीवविषयक होता है, अजीवविषयक नही। रस्सी आदि मे सर्पादि की बुद्धि से जो मारने का अध्यवसाय होता है, वह भी 'यह साप है' इस बुद्धि से प्रवृत्ति होने से जीव-विषयक ही है। इसीलिए कहा गया कि प्राणातिपातक्रिया षट्जीवनिकायो मे होती है। इसी प्रकार मृषावाद आदि शेष १७ पापस्थानो के अध्यवसाय से होने वाली मृषावादादि क्रिया विभिन्न विषयो को लेकर होती है, यह मूलपाठ से ही समझ लेना चाहिए।[1]

मृषावाद स्वरूप और विषय सत् का अपलाप और असत् का प्ररूपण करना मृषावाद है। मृषावाद का अध्यवसाय लोकगत और अलोकगत समस्त-वस्तु-विषयक होना सम्भव है। इसलिए कहा गया है—'सव्वदव्वेसु' सर्वद्रव्यो के विषय मे मृषावादक्रिया का कारणभूत अध्यवसाय होता है। द्रव्य ग्रहण के उपलक्षण से 'सर्वपर्यायो' के विषय मे भी समझ लेना चाहिए।[2]

अदत्तादान आदि क्रिया के विषय - अदत्तादान उसी वस्तु का हो सकता है, जो वस्तु ग्रहण या धारण की जा सकती है, इसलिए अदत्तादानक्रिया अन्य वस्तुविषयक नही होती, अत. कहा गया है—'गहणधारणिज्जेसु दव्वेसु।' **मैथुनक्रिया** का कारणभूत मैथुनाध्यवसाय भी चित्र, काष्ठ, भित्ति, मूर्ति, पुतला आदि के रूपो या रूपसहगत स्त्री आदि विषयो मे होता है। परिग्रह का अर्थ है स्वत्व या स्वामित्व भाव से मूर्च्छा। वह प्राणियो के अन्तर मे स्थित लोभवश समस्तवस्तुविषयक हो सकती है। इसीलिए कहा गया है—सव्वदव्वेसु।[3]

अभ्याख्यानादि के अर्थ एव विषय अभ्याख्यान—असद् दोषारोपण; यथा अचोर को

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४३७-४३८
२ वही, मलयवृत्ति, पत्र ४३८
३ वही, मलयवृत्ति, पत्र ४३८

तू चोर है' कहना। **पैशुन्य**—किसी के परोक्ष मे झूठे या सच्चे दोष प्रकट करना, चुगली खाना। **परपरिवाद**—अनेक लोगो के समक्ष दूसरे के दोषो का कथन करना। **मायामृषा**—मायासहित झूठ बोलना। यह महाकर्मबन्ध का हेतु है। **मिथ्यादर्शनशल्य**—मिथ्यात्वरूप तीक्ष्ण काटा। अठारह पापस्थानको मे ५ महाव्रतो के अविरति रूप पाच पापस्थानक है। शेष पापस्थानो का इन्ही पाचो मे समावेश हो जाता है।[1]

अट्ठारस एए दंडगा ये (पूर्वोक्त पदो मे उल्लिखित) दण्डक (आलापक) अठारह है। प्राणातिपातादि पापस्थान १८ होने से अठारह पापस्थानो को लेकर जीवो की क्रिया और उसके विषयो का यहा निर्देश किया गया है।[2]

क्रियाहेतुक कर्मप्रकृतिबन्ध की प्ररूपणा

१५८१. [१] जीवे ण भते! पाणाइवाएण कति कम्मपगडीओ बधति?

गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबधए वा।

[१५८१-१ प्र] भगवन्! (एक) जीव (प्राणातिपातक्रिया के कारणभूत) प्राणातिपात (के अध्यवसाय) से कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाँधता है?

[उ] गौतम! सात अथवा आठ कर्मप्रकृतियाँ बाँधता है।

[२] एवं णेरइए जाव णिरंतर वेमाणिए।

[१५८१-२] इसी प्रकार (सामान्य जीव के प्राणातिपात मे बधने वाली कर्मप्रकृतियो के निरूपण के समान) एक नैरयिक से लेकर एक वैमानिक देव तक के (प्राणातिपात के अध्यवसाय से होने वाली कर्मप्रकृतियो के बन्ध का कथन करना चाहिए।)

१५८२. जीवा णं भते! पाणाइवाएण कति कम्मपगडीओ बंधंति?
गोयमा! सत्तविहबंधगा वि अट्ठविहबधगा वि।

[१५८२ प्र] भगवन्! (अनेक) जीव प्राणातिपात से कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधते है?

[उ] गौतम! वे सप्तविध (कर्मप्रकृतियाँ) बाधते है या अष्टविध (कर्मप्रकृतियाँ) बाधते है।

१५८३. [१] णेरइया णं भंते! पाणाइवाएणं कति कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा, अहवा सत्तविहबधगा य अट्ठविहबंधगे य, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबधगा य।

[१५८३-१ प्र] भगवन्! (अनेक) नारक प्राणातिपात से कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधते है?

[उ] गौतम! वे नारक सप्तविध (कर्मप्रकृतियां) बाधते है अथवा (अनेक नारक) सप्तविध (कर्मप्रकृतियो के) बन्धक होते हैं और (एक नारक) अष्टविध (कर्म-) बन्धक होता है, अथवा (अनेक नारक) सप्तविध कर्मबन्धक होते हैं और (अनेक) अष्टविध कर्मबन्धक भी।

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४३८

२ वही, मलयवृत्ति, पत्र ४३८

[२] एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा ।

[१५८३-२] इसी प्रकार (पूर्वोक्त सूत्र के कथन के अनुसार) असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमार तक (के प्राणातिपात के अध्यवसाय से होने वाले कर्म-प्रकृतिबन्ध के तीन-तीन भग समझने चाहिए ।)

[३] पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइकाइया य, एते सव्वे वि जहा ओहिया जीवा (सु. १५८२) ।

[१५८३-३] पृथ्वी-अप्-तेजो-वायु-वनस्पतिकायिक जीवो के (प्राणातिपात से होने वाले कर्मप्रकृतिबन्ध) के विषय मे (सू १५८२ मे उक्त) औधिक (सामान्य-अनेक) जीवो के (कर्मप्रकृति-बन्ध के) समान (कहना चाहिए ।)

[४] अवसेसा जहा णेरइया ।

[१५८३-४] अवशिष्ट समस्त जीवो (वैमानिको तक के, प्राणातिपात से होने वाले कर्म-प्रकृतिबन्ध के विषय मे) नैरयिको के समान (कहना चाहिए ।)

१५८४. [१] एव एते जीवेगिदियवज्जा तिण्णि तिण्णि भगा सव्वत्थ भाणियव्व त्ति जाव मिच्छादंसणसल्लेणं ।

[१५८४-१] इस प्रकार समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो को छोडकर (शेष दण्डको के जीवो के प्रत्येक के) तीन-तीन भग सर्वत्र कहने चाहिए तथा (मृषावाद से लेकर) मिथ्यादर्शनशल्य तक (के अध्यवसायो) से (होने वाले कर्मबन्ध का भी कथन करना चाहिए ।)

[२] एव एगत्त-पोहत्तिया छत्तीसं दडगा होंति ।

[१५८४-२] इस प्रकार एकत्व और पृथक्त्व को लेकर छत्तीस दण्डक होते है ।

विवेचन—प्राणातिपातादि से होने वाले कर्मबन्ध की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रों (१५८१ से १५८४ तक) मे प्राणातिपातादि क्रियाओ के कारणभूत प्राणातिपातादि के अध्यवसाय से होने वाले कर्मप्रकृतिबन्ध की प्ररूपणा की गई है ।

सप्तविध बन्ध और अष्टविध बन्ध कब और क्यो ? एक जीव सप्तविधकर्मबन्ध करता है या अष्टविध कर्मबन्ध करता है । इसका कारण यह है कि जब आयुष्यकर्म-बन्ध नही होता तब सात कर्म-प्रकृतियो का और आयुष्यकर्मबन्धकाल मे आठ कर्मप्रकृतियो का बन्ध होता है । यह एकत्व की दृष्टि से विचार किया गया है । पृथक्त्व की दृष्टि से विचार करने पर सामान्य बहुत-से जीव या तो सप्त-विधबन्धक पाए जाते हैं या अष्टविधबन्धक । ये दोनो जगह सदैव अधिक सख्या मे मिलते है । नैरयिकसूत्र मे सप्तविध बन्धक हैं ही, क्योकि हिंसादि परिणामो से युक्त नारक सदैव बहुत सख्या मे उपलब्ध होते हैं । इसलिए उनके सप्तविधबन्धकत्व मे कोई सन्देह नही है । जब एक भी आयुष्य-बन्धक नही होता, तब सभी सप्तविधबन्धक होते हैं । जब एक आयुष्यबन्धक होता है, तब शेष सब सप्तविधबन्धक होते हैं । जब अष्टविधबन्धक बहुत-से मिलते हैं, तब दोनों मे उभयगत बहुवचन का रूप होता है । अर्थात् अनेक सप्तविधबन्धक और अनेक अष्टविधबन्धक । इस प्रकार तीन भगो से

असुरकुमार आदि दस प्रकार के भवनपति तक का कथन करना चाहिए। पृथ्वीकायिकादि पाच स्थावर प्राय: हिंसा के परिणामो मे परिणत होते हैं, इसलिए सदैव अनेक पाए जाते हैं तथा वे सप्तविधबन्धक या अष्टविधबन्धक होते हैं। शेष द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय, तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय, मनुष्य, वाणव्यन्तर,ज्योतिष्क एव वैमानिको का कथन भगत्रिक के साथ नैरयिको की तरह करना चाहिए।[1]

एगत्तपोहत्तिया छत्तीस दडगा०—प्राणातिपात स मिथ्यादर्शनशल्य तक १८ पापस्थानको के एकत्व और पृथक्त्व के भेद से प्रत्येक के दो-दो दण्डक होने से १८ ही पापस्थानको के कुल ३६ दण्डक होते है।[2]

जीवादि के कर्मबन्ध को लेकर क्रियाप्ररूपणा

१५८५. [१] जीवे णं भते ! णाणावरणिज्ज कम्म बधमाणे कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय पचकिरिए।

[१५८५-१ प्र] भगवन् ! (एक जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बाधता हुआ (कायिकी आदि पाच क्रियाओ मे से) कितनी क्रियाओ वाला होता है ?

[उ] गौतम ! (वह) कदाचित् तीन क्रियाओ वाला, कदाचित् चार क्रियाओ वाला और कदाचित् पाच क्रियाओ वाला होता है।

[२] एव णेरइए जाव वेमाणिए।

[१५८५-२] इसी प्रकार एक नैरयिक मे लेकर (एक) वैमानिक (तक के आलापक कहने चाहिए।)

१५८६. [१] जीवा णं भते ! णाणावरणिज्ज कम्म बधमाणा कतिकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि चउकिरिया वि पचकिरिया वि।

[१५८६-१ प्र] भगवन् ! (अनेक) जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बाधते हुए, कितनी क्रियाओ वाले होते हैं ?

[उ] गौतम ! (वे) कदाचित् तीन क्रियाओ वाले, कदाचित् चार क्रियाओ वाले और कदाचित् पाच क्रियाओ वाले भी होते हैं।

[२] एव णेरइया निरतर जाव वेमाणिया।

[१५८६-२] इस प्रकार (सामान्य अनेक जीवा के आलापक के समान) नैरयिको से (लेकर) लगातार वैमानिको तक (के आलापक कहने चाहिए।)

१५८७. [१] एव दरिसणावरणिज्ज वेयणिज्ज मोहणिज्ज आउय णामं गोयं अंतराइय च अट्ठविहकम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४४०

२. वही, पत्र ४४०

[१५८७-१] इस प्रकार (ज्ञानावरणीय कर्म के समान) दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तरायिक, इन आठो प्रकार की कर्मप्रकृतियो को (बाधता हुआ एक जीव या एक नैरयिक से यावत् वैमानिक, अथवा बाधते हुए अनेक जीवो या अनेक नैरयिको से यावत् वैमानिको को लगने वाली क्रियाओ के आलापक कहने चाहिए।)

[२] **एगत्त-पोहत्तिया सोलस दंडगा।**

[१५८७-२] एकत्व और पृथक्त्व के (आश्रयी कुल) सोलह दण्डक होते हैं।

विवेचन—अष्टविध कर्मबन्धाश्रित क्रियाप्ररूपणा—प्रस्तुत त्रिसूत्री (सू १५८५ से १५८७ तक) मे जीवो के द्वारा प्राणातिपातादि के कारण ज्ञानावरणीयादि कर्म बाधते हुए क्रियाओ के लगने की सख्या की प्ररूपणा की गई है।

प्रस्तुत प्रश्न का आशय - इसी पद मे पहले कहा गया था कि जीव प्राणातिपात आदि पाप-स्थानो के अध्यवसाय से सात या आठ कर्मों को बाधता है, प्रस्तुत मे यह बताया गया है कि वह ज्ञानावरणीयादि कर्म बाधता हुआ कायिकी आदि कितनी क्रियाओ से प्राणातिपात को समाप्त करता है ? तथा यहाँ ज्ञानावरणीय नामक कर्मरूप कार्य मे प्राणातिपात नामक कारण का निवृत्तिभेद भी बताया गया है। उस भेद से बन्धविशेष भी प्रकट किया गया है।[१] कहा भी है तीन, चार या पाच क्रियाओ से क्रमश· हिसा समाप्त (पूर्ण) की जाती है, किन्तु यदि योग और प्रद्वेष का साम्य हो तो इसका विशिष्ट बन्ध होता है।[२]

उत्तर का आशय –उसी प्राणातिपात का निवृत्तिभेद बताते हुए उत्तर मे कहा गया है— कदाचित् वह तीन क्रियाओ वाला होता है, इत्यादि। जब तीन क्रियाओ वाला होता है, तब कायिकी आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रियाओ मे प्राणातिपात का समाप्त करता है। कायिकी से हाथ पैर आदि का प्रयोग (प्रवृत्ति या व्यापार) करता है, आधिकरणिकी से तलवार आदि को जुटाता है या तेज या ठीक करता है, तथा प्राद्वेषिकी मे 'उसे मारू' इस प्रकार का मन मे अशुभ सम्प्रधारण (विचार) करता है। जब वह चार क्रियाओ से युक्त होता है, तब कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी क्रियाओ के उपरान्त चौथी 'पारितापनिकी' क्रिया से युक्त भी हो जाता है, अर्थात—खड्ग आदि के प्रहार (घात) मे पीडा पहुँचा कर पारितापनिकी क्रिया से भी युक्त हो जाता है। जब वह पाच क्रियाओ से युक्त होता है, तब पूर्वोक्त चार क्रियाओ के अतिरिक्त पाचवी प्राणातिपातिकी क्रिया से भी युक्त हो जाता है। अर्थात् उसे जीवन से रहित करके प्राणातिपातक्रिया वाला भी हो जाता है।[३]

'तिकिरिए' आदि पदो का आशय जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बाधते हुए सदैव बहुत-से होते हैं, इस कारण तीन क्रियाओ वाले भी होते है, चार क्रियाओ वाले भी और पाच क्रियाओ वाले भी होते है। इस प्रकार एक जीव, एक नैरयिकादि, तथा अनेक जीव या अनेक नैरयिकादि चौवीस दण्डकवर्ती जीवो को लेकर क्रियाओ की चर्चा की गई है।[४]

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४४०

२. तिसृभिश्चतसृभिरथ पञ्चभिश्च (क्रियाभिः) हिंसा समाप्यते क्रमशः। बन्धोऽस्य विशिष्टः स्याद्, योग-प्रद्वेषसाम्य चेत्॥—प्रज्ञापना मलयवृत्ति, प ४४०

३ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४४०

४. वही, मलयवृत्ति पत्र ४४०

सोलह दण्डक ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों (कर्मप्रकृतियों) के बन्ध को लेकर प्रत्येक कर्म के आश्रयी एकत्व और पृथक्त्व के भेद से दो-दो दण्डक कहने चाहिए। इस प्रकार सब दण्डकों की संख्या १६ होती है।[1]

जीवादि में एकत्व और पृथक्त्व से क्रियाप्ररूपणा

१५८८. जीवे णं भंते! जीवाओ कतिकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए सिय अकिरिए।

[१५८८ प्र] भगवन्! (एक) जीव, (एक) जीव की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाला होता है?

[उ] गौतम! (वह) कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला, कदाचित् पांच क्रियाओं वाला और कदाचित् अक्रिय (क्रियारहित) होता है।

१५८९ [१] जीवे ण भंते! णेरइयाओ कतिकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए सिय चतुकिरिए सिय अकिरिए।

[१५८९-१ प्र] भगवन्! (एक) जीव, (एक) नारक की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाला होता है?

[उ] गौतम! (वह) कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला और कदाचित् अक्रिय होता है।

[२] एवं जाव थणियकुमाराओ।

[१५८९-२] इसी प्रकार (पूर्वोक्त एक जीव की एक नारक की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक के समान) एक जीव की, एक असुरकुमार से लेकर (एक) स्तनितकुमार की अपेक्षा से (क्रिया सम्बन्धी आलापक कहने चाहिए।)

[३] पुढविक्काइय-आउक्काइय-तेउक्काइय-वाउक्काइय-वणस्सइकाइय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियतिरिक्खजोणिय-मणूसाओ जहा जीवाओ (सु. १५८८)।

[१५८९-३] (एक जीव का एक पृथ्वीकायिक, अप्कायिक तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक एवं एक मनुष्य की अपेक्षा से (क्रियासम्बन्धी आलापक सू १५८८ में उक्त एक जीव की अपेक्षा से क्रियासम्बन्धी आलापक के समान कहने चाहिए।)

[४] वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाओ जहा णेरइयाओ (सु. १५८९)।

[१५८९-४] (इसी तरह एक जीव का एक वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक की अपेक्षा क्रियासम्बन्धी आलापक (सू. १५८९-१ में उक्त) (एक) नैरयिक की अपेक्षा से क्रियासम्बन्धी आलापक के समान कहने चाहिए।

---

१. प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्र ४४१

१५९०. जीवे णं भंते ! जीवेहितो कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए सिय अकिरिए ।

[१५९० प्र] भगवन् ! (एक) जीव, (अनेक) जीवो की अपेक्षा से कितनी क्रियाओ वाला होता है ?

[उ.] गौतम ! (वह) कदाचित् तीन क्रियाओ वाला, कदाचित् चार क्रियाओ वाला, कदाचित् पाच क्रियाओ वाला और कदाचित् अक्रिय होता है ।

१५९१. जीवे ण भते ! णेरइएहितो कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय अकिरिए । एव जहेव पढमो दंडओ तहा एसो वि बितिओ भाणियव्वो ।

[१५९१ प्र] भगवन् ! (एक) जीव, (अनेक) नैरयिको की अपेक्षा से कितनी क्रियाओ वाला होता है ?

[उ] गौतम ! कदाचित् तीन क्रियाओ वाला, कदाचित् चार क्रियाओ वाला और कदाचित् अक्रिय होता है । इस प्रकार जैसा प्रथम दडक है वैसे ही यह द्वितीय दडक भी कहना चाहिये ।

१५९२ जीवा ण भते ! जीवाओ कतिकिरिया ?

गोयमा ! सिय तिकिरिया वि सिय चउकिरिया वि सिय पचकिरिया वि सिय अकिरिया वि ।

[१५९२ प्र] भगवन् ! (अनेक) जीव, (एक) जीव की अपेक्षा से कितनी क्रियाओ वाले होते हैं ?

[उ] गौतम ! कदाचित् तीन क्रियाओ वाले, कदाचित चार क्रियाओ वाले, कदाचित् पाच क्रियाओ वाले भी और कदाचित् अक्रिय होते हैं ।

१५९३. जीवा ण भते ! णेरइयाओ कतिकिरिया ?

गोयमा ! जहेव आइल्लदंडओ तहेव भाणियव्वो जाव वेमाणिय त्ति ।

[१५९३ प्र] भगवन् ! (अनेक) जीव, (एक) नैरयिक की अपेक्षा से कितनी क्रियाओ वाले होते हैं ?

[उ.] गौतम ! जिस प्रकार प्रारम्भिक दण्डक (सू १५८९-१) मे (कहा गया था,) उसी प्रकार से, (यह दण्डक भी) वैमानिक तक कहना चाहिए ।

१५९४. जीवा ण भते ! जीवेहितो कतिकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि चउकिरिया वि पंचकिरिया वि अकिरिया वि ।

[१५९४ प्र] भगवन् ! (अनेक) जीव, (अनेक) जीवो की अपेक्षा से कितनी क्रियाओ वाले होते हैं ?

[उ] गौतम ! (वे) तीन क्रियाओ वाले भी होते हैं, चार क्रियाओ वाले भी, पाच क्रियाओ वाले भी और अक्रिय भी होते हैं ।

१५९५ [१] जीवा णं भंते ! णेरइएहिंतो कतिकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि चउकिरिया वि अकिरिया वि ।

[१५९५-१ प्र] भगवन् ! (अनेक) जीव, (अनेक) नारको की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं ?

[उ.] गौतम ! (वे) तीन क्रियाओं वाले भी होते हैं, चार क्रियाओं वाले भी और अक्रिय भी होते हैं।

[२] असुरकुमारेहिंतो वि एवं चेव जाव वेमाणिएहिंतो । [णवरं] ओरालियसरीरेहिंतो जहा जीवेहिंतो (सु. १५९४) ।

[१५९५-२ प्र] इसी प्रकार (पूर्वोक्त आलापक के समान) अनेक जीवों के अनेक असुरकुमारों से (ले कर) यावत् (अनेक) वैमानिकों की अपेक्षा से (क्रियासम्बन्धी आलापक कहने चाहिए।) विशेष यह है कि (अनेक) औदारिकशरीरधारकों (पृथ्वीकायिकादि पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय एवं मनुष्यों) की अपेक्षा से (जब क्रियासम्बन्धी आलापक कहने हों, तब सू. १५९४ में उक्त अनेक) जीवों की अपेक्षा से क्रियासम्बन्धी आलापक के समान (कहने चाहिए।)

१५९६. णेरइए णं भंते ! जीवाओ कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए ।

[१५९६ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक, (एक) जीव की अपेक्षा से कितनी क्रिया वाला होता है ?

[उ.] गौतम ! (वह) कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला और कदाचित् पांच क्रियाओं वाला होता है।

१५९७. [१] णेरइए णं भंते ! णेरइयाओ कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए ।

[१५९७-१ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक (एक) नैरयिक की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाला होता है ?

[उ.] गौतम ! (वह) कदाचित् तीन क्रियाओं वाला और कदाचित् चार क्रियाओं वाला होता है।

[२] एवं जाव वेमाणियाओ ! णवरं ओरालियसरीराओ जहा जीवाओ (सु. १५९६) ।

[१५९७-२] इसी प्रकार (पूर्वोक्त आलापक के समान एक असुरकुमार से लेकर) यावत् एक वैमानिक की अपेक्षा से (क्रियासम्बन्धी आलापक कहने चाहिए।) विशेष यह है कि (एक) औदारिकशरीरधारक जीव की अपेक्षा से (जब क्रियासम्बन्धी आलापक कहने हों, तब सू. १५९६ में कथित एक) जीव की अपेक्षा से (क्रियासम्बन्धी आलापक) के समान (कहने चाहिए।)

१५९८. णेरइए णं भंते ! जीवेहिंतो कइकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए ।

[१५९८ प्र] भगवन् ! (एक) नारक, (अनेक) जीवो की अपेक्षा से कितनी क्रियाओ वाला होता है ?

[उ] गौतम ! (वह) कदाचित् तीन क्रियाओ वाला, कदाचित् चार क्रियाओ वाला और कदाचित् पाच क्रियाओ वाला होता है ।

१५९९ [१] णेरइए णं भंते ! णेरइएहिंतो कइकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए । एव जहेव पढमो दंडओ तहा एसो वि बितिओ भाणियव्वो ।

[१५९९-१ प्र] भगवन् ! एक नैरयिक, अनेक नैरयिको की अपेक्षा से कितनी क्रियाओ वाला होता है ?

[उ] गौतम ! (वह) कदाचित् तीन क्रियाओ वाला और कदाचित् चार क्रियाओ वाला होता है । इस प्रकार जैसे प्रथम दण्डक कहा है उसी प्रकार यह द्वितीय दण्डक भी कहना चाहिए ।

[२] एव जाव वेमाणिएहिंतो । णवर णेरइयस्स णेरइएहिंतो देवेहिंतो य पचमा किरिया णत्थि ।

[१५९९-२] इसी प्रकार (पूर्वोक्त आलापक के समान) यावत् अनेक वैमानिको की अपेक्षा से (क्रियासम्बन्धी आलापक कहने चाहिए ।) विशेष यह है कि (एक) नैरयिक के (अनेक) नैरयिको की अपेक्षा से (क्रिया सम्बन्धी आलापक मे) पचम क्रिया नही होती है ।

१६०० णेरइया ण भंते ! जीवाओ कतिकिरिया ?

गोयमा ! सिय तिकिरिया सिय चउकिरिया सिय पचकिरिया ।

[१६०० प्र] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक, (एक) जीव की अपेक्षा से कितनी क्रियाओ वाले होते हैं ?

[उ] गौतम ! कदाचित् तीन क्रियाओ वाले, कदाचित् चार क्रियाओ वाले और कदाचित् पाच क्रियाओ वाले होते हैं ।

१६०१. एव जाव वेमाणियाओ । णवर णेरइयाओ देवाओ य पचमा किरिया णत्थि ।

[१६०१] इसी प्रकार (पूर्वोक्त आलापक के समान एक असुरकुमार से ले कर) यावत् एक वैमानिक की अपेक्षा से (क्रियासम्बन्धी आलापक कहने चाहिए ।) विशेष यह है कि (एक) नैरयिक या (एक) देव की अपेक्षा मे (क्रियासम्बन्धी आलापक मे) पचम क्रिया नही होती ।

१६०२. णेरइया णं भंते । जीवेहिंतो कतिकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि चउकिरिया वि पचकिरिया वि ।

[१६०२ प्र] भगवन् ! (अनेक) नारक, (अनेक) जीवो की अपेक्षा से कितनी क्रियाओ वाले होते हैं ?

[उ.] गौतम ! (वे) तीन क्रियाओ वाले भी होते हैं, चार क्रियाओ वाले भी और पाच क्रियाओं वाले भी होते हैं ।

१६०३. [१] णेरइया णं भंते ! णेरइएहिंतो कतिकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि चउकिरिया वि ।

[१६०३-१ प्र.] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक, (अनेक) नैरयिको की अपेक्षा से कितनी क्रियाओ वाले होते हे ?

[उ] गौतम ! (वे) तीन क्रियाओ वाले भी होते हैं और चार क्रियाओ वाले भी होते हैं ।

[२] एवं जाव वेमाणिएहिंतो । णवर ओरालियसरीरेहिंतो जहा जीवेहिंतो (सु १६०२) ।

[१६०३-२] इसी प्रकार (अनेक असुरकुमारो से लेकर) अनेक वैमानिको की अपेक्षा से, क्रियासम्बन्धी आलापक कहने चाहिए । विशेष यह है कि अनेक औदारिकशरीरधारी जीवो की अपेक्षा से, (क्रियासम्बन्धी आलापक सू १६०२ मे कथित अनेक) जीवो के क्रियासम्बन्धी आलापक के समान (कहने चाहिए ।)

१६०४. [१] असुरकुमारे णं भंते ! जीवातो कतिकिरिए ?

गोयमा ! जहेव णेरइएणं चत्तारि दंडगा (सु. १५९६-९९) तहेव असुरकुमारेण वि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा । एवं उवउज्जिऊण भावेयव्व ति—जीवे मणूसे य अकिरिए वुच्चति, सेसा अकिरिया ण वुच्चति, सव्वे जोवा ओरालियसरीरेहिंतो पचकिरिया, णेरइय-देवेहिंतो य पचकिरिया ण वुच्चति ।

[१६०४-१ प्र] भगवन् ! (एक) असुरकुमार, एक जीव की अपेक्षा से कितनी क्रियाओ वाला होता है ?

[उ] गौतम ! जैसे (सू १५९६ से १५९९ तक मे एक) नारक की अपेक्षा से क्रियासम्बन्धी) चार दण्डक (कहे गए) है, वैसे ही (एक) असुरकुमार की अपेक्षा से भी (क्रियासम्बन्धी) चार दण्डक कहने चाहिए ।

इस प्रकार का उपयोग लगाकर विचार कर लेना चाहिए कि एक जीव और एक मनुष्य ही अक्रिय कहा जाता है, शेष सभी जीव अक्रिय नही कहे जाते । सर्व जीव, औदारिक शरीरधारी अनेक जीवो की अपेक्षा से—पाच क्रिया वाले होते हैं । नारको और देवो की अपेक्षा से पाच क्रियाओ वाले नही कहे जाते ।

[२] एव एक्केक्कजीवपए चत्तारि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा । एव एय दंडगसयं । सव्वे वि य जीवादीया दंडगा ।

[१६०४-२] इस प्रकार एक-एक जीव के पद मे चार-चार दण्डक कहने चाहिए । यो कुल मिलाकर सौ दण्डक होते हैं । ये सब एक जीव आदि से सम्बन्धित दण्डक हैं ।

विवेचन—जीवो को दूसरे जीवों की अपेक्षा से लगने वाली क्रियाओ की प्ररूपणा—प्रस्तुत १७ सूत्रो (१५८८ से १६०४) में जीवो के, दूसरे जीवो की अपेक्षा से लगने वाली क्रियाओ की प्ररूपणा की गई है ।

प्रस्तुत सूत्रावली में पूर्वोक्त कायिकी आदि पांच क्रियाओं का ही विचार किया गया है। वृत्तिकार के अनुसार—यहाँ केवल वर्तमान भव मे होने वाली कायिकी आदि क्रियाएँ अभिप्रेत नही, किन्तु अतीतजन्म के काय-शरीरादि से अन्य जीवो द्वारा होने वाली क्रियाएँ भी यहाँ अभिप्रेत हैं, क्योकि अतीतजन्म के शरीरादि का उसके स्वामी ने प्रत्याख्यान (व्युत्सर्ग) नही किया। इसलिए उन शरीरादि मे से जो कुछ भी निर्माण हो अथवा उससे शस्त्रादि बनाकर किसी को परितापना दी गई या किसी की हिंसा की गई हो अर्थात्—उक्त भूतकाल के शरीरादि से अन्यजीव जो कुछ भी क्रिया करे, उन सबके लिए उस शरीरादि का भूतपूर्व स्वामी जिम्मेदार है, क्योकि उस जीव ने अपने स्वामित्व के शरीरादि का व्युत्सर्ग (परित्याग) नही किया, उसके प्रति जो ममत्व था, उसका विसर्जन (त्याग) नही किया। जब तक उस भूतपूर्व शरीरादि का व्युत्सर्ग जीव नही करता, तब तक उससे सम्बन्धित क्रियाएँ लगती रहती हैं। हाँ, अगर पूर्वजन्म के शरीर का ममत्व विसर्जन कर देता है, तो उससे कोई क्रिया नही लगती, क्योकि वह उससे सर्वथा निवृत्त हो चुका है।[1]

व्याख्या—एक जीव की अपेक्षा से एक जीव को जो क्रियाएँ (३, ४ या ५) लगती है, वे वर्तमान जन्म को लेकर लगती है। अतीतभव को लेकर कायिकी आदि तीन, चार या पाच क्रियाएँ एक जीव को इस प्रकार लगती है—कायिकी तब लगती है जब उसके पूर्वजन्म से सम्बन्धित अविसर्जित शरीर या शरीर के एक देश का प्रयोग किया जाता है। आधिकरणिकी तब लगती है, जब उसके पूर्वजन्म के शरीर से सयोजित हल, मूसल, खड्ग आदि अधिकरणो का दूसरो के घात के लिए उपयोग किया जाता है। प्राद्वेषिकी तब लगती है, जब पूर्वजन्मगत शरीरादि का ममत्व विसर्जन (प्रत्याख्यान) न किया हो और तद्विषयक बुरे परिणाम मे कोई प्रवृत्त हो रहा हो। पारितापनिकी तब होती है, जब अव्युत्सृष्ट काया से या काया के एकदेश से कोई व्यक्ति दूसरो को परिताप (सताप) दे रहा हो और प्राणातिपातक्रिया तब होती है, जब उस अव्युत्सृष्ट काय से दूसरे का घात कर दिया जाए। अक्रिय तब होता है, जब कोई व्यक्ति पूर्वजन्म के शरीर या शरीर से सम्बद्ध साधन का तीन करण तीन योग से व्युत्सर्ग कर देता है। तब उस जन्मभावी शरीर से कुछ भी क्रिया नही करता या की जाती। यह अक्रियता मनुष्य की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि मनुष्य ही सर्वविरत हो सकता है। देवो और नारको के जीवन का घात असम्भव है, क्योकि देव और नारक अनपवर्त्य (निरुपक्रम) आयुवाले होते हैं। उनकी अकालमृत्यु कदापि नही होती। अतएव उनके विषय मे पचम क्रिया नही हो सकती।[2]

द्वीन्द्रियादि की अपेक्षा से नारक को कायिकी आदि क्रियाएँ—जिस नारक ने पूर्वभव के शरीर का जब तक विसर्जन नही किया, उस नारक का शरीर तब तक पूर्वभावप्रज्ञापना से रिक्त घी के घडे की तरह 'उसका' कहलाता है। उस शरीर के हड्डी आदि एक देश से भी कोई दूसरा किसी का प्राणातिपात (घात) करता है तो पूर्वजन्मगत उस शरीर का स्वामी जीव भी कायिकी आदि क्रियाओं से संलग्न हो जाता है, क्योकि उसने उस शरीर का व्युत्सर्ग नही किया था। जब उस जीव के शरीर के एकदेश को अभिघात (प्रहार) आदि मे समर्थ जान कर कोई व्यक्ति

---

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४४२

(ख) पण्णवणासुत्त (प्रस्तावनादि) भा २, पृ १२३

२ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४४२

प्राणातिपात के लिए उद्यत हो, उसे देख कर द्वीन्द्रियादि घात्य जीव पर क्रोधादि उत्पन्न होने से मारने के लिए यह शस्त्र शक्तिशाली है, ऐसा चिन्तन करता हुआ अत्यन्त क्रोध आदि का परिणाम करता है, पीड़ा पहुँचाता है, प्राणनाश करता है, तो प्राद्वेषिकी आदि तीनों क्रियाएँ होती हैं ।[1]

सौ दण्डक—सामान्यतया जीवपद मे एक दण्डक और नैरयिक आदि के २४ दण्डक, ये दोनो मिलाकर २५ दण्डक हुए । फिर एक-एक पद के चार-चार—(एक जीव, अनेक जीव, एक नारक, अनेक नारक) दण्डक हुए । इस प्रकार २५ × ४ = १०० दण्डक हुए ।[2]

चौवीस दण्डकों में क्रियाप्ररूपणा

१६०५. कति णं भंते ! किरियाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ । तं जहा—काइया जाव पाणाइवायकिरिया ।

[१६०५ प्र] भगवन् ! क्रियाएँ कितनी कही गई हैं ?

[उ] गौतम ! क्रियाएँ पाच कही गई है, वे इस प्रकार—कायिकी यावत् प्राणातिपात-क्रिया ।

१६०६. [१] णेरइयाणं भंते ! कति किरियाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! पच किरियाओ पण्णत्ताओ । त जहा—काइया जाव पाणाइवायकिरिया ।

[१६०६-१ प्र] भगवन् ! नारको के कितनी क्रियाएँ कही गई हैं ?

[उ] गौतम ! (उनके) पाच क्रियाएँ कही गई हैं, यथा—कायिकी यावत् प्राणतिपातक्रिया ।

[२] एवं जाव वेमाणियाणं ।

[१६०६-२] इसी प्रकार (का क्रियासम्बन्धी कथन असुरकुमार से लेकर) वैमानिको के (सम्बन्ध मे करना चाहिए ।)

विवेचन—क्रिया : प्रकार और चौवीस दण्डकव्याप्ति—प्रस्तुत दो सूत्रो (१६०५-१६०६) मे क्रिया के पूर्वोक्त पाच प्रकार बताकर उनकी चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे व्याप्ति की प्ररूपणा की गई है ।

जीवादि में क्रियाओं के सहभाव की प्ररूपणा

१६०७. जस्स णं भंते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स आहिगरणिया किरिया कज्जति ? जस्स आहिगरणिया किरिया कज्जति तस्स काइया किरिया कज्जति ?

गोयमा ! जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जति तस्स आहिगरणी णियमा कज्जति, जस्स आहिगरणी किरिया कज्जति तस्स वि काइया किरिया णियमा कज्जति ।

[१६०७ प्र] भगवन् ! जिस जीव के कायिकीक्रिया होती है, क्या उसके आधिकरणिकीक्रिया होती है ? (तथा) जिस जीव के आधिकरणिकीक्रिया होती है, क्या उसके कायिकीक्रिया होती है ?

---

१. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४४३

२. वही, पत्र ४४३

[उ.] गौतम ! जिस जीव के कायिकीक्रिया होती है, उसके नियम से आधिकरणिकीक्रिया होती है और जिसके आधिकरणिकीक्रिया होती है, उसके भी नियम से कायिकीक्रिया होती है।

१६०८. जस्स णं भंते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जति तस्स पाओसिया किरिया कज्जति ? जस्स पाओसिया किरिया कज्जति तस्स काइया किरिया कज्जति ?

गोयमा ! एवं चेव।

[१६०८ प्र.] भगवन् ! जिस जीव के कायिकीक्रिया होती है क्या उसके प्राद्वेषिकीक्रिया होती है ? और जिसके प्राद्वेषिकीक्रिया होती है, क्या उसके कायिकीक्रिया होती है ?

[उ.] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत् दोनो परस्पर नियम से समझना चाहिए।)

१६०९. जस्स ण भंते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जति तस्स पारियावणिया किरिया कज्जति, जस्स पारियावणिया किरिया कज्जति तस्स काइया किरिया कज्जति ?

गोयमा ! जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जति तस्स पारियावणिया किरिया सिय कज्जति सिय णो कज्जति, जस्स पुण पारियावणिया किरिया कज्जति तस्स काइया नियमा कज्जति।

[१६०९ प्र.] भगवन् ! जिस जीव के कायिकीक्रिया होती है, क्या उसके पारितापनिकी क्रिया होती है ? तथा जिसके पारितापनिकी क्रिया होती है, क्या उसके कायिकीक्रिया होती है ?

[उ.] गौतम ! जिस जीव के कायिकीक्रिया होती है, उसके पारितापनिकीक्रिया कदाचित् होती है और कदाचित् नही होती है, किन्तु जिसके पारितापनिकीक्रिया होती है, उसके कायिकीक्रिया नियम से होती है।

१६१०. एवं पाणाइवायकिरिया वि।

[१६१०] इसी प्रकार (पारितापनिकी और कायिकी क्रिया के परस्पर सहभाव-कथन के समान) प्राणातिपातक्रिया (और कायिकीक्रिया) का (परस्पर सहभाव-कथन भी करना चाहिए।)

१६११. एव आदिल्लाओ परोप्पर नियमा तिण्णि कज्जंति। जस्स आदिल्लाओ तिण्णि कज्जंति तस्स उवरिल्लाओ दोण्णि सिय कज्जति सिय णो कज्जति। जस्स उवरिल्लाओ दोण्णि कज्जंति तस्स आइल्लाओ तिण्णि नियमा कज्जंति।

[१६११] इस प्रकार प्रारम्भ की तीन क्रियाओ का परस्पर सहभाव नियम से होता है। जिसके प्रारम्भ की तीन क्रियाएँ होती है, उसके आगे की दो क्रियाएँ (पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया) कदाचित् होती हैं, कदाचित् नही होती है (परन्तु) जिसके आगे की दो क्रियाएँ होती हैं, उसके प्रारम्भ की तीन क्रियाएँ (कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी) नियम से होती हैं।

१६१२. तस्स णं भंते ! जीवस्स पारियावणिया किरिया कज्जति तस्स पाणाइवायकिरिया कज्जति ? जस्स पाणाइवायकिरिया कज्जति तस्स पारियावणिया किरिया कज्जति ?

गोयमा ! जस्स णं जीवस्स पारियावणिया किरिया कज्जति तस्स पाणाइवायकिरिया सिय

कज्जति सिय णो कज्जति, जस्स पुण पाणाइवायकिरिया कज्जति तस्स पारियावणिया किरिया नियमा कज्जति ।

[१६१२ प्र] भगवन् ! जिसके पारितापनिकीक्रिया होती है, क्या उसके प्राणातिपातक्रिया होती है ? (तथा) जिसके प्राणातिपातक्रिया होती है, क्या उसके ारितापनिकीक्रिया होती है ?

[उ] गौतम ! जिस जीव के पारितापनिकीक्रिया होती है, उसके प्राणातिपातक्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नही भी होती है; किन्तु जिस जोव के प्राणातिपातक्रिया होती है, उसके पारितापनिकीक्रिया नियम से होतो है ।

१६१३. [१] जस्स णं भंते ! णेरइयस्स काइया किरिया कज्जति तस्स आहिगरणिया किरिया कज्जति ?

गोयमा ! जहेव जीवस्स (सु. १६०७—१२) तहेव णेरइयस्स वि ।

[१६१३-१ प्र] भगवन् ! जिस नैरयिक के कायिकीक्रिया होती है क्या उसके आधिकरणिकीक्रिया होती है ?

[उ] गौतम ! जिस प्रकार (सू १६०७ से १६१२ तक मे) जीव (सामान्य) मे (कायिकी आदि क्रियाओ के परस्पर सहभाव की चर्चा की है) उसी प्रकार नैरयिक के सम्बन्ध मे भी (समझ लेनी चाहिए ।)

[२] एवं निरंतरं जाव वेमाणियस्स ।

[१६१३-२] इसी प्रकार (नारक के समान) वैमानिक तक (क्रियाओ के परस्पर सहभाव का कथन करना चाहिए।)

१६१४. ज समय ण भंते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जति तं समयं आहिगरणिया किरिया कज्जति ? जं समयं आहिगरणिया किरिया कज्जति तं समयं काइया किरिया कज्जति ?

एवं जहेव आइल्लओ दंडओ भणिओ (सु. १६०७-१३) तहेव भाणियव्वो जाव वेमाणियस्स ।

[१६१४ प्र] भगवन् ! जिस समय जीव के कायिकीक्रिया होती है, क्या उस समय उसके आधिकरणिकीक्रिया होती है ? (तथा) जिस समय उसके आधिकरणिकीक्रिया होती है, क्या उस समय कायिकीक्रिया होती है ?

[उ.] (गौतम !) जिस प्रकार (सू १६०७ से १६१३ तक मे) क्रियाओ के परस्पर सहभाव के सम्बन्ध मे प्रारम्भिक दण्डक कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी वैमानिक तक कहना चाहिए ।

१६१५. जं देसं णं भंते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जति तं देसं ण आहिगरणिया किरिया कज्जति ?

तहेव जाव वेमाणियस्स ।

[१६१५ प्र] (भगवन् !) जिस देश मे जीव के कायिकीक्रिया होती है, क्या उस देश में प्राधिकरणिकीक्रिया होती है ?

[उ.] (यहाँ भी) उसी (पूर्वोक्त सूत्रो की) तरह वैमानिक तक (कहना चाहिए।)

१६१६. [१] जं पएस ण भते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जति त पएसं आहिगरणिया किरिया कज्जति ?

एवं तहेव जाव वेमाणियस्स ।

[१६१६-१ प्र.] (भगवन् !) जिस प्रदेश मे जीव के कायिकीक्रिया होती है, क्या उस प्रदेश मे आधिकरणिकीक्रिया होती है ?

[उ] (गौतम !) (यहाँ भी) उसी (पूर्वोक्त सूत्रो की) तरह वैमानिक तक (कहना चाहिए।)

[२] एवं एते जस्स १, जं समयं २, जं देसं ३, ज पएसं ण ४ चत्तारि दडगा होंति ।

[१६१६-२] इस प्रकार (१) जिस जीव के (२) जिस समय मे (३) जिस देश मे और (४) जिस प्रदेश मे ये चार दण्डक होते हैं।

विवेचन—क्रियाओ के परस्पर सहभाव की विचारणा—प्रस्तुत १० सूत्रो (सू १६०७ से १६१६ तक) मे पूर्वोक्त पांच क्रियाओं के १ जीव, २ समय, ३ देश और ४ प्रदेश की दृष्टि से, परस्पर सहभाव की विचारणा की गई है ।

निष्कर्ष—प्रारम्भ की तीन क्रियाएँ जीव मे नियम से, परस्पर सहभाव के रूप मे रहती हैं, किन्तु इन प्रारम्भिक तीन क्रियाओ के साथ आगे की दो क्रियाएँ कदाचित् रहती हैं, कदाचित् नही रहती हैं। मगर जिस जीव मे आगे की दो क्रियाएँ होती हैं, उसमे प्रारम्भ की तीन क्रियाएँ अवश्य होती हैं। प्राणातिपात और पारितापनिकी क्रिया एक जीव मे कदाचित् एक साथ होती हैं, कदाचित् नही भी होती हैं। सामान्य जीव की तरह चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे इन क्रियाओ के सहभाव के ये ही नियम हैं। जीव मे क्रिया-सहभाव सम्बन्धी आलापक के समान देश और प्रदेश मे क्रिया-सहभाव सम्बन्धी आलापक कहने चाहिए।[1]

कायिकी आदि का परस्पर सहभाव : नियम से या विकल्प से ?—काय एक प्रकार का अधिकरण भी हो जाता है, इसलिए कायिकीक्रिया होने पर आधिकरणिकी अवश्यमेव होती है और आधिकरणिकी होने पर कायिकी भी अवश्य होती है और वह विशिष्ट कायिकीक्रिया प्रद्वेष के विना नही होती, इसलिए प्राद्वेषिकीक्रिया के साथ भी कायिकी का अविनाभावसम्बन्ध है। वैसी क्रिया के समय शरीर पर प्रद्वेष के चिह्न (वक्रता, रूक्षता, कठोरता आदि) स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। इसलिए कायिकी के साथ प्राद्वेषिकी प्रत्यक्षत. उपलब्ध होती है।[2]

प्रारम्भ की तीन क्रियाओ का सहभाव होने पर भी परितापन और प्राणातिपात इन दोनों के सहभाव का कोई नियम नही होता, क्योकि जब कोई घातक वध्य मृगादि को धनुष खींच कर वाणादि

---

१. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ ३५५-३५६

२ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४४४-४४५

से बाँध देता है, उसके पश्चात् उसका परितापन या मरण होता है, अन्यथा नहीं। अतः इन दोनो का सहभाव नियम से नही होता। अर्थात् पारितापनिकी क्रिया के होने पर भी प्राणातिपातक्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नही होती। जब बाण आदि के प्रहार से जीव को प्राणरहित कर दिया जाता है, तब प्राणातिपातक्रिया होती है, शेष समय मे नही होती, किन्तु जिसके प्राणातिपातक्रिया होती है, उसके नियम से पारितापनिकीक्रिया होती है, क्योकि परितापना के बिना प्राणघात असम्भव है।[1]

जीव आदि में आयोजिताक्रिया की प्ररूपणा

१६१७. कति णं भंते ! आओजिताओ किरियाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! पच आओजिताओ किरियाओ पण्णत्ताओ। त जहा—काइया जाव पाणाइवाय किरिया।

[१६१७ प्र.] भगवन् ! आयोजिता (जीव को ससार मे आयोजित करने—जोडने—वाली) क्रियाएँ कितनी कही गई हैं ?

[उ.] गौतम ! आयोजिताक्रियाएँ पाच कही गई हैं, यथा—कायिकी यावत् प्राणातिपात क्रिया।

१६१८. एव णेरइयाणं जाव वेमाणियाण।

[१६१८] नैरयिको से लेकर वैमानिको तक (इन पाचो आयोजिताक्रियाओ का) इसी प्रकार (कथन करना चाहिए।)

१६१९. जस्स णं भते ! जीवस्स काइया आओजिया किरिया अत्थि तस्स आहिगरणिया आओजिया किरिया अत्थि ? जस्स आहिगरणिया आओजिया किरिया अत्थि तस्स काइया आओजिया किरिया अत्थि ?

एव एतेणं अभिलावेणं ते चेव चत्तारि दंडगा भाणियव्वा जस्स १ जं समयं २ जं देस ३ ज पदेसं ४ जाव वेमाणियाणं।

[१६१९ प्र] भगवन् ! जिस जीव के कायिकी-आयोजिताक्रिया होती है, क्या उसके आधिकरणिकी-आयोजिताक्रिया होती है ? (और) जिसके आधिकरणिकी-आयोजिताक्रिया होती है, क्या उसके कायिकी-आयोजिताक्रिया होती है ?

[उ.] इस प्रकार (सू. १६०७ से १६१६ मे उक्त आलापको के समान यहाँ भी) इस (तथा अन्य अभिलाप के साथ (१) जिस जीव मे, (२) जिस समय मे, (३) जिस देश मे और (४) जिस प्रदेश मे—ये चारो दण्डक यावत् वैमानिको तक कहने चाहिए।

विवेचन—आयोजिताक्रियाएँ और उनका सहभाव—प्रस्तुत त्रिसूत्री (१६१७ से १६१९ तक) मे पाच आयोजिताक्रियाओ का तथा जीव, समय, देश, प्रदेश के उसके परस्पर सहभाव का कथन अतिदेशपूर्वक किया गया है।

---

१. प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्र ४४५

आयोजिताक्रिया : विशेषार्थ—जो क्रियाएँ जीव को ससार मे आयोजित करने—जोड़ने वाली हैं अर्थात्—जो ससारपरिभ्रमण की कारणभूत हैं, वे आयोजिताक्रियाएँ कहलाती हैं। यद्यपि क्रियाएँ साक्षात् कर्मबन्धन की हेतु हैं, किन्तु परम्परा से वे ससार की कारण भी हैं। क्योकि ज्ञानावरणीयादि कर्मबन्ध ससार का कारण है। इमीलिए उपचार से या परम्परा से ये क्रियाएँ भी ससार की कारण कही गई हैं।[1]

जीव में क्रियाओं के स्पृष्ट-अस्पृष्ट की चर्चा

१६२०. जीवे णं भंते ! ज समय काइयाए ग्राहिगरणियाए पाग्रोसियाए किरियाए पुट्ठे त समयं पारियावणियाए किरियाए पुट्ठे ? पाणाइवायकिरियाए पुट्ठे ?

गोयमा ! अत्थेगइए जीव एगइयाओ जीवाग्रो जं समय काइयाए ग्राहिगरणियाए पाग्रोसियाए किरियाए पुट्ठे तं समय पारियावणियाए किरियाए पुट्ठे पाणाइवायकिरियाए पुट्ठे १, अत्थेगइए जीवे एगइयाग्रो जीवाग्रो ज समयं काइयाए ग्राहिगरणियाए पाग्रोसियाए किरियाए पुट्ठे त समय पारियावणियाए किरियाए पुट्ठे पाणाइवायकिरियाए अपुट्ठे २, अत्थेगइए जीवे एगइयाग्रो जीवाग्रो ज समय काइयाए ग्राहिगरणियाए पाग्रोसियाए किरियाए पुट्ठे त समयं पारियावणियाए किरियाए अपुट्ठे पाणाइवायकिरियाए अपुट्ठे ३, अत्थेगइए जीवे एगइयाग्रो जीवाग्रो ज समय काइयाए ग्राहिगरणियाए पाग्रोसियाए किरियाए अपुट्ठे त समय पारियावणियाए किरियाए अपुट्ठे पाणाइवायकिरियाए अपुट्ठे ४।

[१६२०] भगवन् ! जिस समय जीव कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, क्या उस समय पारितापनिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है अथवा प्राणातिपातिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है।

[उ.] गौतम ! (१) कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, अधिकारणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, उस समय पारितापनिकीक्रिया से स्पृष्ट होता है और प्राणातिपातक्रिया से (भी) स्पृष्ट होता है, (२) कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट नही होता, उस समय पारितापनिकीक्रिया से स्पृष्ट होता है, किन्तु प्राणातिपातक्रिया से स्पृष्ट नही होता, (३) कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, उस समय पारितापनिकीक्रिया से अस्पृष्ट होता है और प्राणातिपातक्रिया से (भी) अस्पृष्ट होता है तथा (४) कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से अस्पृष्ट होता है, उस समय पारितापनिकीक्रिया से भी अस्पृष्ट होता है और प्राणातिपातक्रिया से भी अस्पृष्ट होता है।

विवेचन—क्रियाओ से स्पृष्ट-अस्पृष्ट की चतुर्भंगी—प्रस्तुत मे पाच क्रियाओ मे से एक जीव मे एक ही समय कितनी क्रियाएँ स्पृष्ट और कितनी क्रियाएँ अस्पृष्ट होती हैं, इसका विचार किया गया है।[2]

१ प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्र ४४५

२. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४४६

प्रकारान्तर से क्रियाओं के भेद और उनके स्वामित्व की प्ररूपणा

१६२१. कइ ण भंते ! किरियाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ । तं जहा—आरंभिया १ पारिग्गहिया २ मायावत्तिया ३ अपच्चक्खाणकिरिया ४ मिच्छादंसणवत्तिया ५ ।

[१६२१ प्र.] भगवन् ! क्रियाएँ कितनी कही गई हैं ?

[उ.] गौतम ! क्रियाएँ पांच कही गई हैं, वे इस प्रकार- (१) आरम्भिकी, (२) पारिग्रहिकी, (३) मायाप्रत्यया, (४) अप्रत्याख्यानक्रिया और (५) मिथ्यादर्शनप्रत्यया ।

१६२२. आरंभिया णं भंते ! किरिया कस्स कज्जति ?

गोयमा ! अण्णयरस्सावि पमत्तसंजयस्स ।

[१६२२ प्र.] भगवन् ! आरम्भिकीक्रिया किसके होती है ?

[उ.] गौतम ! किसी प्रमत्तसंयत के होती है ।

१६२३. पारिग्गहिया णं भंते ! किरिया कस्स कज्जति ?

गोयमा ! अण्णयरस्सावि संजयासंजयस्स ।

[१६२३ प्र.] भगवन् ! पारिग्रहिकीक्रिया किसके होती है ?

[उ.] गौतम ! किसी संयतासंयत के होती है ।

१६२४. मायावत्तिया णं भंते ! किरिया कस्स कज्जति ?

गोयमा ! अण्णयरस्सावि अपमत्तसंजयस्स ।

[१६२४ प्र.] भगवन् ! मायाप्रत्ययाक्रिया किसके होती है ?

[उ.] गौतम ! किसी अप्रमत्तसंयत के होती है ।

१६२५. अपच्चक्खाणकिरिया णं भंते ! कस्स कज्जति ?

गोयमा ! अण्णयरस्सावि अपच्चक्खाणिस्स ।

[१६२५ प्र.] भगवन् ! अप्रत्याख्यानक्रिया किसके होती है ?

[उ.] गौतम ! किसी अप्रत्याख्यानी के होती है ।

१६२६. मिच्छादंसणवत्तिया णं भंते ! किरिया कस्स कज्जति ?

गोयमा ! अण्णयरस्सावि मिच्छादंसणिस्स ।

[१६२६ प्र.] भगवन् ! मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया किसके होती है ?

[उ.] गौतम ! किसी मिथ्यादर्शनी के होती है ।

विवेचन—प्रकारान्तर से पंचविध क्रियाएँ और उनके अधिकारी—प्रस्तुत ६ सूत्रों (सू. १६२१ से १६२६) में प्रकारान्तर से ५ प्रकार की क्रियाओं का नामोल्लेख तथा उनके अधिकारी का निरूपण किया गया है ।

आरम्भिकी आदि पांच क्रियाओं की परिभाषा – सचित्त पृथ्वी, जल, अग्नि आदि का उपमर्दन करना आरम्भ कहलाता है। आरम्भ से पहले दो क्रम होते हैं—सरम्भ और समारम्भ का। सरम्भ कहते हैं—सकल्प को, समारम्भ कहते हैं—परिताप क्रिया को। जिसका प्रयोजन या कारण आरम्भ हो, वह **आरम्भिकीक्रिया** कहलाती है। **पारिग्रहिकी** – धर्मोपकरण को छोड कर वस्तुओ को स्वीकार और उन पर मूर्च्छा परिग्रह है। परिग्रह से निष्पन्न पारिग्रहिकी। **मायाप्रत्यया**—माया—कपट-अनार्जव। माया जिसका प्रत्यय--कारण हो, वह मायाप्रत्यया। **अप्रत्याख्यान**—प्रत्याख्यान कहते हैं त्याग, नियम या हिंसादि आस्रवो से विरति को। विरति या त्याग के परिणामों का अभाव—अप्रत्याख्यान है। अप्रत्याख्यानजनित क्रिया—अप्रत्याख्यानक्रिया है। **मिथ्यादर्शनप्रत्यया**—मिथ्यादर्शन—विपरीत श्रद्धान जिसका कारण हो, उसे मिथ्यादर्शनप्रत्यया कहते हैं।[1]

इन क्रियाओ मे से किस क्रिया का कौन स्वामी या अधिकारी होता है, यह सू. १६२२ से १६२६ तक मे बताया गया है। आरम्भिकीक्रिया प्रमत्तसयतो मे से किसी को उस समय होती है जब वह प्रमाद होने मे कायदुष्प्रयोगवश पृथ्वी आदि का उपमर्दन करता है। पारिग्रहिकीक्रिया देशविरत को होती है, क्योकि वह परिग्रह धारण करके रखता है। अप्रत्याख्यानीक्रिया सब को नही, उस व्यक्ति को होती है, जो कुछ भी प्रत्याख्यान नही करता। मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया उस को होती है, जो देव, गुरु, धर्म और शास्त्र के प्रति अश्रद्धा, अभक्ति, अविनय करता है।[2]

चौबीस दण्डकों में क्रियाओं की प्ररूपणा

१६२७. [१] **णेरइयाण भंते ! कति किरियाओ पण्णत्ताओ ?**

गोयमा ! पच किरियाओ पण्णत्ताओ। त जहा – आरंभिया जाव मिच्छादसणवत्तिया।

[१६२७-१ प्र] भगवन् ! नैरयिको को कितनी क्रियाएँ कही गई है ?

[उ] गौतम ! (उनके) पाच क्रियाएँ कही गई है, वे इस प्रकार आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

[२] **एवं जाव वेमाणियाणं।**

[१६२७-२] इसी प्रकार (नैरयिको के समान) वैमानिको तक (प्रत्येक मे पाच क्रियाएँ समझनी चाहिए।)

विवेचन—समस्त ससारी जीवों में पांच क्रियाओं को प्ररूपणा प्रस्तुत सूत्र (१६२७) मे चोबीस दण्डकवर्ती जीवो मे आरम्भिकी आदि पाचो क्रियाओ की प्ररूपणा की गई है।

जीवों मे क्रियाओं के सहभाव की प्ररूपणा

१६२८. **जस्स णं भंते ! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जति तस्स पारिग्गहिया किरिया कज्जति ? जस्स पारिग्गहिया किरिया कज्जइ तस्स आरंभिया किरिया कज्जति ?**

---

१. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४४७

२. वही, म वृत्ति, पत्र ४४७

गोयमा ! जस्स णं जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जति तस्स पारिग्गहिया किरिया सिय कज्जति सिय णो कज्जति, जस्स पुण पारिग्गहिया किरिया कज्जति तस्स आरंभिया किरिया नियमा कज्जति ।

[१६२८ प्र.] भगवन् ! जिस जीव के आरम्भिकीक्रिया होती है क्या उसके पारिग्रहिकी-क्रिया होती है ? (तथा) जिसके पारिग्रहिकीक्रिया होती है, क्या उसके आरम्भिकीक्रिया होती है ?

[उ] गौतम ! जिस जीव के आरम्भिकीक्रिया होती है, उसके पारिग्रहिकी क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नही होती, जिसके पारिग्रहिकी क्रिया होती है, उसके आरम्भिकी क्रिया नियम से होती है ।

१६२९. जस्स णं भंते ! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जति तस्स मायावत्तिया किरिया कज्जति ? ० पुच्छा ।

गोयमा ! जस्स णं जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जति तस्स मायावत्तिया किरिया णियमा कज्जति, जस्स पुण मायावत्तिया किरिया कज्जति तस्स आरंभिया किरिया सिय कज्जति सिय णो कज्जति ।

[१६२९ प्र] भगवन् ! जिस जीव को आरम्भिकीक्रिया होती है, क्या उसको मायाप्रत्यया क्रिया होती है ? (तथा) जिसके मायाप्रत्ययाक्रिया होती है क्या उसके आरम्भिकीक्रिया होती है ?

[उ] गौतम ! जिस जीव के आरम्भिकीक्रिया होती है, उसके नियम से मायाप्रत्ययाक्रिया होती है (और) जिसको मायाप्रत्ययाक्रिया होती है, उसके आरम्भिकीक्रिया कदाचित् होती है और कदाचित् नही होती है ।

१६३०. जस्स णं भंते ! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जति तस्स अपच्चक्खाणकिरिया कज्जति ? ० पुच्छा ।

गोयमा ! जस्स णं जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जति तस्स अप्पच्चक्खाणकिरिया सिय कज्जति सिय णो कज्जति, जस्स पुण अपच्चक्खाणकिरिया कज्जति तस्स आरंभिया किरिया णियमा कज्जति ।

[१६३० प्र] भगवन् ! जिस जीव को आरम्भिकीक्रिया होती है, क्या उसको अप्रत्याख्यानिकीक्रिया होती है, (तथा) जिसको अप्रत्याख्यानिकीक्रिया होती है, क्या उसको आरम्भिकी-क्रिया होती है ?

[उ] गौतम ! जिस जीव को आरम्भिकीक्रिया होती है, उसको अप्रत्याख्यानिकीक्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नही होती है, किन्तु जिस जीव को अप्रत्याख्यानिकीक्रिया होती है, उसके आरम्भिकीक्रिया नियम से होती है ।

१६३१ एवं मिच्छादंसणवत्तियाए वि समं ।

[१६३१] इसी प्रकार (आरम्भिकीक्रिया के साथ अप्रत्याख्यानीक्रिया के सहभाव के कथन के समान आरम्भिकीक्रिया के साथ) मिथ्यादर्शनप्रत्यया (के सहभाव का) (कथन करना चाहिए ।)

१६३२. एवं पारिग्गहिया वि तिहिं उवरिल्लाहिं समं चारेयव्वा ।

[१६३२] इसी प्रकार (आरम्भिकीक्रिया के साथ जैसे पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यानी क्रिया के सहभाव का प्रश्नोत्तर है, उसी प्रकार) आगे की तीन क्रियाओ (मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानी एव मिथ्यादर्शनप्रत्यया) के साथ सहभाव-सम्बन्धी-प्रश्नोत्तर समझ लेना चाहिए ।

१६३३. जस्स मायावत्तिया किरिया कज्जति तस्स उवरिल्लाओ दो वि सिय कज्जति सिय णो कज्जति, जस्स उवरिल्लाओ दो कज्जति तस्स मायावत्तिया णियमा कज्जति ।

[१६३३] जिसके मायाप्रत्ययाक्रिया होती है, उसके आगे की दो क्रियाएँ (अप्रत्याख्यानिकी और मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया) कदाचित् होती है, कदाचित् नही होती हैं, (किन्तु) जिसके आगे की दो क्रियाएँ (अप्रत्याख्यानिकी एव मिथ्यादर्शनप्रत्यया) होती है, उसके मायाप्रत्ययाक्रिया नियम से होती है ।

१६३४ जस्स अपच्चक्खाणकिरिया कज्जति तस्स मिच्छादंसणवत्तिया किरिया सिय कज्जति सिय णो कज्जति, जस्स पुण मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जति तस्स अपच्चक्खाणकिरिया णियमा कज्जति ।

[१६३४] जिसको अप्रत्याख्यानक्रिया होती है, उसको मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नही होती, (किन्तु) जिसको मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया होती है, उसके अप्रत्याख्यानक्रिया नियम से होती है ।

१६३५ [१] णेरइयस्स आइल्लियाओ चत्तारि परोप्परं णियमा कज्जंति, जस्स एताओ चत्तारि कज्जति तस्स मिच्छादसणवत्तिया किरिया भइज्जति, जस्स पुण मिच्छादसणवत्तिया किरिया कज्जति तस्स एयाओ चत्तारि णियमा कज्जति ।

[१६३५-१] नारक को प्रारम्भ की चार क्रियाएँ (आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यान क्रिया) नियम से होनी है । जिसके ये चार क्रियाएँ होती हैं, उसको मिथ्यादर्शन-प्रत्ययाक्रिया भजना (विकल्प) से होती है, (किन्तु) जिसके मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया होती है, उसके ये चारो क्रियाएँ नियम से होती हैं ।

[२] एव जाव थणियकुमारस्स ।

[१६३५-२] इसी प्रकार (नैरयिको मे क्रियाओ के परस्पर सहभाव के कथन के समान असुरकुमार से) स्तनितकुमार तक (दसो भवनवासी देवो) मे क्रियाओ के सहभाव का कथन करना चाहिए ।

[३] पुढविक्काइयस्स जाव चउरिंदियस्स पच वि परोप्पर णियमा कज्जंति ।

[१६३५-३] पृथ्वीकायिक से लेकर चतुरिन्द्रिय तक (के जीवो के) पाचो ही (क्रियाएँ) परस्पर नियम से होती हैं ।

[४] पचेंदियतिरिक्खजोणियस्स आइल्लियाओ तिण्णि वि परोप्पर णियमा कज्जंति, जस्स एयाओ कज्जति तस्स उवरिल्लाओ दो भइज्जति, जस्स उवरिल्लाओ दोण्णि कज्जंति तस्स एयाओ तिण्णि वि णियमा कज्जंति, जस्स अपच्चक्खाणकिरिया तस्स मिच्छादंसणवत्तिया सिय कज्जति सिय णो कज्जति, जस्स पुण मिच्छादसणवत्तिया किरिया कज्जति तस्स अपच्चक्खाणकिरिया णियमा कज्जति।

[१६३५-४] पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक को प्रारम्भ की तीन क्रियाएँ परस्पर नियम से होती है। जिसको ये (तीनो क्रियाएँ) होती है, उसको आगे की दो क्रियाएँ (अप्रत्याख्यानिकी एव मिथ्यादर्शनप्रत्यया) विकल्प (भजना) मे होती है। जिसको, आगे की दोनो क्रियाएँ होती हैं, उसको ये (प्रारम्भ की) तीनो (क्रियाए) नियम स होती है। जिसको अप्रत्याख्यानक्रिया होती है, उसको मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नही होती है। (किन्तु) जिसको मिथ्यादर्शन-प्रत्ययाक्रिया होती है, उसको अप्रत्याख्यानक्रिया अवश्यमेव (नियम से) होती है।

[५] मणूसस्स जहा जीवस्स।

[१६३५-५] मनुष्य मे (पूर्वोक्त क्रियाओ के सहभाव का कथन) सामान्य जीव मे (क्रियाओ के सहभाव के कथन की) तरह समझना चाहिए।

[६] वाणमंतर-ज्योतिसिय-वेमाणियस्स जहा णेरइयस्स।

[१६३५-६] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव मे (क्रियाओ के परस्पर सहभाव का कथन) नैरयिक (मे क्रियाओ के सहभाव-कथन) के समान समझना चाहिए।

१६३६. ज समय ण भते! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जति त समय पारिग्गहिया किरिया कज्जति ?

एव एते जस्स १ ज समयं २ ज देस ३ जं पदेस ण ४ चत्तारि दडगा णेयव्वा। णेरइयाण तहा सव्वदेवाणं णेयव्व जाव वेमाणियाण।

[१६३६ प्र] भगवन्! जिस समय जीव के प्रारम्भिकीक्रिया होती है, (क्या) उस समय पारिग्रहिकीक्रिया होती है?

[उ] क्रियाओ के परस्पर सहभाव के (सम्बन्ध मे)।

इस प्रकार--(१) जिस जीव के, (२) जिस समय मे, (३) जिस देश मे और (४) जिस प्रदेश मे—यो चार दण्डको के आलापक कहने चाहिए। जैसे नैरयिको के विषय मे ये चारो दण्डक कहे उसी प्रकार वैमानिको तक समस्त देवो के विषय मे कहने चाहिए।

विवेचन जीव आदि मे आरम्भिकी आदि क्रियाओं का सहभाव—प्रस्तुत ९ सूत्रो (सू. १६२८ से १६३६ तक) मे समुच्चय जीव मे तथा नारकादि चौवीस दण्डको मे आरम्भिकी आदि ५ क्रियाओ के परस्पर सहभाव की चर्चा की गई है।

क्रियाओं का सहभाव : क्यो अथवा क्यों नहीं? - जिसके आरम्भिकी क्रिया होती है, उसके पारिग्रहिकी विकल्प से होती है, क्योकि पारिग्रहिकी प्रमत्तसयत के नही होती, शेष के होती है।

जिसके आरम्भिकी होती है, उसके मायाप्रत्यया नियम से होती है (किन्तु जिसके मायाप्रत्यया होती है, उसके आरम्भिकी कदाचित् होती है, कदाचित् नही होती है। अप्रमत्तसयत के नही होती, शेष के होती है तथा जिसके आरम्भिकीक्रिया होती है, उसके अप्रत्याख्यानीक्रिया विकल्प से होती है। प्रमत्तसयत और देशविरत के यह क्रिया नही होती, किन्तु अविरत सम्यग्दृष्टि आदि के होती है। जिसके अप्रत्याख्यानक्रिया होती है, उसके आरम्भिकीक्रिया का होना अवश्यम्भावी है। जिसके आरम्भिकी है, उसके मिथ्यादर्शनक्रिया विकल्प से होती है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि को होती है, शेष के नही होती। जिसके मिथ्यादर्शनक्रिया होती है, उसके आरम्भिकी अवश्य होती है, क्योकि मिथ्यादृष्टि अवश्य ही अविरत होता है। पारिग्रहिकी का आगे को तीन क्रियाओ के साथ, मायाप्रत्यया का आगे की दो क्रियाओ के साथ तथा अप्रत्याख्यानक्रिया का एक मिथ्यादर्शनप्रत्यया के साथ सहभाव होता है। पाच स्थावर और तीन विकलेन्द्रियो मे पाचो क्रियाएँ होती हैं क्योकि पृथ्वीकायिकादि मे मिथ्यादर्शनप्रत्यया अवश्य होती है। अप्रत्याख्यानक्रिया अवतरित-सम्यग्दृष्टि के, मिथ्यादर्शनप्रत्यया मिथ्यादृष्टि के और प्रारम्भ की चारो क्रियाएँ देशविरत के होती हैं।[1]

जीव आदि में पापस्थानों से विरति की प्ररूपणा

१६३७. अत्थि ण भंते ! जीवाण पाणाइवायवेरमणे कज्जति ?

हंता ! अत्थि।

कम्हि णं भंते ! जीवाण पाणाइवायवेरमणे कज्जति ?

गोयमा ! छसु जीवणिकाएसु।

[१६३७ प्र] भगवन् ! क्या जीवो का प्राणातिपात से विरमण होता है ?

[उ] हाँ, होता है।

[प्र] भगवन् ! किस (विषय) मे प्राणातिपातविरमण होता है ?

[उ] गौतम ! (वह) षड् जीवनिकायो (के विषय) मे होता है।

१६३८. [१] अत्थि ण भंते ! णेरइयाण पाणाइवायवेरमणे कज्जति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

[१६३८-१ प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिको का प्राणातिपात से विरमण होता है ?

[उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[२] एवं जाव वेमाणियाण। णवरं मणूसाणं जहा जीवाण (सु १६३७)।

[१६३८-२] इसी प्रकार का कथन वैमानिको तक के प्राणातिपात से विरमण के विषय मे समझना चाहिए। विशेष यह कि मनुष्यो का प्राणातिपातविरमण (सामान्य) जीवो के समान (सू १६३७ के अनुसार कहना चाहिए।)

१६३९. एवं मुसावाएणं जाव मायामोसेणं जीवस्स य मणूसस्स य, सेसाणं णो इणट्ठे समट्ठे। णवरं अदिण्णादाणे गहण-धारणिज्जेसु दव्वेसु, मेहुणे रूवेसु वा रूवसहगएसु वा दव्वेसु, सेसाणं सव्वदव्वेसु।

---

१. प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्र ४४८

[१६३९] इसी प्रकार मृषावाद से लेकर मायामृषा (पापस्थान तक से विरमण सामान्य जीवो का और मनुष्य का होता है, शेष मे यह नही होता। विशेष यह है कि अदत्तादानविरमण ग्रहण-धारण करने योग्य द्रव्यो मे, मैथुनविरमण रूपो मे अथवा रूपसहगत (स्त्री आदि) द्रव्यो मे होता है। शेष पापस्थानो से विरमण सर्वद्रव्यो के विषय मे होता है।

१६४०. अत्थि ण भंते ! जीवाणं मिच्छादंसणसल्लवेरमणे कज्जति ?

हंता ! अत्थि।

कम्हि ण भंते ! जीवाण मिच्छादंसणसल्लवेरमणे कज्जइ ?

गोयमा ! सव्वदव्वेसु।

[१६४० प्र.] भगवन् ! क्या जीवो का मिथ्यादर्शनशल्य से विरमण होता है ?

[उ] हाँ, होता है।

[प्र] भगवन् ! किस (विषय) मे जीवो का मिथ्यादर्शनशल्य से विरमण होता है ?

[उ] गौतम ! (वह) सर्वद्रव्यो (के विषय) मे होता है।

१६४१. एव णेरइयाणं जाव वेमाणियाण। णवर एगिंदिय-विगलिंदियाण णो इणट्ठे समट्ठे।

[१६४१] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर वैमानिको तक के मिथ्यादर्शनशल्य से विरमण का कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि एकेन्द्रियो और विकलेन्द्रियो मे यह नही होता।

विवेचन अठारह पापस्थानों से विरमण की चर्चा प्रस्तुत पचसूत्री मे (१६३७ से १६४१ तक मे) क्रियाओ के सन्दर्भ मे सामान्य जीवो की और चौबीस दण्डकवर्ती जीवो की प्राणातिपात आदि १८ पापस्थानो से विरति तथा उनके विषयो की चर्चा की गई है।

निष्कर्ष—मनुष्य के अतिरिक्त किसी भी जीव मे प्राणातिपात आदि १७ पापस्थानो से उसके भवस्वभाव के कारण विरति नही हो सकती। समुच्चय जीवो मे विरति बताई है, वह मनुष्य की अपेक्षा से बताई है तथा मिथ्यादर्शनविरमण एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय मे नही हो सकता, यद्यपि किन्ही द्वीन्द्रियादि को करण की अपर्याप्तावस्था मे सास्वादनसम्यक्त्व होता है, तथापि मिथ्यात्व अभिमुख द्वीन्द्रियादि को होता है। इसलिए मिथ्यात्वविरमण उनमे सम्भव नही है। शेष सर्व-जीवो मे सम्भव है।[1] इसके अतिरिक्त प्राणातिपातविरमण षट्जीवनिकायो के विषय मे, अदत्तादानविरमण ग्रहण-धारण-योग्य द्रव्यो के विषय मे, मैथुनविरमण रूपो या रूपसहगत द्रव्यो के विषय मे होता है। शेष पापस्थानो से विरमण सर्वद्रव्यो के विषय मे होता है।[2]

पापस्थानविरत जीवों के कर्मप्रकृतिबन्ध की प्ररूपणा

१६४२ पाणाइवायविरए ण भंते ! जीवे कति कम्मपगडीओ बंधति ?

गोयमा ! सत्तविहबधगे वा अट्ठविहबधगे वा छव्विहबंधगे वा एगविहबधगे वा अबधगे वा। एव मणूसे वि भाणियव्वे।

---

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्राक ४५०
(ख) पण्णवणासुत्तं (परिशिष्ट आदि) भा २, पृ १२४

२. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ३५९

[१६४२ प्र] भगवन् ! प्राणातिपात से विरत (एक) जीव कितनी कर्मप्रकृतियो का बन्ध करता है ?

[उ.] गौतम ! वह सप्तविध (कर्म) बन्धक होता है, अथवा अष्टविध (कर्म) बन्धक होता है, अथवा षट्विधबन्धक, एकविधबन्धक या अबन्धक होता है । इसी प्रकार मनुष्य के (द्वारा कर्मप्रकृतियो के बन्ध के) विषय मे भी कथन करना चाहिए ।

१६४३. पाणाइवायविरया णं भंते ! जीवा कति कम्मपगडीओ बधति ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबधगा य एगविहबंधगा य १ ।

अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगे य १ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबधगा य २ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य छव्विहबधगे य ३ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य छव्विहबधगा य ४ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबधगा य अबधगे य ५ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबधगा य अबधगा य ६ ।

अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगे य छव्विहबंधगे य १ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगे य छव्विहबधगा य २ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगा य छव्विहबधगे य ३ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबधगा य ४, अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगे य अबधए य १ अहवा सत्तवियबधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगे य अबधगा य २ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबंधगा य अबधगे य ३ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगा य अबधगा य ४, अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य छव्विहबधगे य अबधगे य १ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य छव्विहबधगे य अबधगा य २ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य छव्विहबधगा य अबधए य ३ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य छव्विहबधगा य अबंधगा य ४ ।

अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगे य छव्विहबधगे य अबधगे य १ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगे य छव्विहबधगे य अबधगा य २ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगा य छव्विहबधगा य अबधगे य ३ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगे य छव्विहबधगा य अबधगा य ४ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगे य अबधगे य ५ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगा य छव्विहबंधगे य अबधगा य ६ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबधगा य छव्विहबंधगा य अबधगे य ७ अहवा सत्तविहबधगा य एगविहबधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबधगा य अबधगा य ८ एते अट्ठ भगा । सव्वे वि मिलिया सत्तावीस भगा भवति ।

[१६४३ प्र] भगवन् ! प्राणातिपात से विरत (अनेक) जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधते हैं ?

[उ] गौतम ! (१) समस्त जीव सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं ।

(१) **अथवा अनेक** सप्तविध-बन्धक अनेक एकविधबन्धक होते हैं और एक अष्टविधबन्धक होता है। (२) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, अनेक एकविधबन्धक और अनेक अष्टविधबन्धक होते हैं। (३) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं और एक षड्विधबन्धक होता है। (४) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक तथा षड्विधबन्धक होते है। (५) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं और एक अबन्धक होता है, (६) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक और अबन्धक होते हैं।

(१) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक अनेक एकविधबन्धक और एक अष्टविधबन्धक और एक षड्विधबन्धक होता है। (२) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक तथा एक अष्टविधबन्धक और अनेक षड्विधबन्धक होते है। (३) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक, और अष्टविधबन्धक होते है और एक षड्विधबन्धक होता है। (४) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक, अष्टविधबन्धक और षड्विधबन्धक होते है। (१) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते है तथा एक अष्टविधबन्धक और एक अबन्धक होता है। (२) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते है, तथा एक अष्टविधबन्धक एव अनेक अबन्धक होते है। (३) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक और अष्टविधबन्धक होते है और एक अबन्धक होता है (४) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक, अष्टविधबन्धक और अबन्धक होते हैं। (१) अथवा अनेक सप्तविध-बन्धक और एकविधबन्धक होते हे तथा एक षड्विधबन्धक एव अबन्धक होता है। (२) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते है तथा एक षड्विधबन्धक एव अनेक अबन्धक होते है। (३) अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक और षड्विधबन्धक होते हैं और एक अबन्धक होता है। (४) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक, षड्विधबन्धक और अबन्धक होते हैं।

(१) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं तथा एक अष्टविधबन्धक, षड्विधबन्धक और अबन्धक होता है। (२) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते है तथा एक अष्टविधबन्धक और षड्विधबन्धक होता है एव अनेक अबन्धक होते हैं। (३) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते है तथा एक अष्टविधबन्धक, अनेक षड्विधबन्धक और एक अबन्धक होता है। (४) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक एव एकविधबन्धक होते है तथा एक अष्टविधबन्धक होता है, और अनेक षड्विधबन्धक एव अबन्धक होते है। (५) अथवा अनेक सप्तविध-बन्धक, एकविधबन्धक और अष्टविधबन्धक होते हैं तथा एक षड्विधबन्धक और अबन्धक होता है। (६) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक और अष्टविधबन्धक होते है तथा एक षड्विधबन्धक एव अनेक अबन्धक होते हैं। (७) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक, अष्टविधबन्धक और षड्विधबन्धक होते हैं तथा एक अबन्धक होता है। (८) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविध-बन्धक, अष्टविधबन्धक, षड्विधबन्धक और अबन्धक होते है। ये कुल आठ भग हुए। सब मिलाकर कुल २७ भंग होते हैं।

१६४४. एव मणूसाण वि एते चेव सत्तावीसं भगा भाणियव्वा।

[१६४४] इसी प्रकार (उपर्युक्त प्रकार से) (प्राणातिपातविरत) मनुष्यो के भी (कर्मप्रकृति-बन्धसम्बन्धी) यही २७ भग कहने चाहिए।

१६४५. एवं मुसावायविरयस्स जाव मायामोसविरयस्स जीवस्स य मणूसस्स य ।

[१६४५] इसी प्रकार (प्राणातिपातविरत एक जीव और एक मनुष्य के समान) मृषावाद-विरत यावत् मायामृषाविरत एक जीव तथा एक मनुष्य के भी कर्मप्रकृतिबन्ध का कथन करना चाहिए ।

१६४६. मिच्छादंसणसल्लविरए णं भंते ! जीवे कति कम्मपगडीओ बंधति ?

गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा अबंधए वा ।

[१६४६ प्र] भगवन् ! मिथ्यादर्शनशल्यविरत (एक) जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाँधता है ?

[उ.] गौतम ! (वह) सप्तविधबन्धक, अष्टविधबन्धक, षड्विधबन्धक, एकविधबन्धक अथवा अबन्धक होता है ।

१६४७. [१] मिच्छादंसणसल्लविरए णं भंते ! णेरइए कति कम्मपगडीओ बंधति ?

गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा, जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिए ।

[१६४७-१ प्र.] भगवन् ! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत (एक) नैरयिक कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाँधता है ?

[उ] गौतम ! (वह) सप्तविधबन्धक अथवा अष्टविधबन्धक होता है, (यह कथन) पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक तक (समझना चाहिए ।)

[२] मणूसे जहा जीवे (सु. १६४६) ।

[१६४७-२] (एक) मनुष्य के सम्बन्ध मे (कर्मप्रकृतिबन्ध का आलापक सू १६४६ मे उक्त) सामान्य जीव के (आलापक के) समान (कहना चाहिए ।)

[३] वाणमंतर-जोइसिए-वेमाणिए जहा णेरइए ।

[१६४७-३] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक (के सम्बन्ध मे कर्मप्रकृतिबन्ध का आलापक) एक नैरयिक (के कर्मप्रतिबन्ध सम्बन्धी सू १६४७-१ मे उक्त आलापक) के समान कहना चाहिए ।

१६४८ मिच्छादंसणसल्लविरया णं भंते ! जीवा कति कम्मपगडीओ बंधंति ?

गोयमा ! ते चेव सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा (सु. १६४३) ।

[१६४८ प्र] भगवन् ! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत (अनेक) जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाँधते हैं ?

[उ] गौतम ! (सू १६४३ मे उक्त) वे (पूर्वोक्त) ही २७ भग (यहाँ) कहने चाहिए ।

१६४९ [१] मिच्छादंसणसल्लविरया णं भंते ! णेरइया कति कम्मपगडीओ बंधंति ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्ज सत्तविहबंधगा १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगे य २ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३ ।

[१६४९-१ प्र] भगवन् ! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत (अनेक) नारक कितनी कर्मप्रकृतियां बाधते हैं ?

[उ] गौतम ! सभी (भग इस प्रकार) होते हैं—(१) (अनेक) सप्तविधबन्धक होते हैं, (२) अथवा (अनेक) सप्तविधबन्धक होते हैं और (एक) अष्टविधबन्धक होता है, (३) अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और अष्टविधबन्धक होते हैं।

[२] एव जाव वेमाणिया। णवरं मणूसाणं जहा जीवाण (सु. १६४८)।

[१६४९-२] इसी प्रकार (नैरयिको के कर्मप्रकृतिबन्ध के आलापक के समान) यावत् (अनेक) वैमानिको के (कर्मप्रकृतिबन्ध के आलापक कहने चाहिए।) विशेष यह है कि (अनेक) मनुष्यो के (कर्मप्रकृतिसम्बन्धी आलापक सू १६४८ मे उक्त समुच्चय अनेक) जीवो के (कर्म-प्रकृति सम्बन्धी आलापक के) समान कहना चाहिए।

विवेचन—अठारह पापस्थानविरत जीवो के कर्मप्रकृतिबन्ध का विचार—प्रस्तुत ८ सूत्रो (सू. १६४२ से १६४९ तक) मे एक जीव, अनेक जीव, एक नैरयिक आदि और अनेक नैरयिक आदि की अपेक्षा से कर्मप्रकृतिबन्ध का विचार अनेक भगो द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

अनेक जीवो की अपेक्षा से २७ भग—कर्मप्रकृतिबन्ध के एकवचन और बहुवचन के कुल २७ भग होते हैं, वे इस प्रकार है—द्विकसयोगी भग—१, त्रिकसयोगी भग—६, चतुःसयोगी भग—१२, और पचसयोगी भग—८, यो कुल मिलाकर २७ भग हुए।

मनुष्यो के भी कर्मप्रकृतिबन्ध के इसी प्रकार २७ भग होते है। ये सभी सूत्र क्रियाओ से सम्बन्धित है, क्योकि क्रियाओ से ही कर्मबन्ध होता है।[1]

पापस्थानविरत जीवादि में क्रियाभेदनिरूपण

१६५०. पाणाइवायविरयस्स णं भंते! जीवस्स कि आरंभिया किरिया कज्जति[2] [जाव मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ] ?

गोयमा! पाणाइवायविरयस्स जीवस्स आरंभिया किरिया सिय कज्जइ सिय णो कज्जइ।

[१६५० प्र] भगवन्! प्राणातिपात से विरत जीव के क्या आरम्भिकीक्रिया होती है? [यावत् क्या मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया होती है ?]

[उ] गौतम! प्राणातिपातविरत जीव के आरम्भिकीक्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नही होती है।

१६५१. पाणाइवायविरयस्स णं भंते! जीवस्स पारिग्गहिया किरिया कज्जइ ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

---

१. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४५१

२. [जाव मिच्छादसणवत्तिया किरिया कज्जइ ?], यह पाठ यहाँ असगत है, क्योंकि आगे १६५४ सू. मे इसके सम्बन्ध में प्रश्न किया गया है जिसका उत्तर भगवान ने 'णो इणट्ठे समट्ठे' दिया है, जबकि यहाँ उत्तर है—'आ कि. सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ।'

[१६५१ प्र] भगवन् ! प्राणातिपातविरत जीव के क्या पारिग्रहिकीक्रिया होती है ?

[उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

१६५२. पाणाइवायविरयस्स ण भंते ! जीवस्स मायावत्तिया किरिया कज्जइ ?

गोयमा ! सिय कज्जति सिय णो कज्जति।

[१६५२ प्र] भंते ! प्राणातिपातविरत जीव के मायाप्रत्ययाक्रिया होती है ?

[उ] गौतम ! कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती।

१६५३. पाणाइवायविरयस्स ण भंते ! जीवस्स अपच्चक्खाणवत्तिया किरिया कज्जति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

[१६५३ प्र] भगवन् ! प्राणातिपातविरत जीव के क्या अप्रत्याख्यानप्रत्ययाक्रिया होती है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

१६५४. मिच्छादंसणवत्तियाए पुच्छा।

गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

[१६५४] (इसी प्रकार की) पृच्छा मिथ्यादर्शनप्रत्यया के सम्बन्ध मे करनी चाहिए।

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

१६५५ एवं पाणाइवायविरयस्स मणूसस्स वि।

[१६५५] इसी प्रकार प्राणातिपातविरत मनुष्य का भी (आलापक कहना चाहिए।)

१६५६. एवं जाव मायामोसविरयस्स जीवस्स मणूसस्स य।

[१६५६] इसी प्रकार मायामृषाविरत जीव और मनुष्य के सम्बन्ध मे भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

१६५७. मिच्छादंसणसल्लविरयस्स णं भंते ! जीवस्स किं आरंभिया किरिया कज्जति जाव मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जति ?

गोयमा ! मिच्छादंसणसल्लविरयस्स जीवस्स आरंभिया किरिया सिय कज्जति सिय नो कज्जति। एवं जाव अपच्चक्खाणकिरिया। मिच्छादंसणवत्तिया किरिया नो कज्जति।

[१६५७ प्र.] भगवन् ! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत जीव के क्या आरम्भिकीक्रिया होती है, यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया होती है ?

[उ] गौतम ! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत जीव के आरम्भिकीक्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानक्रिया तक (कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है। किन्तु) मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया नहीं होती।

१६५८. मिच्छादसणसल्लविरयस्स ण भंते ! णेरइयस्स किं आरंभिया किरिया कज्जति जाव मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ ?

गोयमा ! आरंभिया वि किरिया कज्जति जाव अपच्चक्खाणकिरिया वि कज्जति, मिच्छादसणवत्तिया किरिया णो कज्जइ ।

[१६५८ प्र] भगवन् ! मिथ्यादर्शनशल्यविरत नैरयिक के क्या आरम्भिकीक्रिया होती है, यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया होती है ?

[उ] गौतम ! (उसके) आरम्भिकीक्रिया भी होती है, यावत् अप्रत्याख्यानक्रिया भी होती है, (किन्तु) मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया नही होती ।

१६५९. एवं जाव थणियकुमारस्स ।

[१६५९] इसी प्रकार (मिथ्यादर्शनविरत नैरयिक के क्रिया सम्बन्धी आलापक के समान) असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक (के क्रियासम्बन्धी आलापक कहने चाहिए ।)

१६६०. मिच्छादसणसल्लविरयस्स णं भंते ! पचेंदियतिरिक्खजोणियस्स एवमेव पुच्छा ।

गोयमा ! आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मायावत्तिया किरिया कज्जइ, अपच्चक्खाणकिरिया सिय कज्जइ सिय णो कज्जइ, मिच्छादसणवत्तिया किरिया णो कज्जति ।

[१६६० प्र] इसी प्रकार की पृच्छा मिथ्यादर्शनशल्यविरत पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक की (क्रियासम्बन्धी है ।)

[उ] गौतम ! (उसके) आरम्भिकीक्रिया होती है, यावत् मायाप्रत्ययाक्रिया होती है । अप्रत्याख्यानक्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नही होती है, (किन्तु) मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया नही होती है ।

१६६१ मणूसस्स जहा जीवस्स (सु. १६५७) ।

[१६६१] (मिथ्यादर्शनशल्यविरत) मनुष्य का क्रियासम्बन्धी प्ररूपण (सू **१६५७ मे उक्त** सामान्य) जीव (के क्रियासम्बन्धी प्ररूपण) के समान (समझना चाहिए ।)

१६६२. वाणमतर-जोइसिय-वेमाणियाण जहा णेरइयस्स (सु. १६५८) ।

[१६६२] (मिथ्यादर्शनशल्यविरत) वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको का (क्रियासम्बन्धी कथन सू १६५८ मे उक्त) नैरयिक (के क्रियासम्बन्धी कथन) के समान (समझना चाहिए ।)

विवेचन -अष्टादशपापस्थानविरत जीवादि मे क्रियासम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत १३ सूत्रो (१६५० से १६६२ तक) मे प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शनशल्य से विरत सामान्य जीव तथा चौवीसदण्डकवर्ती जीवो को लगने वाली आरम्भिकी आदि क्रियाओ की प्ररूपणा की गई है ।

स्पष्टीकरण—प्राणातिपात से लेकर मायामृषा से विरत (औघिक) जीव तथा मनुष्य के आरम्भिकी और मायाप्रत्यया क्रिया विकल्प से लगती है, शेष तीन—पारिग्रहिकी, अप्रत्याख्यानप्रत्यया

एव मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया नही लगतो, क्योकि जो जीव या मनुष्य प्राणातिपात से विरत होता है, वह सर्वविरत होता है, इसलिए सम्यक्त्वपूर्वक ही महाव्रत ग्रहण करता है, हिंसादि का प्रत्याख्यान करता है तथा अपरिग्रहमहाव्रत को भी ग्रहण करता है, इसलिए मिथ्यादर्शनप्रत्यया, अप्रत्याख्यान-प्रत्यया और पारिग्रहिकी क्रिया उसे नही लगती। प्राणातिपातविरत प्रमत्तसयत के आरम्भिकी क्रिया होती है, शेष सर्वविरत को नही होती। अप्रमत्तसंयत को मायाप्रत्यया क्रिया कदाचित् प्रवचन-मालिन्य के रक्षणार्थ (उस अवसर पर) लगती है, शेष समय मे नही।

उसी मिथ्यादर्शनशल्यविरत जीव को आरम्भिकीक्रिया लगती है, जो प्रमत्तसयत हो, पारिग्रहिकीक्रिया देशविरत तक होती है, आगे नही। मायाप्रत्यया भी अनिवृत्तबादरसम्पराय तक होती है, आगे नही होतो। अप्रत्याख्यानक्रिया भी अविरतसम्यग्दृष्टि तक होती है, आगे नही। इसलिए मिथ्यादर्शनशल्यविरत के लिए इन क्रियाओ के सम्बन्ध मे विकल्पसूचक प्ररूपणा है। मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया मिथ्यादर्शनविरत मे सर्वथा असम्भव है। आगे चौवीसदण्डक को लेकर विचार किया गया है। मिथ्यादर्शनविरत नैरयिक से लेकर स्तनितकुमार पर्यन्त चार क्रियाएँ होती है, मिथ्यादर्शनप्रत्यया नही होती। तिर्यञ्च-पचेन्द्रिय मे प्रारम्भ की तीन क्रियाएँ नियम से होती है, अप्रत्याख्यानक्रिया विकल्प से होती है, जो देशविरत होता है उसके नही होती, शेष के होती है। मिथ्यादर्शनप्रत्यया नही होती। मनुष्य मे सामान्य जीव के समान तथा व्यन्तरादि देवो मे नारक के समान क्रियाएँ समझनी चाहिए।[1]

आरम्भिकी आदि क्रियाओं का अल्पबहुत्व

१६६३. एयासि णं भंते ! आरंभियाण जाव मिच्छादंसणवत्तियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा[2] ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवाओ मिच्छादंसणवत्तियाओ किरियाओ, अपच्चक्खाणकिरियाओ विसेसाहियाओ, पारिग्गहियाओ विसेसाहियाओ, आरंभियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ, मायावत्तियाओ विसेसाहियाओ।

॥ पण्णवणाए भगवईए बावीसइमं किरियापयं समत्तं ॥

[१६६३ प्र] भगवन् ! इन आरम्भिकी से लेकर मिथ्यादर्शनप्रत्यया तक की क्रियाओ मे कौन किससे अल्प है, बहुत है, तुल्य है अथवा विशेषाधिक है ?

[उ] गौतम ! सबसे कम मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रियाएँ हैं। (उनसे) अप्रत्याख्यानक्रियाएँ विशेषाधिक हैं। (उनसे) पारिग्रहिकीक्रियाएँ विशेषाधिक हैं। (उनसे) आरम्भिकीक्रियाएँ विशेषाधिक हैं, (और इन सबसे) मायाप्रत्ययाक्रियाएँ विशेषाधिक हैं।

---

१. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४५२

२ 'अप्पा' के आगे अकित ४ का अक शेष "**बहू वा तुल्ला वा, विसेसाहिया वा**" इन तीन पदो का सूचक है।

विवेचन—क्रियाओं का अल्पबहुत्व : क्यों और कैसे ?—सबसे कम मिथ्यादर्शनप्रत्यया-क्रियाएँ हैं, क्योंकि वे मिथ्यादृष्टियो के ही होती हैं। उनसे अप्रत्याख्यानक्रिया विशेषाधिक इसलिए हैं कि वे अविरत सम्यग्दृष्टियो एव मिथ्यादृष्टियो के होती हैं, उनसे पारिग्रहिकीक्रियाएँ विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे देशविरतो तथा उनसे पूर्व श्रेणी के प्राणियो के भी होती है, आरम्भिकीक्रियाएँ उनसे विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रमत्तसयतो तथा इनसे पूर्व के गुणस्थानो मे होती हैं। उनसे भी माया-प्रत्यया विशेषाधिक हैं, क्योंकि अन्य सब ससारी जीवो के उपरान्त अप्रमत्तसयतो मे भी पाई जाती है।[1]

॥ प्रज्ञापना भगवती का बाईसवाँ क्रियापद सम्पूर्ण ॥

१. प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्र ४५२

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्या करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहि महापाडिवएहि सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहि सझाहि सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपर्युक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग सी लगी है तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३. गर्जित—बादलो के गर्जन पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योकि वह

गर्जन और विद्युत् प्रायः ऋतु-स्वभाव मे ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलों सहित आकाश मे कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६ यूपक—शुक्लपक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे-थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८. धूमिका-कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धु ध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धु ध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज-उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिकशरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी, मांस और रुधिर—पचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते है।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४ अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान - श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण -सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनै. शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिकशरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव है। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते है। इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रात· सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घड़ी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

□□

श्री आगम प्रकाशन-समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया , मद्रास
२. श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४ श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बेंगलोर
५. श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६. श्री एस किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री कवरलालजी बेताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खीवराजजी चोरडिया मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१०. श्री एस बादलचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
११. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३. श्री जे. अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४. श्री एस. सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर. शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७. श्री जे हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१ श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
३ श्री तिलोकचदजी, सागरमलजी सचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, कटगी
५. श्री आर. प्रसन्नचन्दजी बोकडिया, मद्रास
६. श्री दीपचन्दजो बोकडिया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजो चोरडिया, कटगी
८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मागोलालजो मिश्रोलालजो सचेतो, दुर्ग

संरक्षक

१ श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२ श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३. श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेडता सिटी
४. श्री शा० जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपडा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चागाटोला
७ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चागा-टोला
९ श्रीमती सिरेकुंवर बाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचन्दजी झामड, मदुरान्तकम्
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K G F) जाडन
११. श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३. श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया ब्यावर
१५. श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनादगाव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी काकरिया, टगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९. श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढा, चागाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चागाटोला

२२ श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
२३. श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४. श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५ श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
२६ श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा डोडीलोहारा
२८. श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
२९ श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३०. श्री सी० अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
३१. श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२. श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३. श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
३५. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बेंगलोर
३६. श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३७. श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८. श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३९. श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४०. श्री जबरचन्दजी गेलडा, मद्रास
४१. श्री जडावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३. श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४. श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी मेहता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडतासिटी
२. श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३. श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
४. श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
५. श्री भवरलालजी चौपडा, ब्यावर
६. श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७ श्री बी. गजराजजी बोकडिया, सेलम
८. श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
९ श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१० श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचदजी गोठी, जोधपुर
२१. श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५ श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९. श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१. श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२. श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३. श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४ श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५. श्री हरकचन्दजी मेहता जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३९. श्री मागीलालजी चोरडिया, कुचेरा

४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३. श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
४४. श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट कं.) जोधपुर
४५. श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बेंगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८. श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, बेंगलोर
४९ श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४ श्री बेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मांगीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता सिटी
५९ श्री भवरलालजी रिखबचदजी नाहटा, नागौर
६०. श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कला
६२ श्री हरकचदजी जुगराजजी बाफना, बेंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भीवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगांव
६७ श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८ श्री भंवरलालजी डूगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७०. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१. श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२ श्री गगारामजी इन्द्रचदजी बोहरा, कुचेरा
७३. श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री बालचदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टंगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गोहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी बाफना, गोठन
८३. श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४. श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरडिया, भैरूंदा
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७. श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९० श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
९१ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी, बेंगलौर
९५. श्रीमती कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६. श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७. श्री सुगनचन्दजी सचेती, राजनांदगांव

९८. श्री प्रकाशचदजी जैन, भरतपुर
९९. श्री कुशालचदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बोलारम
१००. श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१. श्री गूदड़मलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२. श्री तेजराजजी कोठारी, मागलियावास
१०३. सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४. श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७. श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८. श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९. श्री भवरलालजी मागीलालजी बेताला, डेह
११०. श्री जीवराजजी भवरलालजी चोरड़िया, भैरूदा
१११. श्री मांगीलालजी शातिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२. श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४. श्री भूरमलजी दुलीचदजी बोकड़िया, मेड़तासिटी
११५. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६. श्रीमती रामकंवरबाई धर्मपत्नी श्री चांदमलजी लोढा, बम्बई
११७ श्री मांगीलालजी उत्तमचदजी बाफणा, बैंगलोर
११८ श्री साचालालजी बाफणा, औरंगाबाद
११९ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकुवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३ श्री भीकमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया सिकन्दराबाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, बगडीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाड़ा
१२८. श्री टी. पारसमलजी चोरड़िया, मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड कं., बैंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड़ □□